CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागारधर्मामृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

-संख्या १२६

ोध) संस्थान

लेका क्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री आदिचंद्रप्रभु आचार्यश्री महावीरकीर्ति
सरस्वती प्रकाशनमालाका
चतुर्थ पुष्प

सं. १४

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं. १३८
नरिया, (का. हि. वि.) वाराणसी-५

महापंडित आशाधरविरचितम्

सागारधर्मामृतम्

अनुवादिका
पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी

संपादक व संशोधक
श्री पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
(विद्यावाचस्पति आदि)

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
सं. १३८
नरिया, (का. हि. वि.) वाराणसी-५

प्रकाशिका
सौ. भंवरीदेवी पांड्या
धर्मपत्नी दानवीर रा. सा. सेठ चांदमलजी पांड्या
सुजानगढ (राजस्थान)

भाद्रपद शु. ५ वीर सं. २४९८

१९७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री परमपूज्य मुनिराज समंतभद्र महाराजका

स्वस्तिवचन

वीर नि. संवत् २४९४ के चातुर्मासके अवसरपर श्री १०५ इंदुमती माताजीके संघस्थित श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजीके मुखसे रसपूर्ण वाणीद्वारा प्रवचनोंको सुननेका सुअवसर प्राप्त हुआ जिससे सबको अत्यंत प्रसन्नता हुई। विशेषतः प्रथमानुयोगांतर्गंत कथाभागोंका रहस्यपूर्ण आविष्कार प्रवचनोंकी अपनी एक विशेषता प्रतीत हुई। यह प्रवचनशक्ति जैनसमाजके लिए एक सचेतन अद्‌भुत निधीके समान है।

प्रवचनोंकी तरह एकाद ग्रंथका अनुवाद भी श्री माताजीद्वारा संपन्न हो तो वह स्थायीनिधि होगी और समाजके लिए वह उपयुक्त वस्तु होगी ऐसा हमारे द्वारा विचार प्रस्तुत हुआ। फलस्वरूप सागारधर्मामृत ग्रंथके अनुवादका निर्णय हुआ। आज यह प्रसन्नताका विषय है कि ग्रंथका सानुवाद प्रकाशन हो रहा है। अनुवादमें संबंधित कथाभागका भी निरूपण आया है जो अनुवादकी विशेषता है।

श्री माताजीका संस्कृत व्याकरण, साहित्य और तत्वका अध्ययन भी अच्छा है। इसलिए इस अनुवादमें भी निःसंशय आम्नायपरंपराकी सुरक्षा निहित होगी।

इस अवसरपर यह भावना करते हुए प्रसन्नता होती है कि श्री जिनमुखोत्पन्न भगवती जिनवाणीकी सेवा प्रवचनोंके द्वारा और ग्रंथनिर्मितिके रूपमें श्री माताजीके द्वारा भविष्यमें भी होती रहे और धर्मकी ठोस प्रभावना हो। ॐ स्वस्ति।

प्रेषक–**माणिकचंद भीसीकर**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० 234
दिनांक ....
नरिया, (का.) वि. वि. वाराणसी-5

प्रस्तावना

सागारधर्मामृत

सागारधर्मामृत जैन संसारमें श्रावकधर्मको प्रतिपादन करनेवाला उत्तम ग्रंथ है। इसमें श्रावकोचित सर्व आचारोंका समावेश किया गया है। इस अष्टाध्यायी ग्रंथमे जिन श्रावकाचारोंका प्रतिपादन किया है उनके आचरणसे मानवजीवन सुसंस्कृत व विकसित हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है। मानव जीवनको प्राप्त करनेके बाद प्रत्येक जीवका यही कर्तव्य है। स्वैर जीवनमें आत्मशांति नहीं मिल सकती है। इसलिए ग्रंथकारने जीवनको पूर्ण विकसित करनेके लिए क्रमबद्ध आचारका इसमें प्रतिपादन किया है। श्रावक धर्मका कोई भी आचार अब इससे शेष नहीं रहा है। इस दृष्टिसे ग्रंथकारने भी एक श्लोकसे समग्र श्रावकधर्मका निरूपण किया है।

सम्यक्त्वममलममलान्यणुगुणशिक्षाव्रतानि मरणांते।
सल्लेखना च विधिना, पूर्णः सागारधर्मोयम् ॥

अध्याय १ श्लोक १२

जीवनमें निर्मल सम्यक्त्वकी प्राप्ति, अमलिन–निरतिचार अणुव्रत, गुणव्रत व शिक्षाव्रतोंका आचरण एवं मरणके अंत समयमें सल्लेखनाकी विधिसे शरीरका त्याग, यह समग्र सागारधर्म है। उसीका प्रतिपादन क्रमबद्ध रूपसे इस ग्रंथमे है। पूर्वाचार्योंके प्रतिपादनको लक्ष्यमें रखकर ग्रंथकर्ताने अपनी स्वतंत्र शैलीसे ग्रंथको प्रतिबद्ध किया है। श्रावकधर्ममें चलनेवाले श्रावकोंको इससे अधिक सांगोपांग ग्रंथ आज अन्य उपलब्ध नहीं है यह कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथकर्ताका परिचय

महापंडित श्री आशाधर

पं. आशाधरजीने व्याघ्रेरवाल (बघेरवाल) वंशको अलंकृत किया था, उनके पिता सलखण और माता श्रीरत्नीके नामसे प्रसिद्ध थे। इनका जन्म राजस्थानके मेवाड प्रांतांतर्गत मांडलगढमें विक्रम सं. १२३० के आसपास हुआ था। लगभग सं. १२४९ में गजनीके शहाबुदीन गौरीने जब पृथ्वीराजको पराजितकर दिल्लीको अपनी राजधानी बनाई थी तब उसने अजमेर प्रांतके ऊपर भी आक्रमण किया था। यवनोंके बढते हुए अत्याचारोंके कारण धर्मनाशके भयसे आशाधरके पूज्य पिताने राजस्थानको छोडकर मालव प्रांतकी राजधानी धारका आश्रय लिया। तब वहां परमारवंशीय प्रतापी विंध्यवर्म राजाका राज्य था। विंध्यवर्मका पौत्र अर्जुनवर्म सुभटवर्मका पुत्र था, इसका समय साधारण विक्रम सं. १२६५ का लगभग माना जाता है।

आशाधरकी पत्नी सरस्वती थी, उसके गर्भसे छाहडा नामका नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसकी प्रशंसा स्वयं उन्होंनें की थी एवं महाराज अर्जुन देव भी उसके गुणोमें अनुरक्त थे।

जब आशाधर धारापुरीमें आये तब उनकी आयु केवल बीस वर्षकी थी, उन्होने जैनेंद्रव्याकरण, जैन न्यायशास्त्र आदि ग्रंथोंका अध्ययन धारा नगरीमें आकर ही किया था,यह धर्मामृतकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है। विद्वद्वर महावीर आशाधरके गुरु थे जो वादिराज सूरिके शिष्य धरसेनके अंतेवासी थे। आशाधर जीवन व्यवहारमें निश्चित थे, अतः जीवनभर विद्याव्यासंगमें उन्होने व्यतीत किया व अनेक विद्वान् शिष्योंका निर्माण भी किया। पं. देवचंद्र आदिको व्याकरण शास्त्रमें निपुण बनाकर विद्वान् बनाया तो वादीन्द्र विशाल कीर्ति आदिको षड्दर्शन न्यायशास्त्रमें प्रवीण बनाकर परवादियोंके विजेता बनाया,भट्टारक देवचंद्र विनयचंद्रादिको धर्मशास्त्रका अध्ययन कराकर मोक्षमार्गमें प्रवर्तन किया। मदनोपाध्यायादिको साहित्य शास्त्रका अध्ययन कराकर एवं अर्जुन आदि राजावोंको राजनीतिमें निपुण बनाया। इससे इनकी विद्वत्ताका सहज अनुमान हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वत्ताकी प्रशंसा

पं. आशाधरजीकी विद्वत्ताकी प्रशंसा विंध्यवर्मके विद्वान् महाकवि मंत्री विल्हणने की थी। इसी प्रकार मुनि उदयसेन व मदनकीर्तिने भी आपकी प्रशंसा की थी। उदयसेनने आशाधरको व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंस, काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्र, नयविश्वचक्षु कलिकालिदास आदि शब्दोंसे समादर किया है। मदनकीर्तिने आशाधरको प्रज्ञापुंज कहा हैं। इससे पं. आशाधरजीकी महती विद्वत्ताका बोध होता है।

स्थानांतर

करीव वि. सं. १२६५ में धारानगरीको छोडकर उन्होंने नलकच्छपुरमें आवास किया। नलकच्छपुर धारनगरीके समीप ही है। वहांपर श्रावकोंका अधिक संख्यामें निवास होनेसे धर्मसाधनके लिए उन्होंने अनुकूल स्थान समझा होगा। यहां भी अर्जुनवर्मदेवका ही शासन था।

नलकच्छपुरमें वास करनेके लिए जब आशाधर गये तब उन्होंने संयमकी भी अभिवृद्धि की। गृहस्थाश्रमसे संबंधका भी त्याग किया। गृहविरत उच्च श्रावकके पदमें उनकी स्थिति उस समय रही होगी। उनके द्वारा निर्मित जिनसहस्रनाम स्तोत्रके निम्न श्लोकोंसे उनकी विरतवृत्तिका आभास मिलता है।

प्रभो भवांगभोगेषु निर्विण्णो दुःखभीरुकः
एष विज्ञापयामि त्वां शरण्यं करुणार्णवम् ॥
सुखलालसया मोहात् भ्राम्यन्बहिरितस्ततः
सुखैकहेतोर्नामापि स्तवन्नं ज्ञातवान् पुरा ॥
अद्य मोहग्रहावेशशैथिल्यात् किंचिदुन्मुखः
अनंतगुणमाप्तेभ्यस्त्वां श्रुत्वा स्तोतुमुद्यतः ॥

इससे ज्ञात होता है कि संसारसे उदासीन होकर वि. सं. १३०० पर्यंत आशाधरजी नलकच्छपुरमें ही रहे थे। उनके द्वारा रचित सर्व ग्रंथोंके अनंतर निर्मित अनगारधर्मामृतकी टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त समयमें नलकच्छपुरके चैत्यालयमें ही पूर्ण हुई। उनके अन्य ग्रंथ भी इस स्थानमें रचित हुए हैं।

आशाधर किस संवत्तक विद्यमान थे यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकते हैं तथापि वे दीर्घजीवनको प्राप्त थे,यह सुनिश्चित है। विंध्यवर्मके समय धारानगरीमें आकर मालवदेशमें पांच राजपीढीको उन्होने देखा, यह कहनेपर उनके दीर्घजीवनका अनुमान किया जा सकता है। चौथे शासक देवपालके समयमें ही आशाधरने अपने जिनयज्ञकल्प नामक प्रतिष्ठा पाठकी रचना की। सागारधर्मामृतकी टीका१२९६में और अनगारधर्मामृतकी टीका सं.१३००में पूर्ण की,तब देवपालका पुत्र जेतुगीदेवका शासनकाल था।

आशाधरकी रचनायें

अपनी ग्रंथ प्रशस्तिमें आशाधरजीने अपनी निम्नलिखित रचनावोंका उल्लेख किया हैं।

१) प्रमेयरत्नकर(न्याय) २) भरतेश्वराभ्युदय-स्वोपज्ञटीकासह
३) धर्मामृतशास्त्रं(अनगार व सागारधर्मामृत-स्वोपज्ञ टीकासह)
४) अष्टांगहृदयोद्योतिनीटीका ५) आराधना सार टीका
६) इष्टोपदेश टीका ७) अमरकोषक्रियाकलापटीका
८) भूपालचतुर्विंशति टीका ९) काव्यालंकार टीका
१०) जिनसहस्रनाम टीका ११) जिनयज्ञकल्प सटीक
१२) त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र टीका १३) नित्यमहोद्योत
१४) राजीमतिविप्रलंभकाव्य १५) अध्यात्मरहस्य
१६) रत्नत्रय विधान

इनमें कुछ ग्रंथ उपलब्ध हैं, कुछ अनुपलब्ध हैं, अनुपलब्ध ग्रंथोंका अन्वेषण-अनुसंधान होना आवश्यक है।

महापंडित आशाधरजीकी ग्रंथरचनावोंपर दृष्टिपात करनेपर ये बहुमुखी प्रतिभासंपन्न समृद्ध विद्वान् थे, यह सहज ध्यानमें आता है। उनके द्वारा रचित यह सागारधर्मामृत ग्रंथ भी अन्य कृतियोंके समान महत्वपूर्ण व सांगोपांग है। इससे आत्महितैषी भव्योंका श्रेय होगा, यह सुनिश्चित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस संस्करणकी विशेषता

यों तो सागारधर्मामृतके कई संस्करण निकले हैं। श्री दा. माणिकचंद ग्रंथमालासे मूल, तदनन्तर धर्मरत्न स्व.पं. लालारामजी शास्त्री द्वारा लिखित हिन्दी टीका, स्व.पं. कल्लप्पा भरमप्पा निटवे के द्वारा प्रकाशित मराठी टीका, कारंजासे प्रकाशित स्व. पं. देवकीनंदनजी कृत टीका, जबलपुरसे प्रकाशित पं. मोहनलालजी कृत सटीक सागारधर्मामृत आदि कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। परन्तु इस संस्करणमें एक विशेषता है।

इस संस्करणमें सागारधर्मामृतका अन्वयार्थ दिया गया है, एवं विशेषार्थ भी भावार्थमें दिया गया है। साथ ही ग्रंथके प्रकरणमें जो पौराणिक उदाहरण दिये गये हैं। उनकी समग्र इसमें दी गई है यह इस संस्करणकी विशेषता है। इससे अध्ययनशील विद्यार्थी एवं स्वाध्यायप्रेमी बंधुवोंको ग्रंथका प्रमेय समझनेमें एवं ग्रंथका समग्र ज्ञान करनेमें बडी सहूलियत होगी, इस दृष्टिसे यह संस्करण सबको उपयोगी सिद्ध होगा ऐसी आशा है।

मुनिमार्गके उपासक व मुनिपरंपरा

ग्रंथकारने श्रावक धर्मका लक्षण करते हुए कहा है कि तद्धर्मरागिणां धर्मः सागारधर्मः अर्थात् यतिधर्मपर जिनका अनुराग है वे ही यथार्थमें श्रावक धर्मके पात्र हैं। यतिधर्मपर जिनकी श्रद्धा नहीं है वे श्रावक भी नहीं हो सकते हैं। कारण कि जैनागमकी परंपरा गणधरादिक मुनियोंकी परंपरासे ही श्रौत व स्मार्त रूपसे चली आ रही है। भगवान् महावीरके मुक्तिगमनके बाद ६२ वर्षतक केवली, तदनंतर १०० वर्षतक श्रुतकेवली, नंतर १८३ वर्षतक दशपूर्वधर, नंतर २२० वर्षतक एकादशांगधर और ११८ वर्षतक आचारांगधर इस प्रकार ६८३ वर्षतक अंगपूर्वधर मुनियोंकी परंपरा अविच्छिन्न रूपसे बनी रही। इसके बाद केवली, अंगश्रुतज्ञानधारी मुनियोंकी परंपरा नष्ट हो गई। तदनन्तर आचार अंगश्रुतके एक देशधारक आरातीय आचार्य कुछ समयतक बने रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन आचार्योंमें जो धरसेनाचार्य थे, उन्हे आग्रायणीय पूर्वकी चयनलब्धि नामक पांचवीं वस्तुके अंतर्गत २० प्राभृतोमे कर्मप्रकृति प्राभृत नामक चतुर्थ प्राभृतका ज्ञान था। उन्होंने अपने ज्ञानको भूतबलि–पुष्पदंतको प्रदान कर उनके द्वारा षट्खंडागम जीवस्थान, सत्प्ररूपणा, महाकर्मप्रकृति प्राभृत आदि राद्धांतग्रंथोंकी रचना कराई। तदनंतर अनेक आरातीय आचार्योंमें श्री कुंदकुंद, उमास्वामी समंतभद्र, पूज्यपाद, अकलंक देव, प्रभाचंद्र, वीरसेन, जिनसेन गुणभद्र, नेमिचंद्र आदि महान् आचार्य हुए जिन्होंने प्राचीन महर्षियोंके द्वारा विरचित ग्रंथोंके अविरुद्ध प्रतिपादक दर्शन, न्याय, सिद्धांत ग्रंथोंकी रचना की, जिनसे आज भी अज्ञजनताको ज्ञान प्रकाश मिल रहा है। तदनंतर उनके पदानुसरण कर ग्रंथनिर्मिति करनेवाले सोमदेव, अमितगति, रविषेण, वादिराज, अमृतचंद्र, वादीभसिंह, शुभचंद्र, श्रुतसागर आदि अनेक मुनिगण एवं आशाधर, हस्तिमल्ल, ब्रम्हसूरि, पंप, रन्न, पोन्न, जन्न, नयसेन, रत्नाकर आदि महाकवि हुए जिन्होंने अनेक धार्मिक साहित्योंके सृजनसे इस परंपराको अक्षुण्ण बनाये रखी। इस प्रकार करीब १८ वी सदीतक यह जैन मार्गकी परंपरा बराबर चली आ रही थी। परंतु बीचकी सदीमें कुछ समयसे विलुप्त इन मुनिमार्गकी परंपराको परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ति आचार्य शांतिसागर महाराजने पुनरुज्जीवित किया। आजके इस समयको आचार्यश्रीका युग कहा जा सकता है।

श्री चारित्रचक्रवर्ति स्व. आचार्य शांतिसागरजी

परमपूज्य आचार्य शांतिसागरजी महाराज इस युगके महान् संत हुए हैं। दक्षिण प्रांतमें उनका उदय होनेपर भी कन्याकुमारीसे विंध्याचलतटतक, अटकसे कटकतक संघसहित विहार कर आचार्यश्रीने अभूतपूर्व धर्मोद्योत किया। चारित्रमार्गके प्रति लोगोंके हृदयमें जो ग्लानि आ गई थी उसे दूर कर आचार्यश्रीने आत्महितैषी भव्योंको संयमकी ओर आकृष्ट किया। समाजमें चिरकालसे घर किये हुए मिथ्यात्वको दूर भगाया। निर्मलचारित्रधारी अनेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वान् शिष्योंका निर्माण किया। उनमें परमपूज्य आचार्य नेमिसागर महाराज, आचार्य स्व. वीरसागर महाराज, आचार्य स्व. कुंथुसागर महाराज, आचार्यकल्प स्व. चंद्रसागर महाराज, आचार्य स्व. नमिसागर महाराज, आचार्य स्व. पायसागर महाराज, आचार्य स्व. सुधर्मसागर महाराज आदि प्रमुख हैं। आचार्यश्रीके शिष्य प्रशिष्योंकी संख्या अगणित है।

जीवनमें अनेक बार प्राणांतिक संकट आनेपर भी उन अवसरोंमें जो बाल बाल बचते हैं वे निस्संदेह महापुरुष है। आचार्यश्री इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए, अतः वे अवश्य महापुरुष थे।

दो बार सर्पकृत उपसर्ग, अन्य मानवीय, राजाखेडामें घटित प्राणांतिक उपसर्ग आदि प्रसंगोमें आचार्यश्रीके तपोबलका ही प्रभाव था जिससे उनको कोई अपाय नहीं हो सका। इसलिये आप इस युगके महान् श्रेष्ठ महापुरुष सिद्ध हुए।

संयम मार्गके संरक्षणके लिए आचार्यश्रीने जीवनभर पुरुषार्थ किया, आपकी परिणति अत्यन्त शांत थी, इसलिए आपको शांतिके सागर कहना सर्वथा उपयुक्त है। आपके द्वारा जीवनमें जो कार्य हुए वे जैन संसारमें चिरस्मरणीय रहेंगे।

धवलादि राद्धांतग्रंथोंका ताम्रपत्रपर उत्कीर्ण कराकर आचार्यश्रीने उनको चिरस्थायी किया, अनेक अनुपलब्धग्रंथोंका प्रकाशन कराकर आचार्यश्रीने जिनवाणीकी अनुपम सेवा की हैं। आचार्यश्रीके व संघके विहारसे जो संस्कृतिसंरक्षणका कार्य भारतभरमें अल्प समयमें हुआ वह कार्य सेकडों विद्वानोंके द्वारा सैकडों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता था। इसीसे उनके जीवनकी महत्ता व्यक्त हो सकती है। उनके अंतिम समयकी ३६ दिनोंकी ऐतिहासिकसल्लेखना पूर्वमुनियोंके महान जीवनकी स्मृति है। सल्लेखना साधनाके समय ही उन्होंने अपना आचार्यपद सुयोग्य शिष्य मुनिराज वीरसागर महाराजके सबल कंधोंपर डाल दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री पूज्य आचार्य स्व. वीरसागरजी महाराज

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आचार्य शांतिसागर महाराजके सुयोग्य शिष्योंमे परमपूज्य तपोनिधि आचार्य वीरसागर महाराजका नाम बहुत आदरके साथ लिया जा सकता है। अत्यंत तेजस्वी शांतमूर्ति, भद्रपरिणति, सरलस्वभावी, ज्ञानध्यानरत, वे साधु थे। शिष्योंका निग्रह व अनुग्रह करनेमें वे सिद्धहस्त थे।

दक्षिणप्रांतातर्गत औरंगाबाद जिल्हाके वीर ग्राममें जन्म होनेपर भी बाल्यकालसे आत्मकल्याणकी उत्कट भावना। इसी भावनासे प्रेरित होकर आत्मकल्याणके हेतु परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराजकी सन्निधिमें पहुंचे। क्रमशः पदवृद्धि करते हुए आचार्यश्रीसे समडोली चातुर्मासमें दैगंबरी दीक्षाका अंगीकार किया। तबसे बराबर प्रवर्द्धमानचारित्रका पालन करते हुए इस जैनी तपस्याके मार्गको आपने प्रशस्त किया। परमपूज्य आचार्य संघमें रहकर आपने दक्षिण भारत व उत्तरभारतके सर्व तीर्थोंकी बन्दना की और उत्तरभारतके विहारमें विशेष धर्मप्रभावना करते हुए उसी प्रांतमें रहे। आपका विहार यद्यपि सर्वत्र हुआ है। अन्तिम समयमें विशेषतः राजस्थान प्रांतमें ही पुण्यविहार रहा।

आपके पुण्यविहारसे उत्तरभारतमें चारित्रका मार्ग उज्वल हुआ। हजारों लोगोने व्रत नियम लिये, लाखों लोगोने अभक्ष्य भक्षणादि व्यसनोंका त्याग किया, कितने ही भव्य प्रतिमात्मक चारित्रका अंगीकार कर आत्मकल्याणके मार्गमें आरूढ हुए, कितने ही भव्योंने निर्ग्रंथ दीक्षाको लेकर आत्मसाधनके मार्गको प्रशस्त किया।

आपके पास कोई आत्महितैषी दर्शनके लिये जाता था तो आपका सुनिश्चित प्रश्न था कि कबतक धोबी बने रहोगे? धोबीका काम दूसरोंका कपडा धोनेका है। स्वतःके कपडे धोनेकी उसे चिंता नहीं है। इसी प्रकार संसारी जीवको स्वतःके कल्याणकी चिंता नहीं है। वह केवल दूसरोंके हितका ही विचार करता रहता है। पूज्य महाराजश्रीके हित मित मधुर वचनका श्रावकोंपर व शिष्योंपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

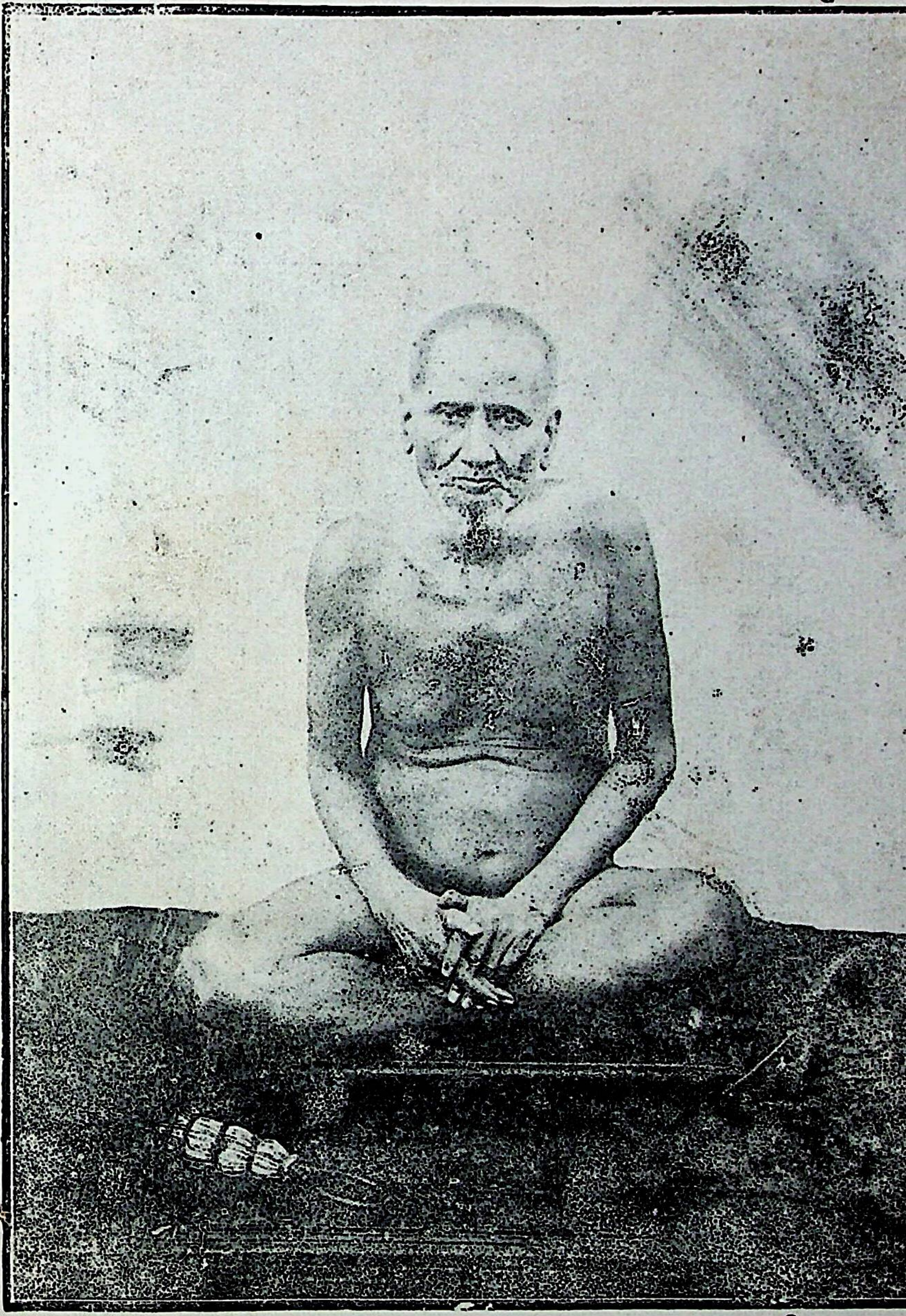

स्व. श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ति आचार्य शांतिसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागारधर्मामृतम्

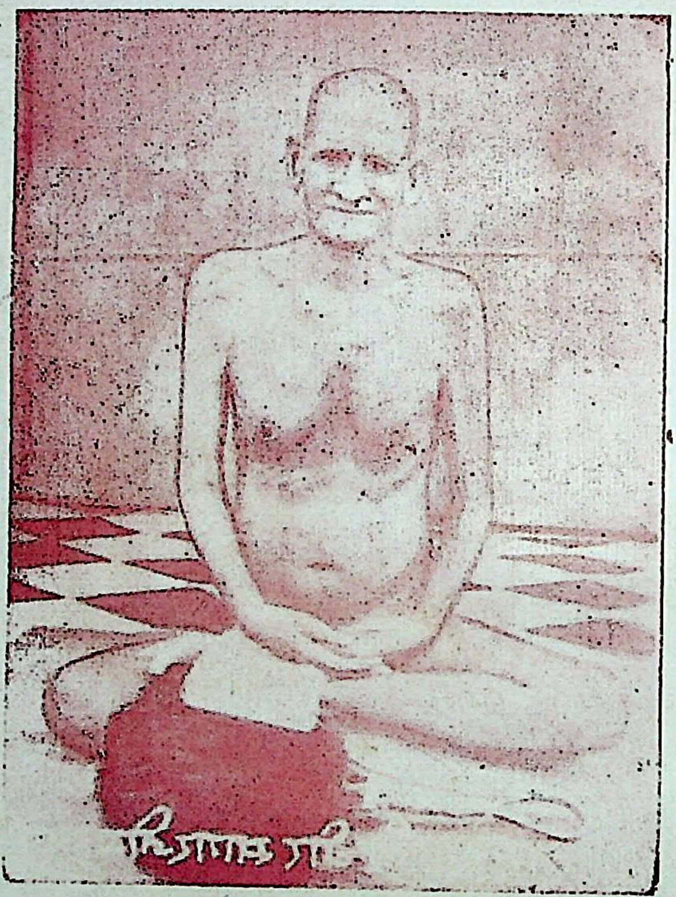

श्री तपोनिधि आचार्य वीरसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बडा प्रभाव होता था। इसलिये क्रमशः उनका संघ विशाल होता गया, पचासों त्यागी उनके संघमें रहने लगे, बडी प्रभावना होने लगी।

मुनिराज वीरसागर महाराज बडे तपस्वी, एवं आचार विचारोंके धनी होते हुये भी उन्होने जैनागमका सूक्ष्मतलस्पर्शी ज्ञान स्वाध्यायके बलसे प्राप्त किया था। बडे २ विद्वानोंसे आगमोंके संबंधमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म चर्चा करते थे। उनके ज्ञानको देखकर विद्वान् भी दंग रह जाते थे।

कई बार चतुस्संघने प्रयत्न किया कि आपको आचार्यपद दिया जाय। क्योंकि आप विशाल संघके नायक तो थे ही। साथ ही अनेक त्यागी मुनियोंको दीक्षा शिक्षा भी आप देते थे। आपके संघमें विपुल संख्यामें साधु भी रहते थे, एक आचार्यका कार्य उनके द्वारा सहज ही हो रहा था। परन्तु पूज्य मुनिश्रीने कभी भी इस बातके लिए सम्मति नहीं दी। उनका एक मात्र दृढ निश्चय था कि जबतक गुरुकी आज्ञा न मिले तबतक ऐसे कोई नवीन पदका ग्रहण करना शिष्टसंप्रदाय नहीं है। इसलिए बहुत दीर्घ समयतक उन्होने इस गुरुतर भारको स्वीकृत करनेकी सम्मति नहीं दी।

कुंथलगिरी सल्लेखनाके समय आचार्यश्री शांतिसागर महाराजको अपना उत्तराधिकारी आचार्य चुनना था। वे सर्वपदभार व शरीरभारसे मुक्त होना चाहते थे। इसलिये उन्होने अपने उत्तराधिकारी होनेके लिये पूज्य मुनिराज वीरसागरजीको ही सर्वथा योग्य समझा। आचार्यश्रीका उद्गार था कि वीरसागर पहिलेसे आचार्य पदका कार्य कर रहा है। वह सर्वतरहसे इसके लिये योग्य है। इस उद्गारके साथ चारित्रचक्रवर्ति आचार्यश्रीने अपने पिंछको मुनिराज वीरसागर महाराजके पास भेजा।

महाराजश्रीने बडी विनय व भक्तिके साथ उसे ग्रहण किया, गुरुप्रसाद समझकर इस पदको स्वीकार किया। विशाल समुदायके बीच चतुस्संघने आपको आचार्य पद प्रदान किया। आपने भी इस पदको निर्दोष रूपसे निर्वाह किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य वीरसागर महाराज संघमे अनेक साधु साध्वी दीक्षित हुए। निर्मल चारित्र, विशाल ज्ञान व कठोर तपश्चर्याका अनुष्ठान करते हुए भी आपका अनुशासन सुनियंत्रित था।

परंतु समाजके दुर्भाग्यसे दीर्घसमयतक संघको आपका शासन नही मिल सका। स्वर्गमें आपकी प्रतीक्षा तीव्रतासे हो रही थी। करीब ३ वर्षके अंदर ही आपने जयपुरमें सं. २०१४ आसोज वदी ३० को समाधिसाधना की। वह अमावस्या वास्तवमें अमावस्या (कालरात्रि) सिद्ध हुई।

आपके बाद आपके प्रशांतमूर्ति शिष्य परमपूज्य मुनिराज शिवसागरजी महाराजको चतुस्संघकी सम्मतिसे आचार्यपदसे अलंकृत किया गया। आपने अपनी भद्रपरिणतिसे संघका संचालन करते हुए बडी धर्मप्रभावना की। आपके विशाल संघमे पचासों साधु रहकर अपना आत्मकल्याण करते थे। कुछ वर्षोंके बाद आपकी भी समाधि श्री महावीरजीमें हुई। तदनंतर आपके पट्टमें आचार्य वीरसागर महाराजके द्वारा दीक्षित मुनिराज तपोनिधि धर्मसागरजी महाराज आसीन हुए। आपको समस्त जैनसंघने आचार्य पदसे विभूषित किया। आज उक्त पट्टमें आप आचार्य हैं।

आचार्य धर्मसागरजी महाराज भी बडे तपस्वी, सरल व शांतपरिणामी, निरवद्यचारित्रके धारक हैं। आपके संघमें भी बीसों त्यागी रहकर आत्मकल्याण कर रहे हैं।

इस प्रकार आचार्य स्व. वीरसागर महाराजने अनेक सुयोग्य शिष्योंका निर्माण कर जैन समाजपर अनुपम उपकार किया है। परमपूज्य आचार्य धर्मसागरजी, आचार्यकल्प श्रुतसागरजी आदि साधुरत्न, आर्यिका ज्ञानमतीजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी आदि साध्वीरत्न आपकी ही पवित्र देन है। आपके ही घोर तप, निरीह वृत्ति एवं सबसे अधिक शिष्यानुग्रह बुद्धीके फलस्वरूप आज दिगंबर जैन स माजमें वीतरागी साधुवोंका सर्वत्र विहार हो रहा है। आपके विहार कालमें धर्मकी बडी प्रभावना हुई एवं आज आपकी परंपरामें आपके शिष्योंसे प्रभावना हो रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्यकल्प मुनिराज चंद्रसागरजी

परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराजके अनेक निर्ग्रंथ शिष्योमें पूज्य आचार्यकल्प मुनिराज चंद्रसागर महाराजका प्रमुख स्थान था। वे भी बडे तपस्वी, ज्ञानध्यानरत, अध्ययनशील साधु थे। सिद्धांतके बडे कट्टर थे। प्राण जाय परन्तु प्रण न जाय, यह उनका ध्येय था। आगममार्गमें यत्किंचित् भी शिथिलताके लिये अवसर देना उनको अभीष्ट नहीं था।

मुनिराज चंद्रसागरजीने निर्ग्रंथ मार्गका निर्वाह करते हुए जीवनभर आर्षमार्गका प्रचार किया, जनताको आर्षमार्गमें सुदृढ किया। पंथमोहके कारण अनेक जन पथभ्रष्ट हो रहे थे, उनका स्थितीकरण आपके सत्यमार्गके उपदेशोंने किया। सकृद्दर्शनमें उनका प्रतिपादन कुछ कठोर अनुशासनयुक्त प्रतीत होता था परन्तु उनका हृदय कुसुमसे भी मृदु होनेसे अनुकंपायुक्त होता था।

आपका जन्म दक्षिण प्रांतके नांदगांवमें पहाडे गोत्रमें हुआ। खंडेलवाल कुलको आपने पावन किया था। बाल्यसे ही संसारभोगसे विरक्ति होनेके कारण सदा आत्महित साधनेवाली क्रियामें रत रहते थे। परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराजके आश्रयसे अपने व्रतोमें उत्तरोत्तर अभिवृद्धि उन्होने की थी, अंततः उन्होनें आचार्य-श्रीसे दैगंबरी दीक्षा लेकर आत्मसाधना की थी।

आचार्य संघमें आनेवाले जिज्ञासुवोंकी शंकावोंका समाधान करना, उन्हे वस्तुस्थितिको समझाकर शांत करना यह कार्य मुनिराज चंद्र सागरजीका था। आपकी वाणीमें ओज था, चेहरेमें तेज था, इस-लिये जिज्ञासुवोंका समाधान तत्काल हो जाता था। आपसे सभी साधु भी प्रभावित थे। आचार्यकल्प चंद्रसागरजी महाराज आर्षमार्गके पालनके संबंधमें बडे ही कट्टर थे। कोई भी शक्ति उन्हे उस मार्गसे परावृत्त नहीं कर सकती थी। अनेक प्रभावक शक्तियोंने उन्हे डराकर धमकाकर देखा, परंतु वे असफल हुए। मुनिराज चंद्रसागरजी सुमेरुवत् दृढ व अडिग रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजस्थान व मालवामें चिरकालतक आपका पुण्यविहार होता रहा। राजस्थान व मालवामें जो आज चारित्र मार्गका दर्शन हो रहा है वह मुनिराज पूज्य चंद्रसागरजीकी ही कृपाका फल है यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं हो सकती है। मरुभूमिमें संयमांकुरको जन्म देकर पल्लवित करनेका कार्य आपने ही किया है।

आपके द्वारा अनेक साधु दीक्षित हुए, हजारों भव्य संयम मार्गमें अग्रसर हुए। मोक्षमार्गके आप साक्षात् मूर्ति थे।

जहां जहां भी आपका पदार्पण हुआ, वह स्थान पावन हुआ, वहांके भक्त पुनीत हुए, संयममार्गको ग्रहण कर मोक्षमार्गके पथिक बने। भौतिक वातावरणके कारणसे धर्म व चारित्रमार्गके प्रति लोगोंके हृदयमें ग्लानि पैदा हुई थी, वहां पहुंचकर पूज्यश्रीने लोगोंको समझाया, उन्हे चारित्रमार्गके हितोंसे अवगत किया। पुनश्च संयमकी प्रतिष्ठा कराई। आवश्यकता पडनेपर कठोरसे कठोर (परंतु लोकहितकी कामनासे) मार्गका अवलंबन कर मार्गच्युतोंको मार्गमे लगाया। संसारसंलग्न मोहभ्रांत बंधुओंको उनकी वृत्तिसे असंतोष था। परंतु आत्महितेच्छु भव्योंके लिए वे वरदान थे। उनके द्वारा मोक्षके सत्यमार्गका दर्शन मिला। आज भी अनेक प्रांतोमें उनके प्रति आत्महितैषी सज्जन उद्‌गार निकालते हैं कि हम पथभ्रष्टोंका वास्तविक उद्धार हुआ तो आचार्यकल्प स्व. चंद्रसागरजीकी कृपासे हुआ है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उनका प्रभावक व्यक्तित्व ही ऐसा रहा जिससे बडेसे बडे लोग प्रभावित होते थे एवं उनके चरणोमें नतमस्तक होते थे। इस तरह सर्वत्र विहार कर उन्होंने धर्मोद्योत किया।

अंतिम समय निकट जानकर बडवानी सिद्धक्षेत्रका आपने शरण लिया। बीमारी हालतमें शीघ्रगतिसे वहां पहुंचकर अपनी अभूतपूर्व समाधिकी साधना की। आपकी सदा वीरवृत्ति रही। इसलिए आपको वीरसाधुरत्न कहनेसे अधिक सामंजस्यका दर्शन होगा। आचार्य शांतिसागर महाराजके शिष्योंमें आपका भी प्रमुख स्थान रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

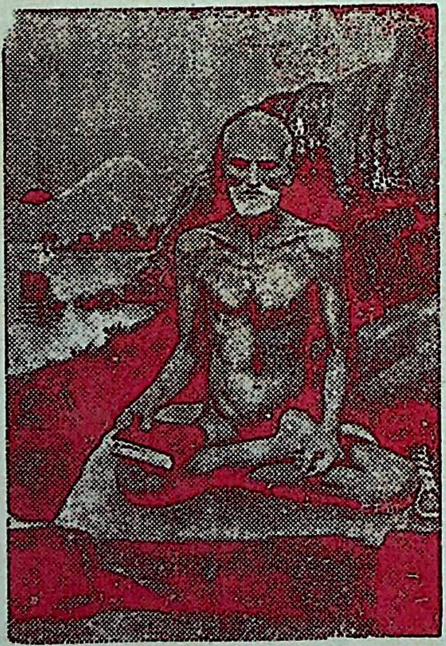

श्रीआचार्यकल्प चंद्रसागर महाराज

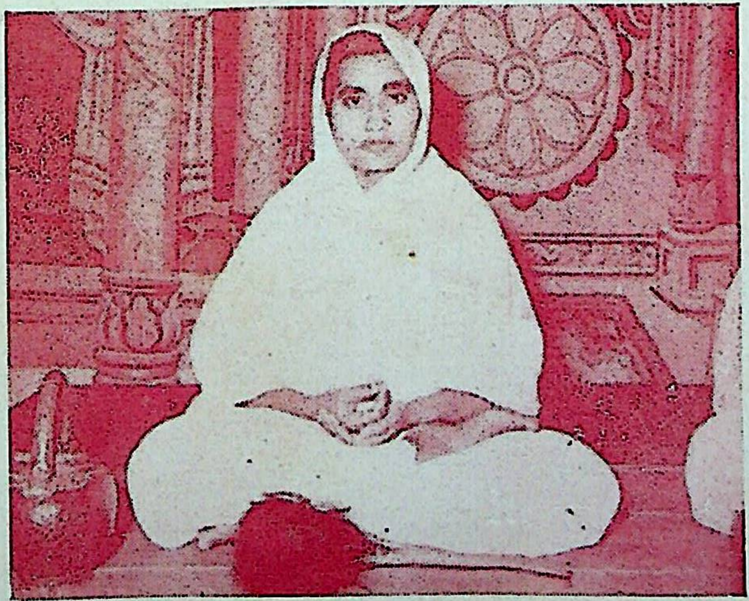

श्री विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागारधर्मामृतम्

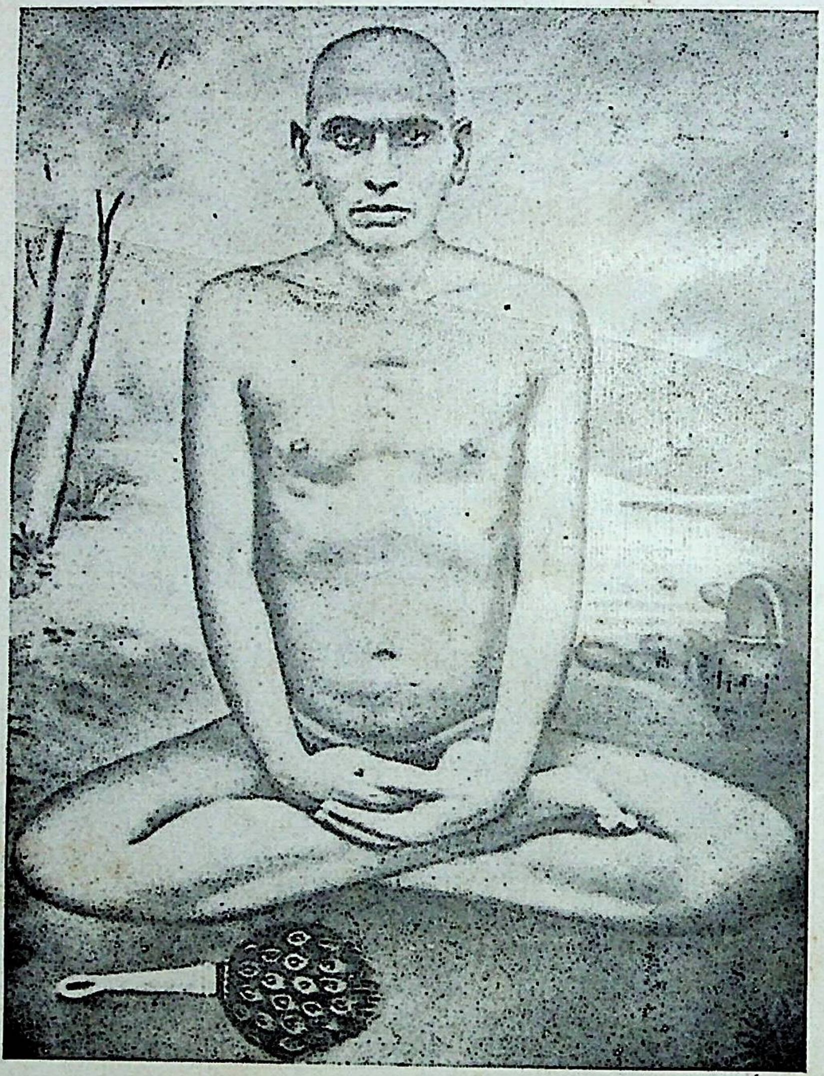

श्री तपोनिधि आचार्य महावीरकीर्ति महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस ग्रंथकी अनुवादिका

श्री परमपूज्य स्व. आचार्य वीरसागर महाराजकी विदुषी शिष्या आर्यिका इंदुमती संघस्था श्री आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी इस ग्रंथकी सफल अनुवादिका हैं। आपने ग्रंथके हृदयको ठीक तरहसे समझकर आर्ष मार्गानुसार इसका अन्वयार्थ और भावार्थ लिखा है। श्लोकमें आये हुए पौराणिक उदाहरणोंके कथावोंको समग्र दिया है और यथास्थान ज्ञातव्य विषयोंका स्पष्टीकरण भी किया है, जिससे ग्रंथका यह संस्करण बहुत ही सुंदर एवं स्वाध्याययोग्य बन गया है।

आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रसंगमें देना आवश्यक है।

श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजीका परिचय

जैन संसारमें जहां अनेक प्रकांड विद्वान् आचार्य व मुनि हुए उसी प्रकार अपने वैदुष्यसे विद्वत्संसारको चकित करनेवाली आर्यिका साध्वी भी हुई हैं। और आज भी विद्यमान हैं। उन्हीमेंसे आर्यिका सुपार्श्वमतीजीका नाम बहुत उच्च स्थानमें लिया जा सकता है। आपकी बहुश्रुतता, विद्वत्ता, व्यासंग, सूक्ष्मतलस्पर्शिनी बुद्धी, अकाटयतर्कणाशक्ति एवं सबसे अधिक प्रतिपादनशैली अनोखी है। विद्वत्संसारको भी आश्चर्यचकित करनेवाली है।

आपका शरीर रोगसे जर्जरित होनेपर भी आपके मखमंडलमें तेज है। आत्मामें ओज है। इसलिए आपकी ज्ञानगंगा जिस समय प्रवाहित होती है उस समय श्रोतागण मंत्रमुग्धवत् तत्वश्रवण करते हैं।

राजस्थानके बीकानेर राज्यके अंतर्गत मेनसरमें आपका जन्म सं. १९८५ में फाल्गुण सुदी ९ को हुआ था। मेनसर छोटासा ग्राम होनेपर भी मोठे हृदयके धर्मात्मा सज्जन वहां रहते थे। उन्हीमेसे श्री सेठ हरकचंद चूडीवाल बडे धर्मात्मा सज्जन थे।

इनके सुपुत्र श्री भंवरलालजी, सागरमलजी, निहालचंदजी गणपतजी एवं संपतरायजी पंच पांडवोंके समान थे। तथा दो पुत्रियां श्री भंवरीबाई एवं गणपतिबाई हुई। इनमेसे श्री भंवरीबाई ही आजकी आर्यिका सुपार्श्वमती माता हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय बालविवाह प्रचलित था। १२ वर्षकी अल्पायुमें कु. भंवरीबाईका विवाह नागोरनिवासी श्री छोगमलजी बडजात्याके सुपुत्र इंद्रचंद्रजी बडजात्याके साथ संपन्न हुआ। दंपति प्रसन्न थे। परंतु इनकी प्रसन्नताको दैव अधिक समयतक नहीं देख सका। विवाह होनेके बाद ३ महिनेमे ही पतिवियोगका दारुण प्रसंग आपपर आ पडा। असहनीय वैधव्य जीवनको अनुभव करनेका दुर्भाग्यके आप भागी बनी। वस्तुतः नाममात्र विवाहित होनेपर भी आप बालब्रम्हचारिणी ही हैं।

कर्मकी गति विचित्र है। पुण्यपापका खेल अचिंत्य हैं। संपत्तिका संयोग जिस प्रकार पुण्योदयसे होता है उसी प्रकार पापोदयसे उसके जानेमें भी देरी नहीं लगती है। श्रीमंत और दरिद्री बनना पुण्य पापका खेल है। मानव अनेक आशावोंको लेकर चलता है। परंतु दैव अपने स्वभावके अनुसार कार्य करता ही रहता है। परंतु मोहभ्रांत जीव इस संसारकी विषमताका विचार नहीं करता है। वह सदा सुखी रहकर दीर्घ जीवनको प्राप्त करना चाहता है। बीचमें रोग शोकभय आदि आते ही रहते हैं तो भी जीनेकी अभिलाषा रहती ही है। यह भी उसे निश्चित मालुम है कि एक दिन इस पर्यायको बदलना होगा तथापि उस संबंधमे निश्चिंत रहता है। कालको जीतनेकी उसे चिंता नहीं है। उसकी निश्चिंतता रहनेपर भी काल यथाकाल आ ही जाता है। आयुष्यकी पूर्ति होनेपर इस लोककी यात्रा समाप्त हो जाती हैं। संसारकी कोई बडीसे बडी शक्ति इस प्रकृतिके नियमको तोड नहीं सकती है। लोककल्याण करनेवाले बडे बडे साधु महात्मा और तीर्थंकर भी इस कालके चंगुलसे बच नहीं सके। जन्ममरणका चक्र संसारके प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है। जन्मके बाद मरण, मरणके बाद जन्म यही संसार है। परंतु जन्मके बाद मरण तो हो, परंतु उस मरणके बाद पुनः जन्म ही न हो यही मुक्ति है। भवबंधनसे मुक्तिके लिए प्रत्येक आत्महितैषीको प्रयत्न करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री भंवरीबाईके सामने विकट समस्या खडी हो गई। उस समय उनकी केवल १२ वर्षकी ऊमर थी, परिपक्व बुद्धी भी नहीं, इष्टका वियोग हुआ। असहाय स्थिति सामने उपस्थित हुई,एकवार हृदय कांप उठा। अब क्या होगा? किसके सहारा जीवन यात्रा चलेगी? किस प्रकार निश्चित जीवन मिलेगा? अवशिष्ट व दीर्घ जीवनका सुखपूर्वक निर्वाह कैसे होगा? इत्यादि नाना प्रकारके प्रश्नोंके उपस्थित होनेसे भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगा।

संसारमें शीलवती स्त्रियां धैर्यवती होती हैं। नाना प्रकारकी आपत्तियोंको वे हंसते हंसते सहन करती हैं। निर्धनता उन्हे डरा नहीं सकती। रोग शोकादिसे वे विचलित नहीं हो सकती है। परन्तु पतिवियोग सदृश दारुण दुःखका प्रतीकार वे नहीं कर सकती हैं। वह दुःख उन्हे असहनीय हो जाता है। उनका महान् साहस धैर्य, सभी इस प्रसंगमें टूट जाते हैं, ऐसे दुःखद प्रसंगमें उनको कल्याणके मार्गको दिखानेवाले विरले ही होते हैं। शायद ऐसे प्रसंगोंको लक्ष्यकर स्त्रियोंको कोषकारने अबला नाम प्रदान किया हो। अस्तु.

इस असह्य दुःखके प्रसंगमें भी श्री भंवरीबाईने धैर्यको अपने साथी बनाया। विचार और विवेक जागृत हुआ। संसारकी क्षण भंगुरता व वस्तुस्थितिका एकांतमें विचार किया। बडे बडे महापुरुषोंके जीवनकी धाराका परिशीलन किया, अब घरमे ही भक्तामर पाठ, धार्मिक विषयोंका अल्पसा अध्ययन माता पिताकी देखरेखमें हुआ जिससे आपको बडी शांति मिली।

वि. सं. २००४ में पू. श्री १०५ आर्यिका इंदुमतीका मैनसरमें पदार्पण हुआ। आर्यिका इंदुमतीजीने क्षुल्लिका दीक्षा पूज्य श्री १०८ चंद्रसागर महाराजसे कसाबखेडामें ली थी, तथा आर्यिका दीक्षा नागौरमें पूज्य श्री १०८ आचार्य वीरसागर महाराजसे ग्रहण की थी। आपका जन्म भी मैनसरके पास डेहमें हुआ था व विवाह नागोरमें ही हुआ था। आप भी १२ वर्षकी अवस्थामें ही वैधव्यको प्राप्त हुई थी,इसलिये पूर्वाश्रमकी अपेक्षासे आप दोनों का ही दुःख समान था। इसलिये अधिक वात्सल्य मिला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दु:खीजीवोंके साथ दु:खी जीवोंकी आत्मीयता सत्वर जागृत हो जाती है।

श्री भंवरीबाईजीको विश्वास हो गया था कि यह सांसारिक दु:ख संयमग्रहण करनेसे ही दूर हो सकता हैं। अत: उन्होने संयम ग्रहण करनेका निश्चय किया। उस निश्चयको मूर्त स्वरूप देते हुए अपने सं. २००४ मे माघ सुदी चतुर्थीके शुभमुहूर्तमें श्री पू. आर्यिका इंदुमतीजीसे सप्तमप्रतिमाके व्रत धारण कर लिये। कुटुंबीजनोंका मोह उस मार्गसे आपको अवरुद्ध नहीं कर सका। यहींसे आर्यिका सुपार्श्वमतीजीका आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता है।

आपका शिक्षण अत्यल्प प्रमाणमें होनेपर भी सतत स्वाध्याय के बलसे ज्ञानार्जनके कार्यमें आप लग गई। और तभीसे श्री १०५ आर्यिका इंदुमतीजीकी सन्निधिमें रहते हुए निर्विघ्न एवं निश्चित आत्मसाधनमें रत हैं। इसके बाद श्री आर्यिका इंदुमतीजी ब्र. भंवरीबाईको साथ लेकर श्री परमपूज्य स्व. आचार्य वीरसागर संघमें रहने लगे, और उक्त संघमें रहकर उनका ध्यानाध्ययन सुचारु रूपसे होने लगा।

आचार्य श्री पूज्य वीरसागर महाराजके संघका पदार्पण विहार करते हुए सं. २०१४ में जयपुर खानियामें पहुंचा। वहांपर आचार्यश्रीके शुभ हस्तसे सं. २०१४ भाद्रपद सुदी ६ के रोज श्री सुपार्श्वमतीजीको आर्यिकाकी दीक्षा दी गई, उस समय संघमें १० मुनिगण व २० आर्यिकायें एवं अनेक ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणिय थीं। इस प्रकार यह विशाल संघ था। आचार्यश्रीसे दीक्षा लेनेकी अंतिम भाग्य श्री आर्यिका सुपार्श्वमतीजीको हीं मिला था। क्योंकि इसके बाद आचार्य श्री वीरसागर महाराजने किसीको भी जिन-दीक्षा नहीं दी थी।

तदनन्तर माता सुपार्श्वमतीजी पूज्य आचार्य शिवसागर महाराजके संघमें रहते हुए नागोर, लाडनू, सुजानगढ, अजमेर चांपानेरी, सनावद एवं दक्षिण यात्रामें निकलनेके बाद औरंगाबाद कुंभोज- बाहुबली, अकलूज, बारामती, नागपुर, जबलपुर, कारंजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखरजी आदि स्थानोमें चातुर्मास किया था। वि. सं. २०२८ का चातुर्मास सिद्धभूमि श्री शिखरजीमें हुआ था। तदनन्तर आप श्री १०५ आर्यिका इंदुमतीके नेतृत्वमें संचालित आर्यिका संघमें विहारकी पुण्यभूमिमें विहार कर रही हैं, संघमें विदुषी आर्यिका विद्यामतीजी एवं आर्यिका सुप्रभामतिजी भी हैं।

आर्यिका सुपार्श्वमतीजीका सैद्धांतिक व आध्यात्मिक ज्ञान अत्यन्त प्रगाढ है। उनकी वक्तृत्वशैली मनमोहक है। आपने संघमें स्थित पूज्य विद्वान् अजितसागरजी महाराजसे अधिकांश अध्ययन किया है। अपनी सतत लगन एवं परिश्रमसे आप अल्प समय चतुरनुयोगमय जैनवेदकी प्रकांड ज्ञाता बनी। व्याकरण न्याय, सिद्धांत व साहित्यके साथ २ ज्योतिष व मंत्रशास्त्रमें भी प्रवीणता प्राप्त की। आपके सरल सुमधुर सुश्राव्य धाराप्रवाह प्रवचनोंको श्रोतागण मंत्रमुग्धवत् घंटो सुनते हैं। अनेक स्थानोमें आपके सार्वजनिक प्रवचन भी हुए। शंकावोंका समाधान भी आप प्रमाणपूर्वक हृदयंगमशैलीसे करती हैं। जिससे जिज्ञासुबंधु बहुत संतुष्ट होते हैं। ऐसी विदुषी आर्यिकावोंसे जैनसंघको गौरव है।

उपर्युक्त माताजीने प्रस्तुत सागारधर्मामृतकी विस्तृतटीका लिखी है। इस टीकासे भी उनके सैद्धांतिक ज्ञानकी झलक स्थान स्थान पर मिलती है। आपने इस रचनासे समाजके स्वाध्यायशील गुरुभक्त धर्मबंधुवोंके प्रति महान् उपकार किया है।

हमने पूज्य माताजीकी आज्ञानुसार यथाशक्ति इसका संपादन व संशोधन किया है। फिर भी स्खलनका रहना सुतरां संभव है। सहृदय विद्वज्जन सूचित करेंगे तो आगे अवश्य संशोधन किया जावेगा। इस ग्रंथका स्वाध्याय कर उसके प्रमेयको जीवनमें उतारनेका प्रयत्न किया जावेगा तो रचयिता, अनुवादिका, संपादक, प्रकाशिका आदि सबका परिश्रम सार्थक है। इत्यलम्.

कल्याण भवन)
सोलापूर-२)

सज्जनोंका विधेय
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
(विद्यावाचस्पति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीआचार्य शिवसागरस्तुतिः

यो वीरसागरगुरोश्चरणारविन्दे,
ध्रृत्वा तु शुद्धमनसा हि जिनेन्द्रमुद्राम् ॥
धर्मामृतं तनुभृतां घनवत्प्रवर्षन्,
शिष्यैः सहाथ विजहार बहूंश्च देशान् ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगाभिलाषविषमाग्निशिखाकलापम्,
संवृद्धयेऽस्ति विषयेन्धनराशिरुच्चैः ।।
इत्थं विचार्य परिहृत्य भवाक्षसौख्यम्,
जग्राह सर्वसुखदां हि जिनेन्द्रदीक्षाम् ।।२।।

मिथ्यान्धकारपिहिते स मरुप्रदेशे,
भव्यान् प्रबोध्य विषयामिषगर्लमग्नान् ।।
धर्मं समादिशदथोद्धरणाय सत्यं,
रत्नाकरं शिवयुतं हृदि भावयामि ।।३।।

तत्त्वावबोधविशदीकृतचित्तवृत्तिम्,
आभ्यन्तरेतरसमीहनर्निविमुक्तम् ।।
दुर्वारसंसरणकारणभेदनाय,
भक्त्या सदा गुरुवरं प्रणमामि हर्षात् ।।४।।

संसारतापपरिमर्दनशीतरश्मिम्,
भव्याब्जबोधनविधौ दिननाथतुल्यम् ।।
कल्याणसागर गुरोश्चरणारविन्दम्,
संभावयामि समुदा महदादरेण ।।५।।

भक्त्या हि त्वां सकलवत्सल ! सप्रभावम्,
चित्ते दधामि वरमंत्रपदैः स्तवीमि ।।
क्लेशार्णवप्रभवदुःसहदुःखभीता,
संभावयामि गुरुभक्तिभरा सुपार्श्वा ।।६।।

कुज्ञानदर्शनचरित्रमलापमुक्तः,
सज्ज्ञानदर्शनचरित्रविभूषितांगः ।।
त्वत्पादपद्मयुगभक्तिभरावनम्रा,
श्रद्धांजलिं गुरुवराय समर्पयामि ।।७।।

श्रीजैनवागमृतसेकपवित्रबुद्धे !,
विज्ञानरश्मिहतमोहतमोवितान ! ।।
निर्बन्ध बन्धुतमभव्यकुमुद्वतीनाम्,
विध्वस्तरागसमभावदयां दधान ।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुभ्यं नमोस्तु शिवसागर ! संघधात्रे,
तुभ्यं नमोस्तु शिवसागर ! सौख्यदात्रे ।।
तुभ्यं नमोस्तु शिवसागर ! कामजेत्रे,
तुभ्यं नमोस्तु शिवसागर ! धर्ममूर्ते ।।९।।

ध्यानी विवेकी परमस्तपस्वी,
ज्ञानी व्रती प्राणिहितोपदेशी ।।
यः कामजेता शिवसौख्यकारी,
वन्दे मुनीशं शिवसागरं तं ।।१०।।

मुक्त्यांगनायै रचितां मनोज्ञां,
रत्नत्रयी शेखरतां जिनेन ।।
तां कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठः,
वन्दे मुनीशं शिवसागरं तं ।।११।।

सुवंदितो यो न दधाति तोषम्,
विनिंदितो यो न बिभर्ति रोषम् ।।
सर्वेषु जीवेषु कृपां दधानम्,
आचार्यवर्यं प्रणमामि भक्त्या ।।१२।।

ध्यानैकनिष्ठं मुनिहंससेव्यं,
सुरेशनागेशनरेशवन्द्यं ।।
दैगम्बरं सुन्दरदिव्यदेहं,
आचार्यवर्यं प्रणमामि नित्यम् ।।१३।।

सत्दर्शनज्ञानचरित्रयुक्तम्,
संसारपाथोधितरंडतुल्यम् ।।
कायेन वाचा खलु चित्तशुद्धया,
आचार्यवर्यं प्रणमामि भक्त्या ।।१४।।

नेमिचन्द्रः पिता यस्य,
सवित्री दगडावती ।।
वन्दे श्रीवीरसिंधोश्च,
शिष्यं तं शिवसागरं ।।१५।।

—सुपार्श्वमति माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीपरमपूज्य तपोनिधि घोरोपसर्गजेता प्रातःस्मरणीय

श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्ति

महाराजका संक्षिप्त जीवन परिचय

जिस आदिचंद्र प्रभु आचार्यश्री महाराजकीर्ति सरस्वती प्रकाशनमाला की ओरसे यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, वह परम-पूज्य तपोनिधि श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्ति महाराजकी सन्नि-धिमें उनके गजपंथा चातुर्मासमें स्थापित हुई थी। इसलिये इस प्रसंगमें आचार्यश्रीका परिचय देना समुचित है।

यह भारतकी पुण्यभूमि रत्नगर्भा वसुंधरा कहलाती है। क्योंकि इसका इतिहास देखनेपर ज्ञात होगा कि यहां जैसे अनेक भौतिक रत्नोंकी उपलब्धि होती है वैसे ही आध्यात्मिक साधुसंत रत्नोंकी भी उपलब्धि बराबर होती रही है। उन्हीकी पावन परं-पराके कारण भारतवर्षमें धर्मका संस्कार पनपता आया है, और वह भारतको हर संकटोंसे बचाता भी आया है।

उसी आदर्श दि. साधु संत परंपरामें इस बीसवी सदीमें जो आचार्य व साधुसंत हुए हैं उनमें पूज्य आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ऐसे संतश्रेष्ठ हैं जिनकी अगाधविद्वत्ता, घोरतपश्चर्या, अटल धर्मश्रद्धा, आदर्शत्याग व सबसे अधिक अमलिन चारित्रने भौतिक विश्वको विषम विषयभ्रांतियोंसे दूर हटाकर धर्मज्योतिके प्रज्वलित करनेमें सहायता की है।

आचार्यश्रीका पूर्वाश्रमीय नाम महेंद्रकुमार था, आप अपनेको सिंह उपपद लगाते थे, अर्थात् महेंद्रकुमार 'सिंह' इस प्रकार आपके नामका उल्लेख होता था। वस्तुतः आप घोर उपसर्गोंको जीतकर कर्मशत्रुवोंपर आक्रमण करनेमें सिंह ही सिद्ध हुए। सिंहवृत्तिका परिचय आपके जीवनमें पद पदपर मिलता है।

महेंद्रकुमारजीका जन्म मिती वैशाख बदी ९. वि. सं. १९६७ को संयुक्त प्रांतके प्रसिद्ध औद्योगिक नगर फिरोजाबादमें हुआ। आपके पिता श्री लाला रतनलालजी और माता श्री बूंदादेवी थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप पद्मावति पुरवाल जातिके सुप्रसिद्ध कुल महाराजा वंशके थे, आपके माता पिता धार्मिक प्रवृत्तिके थे। धार्मिक संस्कार, अतिथि सत्कार आदि सत्कार्योंमें अभिरुचिके साथ आपके पिता एक कुशल व्यापारी थे ।

आपके सहोदर तीन हैं, जिनमें सबसे बडे धर्मेंद्रनाथ हैं संतकुमार उनसे छोटे और विलासराय सबसे छोटे हैं। अर्थात् महेंद्रकुमार सुयोग्य पिताके सुयोग्य तृतीय पुत्र थे। सभी भाई अपने अपने व्यवसायमें कुशल हैं ।

महेंद्रकुमारजी बाल्यकालसे ही धार्मिक प्रवृत्तिके थे। उदासीन वृत्ति, त्यागमय जीवन एवं संसारभोगोंसे अरुचि उनके जीवनमें टपकती थी। शायद भविष्यका दर्शन प्रारम्भिक जीवनमें ही होता हो इस प्रकारकी उनकी वृत्ति थी। परन्तु अध्ययन व संस्कारोंके प्रति उनके हृदयमें बडी आस्था थी ।

आपका प्रारम्भिक शिक्षण फिरोजाबादमें ही हुआ। १० वर्षकी अल्पायुमें ही मातृवियोगके दुःखको सहन करना पडा। माताकी स्नेहमयी छत्रछायाको खोनेके बाद उनके हृदयमें संसारके विषमदशाके संबंधमें और भी सुदृढभावना जागृत हुई। परन्तु जीवनमें उदित वैराग्य अंकुरको पल्लवित करनेके लिये सम्यग्ज्ञान जलसिंचनकी आवश्यकता है। उसके विना वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन नहीं हो सकता है। इस विचारसे आपने धार्मिक सैद्धांतिक विषयोंके अध्ययनका विचार किया। इसलिये अध्ययनके हेतु आप अ. भा. दि. जैन महासभाके द्वारा संचालित ब्यावर महाविद्यालयमें पहुंचे, वहांपर आपने प्रवेशिका विशारद खंड तकके सिद्धांत, न्याय,व्याकरण और साहित्योंका सुव्यवस्थित अध्ययन किया। बाल्यकालसे ही तीव्र क्षयोपशमयुक्त बुद्धीके कारण आपकी गणना व्युत्पन्न छात्रोंमें होने लगी। आपने उच्च शास्त्रीय शिक्षणके लिये इंदौर सर हुकुमचंद संस्कृत महाविद्यालयमें प्रवेश किया। लिखनेमें बडी प्रसन्नता होती है कि इन पंक्तियोंके लेखकको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महेंद्रकुमारजीके सहपाठी रहनेका भाग्य शास्त्रीय खंडमें मिला था। इसलिए ही आपके निकट संपर्कमें तबसे ही आनेका योग मिला। आप एक अध्ययनशील, परिश्रमी, व्यासंगी एवं बहुमुखी प्रतिभाके छात्र थे। यद्यपि उन दिनों जब महेंद्रकुमारजी कमरा बंद कर सतत पढने बैठते थे, हम लोग उन्हे चिढाते थे। परंतु किसे मालुम था कि उनका एकांतचिंतन आजकी उनकी महान् साधनाके लिए प्रस्तावना थी।

उन्होंने सिद्धांत न्याय व्याकरण साहित्यका क्रमबद्ध अध्ययन कर वे शास्त्री परीक्षामें उत्तीर्ण हुए एवं कलकत्ताकी न्यायतीर्थ परीक्षामें भी सफलतया उत्तीर्णता प्राप्त की। उन्हे आयुर्वेदमें भी अभिरुचि थी। क्योंकि उनके एक सहोदर सफल चिकित्सक है। अतः उन्होने आयुर्वेदका भी अध्ययन कर उसमें प्रावीण्य प्राप्त किया। उत्तर जीवनमें ज्योतिष व मंत्रवादका भी अध्ययन किया। बाद उनको अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेका योग मिलनेसे आपने अनेक भाषावोंको भी अवगत कर लिया। कुछ समय भा. दि. जैन महासभाके उपदेशक विभागमें रहकर आपने सर्वत्र धर्मोपदेश दिया। तथापि उनके जीवनमें विरक्तिका जो उदय हुआ था, उसमें तृप्ति नहीं हो सकी। इसलिए श्रावकाचारके अनुसार अनेक व्रताचरण करते हुए भी उनकी दृष्टि उस आदर्श त्यागकी ओर लगी हुई थी जिससे आत्मकल्याणका पथ प्रशस्त होता है। परिवारके लोगोंके द्वारा प्रस्तावित विवाहका आपने स्पष्ट निषेध किया एवं आत्मकल्याणके सुअवसरको वे ढूंढने लगे।

क्षणनश्वर संसार, विषय, शरीर भोगोंसे आपकी विरक्ति दिनपर दिन बढती गई। फलस्वरूप बीस बाईस वर्षकी भरी ज़वानीमें ही आपने परमतपस्वी, महान् निर्भीक, प्रभावक वक्ता, आचार्यकल्प चंद्रसागरजी महाराजसे सप्तम प्रतिमाके ब्रम्हचर्य व्रतको अंगीकार किया एवं कई वर्ष उनके साथ ही रहने लगे। कुछ समयके बाद वि. सं. १९९४ में मेवाड प्रांतांतर्गत टांकाकोटमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री परमपूज्य आचार्य वीरसागर महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। अब यहांसे आपका साधुमय जीवन प्रारंभ होता है।

सारा समय आपका ध्यानाध्ययनमें अब जाता है। विद्यार्थी जीवनमें देखनेमें नहीं आये ऐसे आध्यात्मिक, सैद्धांतिक, दार्शनिक, मंत्रतंत्र, ज्योतिषके ग्रंथोंका आपने स्वाध्याय किया। विहार करते करते आप दक्षिण प्रांतमें पहुंचे। दक्षिणकी पुण्यभूमि और साधुवोंके निर्दोषचारित्रको निभाने योग्य धर्मभूमि आपको पसंद हुई। इसलिए आप कई वर्षतक दक्षिणप्रांतमें ही विहार करते रहे। सहज ही दाक्षिणात्य भाषावोंका भी परिज्ञान हो गया। बत्तीस वर्षकी आयुतक आप क्षुल्लकके व्रतमें सुदृढ रहे। नंतर आपने उदगांवके श्री आदिसागर महाराजकी सन्निधिमें दैगंबरी दीक्षाको धारण की। आपका दीक्षित नाम उस समय महावीरकीर्ति रखा गया। तदनंतर आप आदिसागर महाराजके समाधिसाधनाके समयतक बराबर उनके साथ ही विहार करते रहे, एवं गुरुका निर्यापकाचार्य बनकर योग्य रूपसे उनकी समाधि साधना कराई। उस समय आदिसागर महाराजने चतुस्संघके समक्ष मुनिराज महावीरकीर्ति महाराजको आचार्य पदमें आसीन किया। तबसे आप चतुर्विध संघका संचालन करने लगे।

आपने आर्षमार्गके अनुसार प्रवृत्ति कर कठोर तपश्चर्या की। व निर्भीक प्रतिपादनमें आपने सदा सिंहवृत्तिका ही परिचय दिया। स्वयं महाव्रतोंका पालन निर्दोष वृत्तिसे करते हुए अपने शिष्योंसे भी उसी प्रकारसे पालन कराते थे। सतत ध्यानाध्ययनमें रत आचार्य महावीरकीर्तिजी शिष्योंके निग्रहानुग्रहमें भी कुशल थे। कठिनतमतपश्चर्या करते हुए आपने कर्मोंकी विपुलप्रमाणमें निर्जरा की।

आपने अपने चतुर्विध संघके साथ भारतके प्रायः सर्व क्षेत्रोंमें विहार किया। दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, उडीसा, संयुक्त प्रांत, बंगाल, बिहार आदि सभी प्रांतोमें विहार कर आपने भव्य समुदायको जागृत किया। समाजको त्याग व संयमकी ओर आकृष्ट किया। आपके द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक भद्रजन मुनि, त्यागी, व्रती, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐल्लक आदि प्रतिमाधारी बने। एवं अपने जीवनका कल्याण किया। लाखों जैन जैनेतरोने मद्यमांसादि निंद्य अभक्ष्योंका त्याग कर अपने जीवनको पावन किया। आपके उपदेशसे असंख्य पथभ्रष्ट जीव मार्गमें लग गये। आपकी वाणीमें ओज था, शरीरमें तेज था। इसलिए लोगोंके ऊपर आपके उपदेशोंका भारी प्रभाव पडता था।

आपने आचारमार्गके निर्दोष आचारको आचरण करते हुए भारताद्यंत विहार किया जिससे सर्वत्र अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। इस विहारमें कई वार आपको प्राणांतिक उपसर्ग भी सहन करने पडे। परन्तु आप टससे मस नहीं हुए, सुमेरुवत् अडिग रहे।

निमित्त शास्त्रमें कहा गया है कि जिनके जीवनमें अनेक वार प्राणांतिक संकट आनेपर भी जो वीरताका परिचय देकर बचते हैं वे ही महापुरुष सिद्ध होते हैं। एवं उनकी आवश्यकता समाज व धर्म धारणाके लिये होती है। इसलिये प्रकृति उनको बचाके रखती है।

आचार्यश्रीके जीवनमें निम्न अवसरोमें प्राणांतिक संकट उपस्थित हुए, परन्तु वे तपःप्रभावसे उन उपसर्गोमें विजयी सिद्ध हुए।

आपके राजस्थानके विहारमें एक आततायीने आपके ऊपर लाठीप्रहार किया, पीठपर खूब आघात होनेसे पीठ सूज गई व उसमें घाव होकर भारी वेदना होती रही। आपने शांतिपूर्वक उसे सहन किया। पुलिसवालोने अपराधीको पकडकर कारवाही की। आचार्यश्रीने उसे क्षमा करनेका आदेश दिया। तथापि कानूनके निर्बंधसे उसपर कारवाही होकर उस अपराधीको छह महिनेकी जब सजा हुई तो आचार्यश्रीको महान् दुःख हुआ।

बडवानी क्षेत्रपर पर्वतके ऊपर आप ध्यानस्थ बैठे थे। पास किसी वृक्षपर मधु मक्खियोंका बडा छत्ता था, किसी अविवेकीने उस छत्तेपर पत्थर फेंका तो सारी मक्खियां उडकर आचार्यश्रीके शरीरपर चिपट गई एवं बुरी तरहसे आपको काटने लगी। महाराजश्रीका शरीर लोहू लुहान हो गया एवं सूज भी गया। भयंकर पीडा होते हुए भी आपने ऊफ तक नहीं किया। व अपने ध्यानसे वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिलकुल डिगे नहीं। एक मधुमक्खीका आक्रमण जहां सह्य नहीं होता है वहांपर हजारोंका काटने व चिपटनेसे क्या दशा हुई होगी वाचक विचार करें। जब श्रावकोंको मालुम हुआ तब घंटो बाद वहां पहुंचकर उन्होने उपसर्ग दूर किया। आचार्यश्री अपने ध्यानमें ही मग्न थे। उन्हे शायद मालुम ही नहीं था कि क्या हो गया है।

आचार्यश्री खंडगिरी उदयगिरी क्षेत्रकी ओर विहार कर रहे थे। पुरलियाके समीप विहार. पुरलिया बिहारमें था। बंगालमें डालनेका आंदोलन चल रहा था। भारत सरकारने तीन सदस्योंका अयोग जांचके लिए नियत किया। उसी दिनकी यह घटना है। वह अयोग पुरलिया आ रहा था। करीब ६ मीलतक जनता रास्तेके दुतर्फा खडी है। आचार्य उसी रास्तेसे गुजर रहे थे। श्रावकोमे केवल धर्मनिष्ठ सेंठ चांदमलजी बडजात्या साथमे हैं।

रास्तेके दोनों तरफ खडी हुई जनताको आचार्यश्री मदिरा-मांसादिकका त्याग कराते जा रहे हैं। और जनता भी आनंदसे उनके चरणोमें पडती है। पुरलियाके निकट एक मदिराभक्त मस्त आततायीने रुष्ट होकर आचार्यश्रीपर लाठी प्रहार करना प्रारंभ किया। आचार्यश्री उपसर्ग समझकर वहींपर बैठ गये तो लाठी प्रहार चल ही रहा था। सेठ चांदमलजीने बहुत समझाया। पर नशेमें होनेसे व्यर्थ. तब शेठजीने आचार्यश्रीको कोई अपाय न हो इसलिए स्वयं उस लाठीप्रहारको झेल लिया। उनके साथ आचार्यश्रीके प्रति भी कुछ आघात हुआ। गुरुभक्तिका यह आदर्श प्रशंसनीय है। सौभाग्यसे पुलिस सुपरिंटेंडेंट वहांपर पहुंचे। उन्होने उन दुष्टोंको डाटकर आचार्यश्रीसे पश्चात्तापपूर्वक क्षमा याचना की। आचार्यश्रीने ध्यान छोडा। पुलिस अधिकारीने आपको सुरक्षाके साथ पुरलिया भेजना चाहा। परंतु आचार्यश्रीने उसे स्वीकार नहीं किया। एवं विहार करते हुए पुरलिया पहुंचे। इस घटनाका शासक वर्गपर भारी प्रभाव पडा।

एक बार आचार्यश्री तीर्थराज सम्मेदाचलकी वंदना करने गये। वंदना करते करते संध्याकाल हुआ। रात्रिको वे जलमंदिरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठहरे। कडक सर्दीका मौसम था। तब दिगंबर तपस्वीको देखकर हमारे श्वेतांबर बंधुवोंके हृदयमें वैषम्य जागृत हुआ। उन्होंने आचार्यश्रीको जलमंदिरसे बाहर निकाल दिया। आप रातभर शांतिपूर्वक कडक सर्दीको सहन करते हुए बाहर बैठे रहे एवं वीरवृत्तिका परिचय दिया।

इस प्रकार कई प्रसंगोमें आचार्यश्रीके प्रति कठिनसे कठिन उपसर्गोंके आनेपर भी आपने वीतरागवृत्ति एवं वीरवृत्तिका परिचय दिया। इसलिए आप वास्तवमें भव्य साधुसिंह सिद्ध हुए हैं। इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है।

आचार्यश्री स्वयं सर्वंकष विद्वान् व तपस्वी होनेके कारण आपके उपदेशोंका प्रभाव भव्य जनतापर विशेष होता था। आपके चातुर्मासके लिए लोग लालायित रहते थे। परंतु आचार्यश्रीकी अंतर्मनीषा सिद्धक्षेत्र व निर्वाणभूमिसदृश निर्जन, एकांत व पावन धरातलपर चातुर्मास करनेकी होती थी। आपने प्रायः ऐसे क्षेत्रोंपर ही चातुर्मासयोगका अनुष्ठान किया। आपके चातुर्माससे इंदौर, भोपाल, कटनी, शिखरजी, फिरोजाबाद, जयपुर, नागौर, उदयपुर, गिरनार, पावागढ, पावागिरी, धरियाबाद, बडवानी, मांगीतुंगी, गजपंथा, हुमच, पद्मावती, कुंथलगिरी आदि अनेक स्थानके धर्मबंधु लाभान्वित हुए। वहांकी जनताको अपूर्व धर्मलाभ हुआ।

आप बडे निस्पृह और निरीह साधु थे। सदा ज्ञानध्यानमें अनुरक्त थे। अपनी आत्मशक्तिको बढानेके लिए आहारचर्याके बाद कुछ समय व उपदेशके अलावा अन्य समयमें मौन रहकर आत्मचिंतनमें लगे रहते थे। आत्मचिंतनमें चित्त न लगा तो ग्रंथोंका स्वाध्याय करना उनका नित्यक्रम था। ख्याति लाभ पूजायें उनके निकट कभी पटकती नहीं थीं। लोकैषणासे वे बहुत दूर थे, इसलिए उनके चरणोमें बडे २ प्रतिष्ठित सज्जन, राजघरानेके लोग आकर उनकी सेवा करनेमें अपना भाग्य समझते थे। जीवनभर शांति व समाधानकी उन्होने उपासना की। अतएव अंतसमयमें भी वे आत्मजागृतिमें रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रशुद्धसल्लेखनाधारण

सर्व प्रांतोमें विहार करते हुए आचार्यश्री अपने संघके साथ गिरनार सिद्ध क्षेत्रसे आ रहे थे । अहमदाबादसे कलोल होते हुए महसाणा होकर तारंगा क्षेत्रकी ओर उनका विहार हो रहा था । शरीर धर्मके अनुसार मार्गमे ही उनके शरीरमें अवस्थता उपस्थित हुई । दो दिन पहिले ही उनको ज्ञात हो गया कि अब यह शरीर जवाब देनेवाला है । उन्होंने अपने शिष्योंको बुलाकर स्पष्ट रूपसे आदेश दिया कि अब यह शरीर अधिक टिकनेवाला नहीं है । तारंगा पहुंचनेका भी अवसर शायद ही मिलेगा । सो मेरे बाद संघकी व्यवस्था मुनिश्री सन्मतिसागर करेंगे । अत: वे आचार्य होंगे । आर्यिका विजयमती गणिनीमुख्य रहेंगी । आजके भौतिक वाताव- रणमें आर्ष मार्गके लोपके लिये व्यापकप्रचार हो रहा है । मेरी परंपरामें इस आर्षमार्गमें शिथिलता उत्पन्न न हो इसका ध्यान पूर्ण रक्खा जाय ।

समाधि संस्तरमें भी पवित्र जिनमार्गकी रक्षा करनेकी चिंता हो रही है । कितनी महान्ता है उस आत्मा की ? इसका अनुमान हमारे वाचकबंधु सहज कर सकते हैं ।

आचार्यश्रीने पौषबदी (मा.माघवदी) ६ गुरुवार दिनांक ६-१-७२ को उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रमें रातको करीब ९। बजे शरीरका त्याग कर समाधिसाधना की । यह सल्लेखनाका महानक्षत्र है । इसने एक महान् साधुवर्यको अपने लोगोंसे उठा लिया । महानक्षत्रमें समा- धिसाधन करनेका फल है कि और दो मुनियोंकी समाधि निकट भविष्यमें हो, यह सर्व साक्षात्कार हुआ है । इसलिये आचार्यश्रीकी सल्लेखना शास्त्रशुद्ध रूपसे हुई । एवं उनकी साधना सफल हुई इसमें कोई संदेह नहीं है ।

आप समाधिसम्राट् सिद्ध हुये । रत्नत्रय मार्गकी ज्योतिको जगानेवाले महान् प्रतापी साधुसूर्य अस्त हो गया । अनंत श्रद्धांजलि.

गुरुचरणसेवक

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागारधर्मामृतम्

सेठ धर्मवीर चांदमलजी पांड्या, सुजानगढ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

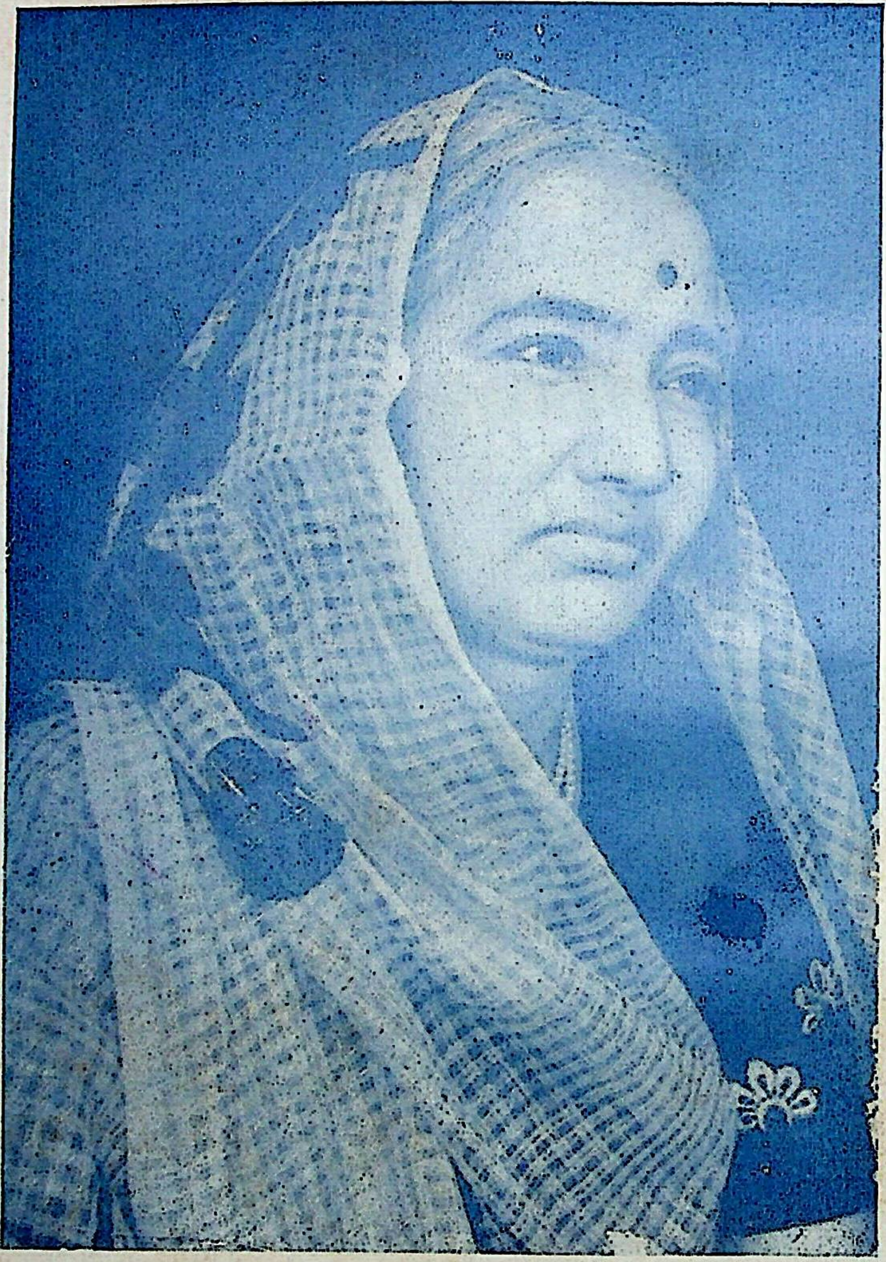

श्री धर्मचंद्रिका सौ. भंवरीदेवीजी पांडचा, सुजानगढ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरल, उदार और निरभिमानी व्यक्तित्वके धनी

श्री दानवीर सेठ चांदमलजी सरावगी

खादीकी धोती और कुर्तेसे तनको ढांके, गौरक्षक जूते पहने, हाथमें छडी तथा सौम्य मुखपर चश्मा लगाये हुए जब आप उन्हें देखेंगे तो आप कल्पना भी नहीं कर सकेंगे कि यही व्यक्ति अनेक उपाधियों, पदों, सम्मानसूचक अलंकारोंसे विभूषित दानवीर राय-साहब सेठ चांदमलजी सरावगी, गोहाटीनिवासी हैं। श्री सरावगी साहब ऊपरसे नीचेतक तथा बाहरसे अन्दरतक सरलता, सौम्यता, उदारता और निरभिमानतासे पगे हुए हैं। धनीसमाजमें इस प्रकारका सीधासादा परन्तु परदुःखकातर व्यक्ति बहुत कम देखनेको मिलता है।

मरुप्रदेश (राजस्थान) के लालगढ कस्बेमें स्वनाम-धन्य स्वर्गीय श्री मूलचन्दजी सरावगीके घर मातुश्री जंवरीबाईकी कुक्षिसे ३ जनवरी १९१२ को सेठ चांदमलजीका जन्म हुआ था। श्री सरावगीजीका बचपन तथा छात्रकाल कलकत्तामें बीता, जहांके विश्वविद्यालयसे उन्होंने १९३० में मैट्रिक्युलेशन किया। होनहार विरवानके, होत चीकने पात-कहावतके अनुसार नेतृत्व और समाज-सेवाके गुणोंका प्रदर्शन उनमें तभीसे होने लगा था जब कि वे स्कूल जीवनमें ही छात्र आन्दोलनोंमें भाग लेने लगे और ब्रिटिश झण्डे-यूनियन जेकका अपमान करनेपर गिरफतार किय गये। मैट्रिकतक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद श्री सरावगीजीने तत्कालीन विख्यात फर्म सालगराम राय चुन्नीलाल बहादुर एण्ड कम्पनीमें व्यावसायिक जीवन आरम्भ किया और अल्पकालमें ही उसके मॅनेजिंग पार्टनर तथा गोहाटी डिविजनके प्रबन्धक बन गये। श्री सरावगीजीने धर्म तथा समाजके कार्योंमें आस्था और रुचि रखते हुए अपने उद्यमसे खूब धनोपार्जन किया और उनकी गणना असमके प्रमुख उद्योगपतियोंमें होने लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी समाजके प्रति भावनाको शीघ्र ही मान्यता मिलने लगी जब कि उन्हें अनेकों बार गोहाटी नगरपरिषदका पारिषद निर्वाचित किया गया और आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। स्वतंत्रतासे पूर्व ब्रिटिश सरकारने उन्हें यद्यपि कारोनेशन तथा सिल्वर जुबली मेडिल्स प्रदान किए और रायसाहबकी उपाधिसे विभूषित किया, किन्तु वे देशकी स्वतंत्रताके लिए लडे जा रहे स्वतंत्रता संग्रामके प्रति बेखबर नहीं थे और ब्रिटिश सरकारके सामीप्य व्यापारिक सम्बन्ध होनेके उपरान्त भी कांग्रेसको बराबर विपुल आर्थिक सहायता देते रहते थे। १९३४ में नौगांवमें आई प्रलयंकारी बाढके समय श्री सरावगीजीने निस्वार्थभावसे पीडितोंकी सेवाके लिये जो कार्य किया उसकी सभी वर्गके लोगोंद्वारा मुक्तकंठसे प्रशंसा की गई। द्वितीय महायुद्धके समय जापानी आक्रमणसे भयभीत होकर जब अधिकांश व्यापारी आसामसे भागने लगे तो श्री सरावगीजीने ऊंचा मनोबल रखकर जनताको साज सामानकी सप्लाईकी गति यथावत बनाए रखी। १९४२ के भारत छोडो आन्दोलनके समय कांग्रेसको विपुल सहायता देकर उन्होंने राष्ट्रभक्तिका परिचय दिया। यद्यपि ब्रिटिश सरकारसे सीधा व्यापारिक सम्बन्ध होनेसे उन्हें इसमें भारी जोखिम हो सकती थी परन्तु उन्होंने उसकी चिन्ता नहीं की।

शिक्षाके अनुरागी

भारत स्वतंत्र होनेसे पूर्व ही ११-८-४७ को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त सभी उपाधियोंको लौटाकर श्री सरावगीजीने अपनी निस्पृहताका परिचय दिया। स्वतंत्रताके बाद जहां श्री सरावगीजीने अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठानोंके प्रबन्धक और स्वामी होनेके नाते आसामके औद्योगीकरणमें योग दिया वहां वे समाजके निर्माण कार्योंमें सदा तत्पर रहे और गौहाटी विश्वविद्यालयके निर्माणमें उन्होंने सक्रिय रूपसे भाग लिया। स्वर्गीय लोकप्रिय गोपीनाथ बारदोलोईके अध्यक्ष कालमें वे गौहाटी विश्वविद्यालयके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयुक्त कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने गौहाटी, सिलचर, शिलांग तथा असमके अन्य महत्वपूर्ण कस्बोंमें कांग्रेस भवन बनानेमें दिल खोल-कर आर्थिक सहायता प्रदान की। उदार, निर्धनोंकी सहायतामें सदा तत्पर श्री सरावगीजी जरूरतमंदोंके मित्रके रूपमें सर्वत्र जाने जाते हैं। उन्होंने अपनी पत्नि श्रीमती भंवरीदेवीके नामपर गौहाटीमें मूक बधिरोंका स्कूल स्थापित किया जो सारे असम प्रान्तमें अपने ढंगकी एकमात्र संस्था है।

दरिद्रनारायण के हिमायती

श्रीसरावगी जी सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओंको सदा ही मुक्तहस्तसे दान देनेमें अग्रणी रहे हैं। डा० बी. बरूआ केंसर इंस्टीट्यूट गोहाटी, कुष्ठरोग चिकित्सालय, यक्ष्मा चिकित्सालय शिलांग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली, गुरुकुल कुंभोज (महाराष्ट्र,) कुंदकुंद विद्यापीठ हुमच (कर्नाटक) बरद्रावा स्मृति समिति नौगांव, मिर्जा कॉलेज, बोको कोलेज, मंगलदई कोलेज, कामाख्या स्कूल, मालीगांव सेवा आश्रम तथा विभिन्न स्थानोंपर चल रहे मारवाडी विद्यालय आदि कई संस्थायें हैं जिनकी स्थापना तथा बादमें संचालनमें श्री सरावगीजीका उल्लेखनीय योगदान रहा। ईश्वरकी शक्तिमें अटूट विश्वास रखनेवाले तथा धार्मिक आस्थाओंसे युक्त श्री सरावगीजीके जीवनमें अनेकों विधवाओं तथा निर्धन छात्रा–छात्रोंको सहायता प्रदान की है।

आपने अभी हाल ही में सुजानगढमें एक सार्वजनिक स्कूलकी स्थापना की है तथा गौहाटीमें एक मोन्टेसरी स्कूल भी अपनी धर्मपत्निके नामसे स्थापित किया है।

दिगंबर समाजके अग्रणी नेता

जैन आगम और कुंदकुंदाचार्य प्रणीत जैनदर्शनमें असीम श्रद्धा रखनेवाले श्री सरावगी जी अपने चिन्तन, समयके योगदान और विपुल औदार्य दानके कारण आज जैन समाजके अग्रणी नेताके रूपमें उदित हो चुके हैं और सम्पूर्ण भारतकी जैन समाज उन्हे सम्मान की दृष्टिसे तो देखती ही है, नेतृत्वके लिये उनपर अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि गडाए हुए हैं । वे समाजकी सबसे पुरानी संस्था अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके आजकल अध्यक्ष हैं और उनकी सेवाओंको मान्यता प्रदान करते हुए समाजके श्रावक तथा विद्वत्वर्गने उन्हे समय समयपर जैनरत्न, धर्मवीर, दानवीर, श्रावक शिरोमणि तथा आचार्यसंघभक्तदिवाकर, गुरुभक्तशिरोमणि आदि उपाधियोंसे सम्मानित किया है । आपकी गुरुभक्ति श्लाघ-नीय और अनुकरणीय है । मुनि संघोंकी परिचर्या तथा उनके सानिध्यमें रहकर धर्मसाधना करनेमें आजकल आप सपत्नीक दत्तचित्त रहते हैं । व्यापारिक गतिविधियोंसे सम्बन्ध रखते हुए भी श्री सरावगीजीका अधिकांश समय आजकल धार्मिक संस्थाओं और संघठनोंके कार्यको सुचारु करने, उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत बनाने और उन्हे सुदृढस्वरूप प्रदान करनेके उपायोंमें ही बीतता है । जैनजनगणनाके व्यापक उद्देश्योंकी सम्पूर्तिके लिये आप निरन्तर सचेष्ट रहे और इन कार्योंकी पूर्ति हेतु आपने भारी आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया था ।

आजकल आप श्री १००८ भगवान् महावीर स्वामीके २५०० वीं निर्वाण महोत्सवके कार्यक्रमोंकी प्रगतिके लिये सचेष्ट रूपसे क्रियाशील हैं । आप इस सम्बन्धमें श्रीमती गांधीकी अध्यक्षतामें गठित राष्ट्रीय समितिके भी सदस्य हैं तथा उक्त समिति की कार्यकारिणी के भी सदस्य है । इसके अतिरिक्त इस सम्बन्धमें बिहार गवर्नमेंट द्वारा गठित-बिहार राज्य कमेटी-के भी सदस्य हैं ।

इसी भांति आसाम सरकार द्वारा गठित-आल आसाम २५०० वीं निर्वाण समिति के भी आप सदस्य हैं । आल इण्डिया दिगम्बर भगवान् महावीर २५०० वीं निर्वाण महोत्सव सोसाइटी, देहलीके आप वर्किंग प्रेसीडेन्ट हैं ।

मन्दिरोंके निर्माता एवम् संरक्षक

श्री सरावगीजी मंदिरोंके निर्माण,मानस्तभोंकी स्थापना तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानोंमें श्रद्धापूर्वक भाग लेते हैं । गौहाटी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरसलगंज तथा शान्तिवीरनगर, श्री महावीरजीमें सम्पन्न पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवोंमें आपका मुक्तहस्तसे सहयोग सर्वं-विदित है। आपने स्वर्अजित चंचलालक्ष्मीका सदुपयोग विभिन्न तीर्थोंपर लाखों रूपयोंका दान देकर किया है। श्री सरावगीजीने सुजानगढमें मानस्तंभका निर्माग कराया तथा शान्तिवीरनगर (श्रीमहावीरजी) में ६१ फीट ऊंचे संगमरमरके मानस्तंभका निर्माण कार्य उनकी ओरसे प्रगतिपर है। श्री सरावगीजी तीन बार सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंकी वंदना कर चुके हैं और सन् ६६ से प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व या अठाईमें विशेषत: किसी मुनिसंघकी सन्निधिमें उपवास करके आत्माका कल्याण कर रहे हैं।

भरापूरा सुखी परिवार

श्री सरावगीजी एक भरेपूरे सुखी परिवारके स्वामी है। उनका विवाह १-५-३० को श्रीमती भंवरीदेवीके साथ सम्पन्न हुआ जो स्वयं सरल स्वभावकी धर्मपरायणा विदुषी महिलारत्न हैं और अपने अतिथियोंको स्वजनोंसे भी अधिक मान सत्कार देती हैं। श्री सरावगीजीके सर्वश्री गणपतराय, रतनलाल, व भागचन्द (तीनमेंसे प्रथम दो विवाहित) योग्य पुत्र हैं। उनकी गिनियादेवी, सुशीलादेवी, किरणदेवी, विमलादेवी तथा सरलादेवी पांच पुत्रियां धर्मप्राण, सुसंस्कृत और सम्पन्न परिवारोंमें विवाहित हैं। अभी पिछले दिनों ही आपके दो पुत्रों तथा एक पुत्रवधूने जापान आदि देशोंका भ्रमण कर वैदेशिक व्यापारका अनुभवलाभ लिया है। इस प्रकारसे आप सभी गार्हस्थिक दायित्वोंसे मुक्त होकर आजकल दान, पुण्य, धर्माराधना एवं तीर्थयात्राओंके द्वारा सरावगी दम्पति आत्मकल्याण कर रहे हैं।

स्वयंमें संस्थाओंका समूह

दानवीर सेठ चांदमलजी सरावगी स्वयंमें एक संस्थाओंका समूह हैं। जितनी संस्थाओंके संस्थापक, जन्मदाता, संरक्षक, सभापति और कार्यशील नेता वे हैं यदि उन सबका नाम लिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय तो उसके लिए अलगसे एक परिशिष्ट लगाना पडेगा। लगभग ६० संस्थाओंसे श्री सरावगीजी इस समय सम्बद्ध हैं जिनमेंसे अनेक अखिल भारतीय ख्यातिकी हैं तथा जिनके वे अध्यक्ष हैं। अनेक स्थानीय महत्वकी हैं, अनेक धार्मिक हैं, अनेक सामाजिक हैं, अनेक शैक्षणिक हैं और अनेक राष्ट्रीय सामाजिक कार्यक्रमोंको चलानेवाली हैं। वे आसाम प्रदेश कांग्रेसके सदस्य रह चुके हैं तथा आसाम चेम्बर आफ कॉमर्सके अध्यक्ष पदको सुशोभित कर चुके हैं। अनेक संस्थाओंका आजीवन संरक्षक बननेका गौरव भी श्री सरावगीजीको प्राप्त है।

देश तथा जैन समाजको दानवीर सेठ श्री चांदमलजी सरावगीसे भारी आशाएं हैं और उनकी तत्परता तथा युवकोचित उत्साह युवा पीढीको मार्गदर्शन देता रहता है।

सामाजिक सम्मान

आपकी उल्लेखनीय सेवावोंके उपलक्ष्यमें समाजने कृतज्ञतापूर्वक आपका सम्मान किया है। अनेक गौरवपूर्ण उपाधियोंको प्रदान कर आपको विभिन्न स्थानोंमें मानपत्र अर्पण किया है। दक्षिणभारत व उत्तर भारतके प्रमुख स्थानोंमें आपको अभिनंदन पत्र समर्पण कर आपका आदर किया है। आपका जीवन सामाजिक व धार्मिकसंस्थावोंके लिए जीवनदान देनेवाला सिद्ध हुआ है। जैन संघकी समुन्नतिके लिए आपको स्वास्थ्यमय प्रदीर्घ आयुका लाभ होना समाजके लिए भाग्यकी बात है।

निवेदक

उमानीराम शर्मा

(बी. ए. साहित्यालंकार)

सुजानगढ (राजस्थान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमती सौभाग्यवती दानशीला जैनमहिलारत्न धर्मचन्द्रिका पतिव्रतपरायणा

श्रीमती सौ. भंवरीदेवी पांड्या

सुजानगढनिवासीका संक्षिप्त परिचय

श्रीमती सौभाग्यवती दानशीला जैनमहिलारत्न धर्मचन्द्रिका श्री भंवरीदेवीजी पांड्या सुजानगढनिवासीसे कोई अपरिचित नहीं है। आप अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासभाके अध्यक्ष एवं कई उच्चपदोंपर आसीन तथा गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना के अधिष्ठाता, श्रीमान् जैनरत्न, श्रावक शिरोमणि, धर्मवीर आचार्य-संघ-भक्तदिवाकर, गुरु-भक्त-शिरोमणि, दानवीर, राय साहिब सेठ चांदमलजी सरावगी पांड्या सुजानगढ निवासीकी धर्मपत्नि हैं। आप-जैन महिलादर्श-पत्रकी संरक्षिका हैं।

आपका जन्म मारवाड प्रान्त के अन्तर्गत मेनसर ग्राममें स्वर्गीय सेठ मन्नालालजी गंगवालकी धर्मपत्नी श्रीमती बालीदेवी की वामकुक्षीसे हुआ। सच ही कहा है कि पुण्यात्मा जीवके घर आते ही लक्ष्मी स्वतः आने लगती है। पिता मन्नालालजीके चारों ओरसे लाभ ही लाभ होने लगा। आपका बाल्यकाल बडे आमोद प्रमोदके साथ व्यतीत हुआ। श्रीमान् मदनलालजी, मालचन्दजी, चम्पालालजी इन तीन भ्राताओंमें आप मध्यवर्ती बहिन हैं। आप इकलौती होनेके कारण घरमें बहुत लाड प्यारसे पाली गई। १३ वर्षकी अवस्थामें लालगढ निवासी स्वर्गीय सेठ मूलचन्दजीके पुत्र रत्न श्रीमान् बाबू चांदमलजी पांड्याके साथ आपका शुभ पाणिग्रहण संस्कार दिनांक १ मई सन् १९३० को सानन्द सम्पन्न हुआ।

विवाहके पहले श्रीमान् चांदमल जी पांड्याकी स्थिति आज जैसी नहीं थी। इस नारीरत्नके आते ही चारों ओरसे प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित होने लगीं और बाबू चांदमलजीकी ख्याति तथा यश-मान दिन दूना रात चौगुना बढने लगा। आप एक उच्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदर्श विचारधारा की एक सुशीला नारी हैं। आपका परिवार पूर्णरूपसे हरा भरा है। आपके तीन पुत्ररत्न एवं पांच पुत्रियां तथा नाती पोतोंका ठाठ है।

१) श्रीमान् गणपतरायजी साहब आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। उनका विवाह लाडनूंनिवासी श्रीमान् दीपचन्दजी पहाडियाकी सुपुत्री नवरत्नदेवीके साथ हुआ है। श्रीमान् गणपतरायजी भी अपने पिताकी तरह गुणवान एवं कुशल सामाजिक कार्यकर्ताओं में से एक हैं। इस समय आप व्यापारिक क्षेत्रमें जुटे हुए हैं तथा अपने व्यापारकी उन्नतिके लिये संलग्न हैं। अभी हाल ही में आप व्यापारिक पहलुओंको लेकर जापान यात्रापर गये थे, साथमें अपने लघुभ्राता श्रीभागचन्दजी एवं अपनी धर्मपत्निको भी ले गये थे। आपके एक पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं। श्री नरेन्द्रकुमार आपका पुत्र है।

२) आपके मझले पुत्र श्री रतनलालजी हैं। इनका विवाह लाडनूंनिवासी श्रीमान् नथमलजी सेठीकी सुपुत्री श्रीमती सरितादेवी के साथ हुआ। शिक्षाके क्षेत्रमें आपकी प्रबल इच्छा आरम्भसे ही रही है। अतः आपने जयपुर इंजीनियरिंग कालेजका पोष्ट गेज्यूएशन प्रथमश्रेणीमें उत्तीर्ण किया है। आपके एक पुत्र है जिसका नाम विमलकुमार है।

३) श्रीभागचन्दजी साहब आपके कनिष्ठ पुत्र हैं। अभी आप अध्ययनमें संलग्न हैं। आप एक कुशल टेबलटेनिस खिलाडी हैं। इसकी विशेष योग्यताके कारण आपके पास जगह जगहसे आमन्त्रण आते रहते हैं। इसके साथ साथ आपकी भावी प्रबल इच्छा कुशल संगीतकारके रूपमें आने की हैं।

आपकी पांचों पुत्रियां सुन्दर तथा गृहकार्यमें निपुण हैं। सभीके विवाह सुसम्पन्न घरानोंमें हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्रमें भी आपकी रुचि एवं अनूठी प्रवृत्ति है। आपका अधिकांश समय धार्मिक कार्योंमें ही व्यतीत होता है। आपकी रुचि सदैव श्रावक एवं त्यागी वर्गकी सेवामें रहती है। आप नश्वर संसारकी असारताको देखते हुए पूर्णरूपसे सादगीमें रहती हैं। —सादा जीवन एवं उच्चविचार आपका लक्ष्य बना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है । उसी आधारपर आपने अपना जीवनका अधिकांश भाग आत्मकल्याणके मार्गमें ही लगा रखा है । आपके हृदयमें कोमलता एवं करुणा भाव सर्वत्र विद्यमान रहते हैं । इन सब उच्च आदर्श विचारोंके कारण आपने दिगम्बर जैन महिलासमाजमें ख्याति प्राप्त की है । प्रत्येक धार्मिक क्षेत्रमें आगे आना तथा धार्मिक कार्यमें अग्रसर रहना आपकी विशेषता है । आपकी मृदुवाणी सुनकर समस्त महिला समाजने भूरि भूरि प्रशंसा की है । आपकी प्रबल इच्छा रहती है कि वह सदैव १०८ मुनिराजोंकी सेवामें रत रहे तथा इनके उपदेशोंकी झलक उनके दैनिक जीवनमें दिखाई देती रहे ।

इस धार्मिक रुचिके कारण आप समय समयपर तीर्थ-धामों की यात्रा अपने पतिके साथ करती रहती हैं । तीर्थक्षेत्रोंकी सहायता करना एवं आवश्यकताओंकी पूर्ति करना आपका एक विशेष गुण है । मुनियोंके दर्शनार्थ समय समयपर बाहर जाना तथा मुनियोंको आहारदान देना तथा उनके सद्‌उपदेशोंको सुनना आपकी जीवनचर्याका अनुपम अंग है । आपने मुनिराजके सद्‌उप-देशोंसे प्रेरित होकर अपनी पतिदेवके द्वारा मरसलगंजमें पंचकल्या-णक प्रतिष्ठा करवाई और अपने चंचल द्रव्यका सदुपयोग किया । शान्तिवीरनगर श्रीमहावीरजी एवं गोहाटीके पंचकल्याणकोंमें आपका सराहनीय योगदान रहा । आपके पतिदेव द्वारा श्री शान्तिवीरनगर महावीरजीमें मानस्तंभकी स्वीकारता दिलानेमें आप ही की सत्प्रेरणा है, जो बनकर तैयार हो रहा है ।

धर्मकी लगनके कारण तथा अपने बच्चोंमें धार्मिक संस्कार लानेके लिये सुजानगढ एवं गौहाटीमें आपने अपने निवास स्थानपर चैत्यालयोंका निर्माण करवाया है । इस धार्मिक रुचिके कारण अभी आप श्री १०८ आचार्यकल्प मुनिराज श्रुतसागरजीके दर्शनार्थ भिंडर ग्राम गई थीं । वहां की जैनसमाजने आपका हृदयसे स्वागत किया । वहींपर आपने भाद्रपदमें सदा की भांति अपने पतिदेवके साथ दशलक्षण व्रत किये और मुनिराजोंके सद्‌उपदेशोंका लाभ उठाया । आपकी पतिव्रतपरायणताको देखकर वहांकी समाजने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी भूरि २ प्रशंसा की । वास्तवमें यह सत्य ही है कि अपने पतिदेवको सच्चरित्र बनानेमें आपने चेलना जैसा कार्य किया है । सचमुच आजकी महिलासमाजके लिये अनुकरणीय है ।

आपकी शालीनताको देखकर भिंडरकी समाजने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा आपकी मिलनसारिता व आत्मीयता वहाँ की समाजमें कूट-कूट कर भर गयी जो भुलाये नहीं भूल पाती है ।

इससे पहले आप गजपंथा तीर्थक्षेत्र और १०८ आचार्य महावीर कीर्तीजीके दर्शनार्थ गये थे । वहांपर आचार्यश्री के उपदेशोंसे प्रेरित होकर श्री आदिचन्द्रप्रभु आचार्य महावीरकीर्ति सरस्वती प्रकाशन मालाकी स्थापना की– जिसका प्रथम पुष्प श्री नवदेवता मण्डल विधान पूजाके नामसे प्रकाशित हुवा है तथा दूसरा आत्मान्वेषण–पुष्प प्रकाशित हुआ है । इसकी लेखिका, सम्पादिका पूज्य १०५ श्री आर्यिका विजयमतीजी माताजी हैं । यह पुस्तक आध्यात्मिक विकासके लिये उपयोगी है । तीसरा पुष्प ग्रंथराज पंचाध्याशी है जो प्रकाशनके मार्गमें है । चौथा पुष्प आपके सामने है– यह महान् धार्मिक आचार ग्रंथ है तथा और भी कई बडे–बडे ग्रंथ छपानेकी इनकी हार्दिक इच्छा है ।

आपने सामाजिक क्षेत्रमें भी बहुत सराहनीय कदम बढाया है । आपने अपने जीवनमें लाखोंका दान किया है, सच ही है कि लक्ष्मीका पासमें आ जाना फिर भी सरल काम हो सकता है,लेकिन उसका सुकार्य एवं सुपात्रमें लगाना अपनी एक अलग विशेषता रखता है। आपके नामसे अनेक संस्थायें चल रही हैं। आपने इस चंचला लक्ष्मीको हमेशा सन्मार्गमें लगाया है । गौहाटीमें मूक बधिर बच्चों का एक स्कूल चल रहा है जिसमें अनेक गूंगे और बहरे बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । यह स्कूल आसाम भरमें अपनी विशेषता रखता है । इसके अतिरिक्त एक अन्य मोन्टेसरी पद्धतिपर आधारित छोटे बच्चोंका स्कूल भी हाल ही में निर्माण करवाया है । समय समयपर खुलनेवाली बहुतसी संस्थाएं ऐसी हैं जो इनकी दानशील–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्तासे लाभान्वित होती हैं। आपके द्वारको जिस जिसनें भी खटखटाया हैं सबको आशाकी झलक मिली है। आये हुए को निराश लौटाना आपने सीखा ही नहीं। गरीबोंको दान वस्त्रादि देना नित्य प्रतिका आपका कार्य हैं।

आपके सबसे अधिक उल्लेखनीय गुण व्रतनिष्ठता व शील-संपन्नता है। असीम श्रीमंतीके होनेके बाद स्वभावतः हृदयमें प्रमाद व आरामतलबीवृत्ति बढ जाती है। परंतु श्री सौ. भंवरी-देवीजी इसके लिए अपवाद हैं। वे अपने आत्मजागरण व आत्म-विशुद्धिके प्रति जागृत हैं। गुरुवोंके उपदेशको उन्होंने अपने जीव-नमें ही नहीं उतारा, अपितु समस्त परिवारको धार्मिक व चारित्रसंपन्न बनानेका श्रेय उन्होंने प्राप्त किया है।

आपकी रहनसहन सादी और उच्च विचारधारा है। समय किसीकी भी नहीं सुनता है, इस सिद्धान्तको लेकर कोई भी कार्य धार्मिक हो या सामाजिक, उसमें आप कभी भी आलस्य या प्रमाद नहीं करती हैं। इतना करते हुए भी आप अपनेमें अहंकारकी बूतक नहीं आने देती हैं। आये हुए अतिथि व महमानका स्वागत करना, आवभगत करना, आपका सचमुच अनुकरणीय गुण है। आपका हंसमुख चेहरा एक बार देखने मात्रसे कभी विस्मृत नहीं हो सकता। ये सब बातें मैंने स्वयं अपनी आंखोंसे आपके निवासस्थान गौहाटी जाकर देखी हैं।

अतः इस महान् महिलारत्नको मैं शत शत शुभ कामनाएं अर्पित करता हूं।

देवी महिलारत्न आप जिनवर पदसेवी,
अपने पतिकी धर्मकार्यमें रुचि करलेवी।
सदा दानमें लीन गुरुजनकी आज्ञापेवी,
अमर रहो गुण शील भरी हे भंवरीदेवी ॥

गुलाबचन्द जैन
एम्. ए. जैनदर्शनाचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिचन्द्रप्रभु आचार्यश्री महावीरकीर्ति सरस्वती प्रकाशनमाला

संचालिका दानशीला जैनमहिलारत्न

श्री. सौ. भंवरीदेवीजी पांड्या, सुजानगढ

उक्त संस्थाकी स्थापना वीर नि. सं. २४९५ में सिद्धक्षेत्र गजपंथामें श्री परमपूज्य आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराजके तत्वावधानमें जैनरत्न मुनिसंघभक्तशिरोमणि, दानवीर, रायसाहब सेठ चांदमलजी पांड्या, सुजानगढकी धर्मपत्नि सौ. दानशीला श्रीमती भंवरीदेवीजीके करकमलोंसे हुई थी।

प्रकाशनमालाकी ओरसे प्रथम पुष्पके रूपमें–श्री नवदेवता विधान पूजन (सकलसौभाग्यव्रत) संहिता–सूरि ब्रह्मचारी सूरजमलजी द्वारा लिखित प्रकाशित हो चुकी है। द्वितीय पुष्पके रूपमें पूज्य आर्यिका श्री विजयमतीजी माताजीकी नवीन कृति–आत्मान्वेषण प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तकमें सरल, सुबोध और सुगम्य भाषामें आत्माकी खोजके विषयमें बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है जिससे धार्मिकजनताने पर्याप्त लाभ उठाया है।

तीसरा पुष्प–पंचाध्यायी नामक महान् सैद्धांतिक ग्रंथ है जो कि शीघ्र प्रकाशनके मार्गमे है। अब यह चौथा पुष्प–"सागारधर्मामृत" महापंडित आशाधरकृत जो जैन श्रावकाचारका सर्वोच्च ग्रंथ है, हमारे स्वाध्यायप्रेमी बंधुवोंके हाथमें देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इसकी टीका सुप्रसिद्ध विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमती माताने की है।

पांचवां पुष्प–कुन्दकुन्दशोधप्रबन्ध–लेखक डा. लालबहादुर शास्त्री एम्. ए. पी. एच्-डी. लिखित होगा।

छठा पुष्प–आचार्यश्री शिवसागरजी स्मृति ग्रंथ–और आगामी

सातवां पुष्प–आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी स्मृति ग्रंथके प्रकाशित होनेकी योजना कार्यरूपमें परिणित हो रही है।

आशा है धार्मिक जनता इनसे लाभ उठाएगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस संस्थाके उद्देश निम्नप्रकार हैं।

(१) श्री दि. जैन आर्षमार्गको पोषण करनेवाले धार्मिक ट्रेक्ट (धर्मग्रंथ) छपाना और उन्हे विनामूल्य या उचित मूल्यपर वितरण करना।

(२) श्री दिगंबर जैनविद्वानोंको पारितोषिक देकर उनका सम्मान करना।

(३) श्री दि. जैन आचार्य साधु साध्वियों द्वारा लिखित मौलिकग्रंथोंका प्रकाशन करना एवं उनके उपदेशोंका प्रचार करना।

(४) साधुवर्गको स्वाध्यायके लिए शास्त्र ग्रंथादि उपलब्ध कर देना व प्रदान करनेकी व्यवस्था करना।

(५) प्राचीन अप्रकाशित ग्रंथोंको प्राप्त कर उन्हे संग्रहीत करना एवं उनको प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करना।

संचालिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपादक व संशोधकका परिचय

इस ग्रंथके संपादक वि.वा.श्री पं.वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, जैन समाजके एक प्रथितयश समाजसेवारत विद्वान् हैं। दक्षिण व उत्तर भारतमें उनकी समान रूपसे ख्याति है। अतएव उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है।

शास्त्रीजीका जन्म दक्षिण भारतके प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र मूडबिद्रीमें दि. २७-३-१९०९ सौम्य संवत्सर चैत्र शु. ६ शनिवार के रोज रोहिणीनक्षत्रमें माता अमृतमतीकी कुक्षीसे हुआ। इनके विद्वान् पिता वेणूरक्षेत्रनिवासी पार्श्वनाथ शास्त्री थे। यात्राके प्रसंगमें पावापुरीमें विनोदसे पतिपत्नीने बातचीत की थी कि यदि गर्भकी संतति पुत्र हुआ तो उसका नाम वर्धमान रखा जावे, योगायोगसे रोहिणीनक्षत्रमें जन्म होनेसे जन्मनाम भी वर्धमान आया, वर्धमान वर्धमान हो रहा था। वर्धमान पांच वर्षकी अवस्थामें विद्याध्ययनके लिये पाठशालामें दाखल हुआ, तभीसे इसने अपनी योग्यताका अवलोकन कराया, प्राथमिक व माध्यमिकशिक्षण मूडबिद्रीके जैनपाठशालामें ही हुआ।

इनके ज्येष्ठ भ्राता स्व. पं. लोकनाथजी शास्त्री भी समाजमे सुपरिचित विद्वान् थे, पिता भी ज्योतिष, संस्कृत, संगीत आदि विषयोमें विद्वान् थे, इसलिये इन्हे आनुवंशिक विद्वत्ताकी प्राप्ति हुई यह कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

स्व. पं. लोकनाथजी शास्त्रीके प्रयत्नसे संस्कृत अध्ययनके लिये मोरेना महाविद्यालय भेजे गये। उस समय मोरेना महाविद्यालयमें स्व. पं. माणिकचन्दजी न्यायाचार्य प्राचार्य थे। वहांपर व इंदौर महाविद्यालयमें रहकर आपने शास्त्री, कलकत्ताके न्याय काव्यतीर्थ उपाधिको प्राप्तकर निष्णातपांडित्यको प्राप्तकर लिया।

समाजकार्य प्रारंभ—विद्यार्थीजीवनसे निकलनेके बाद आपने अ.भा.दि.जैन महासभाके पुरातत्वविभागमें कुछ समय संशोधनका कार्य किया, आप कुछ वर्ष इस विभागके मंत्री भी रहे, और उपयोगी संशोधन किया, बिजोलियेका शिलालेख अन्वेषण आपके द्वारा ही हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदनन्तर आपकी प्रतिभाकी ओर स्व. धर्मवीर सेठ टीकमचंद जीकी दृष्टि गई उन्होने आपको अजमेर बुला लिया। आप १९२९से १९३२ तक अजमेरमें उनकी ओरसे संचालित महावीर विद्यालयके प्रधानाध्यापकपदपर रहे, इस कार्यकालमें ही डॉ. गुलाबचन्द पाटनी के द्वारा संचालित स्याद्वादमार्तंडका आपने सम्पादन भी किया था। इन्ही दिनोमें शाहपुरामें आर्यसमाजके साथ छह दिनतक लगातार शास्त्रार्थ हुआ, उससे शास्त्रीजीकी विद्वत्तामें चार चांद लग गये। आपकी ख्याति इस शास्त्रार्थसे बढने लगी, शास्त्री परिषद्की ओरसे प्रकाशित जैनसिद्धान्त पत्रका स्व. व्याख्यान-वाचस्पति पं.देवकीनंदनजी के साथ आप संपादक नियुक्त हुए।

दक्षिण भारतकी ओर-अजमेरसे आपने पू.स्व.नेमिसागरजी वर्णी (श्रवणबेलगोळके भट्टारक)के आग्रहसे वहांकी संस्थावोंके संचालनके लिये श्रवणबेळगोळा जानेका विचार किया। यह बात स्व.धर्मवीर रावजी सखाराम दोशीको ज्ञात होनेपर आपको सोलापुर बुलाया। वहांपर इनके जुम्मे जैनबोधक का संपादन, बंबई परीक्षालयकी देखरेख आदि कार्य स्व. रावजी सखारामने किये,करीब ४० वर्षोंसे शास्त्रीजी इन कार्योंको अव्याहतरूपसे सफलतापूर्वक निभा रहे हैं।

साहित्यसेवा-सोलापुरमें आनेके बाद आपने अनेक सत्साहित्योंका संपादन, अनुवाद आदि कर जैनसमाजको उपकृत किया है। उग्रादित्याचार्यकृत कल्याणकारक वैद्यक ग्रंथ, भरतेश वैभव, दानशासन, शतकत्रय आदि अनेक ग्रंथोंका संपादन व अनुवादकर आपने हिन्दी जगत्का उपकार किया है। कर्नाटक एकीकरण संघके आप कई वर्षोंतक प्रधानमंत्री रहे।

विविध संस्थाओंकी सेवा--आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके आप प्रारम्भसे ही ट्रस्टी व प्रधानमंत्री है। बम्बई परीक्षालयके करीब ३३ वर्षोंसे मंत्री हैं। मूडबिद्री वीरवाणी विलास सि.भवनके आप ट्रस्टी हैं। कई वर्ष प्रधानमंत्री भी रहे। अ. भा. शास्त्री परिषद्, महासभाके पुरातत्व विभागके कई वर्ष मंत्री रहे, शास्त्री परिषदके आज उपाध्यक्ष हैं। विद्वत्परिषद्, शांतिवीर धर्म सं. सभा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अ. भा. महासभा, तीर्थक्षेत्र कमेटी, रा. स. स्मारक संघ, मोरेना विद्यालय आदि संस्थावोमें आप कार्यकारिणीके सदस्य हैं। कुंदकुंद विद्यापीठ हुमचके आप प्रधानमंत्री व ट्रस्टी हैं। आपके ही प्रयत्नसे यह विद्यापीठ स्थापित हुआ।

पत्रसंपादन--आपने जैनबोधक (मराठी-हिंदी) जैनदर्शन (हिंदी) वीरवाणी (कन्नड) विश्वबंधु (कन्नड-मराठी-हिंदी) स्याद्वादमार्तण्ड (हिंदी) जैनसिद्धांत (हिंदी) आदि पत्रोंका सफल संपादन किया है। जैनबोधक मराठी पत्रका ४० वर्षोंसे संपादक हैं। कोल्हापूर मठसे रत्नत्रय (हिंदी, मराठी, कन्नड) पत्र जो स्वस्तिश्री लक्ष्मीसेन स्वामीजीके नेतृत्वमें निकलता है उसके आप प्रधानसंपादक हैं।

बंबई परीक्षालयकी समुन्नति--शास्त्रीजीके कार्यकालमें बंबई परीक्षालयकी सुव्यवस्थित समुन्नति हुई है। आज लगभग २५० केंद्रोमें दस हजार विद्यार्थी इस संस्थासे परीक्षा दे रहे हैं। इसका व्यवस्थाभार आपपर ही है।

धार्मिक सेवा--धर्मसेवा और समाजसेवा आपकी नैसर्गिक प्रकृति हैं। १९५३ व १९६७ में जो जैनबिद्रीमें महामस्तकाभिषेक हुआ उसमें आपने अहोरात्र सेवा की थी। वेणूरमस्तकाभिषेकमें प्रधान आचार्यत्वके पदसे जो सेवा की फलत: क्षेत्रको आर्थिक दृढता मिली। आप इन कार्योंके समान प्रतिष्ठा, मंत्रतंत्र आदि शास्त्रोमे भी प्रवीण हैं। आपके आचार्यत्वमें अनेक प्रतिष्ठायें हुई हैं। राजस्थानमें भीमपुर, लोहारिया, मुंगाणा, शिरडशाहपुर, नौगामा, सम्मेदशिखरजी, बंबई कालबादेवी मंदिर, पोदनपुर मंदिर आदि अनेक स्थानोमे आपके हाथसे विधिपूर्वक प्रतिष्ठायें हुई। प्रतिष्ठाके समय तदंतर्गत विधियोंको सार्वजनिकोंको समझाना यह आपकी ही विशेषता है।

सुंदरलेखक व प्रभावक वक्ता--श्री शास्त्रीजी कन्नड, हिंदी, मराठी आदि भाषावोंके जिस प्रकार सफल लेखक हैं उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार वे उन भाषावोंके प्रभावक वक्ता भी हैं। आपको भारतार्यंत सर्व प्रांतोमें बुलाकर हजारो लोग आपके भाषणोंको मंत्रमुग्धवत् सुनते हैं। इसका अनुभव दक्षिणोत्तर भारतकी जनताको प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं जैनेतर समाजमें भी शास्त्रीजीको आव्हानित करते हैं। अनेक सर्वधर्मसम्मेलनोमें आपको जैनधर्मके प्रतिनिधित्वको स्वीकृत करनेका अवसर प्राप्त हुआ है।

श्री शास्त्रीजी वर्तमान युगके एक निष्ठावंत कार्यकर्ता हैं। इतना ही नहीं सर्वपक्षीय समन्वयकी दृष्टिसे वे धार्मिक नेतृत्व करते हैं। इसलिए आज समाजके सर्व वर्गोमें आपके संबंधमें परम आदर है।

साहित्यजगत्‌की सेवा

श्री आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके माध्यमसे आपने करीब ४५ ग्रंथोंका संपादन कर प्रकाशित किया है। तत्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार सदृश महान् दार्शनिक ग्रंथके छह खंड आपके संपादकत्वमें प्रकाशित हुआ है। सातवां खंड भी शीघ्र प्रकाशित होगा। प्रारंभ कालसे ही इस संस्थाके आप मंत्री व ट्रस्टी हैं।

उनके द्वारा लिखित अनेक सत्साहित्य अभी प्रकाशन के मार्गमें हैं। सम्मेदशिखर माहात्म्य इंद्रनंदिसंहिता आदि ग्रंथोंका उन्होने संपादन किया है।

आपके द्वारा लिखित अगणित लेख विभिन्न विषयोंमे लिखित विभिन्न पत्रोमें प्रकाशित हुए हैं एवं होते रहते हैं। घरके स्वतंत्र व्यवसायको सम्हालते हुए आप अनेक संस्थावोंकी एवं समाजकी सेवा करते हैं यह आपकी विशेषता है।

इस प्रकार आपके द्वारा शैक्षणिक साहित्यिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रमें अगणित सेवायें हुई हैं। छात्रजीवनसे ही सामाजिक व सार्वजनिक सेवाप्रति आपके हृदयमें अपाररुचि रही है। ६४ वर्षकी आयुमें भी युवकोचित उत्साहसे वे कार्य करते हैं। समग्र दक्षिण भारतमें आज उनके द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्रसे मार्गदर्शन होता है। इसलिये समाजमें उनका सुन्दर प्रभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामाजिकसन्मान--आपकी विविध सेवावोंके उपलक्ष्यमें समग्र भारतके जैनसमाजने आपका सन्मान किया है। आपकी विद्वत्तासे प्रेरित होकर आपको विविध उपाधियोंसे विभूषित किया है।

विद्यावाचस्पति (शाहपुरा शास्त्रार्थ), व्याख्यानकेसरी (गुजरात-सूरत), धर्मालंकार (सुजानगढ-राजस्थान), समाजरत्न (वाग्वर-प्रांत), विद्यालंकार (बेळगांव-कर्नाटक) आदि उपाधियोंसे आपको भारतके विविध प्रांतके समाजने अलंकृत कर कृतज्ञता व्यक्त की है।

अनेक स्थानोंके समाजने सम्मानपत्र समर्पण कर आदर व्यक्त किया है। जिनका उल्लेखमात्र यहां किया जाता है।

शाहपुरा-राजस्थान (१९२९) अजमेर (१९३२) सोलापूर (१९५५) बिलिचोड-दावणगेरे (१९५७) बंबई (१९५८) सुजानगढ (१९५९) हुमच (कर्नाटक) भीमपुर-राजस्थान (१९६०) बांसवाडा (१९६१) बागलकोट (१९६१) शिरडशहापूर (१९६३) हैदराबाद (१९६४) बेळगांव (१९६५) रांची-बिहार (१९६५) कलकत्ता (१९६६) होसदुर्ग-मैसोर (१९६९) गौहाटी-आसाम (१९६९) के स्थानीय समाजने आपको आमन्त्रित कर आपके प्रवचनोंको बडी दिलचस्पीसे सुना एवं आपके प्रवचनोंसे प्रभावित होकर आपके प्रति हार्दिक समादर व्यक्त करते हुए सम्मानपत्र समर्पण किया है।

इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभाके विद्वान्को पाकर दक्षिण भारत ही नहीं उत्तर भारत भी अपनेको गौरवान्वित मानता है। आपके द्वारा समाजमें विविध अंगोंकी सेवायें हो रही है। आपको परमपूज्य समस्त साधुवर्गका आशीर्वाद प्राप्त है।

परमपूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी एवं धर्मवीर रा.सा. सेठ चांदमलजी सरावगीकी प्रेरणासे आपने इस महत्वपूर्ण ग्रंथका सर्वांग सुन्दर रूपसे संपादन संशोधन किया है। इसलिये वे धन्यवादके पात्र हैं। आप निरोग रहकर दीर्घायु होवे जिससे समाज आपकी सेवावोंसे लाभान्वित हो सकें, यही भावना है।

—देवकुमार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रम

प्रथमोऽध्यायः

१ टीका मंगलाचरण १
२ मंगलाचरण व प्रतिज्ञा २
३ सागारका लक्षण ३
४ गृहस्थका लक्षण ४
५ मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रभाव ६
६ मिथ्यात्वके भेद ८
७ सम्यग्दर्शनकी सामग्री ११
८ सदुपदेशकोंका अभाव १५
९ भद्र भी उपदेश्य है १७
१० भद्रका लक्षण १७
११ दृष्टांतसे भद्रका कथन १९
१२ गृहस्थके धर्म २०
१३ पूर्ण सागारधर्म ३२
१४ असंयत सम्यग्दृष्टि ३३
१५ यश भी उपार्जनीय है ३७
१६ संयतासंयतपद ३८
१७महाव्रतपालनेच्छाप्रशंसनीय४१
१८ ११ प्रतिमावोंका स्वरूप ४३
१९ नित्यपूजादिसे कर्महानि ४६
२० पक्ष चर्या व साधनस्वरूप५१
२१ पाक्षिक, नैष्टिक, साधक ५३
२२ प्रथम अध्यायका सारांश ५४

द्वितीयोऽध्यायः

२३ पाक्षिककी भूमिका ५५
२४मद्यादित्यागकीआवश्यकता ५६
२५ परमतकी अपेक्षा मूलगुण ५७
२६ मद्यका त्याग आवश्यक ५८
२७ मद्यपानसे हानि ६०
२८ एकपाद सन्यासीकी कथा ६१
२९ मद्यव्रती धूर्तिल चोर ६२
३० मांस भक्षण निंद्य है ६३
३१स्वयंमृतका मांस भी त्याज्य६४
३२मांसभक्षण दुर्गतिका कारण६६
३३ मांसभक्षणसे दुर्दशा ६७
३४ राजा सौरसेनकी कथा ६७
३५ मांसत्यागी चांडाल ६९
३६ खदिरसार भिल्ल ७०
३७ प्राण्यंगत्व सम होनेपर भी मांसत्याज्य व अन्नभोज्य ७२
३८ मधुके दोष ७४
३९ नवनीत भी त्याज्य ७६
४० पंचोदुंबरफलत्याग ७७
४१ निशिभोजन व अगालित जलत्याग ७८
४२ रात्रिभोजन त्याग फल ७९
४३ रात्रिभोजन त्यागकी कथा७९
४४स्थूलहिंसादित्याग आवश्यक८२
४५ द्यूतासक्ति त्याग ८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६	प्रकारांतरसे अष्टमूलगुण	८५
४७	जैनधर्मश्रवणके अधिकारी	८६
४८	अष्टमूलगुणधारणमाहात्म्य	८७
४९	द्विजन्मभव्यका महत्व	८९
५०	शूद्र भी धर्मपालनाधिकारी	९३
५१	देवपूजादिकी प्रेरणा	९४
५२	देवपूजाका वर्णन	९५
५३	पूजन फल कथा	९५
५४	नित्य महापूजा	१०१
५५	अष्टान्हिक इंद्रध्वज	१०२
५६	महामह पूजाका लक्षण	१०३
५७	कल्पद्रुम पूजाका लक्षण	१०४
५८	नित्यपूजादिका अंतर्भाव	१०४
५९	अष्टद्रव्यार्चन फल	१०५
६०	पूजाविधि व लोकोत्तरफल	१०६
६१	जिनपूजामाहात्म्य	१०८
६२	जिनपूजांतरायत्यागोपाय	१०८
६३	स्नानपूर्वक पूजा	१०९
६४	चैत्यादिनिर्माण फल	१११
६५	जिनचैत्यादि आवश्यक	११३
६६	जिनचैत्यालयआवश्यक	११४
६७	वसतिकी आवश्यकता	११५
६८	स्वाध्यायशालाकी "	११५
६९	औषधालयकी "	११६
७०	जिन पूजा फल	११७
७१	सिद्ध साधु पूजा	११८
७२	श्रुतदेवी पूजा	११८
७३	श्रुत–देवमें अंतर नहीं	११९
७४	गुरुपूजा आवश्यक	११९
७५	गुरुपासना विधि	१२०
७६	गुरुसन्निधिमें विनय	१२१
७७	दान देना आवश्यक	१२२
७८	दान तपका फल	१२२
७९	दानका प्रयोजन	१२३
८०	धर्मपात्रोंका संतर्पण	१२४
८१	समदत्ति दानकी विधि	१२६
८२	जैनोंपर अनुग्रह	१२६
८३	नामादिसे जैन भेद	१२७
८४	भावजैनके प्रति प्रेम	१२८
८५	कन्यादिदान किसे करें?	१२९
८६	कन्यादानका हेतु	१२९
८७	सम्यक्कन्यादानकी विधि	१३०
८८	कन्यादानसे पुण्य फल	१३३
८९	विवाहका समुद्देश	१३४
९०	पत्नीके विना गृहस्थी नहीं	१३५
९१	विषयोपभोगसे निवृत्ति	१३५
९२	धनकी सार्थकता	१३६
९३	मुनियोंका समादर करें	१३७
९४	ज्ञान,तप,तपस्वीका आदर	१३९
९५	सुपात्र अपात्रदानफल	१४०
९६	भोगभूमिकी अवस्था	१४३
९७	मुनियोंको देने योग्य वस्तु	१४५
९८	आहारादि दानका फल	१४५
९९	श्रीषेण राजाकी कथा	१४६
१००	वृषभसेनाकी कथा	१४८
१०१	कौंडेशकी कथा	१५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute; Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०२ सूकरकी कथा १५३

१०३ मुनियोंकी सृष्टि १५५

१०४ निराशका निरास १५५

१०५ अणुव्रती, महाव्रती, स्त्रियां धर्म पात्र हैं १५६

१०६ कार्यक्षेत्रोंकी सहायता १५७

१०७ दयादत्तिका वर्णन १५७

१०८ रात्रिमें पानीय आदि सेवन क्षम्य है १५९

१०९ त्यागका फल १६०

११० यथाशक्ति तपआचरण १६१

१११ व्रतके दृढतासे पालन १६१

११२ व्रतका लक्षण १६२

११३ प्राणिरक्षाकी विधि १६२

११४ संकल्पहिंसाका त्याग १६३

११५ हिंस्र प्राणियोंकी भी हिंसाका त्याग १६४

११६ लोकव्यवहारके कर्तव्य १६५

११७ कीर्तिका अर्जन १६६

११८ कीर्ति अर्जनका उपाय १६६

११९ नैष्ठिक बननेकी प्रेरणा १६७

१२० द्वितीयाध्यायका सारांश १६८

तृतीयोऽध्यायः

१२१ नैष्ठिकका लक्षण १७०

१२२ नैष्ठिकके भेद १७४

१२३ द्रव्य प्रतिमाधारी १७६

१२४ देशसंयमीके भी तीनभेद १७७

१२५ दर्शनप्रतिमाका स्वरूप १७८

१२६ मद्य मधु त्यागकी [illegible] शुद्धिका उपाय १८०

१२७ मद्यत्यागव्रतकी हानि १८०

१२८ मद्यत्यागव्रतके अतीचार १८१

१२९ मांसव्रतके अतीचार १८२

१३० मधुव्रतके अतीचार १८२

१३१ पंचोदुंबर त्यागके ,, १८३

१३२ रात्रिभोजनत्यागके ,, १८४

१३३ जलगालनव्रतातिचार १८४

१३४ सप्तव्यसनमेंप्रसिद्धव्यक्ति १८५

१३५ युधिष्ठिरकी कथा १८६

१३६ यादवकी कथा १८७

१३७ शिवभूतिकी कथा १८८

१३८ बकराजाकी कथा १८९

१३९ ब्रह्मदत्तकी कथा १९४

१४० रावणकी कथा १९५

१४१ चारुदत्तकी कथा १९७

१४२ उपव्यसनोंका त्याग २०६

१४३ द्यूतत्यागके अतीचार २०७

१४४ वेश्यात्यागके अतीचार २०८

१४५ चौर्यव्यसनत्यागातिचार २०८

१४६ आखेटव्यसन " २०९

१४७ परांगनात्यागातिचार २१०

१४८ त्यक्तका प्रयोग [illegible] अन्यत्र भी त्याज्य है २१०

१४९ दर्शनिकप्रतिज्ञानिर्वाह २११

१५० धर्मपत्नीको व्युत्पन्नकरो २१२

१५१ पत्नीकी उपेक्षा मत करो २१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५२ पत्नी भी पतिपरायणहो २१३
१५३ अपनी पत्नीमें भी अत्यासक्तिका निषेध २१४
१५४ पुत्रोत्पत्ति व उसे कुलाचारमें व्युत्पन्न २१४
१५५ पुत्रकी आवश्यकता २१७
१५६ दर्शनप्रतिमाउपसंहार २१८
१५७ तृतीयाध्यायका सारांश २१९

चतुर्थोऽध्यायः

१५८ व्रतप्रतिमाका लक्षण २२१
१५९ व्रतीको निःशल्य होनेकी आवश्यकता २२३
१६० शल्यसहचर व्रतोंको धिक्कार २२४
१६१ उत्तरगुणोंका निर्णय २२४
१६२ पंचाणुव्रतोंका लक्षण २२६
१६३ स्थूलविशेषणका अर्थ २२८
१६४ अहिंसाका व्यापकलक्षण २२८
१६५ संकल्पहिंसाका त्याग २२९
१६६ गृहविरतका अहिंसाव्रत २३१
१६७ स्थावर हिंसा भी त्याज्य २३२
१६८ सांकल्पिकी हिंसा हेय २३३
१६९ हिंसात्यागका प्रयत्न २३४
१७० अहिंसाव्रतकी आराधना २३४
१७१ पांचभावना व अतीचार २३५
१७२ अतीचारोंका विस्तार २३६
१७३ गाय आदिका पालन २३८
१७४ अहिंसाके अतीचार २४१
१७५ अतीचारका लक्षण २४१
१७६ बंधातिचार २४२
१७७ अहिंसाव्रतस्वीकारविधि २४३
१७८ हिंस्य, हिंसक, हिंसा, हिंसाफल वर्णन २४३
१७९ अहिंसाव्रतशुद्धिविधि २४४
१८० अहिंसाकी रक्षाके लिये रात्रिभोजनत्याग २४६
१८१ रात्रिभोजनसे हानि २४७
१८२ रात्रिभोजन महत्पाप २४८
१८३ लौकिक संवादसे रात्रिभोजननिषेध २४९
१८४ दिनरात खानेवाले कौन २५०
१८५ रात्रिभोजनत्याग फल २५१
१८६ भोजनांतरायका त्याग २५१
१८७ भोजनांतराय कौनसे? २५२
१८८ मौनव्रत निरूपण २५४
१८९ मौनव्रतफल २५५
१९० मौनका प्रयोजन २५६
१९१ नियतकालिक, सार्वकालिक मौन २५७
१९२ मौनके स्थान २५८
१९३ सत्याणुव्रतकी रक्षा २५९
१९४ योग्य अयोग्य वचन २६०
१९५ सत्यसत्य वचन २६१
१९६ सत्यासत्य वचन २६१
१९७ असत्यासत्य वचन २६३
१९८ असत्य वचन २६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९९ सत्याणुव्रतके अतीचार २६५
२०० अचौर्याणुव्रतका लक्षण २६७
२०१ अदत्तादानदान चौर्य २६८
२०२ अस्वामिक द्रव्य भी अग्राह्य है २६८
२०३ संशयित वस्तुका त्याग २६९
२०४ अचौर्याणुव्रतातिचार २७०
२०५ स्वदारसंतोषव्रतविधि २७४
२०६ स्वदासंतोषव्रतस्वरूप २७५
२०७ स्त्रीसंभोगसे हानि २७८
२०८ परस्त्रीसेवनमें सर्वथा सुखका अभाव २७९
२०९ स्वस्त्रीसेवनमें हिंसा २८०
२१० ब्रम्हचर्यकी महिमा २८१
२११ परपुरुषत्यागी स्त्रियां २८१
२१२ सीताकी कथा २८२
२१३ ब्रह्मचर्य व्रतातिचार २९७
२१४ परिग्रह परिमाणाणुव्रत ३०२
२१५ अंतरंगपरिग्रह निग्रह ३०२
२१६ बहिरंग परिग्रह की त्यागविधि ३०३
२१७ क्रमशः परिग्रहत्याग ३०४
२१८ परिग्रहको दूषण ३०४
२१९ परिग्रहव्रतातिचार ३०५
२२० परिग्रहत्याग दृष्टांत ३१०
२२१ जयकुमारकी कथा ३११
२२२ परिग्रह त्याग माहात्म्य ३१३
२२३ चौथे अध्यायका सारांश ३१४

पंचमोऽध्यायः

२२४ गुणव्रतोंका लक्षण ३१६
२२५ दिग्व्रतका स्वरूप ३१७
२२६ दिग्व्रतमें महाव्रतित्व ३१८
२२७ दिग्व्रतकी दृढता ३१८
२२८ दिग्व्रतके अतीचार ३१९
२२९ अनर्थदंडव्रतलक्षण ३२१
२३० पापोपदेश त्याग ३२२
२३१ हिंसोपकरणदान त्याग ३२२
२३२ दुश्रुतिअपध्यानलक्षण ३२३
२३३ प्रमादचर्या व त्याग ३२४
२३४ जीवघातक प्राणियोंका पालन त्याग ३२५
२३५ अनर्थदंडव्रतके अतीचार ३२५
२३६ भोगोपभोग व्रत ३२७
२३७ भोगोपभोगलक्षणभेद ३२८
२३८ अनिष्ट अनुपसेव्यका त्याग ३२८
२३९ अल्पफलबहुघात त्याग ३३०
२४० अनंत काय त्याग ३३०
२४१ द्विदल,पत्रशाक त्याग ३३२
२४२ कोट्टपालादिक्रिया त्याग ३३२
२४३ भोगोपभोगके अतीचार ३३३
२४४ खरकर्मोंका त्याग ३३८
२४५ शिक्षाव्रत ३४२
२४६ देशावकाश निरुक्ति ३४२
२४७ देशावकाश लक्षण ३४३
२४८ देशावकाशातिकाचार ३४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४९ सामायिक व्रत ३४५
२५० सामायिक भावना ३४६
२५१ सामायिकमें चिन्तन ३४७
२५२ सामायिक शुद्धि उपाय ३४८
२५३ सामायिकमें दुःश्रुतित्याग ३४९
२५४ सामायिकके अतीचार ३५०
२५५ प्रोषधोपवासलक्षण ३५१
२५६ मध्यमजघन्यप्रोषध ३५२
२५७ प्रोषधोपवास विधि ३५३
२५८ प्रोषधोपवासमे कर्तव्य ३५४
२५९ प्रोषधोपवासमें त्याज्य ३५५
२६० प्रोषधोपवासव्रतातिचार ३५५
२६१ अतिथिसंविभाग व्रत ३५७
२६२ अतिथिकी निरुक्ति ३५७
२६३ पात्रस्वरूप व भेद ३५८
२६४ उत्तमादि पात्र ३५९
२६५ दानविधि–विशेष ३५९
२६६ द्रव्यकी विशेषता ३६१
२६७ दान व दाताकी विशेषता ३६१
२६८ दानका फल ३६३
२६९ मुनिदानसे पापक्षालन ३६४
२७० दानानुमोदकको फल ३६५
२७१ वज्रजंघकी कथा ३६६
२७२ अतिथि अन्वेषण विधि ३७३
२७३ पात्रदानी धन्य ३७४
२७४ ग्रहणादिमे दानत्याग ३७४
२७५ अतिथिसंविभागातिचार ३७५
२७६ व्रतप्रतिमाका उपसंहार ३७७
२७७ पंचमाध्यायका सारांश ३७९

षष्ठोऽध्यायः

२७८ पौर्वान्हिकी क्रिया ३८१
२७९ प्रातःकालीन चिन्तवन ३८२
२८० प्रातःकालीन क्रिया ३८४
२८१ जिनालय गमन ३८५
२८२ जिनदर्शन प्रभाव ३८६
२८३ जिनमंदिरप्रवेश ३८७
२८४ जिनभवनमें विचार ३८८
२८५ ईर्यापथशुद्धि,प्रत्याख्यान ६८८
२८६ यथायोग्य समादर ३९०
२८७ स्वाध्याय करें ३९१
२८८ जिनालयमें निषिद्धकर्म ३९२
२८९ हर्षविषाद त्याग ३९३
२९० जीवनमें संतोषवृत्ति ३९५
२९१ असावद्यवृत्तिसे निर्वाह ३९५
२९२ साधर्मीके घरमें भोजन ३९६
२९३ उद्यानभोजनादिकात्याग ३९६
२९४ मध्यान्हमें जिनेंद्रभवित ३९७
२९५ जिनेंद्राभिषेक विधि ३९७
२९६ पूजांतर निरूपण ४००
२९७ पात्रभुक्ति व स्वयंभुक्ति ४०१
२९८ भोजनोत्तर कर्तव्य ४०३
२९९ गुरुवोंसे शास्त्राध्ययन ४०४
३०० निद्राछेद होनेपर निर्वेद भावना ४०५
३०१ संसारसे वैराग्य ४०६
३०२ स्वतःका कर्तव्य ४०७
३०३ कर्मबंधसेछूटनेकाविचार ४०७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०४ स्त्रीपर आसक्ति दूर करनेका उपाय ४०९
३०५ भेदविज्ञानीकी प्रशंसा ४०९
३०६ भरतचक्रवर्तिकी कथा ४१२
३०७ सगरचक्रवर्तिकी कथा ४१६
३०८ शमश्री और स्त्रीमेंसंघर्ष ४२२
३०९ स्त्री दुस्त्यजा है ४२३
३१० स्त्रीत्याग ही सर्वत्याग है ४२३
३११ सामायिक भावना ४२४
३१२ कायकेप्रतिअपायचिन्तन ४२५
३१३ जिनधर्म शरण है ४२६
३१४ समताभावकी कामना ४२७
३१५ समताका वर्णन ४२८
३१६ यतिधर्मकी भावना ४२९
३१७ योगकी परमकाष्ठाकी भावना ४३०
३१८ दृढचित्तकी प्रशंसा ४३१
३१९ जिनदत्तका चरित्र ४३१
३२० व्रतप्रतिमाकाउपसंहार ४४१
३२१ षष्ठाध्यायका सारांश ४४१

सप्तमोऽध्यायः

३२२ सामायिक प्रतिमा ४४३
३२३ व्यवहार निश्चय सामायिकका भेद ४४३
३२४ निश्चयसामायिकप्रशंसा ४४४
३२५ प्रोषधोपवासप्रतिमा ४४५
३२६ प्रोषधोपवासीकी प्रशंसा ४४६
३२७ दोनोमे प्रतिमात्व ४४६
३२८ उत्कृष्ट प्रोषधोपवासी ४४८
३२९ सचित्तविरत ४४८
३३० दयालुका कर्तव्य ४४९
३३१ सचित्तत्यागीकी प्रशंसा ४४९
३३२ सचित्तत्यागप्रतिमा ४५०
३३३ रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा ४५१
३३४ छठी प्रतिमाधारी ४५२
३३५ रात्रिमें भी मैथुनत्याग ४५२
३३६ ग्रंथांतरमें विधि ४५३
३३७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ४५४
३३८ ब्रह्मचारिकी प्रशंसा ४५४
३३९ ब्रह्मचर्यका माहात्म्य ४५५
३४० ब्रह्मचर्यका वर्णन ४५५
३४१ वर्णाश्रमव्यवस्था ४५६
३४२ आरंभत्यागप्रतिमा ४५९
३४३ आरंभत्यागसमर्थन ४५९
३४४ परिग्रह विरति ४६०
३४५ सकलदत्तिका वर्णन ४६१
३४६ सकलदत्तिविधि ४६१
३४७ पुत्रको उपदेश ४६२
३४८ सुविधिकेशवकी कथा ४६३
३४९ उपदेशका उपसंहार ४६९
३५० त्यागका फल ४७०
३५१ मोह त्याग करनेपर घरमें रह सकेगा ४७०
३५२ अनुमतित्याग प्रतिमा ४७१
३५३ दसवी प्रतिमाकी विधि ४७२
३५४ उद्दिष्टत्यागकी भावना ४७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५५ गृहत्यागविधि ४७३
३५६ दसवी प्रतिमाका उपसंहार ४७७
३५७ उद्दिष्टत्यागप्रतिमा ४७८
३५८ अंतिमप्रतिमाके भेद ४७९
३५९ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारीका कर्तव्य ४७९
३६० एकघर अनेकघरभिक्षुक ४८०
३६१ अनेकघर भिक्षाविधि ४८०
३६२ एक घर भिक्षाविधि ४८३
३६३ उक्त त्यागीका कर्तव्य ४८३
३६४ द्वितीय उद्दिष्टविरतिं ४८४
३६५ शेष क्रिया संग्रह ४८५
३६६ शीलवान्की मह्मा ४८७
३६७ संतोषधारण आवश्यक ४८८
३६८ स्वाध्याय कर्तव्य ४८९
३६९ धर्मके प्रति अवस्था ४८९
३७० सल्लेखनाकी भावना ४९०
३७१ समाधिमरणमें रुचि ४९१
३७२ मुनींद्रवृत्तिमें निष्ठा ४९१
३७३ आपवादिकी वृत्ति व उत्सर्ग वृत्ति ४९२
३७४ नैष्ठिकका उपसंहार ४९३
३७५ सप्तमाध्यायका सारांश ४९३

अष्टमोऽध्यायः

३७६ सल्लेखनाधारकलक्षण ४९५
३७७ जिनलिंगधारण कारण ४९६
३७८ ज़िनरूपधारण माहात्म्य ४९७
३७९ नाशोन्मुखकायका शोच ४९७
३८० शरीरका स्थापन व उपचार ४९८
३८१ शरीरके लिए धर्मघात न करो ४९९
३८२ सल्लेखनाआत्मघात नहीं ४९९
३८३ सल्लेखनाकी सफलता ५००
३८४ आत्माराधनासे मोक्षप्राप्ति ५०१
३८५ उपसर्ग मरणमें उपवास ५०१
३८६ आयुकीपूर्तिमें सल्लेखना ५०२
३८७ शरीरमेनिर्ममत्वभावना ५०३
३८८ आहारत्यागका समय ५०३
३८९ समाधिमरणकी विधि ५०४
३९० मरण समयमें आराधना फल ५०४
३९१ विराधनासे हानि ५०५
३९२ पूर्वोपार्जितकर्मका फल ५०६
३९३ दूरभव्यको भी लाभ ५०८
३९४ भक्त प्रत्याख्यानकी योग्यता ५०८
३९५ शरीरकी शुद्धि ५१०
३९६ इष्टपदार्थ त्याग ५११
३९७ समाधिका फल ५१२
३९८ निर्यापकाचार्यकी सहायता ५१२
३९९ समाधिमरण माहात्म्य ५१३
४०० समाधिमरण क्षेत्र ५१४
४०१ बीचमेंही मरण हो जाय तो क्या ५१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०२ समाधिमरणविधान ५१५
४०३ क्षमा करनेका फल ५१६
४०४ क्षपककी आलोचनाविधि ५१६
४०५ संस्तरारोहण ५१७
४०६ मुनिलिंगका विधान ५१८
४०७ उपचारसे महाव्रती ५१८
४०८ दीक्षाके अधिकारी ५१९
४०९ स्त्रियां भी नग्न हो सकती हैं ५२०
४१० परद्रव्यरभिनिवेशत्याग ५२१
४११ शुद्धि और विवेककी आवश्यकता ५२२
४१२ पांच प्रकारकी शुद्धि ५२२
४१३ विवेकका भेद ५२३
४१४ महाव्रतकी भावना ५२४
४१५ सल्लेखनाके अतीचार ५२४
४१६ संस्तरारूढ क्षपकके प्रति निर्यापकाचार्यका कर्तव्य ५२६
४१७ भोजनमे आसक्ति-निषेध ५२६
४१८ आहारासक्तिपरिहार ५२७
४१९ आसक्तिमें हानिचिंतन ५२९
४२० हेमसेन मुनिकी कथा ५३०
४२१ देहसे भिन्नभावना करो ५३२
४२२ दुग्धादि स्निग्धपदार्थ सेवन करावे ५३३
४२३ निर्यापकाचार्यकाउपदेश ५३४
४२४ अतीचारोंका त्याग ५३४
४२५ आहारत्यागकी विधि ५३७
४२६ उष्णजलग्रहण ५३९
४२७ संघका कर्तव्य ५३९
४२८ निर्यापकाचार्यका कर्तव्य ५४०
४२९ क्षपकके लिये उपदेश ५४०
४३० मिथ्यात्व अपायकारी है ५४१
४३१ मिथ्यात्वसेवनसे अपाय ५४२
४३२ धनदत्त व संघश्रीकी कथा ५४२
४३३ सम्यक्त्वका उपकार ५४५
४३४ सम्यक्त्वकी महिमा ५४५
४३५ श्रेणिककी कथा ५४६
४३६ अर्हद्भक्तिका माहात्म्य ५५०
४३७ अर्हद्भक्तिका फल ५५१
४३८ राजा पदमरथकी कथा ५५२
४३९ अर्हद्भक्तिसे मुक्ति ५५५
४४० सुदर्शन सेठकी कथा ५५५
४४१ ज्ञानोपयोगकी महिमा ५७२
४४२ महामंत्रका माहात्म्य ५७२
४४३ दृढसूर्यकी कथा ५७४
४४४ स्वाध्यायका माहात्म्य ५७७
४४५ यममुनिकी कथा ५७९
४४६ अहिंसकका दृष्टांत ५८३
४४७ यमपालचांडालकी कथा ५८४
४४८ असत्यकृत अपाय ५८७
४४९ असत्य भाषणका उदाहरण ५८७
४५० वसुपर्वतनादरकी कथा ५८८
४५१ स्तेयसे अनर्थ ५९९
४५२ स्तेयसे दुर्गति ६००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५३ तापसचोरकी कथा ६००
४५४ रुद्रकी कथा ६०१
४५५ अपरिग्रह महाव्रतकी दृढता ६१४
४५६ लुब्धदत्तकी कथा ६१४
४५७ नैर्ग्रंथ्यकी प्रतिपत्ति ६१६
४५८ कषाय इंद्रियोंसे अपाय ६१७
४५९ निश्चय आराधना ६१७
४६० परमागमसे आत्मस्वरूप निश्चय ६१८
४६१ परमार्थ सन्यासका उपदेश ६१९
४६२ परीषहोमे कर्तव्य ६२०
४६३ ज्ञानसारका विस्तार ६२०
४६४ भेदविज्ञानका उपदेश ६२२
४६५ अचेतन कृत उपसर्ग जीतनेका उपदेश ६२३
४६६ शिवभूतिकी कथा ६२४
४६७ मनुष्य कृतोसर्ग जीतनेका उपदेश ६२५
४६८ पांडवोंकी कथा ६२६
४६९ तिर्यंचकृत उपसर्ग जीतनेका उपदेश ६२९
४७० सुकुमाल मुनिकी कथा ६३०
४७१ देवकृत उपसर्ग जीतनेका उपदेश ६४३
४७२ विद्युच्चर मुनिकी कथा ६४३
४७३ दृढताके लिये उपदेश ६४७
४७४ निश्चय सम्यग्दर्शन ६४८
४७५ तपाराधनामे तत्पर होनेका उपदेश ६४९
४७६ परमानंदका लाभ होवो ६५०
४७७ आराधनाका फल ६५१
४७८ अष्टमाध्यायका सारांश ६५५
४७९ ग्रंथकर्ताकी प्रशस्ति ६५८
४८० ग्रंथांगत श्लोकसूची ६६१

समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागारधर्मामृतम्

(राष्ट्रभाषानुवादसहितम्)

टीका मंगलाचरण

श्री वर्द्धमानमानम्य मन्दबुद्धिप्रबुद्धये।
धर्मामृतोक्तसागार धर्मटीकां करोम्यहं ॥१॥
समर्थनादि यन्नात्र ब्रुवे व्यासभयात्क्वचित्।
तज्ज्ञानदीपिकाख्यैतत्पंजिकायां विलोक्यतां ॥२॥
सुदृग्बोधोगलद्वृत्त-मोहो विषयनिःस्पृहः।
हिंसादेर्विरतः कार्त्स्न्याद्यतिः स्याच्छ्रावकोंशतः ॥३॥

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्तिसे जिनका मोह नष्ट हो गया है और विषयों में जिनकी इच्छा नष्ट हो गई है ऐसे मनुष्योंके द्वारा हिंसादि पांच पापों का सर्वथा त्याग करना मुनिव्रत है और हिंसादि पांच पापों का एकदेश त्याग करना श्रावकव्रत है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। आशाधरजी ने अनगारधर्मामृत में मुनिधर्म का वर्णन किया है। क्योंकि आचार्यों ने लिखा है कि पहिले मुनिधर्म का वर्णन करना चाहिये। जो मुनिधर्म का वर्णन न करके श्रावकधर्मका वर्णन करता है वह साधु दंडका पात्र है। इसलिये पहिले मुनिधर्मका वर्णन किया है। उसके बाद श्रावक धर्म का वर्णन करने के लिये-सागारधर्मामृत वर्णन करने के लिये मगलाचरण करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगलाचरण

अथ नत्वाऽर्हतोऽक्षूणचरणान् श्रमणानपि ।
तद्धर्मरागिणां धर्मः सागाराणां प्रणेष्यते ॥१॥

अन्वयार्थ–(अथ) मुनियों के धर्म का प्रतिपादन करने के अनन्तर, (अक्षूणचरणान्) = परिपूर्ण है चारित्र जिन्होंका ऐसे (अर्हतः) अर्हन्तों को और (श्रमणान्) निर्दोष है चारित्र जिन्हों का ऐसे मुनियों को (अपि) भी (नत्वा) नमस्कार करके (तद्धर्म-रागिणां) मुनियोंके धर्ममें अनुराग करनेवाले (सागाराणां) गृहस्थियों के (धर्मः) धर्म का (प्रणेष्यते) वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ– अथ शब्द अनेकार्थवाची है :-

हेतौ निदर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ
आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ।
मंगलानन्तरारंभ प्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ ।

अथ शब्द के हेतु निर्देश समीप मंगल अनंतर प्रारम्भ आदि अनेक अर्थवाचक है, तो भी यहां पर मगलवाचक अथवा प्रारंभ-वाचक ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि ग्रन्थकर्त्ताने ग्रन्थका पूर्ण नाम धर्मामृत रखा था और आम्नाथ के अनुसार क्रमपूर्वक मुनि धर्म और श्रावक धर्म का निरूपण करने के लिये उसको अनगार धर्मामृत और सागारधर्मामृत, इसप्रकार दो भागों में विभक्त किया है। उनमें से मुनि धर्म का तो अनगार धर्मामृत नाम के पहिले भाग में ही निरूपण कर दिया। अथ– इसके बाद में अनन्तचतुष्टयादि अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि बहिरंग लक्ष्मी से शोभित तथा सम्पूर्ण मोहकर्म के नाश हो जाने से उत्पन्न होनेवाले नित्य निर्मल यथाख्यात चारित्र के धारक अर्हंत परमेष्ठी को और उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्मों के वा अनित्य अशरण संसारादि भावनाओं के चिंतवन से निरतिचार सामायिक छेदो-पस्थापनादि क्षायोपशमिक चारित्र को पालन करनेवाले तथा बाह्याभ्यंतर तप का आचरण करने वाले आचार्य उपाध्याय और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व साधुओं को सिर झुकाकर मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार करके संहनन आदि की हीनता से हिंसादी पाचों पापों का सर्वथा त्यागरूप मुनि धर्म का पालन करनेमें जो असमर्थ है परन्तु भव भवान्तर में मुनिधर्म के पालन करने की भावना भाने-वाले मुनियों के धर्म में अत्यंत अनुराग रखने वाले भव्यजीव के लिये गृहस्थ धर्म का वर्णन करूंगा ऐसी आशाधरजीने प्रतिज्ञा की है। इसलिये अथ शब्द प्रारंभ वाचक है अथवा मंगलवाचक भी है।

इस ग्रन्थमें ग्रन्थकर्ता ने जो अर्हंतों को तथा मुनियों को नमस्कार किया है, इस से यह सूचित किया है कि श्रावक को अपने सच्चे श्रावकपन के उद्योतन करनेके लिये पूजन दानादि प्रधान कर्तव्यों का पालन करनेके लिये देव शास्त्र गुरु की भक्ति करना परमावश्यक है। तथा मुनि धर्म का अनुरागी होकर के ही सागारधर्मको धारण करना चाहिये। जिन गृहस्थोंका मुनि धर्म में वा मुनियों में अनुराग नहीं है वे श्रावक धर्मका भी योग्य रीती से पालन नहीं कर सकते हैं। क्यों कि मुनिधर्म के पालन की साक्षात् या परम्परा से योग्यता की प्राप्ति के लिये मुनिधर्म में अनुरागी होकर ही सागारधर्म का धारण करना आवश्यक है।

सागारका लक्षण

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुःसंज्ञाज्वरातुराः
शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागारा विषयोन्मुखाः ॥२॥

अन्वयार्थ – (अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुःसंज्ञाज्वरातुराः) अनादिकालीन अविद्यारूपी दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली चारों संज्ञा-रूपी ज्वर से पीडित, (शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः)– निरंतर आत्मज्ञान से विमुख। (विषयोन्मुखाः)– विषयों के सन्मुख। (सागारा)– गृहस्थ होते हैं।

भावार्थ– इस श्लोक में आशाधरजी ने गृहस्थका स्वरूप बताते हुये तीन विशेषण दिये हैं। इन तीनों विशेषणो से गृहस्थके अंतरंग परिणामों का वर्णन किया गया है। और ज्वर की उपमा देकर सम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आया है कि गृहस्थ कैसे होते हैं।

जिस प्रकार वात, पित्त, और कफकी विषमता से साध्य प्राकृत, असाध्यप्राकृत, साध्यवैकृत, असाध्य वैकृत के भेद से चार प्रकार के ज्वर उत्पन्न होते हैं। उन ज्वरों से पीडित होने के कारण मनुष्य हिताहितके विवेक से शून्य हो जाते हैं, और अपथ्यसेवी बन जाते हैं, उसी प्रकार अनित्य पदार्थों में नित्य, अपवित्र पदार्थों में पवित्र, दुःखों को सुख, हेय पदार्थों को उपादेय अपने से पृथक् स्त्री पुत्र मित्रादिक बाह्य पदार्थों का अपना मानना, यही एक अनादीकालीन अविद्या है उस अविद्यारूपी वात पित्त कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली आहार, सज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञारूपी ज्वरसे पीडित होकर यह प्राणी हिताहित के विवेक से शून्य होकर अपथ्यसेवी बन रहा है अतः अपने स्वरूपका ज्ञान नही रहा। जिस से निरंतर

एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।

एक ज्ञान दर्शन लक्षणवाला — ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा ही मेरा है। और संयोग सवन्ध से होने वाले सम्पूर्ण वैभाविक भाव मेरे वाह्य भाव हैं और वे मुझसे सर्वथा भिन्न हैं। इत्यादि स्वानुभूतीसे पराङ्मुख होकर विषयसेवन को ही शांति का उपाय समझकर निरंतर रागद्वेष से इष्टानिष्ट विषयों की तरफ उन्मुख हो रहे हैं। उन्हें सागार, संपूर्ण परिगृह सहित घरमें वास करनेवाले गृहस्थ कहते हैं। दूसरे प्रकार से गृहस्थ का लक्षण कहते हैं।

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रंथसंज्ञ मपासितुम्।
अपारयन्तः सागाराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः ३॥

अन्वयार्थ— (अनाद्यविद्यानुस्यूतां) — अनादिकालीन अज्ञान के कारण परम्परासे आनेवाली। (ग्रन्थसंज्ञां) — परिग्रह संज्ञा को। (अपासितु) — छोडनेके लिये (अपारयन्तः) असमर्थ (प्रायः) प्राय करके (विषयमूर्च्छिताः) विषयभोगोमें मूर्च्छित (सागाराः) गृहस्थ होते हैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर से बीज यह परम्परा अनादि काल से चली आ रहीं हैं, उसी प्रकार अनादि–कालीन अज्ञानभाव से परिग्रहादि संज्ञा, परिग्रहादि संज्ञासे अज्ञान भाव (अर्थात् द्रव्य कर्म से भावकर्म और भावकर्मसे द्रव्य कर्म) इस प्रकार अनादि (जिसका प्रारंभ नहीं हैं) अविद्यास उत्पन्न हुई ग्रंथ संज्ञा अर्थात् परिग्रहमें यह मेरा हैं इस प्रकार के परिणामो के छोडनेमें असमर्थ होकर प्रायः गृहस्थ स्त्री पुत्रादिक में मैं इनका भोक्ता हूँ, में इन का स्वामी हूँ, यह मेरी योग्य वस्तु है इस प्रकार के ममकार अहंकाररूप बिकल्प जालकी परतंत्र से वशीभूत होकर विषयों म मूर्च्छित हो जाता हैं। इस श्लोक में प्रायः यह शब्द दिया है इससे यह सूचित होता है कि प्रायः सम्यग्दृष्टि भी चारित्र मोहनीय के वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाते हैं, परन्तु कोई विरले सम्यग्दृष्टि जन्मान्तर में किये हुये रत्नत्रय के अभ्यास से भरतचक्रवर्ती आदि के समान चक्रवर्ती इन्द्रपद आदि का अनुभव करते हुये भी असतीनाथोपभोगन्याय से तत्त्वज्ञान देशसंयम आदिकी तत्परता होने से नहीं भोगनेवाले के समान है। यह व्यभिचार बताने के लिये प्रायः शब्द दिया गया है। असतीनाथ न्याय क्या है–

धात्रीबालासतीनाथ पद्मिनीचलवारिवत्
दग्धरज्जुवदाभाति भुञ्जानोऽपि न पापभाक् ॥१॥

जिस प्रकार पालन पोषण करनेवाली धाय में बच्चा आसक्त नहीं होता, अथवा पालनेवाली धाय बच्चेमें आसक्त नहीं होती है, वा व्यभिचारिणी स्त्री में उसके पतिका विशेष प्रेम नहीं होता है, अथवा कमलिनी के पत्तेपर स्थित भी जल बिन्दु कमल मे लिप्त नहीं होती है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव विषयोंको भोगता हुवा भी उनमें आसक्त नहीं होने से जली हुई रस्सी के समान पापभागी नहीं होता है। जिसप्रकार जली हुई रस्सी में ऐंठरा केवल आकार दिखता है परन्तु वह किसीको बांधनेमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव विषयोंको सेवन करता है परन्तु अरुचिपूर्वक सेवन करने से उसके विषय भोग कर्मोंके बंध कराने में समर्थ नहीं हैं। अर्थात्–जैसे मिथ्यादृष्टि जीव आसक्तिपूर्वक विषयोंको सेवन करनें से अनन्त संसारके कारणभूत मिथ्यात्वादि कर्मोंका बंध करता है, वैसे सम्यग्दृष्टि जीव रुचिपूर्वक विषयोंको सेवन न करने से अनन्त संसार के कारणभूत कर्मोंका बन्ध नहीं करता है। इसलिये अनन्तानुबन्धी तथा मिथ्यात्वकृत पापकर्मोंके बंधका अभाव होने से सम्यग्दृष्टी जीव विषयों को भोगता हुवा भी अबन्धक कहा गया है; सर्वथा अबंधक नहीं है। अर्थात् कोई कोई सम्यग्दृष्टी जीव अप्रत्याख्याना-वरणा चारित्र मोहनीय के तीव्र उदय से विषयों में १मूर्च्छित हो जाते हैं। और कोई कोई तत्त्वज्ञानी देशव्रती सम्यग्दृष्टी देश संयमको पालन करने वाले वास्तव में विषयों को सेवन करना नहीं चाहते हैं, त्याज्य समझते हैं। फिर भी चारित्रमोहके उदयके वेग को सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिये वेदना का प्रतिकार करने के लिये विषय सेवन मे उनको प्रवृत्ति करनी पडती है। अत: उदासीन रूपसे विषयों को सेवन करने वाले होनेसे उपचारसे नहीं सेवन करने वाले के समान कहे जाते हैं, इस बातको बताने के लिये ग्रन्थकारने प्राय: शब्द दिया है।

इस प्रकार गृहस्थोंका लक्षण बता कर के अब उनको विषयों में प्रवृत्ति होने तथा नहीं होने में मूल कारण अज्ञान और ज्ञान है, उस अज्ञान वा ज्ञान को कारणभूत मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के प्रभाव को कहते हैं–

नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतस: ।
पशुत्वेऽपि नरायंते सम्यक्त्वव्यक्तचेतना: ॥४॥

अन्वयार्थ–(मिथ्यात्वग्रस्तचेतस:) मिथ्यात्व से व्याप्त है चित्त जिन्होंका ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव (नरत्वेऽपि) मनुष्य होकर

१ मूर्च्छित शब्द का अर्थ शरीरादि परपदार्थोंको अपना मानना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के भी (पशूयन्ते) पशुओं के समान आचरण करते हैं और (सम्यक्त्वव्यक्तचेतना:) सम्यक्त्व से युक्त है चेतना जिन्होंकी ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव (पशुत्वेऽपि) पशु होते हुये भी (नरायन्ते) मनुष्यके समान आचरण करते हैं।

भावार्थ:-प्राय: मनुष्य विचार चतुर चित्त वाले होते हैं फिर भी जिन मनुष्यों का हृदय अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत श्रद्धान से व्याप्त है वे मनुष्यभव को प्राप्त करके भी हिताहितके विवेक से रहित होने से पशुओं के समान हैं और जो पर्याय की अपेक्षा पशु हैं, परन्तु जिनका हृदय तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व परिणामों से व्याप्त है अथवा जिनके हृदयमे प्रशम, संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव रूप सम्पदा मौजूद है।

प्रशम-रागादि दोषों में मनोवृत्ति का नहीं जाना अथवा कषायों की मन्दता होना प्रशम भाव है।

संवेग-संसार शरीर और भोगों से विरक्त होना अथवा शारीरिक रोगादि रूप व्याधि को, मानसिक चितारूप आधिको और आगन्तुक आकस्मिक दु:खोंको उत्पन्न कराने वाले तथा इन्द्रजाल के समान अस्थिरसंसारसे भयभीत होने को संवेग कहते हैं

अनुकम्पा-सम्पूर्ण जीवों पर चित्तदयार्द्रता को अनुकम्पा कहते हैं।

आस्तिक्य-देव शास्त्र गुरु व्रत और सात तत्त्वों में अस्तित्व बुद्धि वा श्रद्धान को आस्तिक्यभाव कहते हैं। इस प्रकार की परिणति वाले प्राणि जातिसे तिर्यंच होते हुये भी सम्यक्त्व के माहात्म्य से हेय उपादेय तत्त्व को जानने वाले होने से मनुष्यों के समान हैं।

साराश-सम्यग्दृष्टि पशु होकर के भी श्रेष्ठ है, मिथ्यादृष्टि मनुष्य होकर भी हीन पशु के समान हैं। विद्या और अविद्या का मूल कारण क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व है। इस श्लोकमें पशु शब्द सामान्य तिर्यञ्चवाची है, फिर पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त ग्रहण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना चाहिये। क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तिर्यंचों को सम्यक्त्व नहीं हो सकता है।

सामान्य मिथ्यात्व का वर्णन कर विशेष रूप मिथ्यात्व के तीन भेदों का वर्णन करते हैं।

केषांचिदन्धतमसायतेऽगृहीतं ग्रहायतेऽन्येषाम्।
मिथ्यात्वमिह गृहीतं शल्यति सांशयिकमपरेषाम् ॥५॥

अन्वयार्थ-(इह) इस लोकमें (केषाञ्चित्) किन्हीं किन्हीं प्राणियोंके (अगृहीतं) अगृहीत (मिथ्यात्व) मिथ्यात्व (अन्धतमसायते) घोर अन्धकार के समान आचरण करता है। (अन्येषां) किन्हीं दूसरों को (गृहीतं) गृहीत (मिथ्यात्व) मिथ्यात्व (ग्रहायते) भूतके समान आचरण करता है। (अपरेषां) किन्हीं को (सांशयिकं) सांशयिक (मिथ्यात्वं) मिथ्यात्व (शल्यति) शल्यके समान दुःख देता है।५।

भावार्थ-मिथ्यात्व के तीन भेद हैं (१) गृहीत मिथ्यात्व (२) अगृहीत मिथ्यात्व और (३) सांशयिक मिथ्यात्व।

दूसरों के उपदेश के विना अनादि सन्तान रूप से जो जीवों की तत्त्वमें अरुचि रूप चेतना की परिणति को अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। वह मिथ्यात्व एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के होता है। जिसप्रकार गाढ अन्धकार से आच्छादित वस्तु के स्वरूपका अवलोकन नहीं होता है, उसीप्रकार अगृहीत मिथ्यात्व के उदय से जीवों को अपने हिताहित का विचार नही होता है, इसलिये इसकी उपमा गाढ अन्धकार की दी जाती है।

गृहीतमिथ्यात्व-गृहीतं परोपदेशादुपात्तं अतत्त्वाभिनिवेशलक्षणं चिद्विकृतं गृहीतमिथ्यात्वं।

दूसरों के उपदेश से ग्रहण किये गए अतत्त्वाभिनिवेशरूप मिथ्यात्व को गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। अपने कुलपरम्परासे आये हुये मिथ्याधर्म को स्वीकार करना भी गृहीतमिथ्यात्व है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय के होता है। इसकी उपमा आचार्य ने पिशाच की दी है। क्योंकि जिसप्रकार जब किसी पुरुष को भूत लग जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तब वह भूत उस पुरुष की स्वाभाविकदशा को भुला कर उसको नाना तरह से नचाता है, नाना प्रकार के विपरीत कर्मों को करवाता है उसी प्रकार यह गृहीतमिथ्यात्व जीवों को तत्वों में विपरीत एकान्त अनेक रूप से श्रद्धान कराता है। अतत्त्वों में तत्त्वों का श्रद्धान कराकर के तदनुकूल अनुष्ठान कराता है। इसके उदय से जीव असन्मार्ग का ही पक्ष लेते हैं और सम्यग्दृष्टि जीवों तक को भी उसी तरफ खींचने की चेष्टाएँ करते हैं। गृहीत मिथ्यादृष्टि जीव एकान्त विपरीत आदि रूपसे पदार्थों का श्रद्धान करके नानाप्रकारके धर्माभासरूप अनुष्ठान करते हैं।

सांशयिक मिथ्यात्व–मिथ्यात्व कर्मोदये सति ज्ञानावरणोदय विशेषवशात् किमिदं जीवादि वस्तु यथा जैनैरनेकान्तात्मकमुच ते तथा स्यातुतस्विदन्यथेति चलिता प्रतीतिः संशयः संशये भव सांशयिकं।

मिथ्यात्व कर्म के उदय होने पर ज्ञानावरणी कर्म के विशेष उदय से क्या जीवादि वस्तु जिस प्रकार जैनाचार्यों ने अनेकान्तात्मक कही है उसी प्रकार से है या अन्यथा रूप से है अर्थात् जैन महर्षियों के द्वारा निरूपित यह अनेकान्त न जाने सत्य है या असत्य है, इस प्रकार की चलित प्रतीति को संशय कहते हैं और इस प्रकार के संशय में होनेवाले श्रद्धान को सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्व को ग्रन्थकार ने शल्य (बाण) की उपमा दी है, अर्थात् जिस प्रकार शरीर के भीतर घुसा हुआ बाण बहुत दुःख देता है वा जबतक शरीर के बाहिर नहीं निकलता है तबतक शांति नहीं लेने देता है, कुछ भी काम करो सदैव उसकी तरफ चित्त जाया करता है, उसी प्रकार यह सांशयिक मिथ्यात्व भी जीवों को बहुत दुःख देता है अर्थात् जिन जीवों के सांशयिक मिथ्यात्व पाया जाता है, वे कोई भी अनुष्ठान करें परन्तु संशय होने के कारण उनका चित्त अनुष्ठातव्य विषय की ओर न जाकर सदैव अशांत ही रहता है। इसलिये पदार्थों के यथार्थ अयथार्थ दोनों स्वरूपों में से किसी एक भी स्वरूप का निश्चय न कर सकने के कारण यह मिथ्यात्व नाना दुःखों का हेतु है और प्राणियों को सदा व्यथित करता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्हीं किन्हीं आचार्यो ने मिथ्यात्व के पांच भेद माने हैं और उनके उत्तर भेद ३६३ माने हैं। दौलतरामजी ने गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व के भेद से दो प्रकार का मिथ्यात्व माना है, परन्तु इन सब मिथ्यात्वों के भेद गृहीत अगृहीत इन दो भेदों में अथवा गृहीत अगृहीत और सांशयिक इन तीन भेदों में गर्भित होते हैं। गृहीत अगृहीत का दूसरा नाम निसर्गज और और अधिगमज भी है। गृहीतमिथ्यात्व वा अधिगमज मिथ्यात्व क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी के भेद से चार प्रकार का है, एकान्त विपरीत संशय विनय और अज्ञान मिथ्यात्व के भेद से पांच प्रकार का है। एकान्त–इदमेव, इत्थमेव धर्मिधर्मयोर्विषयेऽभिप्राय: पुमानेवेदं सर्वमिति नित्य: एवानित्य एवेति वाभिनिवेश: एकान्त मिथ्यादर्शनं भवति। धर्म धर्मि के विषय में यह ऐसा ही है, इस प्रकार ही है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इस प्रकार एकान्तरूप अभिनिवेश श्रद्धान को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं।

सपरिग्रही निष्परिग्रही पुमान् स्त्री कवलाहारी केवली होते हैं, आदि विपरीत मानना विपरीत मिथ्यात्व है।

सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं इस प्रकार का संशय होना संशय मिथ्यात्व है।

सर्व देव, सर्व गुरु वन्दना करने योग्य है, सबको ही नमस्कार करना चाहिये ऐसा मानना विनयमिथ्यात्व है।

हिताहित की परीक्षा नहीं करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं च होदि चुलसीदी।
सत्तट्ठिण्णाणीणं वेणयियाणं तु बत्तीसं।

—गोम्मटसार

क्रियावादियों के १८० भेद हैं, अक्रियावादियों के ८४ भेद है, अज्ञानियों के ६७ और विनयवादियों के ३२ भेद हैं इस प्रकार ३६३ भेद वा मिथ्याश्रद्धान–श्रद्धातव्यको अपेक्षा असंख्यात लोक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण भेद सब तीन प्रकारके मिथ्यात्व वा दो प्रकार के मिथ्यात्व में गर्भित हो जाते हैं।

इसलिये ग्रन्थकार ने तीन प्रकार के मिथ्यात्व वर्णन किया है अर्थात् अभेद विवक्षासे एक दो तीन आदि भेद हैं और भेद विवक्षासे चार पांच ३६३ असंख्यात भेद हैं।

अथ अज्ञानके प्रधान कारणभूत मिथ्यात्व के नाश करने में समर्थ जो सम्यग्दर्शन है, उस सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने की सामग्री को बताते हैं-

आसन्नभव्यता कर्म-हानिसंज्ञित्वशुद्धिभाक्।

देशनाद्यस्तमिथ्यात्वो जीवः सम्यक्त्वमश्नुते ॥६॥

अन्वयार्थ-(आसन्नभव्यताकर्महानिसंज्ञित्वशुद्धिभाक्) आसन्नभव्यपना, सम्यक्त्व का प्रतिबंधक मिथ्यात्वादि कर्मों का उपशम, क्षयोपशम और क्षय तथा संज्ञीपना और विशुद्ध परिणामों का सेवन करने वाला (देशनाद्यस्तमिथ्यात्वः) सच्चे गुरु के उपदेशादि से जिसका मिथ्यात्व नष्ट हो गया है, ऐसा (जीवः) जीव (सम्यक्त्वं) सम्यक्त्व को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थ-आसन्न भव्यता, कर्महानि संज्ञित्व और विशुद्ध आदि परिणामों का धारण करनेवाला ये चार सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें अंतरंग कारण है। तथा सच्चे गुरु का उपदेश, जातिस्मरण, जिन प्रतिमाका दर्शन और वेदनादि सम्यग्दर्शन में बाह्य कारण हैं।

आसन्नभव्यता-जिस जीव में रत्नत्रय प्रकट होने की शक्ति है उसको भव्य कहते हैं। थोडे ही कालमें मोक्षपद प्राप्त करने वाला है उसको आसन्न कहते हैं। आसन्न जो भव्य वह आसन्नभव्य कहलाता है और आसन्नभव्यपनेको आसन्नभव्यता कहते हैं।

कर्महानि-सम्यग्दर्शनके घातक मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृति और अनंतानुबंध क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियों के क्षय उपशम और क्षयोपशम होनें को कर्महानि कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के निमित्त से कर्मों की शक्ति की अनुभूति को उपशम कहते हैं। वर्तमान निषेकों में सर्व घाति स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय तथा देशघातिस्पर्द्धकोंका उदय और आगामी कालमें उदय आने वाले निषेकों का सदवस्थ रूप उपशम ऐसी कर्मोंकी अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं। कर्मों की आत्यन्तिक निर्वृत्ति को क्षय कहते हैं।

यद्यपि यहाँ पर कर्म शब्द सामान्य रूपसे सम्पूर्ण कर्मों का वाचक है तथापि यहाँपर सम्यक्त्व का प्रकरण होने से सम्यक्त्व घाति कर्मों को ही ग्रहण करना चाहिये।

संज्ञित्व-शिक्षा क्रियालापोपदेशग्राहित्वं संज्ञा संज्ञाऽस्यातीति सञ्ज्ञी सञ्ज्ञिनो भावः संज्ञित्वं।

वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर शिक्षा क्रिया आलाप उपदेशादि ग्रहण करने की शक्ति को संज्ञा कहते हैं। इस प्रकार सञ्ज्ञा जिसमें हो वह सञ्ज्ञी है और सञ्ज्ञी के भाव को संज्ञित्व कहते हैं। जैसे कहा भी है-

मनोऽवष्टम्भतः शिक्षा क्रियालापोपदेशवित्।
येषां ते सञ्ज्ञिनो मर्त्या वृषकीरगजादयः।

शिक्षा-जिसके द्वारा हितका ग्रहण और अहित के त्याग किया जाय उस को शिक्षा कहते हैं।

क्रिया-बुद्धिपूर्वक हस्त पैर आदि चलाने को क्रिया कहते हैं।

आलाप-श्लोकादि के पढने को आलाप कहते हैं।

उपदेश-वचन अथवा चाबुक आदि के द्वारा समझाये गये कर्तव्य कर्म को उपदेश कहते हैं।

मनके अवलम्बनसे शिक्षा क्रिया आलाप और उपदेश के समझने वाले ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा जिसमें हो वह संज्ञी कहलाता है-जैसे मनुष्य बैल तोता हाथी, आदि से सर्प मनुष्य देव नारकी मयूर वगैरह।

शुद्धिभाक् विशुद्धपरिणामः शुद्धिः। परिणामों की विशुद्धि होना अर्थात् कषायोंकी मन्दता होने को विशुद्धि कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशना- सम्यग्गुरूपदेशः देशना-समीचीन गुरुके उपदेश मिलने को देशना कहते हैं ।

आदि शब्द से जातिस्मरण, जिनबिम्बदर्शन वेदना, देवर्द्धि दर्शन ग्रहण करना चाहिये । कार्योत्पत्ति में दो प्रकार के कारण होते हैं। उपादन कारण दूसरा निमित्त कारण । वस्तुमें परिणमन करने की शक्ति को उपादान कारण कहते हैं, और उपादन शक्ति के विकास में सहायता देनेवाले वा उसकी असमर्थता नाश कर बल दान करने वाले को निमित्त कहते हैं । वह निमित्त कारण दो प्रकार का है। अन्तरंग निमित्त कारण औरबहिरंगनिमित्तकारण. सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति में उपादन कारण आत्मा स्वयं है । क्योंकि भव्यात्मा में ही दर्शन मोहादिका क्षयोपशमक्षयादि होता है। परन्तु उसकी उत्पत्ति में सहकारी कारण अवश्य होना चाहिये, क्योंकि एक कारण से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वह सहकारी कारण (निमित्तकारण) दो प्रकारका है । आसन्नभव्यता, कर्म हानि, संज्ञित्व, विशुद्धपरिणाम यह सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति में अंत-रंग कारण है । शास्त्रश्रवण आदि बहिरंग कारण है । इस प्रकार अंतरग और बहिरग करण कलापोंके मिलने पर भव्यजीव अनादि कालीन मिथ्यात्वका नाश कर सम्यग्दर्शनको प्राप्त करता है ।

आचार्योंने सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारणभूत पांच लब्धियां कहीं है, उन पांच लब्धियों का संकेत भी ग्रन्थकर्त्ता ने इस श्लोक में किया है । क्षयोपशनलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग्यलब्धि, और करणलब्धि के भेद से लब्धियां पांच प्रकार की हैं। क्षयोपशम- अशुभ कर्मोंके अनुभाग की हानि होना अथवा स्थावर पर्याय से निकलकर संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त पद प्राप्त होने को क्षयोपशमलब्धि कहते हैं । विशुद्धिलब्धि- कषायोंकी मन्दता वा शुभ कर्मों के अनुभाग के वृद्धि को विशुद्धिलब्धि कहते हैं । देशनालब्धि- गुरूपदेश प्राप्त होने को देशनालब्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं। प्रायोग्यलब्धि- आयु कर्म को छोडकर शेष सात कर्मोंकी स्थिति को अंतःकोटाकोटी प्रमाण करने को प्रायोग्य लब्धि कहते हैं। ये चारों लब्धियाँ इस जीवको यद्यपि अनन्त बार हुई हैं, परन्तु जबतक पांचवी करणलब्धि नहीं हुई हो, तब तक इस जीव को सम्यक्त्वका लाभ नहीं होता है। क्योंकि करण लब्धिके विना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है। करण नाम परिणामोंका है। जब मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वके सन्मुख होता है उस समय उसके परिणाम अधःकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण रूप होते हैं।

अधःकरण- जिस करण में उपरितन समयवर्ति तथा अधस्तन समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा विसदृश होने हों उसे अधःकरण कहते हैं। अपूर्वकरण-जिनमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होतें जावे अर्थात् भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृशही हो और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश भी हो और सदृश भी हो उसको अपूर्वकरण कहते हैं। पहिले अधःकरणमें गुणश्रेणि गुणसंक्रम स्थितिकांडघात और अनुभागकांडघात नहीं होता है। परन्तु इस करणमें समय समयमें अनंतगुणी विशुद्धता बढती जाती है-इसलिये इसमें गुणश्रेणि गुणसंक्रम स्थितिकांड घात और अनुभागकांडघात होता है। इन चारोंका स्वरूप विस्तार से लब्धिसार से जानना चाहिये। अनिवृत्तिकरण-जिसमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही हों और एक समय वर्ती जीवों के परिणाम सदृश ही हो, उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

ये तीनों प्रकार के परिणाम उत्तरोत्तर अधिक अधिक विशुद्ध होते जाते हैं। इसलिये इनमें भेद माना गया हैं। इन तीन करणों के करने के बाद ही सम्यक्त्व होता है। पहिले नहीं। इसलिये क्षयोपशमलब्धि विशुद्धिलब्धि देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि यह चार लब्धि भव्य और अभव्य के समान है। परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करणलब्धि भव्य के ही होती है और उसके होने के बादमें सम्यक्त्व नियम रूपसे होता ही है ।

इस समय सम्यक्त्वकी सम्पूण सामग्रियों के होने पर भी सम्यग्गुरूपदेशकी परम आवश्यकता है । क्योंकि गुरूपदेश (द्रव्यश्रुत) के विना सम्यक्त्व नहीं हो सकता है । कोई शंका करे कि निसर्गज सम्यक्त्व में गुरूपदेश कार्यकारी नहीं है । निसर्गज सम्यक्त्व गुरूपदेश विना हो सकता है, ऐसा कहना शास्त्रोक्त नहीं हैं । क्योंकि निसर्गज सम्यक्त्व में भी परम्परा से गुरूपदेश कारण होता ही है । विना जिनसूत्र सुने किसी भी जीव को सम्यक्त्व नहीं हो सकता । सो ही आचार्य सोमदेवने यशस्तिलक वा तत्त्वार्थ वृत्ति में कहा है:- नैसर्गिकमपि सम्यग्दर्शनं गुरोरक्लेशकारित्वात् स्वाभाविकमुच्यते न तु गुरूपदेशं विना प्रायेण जायते । जिसमें गुरुवोंको विशेष परिश्रम न करना पडे थोडे में ही शिष्य समझ जाय उसको निसर्गज सम्यक्त्व कहते हैं । सर्वथा गुरुके उपदेश विना नहीं होता है ।

समीचीनोपदेश देनेवाले इस पंचम कालमें दुर्लभ हैं, ऐसा खेद प्रगट करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं ।

कलिप्रावृषि मिथ्यादिङ्मेघच्छन्नासु दिक्ष्विह ।
खद्योतवत्सुदेष्टारो हा द्योतन्ते क्वचित् क्वचित् ॥७॥

अन्वयार्थ- (हा) बडे दुःखकी बात है (इह) इस भरत क्षेत्रमें (कलिप्रावृषि) पंचम कालरूपी वर्षाकालमें (दिक्षु) सदुपदेशरूपी दिशाओंके (मिथ्यादिङ्मेघच्छन्नासु) मिथ्या उपदेशरूपी बादलों से व्याप्त होजाने पर (सुदेष्टारः) सदुपदेश देनेवाले गुरु (खद्योतवत्) जुगुनुओं के समान (क्वचित् क्वचित्) कहीं कहीं पर (द्योतन्ते) दीखते हैं । अर्थात् सब जगह नहीं मिलते हैं ।

भावार्थ- इस श्लोकमें हा शब्द ग्रन्थकर्ताके अन्तस्ताप को प्रकट करता है खेदसूचक है । जिस प्रकार वर्षा कालमें बादलों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से दशों दिशाओंके आच्छादित हो जाने पर सूर्य चन्द्र आदि के प्रकाशका अभाव हो जाता है, ऐसी दशा में कहीं कहीं पर खद्योत चमकते हुये दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार इस विकराल पंचम कालरूपी वर्षा कालमें सर्वथा एकान्तवादी बौद्ध नैयायिक आदि मेघोंसें अनेकान्तवाद जिनधर्मरूपी दिशाओंके आच्छादित हो जाने से सम्पूर्ण जीवादि तत्त्वोंका समीचीन उपदेश देनेवाले सच्चे गुरु इस भरत क्षेत्रमें कहीं कहीं जुगुनुओंके समान विरले दृष्टि गोचर होते हैं । चतुर्थ कालमें जैसे जगह जगह सुलभतया केवली श्रुत केवली मिलते थे, वैसे केवली श्रुतकेवलीरूपी सूर्य का इस पंचम कालमें अभाव है । इसलिये सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निमित्तभूत सदुपदेश का अभाव हो जाने से सम्यग्ज्ञानका अभावसा हो गया है, इस बात के दुःख को प्रकट करते हुये ग्रन्थकार ने हा शब्द का प्रयोग कर अपने अन्तस्ताप को प्रदर्शित किया हैं । इस पंचम कालमें सर्वत्र मिथ्यामार्ग का ही प्रचार हो रहा है सांसारिक भोगके उपदेश देनेवाले पंडितोंका मिलना सुलभ है।परन्तु वीतरागताका उपदेश देनेवाले सद्गुरु दुर्लभ हैं, सो ही लिखा है-

विद्वन्मन्यतया सदस्यतितरामुद्दण्डवाग्डंबरा:
श्रृंगारादिरसैः प्रमोदजनकव्याख्यानमातन्वते ।
ये ते च प्रतिसद्म संति बहवो व्यामोहविस्तारिणो,
येभ्यस्तत्परमात्मतत्वविषयं ज्ञानं तु ते दुर्लभाः ।

अर्थात् अपने को विद्वान् मान करके अत्यन्त प्रचण्डवचनोंके आडम्बर दिखाकर सभाओंमे श्रृंगारादि रसोंके द्वारा प्रमोदकारक व्याख्यान देते हैं । ऐसे व्यामोह को फैलानेवाले वा अज्ञानीजनोंको मिथ्यात्वरूपी जालमें फंसानेवाले उपदेशक तो प्रत्येक घरमें मिल सकते हैं, परन्तु जिसे परमात्मतत्वको विषय करनेवाले सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति होऐसे स्वात्मानुभवी तत्वज्ञानी समीचीन उपदेश देनेवाले सद्गुरु का प्राप्त होना इस कालमें असाध्य तो नहीं है । परन्तु दुर्लभ है । ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब इस दुष्षम पंचम कालमें सच्चे उपदेशक के समान सदुपदेश सुननेवाले सम्यग्दृष्टि भी विरले हैं। इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं कि भद्रपरिणामी भी उपदेश देने योग्य है।

नाथामहेऽद्य भद्राणा--मप्यत्र किमु सद्दृशाम् ।
हेम्न्यलभ्ये हि हेमाश्म--लाभाय स्पृहयेन्न कः ॥८॥

अन्वयार्थ-- (अद्य) इस पंचम कालमें (अत्र) भरतक्षेत्रमें (भद्राणां) भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टिको (अपि) भी (नाथामहे) अच्छा मानते अर्थात् उपदेश देने योग्य मानते हैं। (सद्दृशाम्) सम्यग्दृष्टियोंके मिलनेपर तो (किमु) कहना ही क्या (हि) क्योंकि (हेम्नि) सुवर्णके (अलभ्ये) नहीं प्राप्त होनेपर (हेमाश्मलाभाय) सुवर्ण पाषाणकी प्राप्तिके लिये (कः) कौन पुरुष (न) नहीं (स्पृहयेत्) इच्छा नहीं करेगा (अपि तु इच्छेत्) इच्छा करेगा ही।

भावार्थ-- वास्तविक में देशना का पात्र सम्यग्दृष्टि है। क्योंकि तीव्र मिथ्यात्वरूपी ज्वर से जिनका चित्त व्याप्त हो रहा है ऐसे घोर मिथ्यादृष्टि जीव उपदेश के पात्र नहीं है। सम्यग्दृष्टि का प्राप्त होना इस इस काल में बहुत कठिन है। इसलिये ग्रन्थकार कहते है कि सम्यग्दृष्टि पात्र मिले तब तो कहना ही क्या? वह तो विशेष रूप से उपदेश देने योग्य है. परन्तु सम्यग्दृष्टि न मिले तो भद्रपरिणामी मन्द कषायी मिथ्यादृष्टि भी उपदेशका पात्र है, उसको भी उपदेश देना चाहिये। जैसे सब लोग संसारमें सुवर्ण की इच्छा करते हैं. सुवर्ण न मिलने पर सुवर्ण के उत्पत्ति का स्थान भूत सुवर्ण पाषाण को ग्रहण नहीं करते क्या? करते ही हैं. उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि न मिलने पर भद्रमिथ्यादृष्टि को भी धर्म का उपदेश देकर धर्म के सन्मुख करना चाहिये ॥८॥

अब भद्र का लक्षण कहकर द्रव्यसे वह देशना के योग्य है ऐसा कहते हैं।

कुधर्मस्थोऽपि सद्धर्मं लघुकर्मतयाऽद्विषन् ।
भद्रः स देश्यो द्रव्यत्वान्नाभद्रस्तद्विपर्ययात् ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (कुधर्मस्थः) जिनधर्मसे विपरीत कुधर्ममें होनेपर (अपि) भी (लघुकर्मतया) मिथ्यात्व कर्मकी मन्दतासे (सद्धर्मं) समीचीन धर्मसे (अद्विषन्) द्वेष नहीं करनेवाला (भद्रः) भद्र (भण्यते) कहा जाता है। (सः) वह (भद्रः) भद्र (द्रव्यत्वात्) द्रव्यनिक्षेपकी अपेक्षा अर्थात् भविष्य कालमें सम्यक्त्व गुणकी प्राप्तिके योग्य होनेसे (देश्यः) उपदेश देने योग्य है। परन्तु (तद्विपर्ययात्) भविष्यमें सम्यक्त्व गुणकी प्राप्तिके योग्य नहीं होनेसे (अभद्रः) अभद्र (देश्यः)उपदेश देनेके योग्य (न) नहीं है।

भावार्थ- जो पुरुष प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसें बाधित मिथ्याधर्म मे स्थित है फिर भी यदि मिथ्यात्व कर्मके मन्द उदयसे समीचीन जैनधर्मसे द्वेष नहीं करता है, अर्थात् मिथ्यात्व कर्मके उदयके मन्दतासे स्वर्गादिक तथा मोक्षके उपायभूत समीचीन अनेकान्त मय तथा प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंके द्वारा अबाधित जिनधर्मसे द्वेष नहीं करता है, उसको भद्र कहते हैं। और जो कुल परम्परा की अपेक्षा कुधर्ममें स्थित है और मिथ्यात्व कर्मके तीव्र उदयसे जिनधर्मसे द्वेष करनेवाला है उसको अभद्र कहते हैं। इन दोनोमें भद्र पुरुष तो भविष्य कालमें सम्यक्त्व गुणकी प्राप्तिके योग्य हो सकता है। इसलिये वह तो धर्ममें व्युत्पन्न करानेके योग्य है अर्थात् उपदेश देने योग्य है। परन्तु अभद्र पुरुष भविष्यकालमें भी सम्यक्त्व गुण प्राप्त करने योग्य नहीं है। इसलिये देशनाका पात्र नहीं है। वहांपर इस श्लोकमें अपि शब्द होनेसे यह भी अर्थ होता है कि जो समीचीन धर्म और मिथ्याधर्म इन दोनो धर्मोंमें मध्यस्थ रहता है उसको भद्र कहते हैं॥ ९॥

आगे जिनेन्द्र भगवान्के उपदेशसे सुश्रूषादिगुणों को प्राप्त होनेवाला भद्र पुरुष सम्यग्दर्शन गुणसे रहित होता हुवा भी लोगोंको सम्यग्दृष्टियोंके समान मालुम होता है। इस बातको दृष्टांतके द्वारा प्रगट करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शलाकयेवाप्तगिराऽप्तसूत्र—
प्रवेशमार्गो मणिवच्च यः स्यात्
हीनोऽपि रुच्या रुचिमत्सु तद्वद्
भायादसौ सांव्यवहारिकाणाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ- (यः) जो भद्रपुरुष (मणिवत्) मणिके समान (शलाकया) सूची के (इव) समान (आप्तगिरा) जिनवाणी के द्वारा (आप्तसूत्रप्रवेशमार्गः) प्राप्त किया है तन्तु के समान परमागम में प्रवेशमार्ग को जिसने ऐसा (स्यात्) होता है (असौ) वह मनुष्य (रुच्या) कान्ति रूपी श्रद्धान से (हीनः) हीन (अपि) भी (रुचिमत्सु) कान्तिमान मणिरूपी सम्यग्दृष्टियों के मध्य में (सांव्यवहारिकाणां) सांव्यवहारिक जीवोंको (तद्वत्) सम्यग्दृष्टियों के समान (भायात्) प्रतिभासित होता है।

भावार्थ-जिस प्रकार छिद्र करने वाली वज्रकी सूची के द्वारा छेद को प्राप्त कर कान्तिहीन मणि डोरे की सहायता से कान्ति युक्त मणियों में प्रवेश कर जाती है तो कान्तिहीन होते हुए भी कान्तिमान मणियों की संगति से अर्थात् उनके बीच में मालाको देखनेवाले पुरुषों को कान्तिमान मणि के समान मालुम होती है। उसी प्रकार सद्‌गुरु के वचनों के द्वारा परमागम के जानने के उपाय स्वरूप सुश्रूषादि गुणों को प्राप्त होने वाला भद्र मिथ्यादृष्टि जीव यद्यपि अंतरंगमें मिथ्यात्व कर्म के उदय के कारण यथार्थ श्रद्धानसे हीन है अर्थात् उसको पूर्णरूपसे तत्वार्थश्रद्धान नही है तथापि मिथ्यात्व कर्म के मन्द उदय से समीचीन धर्म से द्वेष नहीं करता है। उसमें परमागम को सुनने की इच्छा, गुरुओं के सेवादि गुणों का सद्‌भाव पाया जाता है। इसलिये सम्यग्दृष्टियों के मध्य में प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार को जानने वाले पुरुषों को सच्चे सम्यग्दृष्टियों के समान मालुम होता है। तो फिर यथार्थ सम्यग्दृष्टिकी महिमा का तो कहना ही क्या ?।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारांश यह है कि सच्चे देव के उपदेश से सुश्रूषादि गुणों को प्राप्त होनेवाला श्रद्धान से रहित भद्र मिथ्यादृष्टि जीव भी सम्यग्दृष्टियों के गणना में सामिल होकर सम्यग्दृष्टियों के समान सज्जन पुरुषों के द्वारा माननीय हो जाता है ।।१०।।

इसप्रकार उपदेश देनेवालें तथा सुनने वालों की व्यवस्था को बता कर के अब गृहस्थधर्म को धारण करने वाला पुरुष कैसा होना चाहिये उसको बताते हैं–

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज–
न्नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः ।
युक्ताहारविहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरेत् ।।११।।

अन्वयार्थ–(न्यायोपात्तधनः) न्यायपूर्वक धन कमाने वाला। (गुणगुरून्) गुणों की माता पितादि गुरुवों की तथा सम्यक्त्वादि गुणों में श्रेष्ठ मुनियों की। (यजन्) पूजा करने वाला (सद्गीः) प्रशंसनीय सत्य वचनों को बोलने वाला। (अन्योन्यानुगुणं) परस्पर विरोध रहित। (त्रिवर्गं) धर्म अर्थ और काम इन तीन वर्गों को (भजन्) सेवन करने वाला। (तदर्हगृहिणीस्थानालयः) तीन पुरुषार्थ क योग्य स्त्री ग्राम और घर जिसके है ऐसा (ह्रीमयः) लज्जाशील। (युक्ताहारविहारः) शास्त्रोक्त योग्य आहार तथा विहार करने वाला। (आर्यसमितिः) आर्य पुरुषों की संगति करने वाला। (प्राज्ञः) बुद्धिमान् अर्थात् हिताहित का विचार करन वाला। (कृतज्ञः) दूसरों के द्वारा किये हुये उपकार को मानन वाला। (वशी) इन्द्रियों को वशमें करने वाला। (धर्मविधिं) धर्म की विधि को (शृण्वन्) सुनने वाला। (दयालुः) दुःखी जीवों पर दया करने वाला और (अघभीः) पापों से डरने वाला पुरुष। (सागारधर्मं) गृहस्थधर्म को। (चरेत्) धारण करने योग्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ इस श्लोकमें चरेत् यह विधिलिंग है, इसका अर्थ यह है व्याकरणके नियमसे अर्ह अर्थात् योग्य अर्थमें विधिलिंगका उपयोग किया जाता हैं। जैसे चरितुमर्हतीति चरेत् अर्थात् धारण करने योग्य है अथवा विधि अर्थमें भी सप्तमीका प्रयोग किया जाता है। पूर्व श्लोकमें भद्रपुरुषका वर्णन किया हैं और अब आगे द्रव्य पाक्षिकश्रावकका कथन करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं कि न्यायसे धन कमाना आदि चौदह गुणोंमेंसे समस्त अथवा व्यस्त रूपसे उन गुणोंको धारण करनेवाला पुरुष ही सागारधर्मको धारण करने योग्य होता है।

१—न्यायोपात्तधन- न्यायसे धन कमाना—स्वामिद्रोह, मित्र द्रोह, विश्वासघात, ठगना, चोरी करना आदि निन्दित उपायोंसे धनोपार्जनरहित तथा अपने अपने वर्णोंके अनुसार सदाचार को न्याय कहते हैं। न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना न्यायोपात्त-धन कहलाता है। जो पुरुष न्यायपूर्वक धनोपार्जन करता है वही गृहस्थ धर्म धारण करने योग्य है। क्योंकि गृहस्थोंकी मनोवृत्ति प्रायःकर वित्तोपार्जनमें ही लगी रहती हैं। इसलिये धनेच्छुक मनुष्य यद्वा तद्वा न्याय अन्यायका विचार न करके धनोपार्जन करते हैं उनकी मनोभूमि एकदेशव्रत पालन करनेकी तरफ नहीं झुक सकती है। न्यायोपार्जन किया हुवा धन ही इस लोक और पर लोकमें सुख देनेवाला है। सो ही आचार्योंने कहा है।

सर्वत्र शुचयो धीराः सुकर्मबलगर्विताः।
स्वकर्मनिहितात्मानः पापाः सर्वत्र शंकिताः।

जो पुरुष न्याय और उत्तम कर्मोंके बलसे गर्वित है वे पुरुष सब जगह प्रत्येक स्थितिमें तथा प्रत्येक कार्यमें धीर तथा पवित्र रहते हैं। उनको कहींपर भी किसी प्रकारका भय नहीं होता है। परन्तु जिन्होंने निंद्य तथा नीच कर्मोंसे अपनी आत्माको पतित किया है, वे सब शंकित तथा भयभीत हैं। और भी आचार्योंने कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य.योपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ १ ॥
यांति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यंचोऽपि सहायतां ।
अपंथानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥ २ ॥

अन्यायपूर्वक उपार्जन किया हुवा धन अधिकसे अधिक दश वर्षतक रह सकता है और ग्यारहवें वर्ष लगनेपर मूल सहित नष्ट हो जाता है। न्याय मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको तिर्यंच भी सहायता करता है और अन्यायपूर्वक प्रवृत्ति करनेवालोंका साथ अपना सगा भाई भी छोड-देता है। दूसरेकी तो बात ही क्या है। इसलिये न्यायपूर्वक धनोपार्जनकरना चाहिये।

२ गुणगुरून् यजन्–गुणोंकी, गुरुवोंकी तथा गुणोंमें श्रेष्ठ हैं उनकी पूजा करना।

लोकापवादभीरुत्वं दीनाभ्युद्धरणादरः ।
कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं सदाचारः प्रकीर्तितः ।

लोकापवादसे भयभीत होना, दीनोंके उद्धार करनेमें आदर रखना, कृतज्ञता और उदारता को सदाचार कहते हैं। सज्जनता, उदारता, दानशीलता, गंभीरता और उत्कृष्टभाषणशीलता आदिसे अपना तथा पर का उपकार करना गुण कहलाता है और उन गुणों से युक्त पुरुषों को 'गुणगुरु' कहते हैं। उन गुणों में श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमान, प्रशंसा, नाना प्रकार की सहायतासे सत्कार सेवा आदि करना गुणगुरु पूजा कहलाती है। तथा माता पिता आचार्यादि त्रिकाल वन्दना करना, नमस्कार करना, मन वचन काय से उनकी शुश्रूषा करना भी गुरुपूजा कहलाती है। माता पिता की सेवा करना भी गुरु पूजा कहलाती है–क्योंकि आचार्यों ने कहा है–

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणां ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि ॥१॥

मनुष्यों की उत्पत्ति के समय में जो उनके माता पिता दुःखको सहन कर के उनका उपकार करते हैं, उसका बदला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौ वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता है। इसलिये मातापिता की सेवा करना भी व्यवहार में गुरुपूजा कहलाती है। तथा ज्ञान संयमादिक गुणों से शोभायमान पूज्य गुरुओं की वैयावृत्य करना, उनको नमस्कार करना, हाथ जोडना, उनके सामने आने पर आसन से उठना आदि उपचार विनय के द्वारा उनका सत्कार गुणगुरुपूजा कहलाती है। गुण, गुरु तथा गुणगुरुओं की पूजन करना स्वकीय गुणों के विकास के लिये निमित्त कारण है। क्योंकि जो जिस गुणोंका इच्छुक होता है वही उन गुणों की वा गुणवानों की संगति की उपासना करता है। इसलिये जो सम्यग्दर्शनादि गुणों में तथा गुणवानों में आदर भाव नहीं रखता है, वह अपने गुणों का विकास करने में समर्थ नहीं है।

३ सद्गी:-सत् अर्थात् समीचीन प्रशंसनीय परावर्णवाद कठोर कर्कशादि दोषरहित गी अर्थात् वाणी वचन जिसके हो उसको सद्गी कहते हैं। प्रशंसनीय वचन बोलना भी श्रावक धर्मपालन में कारण है। सो ही लिखा है-

यदिच्छसि वशीकर्त्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्ती निवारय।
परपरिभवपरिवादादात्मोत्कर्षाच्च बध्यते कर्म।
नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोच।

जो तुम एक ही उपाय से सम्पूर्ण संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो दूसरे की निंदारूपी सस्यको चरनेवाली अपनी वाणी रूपी गाय को रोको अर्थात् दूसरों की निंदा मत करो। दूसरे का तिरस्कार तथा उसकी निंदा करने से और अपनी प्रशंसा करने से प्रत्येक भव में नीचगोत्र कर्म का बंध होता है, जो नीच गोत्र अनेक भव में भी नहीं छूट सकता है।

४ अन्योन्यानुगुणं त्रिवर्गं भजन्- परस्पर विरोधरहित तीनों वर्गों का सेवन करना। धर्म अर्थ और काम इन तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं। इन तीनोंका परस्पर विरोध रहित सेवन करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म- आत्माके सम्यग्दर्शनादि गुणोंको धर्म कहते हैं ।

अर्थ- जिस के द्वारा इस लौकिक कार्यों की सिद्धि होती है उसको अर्थ कहते हैं। अथवा वृद्धि, श्रम जमीनको भी अर्थोत्पादक होने से अर्थ कहते हैं ।

काम- पंचेद्रियों के विषय को काम कहते हैं अथवा जिससे पांचों इन्द्रियों की तृप्ति हो उसको काम कहते हैं। इस में काम का कारण अर्थ (धन) है। क्योंकि धन के विना पंचेन्द्रिय सम्बन्धी भोगोपभोग सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। अर्थ में धर्म कारण है, क्योंकि पुण्योदय के विना धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। तथा सत्यता प्रामाणिकता के विना धन को प्राप्ति नहीं होती है। सत्यता सदाचार से आती है और सदाचार का नाम ही धर्म है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है परस्पर विरोध रहित तीनों पुरुषार्थ को सेवन करे। क्योंकि जो मनुष्य अपने धर्म की रक्षा करते हुये अर्थोपार्जन करते हैं, और अपने अपने अर्थानुसार धर्मानुकूल पचेन्द्रिय विषयों को सेवन करते हैं, उनकी प्रवृत्ति धर्म की रक्षा करने से अधार्मिक तथा अर्थ की रक्षा करते हुये विषयसेवन करनेसे दारिद्र्य आदि दोषों से आक्रांत नहीं होती है। इसलिये परस्पर में अविरोध भावसे त्रिवर्ग को सेवन करने वाले पुरुष ही श्रावकधर्म के पालन करने के योग्य कहे गये हैं। और शास्त्रों में भी आचार्यों ने कहा है-

यस्य त्रिवर्णशून्यानि दिनान्यायान्ति यांति च
स लोहकार भस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ।

परस्पर में अविरोध भावसे धर्म अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों के सेवन के विना ही जिसके दिन आते हैं और जाते हैं वह पुरुष लुहार की धोंकनी के समान श्वासोच्छ्वास लेता हुआ भी मरे हुये के समान है अर्थात् धर्म अर्थ और काम के सेवन के विना मनुष्यका जीवन पशुके समान निरर्थक है तथा उसका जीना और नहीं जीना दोनों बराबर हैं। और भी कहा है-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पादमायान्निधिं कुर्यात्पादं वित्ताय खट्वयेत् ।
धर्मोपयोगभोगयोः पादं पादं भर्तव्यपोषणे ।

गृहस्थ अपने द्वारा कमाये हुये धनके चार भाग करे । उसमें एक भाग तो जमा रक्खे । दूसरा भाग धन कमाने के लिये व्यापार में लगावे । तीसरा भाग धर्म तथा अपने उपभोग में खर्च करे । और चौथा भाग अपने कुटुम्ब वा नौकर आदिके पालन पोषण में खर्च करे । अथवा

आयार्द्धं च नियुञ्जीत धर्मे समधिकं ततः ।
शेषेण शेषं कुर्वीत यत्नतस्तुच्छमैहिकं ।

गृहस्थ को अपनी आयका आधे से कुछ अधिक भाग धर्म में खर्च करना चाहिये और बचे हुये शेष धन के द्वारा यत्नपूर्वक इस लोक सम्बन्धि शेष कार्योंको करना चाहिये । क्योंकि इस लोक सम्बन्धी सुख तुच्छ है । इसलिये उसमें अधिक धन का व्यय करना योग्य नहीं है । इसलिये परस्पर विरोध रहित त्रिवर्गो का सेवन करना ही योग्य है क्योंकि जिन पुरुषों के प्रवृत्ति इससे विपरीत है वे पुरुष सांसारिक सुख वा शांतिसे रहित होकर हमेशा नाना प्रकार के संक्लेशों से आतुर रहते हैं; और उस आतुरता के कारण धर्म कर्म से विमुख होकर यथेष्ट रीतिसे न्याय अन्याय का विचार न करके अर्थ वा काम के सेवन में प्रवृत्त होते हैं इसलिये ऐसे पुरुष धर्म के अधिकारी नहीं है ।

१ योग्यस्त्री योग्यस्थान, तथा योग्यआलय– कुलीनता आदि गुणोंसे युक्त योग्य स्त्री, जहाँपर उदार चेता, सज्जन, गुणवान धार्मिक पुरुष रहते हों तथा जहाँपर अर्थोपार्जन की सामग्री हो ऐसा स्थान, और योग्य गृह वगैरह त्रिवर्ग साधन करने में बाह्य कारण है । इसलिये जिसको स्त्री स्थान तथा आलय के निमित्त से किसी प्रकार की आकुलता नही है, प्रत्युत उनसे त्रिवर्ग में सहायता मिलती है ऐसा पुरुष श्रावक धर्म के धारण करने योग्य कहलाता है। क्यों कि मनुष्य जीवन में तथा सृष्टिके ऊपर स्त्री का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक प्रभाव पडता है । इसलिये कुभार्याके निमित्त से अपने जीवन वा संतान के कोमल हृदयपर बुरे संस्कार पडते हैं। जिससे आकुलित मानव शीघ्र त्रिवर्ग के सेवन की तरफ रुचि नहीं कर सकता है इसलिये त्रिवर्ग साधन में योग्य स्त्रीका होना प्रधान कारण है । सीता को प्रस्थान के समय जनक ने शिक्षा दी थी

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता।
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधौ तस्योपचर्या स्वयं।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति ।
प्राज्ञैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा इमे ॥

हे पुत्री ! पति के घर आने पर उनका सत्कार करने के लिये उठकर खडा होना, जो कुछ वो कहें उसको विनय पूर्वक सुनना, उनके आसनपर बैठ जाने पर उनके चरणों में दृष्टि रखना, स्वयं उनकी सेवा करना उनके सोने पर सोना, और उनके उठने के पहले उठना, ये सब विद्वानो ने कुलपुत्रियाँ का धर्म कहा है । जिस प्रकार योग्य स्त्री त्रिवर्ग में प्रधान कारण है उसी प्रकार जिस जिस स्थान में योग्य शासक नहीं है उदार चित्तवाले सज्जन पुरुष नहीं है अर्थोत्पादन के साधन नहीं हैं, सद्वैद्य नहीं, ज्ञान तथा संयम को बढाने वाला वातावरण नहीं है, और धर्म साधन के कारण जिन मन्दिर शास्त्र स्वाध्याय का स्थान नहीं है, ऐसे स्थान में रहने वाले व्यक्ति भी पूर्ण रूपसे त्रिवर्ग को सेवन नहीं कर सकते है । इसलिये योग्य स्त्री के समान योग्यस्थान भी धर्म साधन में कारण हैं । तथा रहनेका मकान भी धर्मसाधन में कारण हैं। क्योंकि जिस मकान में धर्म अर्थ और काम के सेवन करने के अलग अलग विभाग नहीं है, योग्य पडोसी नहीं हो जो हमेशा ग्लानि युक्त रहता है, स्वच्छता से रहित हो, तथा जहांपर त्यागी व्रतियों की आहारदान की व्यवस्था विद्वान पुरुषोंका आगमन आवास न हों, ऐसा मकान भी त्रिवर्ग साधन में उपयुक्त नहीं है । इसलिये योग्य स्थान भी धर्म अर्थ और काम इन तीन वर्ग के साधन में मुख्य कारण है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ ह्रीमयः— स्त्रियों के समान पुरुषोंका भी लज्जा एक भूषण है । क्योंकि लज्जाशील पुरुष ही स्वाभिमान की रक्षा करने लिये समर्थ होता है तथा वही मानव अपकीर्ति के भय से असदाचार में प्रवृत्ति नहीं करता है । लज्जाशील पुरुष ही कितनी ही आपत्ति आनेपर भी अपने स्वाभिमानपर धक्का नहीं आने देता है और अपनी ली हुई प्रतिज्ञा को नहीं छोडता है । वह लोक भय के कारण हमेशा असत्कर्मों से दूर रहता है । उसकी प्रवृत्ति हमेशा कोमल, तथा व्यवहार अत्यंत शोचनीय होता है । परन्तु जिनके परिणामों में लज्जा नहीं है उसको लोकापवादका भय नहीं हैं वह भंडवचन बोलने वाला होता है, अपनी ली हुई प्रतिज्ञापर दृढ नहीं होता है । इसलिये लज्जाशील होना भी धर्मसाधन में एक कारण है ।

७ युक्ताहारविहारः— शास्त्रविहित आहार विहार करनें वाला । सामान्यतया आहार का अर्थ भोजन और विहार का अर्थ गमनागमन करना है । परन्तु युक्त (योग्य) शब्द का विशेषण लगा देने से धर्मशास्त्र तथा वैद्यक शास्त्र कथित आहार विहार करने वाला होना चाहिये । क्योंकि जो धर्मशास्त्र विहित आहार को छोडकर आहार करनेवालोंके भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं होता है । इसलिये जो पदार्थ अभक्ष्य हैं, शरीर को बाधा पहुँचाने वाला है, मदकारक है, अविचारी निन्दनीय पुरुषों के द्वारा बनाया हुवा है, उसका सेवन नहीं करना चाहिये । क्योंकि यद्वा तद्वा आहार करने से मन दूषित होता है । कहा भी है ।

यादृशं भक्ष्यते अन्नं तादृशी जायते मतिः
दीपोपि भक्ष्यते ध्वांतं कज्जलं च प्रसूयते ।

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन । जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी, प्राणी जैसा अन्न खाता है वैसा मन होता है जैसे दीपक अन्धकार दूर करता है (खाता है) तो उससे कज्जल उत्पन्न होता है । अयोग्य आहार करने से स्वास्थ्य का घात होता है तथा शारीरिक शक्ति का और धर्मप्रवृत्तिका नाश होकर चित्त की प्रवृत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुचित विषयो में लग जाती हैं। क्योंकि जिव्हालोलुपी मानव विषयलम्पटी बन जाता है और विषयलम्पटी अर्थ अनर्थ धर्माधर्म का विचार नहीं कर सकता है। जिस प्रकार योग्य आहार श्रावक धर्म में प्रधान कारण है उसी प्रकार योग्य विहार भी श्रावकधर्म में मुख्य कारण हैं। क्योंकि यद्वा तद्वा निर्लज्ज होकर इधर उधर विचरण किया करते हैं। वे अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं। उनसे अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं होता है।

८ आर्यसमितिः– जिनकी संगति से सम्यक्त्वादि गुणों का विकास हो, जगत में अपनी प्रशंसा हो तथा आत्मप्रतिष्ठा बढती हो ऐसे सज्जन सदाचारी पुरुषों की संगति को आर्यसंगति कहते हैं। सज्जन सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला तथा उनके सहवास में रहनेवाला पुरुष ही श्रावकधर्म का पालन कर सकता है। उक्तं चः–

यदि सत्संगतिनिरतो भविष्यसि भविष्यसि।
अथ सज्ज्ञानगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि।

अर्थ– यदि तुम सज्जन पुरुषों के सहवास में रहोगे उनकी संगति में लीन होवोगे तो अवश्य ही ज्ञान की गोष्ठी में पडोगे अर्थात उत्तमज्ञान को प्राप्त करोगे। इससे विपरीत दुराचारी जुवारी धूर्त भंडवचन बोलने वाले भाट आदि पुरुषोंकी संगति से सदाचार रूप श्रावकधर्म का नाश होता है। इसलिये आर्यसंगति भी त्रिवर्ग साधन में एक कारण है।

९ प्राज्ञः– ऊहापोहात्मक मतिज्ञान के अतिशय को धारण करनेवाले को प्राज्ञ कहते हैं। सो ही कहा है—

इदं फलमियं क्रिया करणमेतदेषक्रमो।
व्ययोऽयमनुषङ्गजं फलमिदं दशैषा मम।
अयं सुहृदयं द्विषत्प्रयतदेशकालाविमा-
विति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधो नेतरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह इस कार्यका फल है, यह इसकी क्रिया है, यह इसका साधन है, यह क्रम है, इतना इसमें खर्च है, यह इस कार्यसे होने वाला लाभ है, यह मेरी अवस्था है, यह मेरा मित्र है, यह मेरा शत्रु है और यह देश है, क्षेत्र है, यह काल है, इस प्रकार का विचार करके कार्य में प्रवृत्ति विद्वान ही करते हैं, मूर्ख लोग नहीं कर सकते। अर्थात् हेयोपादेय का विचार ज्ञानी को ही होता है।

उक्तं च–

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यः किन्नु सत्पुरुषैरिति।

मनुष्यों को हमेशा अपने आचरित कार्योंका अवलोकन करना चाहिये और फिर विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन कौन से कार्य तो पशुके समान किये और कौन कौन से कार्य मनुष्य के समान किये। इस प्रकार हिताहितका विचार करने वाले को प्राज्ञः कहते हैं।

१० कृतज्ञः–दूसरों के द्वारा किये हुये उपकार को मानता है. कृतघ्न नहीं बनता है, उपकार को नहीं भूलता है वह कृतज्ञ कहलाता है। सज्जन पुरुष पहिले तो किसीसे उपकार कराते नही और यदि कोई उपकार करते तो उसका उपकार कभी भूलते नहीं है। कृतज्ञता यह महान गुण है इससे सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धी होती है, जगतको वश में करने के लिये यह अमोघमंत्र है। उक्तं च–

विधित्सुरेनं तदिहात्मवश्यं, कृतज्ञतायाः समुपैहि पारं।
गुणैरुपेतोऽप्यखिलैः कृतघ्नः, समस्तमुद्वेजयते हि लोकं।

अर्थ–यदि तुम सम्पूर्ण जगत को अपने वश में करना चाहते हो तो प्रथम कृतज्ञताकी सीमा को प्राप्त हो अर्थात् कृतज्ञ बनो। क्योंकि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होनेपर भी कृतघ्नी समस्त जगतको उद्वेजित करता है, पीडित करता है। इसलिये कृतज्ञता भी श्रावक धर्ममें प्रधान गुण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११ वशी-जो इष्ट पदार्थो में आसक्ति न करता हुवा और विरुद्ध पदार्थों में प्रवृत्ति न करता हुवा, बाह्य मे स्पर्शनादि पचेन्द्रिय विषयों के विकारका और अंतरंग काम क्रोध मद मोह लोभादि शत्रुओंका निरोध करते हैं अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करते हैं उनको वशी कहते हैं। जो बाह्य मे पंचेन्द्रियके विषयोंको रोकने के साथ में काम क्रोधादि अंतरंग विकारों को भी रोकता है वही वस्तुतः वशी कहलाता है, केवल ख्याति पूजा लाभादिक के निमित्त इन्द्रियों के विषयों को रोकनेवाला वशी नहीं है। पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयनिग्रह तथा काम क्रोधादिकका निग्रह करने वाला ही श्रावकधर्म धारण कर सकता है। इनके वशीभूत होने वाला श्रावकधर्म का पालन नहीं कर सकता है। इसलिये वशी (इन्द्रियोंको वशमें करना) होना भी श्रावक का गुण है।

१२ धर्मविधिको सुननेवाला-धर्म का कारण धर्मविधि है अर्थात् मोक्ष और स्वर्गादि सुख के कारण को धर्मविधि कहते हैं और युक्ति आगमसे सिद्ध धर्मके स्वरूप को जो प्रतिदिन सुनता है उसको धर्मकी विधि को सुननेवाला कहते हैं। धर्म की विधि का सुननेका अधिकारी कौन है? उसका वर्णन आत्मानुशासन में लिखा है।

भव्यः किं कुशलं ममेति विमृशन्दुःखाद्भृशं भीतवान्।
सौख्येषी श्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम्।
धर्मं कार्यकरं दयागुणमयं, युक्त्यागमाभ्यां स्थितं।
गृह्णन्धर्मकथाश्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः॥

जो भव्य हो, कौनसे कार्य में मेरा कल्याण होगा, इस बात का अर्थात् अपने हित का विचार करनेवाला हो, दुःखों से अत्यन्त डरनेवाला हो, सुखको चाहने वाला हो, श्रोतापने के गुणों से युक्त हो, अर्थात् शास्त्रों के सुनने आदि में उत्तम बुद्धि रखने वाला हो, युक्ति तथा आगम से सिद्ध और सुख को करने वाले ऐसे दया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणमयी धर्म को सुन करके तथा अच्छीतरह से विचार करके उसको ग्रहण करने वाला हो और जो दुराग्रह से रहित हो वही शिष्य ही, पुरुष ही धर्मकथा सुनने का अधिकारी माना गया है।

१३ दयालुः–दुःखी प्राणियों के दुःखनाश करने की इच्छा को दया कहते हैं। और जिनके परिणामों मे दया हो अर्थात् जो दया युक्त हो उसको दयालु कहते हैं। 'धर्मस्य मूलं दया' ऐसा शास्त्र वचन है। इसलिये दया को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। सो ही कहा है–

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वीत मानवः॥

जिस प्रकार तुमको अपना प्राण प्रिय है उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों को भी अपने अपने प्राण प्रिय हैं, इसलिये मनुष्यों को अपने समान ही सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

धर्म के सार को सुनो तथा सुनकर उन पर विचार करो। क्योंकि सम्पूर्ण धर्म का सार यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल है उन कार्यों को दूसरों के प्रति मत करो अर्थात् दूसरों के द्वारा किये गये जिन कार्यों से तुमको दुःख होता है उन कार्यों को तुम दूसरों के प्रति भी मत करो।

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानन्नुवर्तेत शक्तितः।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाः॥

अर्थः–जो आजीविकाके अभावसे रोग तथा शोकादिकसे दुःखी हैं ऐसे प्राणियों की सदैव अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करनी चाहिये। और छोटे छोटे कीडे मकोडे चिंटी आदि सम्पूर्ण जीवों को भी सदैव अपने समान ही देखना चाहिये। इसलिये दयालु होना भी श्रावकधर्म में एक मुख्य गुण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४ अघभीः—दृष्ट अदृष्ट (प्रत्यक्ष और परोक्ष) अपाय-स्वरूप फल देने वाले चोरी आदि मदिरापानादि पाप कर्म से भय-भीत होनेवाले को पापभीरू कहते हैं। अर्थात् अघ = पाप से डरने वाला अघभी कहलाता है। इन गुणोंको धारण करनेवाला श्रावक-धर्म को पालन कर सकता है।

इस प्रकार सक्षेप से इस ग्रन्थ में श्रावक के विशेषणों का वर्णन किया। विशेष रूप से वर्णन ज्ञानदीपिका नामक धर्मामृत की पंजिका में किया है, उसमें देखना चाहिये ।११।

अब मन्दबुद्धि वाले शिष्यों के सुखस्मृतिके लिये सम्पूर्ण गृहस्थधर्म का संग्रह करते हैं।

पूर्ण सागारधर्म

सम्यक्त्वममलममलान्यणुगुणशिक्षाव्रतानि मरणान्ते।
सल्लेखना च विधिना पूर्णः सागारधर्मोऽयम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अमलं) शंकादि दोषरहित निर्मल (सम्यक्त्वं) सम्यग्दर्शन (अमलानि) निरतिचार (अणुगुणशिक्षाव्रतानि) अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रत (च) और (मरणान्ते) अन्तसमयमें (विधिना) विधिपूर्वक (सल्लेखना) सल्लेखना (अयं) यह (पूर्ण) पूर्ण (सागारधर्मः) गृहस्थ धर्म है।

भावार्थ-शंका, कांक्षा, विचिकित्सा मूढदृष्टि अनुपगूहन अस्थितीकरण अवात्सल्य अप्रभावना ये आठ दोष, ज्ञानका मद कुल-आदिका गर्व करना आदि आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन इन पच्चीस दोषों से रहित सम्यग्दर्शन, तथा निरतिचार पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रतका पालन करना और मरण समयमें शास्त्रोक्त विधिसे सल्लेखना धारण करना यह श्रावकों का पूर्ण धर्म है। इस श्लोक में च शब्द का प्रयोग है। उससे शेष बाकी बचे देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयम तप दानादि श्रावक के धर्मों का ग्रहण किया है अर्थात् यह सब इसी में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये दान पूजादि को पृथग् ग्रहण नहीं किया है। मरणान्ते सल्लेखना इस पद से यह अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

आवीचीमरण, कषायमरण, तद्भवमरणादि १७ प्रकारके मरण शास्त्रो में कहे गये है। जो प्रतिसमय आयु कर्मके निषेक उदय में आकर नष्ट होते है उसको आवीचिमरण कहते हैं। और पूर्ण वर्त्तमान आयुका नाश होकर दूसरे भवकी प्राप्ति होना उसको तद्भवमरण कहते हैं। यहाँ पर मरणान्ते इस शब्द से तद्भव मरण ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि आवीचिमरण हर समय प्रत्येक प्राणि के निरंतर होता है। सल्लेखना = सत् सम्यक् प्रकार से ख्याति पूजा लाभादि अपेक्षा रहित लेखना = बाह्याभ्यन्तर तपके द्वारा शरीर और कषायों को कृश करना सल्लेखना कहीं जाती है। उसकी विधि सतरहवे अध्याय में कही जायगी ॥१२॥

असयमी सम्यग्दृष्टी के भी कर्मक्लेश का अपकर्षण अर्थात् नाश होता है यह बताते हैं।

भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया।
हेयं वैषयिकं सुखं निजमुपादेयं त्विति श्रद्दधत्।
चौरो मारयितुं धृतस्तलवरेणेवाऽऽत्मनिन्दादिमान्।
शर्माक्षं भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघैः ॥१३॥

अन्वयार्थ- (तलवरेण) कोतवाल के द्वारा (मारयितुं) मारने के लिये (धृतः) पकडा गया (चौरः) चोर के (इव) समान (भूरेखादिसदृक्कषायवशगः) पृथ्वी की रेखादि के समान अप्रत्याख्यानावरणादि विविध कषायों के वश में होकर (विश्वदृश्वाज्ञया) सर्वज्ञकी आज्ञासे (वैषयिकं) विषयसम्बन्धी (सुखं) सुख को (हेयं) छोडने योग्य है (तु) तथा (निजं) आत्मीय (सुखं) सुखको (उपादेयं) ग्रहण करने योग्य है (इति) इसप्रकार (श्रद्दधत्) श्रद्धान करता हुवा (आत्मनिन्दादिमान्) अपनी आत्मा की निन्दा गर्हा करने वाला (यः) जो अविरत सम्यग्दृष्टि (आक्षं) इन्द्रियसम्बन्धी (शर्म) सुखको (भजते) सेवन करता है, (अपि)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और (परं) त्रस स्थावर जीवों को (रुजति) दुःख देता है (सः) वह अविरत सम्यग्दृष्टि प्राणी (अपि) भी (अघैः) पापोंके द्वारा (न उत्तप्यते) संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है अर्थात् मिथ्यादृष्टि के समान पापका भागी नहीं होता है ।।१३।।

भावार्थ-जिस प्रकार कोतवाल के द्वारा मारने के लियें पकडा हुवा चोर चोरी बुरी समझता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ भगवान की आज्ञासे अर्थात् वीतराग प्रभुने सांसारिक सुखों को छोडनें योग्य पापका कारण बताया है, भगवान अन्यथा (असत्य) वादी नहीं है, इसप्रकार भगवान के वचनों पर दृढ विश्वास होने से अनुभूयमान इष्टकामिन्यादि विषयों से उत्पन्न होने वाले विषय सुख विनाशीक है, दुःख के कारणभूत कर्मबन्धके कारण है, इसलिये छोडने योग्य है, और अविनाशी आत्मीय सुख उपादेय है तथा रत्नत्रय के उपयोग से आत्मा में निज सुख उत्पन्न करने योग्य है। इस प्रकार श्रद्धान अर्थात् निश्चयसे सम्यग्दर्शन धारण करने वाला होता हुवा, हाथमें दीपक रहते हुये भी अन्धकूप में गिरने वाले मुझको धिक्कार है, इस प्रकार अपनी आत्मा की निंदा और "हे भगवन् उन्मार्गपर चलने वाला यह प्राणी दुर्गति के दुःखो को कैसे भोगेगा" इस प्रकार गुरु की साक्षी पूर्वक-गुरुके सामने गर्हा करता हुवा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वी के रेखादि के समान अप्रत्याख्यानावरणादिक बारह क्रोधादिक कषायों के वशमें होकर अर्थात् चारित्रमोहनीय की परतंत्रता से इन्द्रियो से उत्पन्न होनेवाले सुखों का सेवन करता है तथा त्रस स्थावर जीवों को पीडा देता है-उनकी हिंसा करता है तो भी वह अविरत सम्यग्दृष्टि जीव पापोंके द्वारा अथवा बहुत से दोषों के द्वारा उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है। इसका सारांश यह है कि-जैसे कोतवाल के द्वारा मारने के लिये पकडा हुवा तस्कर खरारोहण कृष्णमुख करना आदि अनेक प्रकार की जो जो विड-म्बना कोतवाल कराता है उन सब चेष्टाओं को अयोग्य जानता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुवा भी करता है। उसी प्रकार चारित्र मोह के वशीभूत हुवा अविरत सम्यग्दृष्टि भावहिंसा, द्रव्यहिंसा आदि जो जो कार्य चारित्र मोहनीय कराता है उनको अयोग्य जानता हुवा भी करता है क्योंकि कर्मोंको उदयकाल में उनको रोकना दुर्निवार है। फिर भी मिथ्यादृष्टि के समान दुःखभाक् नहीं होता है।

न दुःखबीजं शुभदर्शनक्षितौ कदाचन क्षिप्रमपि प्ररोहति।
सदाप्यनुप्तं सुखबीजमुत्तमं कुदर्शने तद्विपरीतमिष्यते।

'सम्यग्दर्शनरूपी भूमि में यदि दुःखके बीज पड भी जावे तो भी वे कभी भी शीघ्र अंकुरित नहीं होते हैं। और सुखके बीज विना बोये भी हमेशा उत्पन्न होते हैं। परन्तु मिथ्यादर्शन रूपी भूमि में उससे विपरीत फल होता है अर्थात् मिथ्यादर्शनरूपी भूमिमें सुखके बीज बोनेपर भी उत्पन्न नही होते हैं और दुःख के बीज विना बोये उत्पन्न होते हैं। इसलिये यह निश्चित हुवा कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी जिसने पहिले मिथ्यात्व अवस्था में आयुका बंध नहीं किया है तो वह स्वर्ग का देव पद तथा चक्रवर्ती पद तीर्थंकर पद आदि सुमानुषत्वादि पर्याय को छोडकर सम्पूर्ण संसार के दुःख–मय कर्मों का नाश कर देता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मानव पर्याय वा विमानवासी देवपर्याय को छोडकर और पर्यायो में जन्म धारण नहीं करता है। परन्तु जो बद्धायुष्क है अर्थात् जिसने मिथ्यात्व अवस्था में नरक तिर्यंच आयुका बन्ध किया है, पश्चात् सम्यग्दर्शन ग्रहण किया है ऐसे जीव नरक में जायंगें तो भी प्रथम नरक की जघन्य या मध्यम स्थिति को प्राप्त होंगे, उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त नहीं होंगें। दूसरे तीसरे नरक में सम्यक्त्व सहित जीव उत्पन्न नहीं हो सकता है। और प्रथम नरक में उत्कृष्ट स्थितिवाला नहीं हो सकता है।

दुर्गतावायुषो बंधात्सम्यक्त्वं यस्य जायते।
गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाप्यल्पतरा स्थितिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नरकादि दुर्गति की आयु बन्धन के बाद में जिसको सम्यक्त्व हुवा है यद्यपि उसके गतिच्छेद तो नहीं होता है अर्थात् नरक जाना ही पडता है फिर भी स्थिति अल्प हो जाती है। जैसे श्रेणिक राजाने मिथ्यात्व अवस्था में सातवे नरक की उत्कृष्ट तेतीस सागरकी आयु का बन्ध किया था परन्तु सम्यक्त्व होने के बाद में तेतीस सागर की आयु का नाश कर प्रथम नरक में ८४ हजार वर्ष की आयुवाला नारकी हुवा। सम्यग्दृष्टि तिर्यंच में जायेगा तो भोगभूमि में जायेगा, कर्मभूमिया तिर्यंच नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि के बहुत से दुःखोंका उपरम हो जाता है। अतः जबतक संयम की प्राप्ति न हो तबतक संसार भीरु सम्यग्दृष्टि को निरनंर सम्यग्दर्शन की आराधना में तत्पर रहना चाहिये अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये। मिथ्यात्व का परित्याग करना चाहिये। सो ही कहा है।

> जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं ।
> तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः ।
> अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधाऽस्ते ।
> क्षुद्व्यावृत्त्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ।।

हे देव! भव्यजीवों को जन्म मरण रूपी दुःखों के नष्ट करने वाले आपके चरण कमलों का ही सेवन करना चाहिये। यदि कदाचित् आपके चरणकमल प्राप्त न हो सके तो फिर वे भले ही स्वच्छन्दता पूर्वक आचरण करे। किन्तु उनको कुदेवों का सेवन नहीं करना चाहिये। क्योंकि संसार में सुलभ जो अन्न है उस अन्न को ही सब लोग खाते हैं। यदि उस अन्न का मिलना दुर्लभ हो जावे तो वे भूखे ही बैठे रहते हैं। कारण कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो कि क्षुधा को दूर करने के लिये विषको खावेगा।

भावार्थ- जिनेन्द्र भगवान के चरण कमल ही सेवन करने के योग्य है। अतः उनका ही सेवन करना चाहिये। यदि वे न मिले तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी सेवा के विना तो रहना अच्छा है, किन्तु कुदेवों का सेवन करना अच्छा नहीं है क्योंकि सब लोग अन्न को ही खाते है। यदि अन्न नहीं मिले तब क्या विष खाना चाहते हैं। इस श्लोक म नोत्तप्यते सोऽप्यघैः इस से यह सूचित है कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी पापोंके द्वारा अधिक संक्लेशित नहीं होता है, तो फिर जिन्हों ने महाव्रत या अणुव्रत धारण किये हैं उनका तो कहना ही क्या, वह तो कभी भी दुःखभाग् नहीं होवेंगे ।।१३।।

इस समय धर्म और सुख के समान यश भी चित्त को प्रसन्न करने वाला है, इसलिये सज्जन पुरुषों को यश भी उपार्जन करना चाहिये ऐसा दिखाते हैं--

धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः।
केप्येकशो जन्म विदुः कृतार्थम् ।
अन्ये द्विशो विद्म वयं त्वमोघा
न्यहानि यान्ति त्रयसेवयैव ।।१४।।

अन्वयार्थ- धर्मं = धर्म (यशः) यश (च) और (शर्म) सुखको (सेवमानाः) सेवन करने वाले (केऽपि) कोई मानव (एकशः) तीनों में से किसी एक के सेवन से (जन्म) अपने जन्मको (कृतार्थं) सफल (विदुः) मानते हैं। और (अन्ये) कोई दूसरे पुरुष (द्विशः) तीनो में से किन्ही दो के सेवन से (जन्म) अपने जन्मको (कृतार्थं) कृतार्थ (विदुः) मानते हैं। (तु) किन्तु (वयं) हम सब तो (त्रय) तीनों के (सेवया) सेवने से (एव) ही (यान्ति) जानेवाले (अहानि) दिनोंको (अमोघानि) सफल (विद्मः) मानते हैं।

भावार्थ- संसारी प्राणी भिन्न भिन्न रुचिवाले होते है एक सी रुचि किसी की भी नहीं होती है, इसलिये इस संसार में कोई यश और सुख को छोडकर केवल धर्म के सेवन से ही अपने मानव जन्म की सफलता मानते हैं। और कोई पुरुष धर्म तथा सुखको छोडकर केवल यशकी सिद्धि से ही मनुष्यजन्मको सफल मानते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई पुरुष धर्म और यश को छोडकर केवल सुख के सेवन से ही मानव जन्म की कृतार्थता मानते हैं । तथा लोक व्यवहार के अनु-सार चलते हुये अपने को शास्त्रों का ज्ञाता मानने वाले कोई पुरुष सुख को छोडकर केवल धर्म अथवा यश के द्वारा ही अपने को कृतार्थ मानते हैं और कोई पुरुष धर्म को छोडकर केवल सुख अथवा यश की सिद्धि द्वारा ही अपने मनुष्यजन्मको सफल मानते है । किन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि लौकिक व्यवहार तथा शास्त्रों को जानने वाले पुरुषों को सन्तोषित करने वाले हमलोग तो धर्म, यश और सुख इन तीनों को सेवन करने से व्यतीत होने वाले मनुष्य जन्मसंबंधि दिनों को ही सफल मानते हैं । इस श्लोक म त्रयसेवयैव, इस में जो एव कार शब्द दिया गया है उससे यह सूचित होता है कि धर्म यश और सुख इन तीनों के सेवन से ही मनुष्यजन्म की सफलता हो सकती है। एक एक के या दोके सेवन करने से नहीं हो सकती है ।।१४।।

आगे सम्यक्त्व की प्राप्ति होनेपर भी यदि कालादि लब्धि के लाभ का अभाव होने से संयम की सामग्री का अभाव हो तो (मुनिपद धारण करने की शक्ति न हो तो) संयतासयत पद तो अवश्य धारण करना चाहिये इस बात को बताते हैं---

मूलोत्तरगुणनिष्ठामधितिष्ठन्पंचगुरुपदशरण्यः ।
दानयजनप्रधानो ज्ञानसुधां श्रावकः पिपासुः स्यात् ।।१५।।

अन्वयार्थ-(पंचगुरुपदशरण्यः)पंच परमेष्ठो के चरणों की ही है शरण जिसके (दानयजनप्रधानः) दान और पूजा है प्रधान जिसके (मूलोत्तरगुणनिष्ठां) मूलगुण और उत्तर गुणों को (अधितिष्ठन्)पालनेवाला (ज्ञानसुधां)ज्ञानरूपी अमृतका (पिपासुः) पीनेवाला (श्रावकः) श्रावक (स्यात्) होता है ।

भावार्थ- श्रावक किसको कहते है-श्रुणोति गुर्वादिभ्यो धर्मं इति श्रावकः जो गुरुवों से धर्म सुने उसको श्रावक कहते हैं । वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक कैसा होता है उसका आचरण कैसा है इसका वर्णन इस श्लोक में किया है। सामान्य रूपसे श्रावकों के गुणों के दो भेद है— एक मूलगुण दूसरा उत्तरगुण । जो गुण उत्तर गुणोंकी उत्पत्ति में कारण होते हैं तथा जो संयम को चाहने वाले पुरुषों के द्वारा सबसे पहिले धारण किये जाते हैं उनको मुलगुण कहते है और जो मूलगुणों के बाद में पाले जाते है उनको उत्तर गुण कहते हैं। अथवा जो मूलगुणों की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं, इसलिये भी उत्तर गुण कहलाते हैं। तीन मकार पांच उदुम्बर फल का त्याग करना अष्ट मूलगुण है और पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इनका पालन करना गुणव्रत कहलाता है। उत्तरगुण यह एकदेश संयम का भेद है। जो इन मूलगुण और उत्तरगुणोंका ऐहिकसुख की अपेक्षा न करके निराकुलता से पालन करता है। और अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधु ये पंच परमेष्ठी कहलाते हैं, उनके चरणों की शरण है जिसके अर्थात् पंचपरमेष्ठीपर ही जिनकी दृढ भक्ति है वा पंचपरमेष्ठी के चरणोमें ही अपने दु:ख दूर करने के लिये अपनी आत्मा के समर्पण करने में योग्य समझता है, दान यजन प्रधान—पात्रादानादि चार प्रकार के दान को तथा नित्यमहादि पांच प्रकार की पूजाओं को प्रधान रूपसे करता है। क्योंकि दान और पूजा यह गृहस्थ का मुख्य धर्म है। रयणसार में कुन्दकुन्दाचार्य नें लिखा है—

दाणं पूजा मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मं ण तं विणा तहा सोवि ॥

मुनियों के लिये ध्यानाध्ययन मुख्य है। ध्यान और अध्ययन के विना मुनि मुनि नहीं हैं। उसीप्रकार दान और पूजा यह गृहस्थ का मुख्य कर्तव्य है। और भी कहा है—

ध्यानेन शोभते योगी संयमेन तपोधनः।
सत्येन वचसा राजा गेही दानेन शोभते।

ध्यान के द्वारा योगी, संयमके द्वारा तपस्वी, सत्यवचन के द्वारा राजा और दान के द्वारा गृहस्थ शोभित होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रावक के दान और पूजन यह मुख्य कार्य है। तथा आजीविका के उपायभूत अन्य असि मसि आदि षट् कर्म गौण है। क्योंकि आत्मानुशासन में लिखा है—

आयुः श्रीवपुरादिकं यदि भवेत् पुण्यं पुरोपार्जितं।
स्यात्सर्वं न भवेन्न तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि।
इत्यार्याः सुविचार्य कार्यकुशलाः कार्येऽत्र मन्दोद्यमा।
द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्ते तराम्॥

यदि पूर्वजन्म में पुण्य उपार्जन किया है तो इस भव में भी दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सुन्दर, निरोगशरीर आदि सम्पूर्ण सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती हैं और यदि पूर्वभव में पुण्य उपार्जन नहीं किया है तो अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी इस भव में उक्त सांसारिक सुखों की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। इस प्रकार कार्य करने में कुशल सज्जन पुरुष विचार करके इस लोक सम्बन्धी कार्यों में जो मन्द उद्यम करते हैं, थोडा प्रयत्न करते हैं। किन्तु आगामी काल में बहुत सुखों की प्राप्ति हो इसके लिये शीघ्र ही तथा प्रीतिपूर्वक सदैव अधिक प्रयत्न करते रहते हैं। अर्थात् सज्जन पुरुष पूजन व दानादिक धार्मिक कार्यों को मुख्य रूप से करते रहते हैं और आजीविका के उपायभूत कृष्यादिक को गौण रूप से करते हैं।

इसलिये श्रावक को दान और पूजन इन दोनों आवश्यक कर्तव्य कर्मों को प्रधान रूप से करना चाहिये। तथा जिस रीति से पूजनादिक धार्मिक कार्यो में बाधा न आवे इस रीति से दान पूजनादि के साधनभूत कृष्यादिक कर्मों को भी गौण रूपसे करना चाहिये। ज्ञानसुधां पिपासुः-स्व पर का भेद ज्ञान अर्थात् मैं कौन हूँ? दृष्टिगोचर होने वाले बाह्य पदार्थ क्या है? इन का स्वरूप क्या है? मैं चैतन्य अनंत ज्ञान दर्शन सुखादि का भोक्ता अविनाशी चिन्मय ज्योति और यह दृष्टिगोचर होने वाले शरीरादिक बाह्य पदार्थ मेरे से भिन्न हैं। इस प्रकार स्वपरान्तर भेदज्ञानरूपी अमृत का पिपासु (उपयोग करने की इच्छा करने वाला) श्रावक—देशसंयमी वा संयतासंयत होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो तसवहादु विरदो अविरदओ तह य थावरवहादो ।
एक्क समयम्हि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई ।

जो त्रस घात का तो त्यागी है और स्थावरघात का त्यागी नही है इसलिये एक समयमें ही त्रिरताविरत कहलाता है। इन गुण विशिष्ट मानव श्रावक कहलाता है।

इस प्रकार पंचम गुणस्थान का निर्देश कर के उस गुणस्थान में होने वाले विकल्पोंका तथा भाव और द्रव्य रूप से ग्यारह स्थानों के उपासक के मध्य में किसी एक पद का धारण करने वाले के सम्यग्दर्शन की विशुद्धि तथा महाव्रत के परिपालन की इच्छा यथा शक्ति जो प्राप्त करता है उसकी प्रशंसा करते हैं–

रागादिक्षयतारतम्यविकसच्छुद्धात्मसंवित्सुख ।
स्वादात्मस्वबहिर्बहिस्त्रसवधाद्यंहोव्यपोहात्मसु ।
सद्दृग्दर्शनिकादिदेशविरति थानेषु चैकादश–
स्वेकं यः श्रयते यतिव्रतरतस्तं श्रद्दधे श्रावकम् ॥१६॥

अन्वयार्थ–(अबहिः) अंतरंग में (रागादिक्षयतारम्यविकसच्छुद्धात्मसंवित्सुखस्वादात्मसु) रागादि के क्षय की हीनाधिकताके अनुसार प्रगट होनेवाली आत्मानुभूतिसे उत्पन्न सुख का उत्तरोत्तर अधिक अनुभव होना ही है स्वरूप जिन्हों को ऐसे (च) और (बहिः) बाह्यमें (त्रसबधाद्यंहोव्यपोहात्मसु) त्रस जीवोकी हिंसादि पापोंसे विरक्ति है जिन्होंमें ऐसे (एकादशसु) ग्यारह प्रकारके (दर्शनिकादिदेशविरतिस्थानेषु) दर्शनिकादिक देशविरत पंचम गुणस्थान के स्थानोमें (यः) जो (सद्दृक्) सम्यग्दृष्टि पुरुष (यतिव्रतरतः) मुनियों के व्रतोमें अनुरक्त (एकं) एक भी स्थानको (श्रयते) स्वीकार करता है (तं) उस (श्रावकं) श्रावकका (श्रद्दधे) मै अभिनन्दन करता हूँ

भावार्थ–प्रतिमाओंका अंतरग स्वरूप और बाह्य स्वरूपका वर्णन इस श्लोकमें किया गया है। क्योंकि व्रत बाह्य और अंतरंग के भेदसे दो प्रकारके होते हैं। रागद्वेष और मोहके सर्व घाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पर्द्धकोंके उदयाभावी क्षयकी तथा देशघाति स्पर्द्धकों के उदयकी हीनाधिकताके अनुसार व्यक्त होने वाली निर्मल चिद्रूप आत्मानुभूती से उत्पन्न होने वाले सुखका अनुभव अर्थात् स्वसंवेदनके स्वका अनुभव तो प्रतिमाओं का अंतरंग स्वरूप है और मन वचन कायसे रागद्वेष के कार्यभूत स्थूल त्रस हिंसादिक पांचों पापोंका देव शास्त्र गुरु तथा धर्म की साक्षी पूर्वक त्याग करना प्रतिमाओं का बाह्य स्वरूप है। इस प्रकार अंतरंग और बहिरंग स्वरूप से युक्त देशव्रत नामक पञ्चम गुणस्थान के दार्शनिक व्रतिक सामायिक आदि ग्यारह प्रतिमाओंमें से जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हिंसादिक पांच पापोंका सर्वथा त्यागरूप मुनियों के धर्म में अनुरक्त होकर के अपनी शक्ति अनुसार क्रमका भंग न करके किसी एक स्थान को अर्थात् किसी एक प्रतिमा को धारण करता है उस पुरुष को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। वही पुरुष अपने कर्तव्य कर्मों का भली प्रकार से पालन करता है ऐसा मैं मानता हूँ।

इस श्लोक में जों सम्यग्दृष्टि व्रती के लिये यतिव्रतरतः यह विशेषण दिया गया है उसका यह अभिप्राय है कि जैसे प्रासाद के ऊपर कलश चढाया जाता है वैसे ही श्रावक धर्म रूपी महल के ऊपर मुनिधर्म रूपी कलश चढाना चाहिये। क्योंकि जैसे कलश के विना महल की शोभा नहीं उसी प्रकार मुनिधर्मरूपी कलश के विना श्रावक धर्म की शोभा नही है। इसलिये जो जिस धर्म वा वस्तु का इच्छुक होता है उसका उसमें अनुराग होता ही है। जैसे मोदक का इच्छुक बालक का मोदक में अनुराग। जिसका मुनिपद में अनुराग नहीं है वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है। सारांश यह है कि श्रावकधर्म के पालन के अनन्तर अवश्य ही मुनिधर्म को धारण करना चाहिये। क्योंकि मुनिधर्म में अनुरागी होने से ही श्रावक धर्म के धारण करने की सार्थकता सिद्ध हो सकती है अन्यथा नही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे दर्शनिक आदि ग्यारह प्रकारके श्रावकोंका स्वरूप कहते हैं–

दृष्टया मूलगुणाष्टकं व्रतभरं सामायिकं प्रोषधं ।
सचित्तान्नदिनव्यवायवनितारम्भोपधिभ्यो मतात् ।
उद्दिष्टादपि भोजनाच्च विरतिं प्राप्ताः क्रमात्प्राग्गुण- ।
प्रौढया दर्शनिकादयः सहभवन्त्येकादशोपासकाः ॥१७॥

अन्वयार्थ- (क्रमात्) क्रमसे (प्राग्गुणप्रौढया) पूर्व पूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणोंकी प्रकर्षता के (सह) साथ साथ (दृष्टया) सम्यग्दर्शन सहित (मूलगुणाष्टकं) अष्टमूल गुणों को (व्रतभरं) निरतिचार पंचाणुव्रतको (सामायिकं) सामायिक को (प्रोषधं) प्रोषधोपवास को (च) और (सचित्तात्) सचित्तसे (दिनव्यवाय-वनितारम्भोपधिभ्यः) दिवा मैथुन, स्त्री, आरंभ, परिग्रहसे (च) तथा (मतात्) अनुमतिसे (उद्दिष्टात्) उद्दिष्ट (भोजनात्) भोजन से (अपि) भी (विरतिं) विरक्ति को (प्राप्ताः) प्राप्त होने वाले (दर्शनिकादयः) दर्शनिकादि (एकादशः) ग्यारह प्रकार के (उपासकाः) श्रावक (भवन्ति) होते हैं ।

भावार्थ- प्रतिमाओं के ग्यारह भेद है। उनका नाम इस श्लोक में निर्दिष्ट किया गया है । अनादि कालसे जीवों के विषय वासनाओं का अभ्यास पडा हुवा है इसलिये यह जीव प्रायःकर सहसा एक साथ असंयम को छोडकर ग्यारह प्रतिमाओं को धारण नहीं कर सकता है । इसलिये एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी इस क्रमसे सम्यग्दर्शन और आठ मूलगुणों की प्रकर्षता के साथ व्रतप्रतिमा को तथा सम्यग्दर्शन, अष्ट मूलगुण और बारह व्रतों की प्रकर्षताके साथ सामायिक प्रतिमा को, इस प्रकार पूर्व पूर्व प्रतिमाओं के गुणों की वृद्धि के साथ आगे आगे की प्रतिमाओं के पालन करने से श्रावकों के भी ग्यारह भेद हो जाते हैं ।

ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१) दर्शन प्रतिमा- सम्यग्दर्शन सहित आठ मूल गुणों का पालन करता है अुसको दर्शन प्रतिमावाले श्रावक कहते हैं ।

२) व्रतप्रतिमा- जो दर्शन प्रतिमा के पालन करने के साथ साथ निरतिचार पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतोंका पालन करता है अुसको व्रतप्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

३) सामायिकप्रतिमा- पूर्वकी दोनों प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ साथ तीनों कालों में निरतिचार सामायिक को करता हैं अुसको सामायिक प्रतिमा कहते हैं ।

४) प्रोषधप्रतिमा- जो पूर्वकी तीनों प्रतिमाओंके साथ निरतिचार प्रोषधोपवास व्रतको पालन करता है अुसको प्रोषधोपवास प्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

५) सचित्तत्याग- जो पूर्वकी चारों प्रतिमाओंके पालन करने के साथ सचित्त आहारादिकका त्याग करता है अुसको सचित्तत्याग प्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

६) दिवामैथुनत्याग प्रतिमा- जो पूर्वकी पांचो प्रतिमाओंके पालन करने के साथ दिनमें मैथुनका त्याग करता है अुसको दिवामैथुनत्याग प्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

७) ब्रह्मचर्यव्रतप्रतिमा- जो पूर्वकी छहों प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ स्त्रीमात्रका त्याग करता है अुसको ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

८) आरंभत्यागप्रतिमा- जो पूर्वकी सातों प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ सेवा,कृषि वाणिज्यादिगृहसंबंधी संपूर्ण आरंभोंका त्याग करता है अुसको आरंभत्यागप्रतिमावाला कहते हैं ।

९) परिग्रहत्यागप्रतिमा- आठों प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ रागद्वेषादि अभ्यंतर परिग्रहोंकी मंदतापूर्वक क्षेत्र वास्तु आदि दश प्रकारके बाह्य परिग्रहोमेंसे आवश्यक वस्त्र, और पात्रके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिवाय शेष सब परिग्रहोंका त्याग कर देता है अुसे परिग्रहत्याग प्रतिमावाला श्रावक कहते हैं ।

१०) अनुमतित्यागप्रतिमा- जो पूर्वकी नौ प्रतिमा पालन करनेके साथ २ आरंभादिक पापकार्योंमें अनुमतिका त्याग करता है अुसको अनुमतित्याग प्रतिमावाला कहते हैं ।

११) उद्दिष्टत्यागप्रतिमा- जो पूर्वकी दशो प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ साथ उद्दिष्ट भोजन वगैरहका भी त्याग कर देता है अुसको उद्दिष्टत्याग प्रतिमावाला कहते हैं ।

इस प्रकार अनुक्रमसे पूर्व पूर्वकी प्रतिमाओंके पालन करनेके साथ साथ ही आगे आगे की प्रतिमाओंका पालन करना चाहिये । क्योंकि जबतक आगे आगे की प्रतिमाओंमे पूर्व पूर्व प्रतिमाओंके गुणोंका पालन नहीं किया जाता है तबतक आगे आगे की प्रतिमा-ओंमे प्रतिमापना ही नहीं आ सकता है । और न योग्य रीतिसे अुनका पालन हो सकता है । इसलिये ही आगे आगेकी प्रति-माओंमे पूर्व पूर्व की प्रतिमाओंके गुणोंका पालन करना आवश्यक बताया गया है ।

इस श्लोक में जो " उद्दिष्टादपि भोजनाच्च " यहांपर अपि शब्द दिया गया है उसका यह अभिप्राय है कि जो ग्यारहवीं प्रतिमावाला श्रावक अनुमत और उद्दिष्ट भोजनको भी नहीं करता हैं वह दूसरे आरंभादिक पाप कार्योमें अपनी अनुमती क्यों देगा ? तथा उद्दिष्ट वसतिका व वस्त्रादिक को अर्थात् अपने निमित्तसे बनाये गये मकान व कपडे वगैर को उपयोगमें क्यों लायेगा अर्थात् न तो वह पापकार्यो में अपनी अनुमती देगा और न उद्दिष्ट वसतिका आदि उपयोग में लावेगा ।।१७।।

आगे पापों का नाश करनेवाली नित्यपूजा आदि धार्मिक क्रियाओं की सिद्धि के लिये कृष्यादिक छह प्रकार के कर्मों के करने वाले गृहस्थ को अवश्य ही पाप लगता है । इसलिये प्रायश्चित्त और पक्षादिके द्वारा गृहस्थ को उन पापों का निराकरण करना चाहिये, इस बात का उपदेश देते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्याष्टान्हिकसच्चतुर्मुखमहाः कल्पद्रुमैंद्रध्वजा-
विज्याः पात्रसमक्रियान्वयदयादत्तीस्तपः संयमान् ।
स्वाध्यायं च विधातुमादृतकृषीसेवावणिज्यादिकः ।
शुद्धयाऽऽप्तोदितया गृही मललवं पक्षादिभिश्च क्षिपेत् ।१८।

अन्वयार्थ– (नित्याष्टान्हिकसच्चतुर्मुखमहाः) नित्यमह, अष्टान्हिकामह, सच्चतुर्मुखमह, (कल्पद्रुमैन्द्रध्वजौ) कल्पद्रुम और ऐन्द्र-ध्वज इन पांच प्रकार की (इज्याः) पूजाओं को तथा (पात्रसमक्रि-यान्वयदयादत्तीः) पात्रदत्ती, समक्रियदत्ती, अन्वयदत्ती और दयादत्ती इन चार प्रकार के दानों का तथा (तपः) तप (संयमान्) सयम (च–) और (स्वाध्यायं) स्वाध्याय को (विधातुं) करने के लिये (आदृतकृषीसेवावणिज्यादिकः) स्वीकार की है खेती सेवा तथा व्यापारादिक आजीविका के उपाय जिसने ऐसा (गृही) गृहस्थ (आप्तोदितया) सर्वज्ञ के द्वारा कहे गये (शुद्धया) प्रायश्चित्तसे (च) और (पक्षादिभिः) पक्ष चर्या तथा साधन के द्वारा (मललवं) पापके अंशों को (क्षिपेत्) दूर करे ॥१८॥

भावार्थ– नित्यमह, अष्टान्हिकमह, सच्चतुर्मुखमह, कल्पद्रुम और ऐन्द्रध्वज इसप्रकार पंच प्रकार की पूजन, पात्रदत्ति,समक्रिया-दत्ती, दयादत्ती तथा अन्वयदत्ती इसप्रकार चार प्रकार का दान स्वाध्याय तप और संयम ये पांच श्रावकों के मुख्य कर्तव्य है । इन पांचों का परिपालन आजीविका के विना नहीं हो सकता है । इसलिये धार्मिक कार्य तथा लौकिक कार्य करने के लिये गृहस्थों को कृषि सेवा वाणिज्यादि आजीविका के साधनों को स्वीकार करना पडता है । वह साधन छह प्रकार के हैं। असि मसि कृषि सेवा शिल्प और व्यापार के भेद से छह प्रकार की हैं । यह सब कृष्यादिक आरंभ भी पापके विना नहीं हो सकते हैं । इसलिये पांच प्रकारकी पूजा चार प्रकार के दान तथा तप संयम स्वाध्याय को निराकुलरीतिसे करने के लिये यथायोग्य खेती सेवादि कार्यों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेवाले गृहस्थोंको सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के द्वारा कहे हुये प्राय-श्चित्त एवं पक्ष साधन और चर्या के द्वारा कृष्यादि से उत्पन्न हुये पापमलों को दूर करना चाहिये ।

इस श्लोक में चतुर्मुख पूजा के लिये जो सत् विशेषण दिया गया है वह उत्कृष्टता का सूचक है उसका अभिप्राय यह है कि इस पंचम कालमें इस भरत क्षेत्र में चक्रवर्ती का अभाव होने से कल्पद्रुम पूजनका तथा तीर्थंकरोंका अभाव होने के कारण इन्द्र के आगमन का अभाव होनेसे ऐन्द्रध्वजपूजा का होना तो असंभव है क्योंकि चक्रवर्ती और इन्द्रके सिवाय इन दोनों पूजनों को तो कोई नहीं कर सकता है । इसलिये इस पंचम काल सम्बंधी इस भरत क्षेत्र में चतुर्मुख पूजन ही सर्वश्रेष्ठ है । इन अष्टान्हिक पूजादिका स्वरूप यद्यपि इस ग्रन्थ में संक्षेप रूपसे आगे लिखा जायगा फिर भी जिनसेनाचार्य के मतानुसार यहाँ थोडा सा लिखा जाता है ।

भगवज्जिनसेनाचार्यंने आदिपुराण में पांच प्रकार की पूजा और दानादिक का स्वरूप इस प्रकार लिखा है कि--

प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनम् ।
चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमश्चाष्टान्हिकोऽपि च ॥

अर्थ- अर्हंतोंके पूजाको इज्या कहते हैं । और वह चार प्रकारकी है । नित्यमह २) चतुर्मुखमह ३) कल्पद्रुम तथा अष्टान्हिकमह.

१) नित्यमहका स्वरूप

तत्र नित्यमहो नाम शश्वत्जिनगृहं प्रति ।
स्वगृहान्नीयमानाऽर्चा गन्धपुष्पाक्षतादिका ।
चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च यत् ।
शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम् ॥

अपने घरसे प्रतिदिन जिनमंदिरमें जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, आदि पूजनकी सामग्रीको ले जाकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन जिनेन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवानकी पूजा करने को नित्यमह कहते हैं। तथा भक्तिपूर्वक जिनबिम्ब, जिनमंदिर आदिके बनवानेको और शासनविधिपूर्वक अर्थात् अधिकार दे करके जिनमंदिरके लिये ग्रामादिकके देनेको नित्यमह कहते हैं।

या च पूजा मुनींद्राणां नित्यदानानुषङ्गिणी ।
स च नित्यमहो ज्ञेयो यथाशक्त्युपकल्पितः ।

अर्थ- अपनी शक्तिके अनुसार मुनीश्वरोंकी पूजा करके उनके लिये प्रतिदिन आहार दान देनेको भी नित्यमह कहते हैं।

२) अष्टान्हिकपूजनका स्वरूप-

अष्टान्हिको महः सार्वजनिको रूढ एव सः ।

अर्थ- जो पूजन नन्दीश्वर पर्वमें की जाती है उसको आष्टान्हिक पूजन कहते है और सबका हित करनेवाली यह पूजन जगतमें प्रसिद्ध है ।

३) चतुर्मुखपूजनका स्वरूप-

महामुकुटबद्धैस्तु क्रियमाणो महामहः ।
चतुर्मुखः स विज्ञेयः सर्वतोभद्र इत्यपि ।

अर्थ- महामुकुट बद्ध राजाओंके द्वारा जो बडीभारी पूजा (महायज्ञ) की जाती हैं उसको चतुर्मुख पूजन कहते हैं । इस पूजनका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है ।

४) कल्पद्रुमपूजनका स्वरूप-

दत्वा किमिच्छुकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते ।
कल्पवृक्षमहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः ।

अर्थ- किमिच्छुक दान को दे करके जो पूजन चक्रवर्तिके द्वारा की जाती है उसको मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कल्पवृक्ष पूजन कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) ऐन्द्रध्वजपूजनका स्वरूप-

महानैंद्रध्वजोऽन्यस्तु सुरराजैः कृतो महः ।

इंद्रके द्वारा जो पूजन की जाती है उसको ऐन्द्रध्वज पूजन कहते हैं।

बलिस्नपनमित्यन्य-त्रिसन्ध्यासेवया समम्।
उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम् ।।

अर्थ-तीनों सन्ध्याओंमें पूजन करनेके साथ २ बलि उपहार स्नपन अभिषेक आदि तथा इन्हीके समान और भी जो पूजाके प्रकार है वे सब अुक्त पांच प्रकारकी पूजाओंके भेदोमें ही गर्भित हो जाते हैं।

एवंविधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम् ।
विधिज्ञास्तामुशन्तीज्यां वृत्ति प्राथमकल्पिकीम् ।।

अर्थ-इसप्रकार विधिपूर्वक जो जिनेंद्र भगवानकी पूजा है उस पूजाको उसकी विधिके जाननेवाले पुरुष आचार्य लोग पाक्षिक श्रावककी वृत्ति कहते हैं अर्थात् पूजा करना पाक्षिक श्रावकका मुख्य कर्तव्य है।

चतुर्धा वर्णिता दत्तिर्दयादानसमान्वयैः ।

अर्थ-दयादत्ती, दानदत्ती, समादत्ती और अन्वयदत्ती इस तरह दान चार प्रकारका है।

(१) पात्रदत्तीका स्वरूप-

महातपोधनाचार्यः प्रतिग्रहपुरःसरम् ।
प्रदानमशनादीनां पात्रदानं तदिष्यते ।।

अर्थ-महातपस्वी मुनियोंके लिये पूजा, प्रतिग्रह आदि नवधा-भक्तिपूर्वक आहार शास्त्र, पींछी कमंडलु औषध आदिके देनेको दानदत्ती अथवा पात्रदत्ती कहते हैं।

(२) समानदत्तीका स्वरूप-

समानायात्मनाऽन्यस्मै क्रियामन्त्रव्रतादिभिः ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम ।।
समानदत्तिरेषा स्यात् पात्रे मध्यमतामिते ।
समानप्रतिपत्यैव प्रवृत्ता श्रद्धयाऽन्विता ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-गर्भाधानादिक क्रिया, मन्त्र और व्रतादिके द्वारा जो अपने समान है, ऐसे गृहस्थाचार्यके लिये अथवा गृहस्थाचार्यके अभावमें मध्यम जघन्य पात्रके लिये समान बुद्धिसे श्रद्धापूर्वक कन्या, भूमि, सुवर्ण आदिके देनेको समानदत्ती कहते हैं।

(३) दयादत्तीका स्वरूप–

सानुकम्पमनुग्राह्ये प्राणिवृन्देऽभयप्रदा।
त्रिशुद्ध्यानुगता सेयं दयादत्तिर्मता बुधैः ॥

अर्थ–अनुग्रह करने के योग्य जो दीन दुःखी प्राणी है उन प्राणीयोंका मन वचन कायसे जो दयापूर्वक भय दूर करना है, उसको विद्वान लोग दयादत्ती कहते हैं।

भावार्थ-दुःखों से भयभीत पुरुषोंके भयको दूर करना दयादत्ति है।

(४) अन्वदयत्ती, स्वाध्याय तप और संयमका स्वरूप–

आत्मान्वयप्रतिष्ठार्थं सूनवे यदशेषतः।
समं समयवित्ताभ्यां स्ववर्गस्यातिसर्जनं ॥
सैषा सकलदत्तिः स्यात् स्वाध्यायः शुभभावना।
तपोऽनशनवृत्यादि संयमो व्रतधारणम् ॥

अर्थ–अपने वंशकी प्रतिष्ठाके लिये, स्थितिके लिये सम्पूर्ण रीतिसे पुत्रके लिये धर्म और धनके साथ जो अपने कुटुम्ब व उसके सम्पूर्ण भारको समर्पण करना है, सोपना है, उसको सकलदत्ती अथवा अन्वयदत्ती कहते हैं। शास्त्रोंके पठनपाठन चिन्तवन करने आदिको स्वाध्याय कहते हैं। उपवासादिक करनेको तप कहते हैं। और अहिंसादिक व्रतोंके धारण करनेको संयम कहते हैं।

(५) वार्ताका स्वरूप–

वार्ताविशुद्धवृत्त्या स्यात्कृष्यादीनामनुष्ठितिः।

अर्थः–विशुद्ध वृत्तिसे न्यायपूर्वक कृष्यादिक छह कर्मोंके द्वारा आजीवकाके करनेको वार्ता कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्ष, चर्या और साधन के स्वरूप–

स्यान्मैत्र्याद्युपबृंहितोऽखिलवधत्यागो न हिंस्यामहं ।
धर्माद्यर्थमितीह पक्ष उदितं दोषं विशोध्योज्झतः ।
सूनौ न्यस्य निजान्वयं गृहमथो चर्या भवेत्साधनं ।
त्वन्तेऽन्नेहतनूज्झनाद्विशदया ध्यात्यात्मनः शोधनम् ॥१९॥

अन्वयार्थ–(इह) पक्ष चर्या तथा साधनमें से (धर्माद्यर्थं) धर्मादिके लिये भी (अहं) मैं (न हिंस्यां) संकल्पपूर्वक त्रस प्राणियों का घात नही करूँगा (इति) इस प्रकार की (प्रतिज्ञाय) प्रतिज्ञा कर के (मैत्र्याद्युपबृंहितः) मैत्री प्रमोद आदि भावना के वृद्धिका प्राप्त होता हुवा (अखिलवधत्यागः) सम्पूर्ण हिंसाका त्याग करना (पक्षः) पक्ष (स्यात्) कहलाता है। (अथ) अनंतर अर्थात् पक्ष प्राप्तिसे उत्पन्न अंतरंग विशुद्धिके बाद (उदितं) ऊपर कहे हुये कृषि आदिसे उत्पन्न हुये (दोषं) दोषों को (विशोध्य) विधिपूर्वक दूर करके (निजान्वयं) अपने पोष्य वर्ग धर्म तथा धन को (सूनौ) अपने पुत्रपर (न्यस्य) रखकर अर्थात् पुत्र के सुपुर्द करके (गृह) घरको (उज्झतः) छोडने वाले के (चर्या) चर्या (भवेत्) होती है। (तु) और चर्यादि में लगे हुये दोषों को प्रायश्चित्त के द्वारा दूर करके (अन्ते) मरण समयमें (अन्नेहतनूज्झनात्) अन्न–आहार मन, वचन, काय सम्बन्धी व्यापार और शरीर से ममत्व का त्याग से उत्पन्न होने वाले (विशदया) निर्मल (ध्यात्या) ध्यानसे (आत्मनः) आत्माके (शोधनं) शुद्धि–रागद्वेष को दूर करना (साधनं) साधन (भवेत्) होता है ॥१९॥

भावार्थ–धर्म, देवता, मंत्रसिद्धि और आहारादि के लिये भी मैं कभी संकल्पपूर्वक त्रसजीवों का घात नही करूँगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके जो मैत्री, प्रमोद, कारुण्य तथा माध्यस्थ इन चार भावनाओं के द्वारा वृद्धिको प्राप्त होने वाला स्थूल असत्यादि पापके सम्पूर्ण त्रसजीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको पक्ष कहते हैं। और प्रतिदिन वैराग्य परिणामों की वृद्धि होने पर कृष्यादि कर्मों से उत्पन्न हिंसादिक पापों को प्रायश्चित्त के द्वारा दूर करके अपने पालन पोषण करनेके योग्य स्त्री, माता, पिता आदि रूप पोष्य वर्ग को ग्राम घर खेत सोना चान्दी आदिके रूप धन को तथा चैत्यालय पात्रदानादिक रूप धर्म को अपने भार के चलाने में समर्थ योग्य पुत्र के सुपुर्द करके अथवा पुत्र न हो तो पुत्रके समान योग्य वंश के पुत्रपर रख कर घरके छोडने को चर्या कहते हैं। चर्या में लगे हुये दोषों को प्रायश्चित्त से दूर करके गृह त्याग करने के अन्तिम समय में अथवा मरण समय में चार प्रकार के आहार का तथा मन वचन काय के व्यापर का तथा शरीर के ममत्व के त्यागसे उत्पन्न होने वाले निर्मल ध्यान के द्वारा आत्मा के रागादिक दोषों को दूर करना साधन कहलाता है।

इस श्लोकमें अखिल वधत्याग यह पद आया है उसका अर्थ यद्यपि सम्पूर्ण पांच पापों का त्याग है। अखिल में सम्पूर्ण और वध हिंसा में झूठ आदि गर्भित हैं। क्योंकि झूठ चोरी आदि हिंसा की पर्याय हैं। परन्तु यहां पर श्रावकधर्म का प्रकरण है, इसलिये प्रकरणवश सम्पूर्ण हिंसाके त्यागका अर्थ स्थूल हिंसादि पांच पापो का त्याग ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि गृहस्थ परिग्रह आदि में आसक्त होनेसे आरम्भादिक को करनेवाला पाक्षिक श्रावक यद्यपि मंद कषायी भी हो तथापि वह आरंभ से नहीं होने वाली केवल संकल्पीहिंसा को ही छोड सकता है। किन्तु गृह सम्बन्धी कार्यों के करने से आरंभादिक में होनेवाली अथवा उससे सम्बन्ध रखनेवाली जो हिंसा है उसको वह नहीं छोड सकता है।

संक्षेप अर्थ यह है कि प्रतिमा धारण न करके अभ्यास रूपसे अष्टमूलगुण और अणुव्रतादि बारह उत्तर गुणों का पालन करना पक्ष कहलाता है।

कृष्यादिक आरंभोंसे होने वाले पापों को प्रायश्चित्त से दूर कर के घर छोडने वाले गृहस्थ द्वारा दर्शन प्रतिमा से लेकर दशवीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा तकके व्रतोंका पालन किया जाता है वह चर्या कहलाती है और चर्या सम्बन्धी दोषों को दूर करके ग्यारहवीं प्रतिमा का पालन करना अथवा समाधिमरण करना साधन कहलाता है ।

इस श्लोक में त्यन्तेऽन्तेहतनूज्झनात्, यहाँपर तु शब्द दिया गया है उसका यह अभिप्राय है कि साधन में भी कृष्यादिक आरंभोंसे होनेवाले दोषों को प्रायश्चित्तसे दूर करना चाहिये ।

अब– पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक इस प्रकार श्रावक के तीन भेदोंको बता करके संक्षेपसे उनका लक्षण कहते हैं––

पाक्षिकादिभिदा त्रेधा श्रावकस्तत्र पाक्षिकः ।
तद्धर्मगृह्यस्तन्निष्ठो नैष्ठिकः साधकः स्वयुक् ॥२०॥

अन्वयार्थ– (पाक्षिकादिभिदा) पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक के भेदसे (श्रावकः) श्रावक (त्रेधा) तीन प्रकार के होते हैं (तत्र) उनमें से (तद्धर्मगृह्यः) श्रावक धर्म–एकदेश हिंसादिक का त्याग रूप व्रत को गृहण करने वाला (पाक्षिक) पाक्षिक है । तथा (तन्निष्ठः) उसी श्रावक धर्म में है निष्ठा जिसकी ऐसा (नैष्ठिकः) नैष्ठिक श्रावक कहलाता है । और (स्वयुक्) अपनी आत्मध्यान में लीन होकर समाधि मरण करने वाला (साधकः) साधक कहलाता है ॥२०॥

भावार्थ– श्रावक के तीन तीन भेद है १ पाक्षिक, २ नैष्ठिक श्रावक, ३ श्रावक साधकश्रावक ।

पाक्षिक– जिसके हिंसादिक पांच पापों का त्यागरूप पक्ष है, तथा जो अभ्यासरूपसे श्रावक धर्म का पालन करता है उसको पाक्षिकश्रावक वा प्रारब्ध देशसंयमी कहते हैं ।

नैष्ठिक– जो निरतिचार श्रावक धर्म का पालन करता है उसको नैष्ठिक वा घटमान देशसंयमी कहते हैं ।

साधक– जिसका देश संयम पूर्ण हो चुका है, और जो आत्म ध्यान में लीन होकर समाधिमरण करता है उसको साधकश्रावक वा निष्पन्न देशसंयमी कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम अध्यायका सारांश

ग्रंथकारने सर्व प्रथम इस ग्रंथमें सागारधर्मके निरूपण की प्रतिज्ञाकर मुनिधर्ममें अनुराग रखनेवाले को श्रावक कहा है। तदनंतर यह श्रावक अनादिकालीन अज्ञानके वशीभूत होकर बाह्य परिग्रहको छोडनेमें असमर्थ हैं, इसी कारणसे विभिन्न प्रकारके मिथ्यात्वसे अभिभूत है, सम्यक्त्वके विना आत्महित नहीं हो सकता है, सम्यक्त्व प्राप्तिके लिए किन सामग्रियोंकी आवश्यकता है, इन विषयोंका विवेचन किया।

सम्यग्दृष्टियोंका मिलना कठिन है तथापि आज भद्रपुरुष भी मिले तो उन्हे उपदेश देकर सम्यग्दृष्टि बना लेना चाहिये, तदनंतर श्रावक धर्मको पालन करनेवाले भव्यमें किन गुणोंकी आवश्यकता है, इसका विवेचन करते हुए सागारधर्मकी पूर्णता के लिए, निर्मल सम्यक्त्व, निरतिचार अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत और सल्लेखना-पूर्वक मरणकी आवश्यकता बताई गई, तदनंतर सम्यग्दृष्टि जीव कर्ममलोंको किस प्रकार दूर करता है इसका विवेचन कर धर्म यश व सुखके सेवन करनेका संकेत किया।

सम्यग्दर्शन सपन्न होना ही पर्याप्त नहीं, मूल उत्तर गुणोंके धारक संयतासंयत भी होना चाहिये. यथाशक्ति व्रत धारण करना चाहिये, उससे मुनिव्रतके प्रति बढनेकी इच्छा होती है, उन व्रतधारक प्रतिमाओंका क्रम क्या है ? उन व्रतियोंके नित्यकर्ममें इज्या व दत्तिका प्रमुख स्थान है, उन इज्या और दत्तियोंके कितने भेद है इत्यादि विवेचन कर पक्ष, चर्या एवं साधन द्वारा आत्म विशुद्धि करनेका मुख्यतः संकेत किया है।

इस प्रकार आचार्यकल्प पं. आशाधरजीविरचित स्वोपज्ञ
सागारधर्मामृतदीपिकाकी भव्यकुमुदचंद्र नामकी
टीकामें अनगार धर्मामृतकी अपेक्षासे
१० वां और सागारके
प्रकरणकी अपेक्षासे प्रथम
अध्याय समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयोऽध्यायः

प्रथम अध्याय में सामान्य रूप से सागारधर्म का निरूपण करके अब इस अध्याय में विस्तार पूर्वक पाक्षिक श्रावक की क्रियाओं के वर्णन करने की इच्छा करने वाले ग्रन्थकार सबसे पहिले किस प्रकार के भव्य को धर्माचार्योंने गृहस्थ धर्मपालन करने की अनुमति दी है। इस बात का बताते हैं-

त्याज्यानजस्रं विषयान् पश्यतोऽपि जिनाज्ञया ।
मोहात्त्यक्तुमशक्तस्य गृहिधर्मोऽनुमन्यते ॥१॥

अन्वयार्थ-(जिनाज्ञया) जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा से (अजस्रं) निरंतर (विषयान्) विषयोंको (त्याज्यान्) छोडने योग्य (पश्यतः) समझता हुवा (अपि) भी (मोहात्) मोहसे (त्यक्तुं) छोडने केलिये (अशक्तस्य) असमर्थ पुरुष के लिये (धर्माचार्यैः) धर्माचार्योंने (गृहिधर्मः) गृहस्थ धर्म धारण करने की (अनुमन्यते) अनुमति दी है।

भावार्थ-जिसके मिथ्यात्व कर्म नाश हो गया है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई है, उस सम्यग्दर्शन के प्रभाव से जिस को हेयोपादेय का ज्ञान हो गया है, जिससे वह सम्यग्दृष्टि भगवान जिनेन्द्र देव की आज्ञा से सांसारिक पंचेन्द्रिय विषयों को निरंतर हेय समझता है, दुःख कारण मानता है, मिथ्यादृष्टि के समान सांसारिक विषयभोगों में तल्लीन नही होता है तथापि प्रत्याख्यानावरण लक्षण चारित्रमोहनीय कर्म के उदयसे उनको छोडनेके लिये असमर्थ है, ऐसे भव्य जीवो को आचार्यो ने गृहस्थधर्म पालन का उपदेश दिया है। सो ही आचार्यो ने कहा है-

विषयविषमाशनोत्थितमोहज्वरजनिततीव्रतृष्णस्य ।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान् ।

अर्थ-जिस प्रकार विषम भोजन करने से ज्वर उत्पन्न होता है और उसकी तीव्र प्यास से आकुलित मनुष्य को प्राणनाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्न को भोजन न दे .र कुछ पेय पदार्थ दिया जाता है उसी प्रकार विषय रूपी विषम भोजनके करने से मोहरूपी ज्वर उत्पन्न होता है। उस मोहरूपी ज्वर के कारण तीव्र तृष्णा उत्पन्न होती है जिससे रोगी के समान मोही की भी शक्ति क्षीण हो जाती है। वह महाव्रत धारण करने के लिये समर्थ नहीं होता है। उसके लिये पेय पदार्थ के समान न्यायोचित भोगों की छूट योग्य ही है। एक शंका उत्पन्न होती है कि आचार्य गृहस्थ को आरंभी हिंसा की अनुमति कैसे दे सकते हैं अथवा अनुमति देनेसे उनको हिंसा का दोष नहीं लगेगा क्या ?। उसका समाधान—आचार्योंने श्रावक धर्म का उपदेश दिया है न की हिंसा का। सो ही आचार्योंने कहा है—

सर्वविनाशीजीवस्त्रसहनने त्याज्यते यतो जैनैः।
स्थावरहननानुमतिस्ततः कृता तैः कथं भवति।

जो सब जीवोके वधमें प्रवृत्त है उसे जैनाचार्य त्रसों की हिंसाका त्याग कराते हैं तो कहो उनको स्थावर हिंसा की अनुमति देने का दोष कैसे लगेगा ?। इसलिये गृहस्थ के द्वारा जो आरंभी हिंसा होती है उसकी अनुमति का दोष धर्माचार्यों को नहीं लगता है।

अब दर्शन विशुद्धि से युक्त पाक्षिक श्रावक को अहिंसा धर्म की सिद्धि करने के लिये मद्यादि का त्याग करना चाहिये इस बातको बताते हैं—

तत्रादौ श्रद्दधज्जैनीमाज्ञां हिंसामपासितुम्।
मद्यमांसमधून्युज्झेत्पञ्चक्षीरिफलानि च ॥२॥

अन्वयार्थ—(तत्र) गृहस्थ धर्म मे (जैनीं) जिनेन्द्र भगवान की (आज्ञां) आज्ञाका (श्रद्दधन्) श्रद्धान करता हुवा (गृही) गृहस्थ (हिंसां) हिंसाको (अपासितुं) छोडने के लिये (आदौ) सब से पहिले (मद्यमांसमधूनि) मद्य मांस और शहदको (च) तथा (पंचक्षीरिफलानि) पांच उदम्बर फलोंको (उज्झेत्) छोडें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–गृहस्थ धर्म (श्रावकधर्म) में अहिंसाधर्म की प्रसिद्धि के लिये सब से पहिले जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का श्रद्धान करने वाले देशसंयम के सन्मुख हुये गृहस्थों को मद्य मांस मधु और पिप्पल गूलर अंजीर वड और पाकर इन पांच ऊदुम्बर फलों का त्याग करना चाहिये।

क्योंकि आचार्योंने कहा है–

मांसाशिषु दया नास्ति न सत्यं मद्यपायिषु।
अनृशंस्यं न मर्त्येषु मधूदुम्बरसेविषु।

मांस भक्षियों में दया, मद्य पीने वालोमें सत्यता, मधु और उदुम्बर भक्षण करने वालो में भद्रता नहीं रह सकती है। इस श्लोक में चकार है उससे यह अर्थ निकलता है कि श्रावकों को नवनीत, रात्रिभोजन और विना छने पानी पीने का भी त्याग करना चाहियें। क्योंकि मद्यादि के सेवन करनेसे तद्गत जीवों की द्रव्यहिंसा तथा उनके सेवन करने से रागरूप परिणाम होने से भावहिंसा होती है। जिनेन्द्र की आज्ञा श्रद्धान करके जो मद्यादि का त्याग करता है, वह देशव्रती होता है। परन्तु जो कुल परम्परा की बुद्धिसे त्याग करता है वह देशव्रती नहीं हो सकता है।

अब ग्रन्थकार स्वमत की अपेक्षा और परमत की अपेक्षा मूलगुणों का विभाग करते हैं–

अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूलवधादि वा।
फलस्थाने स्मरेद् द्यूतं मधुस्थान इहैव वा॥

अन्वयार्थ–आचार्य (एतान्) इन मद्य मांस मधु और पंच क्षीर फलोंके त्याग को (गृहिणां) गृहस्थोंके (मूलगुणान्) मूलगुण (स्मरेत्) मानते हैं। (वा) अथवा कोई आचार्य (फलस्थाने) पंच उदंबर फलके स्थान में (स्थूलवदादि) स्थूल हिंसादिका त्यागरूप पांच अणुव्रत और मद्य मांस मधु के त्याग को अष्टमूल गुण कहते हैं। (वा) अथवा (इह एव) इन्ही मूल गुणों में (मधुस्थाने) मधु के स्थान में (द्यूतं) जुवाँ खेलने का त्याग करना मूलगुण कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–मूल गुणों के विषय में आचार्यों नें भिन्न रूप सें वर्णन किया है। सोमदेव आचार्य ने उपासकाध्ययनांग में–

मद्यमांसमधुत्यागैः सहोदुम्बरपञ्चकैः।
अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते ॥१॥

पांच उदम्बर फल के साथ मद्य मांस मधु का त्याग करना गृहस्थों के अष्टमूल गुण गये कहे हैं।

समन्तभद्राचार्यने–

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥२॥

मद्य मांस मधु का त्याग और पांच अणुव्रत पालन करनें को मुनिश्रेष्ठोने गृहस्थों के आठ मूलगुण कहा है।

जिनसेनाचार्य ने–

हिंसासत्यस्तैयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात्।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥३॥

पांचो पापोंके त्यांग के साथ जुआ मद्य और मांस का त्याग करना अष्ट मूलगुण कहा है।

श्रावकाचार के अनुसार सबसे पहिले अनुष्ठान करने योग्य मूलगुण है। जैसे मूल (जड) के बिना वृक्ष नहीं है, उसी प्रकार मूलगुणों के बिना उत्तर गुण नहीं हो सकते हैं। यह भिन्न भिन्न आचार्यों का मत विवक्षावश किया है। इसलिये इस में कोई बाधा नहीं आती है। स्मरेत् इस क्रियाप्रयोग से सब जगह यम नियमादि में मुक्तिका कारणपना है ऐसी भावना भानी चाहिये।

अब–मद्यमें बहुतसे जीवों की उत्पत्ति होती है और उसके सेवन करनेवाले मानव इस लोक तथा परलोक दोनोमें ही दुःखी होते हैं, इस बातको दिखाते हुये अवश्य ही मद्य का त्याग करना चाहिये ऐसा कहते हैं–

यदेकबिन्दोः प्रचरन्ति जीवा–
श्चेत्तत् त्रिलोकीमपि पूरयन्ति।
यद्विक्लवाश्चेममममुं च लोकं,
यस्यन्ति तत्कश्यमवश्यमस्येत् ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (चेत्) यदि (यदेकबिन्दोः) जिस मद्यकी एक बून्द के (जीवाः) जीव (प्रचरंति) संचार करते हैं (त्रिलोकीं) तीन लोक को (अपि) भी (पूरयंति) पूरण करते हैं (च) और (यद्विक्लवाः) जिस दारूसे मोहित हुये जीव (इमं) इस लोक को (च) और (अमुं लोकं) परलोक को. (यस्यंति) भ्रष्ट कर देते हैं। (तत्) इसलिये (तत्) उस (कश्यं) दारू को (अवश्यं) अवश्य ही (अस्येत्) छोडना चाहिये।

भावार्थ– यदि दारू के एक विन्दु के जीव संचार करे तो यह तीनों लोक पूरित कर देते हैं अर्थात् तीनों लोक में समा नहीं सकते हैं। और इस को पीने से मनुष्य हेयोपादय के विवेक से शून्य हो जाता है। जिससे उसके दोनों लोक भ्रष्ट हो जाते हैं अर्थात् इस लोक में अविश्वासका निन्दाका पात्र होता है और परलोकमें नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है. सो ही आचार्यों ने कहा है।

मनोमोहस्य हेतुत्वान्निदानत्वाच्च दुर्गतेः।
मद्यं सद्भिः सदा त्याज्यमिहामुत्र च दोषकृत्॥

मद्यं मन को मोहित करनेका कारण है, दुर्गतिका कारण है। इस लोक और परलोक दोनों लोकों को भ्रष्ट करनेवाला है। इस लिये बुद्धिमानों को मद्य का त्याग करना चाहिये।

विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं शौचं दयाक्षमा।
मद्यात्प्रलीयते सर्वं तृण्या वन्हिकणादिव ॥५१॥

जिस प्रकार अग्नि के कण से सम्पूर्ण घास जल जाता है, उसी प्रकार मद्यसे विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया क्षमा आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। इसलिये अपना हित चाहने वाले सुज्ञ पुरुषों को मद्य का त्याग अवश्य करना चाहिये।

अब इस समय मद्यपान करना द्रव्यहिंसा और भावहिंसा दोनों हिंसा का कारण है, ऐसा बताकर मद्यमें प्रवृत्ति करनेवाले और निवृत्ति करनेवालेके गुण दोष को दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीते यत्र रसाङ्गजीवनिवहाः क्षिप्रं म्रियन्तेऽखिलाः ।
कामक्रोधभयभ्रमप्रभृतयः सावद्यमुद्यन्ति च ।
तन्मद्यं व्रतयन्न धूर्तिलपरास्कन्दीव यात्यापदं,
तत्पायी पुनरेकपादिव दुराचारं चरन्मज्जति ॥५॥

अन्वयार्थ-(यत्र) जिसके (पीते) पीनेपर (अखिलाः) सम्पूर्ण (रसाङ्गजीवनिवहाः) रसमें उत्पन्न होने वाले जीवों का समूह (क्षिप्रं) शीघ्र (म्रियन्ते) मर जाते हैं। (च) तथा (सावद्यं) निंदा वा पाप के साथ साथ (कामक्रोधभयभ्रमप्रभृतयः) काम क्रोध भय भ्रम आदि अनेक प्रकार के दोष (उद्यन्ति) उत्पन्न होते हैं। (तन्मद्यं) उस मद्यका (व्रतयन्) त्याग करने वाला (धूर्तिल-परास्कन्दीव) धूर्तिल नामका चोरके समान। (आपत्ति) आपत्तिको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है। पुनः और (तत्पायी) मद्यको पीनेवाला (एकपात्) एक पाद के (इव) समान (दुराचारं) दुराचार = अगम्यगमन अभक्ष्यभक्षण का (चरन्) आचरण करता हुवा (मज्जति) दुर्गति में डूबता हैं ॥५॥

भावार्थ- मद्यपान करने से रस में उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण जीव मर जाते हैं। मद्य जीवों की योनी है ऐसा शास्त्रों में लिखा है और उसके पान करने से सम्पूर्ण जीव मर जाते हैं।

रसजानां च बहूनां जीवानां योनिरिष्यते मद्यम् ।
मद्यं भजतां तेषां हिंसा संजायतेऽवश्यम् ।

और मद्यपान करने से काम = स्त्रीसेवन करनेकी इच्छा, क्रोध भय, शरीरका घूमना, बड बड करना, अगम्य गमन करना, अभक्ष्य भक्षण करना आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं तथा अभिमान हास्य अरति शोक ग्लानि आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। और मद्यपायी पाप में प्रवृत्ति करता है। इसप्रकार इस लोक और परलोक इन लोक को बिगाडने वाले इस मद्यपान को देव शास्त्र गुरु की साक्षी पूर्वक छोडने वाला जिस कुल में मद्य नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिया जाता था ऐसा धूर्तिलक नाम चोर के समान दुर्गति से बच जाता है अर्थात् दुर्गति में नहीं जाता है । तथा उसको पीनेवाला एकपाद नाम के सन्यासी के समान अगम्यगमन अभ्यक्ष्यभक्षण अपेयपानादिक करके दुर्गति को प्राप्त होता है। इसलिये मद्यपान का त्याग अवश्य करना चाहिये । मद्य हानिकारक है, आत्म गुणों का घातक है ।

समुत्पद्य विपद्येह देहिनोऽनेकश: किल ।
मद्ये भवन्ति कालेन मनो मोहाय देहिनां ।

मद्य में निरंतर सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते रहते हैं, मद्य पीने से उनका घात होता है । इसलिये द्रव्यहिंसा होती है और मद्य पीने से मन मोहित होता है, इसलिये भावहिंसा होती है ।

मद्यपायी एकपाद सन्यासी की कथा

एकचक्र नामके नगर में विष्णुचरणकमलों की सेवा करने के लिये भ्रमर के समान रत वेदवेदांग का पारगामी एकपाद नाम का संन्यासी रहता था। एक दिन उस संन्यासी के मन में सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली गंगा में स्नान करने की इच्छा उत्पन्न हुई, इसलिये वह गंगास्नान करने के लिये अपने नगर से बाहिर निकला । मार्ग में उसको एक भयानक गहन अटवी पडी । उस अटवी में भी लोंका अेक बडा भारी झुंड यौनमद के साथ शराब पीकर मस्त हुअी, विलासिनी तरुणियोंके साथ मांस और सुराका सेवन कर रहा था । वह सन्यासी अुस झुंड में जा फसा। शराबके नशेमें मस्त हुअे भीलोंने अुसे पकड लिया और अुससे बोले 'तुझे मद्य, मांस और स्त्रीमेंसे किसी अेक का सेवन करना होगा, नहीं तो तू जीते जी गंगा का दर्शन नहीं कर सकता। यह सुनकर तापसी सोचने लगा स्मृतियों में अेक तिल या सरसो बराबर भी मांस खाने पर बडी बडी विपत्तियोंका आना सुना जाता है । भिल्लनी के साथ सम्बन्ध करनेपर प्रायश्चित्त लेना पडता है, जो मृत्यूका घर है । किन्तु समस्त यज्ञोंके सिरमौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौत्रामणि नामके यज्ञ में शराब पीने की अनुमती है, और लिखा है कि जो अिस विधीसे मदिरापान करता है, असका मदिरापान मदिरापान नहीं है। तथा पीठीं, जल, गुड, धतुरा, आदि जिन वस्तूओं से शराब बनती है वे भी शुद्ध ही होती है। अैसा चिर-काल तक मन में विचार कर अुसने शराब पीली। अुस के पीते ही अुसका मन चंचल हो अुठा। नशेमें मस्त होकर अुसने अपनी लंगोटी खोल डाली। और शराब पीकर मत्त हुअी भिल्लनियोंके गीत के साथ तालियाँ बजा बजा कर कूदने लगा अुस समय अुस की दशा ऐसी हो गयी मानो अुसके शरीर में कोयी भूत घुस गया है। अुसने अनेक विकृत चेष्टायें की और फिर भूखसे पीडित होकर मांस भी खा लिया। अुससे अुसे असह्य कामोद्रेक हुआ और अुसने भिल्लनीको भी भोगा। एकपाद नाम का सन्यासी सौत्रायणि नामक यज्ञ में मदिरापान को दोष नहीं बतलाया, ऐसा समझकर मदिरापान किया, जिस से दुर्गति को प्राप्त हुवा।

मद्यव्रती धूर्तिल चोरकी कथा

वल्लभीनगर में पांच चोर रहते थे। अुनमेंसे करवाऊ नामका चोर मकानों में सेंध लगाने में कुशल था। वटू दरवाजा खोलने में कुशल था। धूर्तिल महानिद्रा बुलानेमें कुशल था। शारद छिपाये हुअे धनस्थानके खोजको निकालने में कुशल था। और कृकिलास ठग विद्यामें निपुण था। पांचोंमे परस्परमें बडी प्रीति थी। और अपने अुद्यम और साहससें वे शिवके अर्धांगमें निवास करने वाली पार्वतीको, विष्णुके हृदय में बसनेवाली लक्ष्मी को और दुर्गाकी आंखोंमें लगे अंजन को भी चुराने में समर्थ थे। वे चोरोंके भी चोर थे। और यमराजके दूतोंके लिये यमराज के भी दूत थे। अेक बार रात में जब जोरोंसे वर्षा हो रही थी और दिशाअें कज्जल की तरह काली थी, वे चोर चोरी करके नगरके बाहर अेक अुद्यान में धनका बटवारा करते थे। और यह मेरा है यह तेरा है कहकर परस्पर में झगड रहे थे। झगडा बंद करके अुन्होंने शराब बुलवायी और पीने लगे। झगडेके कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अुनके मनमें क्रोध तो समाया ही हुआ था, शराब पीकर वे परस्परमें मुक्का मुक्की और लठ्ठं लठ्ठा करने लगे और धूर्तिलके सिवाय सब मर गये। धूर्तिल का यह नियम था। किसी दिन किसी महामुनीसे असने शराबत्यागका व्रत ले लिया था। इसीसे बच गया। अुक्त घटनाके बाद शराब के कारण अपने साथियों का विनाश हुआ, देखकर धूर्तिल दुःखों के मूल इस संसारसे विरक्त हो गया और कामदेव रूपी वृक्ष की जटाओंके समान बालों का लोच करके परलोकमें अहितको जीतने वाले रत्नत्रयकी प्राप्ति का अिच्छुक हो गया। "जब कि मद्यपानके दोष से अन्य साथी चोर मर गये, तब अेक दिनके लिये शराब का त्याग कर देने से धूर्तिल चोर बच गया"

देखो एकबार मुनिराजके समीप जाकर शराबत्याग व्रत के प्रभाव से धूर्तिलक नाम चोर को सद्गति की प्राप्ति हुई और मदिरापान करने वाला एकपाद नाम का सन्यासी दुर्गति को प्राप्त हुआ ऐसा समझकर उभयलोकनाशक मदिरापान को दूर से ही छोडना चाहिये।

जो अपने शुद्धाचरणका गर्व करते हुये भी मांस खाते हैं वे निंद्य हैं ऐसा बताते हैं–

स्थानेऽश्नन्तु पलं हेतोः स्वतश्चाशुचिकश्मलाः।
श्वादिलालावदप्यद्युः शुचिम्मन्याः कथं नु तत् ॥६॥

अन्वयार्थ–(कश्मलाः) जाति कुल तथा आचार से मलिन नीच पुरुष (स्वतः) स्वभावसे (च) और (हेतोः) शुक्र शोणित से उत्पन्न होने के कारण (अशुचि) अपवित्र (पलं) मांसको (अश्नन्तु) खावे (स्थाने) तो कथञ्चित् ठीक है परन्तु यह (नु) आश्चर्य है कि (शुचिम्मन्याः) अपने आपको पवित्र मानने वाले (श्वादिलालावत्) कुत्ते आदिके लाल से मिश्रित (तत्) मांसको (कथं) कैसे (अद्युः) खावेंगे ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-मांसकी उत्पत्ति रज वीर्य से उत्पन्न होनेवाले प्राणियों के घात से होती हैं। इस कारण से अशुचि है अर्थात् मांस के उत्पत्तिका कारण अपवित्र है तथा स्वभाव से अमेद्य मलमूत्रका बीज व मलमूत्रयुक्त है। और जिस समय मांस के लिये प्राणी मारा जाता है उस समय शिकारी कुत्ते कौआ आदि पशु भी उसको खाना चाहते हैं और उसमें मुख लगाते हैं। इसलिये वह मांस कुत्ते आदि की लार से मिश्रित हो जाता है। ऐसे अपवित्र मांस को आचारविचारहीन पुरुष खाते हैं। उसको तो हम क्या कहे-परन्तु जो अपने को पवित्र मानते हैं, जिनको स्पर्शास्पर्श का विचार हैं, उच्चकुल में पैदा हुये वे इस अपवित्र तथा अपवित्रताके कारणभूत मांस को खाते है यह बडे आश्चर्य की बात है। सो ही कहा है-

भक्षयन्ति पलमस्तचेतनाः सप्तधातुमयदेहसंभवम्।
यद्वदन्ति च शुचित्वमात्मनः किं विडम्बनमतःपरं बुधाः।
यतो मांसाशिनः पुंसो दमो दानं दयार्द्रता।
सत्यशौचव्रताचारा न स्युर्विद्यादयोऽपि च॥

मांस सप्त धातुमय देहके घात से उत्पन्न होता है। उसे अपने को पवित्र और विवेकी मानने वाले खावे इससे अधिक और क्या विडम्बना होगी?। जिसके खाने से मनुष्यमें दया, दम, सत्य शौच व्रत आचार विचार विद्यादिक नहीं हो सकते हैं।

अब अपने आप मरे हुये पंचेन्द्रि मछलि आदि जीवोंके मांस खाने में कोई दोष नहीं है, ऐसी आशंका करनेवालों को उत्तर देते हैं-

हिंस्रः स्वयम्मृतस्यापि स्यादश्नन् वा स्पृशन्पलम्।
पक्वापक्वा हि तत्पेश्यो निगोदौघसुतः सदा॥७॥

अन्वयार्थ-(स्वयंमृतस्य) अपने आप मरे हुये जीवके (अपि) भी (पलं) मांसको (अश्नन्) खाने वाला (वा) अथवा (स्पृशन्) स्पर्श करने वाला (हिंस्रः) हिंसक (स्यात्) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हि) क्योंकि (पक्वापक्वा) पके अथवा कच्चे दोनों प्रकार के (तत्पेश्यः) मांसके टुकडे (सदा) निरंतर (निगोदौघसुतः) निगोद जीवों को पैदा करने वाले हैं ।।७।।

भावार्थ– मांस खानेवाले के प्रयत्न विना ही अपनी आयु के पूर्ण होने से अपने आप मरे हुये भैंस मछलि आदि के मांस के खाने वाला अथवा हस्तादि के द्वारा स्पर्श करनेवाला दोनों ही भाव हिंसा और द्रव्यहिंसा के भागी होते हैं । क्योंकि मांस पका हुवा हो पक रहा हो कच्चा हो अथवा शुष्क हो वह निरंतर निगोद जीवों को उत्पन्न करता रहता है अर्थात् उसमें एक शरीर के भीतर अनन्तानन्त जीव निरंतर उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं । इसलिये मांस का स्पर्श करने से वा खाने से उन जीवों का घात होता है यह द्रव्य हिंसा होती है और मांसभक्षण करने से कामक्रोधादि विकार भाव उत्पन्न होते है, इसलिये भावहिंसा भी होती है । सो ही पुरुषार्थं सिध्युपाय में लिखा है–

अभिमानभयजुगुप्सा हास्यारतिकामशोककोपाद्याः ।
हिंसायाः पर्यायाः सर्वेऽपि च नरकसंनिहिताः ।।१।
न विना प्राणिविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात् ।
मांसं भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ।।२।।
ये भक्षयन्त्यन्यपलं स्वकीयपलपुष्टये ।
त एव घातका यत्र वद को भक्षकं विना। ।।३।।
मांसास्वादनलुब्धस्य देहिनो देहिनं प्रति ।
हन्तुं प्रवर्तते बुद्धिः शाकिन्य इव दुर्धियः ।।४।।
आमां वा पक्कां वा खादति वा स्पृशति वा पिशितपेशीम् ।
स निहन्ति सतत निचितं पिंडं बहुजीवकोटीनाम् ।।५।।
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु ।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ।।६।।

अर्थ– अभिमान, भय, जुगुप्सा, हास्य, अरति, काम, शोक, कोप वगैरह यह सब दोष नरकको ले जानेवाले हैं तथा हिंसाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय हैं । विना वधके मांसकी अुत्पत्ति नहीं होती. इसीलिये मांसभक्षण करनेवालोंको जरूर हिंसा लगती है । जो अपने शरीरकी पुष्टीके लिये मांस खाते हैं, बताओ, अुनको छोडकर दुसरा कौन हिंसाका भागी होगा ? क्योंकि डाकिनके समान मांस भक्षीकी दृष्टि प्राणीके वधके तरफ लगती है । कोई प्रश्न करें कि प्रासुक करके मांस खानेवाले को हिंसाका दोष नहीं लगता है । अुसका समाधान यह है कि मांसके सुखानेपर पकानेपर तथा कच्ची अवस्थामें भी निरन्तर अुसी जातीके जीवोंकी अुत्पत्ति मांसमें होती रहती है ।अतः जो मांसकी डलीको चाहे वह कच्ची हो सूखी हो या पक्की हो, खाता है वह जीवोंका वध करता है ।

अब मांस खाने से द्रव्यहिंसा तो होती है, परन्तु मदकारी होने से भावहिंसा भी होती है, इस बात को बताकर मांस खाने से नरकादि गतियों में भ्रमण करना पडता है यह बताते हैं--

प्राणिहिंसार्पितं दर्प—मर्पयत्तरसं तराम् ।
रसयित्वा नृशंसः स्वं विवर्तयति संसृतौ ॥८॥

अन्वयार्थ– (नृशंसः) क्रूर पापी मानव (प्राणिहिंसार्पितं) पंचेन्द्रिय प्राणियों की हिंसा से उत्पन्न हुये तथा (दर्पं) मदावेश को (अर्पयत्) उत्पन्न करने वाले (तरसं) मांस का (रसयित्वा) स्वाद लेकर (स्वं) अपने आपको (संसृतौ) संसार में (तरां) अतिशय रूप से (विवर्तयति) परिवर्त्तन कराता है ।

भावार्थ– जो दया हीन नर राक्षस पंचेंद्रिय जीवों के घात से उत्पन्न होने वाला तथा खाने के अनन्तर काम क्रोध आदि विकृति को उत्पन्न करने वाले मांस को भक्षण करता है, वह मूर्ख विवेक शून्य प्राणी अपने आप को इस संसारमें द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप परिवर्त्तन कराता है अर्थात् इस दुःखमय संसार में परिभ्रमण करता है । मिष्टान्नकी अपेक्षा मांस में अधिक लोलुपता रहती है, इसलिये दर्पकारी है ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब मांस खानेके संकल्प मात्र करने वाला दुर्गति को प्राप्त हुवा और उसका त्याग करनेवाले सुगति को प्राप्त हुये, इसप्रकार त्याग करनेसे गुण और खाने से दोष उत्पन्न होते हैं इसको उदाहरण देकर समझा हैं।

भ्रमति पिशिताशनाभिध्यानादपि सौरसेनवत्कुगतीः।
तद्विरतिरतः सुगतिं श्रयति नरश्चण्डवत्खदिरवद्वा ॥९॥

अन्वयार्थ--जीव (पिशिताशनाभिध्यानात्) मांस भक्षण के संकल्प मात्र से (सौरसेनवत्) सौरसेन नामक राजा के समान (कुगतीः) कुगति में (नरकादिगति) (भ्रमति) भ्रमण करता है अर्थात् प्राप्त होता है और (तद्) उस मांसके (विरतिरतः) खाने का त्याग करने वाला (नरः) मनुष्य (चंडवत्) चंडाल के समान (वा) अथवा (खदिरवत्) खदिरसाल भिल्ल राजा के समान (सुगतिं) सुगतिको (श्रयति) प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थ-मांस खाना तो महापाप का कारण है। इसलिये मांस खाना तो दूर रहो, परन्तु मांस खाने का संकल्प मात्र करने वाला प्राणी भी सौरसेन राजा के समान तिर्यंच नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है अर्थात् दुर्गति को जाता है। और मांस खाने का त्याग करनेवाला मानव उज्जयिनी नगरी में स्थित चंड नामका चंडाल के समान अथवा खदिरसाल भिल्ल राजा के समान स्वर्ग पदको प्राप्त होता है। इसलिये मांस खाना अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

सौरसेन नाम के राजा ने मांस खाया नहीं था, परन्तु खाने की निरंतर भावना मात्र से नरक में गया। और चंडाल ने मांस खाने का त्याग किया था, खदिरसाल भील ने कौए के मांस खाने का त्याग किया, जिससे स्वर्गपद को प्राप्त हुवा।

मांसभक्षणसंकल्पी राजा सौरसेनकी कथा

भगवान् पुष्पदंतके जन्मोत्सवसे पवित्र काकंदी नगरीमें श्रावककुलोत्पन्न सौरसेन नामका राजा राज्य करता था। असने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना कुलधर्म समझकर मांस खानेका त्याग कर दिया था। बादमें कुछ वैदिकों, वैद्यों और शैवोंके कहनेसे अुसे मांस खानेकी रुची अुत्पन्न हुअी। किंतु की हुअी प्रतिज्ञाको न निबाहने के लोकापवादसे वह डरता था। अुस का कर्मप्रिय नामका रसोअिया अेकान्त में अनेक जलचर, थलचर और बिलोंमें रहनेवाले जन्तुओंका मांस तैयार करता था, किंतु अनेक राजकार्योंमें घिरे रहनेसे अुसे मांस खाने के लिये अेकान्त समय नहीं मिलता था। इस प्रकार कर्मप्रिय राजाकी आज्ञा के अनुसार प्रतिदिन मांस पकाता था। अेक दिन अुसने सांप का मांस पकाया और अुसीके जहरसे मरकर वह स्वयं-भूरमण नाम के समुद्रमें विशालकाय तिमिङ्गिल नामका महामत्स्य हुआ। कुछ कालके बाद राजा भी मरकर मांस खानेके संकल्प के कारण अुसी समुद्रमे अुसी महामत्स्य के कान में अुसका मैल खाने वाला मत्स्य हुआ। जिस का शरीर शाळी चावल के बराबर था। महामत्स्य मुंह खोलकर सोता रहता था और अुसके गुफाके समान गहरे गले में नदीके प्रवाहकी तरह जलचर जीवोंकी सेना घुसकर जीवित निकल आती थी। अुसे देखकर तन्दुलमत्स्य सोचता 'यह मत्स्य बडा पापी और अभागोंमें भी सबसे बडा अभागा हैं, जो अपने मुंहमें स्वयं ही आनेवाले मत्स्यों को भी नहीं खा सकता। यदि हार्दिक अिच्छाके प्रभावसे दैववश मेरा अितना बडा शरीर हो जायें तो मैं समस्त समुद्रको जलचरं जीवोंसे शून्य कर दूं। अिस संकल्पसे अल्पकाय तंदुलमत्स्य और समस्त मगर-मच्छोंको खानेसे महाकाय महामत्स्य मर कर सातवे नरकमें तेतीस सागरकी अुत्कृष्ट आयु लेकर अुत्पन्न हुअे। अुन दोनोंको भवप्रत्यय नामका कुअवधि ज्ञान था। अुसके द्वारा पूर्व जन्मका वृत्तांत जानकर वे दोनों नारकी आपसमें कहते 'तंदुलमत्स्य! मैने बडा पाप किया, अिसलिये मेरा यहां आना तो अुचित था'। किंतु तुम तो मेरे कानके बिलमें कान का मैल ही खाया करते थे तुम यहां कैसे आये? तब तंदुलमत्स्य अुत्तर देता "तुम्हारे क

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से भी बुरे, महादुःखके कारण अशुभ ध्यानसे मरकर मैं यहां पैदा हुआ हूं। स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्य के कानमें रहने वाला तंदुलमत्स्य बुरे संकल्पसे नरक में गया। मांस खानेके संकल्प मात्र से सौरसेन तन्दुलमत्स्य होकर सातवे नरक में गया।

मांसत्यागी चाण्डालकी कथा

अवन्ति देशकी अुज्जयिनी नामकी नगरीमें नगरके बाहर चण्ड नामका अेक चाण्डाल रहता था। अेक दिन वह चाण्डाल मौज ले रहा था। अुसके अेक ओर मांसके व्यंजन रखे हुअे थे। दूसरी ओर शराबके भरे कलश रखे थे। चाण्डाल मांसके व्यंजनोंके साथ शराब पीता जाता था और बीच बीचमें चमडेकी रस्सी बटता जाता था। आकाशमें अुडते हुअे अेक पक्षी शावकका मुंह खुल जानेसे अेक सर्प शराबमें आ गिरा था और अुससे शराब विषैली हो गयी थी। अिसी समय धर्मोपदेश तथा जन्मान्तरकी कथाओं के द्वारा लोगोंका अुपकार करने के लिये भ्रमण करते हुअे दो चारण ऋद्धिके धारी मुनियोंको पासमें ही आकाशसे अुतरते हुअे देखकर चाण्डालको बडा कुतूहल हुआ। वह भी अुनके समीप गया। वहां नगरके श्रावकोंको व्रत ग्रहण करते हुअे देखकर अुसने अुन्हें प्रणाम किया और सुनन्दन मुनी के अग्रवर्ती भगवान अभिनन्दन मुनिसे अपने योग्य व्रत की याचना की।

जैसे मेघ सबके अुपकारके लिये है वैसे ही धार्मिक पुरुष भी सबके अुपकारके लिये हैं। और जैसे स्थान और अस्थानका विचार किये बिना मेघ सर्वत्र बरसता है वैसे ही धार्मिक पुरुष भी हितकी बात कहनेमें स्थान और अस्थान का विचार नहीं करते। अैसा सोच कर भगवान अभिनन्दन मुनीने अवधिज्ञानसे जाना कि यह चाण्डाल जल्द ही मरने वाला है। अतः वे अुससे बोले भाअी चाण्डाल! मांस और शराब पीनेके बीचमें जितनी देर तुम रस्सी बांटो अुतनी देर के लिये तुम मांस और शराब का त्याग कर दो। चाण्डालने अिस बातको स्वीकार कर लिया। और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहांसे चलकर अपने स्थानपर आया। मांसके पास जाकर अुसनें मांस खाया और संकल्प किया कि जबतक फिर मैं अिस स्थानपर नहीं आअुंगा तबतक के लिये मेरे मांसका त्याग है। अिसके बाद वह शराबके पास गया और वहां अुसने शराब पी। पीते ही तीव्र जहरके प्रभावसे बुद्धी कुण्ठित हो गअी। अतः यद्यपि वह अुस का त्याग नहीं कर सका फिर भी मरकर मांसत्याग के प्रभाव से यक्ष कुलमें प्रधान यक्ष हुआ।

अवन्ति देशमें चण्ड नाम का चाण्डाल बहुत थोडी देरके लिये मांसका त्याग कर देनेंसे मरकर यक्षोंका प्रधान हुआ। और जो मनुष्य हमेशा के लिये मांस का त्याग करता है उसको सद्गतो की प्राप्ति क्यों नहीं होगी? अवश्य ही होगो ऐसा समझकर अपना हित चाहने बाले मनुष्यों को मांसका अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

खदिरसार भिल्लकी कथा

इसी जंबूद्वीपके विंध्याचल पर्वत के कुटच नाम के वनमें अेक खदिरसार नामका भील था। किसी अेक दिन अुसने समाधिगुप्त नामके मुनिराजको देखकर बडे हर्षसे अुन्हें नमस्कार किया। इसके अुत्तरमें मुनिराजने "आज तुझे धर्मलाभ हो" अैसा आशिर्वाद दिया। तब अुस भीलने पूछा कि हे प्रभो! धर्म क्या है? और अुससे जीवोंको क्या लाभ होता है? भील के इस प्रकार पूछनेपर वे मुनिराज कहने लगे कि मधुमांसादिकका सेवन करना पापका कारण है। इसलिये अुसका त्याग करना धर्म है और अुसकी प्राप्ति होना धर्मलाभ कहलाता है तथा पंचाणुव्रत रूप धर्मसेवन करनेसे जीवों को पुण्यकी प्राप्ति होती है और पुण्यसे स्वर्गके अुत्तम सुख मिलते हैं। इसे सुन कर वह भील कहने लगा कि अैसे धर्म का स्वामी मैं नहीं हो सकता। तब मुनिराज ने अुसके कुल का विचार कर कहा कि हे भव्य! क्या तेने पहिले कभी कौअेका मांस खाया है? तब वह बुद्धीमानोंमे श्रेष्ठ भील विचारकर कहने लगा कि मैने कौअेका मांस तो कभी नहीं खाया है। तब मुनिराजने कहा कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब अुसे जरूर छोड देना चाहिये। मुनिराजके ये वचन सुनकर वह भील संतुष्ट होकर कहने लगा कि यह व्रत मुझे दे दीजिये। इस प्रकार वह भील अुस समय व्रत लेकर तथा मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया। किसी अेक समय अुसको अेक असाध्य रोग हुआ. वैद्योंने बतलाया कि कौअेका मांस खानेसे यह रोग शांत हो सकता है। यह सुनकर वह भील विचार करने लगा कि भले ही मेरे प्राण चले जावे इन चंचल प्राणोंसे मुझे क्या काम है? मैंने धर्मकी इच्छासे अुन मुनिराजसे जो व्रत स्वीकार किया है अुसका भंग मैं नहीं कर सकता। क्योंकि संकल्प किये हुये व्रतका भंग करनेसे पुरुष व्रती कहां रह सकता है। मैं इस पापरूप मांस को खाकर आज जीवित रहना नहीं चाहता। इस प्रकार सोच विचार कर अुसने कौअेका मांस खाना स्वीकार नहीं किया। यह बात सुनकर शूरवीर नामका अुसका साला सारस नगरसे आया। आते हुअे मार्गमें अुसने गहन वनके भीतर अेक वटवृक्षके नीचे रोती हुअी किसी स्त्रीको देखा। शूरवीरने अुसे रोते हुअे देखकर पूछा कि तू क्यों रो रही है? इसके अुत्तरमें वह कहने लगी कि तुम चित्त लगाकर सुनो। मैं अेक वनयक्षी हूं और यहां अिस वन में रहती हूं। तेरा बहनोई खदिरसार व्याधीसे बहुत पीडित है और कौअेका मांस त्याग करनेसे वह मेरा पति होगा। परंतु तू अब अुसे त्याग किये हुये मांसको ही खिलानेके लिये जा रहा है और अुसे अिस तरह घोर नरकमें डालकर दुःखोंका पात्र बनाना चाहता है. इसलिये मैं रो रही हूं। हे भद्र! अब तू अपना आग्रह छोड दे। अिस प्रकार अुस देवीकी बातें सुनकर वह शूरवीर अुस वन में पहुंचा। खदिरसार रोगी को देखा और कहा कि वैद्यने जो औषधि बतलायी है वह मेरी प्रसन्नताके लिये ही खावो, अिसके अुत्तरमें मांसकी अनिच्छा करता हुआ वह खदिरसार अिस प्रकार कहने लगा कि तू मेरे प्राणोंके समान प्रेम करने वाला भाई है. स्नेहके कारण मेरे जीवित रहने की अिच्छासे तू अैसा कहता है. परंतु व्रतोंका भंगकर जीवित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहनेसे जीव का हित नहीं हो सकता, अिसके सिवा व्रत भंगकर जीवित रहना दुर्गति का भी कारण है। अिस प्रकार कहकर वह अपने व्रतमें निश्चित ही रहा। अुसका अिस प्रकार निश्चय देखकर शूरवीरने अुस यक्षीका भी वृत्तांत अुसे समझा दिया। अुस वृत्तांत का विचार कर अुस खदिरसारनें श्रावकोंके पूर्ण पांचो व्रत धारण किये और आयुके अंतमें मरकर सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ। अुसके वियोगसे शूरवीर को बहुत दुःख हुआ और वह अुसकी अुत्तरक्रिया कर अपने घर जाने लगा। जब वह अुस वटवृक्षके नीचे गया और फिरसे रोती हुई देखकर आश्चर्यसे अुस यक्षीसे पूछा कि क्यों हमारा बहनोअी मरकर तुम्हारा पति हुआ या नहीं? अिसके अुत्तरमें अुस यक्षीनें कहा कि सम्पूर्ण व्रत धारण करनेसे वह व्यंतर योनिसे परान्मुख हो गया अर्थात् अिस योनिमें नहीं आ सका और सौधर्मस्वर्गमें जाकर देव हुआ। फिर भला वह मेरा पति कैसे हो सकता है? वह तो अब अुत्कृष्ट दिव्यभोगोंका भोक्ता हुआ है। अुस यक्षीकी ये यथार्थ बातें सुनकर वह विचार करने लगा कि देखो, व्रत का कैसा माहात्म्य है। अिससे अिच्छानुसार सुखोंकी प्राप्ति होती है। अिस प्रकार विचार करते हुअे अुसने समाधिगुप्त मुनीके समीप जाकर श्रावकके व्रत धारण कर लिये। एक कौअेके मांसका त्याग करने वाले खदिरसार भील को स्वर्ग की प्राप्ति हुई तो जो सम्पूर्ण मांस का त्याग करता है उसको स्वर्गादि की प्राप्ति क्यों नहीं होगी अर्थात् अवश्य होगी, ऐसा विचार कर बुद्धिमान को मांस का त्याग अवश्य करना चाहिये।

अब मांस भी प्राणियों का शरीर है और मूंग मोठ आदि धान्य भी प्राणियोंका अंग है। इसलिये मूंग आदि के समान मांस खाने में भी दोष नहीं है, ऐसी आशंकाका उत्तर देते हैं--

प्राण्यङ्गत्वे समेप्यन्नं भोज्यं मांसं न धार्मिकैः
भोग्या स्त्रीत्वाविशेषेऽपि जनैर्जायैव नाम्बिका ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (प्राण्यङ्गत्वे) प्राणिके अंगकी अपेक्षा (समे) मांस और अन्नमें समानता होते हुये (अपि) भी (धार्मिकैः) धर्मात्मा के द्वारा (अन्नं) अन्न (भोज्यं) खाने योग्य है किन्तु (मांसं) मांस (न) खाने योग्य नहीं है। क्योंकि (स्त्रीत्वाविशेषेऽपि) स्त्रीत्व रूप सामान्य धर्मकी अपेक्षा स्त्री और माता में समानता होनेपर भी (जनैः) पुरुषों के द्वारा (जाया) स्त्री (भोग्या) भोग्य है (अम्बिका) माता भोग्य (न) नहीं है ॥१०॥

भावार्थ– मांस भी जीव का शरीर है और अन्न भी जीवका शरीर है। जीवशरीर की अपेक्षा समान होते हुये मांस रक्त रस आदि अशुचि पदार्थोंसे उत्पन्न होता है, इसलिये खाने योग्य नहीं है और मूंग आदि अन्न खून पीपादि अशुचि पदार्थ से उत्पन्न नहीं होता है, इसलिये खाने योग्य है। जैसे स्त्रीत्व मात्र के साथ भोग्यता की व्याप्ति नहीं है अर्थात् केवल स्त्रीत्व होने से भोग्यता की व्याप्ति लगाना ठीक नहीं है। माता तथा पत्नी इन में स्त्रीत्व समान रहनेपर भी पत्नी ही योग्य है, माता नहीं। उसी प्रकार प्राणी के शरीरत्व मात्र के साथ भक्ष्यपने की व्याप्ति नहीं है। सो ही लिखा है।

मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्।
यद्वन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः ॥१॥
शुद्धं दुग्धं न गोमांसं वस्तुवैचित्र्यमीदृशं।
विषघ्नं रत्नमाहेयं विषं च विपदे यतः ॥२॥
हेयं पलं पयः पेयं समे सत्यपि कारणे।
विषद्रोरायुषे पत्रं मूलं तु मृतये मतम् ॥३॥

अर्थ– जो जीवका शरीर है वह मांस है ऐसी तर्कसिद्ध व्याप्ति नहीं हैं किन्तु जो मांस है वह अवश्य ही जीव का शरीर है, ऐसी व्याप्ति अवश्य है। जैसे जो वृक्ष है वह जरूर नीम है ऐसी व्याप्ति नहीं है किन्तु जो नीम है वह वृक्ष जरूर है ऐसी व्याप्ति है। गाय का दूध शुद्ध है, मांस नहीं, जैसे सांपका रत्न विष नाशक होता है और विषतो घातक है। यद्यपि मांस और दूध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों की उत्पत्ति गाय से होती है तथापि ऊपर के दृष्टांत से दूध उपादेय है और मांस त्याज्य है। दूसरा उदाहरण भी देते हैं कि विषवृक्षके पत्ते जीवन दाता और उसकी जड मृत्युदायिक होती है। इसलिये मांस में और अन्न में प्राणि के अंगत्व समान होते हुये भी मांस और अन्न में समानता नहीं होती है।

पंचेद्रियस्य कस्यापि वधे तन्मांसभक्षणे।
यथा हि नरकप्राप्तिर्न तथा धान्यभोजनात्॥
धान्यपाके प्राणिवध: परमेकोऽवशिष्यते।
गृहिणां देशयमिनां स तु नात्यंतबाधक:॥
मांसखादकगतिं विमृशंत: शस्यभोजनरता इह संत:।
प्राप्नुवंति सुरसम्पदमुच्चैर्जैनशासनजुषो गृहिणोऽपि॥३॥

अर्थ- किसी भी पंचेद्रिय जीवके मांस भक्षण से जैसे नरक की प्राप्ति होती है वैसे धान्यभक्षण से नहीं होती है। धान्य के भक्षण से भी वनस्पतिकायिक जीवका वध होता है। परन्तु देश संयमी के लिये अत्यंत बाधक नहीं है। क्योंकि उसके बिना जीवका निर्वाह नहीं होता है, इसलिये अशक्यानुष्ठान है। मांसभक्षण करनेवालों को दुर्गति की प्राप्ति होती है। अत: इसका विचार करनेवाले विचारवान मांसके त्यागी जैन गृहस्थों को उच्च गति सम्बंधी सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

अब मधु (शहद) के दोषों को बताते हैं।

मधुकृद्व्रातघातोत्थं मध्वशुच्यपि बिन्दुश:।
खादन् बध्नात्यघं सप्त-ग्रामदाहांहसोऽधिकम्॥११॥

अन्वयार्थ- (मधुकृद्व्रातघातोत्थं) मधुको उत्पन्न करने वाले प्राणियों के समूह के नाश से उत्पन्न होनेवाले (अपि) और (अशुचि) अपवित्र ऐसे (मधु:) मधु को (बिन्दुश:) बिन्दु प्रमाण (अपि) भी (खादन्) खाने वाला मानव (सप्तग्रामदाहांहस:) सात ग्रामों के जलानेवाले पाप से (अधिकं) अधिक (पापं) पापको (बध्नाति) बांधता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-जैसे किसी बडे नगरमें मनुष्योंकी वस्ती होती है, उसी प्रकार मधुमक्खियों के छत्तों की रचना होती है। उसमें असंख्य मक्खियों का समूह निरंतर उत्पन्न होता रहता है। तथा पुष्पोंका रस चूसकर मक्खियां अपने छत्ते मे मधु इकठ्टा करती हैं। वह रस मक्खियों का एक प्रकार का अपवित्र वमन है। उस मधुमें भी असंख्यात निरंतर समूर्च्छन जीव उत्पन्न होते रहते हैं। मधु निकालने वाले जब छत्तोंको तोडते है, उस समय उसमें रहने वाले जीवों का तथा उसमें रहनेवाले मक्खियों का घात होता है। इसलिये मधुभक्षण करने में सात ग्राम के भस्म करने से अधिक पाप होता हैं। सो ही लिखा है–

ग्रामसप्तकविदाहिरेकसा तुल्यता न मधुमक्षिरेफसः।
तुल्यमञ्जलिजलेन कुत्रचिन्निम्नगापतिजलं न जायते ॥
याश्चिखादिषति सारघं कुधीर्मक्षिकागणविनाशनस्पृहः।
पापकर्दमनिषेधनिम्नगा तस्य हन्त करुणा कुतस्तनी ? ॥१॥
स्वयमेव विगलितं यद् गृहीतमथवा बलेन निजगोलात्।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रयप्राणिनां घातात् ॥
अनेकजंतुसंघात–निघातनसमुद्भवम्।
जुगुप्सनीयं लालावत्कः स्वादयति माक्षिकम् ॥२॥
मक्षिकागर्भसम्भूत–बालाण्डकनिपीडनात्।
जातं मधु कथं संतः सेवन्ते कललाकृति ॥
एकैककुसुमक्रोडाद्रसमापीय मक्षिकाः।
यद्वमन्ति मधूच्छिष्टं तदश्नन्ति न धार्मिकाः ॥३॥

अर्थ–मधुको सेवन करने वालेको पापके बराबरी सात गांव जलानेके पापसे भी नहीं की जा सकती। जैसे गंगाजलकी बराबरी अंजलीके जलसे नहीं हो सकती। जो कुबुद्धि मधु खानेकी इच्छा करता है, उसके शहदकी मक्खियोंके वधकी इच्छा जरूर सिद्ध होती है। और उसके पापरूपी कीचडको बहानेवाली दया भला कैसे हो सकती है? कोई स्वयं टपकी हुयी अथवा मधुके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छत्तोसे मक्खियोंको निकालकर मधुको निकालता या उसे खाता है, उसको भी छत्तेके आश्रित जीवोंके वधका दोष लगता ही है। मधु नाना जीवोंके वधसे प्राप्त होता है। वह मधुमक्खियोंका झूठन है, अतः घृणास्पद है, अुसे कौन भला खायेगा ? मधु मक्खियोंके वधसे अुत्पन्न होता है, मांसाकृति है, अुसको अच्छे लोग कैसे खावेंगे ? फूलके कोशसे रस चूसकर मक्खियां लाती है और अुसे छत्तेमें इकट्ठा करती है। इसप्रकार उसके उच्छिष्टसे मधु तैयार होता है। अतः धार्मिक पुरुष उसे नहीं खाते हैं।

अब मधु के समान नवनीत भी बहुतसे दोषों का कारण है, इसलिये छोडने योग्य है ऐसा बताते हैं।

मधुवन्नवनीतं च मुञ्चेत्तत्रापि भूरिशः।
द्विमुहूर्तात्परं शश्वत्संसजन्त्यंगिराशयः ॥१२॥

अन्वयार्थ–(धार्मिकः) धार्मिक पुरुषों को (मधुवत्) मधुके समान (नवनीतं) मक्खनको (अपि) भी (मुञ्चेत्) छोडना चाहिये। क्योंकि (तत्रापि) उस नवनीतमें भी (द्विमुहूर्तात्) दो मुहूर्त के (परं) बाद (शश्वत्) निरंतर (भूरिशः) बहुतसे (अंगिराशयः) जीवों का समूह सम्मूर्च्छन जीव (संसजन्ति) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–जिसप्रकार मधु छोडने योग्य है उसी प्रकार नवनीत भी छोडने योग्य है। क्योंकि नवनीतमें भी दो मुहूर्त बाद निरंतर असंख्यात समूर्च्छन जीवों का समूह उत्पन्न होता रहता है। सो ही लिखा है–

यन्मुहुर्तयुगतः परं सदा मूर्च्छति प्रचुर जीवराशिभिः
तद्गिलन्ति नवनीतमत्र ये ते व्रजन्ति खलु कां गतिं मृताः
अंतर्मुहूर्तात्परतः सुसूक्ष्मा जन्तुराशयः।
यत्र मूर्च्छन्ति नाद्यं तन्नवनीतं विवेकिभिः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—दो मुहूर्तके बाद सदैव नवनीतमें भी संमूर्च्छन जीव पैदा होते हैं, इसलिये जो उसे खाते हैं वे मरकर किस गतिमें जायेंगे? किसी आचार्योंका यह मत है कि नवनीतमें अंतरमुहूर्तके बाद संमूर्च्छन जीवोंकी उत्पत्ति होती है। इसलिये विवेकियोंको उसे नहीं खाना चाहिये।

अब पंचोदुम्बर फल भक्षण करने से भी भावहिंसा और द्रव्यहिंसा दोनों होती हैं, इसको बताते हैं—

पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष-वटफल्गुफलान्यदन्।
हन्त्यार्द्राणि त्रसान् शुष्काण्यपि स्वं रागयोगतः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(आर्द्राणि) गीले (अपि) अथवा (शुष्काणि) सूखे (पिप्पलोदुम्बरप्लक्षवटफल्गुफलानि) पीपल, उम्बर, पाकर, वड अंजीर इन पांच उदुम्बर फलोंको (अदन्) खानेवाला मानव (त्रसान्) त्रस जीवों को तथा (रागयोगतः) राग विशेष होने से (स्वं) अपने आपको भी (हन्ति) नष्ट करता है।

भावार्थ—वृक्षके काठको फोडकर उसके दूध से उत्पन्न होने वाले फलों को क्षीरीफल वा उदुम्बर फल कहते हैं। वे पांच होते हैं। वड, पीपल, गूलर, अंजीर और पाकर। इन फलो में असंख्यात त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। उन फलों को विदारनेंपर वे सब जीव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं, और असंख्यात जीव सूक्ष्म होते हैं वे दृष्टि गोचर नहीं होते। उन फलों को खाने से उन सब जीवों का घात होता है। इसलिये द्रव्य प्राणों का घात होने से द्रव्यहिंसा होती है। खाने की लोलुपता रूप राग होने से भावहिंसा भी होती है। यह रागयोगशब्द अन्तदीपकन्यायसे प्रयुक्त है इससे यह सूचित होता है मधु मांस शराब के सेवन करने से भी द्रव्यहिंसा और भावहिंसा होती है, सो ही लिखा है।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्ष-न्यग्रोधादिफलेष्वपि।
प्रत्यक्षाः प्राणिनः स्थूलाः सूक्ष्माश्चागमगोचराः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंख्यजीवव्यपघातवृत्तिभिर्न धीवरैरस्ति समं समानता ।
अनंतजीवव्यपरोपकारणामुदुम्बराहारविलोलचेतसाम् ।।

इन पांच उदुम्बरोमें भी स्थूल प्राणी तो प्रत्यक्ष दिखते हैं। तथा शास्त्र कथनानुसार सूक्ष्मजीव भी पाये जाते हैं। पांच उदम्बरोंके खानेकी जिसके चित्तमें लोलुपता है वे अनंत जीवोंके वध करनेवाले हैं। इसलिये उनकी संख्यात जीवोंको मारकर अजीविका करनेवाले धीवरोंके साथ भी समानता नहीं है।

अब मद्यपानादि के समान दोष का कारण होने से रात्रि-भोजन तथा बिना छना पानी पीने का त्याग करना चाहिये, इस बातको बताते हैं-

रागजीववधापायभूयस्त्वात्तद्वदुत्सृजेत् ।
रात्रिभक्तं तथा युंज्यान्न पानीयमगालितम् ।।

अन्वयार्थ-धर्मात्मा पुरुष (तद्वत्) मद्यपानादिके समान (रागजीववधापायभूयस्त्वात्) राग, जीव हिंसा और जलोदरादि रोग का कारण होने से (रात्रिभक्तं) रात्रि भोजनको (उत्सृजेत्) छोड (तथा) और (अगालितं) वस्त्रसे बिना छना (पानीयं) पानीको (न) नहीं (युंज्यात्) प्रयोग में लावे।

भावार्थ-जिस प्रकार मद्यमांसादि के भक्षण करने से द्रव्य और भावहिंसा होती है इसलिये मद्यपानादि त्याज्य हैं, उसी प्रकार रात्रि भोजन करने में दिनकी अपेक्षा राग विशिष्ट रहता है, भोजन में अत्यंत लोलुपता होती है, इसलिये भावहिंसा होती है और सूर्य के प्रकाश के विना सूक्ष्म जीवों का अवलोकन भी नहीं होता है, रात्रिमें जीवोंका संचार भी विशेष होता है इसलिये द्रव्य हिंसा भी होती है। सूक्ष्म जीवों के पेट में चले जाने से जलोदर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये रात्रि में भोजन करना अपायका कारण है। इसलिये धार्मिक जनों को जीव वध और अपाय के कारणभूत रात्रिके भोजन का अवश्य त्याग करना चाहिये। और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्त्रसे बिना छना पानी को भी पीने आदि के प्रयोग में नहीं लाना चाहिये तथा पानी यह शब्द उपलक्षण इससे जितने भी तैल घृत आदि पेय पदार्थ है, उनका वस्त्रसे विना छने प्रयोग नहीं करना चाहिये।

अब दृष्टांतपूर्वक रात्रिभोजन त्याग के फल को दिखाते हैं—

चित्रकूटेऽत्र मातंगी यामानस्तमितव्रतात् ।
स्वभर्त्रा मारिता जाता नागश्रीः सागरांगजा ॥५॥

अन्वयार्थ— (अत्र) इस भरत क्षेत्रमें (चित्रकूटे) चित्रकूट नाम नगर में (मातंगी) चंडालिनी (स्वभर्त्रा) अपने पति के द्वारा (मारिता) मारी गई (यामानास्तमितव्रतात्) केवल एक प्रहर तक पाले हुये रात्रि भोजन त्याग व्रतसे (सागरांगजा) सागर दत्त सेठ की पुत्री (नागश्रीः) नागश्री (जाता) हुई।

भावार्थ— रात्रि भोजन के त्यागसे चांडालकुल में उत्पन्न युवति मरकर उत्तम कुल में श्रेष्ठि पुत्री होकर उत्पन्न हुई, रात्रि भोजन त्याग की महिमा अपार है।

रात्रिभोजन त्याग की कथा

इस पृथ्वीतलपर एक लाख योजनके जम्बूद्वीप है इस जम्बूद्वीप के दक्षिणदिशा में भरत नाम का क्षेत्र है। इस भरत क्षेत्र के मालव देश की उत्तरदिशा में प्रसिद्ध चित्रकूट नाम का नगर था, उस नगर में जागरिक नामका एक चंडाल रहता था। उसके मातंगिनी नामकी भार्या थी। वह चंडाल अत्यंत क्रोधी और पापिष्ट था। एक दिन उस गांव में एक दयामूर्त्ति विषयरूपी बन को नाश करने लिये हाथी के समान, संसाररूपी समुद्र को सुखाने के लिये दावानल के समान, अनेक देशस्थ शिष्यों से शोभित रत्नत्रयधारी दिगम्बर महामुनि का आगमन हुवा। जिस प्रकार बादलों की ध्वनी सुनकर मयूर नाचने लगते हैं उसी प्रकार मुनिरूपी बादलों को देखकर भव्यजीव रूपी मयूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाचने लगा। यतिरूपी सूर्य का अवलोकन कर भव्यरूपी कमल विकसित हो गये। सारे नागरिक लोग मुनिराज के दर्शन करने के लिये गये। उनको जाते हुये देखकर यह सब कहाँ जा रहे हैं? आज कौनसा उत्सव, ऐसा विचार कर नागरिक की भार्या मातंगिनी भी उनके पीछे पीछे जाने लगी. वृक्षके नीचे शिलापर बैठे हुये मुनिपुंगव को नमस्कार कर सम्पूर्ण नागरिक लोग मुनिराज के सामने बैठ गये। यतिवर अपने दंतावलिकी किरणों के द्वारा सभा को प्रकाशित करते हुये धर्मोपदेश करने लगे।

अनादिकालीन कर्मसंस्कारों के कारण जीव वास्तविक स्वभाव को भूले हुये, अतः यह विषयवासनाजन्य सुखों को ही वास्तविक सुख समझ रहा है। ये विषयसुख भी आरंभ में बडे सुन्दर मालूम पडते हैं, इनका रूप बडा ही लुभावना है, जिसकी भी इनपर दृष्टि पडती है वही इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है, पर इनका परिणाम हालाहल विष के समान होता है। कहा भी है—

आयातरम्ये परिणामदुःखे सुखे कथं वैषयिके रतोऽसि।

अर्थात्— वैषयिक सुख परिणाम में दुःखकारक होते हैं इनसे जीवनको क्षणिक शांति मिल सकती है। किन्तु अन्तमें दुःखदायक ही होते हैं। इसलिये मानवजीवन की सार्थकता करने के लिये मनुष्यों को इनका परित्याग करने का प्रयत्न करना चाहिये। वह त्याग दो प्रकार का है. एक मुनिधर्मरूप और दूसरा गृहस्थ धर्मरूप। सम्पूर्ण सावद्ययोगसे विरत होना मुनिधर्म है और एक देश हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रहादिका त्याग करना गृहस्थधर्म है। उत्कृष्ट साक्षात् मोक्षका कारण मुनिधर्म है, परम्परा मोक्षका कारण श्रावकधर्म है। तीन मकार का त्याग (मधु मांस मद्य) पंचौदुम्बर फल का त्याग रात्रिभोजनका त्याग पानी छानकर पीना और रोज देवदर्शन करना यह श्रावकों के मूलगुण है। श्रावकों को इनका पालन अवश्य करना चाहिये। सम्यक्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और व्रत के विना मानवजन्म पशु के समान है। मानव जन्म प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है--

जगत्यनन्तैकहृषीकसंकुल्ले, त्रसत्वसंज्ञित्वमनुष्यतार्यता ।
सुगोत्रसद्गात्रविभूतिवार्त्तता सुधीसुधर्माश्च यथाग्रदुर्लभाः ।

अनन्तानंत पृथ्वी काय अपकाय तेजकाय वायुकाय वनस्पति कायादि एकेन्द्रिय जीवों से व्याप्त इस संसार में त्रसत्वपना संज्ञित्व पद की प्राप्ति, मानवजन्म, आर्यक्षेत्र, सुगोत्र, सुन्दरशरीर विभूति आजोविका, अच्छीं बुद्धि, सद्धर्मकी प्राप्ति यह एकेक उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभ है। मानवजन्म को प्राप्त कर--

श्रद्धानगंधसिन्धुरमदुष्टमुद्यदवगममहामात्रम् ।
धीरो व्रतबलपरिवृतमारूढोरीन् जयेत्प्रणिधिहेत्या ।

निर्दोष श्रद्धानरूपी हाथी पर चढकर ज्ञानरूपी अंकुश चारित्ररूपी सेना से युक्त होकर समाधिरूपी तलवार से कर्म रूपी शत्रुवोंका नाश कर मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये। ऐसे पर-मोत्कृष्ट मनुष्यजन्म को व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिये। मुनिवर के समीचीन प्राणि मात्र का हित करने वाले धर्मोपदेश को सुन कर किन्हीं ने मुनिव्रत धारण किया। किन्हींने पवित्र सम्यक्त्व ग्रहण किया और किन्हीने उत्कृष्ट श्रावक व्रत ग्रहण किया। जब सब लोग यथाशक्ति व्रतग्रहण कर चुकें तब सब के पीछे खडी हुई जागरिक भार्याकी विनय पूर्वक दोनों हाथों को मस्तक पर रखकर कहने लगी। हे निष्कारण बन्धु! जगत्तारक जगद्बन्धु! पतित पावन! गुरुवर्य! मुझ पतिता का भी व्रत देकर उद्धार करो। मैं मांस मदिरादि का त्याग करने में असमर्थ हूं, मेरे योग्य व्रत देवो। मुनि कुंजर ने उसको भव्य समझकर कहा हे वत्सा! तू रात्रिभोजन का त्याग करो, उसने कहा भो देव! मैं पूर्ण रात्रिभोजन त्याग करने के लिये असमर्थ हूँ, तब गुरुदेवने कहा हे पुत्री! तीन प्रहर रात्रि व्यतीत होने के बाद में सूर्योदय हो तबतक भोजन नहीं करना अर्थात् रात्रि के पछले प्रहरमें भोजन नहीं करना। मातंगिनी ने सहर्ष व्रत स्वीकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया और अपने घर गई। उसके मन में अत्यंत उल्लास था, मानो एक निधी ही प्राप्त हो गई। जब सन्ध्याकाल हुई उसका पति घरपर आया उसने अपने पति को सारा वृतान्त कहा। उसका पति अतिक्रोधी था, धर्ममार्ग से पराङ्मुख था, पाप कार्यो में रत था। ज्योंहीं उसने त्याग की बात सुनी की उसकी क्रोधरूपी अग्नि जाज्वल्यमान हो गई। वह क्रोध में आकर कहने लगा कि तूने किसको पूछकर व्रतग्रहण किये। तुझे अभी भोजन करना पडेगा। मातंगिनीने कहा प्राण जाने पर भी मैं अपने व्रतों को नहीं छोडूंगी, क्योंकि शरीर नष्ट हुवा तो कुछ भी नष्ट नहीं हुवा, फिर दूसरा शरीर मिल जायगा, परन्तु व्रतोंका मिलना बडा कठिन है, ऐसा विचार कर वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रही। उसके पतिने क्रोध में आकर इतने जोर से मारा की उसके प्राण चले गये। क्रोधी क्या नहीं करता-

हन्तात्मानमपि ध्वन्त: क्रुद्धा: किं किं न कुर्वते।

बडे खेद की बात है अपने आप का भी घात करने वाले क्रोधी क्या क्या नहीं करते। वह जागरिक की भार्या मरकर रात्रिभुक्तित्याग व्रत के प्रभाव से छप्पन करोड दीनार के स्वामी सागरदत्त सेठ के नागश्री नामकी अत्यंत रूपवती पुत्री हुई। देखो, एक पहरमात्र रात्रिभोजन का त्याग करनेवाली चडालनी सद्गति को प्राप्त हुई तो हमेशा के लिये त्याग करनेवाले को सद्गति क्यों नहीं होगी? अवश्य होगी। ऐसा विचार कर रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिये।

इस प्रकार कृतपरिकर्मा पाक्षिक श्रावक के द्वारा स्थूल हिंसादि का त्याग भी यथाशक्ति करना चाहिये ऐसा उपदेश देने के लिये कहते हैं--

स्थूलहिंसानृतस्तेय---मैथुनग्रन्थवर्जनम्।
पापभीरुतयाऽभ्यस्ये---द्बलवीर्यनिगूहक: ॥१६॥

अन्वयार्थ- (बलवीर्यनिगूहक:) अपनी शक्ति को न छिपाता हुवा श्रावक (पापभीरुतया) पापके भयसे (स्थूलहिंसानृतस्तेयमैथुनग्रन्थवर्जनं) स्थूलहिंसा, झूठ, चौरी, कुशील और परिग्रह इन के त्यागरूप पंचाणुव्रत पालन का (अभ्यस्येत्) अभ्यास करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–आहारादि पचाने की शक्तिको बल कहते हैं। आहारादिजा शक्तिः बल। नैर्सगिक वीर्य = स्वाभाविक शक्ति को वीर्य कहते हैं। अपनी शक्ति को न छिपाकर अर्थात् शक्ति अनुसार श्रावकों को पापके भयसे पांच पापों का त्याग करना चाहिये। अर्थात् हिंसादिक पांच दुःखके कारण हैं। हिंसक मानव प्राणियों को उद्वेजनीय होता है, नित्यानुवद्ध वैर वाला होता है, इन लोकमें वध बंधनादि क्लेशादि को प्राप्त होता है, मर कर नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

असत्यवादी मानव अविश्वास का पात्र होता है। जिव्हा, कर्ण नासिकादिके छेदको प्राप्त होता है, असत्यवादी को अनेक प्रकार की आपतियां प्राप्त होती है। परलोकमें वसुराजा के समान दुर्गति को प्राप्त होता है। चोरी करने वाला मनुष्य कर्मचारी चण्डाल आदि के द्वारा उद्वेजनीय होता है। इस लोक में वध बन्धन करचरण नासिकाछेदन गर्दभारोहण शिरमुण्डनादि अनेक आपत्तियों को प्राप्त होता है। परलोक में नरक तिर्यंचादि दुर्गतियों में जाता है और वहाँ अनेक प्रकार के दुःख सहन करता है। अब्रह्मचारी पुमान मदोन्मत्त होता है। हथिनी में मदोन्मत्त हुये हाथी के समान परवश होकर अनेक प्रकार के वध बन्धनादि क्लेशोंको सहन करता है। मोहकर्म के अभिभूत होकर कार्य अकार्य को नहीं जानता है। परस्त्रीलम्पट पुरुष दानपूजा जिनस्तवन उपवासादि कुछ भी पुण्यकर्म नहीं करता है। इस लोक में भी अनेक प्रकार के दुःख भोगता है. परलोक में परस्त्रीके स्मरणमात्रमे रावण के समान नरकादि गति को प्राप्त होता है। सर्वलोक में निन्दनीय होता है।

सपरिग्रही मानव उस परिग्रह का अर्जन रक्षण क्षयादि से अनेक प्रकार के दुःखो को भोगता है अर्थात् पहिले अर्जन करनेमें दुःख, पश्चात् धन की रक्षा में दुःख और नाश होने के बाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महा दुःख होता है, तो भी मानव यह उचित कार्य है, यह अनुचित कार्य है ऐसा नहीं जानता है। मरकर सर्पादि अनेक कुयोनियों में जन्म ग्रहण कर दुःख को प्राप्त होता है। यह पांचों पाप दुःखके कारण आत्महित के नाशक हैं, दुर्गति को ले जाने वाले हैं, ऐसा विचार कर पापके भयसे अपनी शक्त्यनुसार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंका श्रावकों को त्याग करना चाहिये। पाप के भय से त्याग करने वाला ही अणुव्रती कहलाता है, राजादिक के भय से त्याग करनेवाला अर्थात् मनमे इच्छा होते हुये भी लोकभय से पाप नहीं करनेवाला अणुव्रती वा त्यागी नहीं कहलाता है। क्योंकि उसके वास्तविक त्याग नहीं है ।।१६।।

अब–पंचाणुव्रतों का अभ्यास करनेवाले पाक्षिक श्रावकोंको वेश्यादि सप्तव्यसनों में आसक्ति नहीं करनी चाहिये। उसी प्रकार जूआमें भी आसक्ति नहीं करनी चाहिये, इस बातका उपदेश देते हैं।

द्यूते हिंसानृतस्तेय–लोभमायामये सजन् ।
क्व स्वं क्षिपति नानर्थे वेश्याखेटान्यदारवत् ।।१७।।

अन्वयार्थ–(वेश्याखेटान्यदारवत्) वेश्या, शिकार और परस्त्री मे आसक्ति करनेवाले पुरुषके समान (हिंसानृतस्तेयलोभमायामये) हिंसा, झूठ, चोरी, लोभ और माया ही है स्वरूप जिसका ऐसे (द्यूते) जूआ में (सजन्) आसक्ति करने वाला पुरुष (क्व) किस (अनर्थे) अनर्थमें (स्वं) अपने आपको (न) नहीं (क्षिपति) फेंकता है अर्थात् सब अनर्थों को प्राप्त होता है।

भावार्थ–जिस प्रकार हिंसादि स्वरूप वेश्यारमण, शिकार परस्त्री आदि व्यसनो में आसक्त होने वाले मनुष्य अपनी जाति से भ्रष्ट हो जाते हैं। वधबन्धादिक अनेक दुःखों को प्राप्त होते हैं। अथवा जैसे वेश्यादि व्यसनमें हिंसादि पांच पापोंकी प्रचुरता है, उसी प्रकार जुआ में भी हिंसा, झूठ, चोरी, लोभ, मायादि पापों की प्रचुरता हैं, इसलिये जुआ में भी आसक्ति रखने वाला मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेश्यादि व्यसन में रत हुये के समान अपने को किस दुःख में नहीं डालता है अर्थात् सम्पूर्ण आपत्तियों को प्राप्त होता है। सो ही कहा है-

सर्वानर्थप्रथनं मथनं शौचस्य सद्म मायायाः।
दूरात्परिहर्तव्यं चौर्यासत्यास्पदं द्यूतम्।
कौपीनं वसनं कदन्नमशनं शय्या धरा पांसुला।
जल्पाश्लीलगिरः कुटुम्बजनद्रोहः सहाया विटाः।
व्यापाराः परवञ्चनानि सुहृदश्चौराः महान्तो द्विषः।
प्रायः सैष दुरोदरव्यसनिनः संसारवासक्रमः॥

अर्थ- जुआ सब अनर्थ का विस्तारनेवाला है, शौच गुण का नाश करनेवाला है, माया का निधान है, चौरी और असत्य की ठहरने की जगह है। इसलिये इसको दूर से ही छोडना चाहिये। जुआरी के पास केवल लंगोटी ही वस्त्र रहता है, बुरा भला भोजन होता है। कंकरीलीं जमीन उनकी शय्या होती है। वे सदैव अश्लील वचन बोलते हैं। कुटुम्बियों से द्रोह करते हैं, गुंडे उनके सहायक होते हैं। दूसरों को ठगाना उनका व्यापार रहता है, चौर उसके मित्र होते हैं, अच्छे लोग शत्रु होते हैं, प्रायः जुआरियों की लोक में ऐसी स्थिति होती है। जूआ व्यसन में आसक्ति रखने वाला अविचारी होकर चाहे जिस अनर्थ में प्रवृत्ति करता है। इसलिये द्यूतक्रीडा का भी त्याग करना चाहिये। द्यूत खेल पांचो पाप की अपेक्षा महापाप है। इसके पराधीन हुवा मनुष्य सम्पूर्ण अनर्थों में प्रवृत्ति करता है। इस श्लोक में सजन् शब्द दिया, है उससे यह अर्थ ध्वनित होता है कि पाक्षिक श्रावक कौतुक मात्रसे जुंवा खेलने का त्यागी नहीं होता है ॥१७॥

आगे-प्रकारान्तर से अष्टमूल गुणों को कहते हैं--

मद्यपलमधुनिशाशनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुती।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥१८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (मद्यपलमधुनिशाशनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनूती) मद्य, मांस, मधुका त्याग, रात्रिभोजन का त्याग और पचोदुम्बर फलोंका त्याग ये पांच और त्रैकालिक देव वन्दना (जीवदया) अनुकम्पा (च) और (जलगालन) पानी छानकर पीना (इति) इसप्रकार (क्वचित्) किसी शास्त्र में (अष्टमूलगुणाः) अष्टमूलगुण (मताः) माने हैं ॥१२॥

भावार्थ– मद्य, मांस, मधु, रात्रिभोजन और पंचोदुम्बर फलों का त्याग करना तथा पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करना जीवों की दया पालन करना और पानी वस्त्रसे छानकर पीना इस प्रकार किसी शास्त्रों में अष्टमूलगुण कहे गये हैं। सो ही लिखा है–

मद्योदुम्बरपंचकामिषमधुत्यागाः कृपा प्राणिनां ।
नक्तं भुक्तविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोयं सुवस्त्रस्रुतम् ।
एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणां कीर्तिता ।
एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रमी ॥

मद्य, पांच उदुम्बर, मांस और मधु का त्याग जीवों पर दया, रात्रिभोजनत्याग, आप्तस्तुति, छानकर पानी पी लेना, ये श्रावकों के आठ गुण गणधरों ने बताये हैं। ये सभी गुण श्रावक में रहना चाहिये। इनमें से यदि एक भी गुण न हो तो वह श्रावक नहीं हो सकता है।

आगे– जो पूर्वोक्त रीतिसे सम्यग्दर्शन पूर्वक अष्ट मूलगुणों-का पालन करते हैं तथा जिनका उपनयन संस्कार हो गया है, ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ही जैनधर्म सुनने के अधिकारी हैं ऐसा बताते हैं–

यावज्जीवमिति त्यक्त्वा महापापानि शुद्धधीः ।
जिनधर्मश्रुतेर्योग्यः स्यात्कृतोपनयो द्विजः ॥१९॥

अन्वयार्थ– (इति) इस प्रकार (यावज्जीवं) जीवन पर्यंत के लिये, (महापापानि) मद्यपानादिमहापापों को (त्यक्त्वा) छोड़-कर (शुद्धधीः) विशुद्धि बुद्धि हो गई है जिसकी और (कृतोपनयः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिया है उपनयन संस्कार जिसका ऐसा (द्विजः) द्विज (जिनधर्मंश्रुते) जिनधर्म सुनने के (योग्यः) योग्य (स्यात्) होता है ।

भावार्थ-जिनका दो बार जन्म हो उसे द्विज कहते हैं । एक जन्म माता के गर्भ से उत्पन्न होना, दूसरा जिससमय ज्ञानगर्भ अर्थात् गुरुवों के द्वारा संस्कार हो । संस्कारजन्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य इन तीन कुल में ही होता है । जिन द्विजोंने अनन्त संसार के कारणभूत, महापाप के बन्ध करनेवाले ऐसे मद्य मांस मधु आदिका जीवन पर्यंत त्याग कर दिया है, जिन के परिणामों में निर्मलता है, जिन्हों ने शास्त्रोक्तविधिसे मौंजी बन्धनादि लक्षणवाली उपनयन क्रिया की है ऐसे श्रावक ही वीत-राग सर्वज्ञ प्रणीत उपासकाध्ययनादि शास्त्रोंके पढने के वा सुनने के अधिकारी हो सकते हैं । जिन्हों ने अष्टमूल गुणधारण नहीं किया, उपनयन संस्कार जिनका नहीं हुवा है। जिनधर्म श्रुती के योग्य नहीं सो ही पुरुषार्थ सिद्धि में लिखा है ।

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य ।
जिनधर्मदेशनायाः भवन्ति पात्राणि शुद्धधियः ॥

अनिष्ट दुस्तर और पापों के घर जो सप्त व्यसन है, उनको छोडकर और अष्टमूलगुण धारण कर शुद्ध हुई है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थ जिनधर्म के उपदेश सुनने के पात्र हैं।

आगे जैन कुल में जन्म लेकर सहज अष्टमूलगुण पालने वाले और दीक्षोचित मिथ्यादृष्टि कुल में भी जन्म लेकर वक्ष्यमाण अवतारादि क्रियाओं से अपने को पवित्र करनेवाले भव्यों का यथा योग्य माहात्म्य का निरूपण करते हैं--

जाता जैनकुले पुरा जिनवृषाभ्यासानुभावाद्गुणै-
र्येऽयत्नोपनतैः स्फुरन्ति सुकृतामग्रेसराःकेऽपि ते ।
येऽप्युत्पद्य कुदृक्कुले विधिवशाद्दीक्षोचिते स्वं गुणै-
र्विद्याशिल्पविमुक्तवृत्तिनि पुनन्त्यन्वीरते तेऽपि तान् ।२०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (ये) जो (पुरा) पूर्व जन्म में (जिनवृषभ्यासा–नुभावात्) जिनधर्म के अभ्यास के माहात्म्य से (जैनकुले) जैन कुल में (जाताः) उत्पन्न हुये हैं वे मानव (अयत्नोपनतैः) विना प्रयत्न से प्राप्त होनेवाले (गुणैः) सम्यक्त्वादि वा अष्टमूलगुणादि गुणों के द्वारा (स्फुरन्ति) स्फुरायमान होते हैं (ते) वे (सुकृतां) पुण्यात्माओं में (अग्रेसराः) मुखिया (केऽपि) बहुत ही थोडे (सन्ति) हैं । और (ये) जो (विधिवशात्) भाग्यवशसे (दीक्षो–चिते) दीक्षा के योग्य तथा (विद्याशिल्पविमुक्तवृत्तिनि) विद्या और शिल्पक द्वारा रहित उपजीविका जिस में ऐसे (कुदृक्कुले) मिथ्यादृष्टियों के कुल में भी (उत्पद्य) उत्पन्न हो करके (गुणैः) तत्त्वार्थश्रद्धानादि गुणों के द्वारा (स्वं) अपनी आत्माको (पुनन्ति) पवित्र करते हैं, (ते) वे (अपि) भी (तान्) उनके (अन्वीरते) सदृश होते हैं ॥२०॥

भावार्थ– जिनो देवता येषां ते जैना– कर्मारातीन् जयतीति जिनः, कर्मरूपी शत्रुवों को जीते उनको जिन कहते हैं जिन जिन्होंका देव हो उनको जैन कहते हैं । अथवा जिस कुल में गर्भाधानादिक निर्वाणपर्यंत जैन संस्कार होते हैं, उसे जैन कुल समझना चाहिये। श्रावक तथा मुनियों के व्रत लेने को वा विधि प्रगट करने को दीक्षा कहते है अथवा मुनि के योग्य जिनमुद्रा वा श्रावक के योग्य उपसकादि दीक्षा, उपनीति आदि संस्कारों को दीक्षा कहते हैं । जिन्होंने पूर्वभव में बार बार जिनधर्म का अभ्यास किया है, जिनधर्म धारण करने की भावना की है, उसके पुण्यसे जैनकुल में उत्पन्न होकर विना प्रयत्न किये पूर्वपरम्परासे आये हुये सम्यक्त्वादि गुणों के द्वारा वे मानव पुण्यात्मा में अग्रेसर होते हैं, वे तो बहुत थोडे हैं । परन्तु जो भाग्योदयसे विद्या शिल्प आदि शूद्र उपजीविका से रहित दीक्षायोग्य मिथ्याकुल में पैदा होकर भी स्वयं सम्यग्दर्शनादि गुणों के द्वारा अपने को पवित्र करके सम्यग्दृष्टियोंके समान बन जाते हैं । अर्थात् जिस कुल में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीतगानादि कर के उपजीविका की जाती है वा शिल्पी—लुहार सुनार आदि करके आजीविका की जाती है वह कुल दीक्षायोग्य नहीं है। जिन्होंने मिथ्यात्व सहचारी पुण्योदयसे दीक्षायोग्य मिथ्यात्वकुल में जन्म लिया है, परन्तु गुरु के उपदेशादिके द्वारा मिथ्यात्व का त्यागकर सम्यग्दृष्टि होकर अपने को पवित्र करता है।

इस समय आगे द्विजजातियों में कुल परम्परासे आये हुये मिथ्यात्व धर्म का परिहार कर के विधिपूर्वक जिनप्रणीत मार्ग को स्वीकार स्वाध्यायध्यान के बलसे अशुभ कर्म को नाश करता हैं उस भव्य की स्तुति करते हैं।

तत्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशव्रतं।
तद्दीक्षाग्रधृतापराजितमहामन्त्रोऽस्तदुर्दैवतः।
आंगं पौर्वमथार्थसंग्रहमधीत्याधीतशास्त्रान्तरः।
पर्वान्ते प्रतिमासमाधिमुपयन्धन्यो निहन्त्यंहसी ॥२१॥

अन्वयार्थ—(तीर्थकथनात्) धर्माचार्य के कहनें से (तत्वार्थं) तत्वार्थ को (प्रतिपद्य) निश्चयकर (तद्दीक्षाग्रधृतापराजितमहा-मंत्र:) देशव्रत दीक्षाके पहिले धारण किया है अपराजितमहामंत्र जिसने (अस्तदुर्दैवत:) छोड दिये हैं मिथ्यादेवों को जिसने ऐसा भव्य (देशव्रतं) अष्टमूलगुणादि देशव्रत को (आदाय) धारण करके (आंगं) द्वादशांग श्रुतज्ञान सम्बन्धी (अथ) और (पौर्वं) चौदह पूर्वगत श्रुत सम्बन्धी (अर्थसंग्रहं) अर्थ संग्रहको (अधीत्य) पढकर (अधीतशास्त्रान्तरं) पढे है व्याकरणादि दूसरे शास्त्रों को जिसने ऐसा तथा (पर्वान्ते) पर्व के अन्तमें (प्रतिमासमाधि) प्रतिमा योगको (उपनयन्) धारण करने वाला (धन्य:) पुण्यात्मा जीव (अंहसी) पापों को (निहन्ति) नष्ट करता है ॥२१॥

भावार्थ—जो भव्य जीव धर्माचार्य दिगम्बर गुरु से अथवा गृहस्थाचार्य के मुखसे सर्वज्ञ प्रणींत जीवादि तत्त्वों का स्वरूप सुनकर अपने हृदय में उसका निश्चय करता है अर्थात् श्रद्धान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है, अनन्तरगुरुके मुख से अपराजित महामंत्र णमोकार मंत्रको धारण कर मिथ्यादेवताओंका परित्याग करता है, तत्पश्चात् अष्टमूलगुणादि देशव्रतों को धारण कर ग्यारह अंग और चौदह पूर्व सम्बन्धि सूत्रग्रन्थोंको वा उद्धारग्रन्थों को पढकर व्याकरणादि अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करता है। और एक महिने दो अष्टमी तथा दो चतुर्दशी के दिन प्रतिमासमाधि रात्रियोग को धारण कर पापों का नाश करता है वह धन्य है, प्रशंसा का पात्र है। इस प्रकार संक्षेप से अजैन से जैन बनने के यह आठ अधिकार है। विस्तार रूपसे इन का वर्णन ज्ञान दीपिका नामके ग्रन्थ मे किया है। वहां देखना चाहिये। भगवज्जिनसेनाचार्यनें भी इनका विस्तार पूर्वक वर्णन महापुराणके ३९ वें अध्याय में जहाँ अडतालीस दीक्षान्वय क्रियाओं का वर्णन है, उसमें छत्तीस क्रियाऐं जैन कुलमें उत्पन्न पुरुषों की बताई है। तथा अवतारादिक आठ क्रियायें अजैन से जैन होकर जैन दीक्षा लेनेवालों के लिये बताई है।

उनका विवरण महापुराण के अनुसार इस प्रकारसे है-

अवतार- गुरुर्जनयिता तत्व-ज्ञानं गर्भः सुसंस्कृतः।
तथा तत्रावतीर्णोऽसौ भव्यात्मा धर्मजन्मना ॥१॥

अवतार क्रिया-गुरु पिता है, तत्वज्ञान सुसंस्कृत गर्भ है और उसमें धर्मरूपी जन्म से भव्यात्मा अवतार ग्रहण करता है।

वृत्तलाभ- ततोऽस्य बृत्तलाभः स्यात्तदैव गुरुपादयोः।
प्रणतस्य व्रतव्रातं विधानेनोपसेदुषः ॥२॥

जब गुरु के उपदेश से मिथ्यात्व छूटता है उस समय गुरु के चरणों में नम्र होकर मूलगुण आदि व्रतों को जो यह लेता है उसे व्रतलाभक्रिया कहते हैं।

स्थानलाभ- ततः कृतोपवासस्य पूजाविधिपुरस्सरम्।
स्थानलाभो भवेदस्य तत्रायमुचितो विधिः ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रतलाभ के अनन्तर उपवास पूर्वक जिनपूजा करके स्थान-लाभ क्रिया की जाती है उसकी विधि इस प्रकार है ॥४॥

जिनालये शुचौ रंगे पद्ममष्टदलं लिखेत्,
विलिखेद्वा जिनास्थान-मण्डलसमवृत्तकम् ॥५॥
श्लक्ष्णेन पिष्टचूर्णेन सलिलालोडितेन वा।
वर्तनं मण्डलस्येष्टं चन्दनादिद्रवेण वा ॥६॥
तस्मिन्नष्टदले पद्मे जैने वाऽऽस्थानमण्डले।
विधिना लिखिते तज्ज्ञै-र्विष्वग्विरचितार्चने ॥७॥
जिनार्च्याभिमुखं सूरि-र्विधिनैनं निवेशयेत्।
तवोपासकदीक्षेयमिति मूर्ध्नि मुहुः स्पृशन् ॥८॥
पंचमुष्टिविधानेन स्पृष्ट्वैनमधिमस्तकम्।
पूतोऽसि दीक्षयेत्युक्त्वा सिद्धशेषं च लम्भयेत् ॥९॥
ततः पंचनमस्कार-पदान्यस्मायुपादिशेत्।
मंत्रोऽयमखिलात्पापा-त्त्वां पुनीतादितीरयन् ॥१०॥
कृत्वा विधिमिमं पश्चात्पारणाय विसर्जयेत्।
गुरोरनुग्रहात्सोऽपि सम्प्रीतः स्वं गृहं व्रजेत् ॥११॥

जिनालय की पवित्र रंगभूमि में अष्टदलका कमल मांडे अथवा गोल समवसरण का मंडल मांडे। उक्त मंडल को चिकने चून से अथवा पानी में घुले हुये चून से मांडे अथवा घिसे हुये चंदन से मांडे। इस प्रकार अष्टदल कमल अथवा समवसरण मंडल विधिपूर्वक लिख लिये जाने के बाद उसके ज्ञाताओं के द्वारा उसकी विधि करनी चाहियें, जिनेन्द्र के सामने आचार्य जिनदीक्षा लेनेवाले को बैठावे। उसके मस्तकपर स्पर्श करते हुये यह बोले की यह तेरी श्रावक की दीक्षा है। तथा उसके मस्तकपर पंचमुष्टि विधान से स्पर्श करते हुये तू पवित्र हो गया, दीक्षा ले! ऐसा कहकर सिद्धासिका (आशीर्वाद) देवें। उसके बाद सब से पहले उसे पंच-णमोकार मंत्र देवे। और कहे कि यह मंत्र सब पापों से तुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचावे। इस प्रकार यह विधि करके पारणा को जाने की आज्ञा देवें और वह श्री गुरु के अनुग्रह से प्रसन्न होकर अपने घर जावे।

गणग्रह– इयन्तं कालमज्ञानात्पूजिताः स्थ कृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभि-रस्मत्समयदेवताः ॥१२॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम्।
इति प्रकाशमेवैता नीत्वान्यत्र क्वचित्त्यजेत् ॥१३॥
गणग्रहः स एषः स्यात्प्राक्तनं देवतागणम्।
विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः ॥१४॥

अन्वय–उसके बाद घर जाकर घर के देवताओं को यह कहकर कि आजतक अज्ञान से हमने आपकी पूजा की है। अब हमको केवल हमारे (जैन) देवता ही पूज्य है। इसलिये आप चिडना नहीं। अब आप स्वतन्त्र है चाहे जहाँ विराजिये। इस प्रकार सबके सामने उन मूर्तियों को ले जाकर कहीं छोड आवे। इस प्रकार पहले कुदेवतागणों को छोडकर शास्त्रोक्त शान्तदेवताओं की पूजा करने वाले गणग्रह नामकी क्रिया होती हैं।

पूज्याराध्यक्रिया– पूजाराध्याख्यया ख्याता क्रियाऽस्य स्यादतःपरा।
पूजोपवाससम्पत्या गृण्हतोऽङ्गार्थसंग्रहम्। १५॥

द्वादशांग रूप सिद्धान्त शास्त्रों का सारांश जिनशास्त्रो में है उसे अर्थसंग्रह कहते हैं। और उन अर्थसंग्रह ग्रन्थों को पूजा और उपवासपूर्वक पढनेवालेके पूजाराध्य नाम की क्रिया होती है।

ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी।
श्रृण्वतः पूर्वविद्यानामर्थं सब्रह्मचारिणः।

अनन्तर अपने साथियों के साथ चौदह पूर्व शास्त्रसम्बंधी विद्याओं को सुनने वाले के पुण्य की बढाने वाली पुण्ययज्ञ क्रिया होती है :

तदास्य दृढचर्याख्या क्रिया स्वसमयश्रुतम्।
निष्ठाप्य शृण्वतो ग्रन्थान्बाह्यानन्यांश्च कांश्चन ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग और पूर्वके सारांश बतानेवाले शास्त्रों को पढकर श्रद्धा की दृढता के लिये जो कुछ अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है उनको दृढचर्या कहते हैं।

दृढव्रतस्य तस्यान्या क्रिया स्यादुपयोगिता ।
पूर्वोपवासपर्यंते प्रतिमायोगधारणम् ॥१८॥

पर्व के दिन उपवास करना और जबतक उपवास है तबतक प्रतिमायोग धारण करना यह उपयोगिता नामकी क्रिया है ।

अब आहार विहारादि की शुद्धि पालनेवाले शूद्र गृहस्थ भी ब्राह्मणादिक के समान यथायोग्य धर्मक्रिया का पालन कर सकते हैं यह बताते हैं--

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपु:शुद्ध्याऽस्तु तादृश: ।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्माऽस्ति धर्मभाक् ॥२२॥

अन्वयार्थ- (उपस्कराचारवपु:शुद्ध्या) उपकरण, आचार और शरीर की पवित्रता से युक्त (शूद्र:) शूद्र (अपि) भी (तादृश:) ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के समान जिनधर्म सूनने का अधिकारी है । (हि) क्योंकि (जात्या) जातिसे (हीन:) हीन (अपि) भी (आत्मा) आत्मा (कालादिलब्धौ) कालादि लब्धिके आनेपर (धर्मभाक्) श्रावकधर्म की आराधना करनेवाला (अस्ति) होता है ।

भावार्थ- जिसके आसनादि उपकरणों की खान पानादि आचार की शुद्धि है अर्थात् जो मद्यमांसादि भक्षण नहीं करता है और जो स्नानादि के द्वारा शरीर की शुद्धि रखता है ऐसा शूद्र जातिसे हीन है तो भी देशकालादि लब्धि की प्राप्ति होनेपर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के समान सर्वज्ञप्रणीत जिनधर्म के सुनने के तथा एकदेश व्रत धारण करने का पात्र हो सकता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शूद्र किसको कहते हैं- वर्णलक्षण ग्रन्थ में लिखा है

जातिगोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः ।
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्त्तिताः ।

जिन पुरुषों में शुक्ल ध्यानके कारणभूत जाति गोत्र क्रियादि है वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कहलाते हैं। जो कुल शुक्लध्यान के कारणभूत नहीं है वह शूद्रकुल कहलाता है। क्योंकि बाह्यशुद्धि अंतरंग शुद्धि में कारण है। इसलिये शूद्र लोग मुनि बनने के अधिकारी नहीं है। वह पंचाणुव्रतादि एकदेश व्रतों को धारण कर सकते हैं।

इस प्रकार क्रूरता नहीं करना, असत्य भाषण नहीं करना परधन न हरना, परस्त्री में ब्रह्मचर्यका पालन करना, अनुचित, विषयों में तृष्णा नहीं करना यह चातुर्वर्ण्यका सर्व साधारण धर्म है। तथा अध्ययन पूजन और दान यह त्रैवर्णिकोंका साधारण धर्म है। दूसरों को पढाना पूजन करवाना दान लेना यह ब्राह्मणों का विशेष धर्म है। इस बात का कथन करते हुये दार्शनिक पाक्षिक श्रावक के लिये देवपूजादिक की प्रेरणा करते हैं--

यजेत देवं सेवेत गुरून्पात्राणि तर्पयेत् ।
कर्म धर्म्यं यशस्यं च यथालोकं सदाचरेत् ॥२३॥

अन्वयार्थ- (श्रावकः) श्रावक (देवं) अर्हंत देवकी (यजेत) पूजा करे (गुरून्) गुरुवोंकी (सेवेत) सेवा-उपासना करें (पात्राणि) पात्रों को (तर्पयेत्) सन्तुष्ट करे (च) और (यथालोकं) लोक व्यवहारका उल्लंघन न कर के अथवा आप्त के उपदेशानु-सार (धर्म्यं धर्म और यशस्यं) यश के साथ (कर्म) कर्त्तव्य कार्यों को भी (सदा) हमेशा (चरेत्) करे ॥२३॥

भावार्थ-आशाधरजी ने कर्म शब्दके दो अर्थ किये हैं एक तो इसी अध्यायके ७३वे श्लोकमें भृत्याश्रितान् आदि आगे कहा जायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और दूसरा ब्राह्ममुहूर्त में उठकर पहिले कोऽहं मैं कौन हूँ मेरे गुण क्या है मुझे क्या करना चाहिये, इस शरीर का स्वरूप कैसा है ऐसा विचार करना, तदनंतर आयुर्वेद में प्रसिद्ध दन्तधावन आदि करना भी कर्म कहलता है । यथा लोक शब्द के भी दो अर्थ किये हैं—यथालोकं लोकस्यानतिक्रमेण लोकानुसारेणेत्यर्थः, लोक का उल्लंघन नहीं करके लोकानुसार करना अथवा योयं आलोकः आप्तोपदेशप्रकाशस्तेन तेन तत्तत्कर्माचरेत् । आप्तोपदेश प्रकाश के अनुसार कार्य करे ।

पाक्षिक श्रावकों को १ देवपूजा २ गुरूपासना ३ पात्रदान ये तीनों धार्मिक कार्य तथा कीर्त्ति को बढाने वाले सत्कर्म लोकानुसार तथा आगमानुसार हमेशा करना चाहिये ॥२३॥

आगे १८ श्लोकों के द्वारा देवपूजा का वर्णन करते हैं ।

यथाशक्ति यजेतार्हद्देवं नित्यमहादिभिः ।
संकल्पतोऽपि तं यष्टा भेकवत्स्वर्महीयते ॥२४॥

अन्वयार्थ– श्रावक (नित्यमहादिभिः) नित्यमहादि पूजाओं के द्वारा (यथाशक्ति) शक्त्यनुसार (अर्हद्देवं) अर्हन्त देवकी (यजेत) पूजा करे, क्योंकि (संकल्पतः) संकल्पमात्रसे (अपि) भी (तं) उस अर्हंत देवकी (यष्टा) पूजा करनेवाला (भेकवत्) मेढकके समान (स्वः) स्वर्ग में (महीयते) महर्द्धिक देवों के द्वारा पूजा जाता है ।

भावार्थ– पाक्षिक श्रावक को हमेशा अपनी शक्ति के अनुसार नित्यमहादि पूजाओं के द्वारा अर्हन्त भगवान की पूजा करनी चाहिये । क्योंकि पूजा करना तो दूर रहो, परन्तु भगवान की पूजा का संकल्पमात्र से भी मेढक स्वर्गपद को प्राप्त हुवा ।

पूजनके फलका दृष्टान्त. मेढककी कथा

इस जम्बूद्वीप में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु नामका पर्वत है, उस पर्वत की दक्षिणदिशा में भरत नामका क्षेत्र है । उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों के जन्म से पवित्र मगध देश में राजगृह नगर था। उस नगर में सम्पूर्ण भोगोपभोग सामग्री सुलभतया प्राप्त होती थी । सम्यक्त्वादि गुणों से सम्पन्न मनुष्य तो देवों की शोभा को धारण करते थे, स्त्रियां सुरकन्या की समान थीं, और वह नगर स्वर्ग की शोभा को धारण करता था। जिस नगर में सम्पूर्ण सुखों को देनेवाला सर्वज्ञप्रणीत धर्म प्रसिद्ध है, तीन लोक में प्रसिद्ध उस नगर की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं कर सकता ।

उस नगरमें दर्शनप्रिय श्रीमज्जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों की सेवा करने के लिये भ्रमर के समान पवित्रात्मा श्रेणिक नामका राजा राज्य करता था । जो अपने शत्रुओं को सन्तप्त करने के लिये सूर्य के समान था । सज्जन पुरुषों के ताप को दूर करने के लिये शीतल चन्द्रमा था। प्रजाजन का पालन करने के लिये पिता के समान हितकारक था ।

उस राजा के महासाध्वीरूप सौभाग्यशालिनी जिनेन्द्र भगवान के चरणों के पूजा करने में चतुर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूप तीन महारत्न आभूषणों से सुशोभित जिनवाणी के समान सर्वविज्ञानसम्पन्न महारूपवती चेलना नामकी रानी थी ।

उस राजगृह नगर में पंच परमेष्ठि की भक्ति से पराङमुख मायाचारी नागदत्त नामका सेठ रहता था । उसके भवदत्ता नामकी सेठानीं थी । वह नागदत्त सेठ आर्त्तध्यानसे मरा और मरकर अपने आंगन की बावडी में मेढक हो गया । सो ठीक ही है। क्योंकि आर्त्तध्यान से मरनेवाले तिर्यंच गति को ही प्राप्त होते हैं ।

नरो मृत्वा यतो जातः पापात्तोयचरोत्रसः
तस्मात्पापं न कर्त्तव्यं यो भव्याः संकटेऽपि च ।

आचार्य कहते हैं भो भव्यों ! देखो! पापके कारण उत्तम सेठ मरकर पानी में मेढक हुवा। इसलिये दुःखका कारणभूत पाप नहीं करना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदिन भवदत्ता पानी लाने के लिये बावडी पर गई उसको देखकर उस मेढक को जातिस्मरण हो गया, अर्थात् पूर्व भव की बात उसने जान ली। पूर्नभव के संस्कार से वह मेढक नागदत्ता के शरीर पर चढ गया। मेढक को अपने शरीर पर चढा हुवा देखकर नागदत्ता के शरीर में भय से रोमाञ्च हो गया उसने अपने हाथ के फटकार से उसको नीचे गिरा दिया। परन्तु वह मेढक पूर्वभव के सम्बध से यह मेरी पूर्वभव की स्त्री है, ऐसा समझकर बार बार उसके शरीर पर चढता था। मेढक की यह चेष्टा देखकर भवदत्ताने निश्चय किया कि यह कोई मेरा इष्ट मरकर कुयोनि को प्राप्त हुवा है, अन्यथा ऐसी चेष्टा नहीं हो सकती।

एक दिन उस नगर में अवध्रिज्ञानी सुव्रत नामके मुनिराज का आगमन हुवा। भवदत्ता मुनिराज के दर्शन करने गई। दर्शन करनेके बाद नमस्कार कर भवदत्ताने मुनिराजसे पूछा, भो गुरुदेव! मेरे आंगनकी बावडी में रहनेवाला मेढक रोज मेरे शरीर पर क्यों चढता है, इसमें क्या कारण है? कारण विना कार्य नहीं होता है।

भवदत्ता की बात को सुनकर और अवधिज्ञान के द्वारा मेढक के वृत्तान्त को जानकर अपने दन्तावलि की किरणों के द्वार अज्ञान अन्धकार को दूर करते हुये कहने लगे। हे पुत्री ! तेरा पति नागदत्त मायाचार के पापसे मरकर मेंढक हुवा है और तुझको देखकर उसको जातिस्मरण हो गया। इसलिये पूर्व सम्बध के राग से प्रेरित होकर तेरे निकट आता है।

मुनिराज के मुख से अपने पतिका वृत्तान्त सुनकर भवदत्ता पापसे भयभीत हुई। संसारतारक मुनिराज को नमस्कार करके अपने घर गई। घर जाकर उसने मोहसे उस मेढक को अपने घरमें रख लिया। मेढक भी पूर्वभव के संस्कार से आनंद से वहां रहने लगा।

एक दिन राजा श्रेणिक को वनपालने आकर कहा—हे राजन् ! विपुलाचलपर इन्द्र नागेन्द्रादिके द्वारा पूजनीय श्री वर्द्धमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी का समवशरण आया है। यह सुनकर जिनभक्तिपरायण राजानें हर्षित होकर वर्द्धमान स्वामी को परोक्ष नमस्कार किया। और वनपाल को इच्छित दान देकर संन्तुष्टित किया।

तदन्तर मगधेशने आनंद मेरीं वजवाई। और पुरजन परिजनसहित महाविभूति के साथ जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने के लिये विपुलाचल पर्वतपर गया। वहाँ पर भगवत्समवसरण तथा सुरासुरों के द्वारा वन्दनीय अष्टप्रातिहार्य संयुक्त केवलज्ञानरूपी लोचन से सुशोभित वर्द्धमान स्वामी को देखकर राजा हर्षित होकर नाचने लगा जैसे बादल को देखकर मयूर वा सद्रस को देखकर धातुवादी। आनंद में मग्न होकर राजाने अष्टद्रव्यसे भगवान की पूजा की। तदन्तर स्तुति करने लगा।

जय त्वं जिनदेवात्र कर्मेंधनहुताशनः।
दुःखदारिद्रचदावाग्नि–शमनैकघनाघनः॥
जय त्वं जिनसद्भानो लोकालोकप्रकाशकः।
वचनांशलसज्जालै–र्भव्यपद्मविकाशकः॥
जय जन्मजरामृत्यु ज्वरनाशभिषग्वरः।
अनेकगुणमाणिक्य–रोहणाद्रौ महास्थिरः।
त्वं त्राता जगतां तात त्वं त्रैलोक्यविभूषणम्।
त्वं ह्यकारणसद्बन्धुस्त्वमापत्क्षयकारणम्।
त्वत्पादसेवया देव! यत्सुखं प्राप्यते ध्रुवम्॥
अन्यैर्भूरितरक्लेशैः स्वप्ने तदपि दुर्लभम्॥
ततः श्रीमज्जिनाधीश! भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
त्वद्भक्तिर्मे सदा भूया–दासंसारं शुभप्रदा॥

हे कर्मरूपी ईन्धन को नाश करने के लिये अग्नि, दुःख दारिद्ररूपी दावानल को शमन करने के लिये मेघ, लोकालोक को प्रकाशित करने के लिये वा अपने वचनरूपी किरणों के जालसे भव्यांबुज को विकशित करने के लिये सूर्य, भगवन्! तुम जयवन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहो। जन्म जरा मृत्युरूप रोग का नाश करने के लिये श्रेष्ठ वैद्य, अनेक गुणमणियों के आरोहण करने के लिये श्रेष्ठ पर्वत, भगवन्! आप जयवन्त रहो।

हे जगत् रक्षक! हे तात! तुम तीन लोक के भूषण हो। जगत् के अकारण बन्धु हो। आपत्ति का क्षय करनेवाले हो। हे जिन-देव! तेरे चरणकमलों की सेवासे जिस अविनाशी अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, उस सुखकी प्राप्ति अन्य सेकडों क्लेशों से भी या स्वप्नमें भी नहीं हो सकती। इसलिये भगवन्! भुक्ति-मुक्तिदायिनी शुभप्रदा आपके चरणों की भक्ति मुझे भव भव में मिले।

इस प्रकार भगवत्स्तुति तथा गौतम गणधर को नमस्कार करके मनुष्यों के कोठे में बैठ गया। भगवानके समवसरणमें भवदत्ता भी गई थी। जय जय शब्द सुनकर भगवानके दर्शन के लिये जाते हुये लोगों को देखकर जातिस्मरणसे सब वृत्तान्त जान कर हर्ष से मुख में कमल लेकर मेंढक भी भगवान की पूजा करने के लिये जाने लगा। रास्तेमें श्रेणिक राजाके हाथी के पैरके नीचे दबकर मरा। और वीतराग प्रभुकी पूजाके अनुरागसे उपार्जन किये हुये पुण्योदयसे सौधर्मस्वर्ग में महर्द्धिक देव हुवा।

क्व भेक क्व च देवोऽभून्नहि चित्रं जगत्रये।
जिनपूजा प्रसादेन किं शुभं यन्न जायते॥

कहाँ तो मेंढक और कहाँ देव! तीनो जगत में कौनसी आश्चर्यकारी बात है जो जिनेन्द्र की पूजा से प्राप्त नहीं होती है।

अन्तर्मुहूर्त में वह देव नवयौवन को प्राप्त हो गया। पूर्व पुण्योदयसे उसका शरीर रत्नो के प्रभाजाल से युक्त दिव्यवस्त्र-सुगन्धितमालाओं से सुशोभित था। अवधिज्ञानसे जिन भगवान की पूजा के संकल्प मात्रसे मैं मेंढक पर्यायको छोडकर देव हुवा, इसलिये कर्मक्षय में कारणभूत वह पूजा पहिले करनी चाहिये। ऐसा विचार कर मुकुटमें मेंढकका चिन्ह बनाकर महान विभूतिके साथ वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में गया। सम्पूर्ण सुखों को देन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाली भगवान की पूजा करने में लीन उस देव को देखकर श्रेणिक राजाने गौतम गणधर से पूछा-भगवन्! इसके मुकुट में मेंढक का चिन्ह क्यों हैं ? सम्यग्ज्ञान ही है शरीर जिनका, संशयरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य, गौतमगणधरने सारा वृतान्त विस्तार पूर्वक कहा। जिसको सुनकर श्रेणिकादि सम्पूर्ण भव्य लोक सन्तुष्ट हुये। जिनधर्म, व जिनेन्द्र पूजा के माहात्म्य की प्रशंसा करने लगे। जब तिर्यंच भी भगवान की पूजा के संकल्प-मात्र से स्वर्गपदको प्राप्त हुवा तो मनुष्य को पूजन करने से उत्तम फल की प्राप्ति क्यों नही होगी अर्थात् अवश्य ही होगी।

—आराधना कथाकोष

धनं धान्यं महाभाग्यं सौभाग्यं राजसम्पदा।
पुत्रमित्रकलत्रं च सत्कुलं गोत्रमुत्तमम्।
दीर्घायुर्दुर्गतेर्नाशो विनाशः पापसन्ततेः।
अभीष्टफलसम्प्राप्तिर्मणिमुक्ताफलादिकम्।
सम्यक्त्वं मुक्तिसद्बीजं भवभ्रमणनाशनं।
सद्विद्या सच्चरित्रं च सौख्यं स्वर्गापवर्गयोः।
प्राप्यते भो महाभव्या जिनपूजाप्रसादतः।
तस्मात्प्रसादमुत्सृत्य कार्या सा सौख्यदायिनी।

भो भव्यजीवो! जिनेन्द्रभगवान की पूजा के प्रसाद से धन धान्य महाभाग्य सौभाग्य राजसम्पदा पुत्र, मित्र, साध्वी स्त्री, समीचीन कुल, उत्तमगोत्र दीर्घायु आदि की प्राप्ति होती है। दुर्गतिका नाश होता है। पापसंतति का विनाश होता है। मणि-मुक्तादि अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मुक्तिका सद्बीज भवभ्रमण नाशक सम्यक्त्व सद्विद्या और सच्चारित्रकी प्राप्ति होती है। भगवान की पूजा करनेसे स्वर्गमोक्षके सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिये हे भव्यजीवो! प्रमाद छोडकर सर्वसौख्यदायिनी जिनेन्द्र भगवान की पूजा करो। सो ही लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ग. व. दि. जैन (शोध) संस्थान
परिग्रह सं०.........(१०१)
दिनांक..........
नरिया, (का. वि. वि.) वाराणसी-५

दानं पूजा जिनैः शीलमुपवासश्चतुर्विधः ।
श्रावकाणां मतो धर्मः संसारारण्यपावकः ।
आराध्यन्ते जिनेन्द्रा गुरुषु च विनतिर्धार्मिकैः प्रीतिरुच्चैः
पात्रेभ्यो दानमापन्निहतजनकृते तच्च कारुण्यबुद्ध्या ।
तत्वाभ्यासः स्वकीयव्रतरतिरमलं दर्शनं यत्र पूज्यं ।
तद्गार्हस्थ्यं बुधानामितरदिह पुनर्दुःखदो मोहपाशः ॥

भावार्थ– पात्रदान, जिनपूजा,शील पालना और चार प्रकारका उपवास करना यह संसार का भस्म करनेवाला श्रावकों का धर्म है । जिस गृहस्थाश्रम में जिनेन्द्र की पूजा गुरु की विनय धार्मिकों से गाढप्रीति, पात्रदान, करूणाबुद्धि, विपद्ग्रस्तों की सहायता, निर्मल सम्यग्दर्शन की पूजा, तत्वाभ्यास और अपने व्रतो में अनुराग पाया जाता है वही विवेकियों का सच्चा गृहास्थाश्रम है और जहाँ यह बाते नहीं है, वह तो केवल दुःखद मोह का जाल है गृहास्थाश्रम नहीं । इस प्रकार भगवान की पूजा के संकल्प मात्रसे मेंढक भी स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुवा तो जो मनुष्य कायसे गन्ध अक्षतादि अष्टद्रव्यों के द्वारा तथा वाचनिक स्तोत्रादि के द्वारा मानसिक गुणस्तवनादिके द्वारा वीतराग प्रभु की पूजा करते हैं उनको उत्कृष्टपदकी प्राप्ति क्यों नहीं होगी अवश्य ही होगी ।

अब नित्यमह पूजा का लक्षण कहते हैं ।

प्रोक्तो नित्यमहोऽन्वहं निजगृहान्नीतेन गन्धादिना ।
पूजा चैत्यगृहेऽर्हतः स्वविभवैश्चैत्यादिनिर्मापणम् ।
भक्त्या ग्रामगृहादिशासनविधादानं त्रिसन्ध्याश्रया ।
सेवा स्वेऽपि गृहेऽर्चनं च यमिनां नित्यप्रदानानुगम् ।२५।

अन्वयार्थ– (निजगृहात्) अपने घर से (नीतेन) लाये हुये (गन्धादिना) गन्धाक्षतपुष्पादिके द्वारा (चैत्यगृहे) जिन मन्दिर में (अर्हतः) अरहंत भगवान की (अन्वहं) रोज (पूजा) पूजा करना (स्वविभवात्) अपनी शक्ति अनुसार (चैत्यादिनिर्मापणम्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैत्यचैत्यालादि बनाना । (भक्त्या) भक्तिसे (ग्रामगृहादिशासन-विधादानं) ग्राम घर आदि को शासनविधि अनुसार देना (त्रिसंध्याश्रया) तीनों काल में (सेवा) भगवान की भक्ति आराधना करना, (स्वे) अपने (गृहे) घर में (अपि) भी (अर्चनं) भगवान की पूजा करना (च) तथा (यमिनां) मुनियों को (नित्यप्रदानानुगम्) प्रतिदिन उत्कृष्टदान देना (नित्यमहः) नित्यमह पूजा (प्रोक्ता) कही है ॥२५॥

भावार्थ- अपने घरसे जल चन्दनाक्षतादि सामग्री लेकर मन्दिर में जाना, अपनी सामग्री से वीतराग प्रभुकी पूजा करना नित्यमहपूजा कहलाती है । तथा अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिमा और जिनमन्दिर बनवाना पूजन के लिये सदैव सामग्री मिलती रहे वा जिन कारणों से नित्यपूजन के लिये साधन प्राप्त होते रहे, जिससे जिनमार्ग चलता रहे, निरंतर प्रभावना होती रहे ऐसे घर खेत दुकानादि देना भी शास्त्रोक्त है । पूर्वान्ह मध्यान्ह और अपरान्ह इन तीनों कालों में प्रभुकी आराधना, भक्ति आदि करना अपने गृहचैत्यालय में पूजा करना तथा मुनियों को दान देना नित्यमहपूजा कहलाती है ।

अष्टान्हिक और इन्द्रध्वज पूजाका लक्षण

जिनार्चा क्रियते भव्यैर्या नन्दीश्वरपर्वणि ।
अष्टान्हिकोऽसौ सेन्द्राद्यैः साध्या त्वैन्द्रध्वजो महः ॥२६॥

अन्वयार्थ- (या) जो (जिनार्चा) जिनेन्द्र पूजा (नन्दीश्वर-पर्वणि) नन्दीश्वर पर्व में (भव्यैः) भव्य पुरुषों के द्वारा (क्रियते) की जाती है, (असौ) वह (अष्टान्हिकः) अष्टान्हिक पूजा कहलाती है । (तु) और जो जिन पूजा (इन्द्राद्यैः) इन्द्रादिक के द्वारा (साध्या) की जाती है (सा) वह (ऐन्द्रध्वज) एंन्द्रध्वज (महः) पूजा कहलाती है ॥२६॥

भावार्थ- प्रतिवर्ष में आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन मास के शुक्लपक्षमें अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यंत अष्टान्हिक पर्व वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नन्दीश्वर पर्व होता है । उस महान् पर्वमें समारंभ के साथ भव्य श्रावक लोगों के द्वारा जो जिनेन्द्रदेव की पूजा की जाती है, उसको अष्टान्हिकपूजा कहते हैं । तथा उस अष्टान्हिकपर्व में नन्दीश्वर द्वीप में जाकर इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक आदि चारों निकाय के देवों के द्वारा जो पूजा की जाती है उसको ऐन्द्रध्वजमह कहते हैं ॥

महामह पूजाका लक्षण

भक्त्या मुकुटबद्धैर्या जिनपूजा विधीयते ।
तदाख्या सर्वतोभद्र-चतुर्मुखमहामहाः ॥२७॥

अन्वयार्थ- (या) जो जिनपूजा (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (मुकुटबद्धैः) मुकुटबद्ध मंडलेश्वर राजाओं के द्वारा (विधीयते) की जाती है । (तदाख्याः) उस पूजा का नाम (सर्वतोभद्रचतुर्मुख महामहाः) सर्वतोभद्र चतुर्मुख महामह है ॥२७॥

भावार्थ- सब जीवों के कल्याणकारी होने से इस पूजन का नाम सर्वतोभद्र है ।

चतुर्मुख जिनबिम्ब विराजमान करके चारों दिशाओं में पूजा की जाती है इसलिये इसको चतुर्मुख पूजा कहते है ।

तथा अष्टान्हिक आदि सब पूजा से यह पूजन बडी है, इसलिये महामहपूजा कहलाती है । इसलिये इसके तीनों नाम सार्थक हैं ।

यह पूजा भी कल्पद्रुम के समान महामण्डलेश्वरादि राजाओं के द्वारा की जाती है, परन्तु इतना अन्तर है कि चक्रवर्ती के द्वारा जो पूजा की जाती है उसमें किमिच्छकदान पूर्वक की जाती है, इसलिये कल्पद्रुम है और सर्वतोभद्रपूजा प्रतिनियत दान पूर्वक साम्राज्यपद होने के बाद मंडलेश्वरादि राजाओं के द्वारा की जाती है । पूजा भक्ति से ही की जाती है, चक्रवर्ती आदि के भय से नहीं ॥२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पद्रुम पूजा का लक्षण

किमिच्छकेन दानेन जगदाशाः प्रपूर्य यः ।
चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हद्यज्ञः कल्पद्रुमो मतः ॥२८॥

अन्वयार्थ– (किमिच्छकेन) इच्छित पूर्वक (दानेन) दान के द्वारा (जगदाशाः) जगत् की आशा को (प्रपूर्य) पूरित करके (यः) जो (अर्हद्यज्ञः) अरहंत भगवान की पूजा (चक्रिभिः) चक्रवर्तियों के द्वारा (क्रियते) की जाती है (सः) वह अर्हद्‌यज्ञ (कल्पद्रुमः) कल्पद्रुम (मतः) कहा जाता है ॥२८॥

भावार्थ– चक्रवर्ती छह खंडका विजय प्राप्त करने बाद अपने साम्राज्यपद का अभिषेक करते हैं। उस समय अपने आधीन सब राजाओं से तथा प्रजाओंसे आप क्या चाहते हैं, ऐसा प्रश्न करते हैं। तदनंतर वे लोग जो जो मांगते हैं उनकी वह सब इच्छायें पूर्ण की जाती है, अर्थात् उनकी इच्छानुसार दान दिया जाता है। इसप्रकार इच्छानुसार दान के द्वारा सबको सन्तुष्ट करके राजाओं के साथ पूजन की जाती है उसका नाम कल्पद्रुम है ।२८।।

आगे–नित्य तथा नैमित्तक द्रव्य पूजन अभिषेक आदि जो किया जाता है उसका इन्हीं पूजा में समावेश होता है यह बताते हैं–

बलिस्नपननाटचादि नित्यं नैमित्तिकं च यत् ।
भक्ताः कुर्वान्ति तेष्वेव तद्यथास्वं विकल्पयेत् ।।२९।।

अन्वयार्थ–(भक्ताः) जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने वाले गृहस्थ (यत्) जो (नित्यं) हमेशा (च) अथवा (नैमित्तिकं) नैमित्तिक (बलिस्नपननाटचादि) उपहार, अभिषेक, गीत तथा नृत्यादिक (कुर्वन्ति) करते हैं (तत्) वह सब (यथास्वं) यथा-योग्य (तेषु) उन पूजाओंमें (एव) ही (विकल्पयेत्) गर्भित होते हैं।

भावार्थ–इन पांचो पूजाके समय में भक्तिवान् पुरुषों के द्वारा किये गये उपहार, अभिषेक, नाटच, गीत, नृत्य, वाद्य आदि शब्दसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठा रथयात्रा आदि जो जो कार्य किये जाते हैं वे सब जिस जिस समय किये जाते हैं उसी उसी पूजा में गर्भित हो जाते हैं अर्थात् अष्टान्हिक के समय में किया जाता है वह अष्टान्हिक कल्पद्रुम के समय में किया जाता है वह कल्पद्रुम आदि समझना चाहिये। नित्य प्रतिदिन वीतराग प्रभु की पूजा की जाती है उसको नित्यपूजा कहते हैं। तथा पर्वके दिनो में की जाती है उसको नैमित्तिक कहते हैं। इसलिये नित्य नैमित्तिक समय में किये नये अभिषेक आदि पांच पूजा में गर्भित हो जाते हैं।

आगे-जल चन्दनादि के द्वारा किये पूजाओं के प्रत्येक का फल बताते हैं-

वार्धारा रजसः शमाय पदयोः सम्यक्प्रयुक्तार्हतः।
सद्गन्धस्तनुसौरभाय विभवाच्छेदाय सन्त्यक्षताः।
यष्टुः स्रग्दिविजस्रजे चरुरुमास्वाम्याय दीपस्त्विषे।
धूपो विश्वदृगुत्सवाय फलमिष्टार्थाय चार्घाय सः ॥३०॥

अन्वयार्थ-(अर्हतः) अर्हंत भगवानके (पादयोः) चरणोंमें (सम्यक्प्रयुक्ता) विधिपूर्वक छोडी गई (वार्धारा) जलधारा (यष्टुः) पूजा करने वाले के (रजसः) ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्मरूपी धूलके (शमाय) नाश करने के लिये (सद्गन्धः) समीचीन चन्दन (तनुसौरभाय) सुगन्धित शरीर के लिये (अक्षताः) अक्षत (विभवाच्छेदाय) विभव के नष्ट नहीं होने के लिये अर्थात् उसकी निरंतर प्रवृत्ति बनी रहने के लिये (सन्ति) होते हैं। (स्रक्) माला (दिविजस्रजे) स्वर्ग में उत्पन्न होने वाली मन्दारवृक्षकी मालाकी प्राप्ति के लिये होती है (चरुः) नैवेद्य (उमास्वाम्याय) लक्ष्मीके स्वामीपने के लिये होता है, (दीपः) दीप (त्विषे) कान्तिके लिये (धूपः) धूप (विश्वदृगुत्सवाय) संसारके नेत्रोंके उत्सव के लिये उत्कृष्ट सौभाग्य के लिये होता है, (फलं) फल (इष्टार्थाय) इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये होता है (च) और (सः) वह अर्घ (अर्घाय) पूजाविशेष के लिये-विशेष मान तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिये अथवा अभिमतवस्तुओं के मूल्यके लिये (सन्ति) होता है ।।३०।।

भावार्थ–शास्त्रोक्त विधिसे जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों में जल की धारा छोडने से पूजक के पापोंका नाश होता है अथवा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्मों में मन्दता आती है–जैसे पानी से धूल शांत हो जाती है, उसी प्रकार जलके चढानेसे पापरूपी रज (धूलि) शांत हो जाती है। भगवान के चरणोंमें चन्दनानुलोपन करने से पूजक को सुगन्धित शरीर प्राप्त होता है। भगवान के चरणों में अक्षत चढाने से अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों की प्राप्ति होती है तथा पूजा करनेवाले के वैभवका कभी नाश नहीं होता है। भगवान के चरणोंमें पुष्पमाला चढानेसे स्वर्गसम्बन्धी कल्पवृक्ष जन्य पुष्पमाला की प्राप्ति होती है। नैवेद्य के चढाने से पूजक अक्षयलक्ष्मी का स्वामी होता है। दीपक के चढाने से कान्ति की प्राप्ति होती है। धूपके द्वारा भगवान की पूजा करने से परमसौभाग्य की प्राप्ति होती है। फलों के द्वारा पूजा करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। सब मिलाकर अर्घ चढाने से पूजा करने वाले की जगतमें पूजा की जाती है अर्थात् पूजक भी पूज्य बन जाता है। अथवा जो जो वस्तु जिसको इष्ट हो वह वस्तु भक्तिपूर्वक भलेप्रकार भगवान के समक्ष अर्पण करनेसे पूजक को भगवान की पूजा के प्रसादरूप सब वस्तु प्राप्त होती हैं ।।३०।।

आगे–श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा की विधि बताकर उसका लोकोत्तर फल बताते हैं–

चैत्यादौ न्यस्य शुद्धे निरुपरमनिरौपम्यतत्तद्गुणौघ– ।
श्रद्धानात्सोऽयमर्हन्निति जिनमनघैस्तद्विधोपाधिसिद्धैः ।
नीराद्यैश्चारुकाव्यस्फुरदनणुगुणग्रामरज्यन्मनोभिः ।
र्भव्योऽर्चन् दृग्विशुद्धिं प्रबलयतु यया कल्पते तत्पदाय ।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(निरुपमनिरौपम्यतत्तद्गुणौत्रश्रद्धानात्) अनंत और उपमारहित उन उन प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों के समूह में अत्यंत अनुराग से (अयं) यह (सः) वही (अर्हन्) जिनेन्द्र भगवान है (इति) इसप्रकार से (शुद्धे) दोषरहित रुद्रादि आकार रहित (चैत्यादौ) प्रतिमादिकमें (जिनं) जिनेन्द्र भगवान की (न्यस्य) स्थापना करके (अनघैः) पापके कारणभूत दोषोंसे रहित तथा (तद्विधोपाधिसिद्धैः) पापरहित साधनोंसे उत्पन्न (चारुकाव्यस्फुरदनणुगुणग्रामरज्यन्मनोभिः) सुन्दर गद्य पद्यात्मक काव्यों के द्वारा चमत्कार को करनेवाले बहुत से गुणों के द्वारा अनुरंजित किया है लोगों के मन को जिन्होंने ऐसे (नीराद्यैः) जल चन्दनादि अष्ट द्रव्यों के द्वारा (जिनं) जिनेन्द्र भगवानको (अर्चन्) पूजने वाला (भव्यः) भव्यजीव (दृग्विशुद्धिं) सम्यग्दर्शन की विशुद्धि को (प्रबलयतु) अधिक बलवान करे (यया) जिस दर्शनविशुद्धि के द्वारा वह भव्यजीव (तत्पदाय) तीर्थंकरपदकी प्राप्तिके लिये (कल्पते) समर्थ होता है अर्थात् तीर्थंकरपदको प्राप्त करता है। ३१।

भावार्थ–जिस सामग्रीसे जिनेन्द्र भगवान की पूजा की जाती है वह हट्टाग्रह से नहीं लानी चाहिये। अपने तथा परके भोगों से बची हुई नहीं होनी चाहिये। अन्याय से उपार्जन की हुई नहीं होनी चाहिये। उसको सामग्रीकी शुद्धि कहते हैं। जो भव्यजीव उत्सर्पिणी कालके तीसरे चौथे कालमें चौंतीस अतिशय और आठ प्रतिहार्य सहित समवसरणमें स्थित जिनेन्द्र देवने भव्य जीवोंको उपदेश देकर पवित्र किया था वही यह साक्षात जिन देव है ऐसा विचार कर नाम स्थापना द्रव्य भावादि के द्वारा जिन प्रतिमा-तन्दुल आदिमें जिनेन्द्र की स्थापना करके शुद्धजल चन्दनादि सामग्री से तथा पूजन बोलते समय जो छंद बोले जाते हैं वे काव्य प्रसादादिक सद्गुणों से युक्त, सुननेवालों के मनको रंजायमान करने वाले लोकोत्तर गुणों को वर्णन करने वाले हो ऐसे काव्यों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है, उस पूजासे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा करनेवालेको दर्शनविशुद्धिकी प्राप्ति होती है। तथा पूजाके प्रताप से कालान्तर में तीर्थंकरपद की प्राप्ति होती है। क्योंकि एक ही दर्शनविशुद्धि तीर्थंकरपद की कारणभूत है ॥३१॥

आगे-व्रतसे विभूषित होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा करनेवालों के माहात्म्यका वर्णन करते हैं-

दृक्पूतमपि यष्टार-मर्हतोऽभ्युदयश्रियः ।
श्रयन्त्यहम्पूर्विकया किं पुनर्व्रतभूषितम् ॥३२॥

अन्वयार्थ-(दृक्पूतं) सम्यग्दर्शन से विशुद्ध (अपि) भी (अर्हतः) अर्हन्त भगवानकी (यष्टारं) पूजा करनेवाले को (अहम्पूर्विकया) मैं पहिले मैं पहिले इसप्रकारसे जब (अभ्युदयाश्रियः) पूजा और ऐश्वर्यादिक समस्त सम्पत्तियां (श्रयन्ति) आश्रय करती हैं, तब (व्रतविभूषितम्) व्रतके द्वारा शोभायमान अर्हंत भगवानकी पूजा करनेवाले व्रती की तो (किं पुनः) कहना ही क्या अर्थात् उसको तो विशेष रूपसे सम्पत्तियाँ आश्रय करती हैं ॥३२॥

भावार्थ-जब पूजन के माहात्म्य से अविरत सम्यग्दृष्टि को नाना प्रकार के अभ्युदय की प्राप्ति होती है तो फिर देशव्रती होकर पूजन करनेवालों को उत्तमोत्तम अभ्युदय कीं प्राप्ति क्यों नहीं होगी-अवश्य ही होगी।

आगे-जिनपूजन में आनेवाले विघ्नोंके टालनेका उपाय बताते हैं-

यथास्वं दानमानाद्यैः सुखीकृत्य विधर्मणः ।
सधर्मणः स्वसात्कृत्य सिद्ध्यर्थी यजतां जिनम् ॥३३॥

अन्वयार्थ-(सिद्ध्यर्थी) निर्विघ्नतासे जिनपूजा होय, ऐसी सिद्धि की इच्छा करनेवाला पुरुष (यथास्वं) यथायोग्य (दानमानाद्यैः) दान और सत्कार आदि के द्वारा (विधर्मणः) अन्य धर्मावलम्बियों को (सुखीकृत्य) सुखी करके अर्थात् अपने अनुकूल करके तथा (सधर्मणः) सह धर्मियोंको (स्वसात्कृत्य) अपने आधीन करके जिन, जिनेन्द्र भगवान की (यजेत्) पूजा करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पूजादिक कल्याणकारी कार्यों में सहधर्मी और विधर्मी दोनो ही विघ्न उपस्थित कर सकते हैं। इसलिये जिन भगवान की पूजा की निर्विघ्नतया समाप्ति तथा स्वात्मोपलब्धि का इच्छुक पुरुष दान सन्मानादिक उचित व्यवहार के द्वारा शैवादि धर्ममें रत विधर्मियोंको सन्तुष्ट करके तथा जिनधर्मावलम्बी साधर्मियों को अपने अनुकूल करके अर्थात् अपने सहयोगी बनाकर पूजा करनी चाहिये। जिससे अपने पूजादिक कार्यों में विघ्न उपस्थित न हो ॥३३॥

अब–गृहस्थको बिना स्नान की पूजाका अधिकार नहीं है, यह बताते हैं–

स्त्र्यारम्भसेवासंक्लिष्टः स्नात्वाऽऽकण्ठमथाशिरः।
स्वयं यजेतार्हत्पादा–नस्नातोऽन्येन याजयेत् ॥३४॥

अन्वयार्थः–(स्त्र्यारम्भसेवासंक्लिष्टः) स्त्रीसेवन और कृष्यादिक कर्मोंको करनेसे दूषित है शरीर तथा मन जिसका ऐसा, (गृही) गृहस्थ (आकण्ठं) कण्ठपर्यंत (अथ) अथवा (आशिरः) शिरपर्यंत (स्नात्वा) स्नान करके (स्वयं) स्वयं (अर्हत्पादान्) अर्हन्त भगवानके चरणोंकी (यजेत) पूजा करे और (अस्नातः) नहीं किया है स्नान जिसने ऐसा वह गृहस्थ (अन्येन) स्नान किये हुये किसी दूसरे साधर्मी भाईसे (अर्हत्पादान्) अर्हन्त भगवानके चरणोंकी (याजयेत्) पूजा करवावे।

भावार्थः–स्त्रीसंभोग या कृष्यादिक कर्मसे शरीरमें पसीना आना, तन्द्रा और आलस्य, तथा मनमें दुर्बलता आदिके आनेसे शरीर और मन संक्लेशयुक्त रहता है। इसलिए गृहस्थों को स्नान करके ही शरीर और मनको शुद्धिपूर्वक स्वयं पूजन करनी चाहिये। यहांपर 'स्वयं' शब्दपर विशेष जोर है। श्रावकको जिनभगवानकी पूजा नौकर आदिके द्वारा नहीं करानी चाहिये। स्वयं करनेमे जो भक्ति और आनन्द आता है वह नौकर आदमि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योंसे करानेमें नहीं आता। यदि किसी (सूतकादि) कारण वश अस्पर्श होनेपर अथवा प्रकृतिके अस्वस्थताके कारण स्नान करना अशक्य होनेपर दूसरे किसी सहधर्मी भाईयोंसे स्नान करानेपर ही पूजन कराना चाहिये। सो यह कहते हैं–

उक्तं च–

नित्यं स्नानं गृहस्थस्य देवार्चनपरिग्रहे।
यतेस्तु दुर्जनस्पर्शात्स्नानमन्यद्विगर्हितम् ॥
वातातपादिसंस्पृष्टे भूरितोये जलाशये।
अवगाह्याचरेत्स्नान–मतोऽन्यद्गालितं भजेत् ॥
पादजानुकटिग्रीवा–शिरःपर्यन्तसंश्रयम्।
स्नानं पंचविधं ज्ञेयं यथादोषं शरीरिणाम् ॥
ब्रह्मचर्योपपन्नस्य निवृत्तारम्भकर्मणः।
यद्वा तद्वा भवेत्स्नानमन्त्यमन्यस्य तु द्वयम् ॥
सर्वारम्भविजृम्भस्य ब्रह्मजिम्हस्य देहिनः।
अविधाय बहिःशुद्धिं नाप्तोपास्त्यधिकारिता ॥
आप्लुतः सम्प्लुतश्चान्तः शुचिवासो विभूषितः।
मौनसंयमसम्पन्नः कुर्याद्देवार्चनाविधिम् ॥
दन्तधावनशुद्धास्यो मुखवासोवृताननः।
असञ्जातान्यसंसर्गः सुधीर्देवानुपाचरेत् ॥

अर्थः–देवपूजाके लिये गृहस्थोंको रोज स्नान करना चाहिये, और मुनिको दुर्जनके छूनेसे स्नान करना चाहिये। दूसरे और कभी भी मुनिको स्नान नहीं करना चाहिये। करे तो वह निन्दनीय है, गर्हित है शास्त्रोक्त नहीं है। गृहस्थोंको जहां हवा और सूर्यकी किरणोंके कारण जल कल्लोले लेता है, ऐसे पानीसे भरपूर सरोवरमें डूबकर स्नान करना चाहिये। अर्थात् वहांका पानी स्नानके लिये छाने हुये पानीके समान है। इसलिये प्रवेश कर ऐसे सरोवर में स्नान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के पानीको छानकर उपयोग करना चाहिये। पैरोंका स्नान, जांघोंतकका स्नान, कमरतकका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नान, गर्दनतकका स्नान, और शिरतकका स्नान, इस प्रकारसे स्नान पांच प्रकार है। सो इनमेंसे गृहस्थोंको जैसा दोष हो तदनुसार स्नान करना चाहिये। इन पांच प्रकारके स्नानोमेंसे जिन्होंने सब प्रकार के आरंभ छोड रखे हैं, जो ब्रह्मचारी है, उनके लि अन्तका स्नान अर्थात् शिरका स्नान जब कभी बताया है रोज नहीं, और सबके लिये ग्रीवा स्नान और शिरका स्नान करना चाहिये। विना स्नानके वे पूजन नहीं कर सकते हैं। जो किसी प्रकारका भी आरम्भ करते हैं; स्त्रीप्रसंग करते हैं, ऐसे व्यक्ति जबतक बाह्यशुद्धि अर्थात् स्नानादिक न कर लेवें तबतक उनको देवपूजाका अधिकार नहीं है। स्नान करके मौनसंयमको धारण करके देवपूजा करनी चाहिये। दन्तधावन करके, मुखपर वस्त्र लपेटकर दूसरेको न छूकर विवेकीजन भगवानकी पूजा करे।

अब चैत्यादिकका निर्माण करनेका फलविशेष बताते हैं--

निर्माप्यं जिनचैत्यतद्गृहमठस्वाध्यायशालादिकं।
श्रद्धाशक्त्यनुरूपमस्ति महते धर्मानुबन्धाय यत्।
हिंसारम्भविवर्तिनां हि गृहिणां तत्तादृगालम्बन—
प्रागल्भीलसदाभिमानिकरसं स्यात्पुण्यचिन्मानसम्॥३५॥

अन्वयार्थ- (यत्) जो (महते) महान् (धर्मानुबन्धाय) धर्म साधनके कारणभूत (अस्ति) है (तत्) वे (जिनचैत्यतद्गृहमठस्वाध्यायशालादिकं) जिनविम्ब, जिनमन्दिर, मठ—वसतिका तथा स्वाध्याय भुवन आदि (श्रद्धाशक्त्यनुरूपं) अपनी श्रद्धा और शक्तिके अनुसार पाक्षिक श्रावकोंको (निर्माप्यं) निर्माण कराना चाहिये (हि) क्योंकि (हिंसारम्भविवर्तिनां) प्राय: हिंसासे पूर्ण कृष्यादिक कर्मोंमें निरन्तर प्रवृत्ति करनेवाले (गृहिणां) गृहस्थोंका (तत्तादृगालम्बनप्रागल्भीलसदाभिमानिकरसं) जिनप्रतिमादिक तथा उन जिन प्रतिमादिकके समान तीर्थयात्रादिक सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके कारणोंकी प्रौढताके द्वारा शोभायमान है स्वाभिमानसे परिपूर्ण हर्ष जिसमें ऐसा (मानसम्) मन (पुण्यचित्) पुण्यको बढानेवाला (स्यात्) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– अपनी श्रद्धा तथा शक्त्यानुसार श्रावक को महान् धर्मके कारण स्वरूप, जिनबिम्ब, जिनमन्दिर, वसति, स्वाध्याय भवन अवश्य बनाना चाहिये। क्योंकि सतत हिंसादि सावद्य से युक्त कृष्यादिक कार्यों में निरन्तर प्रवृत्ति करनेवाले गृहस्थियोंके लिये जिन प्रतिमादिक तथा जिनबिम्बके समान तीर्थयात्रादिक सम्यग्दर्शन की विशुद्धिमें प्रौढ कारण है। तथा अन्तःकरण की विशुद्धि के कारणभूत होनेसे पुण्यबंधके कारण हैं।

यहाँ कोई यह शंका करे की जिनमन्दिर आदि के बनाने में सावद्य दोष लगता है " महते धर्मानुबन्धाय " इस पदसे उपर्युक्त शंका का निराकरण हो जाता है। क्योंकि कहा भी है "तत्पापमपि न पापं स्यात्, यत्र महान् धर्मसंबंधः " अर्थात् जिसके करनेसे बडा भारी धर्मानुबन्ध होता हो तो वह सवाद्य कर्म भी पाप नहीं है। जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर आदिक धर्मके आयतन है। इनके निमित्तसे नये धर्मकी प्राप्ति और प्राप्त धर्मकी रक्षा और रक्षित धर्मकी वृद्धि होती है और उसीसे धर्मपरम्परा चलती है। आरम्भमें आसक्त गृहस्थोंके मनमें इन आयतनोंके निर्माणके अवलम्बनसे मनमें एक प्रकारका अपने जीवनमें सत्कृत्य सम्बन्धी गौरवका अनुभव करानेवाला स्वाभिमान रससे युक्त परिणाम होता है। और उन परिणोमेंसे उनको पुण्यबन्ध होता है। आरम्भमें फंसे रहनेवाले श्रावकोंके मनमें जिनमन्दिर आदिकके निर्माण करानेसे " हमारे जीवन में अमुक सत्कृत्य बन गया ", इस प्रकारके जिन मन्दिरादि निर्माणरूपी सत्कृत्यके अवलम्बनसे होनेवाले 'आभिमानिक' धर्म–हर्ष युक्त मनसे हमेशा पुण्यबन्ध होता रहता है। उक्तं च––

यद्यप्यारम्भतो हिंसा हिंसायाः पापसम्भवः।
तथाऽप्यत्र कृतारम्भो महत्पुण्यं समश्नुते ॥
निरालम्बनधर्मस्य स्थितिर्यस्मात्ततः सताम्।
मुक्तिप्रासादसोपानमाप्तैरुक्तो जिनालयः ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– यद्यपि मंदिरके बनवानेके आरम्भसे हिंसा होती है। और हिंसासे पापबंधन होता है तथापि जिनेन्द्रके मंदिर बनवानेमें जो आरम्भ होता है उसके करनेवालेको महान् पुण्यका लाभ होता है, कारण धर्म निरालम्ब है। उसकी स्थिति सज्जनोंके द्वारा मंदिरसे होती है, इसलिये आप्त गणधरादिकोनें मुक्तिरूपी महलकी प्राप्तिके लिये जिनालयको सीढियोंकी उपमा दी है। जैसे सीढीसे महल पर चढते हैं वैसे जिनालयके आधारसे मुक्ति तकके अभ्युदयकी प्राप्ति होती है।

अब– जिनचैत्यादिककी आवश्यकता बताते हैं––

धिग्दुष्षमाकालरात्रिं यत्र शास्त्रदृशामपि।
चैत्यालोकादृते न स्यात् प्रायो देवविशा मतिः ॥३६॥

अन्वयार्थ– (दुष्षमाकालरात्रिं) इस दुष्षमा नामक पंचम कालरूपी मरण रात्रिको (धिक्) धिक्कार हो (यत्र) जिसमें (चैत्यालोकात्) जिनम्बिब दर्शनके (ऋते) विना (शास्त्रदृशां) शास्त्र ही हैं नेत्र जिन्होंके ऐसे मानवोंकी (अपि) भी (मतिः) बुद्धि (प्रायः) प्रायः करके (देवविशा) भगवान की भक्ति करनेमें प्रवृत्त (न स्यात्) नहीं होती हैं ॥३६॥

भावार्थ– दुर्निवार मोह (मिथ्यात्व) के वृद्धि के कारण भूत इस मरणरात्रिके समान दुष्षमानामक पंचमकाल को धिक्कार हो। इस पंचमकालमें शास्त्ररूपी नेत्र को धारण करने वाले ज्ञानी जनकी मति भी जिनबिम्बके दर्शनविना अनन्यशरणी भूत होकर परमात्माका आश्रय नहीं लेती है। इस श्लोक में प्रायः शब्द है। उससे यह ध्वनित होता है कि किन्ही ज्ञान, वैराग्य, परायणों की बुद्धी जिनबिम्बके दर्शन के विना भी परमात्मा का ध्यान कर सकती है साधारण जनोंकी नहीं। यहांपर पंचम कालको कालरात्रि (मरणरात्रि) की उपमा दी है और चैत्यको आलोक (प्रकाश) की उपमा दी है। जैसा कालरात्रिमें मोहका आवेग पसरता है उसी प्रकार इस पंचमकालमें मोहका वेग पसरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब जिन चैत्यालयकी आवश्यकता बताते हैं--

प्रतिष्ठायात्रादिव्यतिकरशुभस्वैरचरण—
स्फुरद्धर्मोद्धर्षप्रसररसपूरास्तरजसः ।
कथं स्युः सागाराः श्रमणगणधर्माश्रमपदं
न यत्रार्हद्गेहं दलितकलिलीलाविलसितम् ॥३७॥

अन्वयार्थ– (यत्र) जिन नगरादिकोंमें (दलितकलिलीलाविलसितं) नष्ट हो गया है कलिकालकी लीलाका विलास जहांपर ऐसा और (श्रमणगणधर्माश्रमपदं) मुनियोंके समूहको धर्मसाधन करनेके लिए निवास स्थानस्वरूप (अर्हद्गेहं) जिनमन्दिर (न अस्ति) नहीं है (तत्र) उन नगरादिकोंमें (प्रतिष्ठायात्रादिव्यतिकरशुभस्वैरचरणस्फुरद्धर्मोद्धर्षप्रसररसपूरास्तरजसः) प्रतिष्ठा तथा यात्रादिकोंके समूहमें पुण्याश्रवका कारणभूत जो स्वच्छन्दतापूर्वक होनेवाला मन वचन कायका व्यापार, उस व्यापारसे प्रकाशित होनेवाले धार्मिक उत्सवके विस्तारका जो हर्ष, उस हर्षरूपी जलके प्रवाहके द्वारा धो डाली है पापरूपी धूलिको जिन्होंने ऐसे (सागाराः) गृहस्थ (कथं स्युः) किस तरह हो सकते हैं ?

भावार्थ– जहां मंदिर होते हैं वहां अुनके निमित्तसे धार्मिक उत्सव मनाये जाते हैं । अुन धार्मिक उत्सवोमें धर्मात्मा लोगोंके एकत्रित होनेसे जनसमूहसे बडा धर्मप्रचार होता है । धर्मके विषयमें उत्साहरस बहता है और उससे धर्मात्माओंके पापोंका प्रक्षालन होता है । यदि पंचमकालकी लीलाके विलासको दलित करनेवाले तथा श्रमणगणोंका आश्रयस्थान और धर्मका आयतन ऐसे जिनमंदिर न होवें तो उनके निमित्तसे होनेवाली उपरोक्त बातें कैसे हो सकती हैं ?

कलिकालमें वसतिका आदि के विना सज्जन पुरुष भी अनवस्थित चित्त रहते हैं यह बताते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनो मठकठेराणां वात्ययेवानवस्थया ।
चेक्षिप्यमाणं नाद्यत्वे क्रमते धर्मकर्मसु ॥३८॥

अन्वयार्थ–(अद्यत्वे) इस पंचम काल में (वात्या इव) वायुमंडल के समान (अनवस्थया) रागादि परिणति से (चेक्षिप्यमाणं) चलायमान (मठकठेराणां) जंगलमें रहने वाले मुनियों का (मनः) चित्त (धर्मकर्मसु) धार्मिक क्रियाओंमें (न क्रमते) उत्साहित नहीं होता है ॥३८॥

भावार्थ–इस कलिकाल में वायुमंडल से प्रेरित हुये रुई के समान परस्पररागादि परिणतिसे चंचल हुआ अरण्यवासी मुनियों का मन भी धार्मिक क्रियाओं में स्थिर नहीं होता है–इसलिये जिन-मन्दिरके समान यतिओं के रहने के लिये मुनिवसतिका अवश्य बनाना चाहिये। जिसमें रहकर महाव्रती साधु अपने चारित्र का निर्मलरूप से पालन कर सके ॥३८॥

स्वाध्यायशालाके बिना उपाध्याय, गुरु आदिकोंको भी शास्त्रका–अन्तस्तत्व मर्मके ज्ञानकी स्थिरता रहना कठिन है–

विनेयवद्विनेतृणा–मपि स्वाध्यायशालया ।
विना विमर्शशून्या धीर्दृष्टेऽप्यन्धायतेऽध्वनि ॥३९॥

अन्वयार्थ–(स्वाध्यायशालया विना) स्वाध्यायशाला के बिना (विनेयवत्) शिष्योंकी तरह (विनेतृणां अपि) गुरुओंकी भी (विमर्शशून्या) तत्वोंके विचारसे रहित होती हुई (धीः) बुद्धि (दृष्टे अपि) अच्छी तरहसे अभ्यास किए गए भी (अध्वनि) शास्त्र अथवा मोक्षरूपी मार्गमें (अन्धायते) अन्धे पुरुषकी तरह आचरण करती है।

भावार्थः–जिसप्रकार शिष्यों की बुद्धि गुरूपदेश बिना श्रेयो-मार्ग में अन्धे के समान आचरण करती है अर्थात् श्रेयोमार्ग में प्रवेश नहीं करती, उसीप्रकार स्वाध्यायशाला के विना तत्व को विचारणामार्ग नहीं रहने से, परामर्शशीलता के साधनाभावमें परि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित विषयोंमें भी अर्थात् अभ्यस्त भी शास्त्र वा मोक्षमार्ग के विषयमें अन्धे के समान आचरण करती हैं अर्थात् संशययुक्त हो जाती है। इसलिये प्रज्ञावन्त मुमुक्षुपुरुषों को स्वपरात्महितके साधनभूत जिनबिम्ब, जिनमन्दिर, मुनियों के रहने की वसतिका, और स्वाध्यायशाला अवश्य बनाना चाहिये। क्योंकि जिनबिम्ब, जिनमन्दिर सम्यग्दर्शन के साधन हैं। स्वाध्यायशाला ज्ञान की साधन है, और वसतिका चारित्र की साधन है—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष के साधन हैं।

गृहस्थ अन्य बव्हारंभ तो करते ही हैं, इसलिये उनको अनुकम्पा तथा जीवोंपर अनुग्रहबुद्धिसे भोजनशाला तथा औषधालय बंधवाना और जिनपूजनके लिये बगीचा आदि निर्माण कराना दोष नहीं हैं, यह बतलाते हैं—

सत्रमप्यनुकम्प्यानां सृजेदनुजिघृक्षया।
चिकित्साशालवद्दुष्ये—न्नेज्यायै वाटिकाद्यपि ॥४०॥

अन्वयार्थः—('पाक्षिकः') पाक्षिक श्रावक (चिकित्साशालवत्) चिकित्साशालाके समान (अनुकम्प्यानां) दयाके विषयभूत दुःखी प्राणियोंके (अनुजिघृक्षया) उपकार करनेकी इच्छासे (सत्रं अपि) अन्न और जलके वितरण करने के स्थानको भी (सृजेत्) बनवावे तथा (इज्यायै) जिनेन्द्र भगवानकी पूजाके लिये (वाटिकाद्यपि) बगीचा और बावडी सरोवर का बनवाना भी (न दुष्येत्) दोषदायक नहीं होता है।

भावार्थ—पाक्षिकश्रावक अनुग्रहबुद्धिसे बुभुक्षितोंके लिए व रोगियोंके लिए अन्नक्षेत्र खोले। 'अपि' शब्दसे पियाऊ खोले तथा जैसे औषधालयोंकी स्थापना आरम्भका साधन होनेपर भी दोषदायक नहीं है वैसे ही जिनभगवानकी पूजाके लिए आवश्यक पुष्प व फलोंके लिए बगीचोंका लगाना भी दोषजनक नहीं है। यहां भी 'अपि' शब्दसे कुआ, बावडी आदिका भी ग्रहण है। अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां 'अपि' शब्द अनादरवाचक है। इसलिए अपने लिए कृषि आदि षट्कर्म करनेवाले गृहस्थके लिए धर्मबुद्धि से बगीचा लगवाना लोकव्यवहारसे दोष नहीं हो सकता। तथापि कीमतसे लाकर पुष्पोंसे पूजा करनेका मार्ग श्रेष्ठ है। यहां इस अभिप्रायका भी दर्शक 'अपि' शब्द है।

निष्कपट भक्तिसे जिस किसी प्रकारसे जिनभगवानको पूजनेवालोंके सर्व दुःख दूर होते हैं और संपूर्ण इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है, ऐसा उपदेश देते हैं।

यथाकथञ्चिद्भजतां जिनं निर्व्याजचेतसाम्।
नश्यन्ति सर्वदुःखानि दिशः कामान्दुहन्ति च ॥४१॥

अन्वयार्थ–(निर्व्याजचेतसां) छलकपट रहित है चित्त जिन्हों के ऐसे (यथाकथञ्चित्) जिस किसी प्रकार से (जिनं) जिनेन्द्र भगवान को (यजतां) आराधना करनेवाले पुरुषों को (सर्वदुःखानि) सम्पूर्ण दुःख (नश्यंति) नष्ट हो जाते हैं। (च) और (दिशः) दशो दिशा (कामान्) उन के मनोरथोंको (दुहन्ति) पूर्ण करती हैं ॥४१॥

भावार्थ–अभिषेक पूजा स्तवन आदि किसी भी प्रकार से मायारहित होकर सरल भावोंसे जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने वाले भक्तोंके, शारीरिक मानसिक सम्पूर्ण आधि व्याधि रूप दुःख नष्ट हो जाते हैं–तथा सम्पूर्ण दिशाऐं जिनभक्त को इच्छित फल देनेवाली हो जाती है। अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के भावपूर्वक भक्ति करने से अनिष्टका परिहार और इष्ट की प्राप्ति होती है। जहां तक हो वहांतक उत्तम से उत्तम सामग्रीसे भगवान की पूजा करनी चाहिये। सामग्री के अभाव में जितनी सामग्री मिले उतने से ही पूजा करनेवाले को इच्छित फलोंकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार जिनपूजन विधानका उपदेश करके सिद्धपूज साधुपूजा आदिका भी उपदेश करते हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनानिव यजन्सिद्धान्साधून्धर्मं च नन्दति ।
तेऽपि लोकोत्तमास्तद्वच्छरणं मङ्गलं च यत् ॥४२॥

अन्वयार्थः-(जिनान् इव) अरहन्तोंकी तरह (सिद्धान्) सिद्धोंकी (साधून्) साधुओंकी, आचार्य, उपाध्याय तथा मुनियोंकी (च) और (धर्मं) व्यवहार निश्चय रत्नत्रयरूप धर्मकी (यजन्) पूजा करनेवाला प्राणी (नन्दति) अंतरंग तथा बहिरंग विभूति के द्वारा वृद्धिको प्राप्त होते हैं (यत्) क्योंकि (ते अपि) वे सिद्धादिक भी (तद्वत्) जिनेन्द्र भगवान की तरह (लोकोत्तमाः) लोकमें उत्तम (शरणं) शरण (च) और (मङ्गल) मंगलरूप ('सन्ति') हैं ॥४२॥

भावार्थः-जिस प्रकार जिनेंद्र भगवानकी पूजा करनेवाला अंतरंग और बहिरंग विभूतिसे संवर्धित होता हैं अर्थात् अुसकी अंतरंग और बहिरंग विभूति उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होती है अुसी प्रकार सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू और रत्नत्रयरूप निश्चय व्यवहार धर्मकी पूजा आराधना करनेवालेके भी अंतरंग सम्यग्दर्शनादि विभूति तथा स्वर्गादि बहिरंग विभूति वृद्धिगत होती है । क्योंकि जिन्होंने अपने धर्मको सिद्ध किया अैसे सिद्ध भगवान् तथा साधू भी जिनेंद्रके समान लोकमें उत्कृष्ट हैं। दुःखके नाशक, अपायसे रक्षणके उपाय होने से शरणरूप हैं । तथा पापके नाशक और पुण्यवर्धक होनेसे मंगलरूप है ।

संपूर्ण पूज्य और पूजाके विधिका प्रकाशन करते हुए सम्यग्श्रुतदेवताकी आराधनाका विधान करते हैं-

यत्प्रसादान्न जातु स्यात् पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।
तां पूजयेज्जगत्पूज्यां स्यात्कारोड्डमरां गिरम् ॥४३॥

अन्वयार्थ-(यत्प्रसादात्) जिसके प्रसादसे (पूज्यपूजाव्यतिक्रमः) पूज्य और पूजाका व्यतिक्रम (जातु) कभी भी (न स्यात्) नहीं हो सकता है (तां) अुस (जगत्पूज्यां) सारे विश्वके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा पूजनीय (स्यात्कारोड्डमरां) स्यात् पदसे युक्त (गिरम्) जिनवाणीको (पूजयेत्) पूजा करे ।।४३।।

भावार्थ- जिस जिनवाणीके अनुग्रहसे पूज्य "अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु और रत्नत्रयधर्म" का तथा पूजाकी विधिका उल्लंघन नहीं हो सकता अर्थात् पूज्य और पूजा का ज्ञान जिससे होता है, अत: 'स्यात्' पदके प्रयोगसे सर्वथा एकांत वादसे अजेय, हितोपदेशी होनेसे जगत्पूज्य ऐसी जिनवाणीकी भी पूजा करनी चाहिये । पूजाकी यथोक्त विधिका उल्लंघन होना व्यतिक्रम है । जिनवाणीके द्वारा शास्त्रज्ञान होनेसे विधिका उल्लंघन नहीं होता है ।

श्रुतपूजक और जिनपूजकमें परमार्थसे कोई अन्तर नहीं है ऐसा कहते हैं--

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम् ।
न किञ्चिदन्तरं प्राहु--राप्ता हि श्रुतदेवयोः ।।४४।।

अन्वयार्थ- (ये) जो (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (श्रुतं) जिन-वाणीकी (यजन्ते) पूजा करते हैं (ते) वे मनुष्य (अञ्जसा) वास्तविकमें (जिनम्) जिनेंद्र भगवानकी (यजन्ते) पूजा करते हैं (हि) क्योंकि (आप्ताः) गणधरदेवने (श्रुतदेवयोः) जिनवाणी और जिनेंद्रदेवमें (किञ्चिदन्तरं) लेश मात्र भी अन्तर (न प्राहुः) नहीं कहा है ।।४४।।

भावार्थ- जो मानव भक्तिपूर्वक जिनवाणीकी पूजा करते हैं वे निश्चयसे जिनेंद्रभगवानकी पूजा करते हैं । क्योंकि गणधर देवने जिनवाणी और जिनेंद्रदेवमें कुछ भी अन्तर नहीं कहा है । अर्थात् जो श्रुत है वह देव है, जो देव है वह श्रुत है ।

इस प्रकार देवपूजाकी विधिका संक्षेपसे उपदेश देकर साक्षात् उपकारी होनेसे गुरुकी उपासनामें नित्य नियुक्त करते हैं--

उपास्या गुरवो नित्य--मप्रमत्तैः शिवार्थिभिः ।
तत्पक्षतार्क्ष्यपक्षान्तश्चरा विघ्नोरगोत्तराः ।।४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (अप्रमत्तैः शिवार्थिभिः) अप्रमादी कल्याण चाहने वाले पुरुषोंके द्वारा (नित्यम्) हमेशा (गुरवः) गुरुओंकी उपासना करनी चाहिये। क्योंकि (तत्पक्षतार्क्ष्यपक्षान्तश्चराः) गुरुओंके आधीन वृत्तिरूप गरुडके पंखोंके भीतर चलनेवाले पुरुष (विघ्नोरगोत्तराः) विघ्नरूपी सर्पोंसे दूर ही रहते हैं ।।४५।।

भावार्थ– मुमुक्षु पुरुषोंको प्रमादरहित होकर निरंतर धर्माराधनामें तत्पर धर्म गुरुओंकी सेवा आराधना करनी चाहिये। क्योंकि जिस प्रकार गरुडके पास में सर्प नहीं आते हैं अर्थात् जिसके पास गरुड है उसको विषधर सर्प नहीं काट सकता, उसी प्रकार गुरुकी भक्तिरूपी गरुड जिनके हृदय में है, उनको धर्मानुष्ठानमें आने वाले विघ्नरूपी सर्प काट नहीं सकते अर्थात् उनको कभी भी धर्म कार्यों में विघ्न नहीं आ सकते हैं।

गुरूपासना की विधि बताते हैं--

निर्व्याजया मनोवृत्त्या सानुवृत्त्या गुरोर्मनः ।
प्रविश्य राजवच्छश्वद्विनयेनानुरञ्जयेत् ।।४६।।

अन्वयार्थ– (निर्व्याजया) छलकपटरहित मनोवृत्ति से (सानुवृत्त्या) उनके अनुकूल वृत्तिसे (राजवत्) राजाके समान (शश्वत्) हमेशा (विनयेन) विनयसे (प्रविश्य) गुरुके मनमें प्रवेश करके (गुरोर्मनः) गुरुके मनको (अनुरंजयेत्) अनुरंजित करे ।।४६।।

भावार्थ– कल्याण चाहनेवाले मनुष्य गुरुके मनको विनय आदिके द्वारा अनुरंजित करे। विनय तीन प्रकारका होता है।

कायिकविनय– गुरुके सन्मुख आते समय उठके खडे होना, चलते समय पीछे पीछे चलना, हाथ जोडकर नमस्कार करना आदि कायिकविनय कहलाते हैं।

वाचनिकविनय– अुनके प्रति हितमित प्रिय वचन प्रतिपादन करना व नम्रतासे बोलना वाचनिक विनय है।

मानसिकविनय– हमेशा गुरुओंके विषयमें शुभचिंतवन करना मानसिक विनय है। इसप्रकार मन, वचन और कायके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनयसे गुरुको अपने प्रति प्रसन्न करें । जैसे राजाके साथ राजाके हृदयमें स्थान करके विनयपूर्वक व्यवहार किया जाता है, वैसे ही गुरुके मनको भी अपनी छलकपटरहित और गुरुके अनुकूल मनोवृत्ति बनाकर उनके हृदयमें अपना गुणानुरागी स्थान बनाकर यथाहित व्यवहार करे । जैसे राजाकी सेवकवर्ग राजाके प्रसन्नताके अनुसार सेवा करते हैं ।

विनयसे गुरुके मनको अनुरंजित करे इसी अर्थको विशेष रूपसे कहते हैं--

पार्श्वे गुरूणां नृपवत्प्रकृत्यभ्यधिकाः क्रियाः ।
अनिष्टाश्च त्यजेत्सर्वा मनो जातु न दूषयेत् ।।४७।।

अन्वयार्थ- (नृपवत्) राजाके समान (गुरूणां) गुरुओंके (पार्श्वे) निकटमें (प्रकृत्यभ्यधिकाः) अपनी स्वभावसे अतिरिक्त विकारी क्रोध, हास्य, विवाद आदि (च) तथा (सर्वाः) संपूर्ण (अनिष्टाः) शास्त्रनिषिद्ध (क्रियाः) क्रियाओंको (त्यजेत्) छोड़ देना चाहिये (जातु) कभी भी (मनाः) गुरूके मनको (न दूषयेत्) दूषित न करे अर्थात् विकारी न करे ।।४७।।

भावार्थ- जिस प्रकार राजाके निकटमें हास्यादि विकारी चेष्टा करना निषिद्ध है उसी प्रकार उपासक श्रावकको भी गुरुओंके समीपमें अपने स्वाभाविक क्रियाओं को छोडकर के क्रोध, हास्य, विवाद आदि विकारीक्रियायें तथा शास्त्रनिषिद्ध पर्यस्तिका (बैठना) उपाश्रयादि संपूर्ण क्रियाओंको छोड देना चाहिये अर्थात् अैसी चेष्टा गुरुके सामने नहीं करना चाहिये । और जिस कार्यसे गुरुके मनमें आर्तरौद्रध्यान हो अैसा कार्य भी नहीं करना चाहिये ।

निष्ठीवनमवष्टम्भं जृम्भणं गात्रभञ्जनम् ।
असत्यभाषणं नर्महास्यं पादप्रसारणम् ।।
अभ्याख्यान करस्फोट करेण करताडनम् ।
विकारमंगसंस्कार वर्जयेद्यतिसन्निधौ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरूके समीपमें थूकना, अेन्डाई लेना, जांभई लेना, शरीरको तोडना, असत्यभाषण करना, हँसी मजाक करना, पैर फैलाकर बैठना, लडाई करना, ताली बजाना, चुटकी बजाना, अंगमें विकार उत्पन्न करना, अंगका संस्कार करना आदि चेष्टायें नहीं करनी चाहिये ।

अब इस समय पात्राणि तर्पयेत् इत्यादि पूर्व कही हुई दान विधिका विस्तार करनेके लिये कहते हैं--

पात्रागमविधिद्रव्य--देशकालानतिक्रमात् ।
दानं देयं गृहस्थेन तपश्चर्यं च शक्तितः ॥४८॥

अन्वयार्थ-(गृहस्थेन) गृहस्थीओंको (पात्रागमविधिद्रव्य-देशकालानतिक्रमात्) पात्र, आगम, विधि, द्रव्य, देश, काल के अनुसार अथवा इनका उल्लंघन न करके (दानं) रत्नत्रयका अनुग्रह करनेवाले वस्तु (देयं) देना चाहिये । (च) और (शक्तितः) अपने शक्तिके अनुसार (तपश्चर्यं) तप भी करना चाहिये ।

भावार्थ- गृहस्थीओंको यथा पात्र, आगम, द्रव्य, विधि, देश, काल का अतिक्रमण न करके अपने शक्ति अनुसार साधुओंके रत्नत्रयमें अनुग्रह करनेवाली वस्तुका दान देना चाहिये । तथा अपनी शक्ति अनुसार अनशन, अवमोदर्य आदि तप भी करना चाहिये ।

वर्यमध्यजघन्यानां पात्राणामुपकारकम् ।
दानं यथायथं देयं वैयावृत्यविधायिना ॥

उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रके लिये यथायोग्य वैयावृत्य करनेवाला पुरुषोंके द्वारा उपकारक वस्तु देना चाहिये ।

नित्य नियमसे सम्यग्दृष्टिनें दान और तप किया तो अुसका फल अवश्य प्राप्त होता है अुसको कहते हैं--

नियमेनान्वहं किञ्चिद्यच्छतो वा तपस्यतः ।
सन्त्यवश्यं महीयांसः परे लोका जिनश्रितः ॥४९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(नियमेन) नियम रूपसे (अन्वहं) रोज (किञ्चित्) शास्त्रविहित थोडासा भी (यच्छतः) दान देनेवालेके (वा) अथवा (तपस्यतः) तपश्चरण करनेवालेकी (जिनश्रितः) भगवानकी सेवा करनेवालेके (परे) परलोकमें अर्थात् जन्मांतरमें (अवश्यं) अवश्य ही (महीयांसः) इंद्रादिपदलक्षण (लोकाः) लोकविभूतियाँ (सन्ति) होती हैं।

भावार्थ-जो भव्य जीव अपनी शक्ति अनुसार सत्पात्रोंको शास्त्रविहित दान देते हैं तथा अपनी शक्ति अनुसार शास्त्रविहित थोडासा तप करते हैं अुनको परलोकमें भी इंद्रादिकी विभूतियां प्राप्त होती हैं।

किस प्रयोजनसे दान दिया जाता है इसे कहते हैं-,

धर्मपात्राण्यनुग्राह्या-ण्यमुत्र स्वार्थसिद्धये।
कार्यपात्राणि चात्रैव कीर्त्यै त्वौचित्यमाचरेत् ॥५०॥

अन्वयार्थ-कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा (अमुत्र) परलोकमें (स्वार्थसिद्धये) स्वर्गादि संपत्तिकी सिद्धीके लिये (धर्मपात्राणि) धर्मपात्रोंको (अनुग्राह्याणि) दान देना चाहिये, अनुग्रह करना चाहिये (अत्रैव) इस लोकमें कार्यसिद्धिके लिए (कार्यपात्राणि) त्रिवर्गमें साधनभूत कार्यपात्रोंको अनुग्रहीत करना चाहिये (तु) और (कीर्त्यै) कीर्तिके लिये भी (औचित्यम्) उचित क्रियाओंका (आचरेत्) आचरण करे ॥५०॥

भावार्थ-गृहस्थीको चाहिये कि वह परलोकमें स्वर्गादि सुखसंपत्तीके लिये रत्नत्रयसाधनमें तत्पर धर्मपात्रोंका अनुग्रह करे। तथा इस लोकमें अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये त्रिवर्गके साधनमें सहायकारी कार्यपात्रोंका भी अनुग्रह करे। और कीर्तिके लिये अुचित दान, प्रियवचन आदि सत्कार्योंसे सबको संतुष्ट करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मपात्रोंको यथागुण सन्तर्पण करनेके लिये कहते हैं—

समयिकसाधकसमयद्योतकनैष्ठिकगणाधिपान्धिनुयात् ।
दानादिना यथोत्तरगुणरागात्सद्गृही नित्यम् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(नित्यम्) हमेशा (सद्गृही) पाक्षिक श्रावक (यथोत्तरगुणरागात्) अपनेसे उत्तर गुणके अनुरागसे (दानादिना) दान आदिके द्वारा (समयिकसाधकसमयद्योतकनैष्ठिकगणाधिपान्) समयिक, साधक, समयद्योतक, नैष्ठिक और गणाधिपोंको (धिनुयात्) संतुष्ट करे ॥५१॥

भावार्थ—समयिक, साधक, समयद्योतक, नैष्ठिक और गणाधिपके भेदसे धर्मपात्र पांच प्रकारके होते हैं।

समयिक—जिनसमयमें आश्रित गृहस्थी वा मुनि समयिक कहलाते हैं।

साधक—ज्योतिष मंत्रवादादि लोकोपकारक शास्त्रके जाननेवाले साधक कहलाते हैं।

समयद्योतक—वादविवादके द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाले समयद्योतक कहलाते हैं।

नैष्ठिक—मूलोत्तरगुण और प्रशंसनीय तपोनुष्ठानमें निष्ठा रखनेवाले नैष्ठिक कहलाते हैं।

गणाधिप—गृहस्थाचार्य और धर्माचार्य गणाधिप कहलाते हैं।

"यथोत्तरगुणरागतः" इस पदके दो अर्थ हैं (१) उत्तरोत्तर अधिक अधिक गुण हैं, अतः उन उन विशेषगुणोंके अनुसार यथायोग्य दान सन्मान संभाषणादिकके द्वारा उनको दान देवें। (२) जिसका जैसा जैसा उत्कृष्ट गुण है उसके अनुसार उनको उसके अनुकूल परमप्रीति करते हुए दानादिक देकर संतुष्ट करे, ऐसा कहते हैं।

१) गृहस्थो वा यतिर्वाऽपि जैनं समयमास्थितः ।
यथाकालमनुप्राप्तः पूजनीयः सुदृष्टिभिः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२) ज्योतिर्मन्त्रनिमित्तज्ञः सुप्रज्ञः कार्यकर्मसु ।
मान्यः समयिभिः सम्यक्परोक्षार्थसमर्थधीः ॥

३) दीक्षायात्राप्रतिष्ठाद्याः क्रियास्तद्विरहे कुतः ।
तदर्थं परपृच्छायां कथं च समयोन्नतिः ॥

४) मूलोत्तरगुणश्लाघ्यैस्तपोभिर्निष्ठितस्थितिः ।
साधुः साधु भवेत्पूज्यः पुण्योपार्जनपण्डितैः ॥

५) ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे चातुर्वर्ण्यपुरस्सरः ।
सूरिर्देव इवाराध्यः संसाराब्धितरण्डकः ॥

अर्थः–१) जिनधर्मधारक यति वा श्रावक जो भी दान देते समय मिले सम्यग्दृष्टियों द्वारा पूज्य है । २) परोक्ष अर्थ को जानने में जिसकी बुद्धि समर्थ है ऐसा जो ज्योतिषशास्त्र, मंत्रशास्त्र आदि निमित्तोंका ज्ञाता, कर्तव्यकर्मका जाननेवाला पात्र जैनोंके द्वारा मान्य है । ३) यदि ऐसे ज्ञानी न रहे तो उनके बिना जैनधर्मके मर्मज्ञकी दीक्षा, प्रतिष्ठा, यात्रा, क्रिया कैसे बनेगी तथा इस विषयका परिपृच्छाके होनेपर अर्थात् दूसरेसे पूछे जानेपर जैन समयकी कैसा उन्नति होगी ? इसलिये समयद्योतक विद्वानका भी आदर करना चाहिये । ४) मूलगुण उत्तरगुण और प्रशंसनीय तपके द्वारा जिनका विशेष स्थान है और इसी कारण जो नैष्ठिक कहलाते हैं ऐसे साधू भी धर्मात्माओं द्वारा भलेप्रकार पूजनीय है । ५) जो ज्ञानकाण्ड तथा क्रियाकाण्डके विषयमें चातुवर्णके द्वारा अग्रणी माने जाते हैं और जो संसार–सागरसे पार उतरनेमें जहाजके समान होते हैं, वे सूरि भी देवके समान पूज्य हैं । इस पात्रका अभिप्राय पात्रदत्ति और समदत्ति दोनोंमें लगा लेना चाहिए । उक्त प्रकारसे मुमुक्षु यति व श्रावकोंमें यथायोग्य रत्नत्रय बुद्धिसे दिया हुआ दान पात्रदानकी कोटिमें जाता है । और बुभुक्षु गृहस्थोंमें यथायोग्य रीतिसे वात्सल्य बुद्धिसे दिया हुआ दान समदत्तिकी कोटिमें आता है, ऐसा समझना चाहिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'समदत्ति' दानकी विधि बतलाते हैं—

स्फुरत्येकोऽपि जैनत्व-गुणो यत्र सतां मतः ।
तत्राप्यजैनैः सत्पात्रैर्द्योत्यं खद्योतवद्रवौ ॥५२॥

अन्वयार्थ-(यत्र) जिस जैनमें (सतां मतः) सज्जनोंको प्रिय ऐसा (एकोऽपि) ज्ञान और तपसे रहित केवल एक भी (जैनत्व-गुणः) जैनत्व गुण-सम्यक्त्वगुण (स्फुरति) स्फुरायमान होता है (तत्रापि) उस जैनके सामने भी (सत्पात्रैः) ज्ञान तथा तपसे अधिक (अजैनैः) अजैन पुरुष (रवौ) सूर्यके सामने (खद्योतवत्) जुगनूकी तरह (द्योत्यं) प्रतिभासित होते हैं।

भावार्थ-जिस जैन में "जिनेन्द्र भगवान ही मुझे संसाररूपी समुद्रसे तारने के लिये समर्थ हैं-दूसरे अन्य देव कोई भी संसारसे तारने के लिये समर्थ नहीं हैं" इस प्रकार साधूओं के इष्ट दृढ विश्वासरूप एक ही सम्यक्त्वगुण स्फुरायमान हैं, दूसरे ज्ञान तपादि गुण नहीं हैं तो भी-उस सम्यग्दृष्टि के सामने ज्ञान तपादि गुणोंसे अधिक शिवादिककी भक्ति रूपी ग्रह से ग्रसित मिथ्यादृष्टि लोग सूर्य के समक्ष में खद्योत के समान प्रतिभासित होते हैं, अर्थात् सम्यक्त्व गुण विशिष्ट जैनसूर्य के समान है-और मिथ्या-दृष्टि खद्योत के समान है। सूर्य एक ही जगत् प्रकाशक है। खद्योत सैंकडो मिलकर भी जगत्को प्रकाशित नहीं कर सकते उसी प्रकार एक ही सम्यक्त्व गुण संसारका नाशक है। सम्यक्त्वके शिवाय अधिक कायक्लेश करनेपर भी संसारका उच्छेद नहीं कर सकते। इसलिये सम्यग्दृष्टि के सामने मिथ्यातपस्वी निष्प्रभ हो जाते हैं।

अब-कल्याणेच्छु पुरुषको सबसे प्रथम जैन लोगोंपर अनुग्रह करना चाहिये, यह बतलाते हैं-

वरमेकोऽप्युपकृतो जैनो नान्ये सहस्रशः ।
दलादिसिद्धान् कोऽन्वेति रससिद्धे प्रसेदुषि ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (उपकृतः) उपकार किया हुवा (एकः) एक (अपि) भी (जैनः) जैन (वरं) उत्कृष्ट है (अन्ये) मिथ्यादृष्टि (सहस्रशः) हजार भी अच्छे (न) नहीं हैं। क्योंकि (रससिद्धे) रससिद्धि करनेवाले पुरुष के (प्रसेदुषि) अनुग्रहीत हो जानेपर (दलादिसिद्धान्) साररहित कृत्रिम सुवर्ण सिद्ध करनेवाले पुरुषोंको (कः) कौन (अन्वेति) खोज करता है अर्थात् कोई भी नहीं करता है।

भावार्थ– हजारों मिथ्यादृष्टि इतरों के उपकार करने की अपेक्षा एक जैनका उपकार करना सर्वोत्कृष्ट हैं। यहां एक दृष्टान्त है कि पारदके द्वारा दारिद्रय, व्याधि, बुढापादिको दूर करने की शक्तिसे युक्त पुरुष के अपने ऊपर प्रसन्न हो जानेपर; कृत्रिम साररहित सुवर्ण बनाने वाले पुरुषों की खोज कौन करता है अर्थात् कोई नहीं करता ।।५३।।

नामादि निक्षेपसे जैनके भी चार भेद होते हैं, उनमें यथोत्तर पात्रताविशेषको बताते हैं––

नामतः स्थापनातोऽपि जैनः पात्रायतेतराम् ।
स लभ्यो द्रव्यतो धन्यैर्भावतस्तु महात्मभिः ।।५४।।

अन्वयार्थ– (नामतः) नामसे और (स्थापनातः) स्थापनासे (अपि) भी (जैनः) जैन (पात्रायतेतरां) इतरोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट पात्रके समान आचरण करते हैं। (द्रव्यतः) द्रव्यसे (सः) वह जैन (धन्यैः) पुण्यवान पुरुषोंको ही (लभ्यः) प्राप्त होता है (तु) परन्तु (भावतः) भावसे जैन तो (महात्मभिः) महाभाग्यवान् पुरुषोंके द्वारा ही प्राप्य है ।।५४।।

भावार्थ– नाम, स्थापना द्रव्य और भाव की अपेक्षासे जैन चार प्रकारके होतें हैं।

नामजैन– जाति द्रव्य गुण क्रिया की अपेक्षाके विना, जैन इस संज्ञा मात्र को धारण करनेवाला नामजैन कहलाता है अर्थात् मैं जैन हूँ इति कल्पनावाला नामजैन हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापनाजैन– यह वही जैन है इस प्रकारकी कल्पना जिस में हो उसको स्थापनाजैन कहते हैं, यहां पर नाम जैन में और स्थापना जैन में विशेष अन्तर नहीं है।

द्रव्यजैन– भविष्य कालमें जैनत्व गुणों (सम्यक्त्वादि) के उत्पत्ति के योग्य हो उसको द्रव्यजैन कहते हैं।

भावजैन– वर्तमान कालमें जैनत्व गुणसहित है उसको भाव जैन कहते हैं।

नामजैन और स्थापनाजैन भी सम्यक्त्वके सहचारी पुण्या-श्रवके कारण होने से द्रव्यमिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा उत्कृष्ट पात्र है। द्रव्यजैन पात्र मिलना दुर्लभ है वह तो जिन को मिलता है वह दाता धन्य है। और भावसे जैन जिनको मिलते हैं वे तो महाभाग्यशाली महात्मा हैं।

भावजैनके प्रति निर्व्याज प्रेम करनेवालोंको अभ्युदय तथा मोक्ष सुख मिलता है, यह बताते हैं—

प्रतीतजैनत्वगुणेऽनुरज्यन्निर्व्याजमासंसृति तद्गुणानाम् ।
धुरि स्फुरन्नभ्युदयैरदृप्तस्तृप्तस्त्रिलोकीतिलकत्वमेति ।५५।।

अन्वयार्थ– (प्रतीतजैनत्वगुणे) प्रसिद्ध है जैनत्व गुण जिसमें ऐसे पुरुषोमें (निर्व्याजं) मायाचार रहित (अनुरज्यन्) अनुराग करनेवाला और (आसंसृति) संसारपर्यंत (तद्गुणानां) प्रसिद्ध जैनत्व गुणवाले पुरुषोंके (धुरि) अग्रभागमें (स्फुरन्) शोभायमान होनेवाला ('गृही') गृहस्थ (अदृप्तः) मदरहित होता हुआ (अभ्युदयैः) ऐश्वर्यादिकके द्वारा (तृप्तः) सन्तुष्ट हो करके (त्रिलोकीतिलकत्वं) तीनों लोकोंके तिलकपनेको–मोक्षपदको (एति) प्राप्त होता है।

भावार्थ–जैनोंके प्रति जो सच्चे भावसे उनके गुणोंमें अनुराग भाव निश्चलवृत्तिसे करता है, वह जबतक संसारमें रहता है तबतक निर्मद होकर संसारगत ऐश्वर्योंसे तृप्त होता हुआ अर्थात् जैनोंके बीच भवभवमें अग्रणी होकर मुक्तिको प्राप्त करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब– कन्यादिकका दान प्रथमतः गृहस्थाचार्यको अथवा उसके अभावमें मध्यमपात्र श्रावकको देना चाहिये, यह बतलाते हैं–

निस्तारकोत्तमायाथ मध्यमाय सधर्मणे ।
कन्याभूहेमहस्त्यश्व—रथरत्नादि निर्वपेत् ।।५६।।

अन्वयार्थ– ('गृही') गृहस्थ (सधर्मणे) अपने समान है धर्म जिसका ऐसे (निस्तारकोत्तमाय) गृहस्थाचार्यके लिये (अथ) अथवा उसके अभावमें (मध्यमाय) मध्यम गृहस्थके लिये (कन्याभूहेमहस्त्यश्वरथरत्नादि) कन्या, भूमि, सुवर्ण, हाथी, घोडा, रथ, रत्न और मकानादिक पदर्थोंको (निर्वपेत्) देवे ।

भावार्थ– जिनके क्रिया मंत्र व्रतादिक अपने समान हैं उनको साधर्मी कहते हैं । संसाररूपी समुद्रसे पार होनेवाले गृहस्थीओमें जो प्रधान हो उसको निस्तारकोत्तम कहते हैं । गृहस्थी उत्तम साधर्मीके लिये कन्या, जमीन, सोना, हाथी, घोडा, रथ, रत्न, वज्र और आदि शब्दसे वस्त्र, घर, नगर और भी त्रिवर्गके साधन बहुत पदार्थोंको देवे । उत्तमपात्र न मिले तो मध्यम और जघन्य साधर्मीके लिये भी कन्या आदि वस्तु अर्पण करनी चाहिये । इस श्लोकमें पक्षांतर सूचक और अधिकारवाचक है । उसका अर्थ यह निकलता है गृहस्थ अधिक गुणी हो तो भी मुनीकी अपेक्षा मध्यम है। अथवा यह भी अर्थ होता है कि नामस्थापनामें जघन्य समझते हैं और कन्यादान मध्यम समझते हैं। अथवा जघन्य समदत्तीको कहकर मध्यमसमदत्तीको कहते हैं यह भी अर्थ निकलता है ।।५६।।

अब– साधर्मीयोंके लिये कन्यादान देनेका हेतु––

आधानादिक्रियामन्त्र—व्रताद्यच्छेदवाञ्छया ।
प्रदेयानि सधर्मभ्यः कन्यादीनि यथोचितम् ।।५७।।

अन्वयार्थ- (आधानादिक्रियामन्त्र-व्रताद्यच्छेदवाञ्छया) गर्भाधानादिक क्रियाओंके, तत्सम्बन्धी मन्त्रोंके तथा व्रत नियमादिकोंके नष्ट नहीं होनेकी आकांक्षासे ('गृहिणा') गृहस्थको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सधर्मभ्यः) साधर्मी भाइयोंके लिये (यथोचितं) यथायोग्य कन्या-दीनि कन्यादिक पदार्थोंको (प्रदेयानि) देना चाहिये ।

भावार्थ- गर्भाधान प्रीति सुप्रीति आदि आप्तोक्त क्रियाओंको आधानादि क्रिया कहते हैं । उन गृहस्थीके आवश्यक क्रियाओंके समयमें भी जो मन्त्र पवित्र है वह है मन्त्र अपराजितमन्त्र । मद्य मांसत्यागादिक अष्टमूलगुण तथा देवपूजा पात्रदानादि संपूर्ण कार्योंकी प्रवृत्ति निरंतर चलती रहे, इसलिये साधर्मी को कन्या आदि देना चाहिये ।

अब-सम्यक्कन्यादानकी विधि तथा उसका फल बतलाते हैं-

निर्दोषां सुनिमित्तसूचितशिवां कन्यां वरार्हैर्गुणैः ।
स्फूर्जन्तं परिणाय्य धर्मविधिना यः सत्करोत्यञ्जसा ।
दम्पत्योः सः तयोस्त्रिवर्गघटनात्त्रैवर्गिकेष्वग्रणी-।
भूत्वा सत्समयास्तमोहमहिमा कार्ये परेऽप्यूर्जति ॥५८॥

अन्वयार्थ- (सः'गृही') जो गृहस्थ, (सुनिमित्तसूचितशिवां) उत्तम लक्षणोंके द्वारा सूचित किया है अपना और पतिका कल्याण जिसने ऐसी (निर्दोषां) दोषरहित (कन्यां) कन्याका (वरार्हैः) वरके योग्य (गुणैः) गुणोंके द्वारा (स्फूर्जन्तं) शोभायमान साधर्मी पुरुषके साथ (धर्म्यविधिना) धार्मिक विधिसे (परिणाय्य) विवाह कराकरके (अञ्जसा) श्रद्धापूर्वक (सत्करोति) यथायोग्य वस्त्रा-दिके द्वारा आदर सत्कार करता है (सः) वह गृहस्थ (तयोः दम्पत्योः) उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके (त्रिवर्गघटनात्) धर्म अर्थ तथा काम इन तीन पुरुषार्थोंको सम्पादन करनेसे (त्रैवर्गिकेषु) धर्म, अर्थ, और कामका पालन करनेवाले गृहस्थोंमें (अग्रणीः) प्रधान मुख्य (भूत्वा) होकरके (सत्समयास्तमोहमहिमा) जिनागमके द्वारा नष्ट करा दी है मोहकी महिमा जिसने ऐसा होता हुआ (परेऽपि) परलोक सम्बन्धी भी (कार्ये) अवश्य करने योग्य कार्योंमें (ऊर्जति) समर्थ होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—निर्दोष, सुनिमित्तसूचितशिवां ये दो कन्याके विशेषण है। निर्दोषा-सामुद्रिक शास्त्रमे कहे गये दोषोंसे रहित होना अर्थात् सामुद्रिक शास्त्रमे शरीरके अवयवके द्वारा स्त्रीपुरुषोंके गुणदोष जाने जाते हैं। अुन दोषोंसे रहित कन्याको निर्दोष कहते हैं। अच्छे अच्छे सामुद्रिक निमित्त ज्योतिष आदिकसे भविष्यमें होनेवाले शुभाशुभज्ञानके उपायोंके द्वारा अपने पतिके कल्याणोंको प्रगट करनेवाली कन्याको सुनिमित्तशुचितशिवा कहते हैं। जो गृहस्थी अैसी कन्याको वरमे उपलब्ध कुल, शील, विद्या, धन, सौरूप्य योग्य वय और अर्थिव इन गुणोंसे युक्त वरके (पुरुषको) साथ धर्मविधिसे विवाह करके अपने सार्धमिका उचित वस्त्रादि के द्वारा सत्कार करता है, वह सत्समयसे चारित्र मोहको मंद करके वरवधूको धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थका दाता होनेसे अुसके फल स्वरूप गृहस्थमे श्रेष्ठ होकर इस और परलोकसे आवश्यक कर्तव्यमें समर्थ होता है।

विवाहविधि आर्ष, ब्राम्ह, प्राजापत्य और देवके भेदसे चार प्रकारकी है। धर्मसे युक्त विधिको धर्मविधि कहते हैं। धर्मविवाह विधि आर्ष ग्रथोंमे इस प्रकार लिखी है—

१ ततोस्य गुर्वनुज्ञानादिष्टा—वैवाहिकी क्रिया।
वैवाहिके कुले कन्या—मुचिता परिणेष्यत: ॥
सिद्धार्चनविधिं सम्य—ग्निर्वर्त्य द्विजसत्तमा: ।
कृताग्नित्रयसम्पूजा: कुर्युस्तत्साक्षिकां क्रियाम् ॥
पुण्याश्रमे क्वचित्सिद्ध—प्रतिमाभिमुखं तयो: ।
दम्पत्यो: परया भूत्या कार्य: पाणिग्रहोत्सव: ॥
वेद्यां प्रणीतमग्नीनां त्रयं द्वयमथैककम् ।
तत: प्रदक्षिणीकृत्य प्रसज्य विनिवेशनम् ॥
पाणिग्रहणदीक्षायां नियुक्तं तद्वधूवरम् ।
आसप्ताहं चरेद्ब्रम्ह—व्रतं देवाग्निसाक्षिकम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रान्त्वा स्वस्योचितां भूमिं तीर्थभूमीर्विहृत्य च ।
स्वगृहं प्रविशेद्भूत्या परया तद्वधूवरम् ॥
विमुक्तकंकणं पश्चात्स्वगृहे शयनीयकम् ।
अधिशय्य यथाकालं भोगाङ्गैरुपलालितम् ॥
सन्तानार्थमृतावेव कामसेवां मिथो भजेत् ।
शक्तिकालव्यपेक्षोऽयं क्रमोऽशक्तेष्वतोऽन्यथा ॥

अर्थ–तदनन्तर अर्थात् व्रतावतरण क्रिया समाप्त होनेके पीछे पिताकी आज्ञानुसार विवाहके योग्य कुलमें जन्मी हुई कन्याको विवाह कर स्वीकार करनेवालेकी वैवाहिकी क्रिया कही गयी है। उसकी विधि यह है कि प्रथम ही सिद्धार्चनविधि अर्थात् विधिपूर्वक सिद्ध-परमेष्ठीकी आराधना अच्छी तरह करे । पीछे गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, और आहवनीय ऐसी तीन अग्नियोंको स्थापन कर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और विवाहकी समस्त क्रियायें इन अग्नियोंके समक्ष ही करे । (जो वेदी तीन कटनीकी बनाई जाती है उनमें प्रथम द्वितीय तृतीय कटनीगत अग्निकी स्थापना इन तीन अग्नियोंसे की जाती हैं) किसी किसी पवित्र प्रदेशमें सिद्ध प्रतिमाके सम्मुख अथवा सिद्धप्रतिमा न होनेपर सिद्धयंत्रके सन्मुख उन दोंनो वर–कन्याओंके पाणिग्रहणका उत्सव बडे ठाठबाठसे करे । वधू और वर दोनों ही वेदीपर सिद्ध की गई तीन, दो, अथवा एक ही अग्निकी प्रदक्षिणा दे और फिर आसन बदलकर बैठ जाय अर्थात् वरके आसनपर वधू और वधूके आसनपर वर बैठे । जिनको पाणिग्रहण दीक्षा दे दी गई है अर्थात् जिनकी विवाहविधि समाप्त हो गई है, ऐसे वे दोनों ही वर–वधू देव और अग्निके समक्ष सात दिनतक ब्रम्हचर्य व्रत धारण करे । तदनन्तर उनके विहार करने-योग्य किसी भूमीका (किसी देश वा नगरका) देशाटन कराकर तथा किसी तीर्थस्थान का दर्शन कराकर उन दोनों वर–वधुओंको बडी विभूतिके साथ घरमें प्रवेश करावें । घर जाकर वे दोनों अपना कंकण छोडे और भोगोपभोग सामग्रीसे शोभायमान ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घरमें अपनी शय्यापर शयन करे। उन दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेके लिये ऋतुकालमें ही परस्पर कामसेवन करना चाहिये, अन्य कालमें नहीं। शक्ति और कालकी अपेक्षा रखनेवाला यह क्रम केवल समर्थ लोगोंके लिये कहा है। असमर्थ लोगोंके लिय इससे उलटा समझना चाहिये। अर्थात् असमर्थ लोग यथाशक्ति ब्रम्हचर्यका पालन करें।

१- द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिक: पारलौकिक:।
लोकाश्रयो भवेदाद्य: पर: स्यादागमाश्रय:॥
सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधि:।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥
स्वजात्यैव विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत्।
तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधि: परम्॥
यद्भवभ्रान्तिनिर्मुक्ति-हेतुधीस्तत्र दुर्लभा।
संसारव्यवहारे तु स्वत: सिद्धे वृथाऽऽगम:॥

अर्थ- गृहस्थोंके लौकिक और पारलौकिक दो धर्म है, लोकाश्रित धर्मको लौकिक और आगमाश्रित धर्मको पारलौकिक धर्म कहते हैं। जैनोंके लिए जहां सम्यक्त्व और चारित्रकी हानि नहीं होती है वह सब लौकिक धर्म प्रमाण है। रत्नोंके समान स्वजातिसे ही वर्ण विशुद्ध है। केवल उनकी क्रियाओंके विनियोग विधि बतलानेके लिए आगममें विधि दिखाई है। उन दोनों धर्मोंसे भवके भ्रमणके छुटानेमें कारण जो विधि है वही दुर्लभ है, और ससारिक व्यवहार तो स्वत: सिद्ध है, उसको आगमविधानकी क्या जरूरत है? उसमें आगमकी विधिका बताना एक प्रकारसे वृथा है।

साधर्मीको सत्कन्या देनेसे पुण्यलाभ होता है-

सत्कन्यां ददता दत्त: सत्रिवर्गो गृहाश्रम:।
गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुडचकटसंहतिम्॥५९॥

अन्वयार्थ-(सत्कन्यां) उत्तम कन्याको (ददता) देनेवाले ('सगृहिणा') साधर्मी गृहस्थने ('साधर्मिकाय') साधर्मी गृहस्थके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये (सत्रिवर्गः) त्रिवर्ग सहित (गृहाश्रमः) गृह (दत्तः) दिया है (हि) क्योंकि ('विद्वांसः') विद्वान्लोग (गृहिणीं) स्त्री को ही (गृहं) घर (आहुः) कहते हैं किंतु (कुड्यकटसंहतिं) दीवाल और वांसोंके समूहको (गृहं न आहुः) घर नहीं कहते हैं।

भावार्थ–तपके स्थानको आश्रम कहते हैं। घर–रूपी तप-स्थानको गृहस्थाश्रम कहते हैं। धर्म, अर्थ और कामका मूल स्त्री है। इसलिये जिसने साधर्मीको कन्यादान किया उसने उसे गृहाश्रम दिया। कारण कुलपत्नीका नाम घर है। दीवालें छप्पर आदिका नाम असली घर नहीं है। योग्य स्त्रीके कारण स्वदार-संतोषादि संयम पलते हैं, देवपूजा बनती है, सत्पात्र को दान देने आता है। ये तीन प्रकारके धर्म गृहस्थको योग्य स्त्रीके कारण बनते हैं। इसलिये धर्मपुरुषार्थकी सिद्धि होती है। योग्य स्त्रीके कारण वेश्यादि व्यसनसे व्यावृत्ति होती है। अतः धनकी रक्षा होती है। अथवा योग्य स्त्रीके कारण एक प्रकार आकुलताका अभाव होता है। इसलिये गृहस्थ निराकुल होकर धन कमाता है, रखता और बढाता है। और इसतरह अपने दैवानुसार सुवर्णादि संपत्तिका अधिकारी होता है और संकल्प–रमणीय प्रीतिसंभोगसे शोभावाली जो रुचिर अभिलाषा है उसीको काम कहते हैं। इन तीनों सहित कन्याको देनेवालोंने गृहस्थाश्रम दिया यह सिद्ध होता है।

अब श्रावकके लिए आर्ष विवाह करना लोकद्वयमें अभिमत फलका देनेवाला है। इसलिए श्रावकको योग्य सत्कन्याका पाणि-ग्रहण करना चाहिये, यह बताते हैं।

धर्मसन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्तकुलोन्नतिम्।
देवादिसत्कृतिं चेच्छन्सत्कन्यां यत्नतो वहेत् ॥६०॥

अन्वयार्थ– (धर्मसन्ततिं) धर्मसन्ततिको (अक्लिष्टां) संक्लेशरहित (रतिं) रतिको (वृत्तकुलोन्नत्तिम्) वृत्तकुलकी उन्नत्तिको (च) और (देवादिसत्कृतिं) देवादिकी पूजाको (इच्छन्) चाहनेवाला श्रावक (यत्नतः) यत्नपूर्वक (सत्कन्यां) प्रशंसनीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्चकुलकी कन्याको (वहेत्) धारण करे अर्थात् उसके साथ विवाह करे ॥६०॥

भावार्थ—घरमें अच्छी स्त्री के विना धर्म स्वीकार करनेवाली संतति, संक्लेशरहित रति, व्रत कुलकी उन्नति और देवपूजा, अतिथि-सत्कार आदि नहीं हो सकता। इसलिये गृहस्थको धर्मकी परंपरा चलानेके लिये संततीकी, संक्लेशरहित रति की व्रत कुल आदिकी उन्नति तथा देवपूजा दान आदिके इच्छासे उत्तम कुलकी कन्याके साथ विवाह करे।

अब जिसके घरमें अच्छी स्त्री नहीं है अथवा स्त्रीहि नहीं है ऐसे मनुष्यको भूमिदानादि देना व्यर्थ है। अिसी अर्थको अर्थान्तरन्याससे समर्थन करते हैं-

सुकलत्रं विना पात्रे भूहेमादिव्ययो वृथा।
कीटैर्दन्दश्यमानेऽन्तः कोऽम्बुसेकाद् द्रुमे गुणः ॥६१॥

अन्वयार्थ- (सुकलत्रं) योग्य स्त्रीके (विना) विना (पात्रे) पात्रमें (भूहेमादिव्ययः) पृथ्वी सोना आदिका दान देना (वृथा) व्यर्थ है (अन्तः) जडमें (कीटैः) कीडोंके द्वारा (दन्दश्यमाने) खाये हुअे (द्रुमे) वृक्षमें (अम्बुसेकाद्) जलके सिंचनेसे (कः) क्या (गुणः) उपकार है अर्थात् कुछ नहीं ॥६१॥

भावार्थ- जिस प्रकार कीटाणुकें द्वारा जिनका मध्यभाग भक्षण किया गया है अैसे वृक्षमें पानी सिंचना आदि व्यर्थ है। उसी प्रकार जिसके घरमें सत्पत्नी नहीं है, ऐसे मनुष्यको भूमि सोना आदि देना व्यर्थ है।

अब- विषयोंके उपभोगसे ही चारित्रमोहके तीव्र उदयका प्रतीकार करना शक्य है। अतः अपने समान, साधर्मीको भी विषयोंके उपभोगके बाद निवृत्त होनेकी प्रेरणाका भाव बताते हैं—

विषयेषु सुखभ्रांति कर्माभिमुखपाकजाम्।
छित्वा तदुपभोगेन त्याजयेत्तान्स्ववत्परम् ॥६२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- सद्गृहस्थ (कर्माभिमुखपाकजाम्) चारित्र मोहनीयके उदयसे उत्पन्न हुई (विषयेषु) विषयोंमें (सुखभ्रांति) सुखकी भ्रांति को (तदुपभोगेन) विषयानुभवके द्वारा (छित्वा) नाश करके (स्ववत्) अपने समान (परम्) दूसरोंको (तान्) विषयोंको (त्याजयेत्) छुडावे ।।६२।।

भावार्थ- संसारी प्राणियोंकी चारित्र मोहननीय कर्म के उदय से सांसारिक स्त्रीसंम्बन्धी भोगमें सुखकी भ्रांति हो रही है, अर्थात् विषयभोग सुखके कारण है, ऐसी विपरीतबुद्धि जिनकी हो रही है-ऐसे सार्धमिक सद्गृहस्थ को कन्यादान करके उसके उपभोगसे सुखकी भ्रांतिको नाश कराकरके अपने समान उसको भी उन विषयभोगों का त्याग करावे ।

अब- कलिकालके प्रभावसे जनताके आचारमें शिथिलाचार देखकर दान देनेके लिए नफरत करनेवाले दाताओंके चितके समा-धानके लिए उपदेश देते हैं—

दैवाल्लब्धं धनं प्राणैः सहावश्यं विनाशि च ।
बहुधा विनियुञ्जानः सुधीः समयिकान्क्षिपेत् ।।६३।।

अन्वयार्थ-(प्राणैः) प्राणोंके (सह) साथ (अवश्यं-विनाशि) अवश्य ही नाश होनेवाला (च) तथा (दैवात्) भाग्यसे (लब्धं) प्राप्त हुये (धनं) धन का (बहुधा) भय लज्जादि बहुत प्रकार से (विनियुञ्जानः) व्यय करनेवाला (सुधीः) कल्याण का इच्छुक श्रावक (समयिकान्) साधर्मी तथा साधुवोंका (क्षिपेत्) तिरस्कार करेगा क्या अर्थात् कभी नहीं करेगा ।।६३।।

भावार्थ- यह धन प्राणोंके साथ अवश्य ही नाश होनेवाला है तथा पुण्योदयसे प्राप्त हुवा है । इसलिये चतुरश्रावक लज्जा भय पक्षपातादिक अनेक प्रकारसे उस धन का व्यय करता है । तो क्या अपने कल्याणका इच्छुक श्रावक साधर्मी वा यतिओंको दान नहीं देगा क्या? उनका तिरस्कार करेगा? अर्थात् उन का सत्कार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करेगा हीं । इस श्लोक में 'समयिकान् क्षिपेत्' इस पदसे क्या साधु आदि को दान नहीं देगा? इस प्रकार (काकु) के अर्थ में क्षिपेत् क्रिया का ग्रहण किया है। इससे ध्वनित होता है कि अवश्य ही देगा । तो फिर क्या करना चाहिये--

विन्यस्यैदंयुगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव ।
भक्त्या पूर्वमुनीनर्चेत्कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम् ॥६४॥

अन्वयार्थ- ('सद्गृही') सद्गृहस्थ (प्रतिमासु जिनान् इव) प्रतिमाओंमें स्थापित किये गये अर्हन्तोंकी तरह (एदंयुगीनेषु) वर्तमान काल के मुनियोमें (पूर्वमुनीन्) पूर्व कालके मुनियोंको (विन्यस्य) नामादिक विधिके द्वारा स्थापित करके (भक्त्या) भक्ति पूर्वक उनकी (अर्चेत्) पूजा करें । क्योंकि (अतिचर्चिनां) अत्यन्त क्षोदक्षेम करनेवालोंके (कुतः) कहांसे (श्रेयः) पुण्य ('भवति') प्राप्त हो सकता है ?

भावार्थ- जैसे प्रतिमाओंमें जिनेन्द्रकी स्थापना करके पूजा की जाती है, उसी प्रकार आधुनिक मुनि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके निमित्तसे पूर्व मुनिके समान नहीं मिलते । इसलिये उनमें भी पूर्व मुनियोंकी स्थापना करके उनकी पूजा करना चाहिये । कारण अत्यधिक नुक्ताचीनी करनेवालोंको कल्याणकी प्राप्ति कहांसे होगी ?

१- भुक्तिमात्रप्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनाम् ।
ते संतः संत्वसन्तो वा गेही दानेन शुद्धयति ॥१॥
सर्वारंभप्रवृत्तानां गृहस्थानां धनव्ययः ।
बहुधाऽस्ति ततोऽत्यर्थं न कर्तव्या विचारणा ॥२॥
यथा यथा विशिष्यन्ते तपोज्ञानादिभिर्गुणैः ।
तथा तथाऽधिकं पूज्या मुनयो गृहमेधिभिः ॥३॥
दैवाल्लब्धं धनं धन्यैर्वप्तव्यं समयाश्रिते ।
एको मुनिर्भवेल्लभ्यो न लभ्यो वा यथागमं ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्चावचजनप्रायः समयोऽयं जिनेशिनाम्।
नैकस्मिन्पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालयः ॥५॥
ते नामस्थापनाद्रव्यभावन्यासश्चतुर्विधाः ।
भवन्ति मुनयः सर्वे दानमानादिकर्मसु ॥६॥
उत्तरोत्तरभावेन विधिस्तेषु विशिष्यते ।
पुण्यार्जने गृहस्थानां जिनप्रतिकृतिष्विव ॥७॥
काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके ।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः ॥८॥
यथा पूज्यं जिनेद्राणां रूपं लेपादिनिर्मितम् ।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः पूज्याः सम्प्रति संयताः ॥९॥

अर्थ– भोजन मात्र देनेके लिये तपस्वियोंकी परीक्षा करनेसे क्या लाभ? वे ठीक मुनि रहो वा न रहो, दानसे तो गृहस्थ शुद्ध होता है। हर प्रकारके आरम्भमें गृहस्थोंकी प्रवृत्ति हो रही है और उसमें धनका भी व्यय होता रहता है, इसलिये अत्यधिक चर्चा गृहस्थोंको नहीं करना चाहिये। जैसे जैसे तप, ज्ञान आदि गुणसे मुनि अधिक अधिक बडे चढे होंगे उतने ही अधिक वे पूज्य होंगे। दैवसे मिला धन अपने जैनसमायिकको अर्पण करना चाहिये। आगमानुसार कोई एकाध मुनि मिले अथवा न मिले, न्यून–अधिक योग्यतावाले तो लोग रहते ही हैं, यह आगमसम्मत बात है। जैसे एक खंबेपर घर नहीं टिकता, ठीक वैसे ही अकेले छोटे वा बडेके ऊपर लोकस्थिति निर्भर नहीं रह सकती। जैसे जिन प्रतिमाओंकी स्थापनासे पुण्यार्जन होता है वैसे ही कलिकालका समय, चलायमान चित्त और अन्नकीट यह हीन संहननका देह देखकर यहीं आश्चर्य है जो आज नग्नरूपधारी व्यक्ति मिलते है। जैसे लेपादिसे निर्मित जिनबिम्ब पूज्य हैं वैसे ही पूर्व मुनियोंकी स्थापना करके आधुनिक मुनि भी पूज्य हैं।

उसीका पुनः समर्थन करते हैं। पुण्य पाप भावसे होते हैं अतः शासनप्रेमवश मनको विकारोंसे बचाते रहना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावो हि पुण्याय मतः शुभः पापाय चाशुभः ।
तं दुष्यन्तमतो रक्षेद्धीरः समयभक्तितः ॥६५॥

अन्वयार्थ- (हि) क्योंकि (शुभः) शुभ (भावः) भाव (पुण्याय) पुण्य के लिये (मतः) माना है (च) तथा (अशुभः) अशुभ परिणाम (पापाय) पाप के लिये माना है (अतः) इसलिये (धीरः) धीर पुरुष (समयभक्तितः) जिनागम की भक्तिसे (दुष्यन्तं) विकार उत्पन्न करनेवाले (तं) उन पाप भाव का (रक्षेत्) निवारण करे ॥६५॥

भावार्थ- जीवोंके शुभ परिणाम ही पुण्यबंध के कारण हैं और अप्रशस्तभाव पाप बंधके कारण है। इसलिये कलिकालमें जिनशासन की भक्तिसे जिनरूपको धारण करनेवाले जिनेन्द्र भगवानके सामान्य मान्य है ऐसा विचार कर धीर बुद्धिमान मानव अपने परिणामोंमें साधुओंके प्रति दूषित भाव नहीं होने दे ।

अलग अलग ज्ञान और तप अथवा ज्ञान तप दोनों वा ज्ञानी और तपस्वी उनमें पूज्यता की युक्ति बताते हैं--

ज्ञानमर्च्यं तपोऽङगत्वात्तपोर्च्यं तत्परत्वतः ।
द्वयमर्च्यं शिवांगत्वात्तद्वन्तोऽर्च्या यथागुणम् ॥६५॥

अन्वयार्थ- (तपोऽङ्गत्वात्) तप का कारण होनेसे (ज्ञानं) ज्ञान (अर्च्यं) पूज्य है (तत्परत्वतः) ज्ञानके अतिशय में कारण होनेसे (तपः) तप (अर्च्यं) पूजनीय है। (शिवांगत्वात्) मोक्ष का कारण होनेसे (द्वयं) दोनोंही (अर्च्यं) पूज्य हैं (यथागुणं) गुणानुसार (तद्वन्तः) ज्ञानी और तपस्वी भी (अर्च्याः) पूजनीय हैं॥६६॥

भावार्थ-दीक्षा यात्रा प्रतिष्ठादिमें उपयोगी साधकस्थ ज्ञान अनशनादि तपकी वृद्धि का कारण है, इसलिये ज्ञान पूज्य है। तपोविशेष से ज्ञान में उत्कृष्टता आती है, ज्ञानावरणी कर्मका क्षय होता है, इसलिये तप भी पूज्य है तथा ज्ञान और तप ये दोनो मुक्तिके कारण है इसलिये दोनो एक साथ भी पूज्य है। जिनमें जैसा विशे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण है गुणोंका आधिक्य है उसके अनुसार तपस्वी और ज्ञानी भी पूज्य है ॥६६॥

आगे मिथ्यादृष्टि का सुपात्र में दिये हुये दानसे उत्पन्न पुण्य के फलविशेषको तथा अपात्र में दिया हुवा दान व्यर्थ है इस बात का प्रतिपादन करते हैं-

न्यग्मध्योत्तमकुत्स्यभोगजगतीभुक्तावशेषाद्वृषा--
त्तादृक्पात्रवितीर्णभुक्तिरसुदृग्देवो यथास्वं भवेत् ।
सद्दृष्टिस्तु सुपात्रदानसुकृतोद्रेकात्सुभुक्तोत्तम--
स्वर्भूमर्त्यपदोऽश्नुते शिवपदं व्यर्थस्त्वपात्रे व्ययः ॥६७॥

अन्वयार्थ-(तादृक्पात्रवितीर्णभुक्तिः) जघन्य, मध्यम, उत्तम और कुपात्र में वितीर्ण किया है दान को जिसने ऐसा (असुदृक्) मिथ्यादृष्टि मानव (न्यग्मध्योत्तमकुत्स्यभोगजगतीभुक्तावशेषात्) क्रमसे जघन्य, मध्यम, उत्तम और कुभोगभूमीके भोगों को भोगनेके बाद बचे हुये (वृषात्) पुण्यसे (यथास्वं) यथायोग्य (देवः) देव (भवेत्) होता है। (तु) परन्तु (सद्दृष्टिः) सम्यग्दृष्टि (सुपात्रदानसुकृतोद्रेकात्) सुपात्र दान के पुण्योदय से (सुभुक्तोत्तम-स्वर्भूमर्त्यपदः) उत्तम उत्तम महर्द्धिक आदि कल्पवासी स्वर्गों के भोग तथा चक्रवर्ती आदि मनुष्यों के उत्तम पदको प्राप्त कर (शिवपदं) मोक्षपदको (अश्नुते) प्राप्त करता है (तु) तथा (अपात्रे) अपात्र में (व्ययः) दिया हुवा दान (व्यर्थः) व्यर्थ है।

भावार्थ-उत्तम, मध्यम, जघन्य, कुपात्र और अपात्रके भेद से पात्र पांच प्रकार के हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के भेद से दाता दो प्रकारके हैं। इसलिये विधि द्रव्य दातृ पात्र के भेद से फलमें भी विशेषता आती हैं। उसी का वर्णन इस श्लोक में किया गया है।

यदि मिथ्यादृष्टि जीव जघन्यपात्र अविरतसम्यग्दृष्टिको आहार दान देता है तो जघन्य भोगभूमीमें पैदा होता है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँपर एक पल्यप्रमाण आयुपर्यंत कल्पवृक्षोत्पन्न उत्तमभोग भोगकर शेष बचे हुये पुण्योदय से देवपर्याय में उत्पन्न होता है। मध्यम-पात्र-सम्यग्दृष्टि अणुव्रती पात्र के लिये दान देता है तो मध्यम भोगभूमी में दो पल्योपम आयुपर्यंत उत्तमभोग भोगकर वहाँसे चय कर स्वर्गमें उत्पन्न होता है। उत्तमपात्र सम्यग्दर्शन और महाव्रतसे विभूषित मुनियोंके लिये आहारदान देता है तो उत्तम भोगभूमीमें उत्पन्न होता है और वहाँ तीन पल्यप्रमाण आयुष्यपर्यन्त रोग शोक रहित सर्व श्रेष्ठ कल्पवृक्षोत्पन्न भोग भोगकर आयुष्य क्षय होनेपर देवपर्याय में उत्पन्न होता है। और सम्यग्दर्शनरहित व्रत–तप सहित कुपात्रको दान देने से कुभोगभूमीमें उत्पन्न होता है। वहाँ पर वस्त्राभूषण रहित होते हैं। गुफा वा वृक्षके मूलमें निवास करते हैं। एक पैर, एक कान, बन्दरमुख, उष्ट्रमुख आदि आकृति के धारक होते हैं। उनके शरीर तथा समान आयुवाली उनकी स्त्री होती है। उसके साथ एक पल्यप्रमाण काल तक वहां के सुख भोगकर आयुके क्षय होनेपर मर कर स्वर्ग मे वाहनजातिके देव अथवा भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषदेवो में उत्पन्न होते हैं। अपने देवायु प्रमाण सुखको भोगकर मर कर दुर्गति में जाते हैं और अनंत काल दुर्गति के दुःखों को भोगते हुये संसार में परिभ्रमण करते हैं। अथवा मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर और स्वयंप्रभ पर्वत के पहिले जो जघन्य भोगभूमी है, वहाँ के तिर्यंचों के अथवा म्लेच्छ राजाओं के उत्तम हाथी, घोडा तथा उनकी वेश्या आदि जन्य भोग देखे जाते हैं। वे सब कुपात्रदान से यथापरिणाम उत्पन्न हुये मिथ्यात्व सहचारी पुण्य का फल है, ऐसा समझना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रदान के फल से स्वर्ग में महर्द्धिक देव होकर वहाँ के उत्तमभोग भोगकर चक्रवर्ती आदि मनुष्यजनित उत्तमपद प्राप्तकर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। अपात्रमें सम्यक्त्व और व्रतरहित प्राणियों में अपने धनका व्यय करना वा उनको दान देना फलरहित वा विपरीतफल देने वाला होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार और ग्रन्थों में भी पात्र अपात्र का लक्षण तथा उनके दान का फल कहा है यथा—

उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं ।
मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं ।
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं हि विद्धि ।

अनगार उत्कृष्ट पात्र, अणुव्रती मध्यमपात्र, व्रतरहित सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र, व्रतसहित सम्यग्दर्शन रहित जीव कुपात्र तथा व्रत और सम्यग्दर्शन रहित जीव अपात्र कहलाते हैं ।

उत्तमपत्तं साहू मज्झिमपत्तं च सावया भणिया,
अविरदसम्माइठ्ठी जहण्णपत्तं मुणेयव्वम् ॥

उत्तमपात्र साधु, मध्यमपात्र देशव्रती श्रावक तथा अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र कहलाते हैं ।

मिथ्यात्वग्रस्तचित्तेषु चारित्राभासभाविषु ।
दोषायैव भवेद्दानं पयः पानमिवाहिषु ॥
कारुण्यादथवौचित्यात्तेषां किंचिद्दिशन्नपि ।
दिशेदुद्धृतमेवान्नं गृहे भुक्ति न कारयेत् ॥
सत्कारादिविधावेषां दर्शनं दूषितं भवेत् ।
यथा विशुद्धमप्यम्बु विषभाजनसंगमात् ॥
पात्राय विधिना दत्वा दानं मृत्वा समाधिना ।
अच्युतान्तेषु कल्पेषु जायन्ते शुद्धदृष्टयः ।
ज्ञात्वा धर्मप्रसादेन तत्र प्रभवमात्मनः ।
पूजयन्ति जिनार्चास्ते भक्त्या धर्मस्य वृद्धये ॥
अपात्रदानतः किंचिन्न फलं पापतः परम् ।
लभ्यन्ते हि फलं खेदो वालुकापुंजपेषणे ॥
अपात्राय धनं दत्ते यो हित्वा पात्रमुत्तमम् ।
साधुं विहाय चौराय तदर्पयति स स्फुटम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– जैसे सांपको दूध पिलाना दोषका कारण है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि परन्तु चारित्रवानसे दिखनेवालोंको भी दान देना दोष-दायक है। औचित्यकी रक्षा अथवा करुणाबुद्धिसे उन्हें दान देनेका अवसर हो तो उठाकर देना। घरमें बुलाकर पात्रके समान आदरसे नहीं देना चाहिये। कारण जैसे विषभरे भाजनके संसर्गसे दूध दूषित होता है वैसे कुपात्रके प्रति भक्तिभाव दिखानेसे सम्य-ग्दर्शन दूषित होता है। शुद्धसम्यग्दृष्टी समाधिसहित मरकर १६ वें स्वर्गमें उत्पन्न हो सकते हैं और वहां ये जिनभक्त अपने यहां आनेके कारण सुपात्रदानको समझकर स्वयं सबसे प्रथम अपने धर्मकी वृद्धिके लिये जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करते हैं। जैसे वालुका पीसनेमें सिवाय खेदके कुच्छ फल नहीं है वैसे ही जो अपात्रको दान देता है वह सज्जनको छोडकर चोरको धन अर्पण करता है, यह स्पष्ट है।

अब– पात्रदानके प्रभावसे भोगभूमिमें जन्म लेकर ७ (सात) सप्ताहमें होनेवाली अवस्थाओंको बताते हैं—

सप्तोत्तानशया लिहन्ति दिवसान्स्वांगुष्ठमार्यास्ततः।
कौ रिंगति ततः पदैः कलगिरो यान्ति स्खलद्भिस्ततः॥
स्थेयोभिश्च ततः कलागुणभृतस्तारुण्यभोगोद्गताः।
सप्ताहेन ततो भवन्ति सुदृगादानेऽपि योग्यास्ततः॥६८॥

अन्वयार्थ– (आर्याः) भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीव (उत्तानशया) ऊपर मुख कर के सोते हुये (सप्त दिवसान्) सात दिन तक (स्वांगुष्ठं) अपने अंगुष्ठको (लिहन्ति) चूसते हैं। (ततः) इसके बाद एक सप्ताह तक (कौ) पृथ्वीपर (रिंगन्ति) पैरोंसें रेंगते हैं। (ततः) इसके बाद सप्तदिवस पर्यंत (कलगिरः) मनोहर वचन बोलते हुये (स्खलद्भिः) स्खलित (पदैः) पैरोंसे (यांति) चलते हैं। (ततः) इसके बाद एक सप्ताहमें (स्थेयोभिः) स्थिर पैरोंसे पृथ्वीपर चलते हैं। (ततः) इसके अनन्तर एक सप्ताहमें (कलागुणभृतः) गीत नृत्यादि कलाओंके धारक (भवन्ति) होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ततः) उसके अनन्तर एक सप्ताहमें (तारुण्यभोगोद्गताः) यौवन अवस्थामें होनेवाले इन्द्रिय सुखों को भोगने वाले हो जाते हैं। (ततः) इसके बाद (सप्ताहेन) एक सप्ताहमें (सुदृगादाने) सम्य-ग्दर्शन ग्रहण करनेके (अपि) भी (योग्याः) योग्य (भवन्ति) हो जाते हैं।

भावार्थ– उत्तम, मध्यम, और जघन्य के भेदसे भोगभूमि तीन प्रकार की है। भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अवस्था का इस श्लोक में वर्णन किया है।

जघन्य भोगभूमिमें सात सप्ताह के अन्दर जीव सम्यग्दर्शन के योग्य होता है—उसका वर्णन इस प्रकार है। जन्म के बाद प्रथम सप्ताहमें उत्तानशय्यासे सोते हुये अपने अंगूठे को चूसते हैं। दूसरे सप्ताहमें पैरोंसे पृथ्वीपर रेंगते है, तीसरे सप्ताहमें कल कल शब्द करते हुये गिरते गिरते चलते हैं। चतुर्थ सप्ताहमें स्थिर पैरोंसे चलते हैं। पाचवें सप्ताहमें भोगभूमिवाले जीव मनोज्ञ गीत आदि गुणोंके तथा सौन्दर्य को धारण करने वाले हो जाते हैं। छठे सप्ताहमें पूर्ण यौवनावस्था धारक तथा अविच्छिन्नरूपसे इन्द्रिय विषयोंको सेवन करने में समर्थ हो जाते हैं। तथा सातवें सप्ताहमें सम्यग्दर्शन धारण करनेके भी योग्य हो जाते हैं। इन सात अव-स्थामें ४९ दिन लगते हैं, यह जघन्य भोगभूमियों का वर्णन है। मध्यम भोगभूमिके जीव पांच दिनतक उत्तानशय्यासे अपने अंगूठे को चूसते हैं, पश्चात् उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कलागुणप्राप्ति, तारुण्य, और सम्यक्त्वग्रहण की योग्यता प्राप्त करते हैं इनमेंसे प्रत्येक अवस्थामें पांच दिन लगते हैं।

उत्तम भोगभूमीमें इन एक एक अवस्थामें तीन तीन दिन लगते हैं। इसलिये जघन्य भोगभूमिमें ४९ दिन, मध्यममें ३५ दिन, उत्तमभोगभूमीमें २१ दिन सम्यक्त्वग्रहण की योग्यता में लगते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब- मुनियोंके देने योग्य वस्तुका निर्णय करने के लिये कहते हैं--

तपःश्रुतोपयोगीनि निरवद्यानि भक्तितः ।
मुनिभ्योऽन्नौषधावास---पुस्तकादीनि कल्पयेत् ।।६९।।

अन्वयार्थ- सद्गृहस्थी (मुनिभ्यः) मुनियोंके लिये (भक्तितः) भक्तिपूर्वक (निरवद्यानि) निर्दोष (तपःश्रुतोपयोगीनि) तप और श्रुतके उपयोगी (अन्नौषधवासपुस्तकादीनि) अन्न, औषध, पुस्तक, आदि शब्दसे पिच्छि कमण्डलू आदि (कल्पयेत्) देवे ।।६९।।

भावार्थ- सद्गृहस्थ मुनि, आर्यिकाओं के लिये भक्तिपूर्वक पिण्डशुद्धिमें कहे गये उद्गम-उत्पादनादि दोषरहित आहार, औषध वसतिका, पुस्तक, पिच्छि, कमण्डलू आदि तप संयमके श्रुतके उपयोगी वस्तु देनी चाहिये ।।६९।।

आहारदानादिक के फलों का क्रमसे निर्देश करते हैं--

भोगित्वाद्यन्तशान्तिप्रभुपदमुदयं संयतेऽन्नप्रदानात्
श्रीषेणो रुग्निषेधाद्धनपतितनया प्राप सर्वौषधर्द्धिम् ।
प्राक्तज्जन्मर्षिवासावनशुभकरणात्सूकरः स्वर्गमग्र्यं ।
कौण्डेशः पुस्तकार्चावितरणविधिनाऽप्यागमाम्भोधिपारम् ।।

अन्वयार्थ- (संयते) मुनियोंके लिए (अन्नप्रदानात्) विधिपूर्वक आहारदान देनेसे (श्रीषेणः) श्रीषेण नामक राजा (भोगीत्वाद्यन्तशान्तिप्रभुपदं) उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होना है आदिमें और शांतिनाथ तीर्थंकरके पदको पाना है अन्तमें जिसके ऐसे (उदयं) अभ्युदयको (प्राप) प्राप्त हुए तथा (रुग्निषेधात्) व्याधियोंको दूर करनेवाले औषध दानको देनेसे (धनपतितनया) वृषभसेना नामक धनपति सेठकी पुत्री (सर्वौषधर्द्धि) सर्वोषध नामक ऋद्धिको (प्राप) प्राप्त हुई और (प्राक्तज्जन्मर्षिवासावनशुभकरणात्) पूर्व तथा इस जन्ममें मुनियोंके निवास व उनकी रक्षा करनेके विषयमें शुभ परिणामोंसे (सूकरः) सूकर (अग्र्यं स्वर्गं) पहले सौधर्म स्वर्गको ('प्राप') प्राप्त हुआ (अपि) और (पुस्तकार्चावितरणविधिना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रोंकी विधिपूर्वक पूजा करने तथा उनका दान देनेसे (कौण्डेश:) कौण्डेशनामक मुनि (आगमाम्भोधिपारं) द्वादशांग श्रुतज्ञानके पारको (प्राप) प्राप्त हुए।

भावार्थ– श्रीषेण नामा राजाने श्री आदित्यगति और अरिंजय नामक चारण ऋद्धिधारी मुनियोंको आहारदान करनेसे भोगभूमिसे लेकर अन्तमें शांतिनाथ तीर्थंकर भगवानकी पर्याय तकके अभ्युदयोंकी प्राप्ति की है। धनपति सेठकी पुत्री वृषभसेनाको मुनियोंके लिये औषधदानसे सर्वौषधी ऋद्धि प्राप्त हुई। शूकर पहले भवमें आवासदानके शुभपरिणामसे, अपने वर्तमान भवमें मुनिके निवासस्थानकी रक्षाके भावसे प्रथमस्वर्गको प्राप्त हुआ। गोविन्द नामके गोपालका जीव, कौंडेश नामके मुनि शास्त्रकी पूजा और दानके प्रतापके श्रुतकेवलऋद्धिको प्राप्त हुए हैं।

श्रीषेणराजा की कथा
(आहारदानफल)

प्राचीन समयमें श्रीषेणनें आहारदान दिया। फलत: वे शान्तिनाथ तीर्थंकर हुअे। मलय नामका अेक प्रसिद्ध देश था। यहां की राजधानी रत्नसंचयपुरके राजा श्रीषेण थे। अुनकी उदारता, न्यायप्रियता अत्यंत प्रसिद्ध थी। अुनकी दो रानियां थीं। सिंहनन्दिता और अनन्दिता। दोनों ही विदुषी थीं। दोनोंके दो पुत्र थे। अिन्द्रसेन और अुपेन्द्रसेन। जिस प्रकार श्रीषेण धन, सम्पत्ति, राज, विभव आदिसे सम्पन्न थे। अुनकी प्रजापालकता प्रसिद्ध थी।

अिसी नगरमें सात्यकि नामका अेक ब्राह्मण रहता था। अुसकी सत्यभामा नामकी अेक पुत्री थी। रत्नसंचयपुरके समीप ही अेक दूसरा गांव था। वहां धरणीधर नामका अेक अच्छा वैदिक था। अुसकी पत्नी अग्निलासे दो पुत्र थे। अिद्रभूती और अग्निभूति। अुनके यहां अेक दासीपुत्र रहता था, जिसका नाम कपिल था। जब धरणीधर अपनें पुत्रोंको वेदाध्ययन कराता तो वह छुपकर सुन लिया करता था। कपिलकी बुद्धि तीव्र थी। वह विद्वान् हो गया। धरणीधरके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बडा आश्चर्य हुआ। अेक शूद्रको शिक्षा देने के कारण जनतामें बडा असन्तोष फैला। लोग धरणीधरको धमकाने लगे। धरणीधर ने घबडाकर कपिलको देश से निकाल दिया। कपिल रास्तेमें ब्राम्हण बन गया। वह रत्नसंचयपूर पहुंचा। रूप और विद्यासे सम्पन्न था ही, सात्यकिने ब्राम्हण समझ अपनी पुत्री का विवाह अुसके साथ कर दिया। कपिलको अनायास स्त्रीरत्न की प्राप्ति हो गयी। वह सुखपूर्वक रहने लगा। राजाने अुस के पाण्डित्य की प्रशंसा सुनकर अपने यहां पुराणकी कथा सुनानेके लिये नियुक्त कर लिया। एक बार सत्यभामा रजस्वला हुई थी। कपिलने अुस समय भी संसर्ग करना चाहा। अिस दुराचार को देखकर सत्य-भामा को सन्देह हुआ। अुसने अिस पापीको ब्राम्हण न समझकर अुससे प्रेम करना छोड दिया। वह अलग रहकर जीवन बिताने लगी। संयोगसे धरणीधर पर अैसी विपत्ति पडी कि वह दरिद्री हो गया। वह कपिल के यहां रत्नसंचयपुर गया। यद्यपि अपने पिताको देखकर कपिलको क्रोध ही हुआ फिर भी बडा सन्मान किया। अुसे भय था कि कहीं मेरे सम्बन्ध में लोगों को भडका न दें। कंपिल ने सब लोगोंसे अपने पिता का परिचय कराया। अुसने मायाचार अिसलिये किया कि अुसकी माता का भेद न खुल जाय। धरणीधर दरिद्र तो था ही, अुसने धनके लोभ में कपिलको अपना पुत्र मानलेनेमें कोअी आपत्ति न की। एक दिन सत्यभामाने थोडासा धन देकर धरणीधरसे पूछा—महाराज आप ब्राम्हण हैं, मुझे विश्वास है कि आप कभी झूठ नहीं बोलेंगे अपने कपीलजीका दुराचार देखकर मुझे विश्वास नहीं होता कि ये आप जैसे पवित्र ब्राम्हणके पुत्र हो। धरणीधरने सारी बाते कह सुनाई और अुसी दिन रत्नसंचयपुरके लिये चल पडा। सत्यभामाकी घृणा और भी बढ गअी। वह कपिलसे बोलना चालना छोडकर अेकान्तवास करने लगीं। अिस प्रकार घृणा करते देखकर कपिल बलात्कार करनेपर अुतारू हो गया किन्तु सत्यभामानें श्रीषेण महाराजके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां जाकर सब बातें कह सुनाओ। श्रीषेण अत्यन्त क्रोधित हुअे। अुन्होंने कपटिं कपिलको देशसे निकाल दिया। दुष्टोंको दण्ड देना राजाका धर्म है। अैसा न करनेसे वे च्युत होते हैं। अेक बार आदित्यगती और अरिंजय नामके दो मुनिराज श्रीषेणके यहाँ आहारके लिये पधारे। राजानें आदरपूर्वक आहार कराया। अिस पात्रदानसें देवोंने रत्नों और सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की। पश्चात् श्रीषेणने अनेंक वर्षोंतक राज्य किया। मृत्युके बाद वे धातकीखंडके अुत्तरकुरु भोगभूमीमें अुत्पन्न हुअे। अुनकी दोनों रानियां तथा सत्यभामा भी भोगभूमी में अुत्पन्न हुअी। अिस भोग-भूमिमें लोग कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होनेवाले सुखोंको भोगते हैं। आयु पूर्ण होनेतक अैसा ही सुख भोगेंगे। यहां के लोगोंके भाव सदा पवित्र रहते हैं। यहां न किसीकी सेवा करनी पडती है और न किसीको अपमान सहन करना पडता है। श्रीषेणने भोगभूमीका पूरा सुख भोगा। अन्तमें वे स्वर्गमें गये। यहां भी दिव्य सुख भोगकर पुनः मनुष्य हुअे। कई बार ऐसेही परिवर्तन होनेके बाद श्रीषेणनें हस्तिनापुरके महाराज विश्वसेन की रानी अैराके यहां अवतार लिया। यही सोलहवे तीर्थंकरके नामसे प्रसिद्ध हुअे। जन्म के समय देवोंने अुत्सव मनाया। सुमेरुपर्वतपर क्षीरसमुद्रके जलसे इनका अभिषेक किया गया। भगवान शान्तिनाथका जीवन बडी पवित्रतासे व्यतीत हुआ। अन्तमें योगी हो, धर्मका अुपदेश कर अुन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। यह पात्रदानका फल है। जो लोग पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देंगे वे अवश्य अुच्च सुख प्राप्त करेंगे।

धनपति सेठकी पुत्री वृषभसेना की कथा

(औषधदानफल)

भारतके कावेरी नामक नगरके राजा का नाम अुग्रसेन था। वे प्रजापालक तथा राजनीती के बडे विद्वान थे। अिसी नगरमें धनपति नाम का अेक सेठ रहता था। अिसकी पत्नी धनश्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माने लक्ष्मी थी। धनश्रीकी अेक देवकुमारीसी पुत्री अुत्पन्न हुअी। जिसका नाम वृषभसेना रखा गया। अेक दिन की घटना है। वृषभसेनाकी धाय रूपवती अुसे स्नान करा रही थीं। अेक महारोगी कुत्ता अुस गड्ढे में गिर पडा। जिस में वृषभसेना के स्नान करनेका पानी अिकट्ठा हो गया था। जब कुत्ता पानीसे बाहर हुआ तो बिलकुल निरोग दिख पडा। रूपवती चकित हो गई। अुसने समझ लिया कि वृषभसेना असाधारण लडकी है। अुसने जलकी परीक्षाके लिये थोडासा जल अपनी मांकी आंखोंमें डाल दिया। अुसकी मांकी आंखें वर्षोंसे खराब थी। अुसका भी रोग जाता रहा। अब रूपवती का सारा संदेह दूर हो गया। अिस रोगको नाश करनेवाले जलके प्रभावसे रूपवतीकी बडी प्रसिद्धि हुअी। वह अिसी जलसे असाध्यसे असाध्यरोगोंकी चिकित्सा करने लगी।

अुग्रसेन और मेघपिंगलकी पुरानी शत्रुता थी। अेक बार अुग्रसेनने अपने मन्त्रीको मेघपिंगल पर चढाअी करनेकी आज्ञा प्रदान की। मेघपिंगलने यह योंजना की कि जिन कूपोंसे शत्रुसेनामें पीनेके लिये जल आता था, अुसमें विष डलवा दिया। बहुतसी सेना मर गयी और जो सैनिक बचे वे भाग खडे हुअे। जिन लोगोंको विषका असर हुआ था अुन्हें रूपवतीने अुसी जलसे आराम किया। यह हाल सुनकर अुग्रसेनको बडा क्रोध हुआ। अुसने स्वयं आक्रमण किया। किंतु उन्हे भी जहर मिला हुआ जल पीना पडा। अुग्रसे-नकी तबियत बहुत बिगड गयी। अुन्हें रूपवतीके जल का प्रभाव मालूम था। अुन्होंने अेक आदमीको सेठके यहांसे जल लानेके लिये भेजा। अुसी समय रूपवती जल लेकर राजाके यहां पहुंची। जलके स्पर्शसे ही राजा रोगमुक्त हो गये। अुन्हें बडी प्रसन्नता हुअी। जलके सम्बन्धमें पूछनेपर रूपवतीनें सब बातें बतला दी। राजाने धनपती सेठको बुलाया और आदरसत्कार कर वृषभसेनासे विवाहकी अिच्छा प्रकट की। धनपतीने अुत्तर दिया- महाराज, मुझे विवाह कर देनेमें कोई आपत्ति नहीं। किंतु आपको अष्टा-न्हिक पूजा करनी पडेगी और अभिषेक करना पडेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिंजरेके पशु पक्षी तथा जलके कैदियोंको छोडना पडेगा। अुग्रसेनने शर्त स्वीकार कर ली और अुन्हें कार्यमें भी परिणत कर दिया।

बडी धूमधामसे वृषभसेनाका विवाह हुआ। अुसे पटरानी होनेका सौभाग्य मिला। अुग्रसेन भी अन्य रानियोंकी अपेक्षा वृषभसेनासे अधिक प्रेम करने लगे। किंतु वृषभसेनाका समय पूजा अभिषेकमें ही अधिक व्यतीत होता था। वह साधुओंको चारों प्रकारके दान देती और व्रत, तप, शील, संयमादिकका यथासाध्य पालन करती थी। बनारसका राजा पृथ्वीचंद्र, अुग्रसेनके यहां कैद था। वृषभसेनाके विवाहके समय भी अुसकी मुक्ती न हुअी। पृथ्वीचंद्रकी पत्नी नारायणदत्ताको आशा थी कि अुसके पती छोड दिये जायेंगे, पर अुसकी आशा सफल न हो सकी। पर अपने मंत्रियोंकी रायसे अुसने दुसरी ही युक्ती सोची। नारायणदत्ताने वृषभसेनाके नामसे बनारसमें कअी दानशालाअें बनवा दी। वहां स्वदेशी और विदेशी सबको समानरूपसे भोजन मिलने लगा। थोडे ही दिनोंमें दानशालाओंकी प्रसिद्धी हो गयी। दूर दूरके ब्राह्मण भोजनके लिये आने लगे। जब यह सम्वाद वृषभसेनाको मिला तो अुसे बडा आश्चर्य हुआ। पता लगानेपर असली रहस्य खुला। वृषभसेनाने अुग्रसेनसे प्रार्थना कर अुसी समय पृथ्वीचंद्रको छुडवा दिया। पृथ्वीचंद्रनें कृतज्ञता स्वीकार की। पहले अुल्लेख किया जा चुका है कि मेघपिंगलसे अुग्रसेनकी शत्रुता थी। अब अुग्रसेनने पृथ्वीचंद्रको अुसपर चढाअी करनेकी आज्ञा दी। मेघपिंगल डर गया। क्योंकि वह पृथ्वीचंद्रसे कअी बार हार मान चुका था। अुसने लडना अुचित न समझा। अतः अुग्रसेनकी शरणमें आ गया।

अेक दिन दरबारमें अुग्रसेनने यह घोषणा की कि आज की आनेवाली भेंटका आधा हिस्सा वृषभसेनाको और आधा मेघपिंगलको दिया जायगा। अुसदिन भेटमें बहुमूल्य वस्तुओंके अतिरिक्त दो कम्बल प्राप्त हुअे। राजाने अपनी घोषणाके अनुसार आधा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्या द्रव्य और अेक अेक कम्बल मेघपिंगल और वृषभसेनाके यहां भिजवा दिये। संयोगसे मेघपिंगलकी रानी यही कम्बल ओढकर वृषभसेनाके महलमें आयी। वृषभसेनाके पास भी अैसा ही कम्बल था। वह भूलसे अपना कम्बल वहीं छोड वृषभसेनाका कम्बल ओढकर लौट आयी। कुछ दिनों वाद मेघपिंगलको दरबारमें जाना पडा। वह वृषभसेनाका कंबल ओढे चला गया। राजानें कम्वल पहचान लिया। अुनकी आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगी। वे सोचने लगे कि वृषभसेनाका कम्बल अिसके पास कैसे गया। अुग्रसेनके क्रोधित होनेका कारण मेघपिंगलकी समझमें न आया। वहांसे हट जाना ही अुस के लिये अुचित था। वह अेक तेज घोडेपर सवार होकर दूर निकल गया। अिस प्रकार मेघपिंगलको भागते देखकर राजाका संदेह और भी बढा। अुन्होंनें मेघपिंगलको पकड लानेके लिये कुछ तेज सवारोंको दौडाया, अिधर बृषभसेनाको समुद्रमें फिकवानेकी आज्ञा दे दी। निर्दोष वृषभसेना समुद्रमें फेंक दी गयी। पर यदि मनुष्य निष्कलंक है तो अुसका बाल भी बांका नहीं हो सकता। वृषभसेना को अपनी पवित्रतापर पूर्ण विश्वास था। वह परमात्मप्रेममें लीन हो गअी। अुस समय वृषभसेना की तेजस्विताने ज्योतीका रूप धारण किया। अुस ज्योती के समक्ष देवोंको भी सर झुकाना पडा। अुन्होंने वृषभसेना को अेक सिंहासनपर बिठा कर पूजा की और जय जयकार मनाया। जब वृषभसेनाके शील का माहात्म्य अुग्रसेन को मालूम हुआ तो अुन्हें महान पश्चात्ताप हुआ। अुन्होंनें वृषभसेनाके समक्ष जाकर क्षमा मांगी और महलमें चलनेकी प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेना प्रतिज्ञा कर चुकी थी कि इस कष्ट से मुक्त होनेपर योगिनी बनकर आत्महित करूंगी, पर स्वयं महाराज लिवाने आये तो अुसनें महलम अेक बार जाकर दीक्षा लेनेका निश्चय किया। रास्तेमें गुणधर मुनिराजके दर्शन हुअे। वृषभसेनानें अुन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। अुसने मुनिसे पूर्वजन्म का हाल पूछा। मुनि ने बतलाया कि पूर्वजन्ममें ब्राम्हणकी लडकी थी: तेरा नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागश्री था। तू अिसी राजघरानेमें झाड़ू दिया करती थी। अेक दिन मुनिदत्त नामके मुनिराज कोट के अन्दर अेक पवित्र गढे में ध्यान कर रहे थे। अुस वक्त तूने मूर्खतासे कहा–ओ नंगे ढोंगी! अुठ यहां से, मुझे झाड़ देने दे। मुनी तो ध्यानमग्न थे। अुन्होंने तेरी बातों पर ध्यान न दिया। तुझे और क्रोध हुआ। तूने कूड-करकटसे मुनिको ढंक दिया। यद्यपि तू अुस समय मूर्ख थी, पर तूनें वह काम बुरा किया। सच्चे निर्ग्रंथ साधु सदा पूजनें योग्य होते हैं। अुन्हें कष्ट देना अुचित नहीं। प्रात:काल जब राजा अुधरसे निकले तो अुनकी दृष्टि गढेपर पडी। मुनिके सांस लेनेसे कूडा नीचे अुंचे हो रहा था। अुन्हे संदेह हुआ। अुन्होंनें कूडेको हटाया तो मुनी दिख पडे। मुनी शीघ्र ही गढे से निकाले गये। तुझे भी बडा पश्चात्ताप हुआ। तूनें मुनीसे अपने अपराधोंकी क्षमा मांगी। मुनीके कष्ट दूर करनेके लिये तूनें बडा यत्न किया, औषधी आदिसे भरपूर सेवा की। अुसी फलसे अिस जन्म में धनपति सेठ की पुत्री हुअी और जो तूनें औषधीदान किया था अुसके फलसे तुझे सर्वोपरी औषधी प्राप्त हुअी कि तेरे स्नान के जलसे कठिनसे कठिन रोग नष्ट हो जाते हैं। मुनिपर कूडा डालनेसे मुनिको जो कष्ट हुआ था, अुससे तुझे अिस जन्ममें झूठा कलंक लगा। मुनि द्वारा पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर वृषभसेनाका वैराग्य और भी बढ गया, अुसने स्वामी से क्षमा मांगकर मुनि द्वारा योगदीक्षा ग्रहण कर ली। जिसप्रकार वृषभसेनाने औषधीदानसे सर्वोपरी औषधी प्राप्त की अुसी प्रकार सत्पुरुषोंको अुचित है कि वे रोगियोंका सदा अुपचार करते रहें। औषध-दान महापुण्यका कारण होता है।

कौण्डेश की कथा

(ज्ञानदानफल)

भारत के कुरुमरी नामक गांवमें गोविंद नामका ग्वाला रहता था। अुसने जंगलमें वृक्षकी कोटरमें जैनधर्मका अेक पवित्र ग्रंथ देखा। वह अुसे घर लाया और पूजा करने लगा। अेक दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अुस ग्वालेने ग्रंथको पद्मनंदि नामक मुनि को भेंट कर दिया। गोविंदने मृत्यूके बाद कुरुमरी गांवके चौधरीके यहां जन्म ग्रहण किया। अिस बालककी सुंदरता देख कर सबको प्रसन्नता हुअी। पूर्वजन्मके पुण्यफल से ही ये सब बातें सुलभ हो गयीं। अेक दिन अिसे पद्मनंदि मुनीके दर्शन हुअे। अुन्हें देखते ही अिसे जातिस्मरण हो गया। मुनीको नमस्कार कर अुसने दीक्षा ग्रहण कर ली। अुसके हृदयकी पवित्रता बढती गयीं। वह शान्तिसे मृत्यू प्राप्त कर पुण्योदयसे कौण्डेश नामक राजा हुआ। अुसकी सुन्दरता और कान्तिको देखकर अेक बार चंद्रको भी लज्जित होना पडता था। शत्रु अुसके भयसे कांपते थे। वह प्रजापालक और दयालु था। अिसप्रकार कौण्डेशका समय शांतिपूर्वक व्यतीत हो रहा था। किन्तु विषय सम्पत्तिको क्षण क्षण नष्ट होते देख अुसे वैराग्य अुत्पन्न हो गया। अुसे घरमें रहना दुःखमय जान पडा। वह राज्यका अधिकारी अपने पुत्रको बनाकर जिनमंदिरमें गया और वहां निर्ग्रंथ-गुरुको नमस्कार कर दीक्षित हो गया। पूर्वजन्ममें कौण्डेशनें शास्त्रदान किया था, अुसके फलसे वह थोडे समयमें ही श्रुतकेवली हो गया। अिसमें आश्चर्य की कोअी बात नहीं। ज्ञानदान तो केवलज्ञान का भी कारण होता है। जिस प्रकार शास्त्रदानसे अेक ग्वाला श्रुतज्ञानी हुआ, अुसी प्रकार सत्पुरुषोंको भी दान देकर आत्महित करना चाहिये। जों भव्य जन अिस ज्ञानदानकी पूजा, प्रभावना, मान, स्तवन किया करते हैं,वे अुत्तमसुख, दीर्घायु आदिका मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं। यह ज्ञानदानकी कथा केवल ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक हो, यह मेरी मनोकामना है।

सूकर की कथा

(अभयदानफल)

भारतवर्षमें मालवा पवित्र और धनशाली देश है। वहकी प्राकृतिक सुंदरता देखनेके लायक होती है। स्वर्गके देव भी यहां आकर मनचाहक सुख प्राप्त करते हैं। मालवेके तमाम नग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोंमें बडे विशाल जिनमन्दिर बनें थे। अुन मन्दिरोंकी ध्वजाअें ऐसी दिख पडती थी, मानो वे स्वर्गका मार्ग बतला रही हो। जिस समयकी यह कथा है, अुस समय मालवा धर्मका केन्द्र बन रहा था। मालवेके घरगांव नामक नगरमें देविल नामका अेक धनी कुम्हार और धर्मिल नाम का अेक नाई रहता था। अिन दोनोंने मिलकर नगरमें बाहरसे आनेवाले यात्रियों के ठहरनेंके लिये अेक धर्मशाला बनवा दी। अेक दिन की बात है। देविलने अेक मुनि को लाकर धर्मशाला में ठहरा दिया। जब यह बात धर्मिलको मालुम हुअी तो अुसने मुनि को निकालकर अेक सन्यासीको लाकर ठहरा दिया। ठीक ही है, दुष्टों को साधु सन्त अच्छे नहीं लगते। सबेरे जब देविल मुनि के दर्शनके लिये आया तो अुन्हें धर्मशालामें न देख अेक वृक्ष के नीचे बैठे हुअे देखा। अुसे धर्मिलकी दुष्टतापर बडा क्रोध हुआ। अुसने धर्मिलको बुरी तरह फटकारा। धर्मिल भी क्रोधित हुआ। यहां तक झगडा बढा कि वे लड कर मर मिटे। दोनोंकी क्रूरभावोंसे मृत्यु होनेके कारण क्रमसे सूअर और व्याघ्र हुअे। ये दोनों विंध्य पर्वत की अलग अलग गुफाओंमें रहते थे। अेक दिन संयोगसे पृथ्वीको पवित्र करते हुअे दो मुनिराज अिसी गुफामें आकर ठहरे। अुन्हें देखते ही सूअर को जातिस्मरण हो गया। अुसने मुनियोंके अुपदेशसे कुछ व्रत ग्रहण कर लिये। गुफामें मनुष्योंका गंध पाकर धर्मिलका जीव व्याघ्र मुनियोंको खानेके लिये झपटा। सूअर देख रहा था। वह द्वार रोककर खडा हो गया। दोनोंमें लडाअी होने लगी। अेक मुनियोंका रक्षक था और दुसरा भक्षक। अतअेव देविल का जीव मृत्यू प्राप्तकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। अुसके शरीरकी कांति चमकती हुअी मनको मोहित करने लगी। वह ऋद्धि-सिद्धियों का धारक हुआ। जो लोग जिनभगवानकी प्रतिभाओंकी, कृत्रिम और अकृत्रिम मंदिरमें पूजा करते हैं, तथा मुनियोंकी भक्ति करते हैं, अुन्हें अैसे ही सुख प्राप्त होते हैं। अत अेव सुख चाहने वाले सत्पुरुषों को जिनपूजा, पात्र दान, व्रत-अुपवासादि धर्मका पालन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना चाहिये। देविलको तो स्वर्ग मिला, पर धर्मिल अपने पापसे नरक गया। इस प्रकार पुण्य और पापका फल जान कर सत्पुरुषोंको उचित है कि वे पवित्र जैनधर्ममें अपना विश्वास दृढ करें।

अब—जिन धर्मकी परिपाटीकी रक्षाके लिए, यदि मुनियोंका अभाव हो तो उनकी उत्पत्तिके लिए तथा यदि मुनियोंका सद्भाव हो तो उनमें गुणों की विशेषताको बढानेका उपदेश देते हैं—

जिनधर्मं जगद्बन्धु–मनुबद्धुमपत्यवत्।
यतीञ्जनयितुं यस्येत्तथोत्कर्षयितुं गुणैः ॥७१॥

अन्वयार्थ—सद्गृहस्थ (अपत्यवत्) पुत्रके समान (जगद्बन्धुं) जगतके बन्धु (जिनधर्मं) जिन धर्मकी (अनुबद्धुं) सततप्रवृत्ति चलानेके लिये (यतीन्) मुनियोंको (जनयितुं) पैदा करने के लिये (यस्येत्) प्रयत्न करे (तथा) जो वर्तमान में मुनि हैं इनका (गुणैः) श्रुतज्ञानादिक गुणोंके द्वारा (उत्कर्षयितुं) बढाने के लिये प्रयत्न करे ॥७१॥

भावार्थ—हे सद्गृहस्थों! जिसप्रकार तुम अपने वंश की परम्परा चलानेके लिये पुत्रोत्पत्तिमें तथा उनमें सद्गुणों को बढाने का प्रयत्न करते हो, उसी प्रकार जगद्बन्धु जिनधर्म की परम्परा को चलाने के लिये नवीन मुनियों को पैदा करने का तथा जो वर्तमान में मुनि हैं उनमें श्रुतज्ञानादि का साधन कराकर गुणों का उत्कर्ष करे ॥७१॥

अब—क्या करें, वर्तमान कालमें पुरुषोंमें गुण पैदा ही नहीं होते, उल्टे दुर्गुण बढ रहे हैं इसलिये प्रयत्न करना व्यर्थ है, इस प्रकारसें प्रयत्न करनेवालोंका जो मन गिर रहा है उसको स्थिरताका उपदेश देते हैं—

श्रेयो यत्नवतोऽस्त्येव कलिदोषाद्गुणद्युतौ।
असिद्धावपि तत्सिद्धौ स्वपरानुग्रहो महान् ॥७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(कलिदोषात्) कलिकालके दोषसे (गुणद्युतौ) गुणोंका प्रकाश (असिद्धौ) असिद्ध होने पर (अपि) भी (यत्नवत:) प्रयत्न करनेवालेके तो (श्रेय:) कल्याणकारी (अस्ति एव) ही है। (तत्सिद्धौ) उन गुणों की सिद्धि हो जाने पर तो (महान्) महान (स्वपरानुग्रह:) अपना और दूसरे जीवों को उपकार होता हैं ॥७२॥

भावार्थ-यदि कलिकाल के प्रभाव से वा संयतके पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से प्रयत्न करने पर सम्यग्ज्ञानादि गुणों का विकास नहीं हुवा तो भी प्रयत्न करनेवाले गृहस्थका तो कल्याण ही होता हैं। यदि पुण्योदय से गुणोंका विकास हो जाय तो वैयावृत्ति करने वाले अन्य साधर्मियों का महान उपकार होगा। क्योंकि मुनियों से ही सच्चे धर्मकी स्थिती रहती है।

अब-अणुव्रत अथवा महाव्रत धारण करनेवाली स्त्रियां भी धर्मपात्र हैं-अत: उनको पात्रदान करनेका उपदेश देते हैं-

आर्यिका: श्राविकाश्चापि सत्कुर्याद्गुणभूषणा: ।
चतुर्विधेऽपि संघे यत्फलत्युप्तमनल्पश: ॥७३॥

अन्वयार्थ-सद्गृहस्थ (गुणभूषणा:) श्रुत, तप:, शील, गुण ही है। भूषण जिनके ऐसी (आर्यिका:) आर्यिका (च) तथा (श्राविका) श्राविकाका (अपि) अपि शब्दसे व्रतिनी वा अव्रतिनी का (सत्कुर्यात्) सत्कार करे। (यत्) क्योंकि (चतुर्विधे) चार प्रकार के (संघे) संघमें (उप्तं) दिया हुवा दान (अनल्पश:) बड़े भारी फलको (फलति) फलता है ॥७३॥

भावार्थ-सद्गृहस्थ तप:, श्रुत, शीलादि गुणरूपी आभूषणों को धारण करनेवाली उपचार महाव्रतिनी आर्यिका का तथा शक्ति अनुसार मूलोत्तर गुण धारण करनेवाली श्राविका का अपि शब्दसे व्रतिनी अव्रतिनी श्राविकाका सत्कार करे। अर्थात् उनको भी आहारदान, पुस्तक, शाटिका आदि देवें। क्योंकि चार प्रकार के संघमें विधिपूर्वक दिया हुवा अन्न, वसतिका आदि अनल्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलको देता है। इससे सिद्ध होता है कि अर्हन्त, चैत्य, चैत्यालय, श्रुत आदि में व्यय किया हुवा धन अनल्प फल देता है ऐसा नहीं है परन्तु चार प्रकार के संघमें दिया हुवा दान भी अनल्प फल देता है। इसलिये गृहस्थ को सात प्रकार के धर्मक्षेत्रोमें धन का व्यय करना चाहिये, ऐसा उपदेश दिया है।

अब—इसप्रकार धर्मपात्रोंको दान देना जरूरी बताकर अब कार्यक्षेत्रोंको भी मदद करनेका उपदेश करते हैं—

धर्मार्थकामसध्रीचो यथौचित्यमुपाचरन्।
सुधीस्त्रिवर्गसम्पत्त्या प्रेत्य चेह च मोदते ॥७४॥

अन्वयार्थ—(धर्मार्थकामसध्रीचः) धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थके सहचर पुरुषों का (यथौचित्यं) यथोचित दानमानादिक के द्वारा (उपाचरन्) उपकार करने वाला (सुधीः) बुद्धिमान पुरुष (इह) इस लोकमें (च) तथा (प्रेत्य) परलोकमें (त्रिवर्गसम्पत्त्या) धर्म, अर्थ और काम की सम्पदासे (मोदते) सुखी होता है ॥७४॥

भावार्थ—जो प्रज्ञावान श्रावक धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ के सहकारी पुरुषोंका दानमानादिक के द्वारा यथायोग्य सत्कार करता है वह इस लोक में तथा परलोकमें धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थरूप सम्पत्तिसे सुखी होता है।

इस प्रकार समदत्ति और पात्रदत्ति का वर्णन करके इस समय दयादत्तिदान देनेका उपदेश देते हैं—

सर्वेषां देहिनां दुःखाद्बिभ्यतामभयप्रदः।
दयार्द्रो दातृधौरेयो निर्भीः सौरूप्यमश्नुते ॥७५॥

अन्वयार्थ—(सर्वेषां) सम्पूर्ण (दुःखात्) दुःखसे (बिभ्यतां) भयभीत (देहिनां) प्राणियों को (अभयप्रदः) अभयदान देने वाला (दयार्द्रः) दयालु मानव (दातृधौरेयः) दाताओं में मुखिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और (निर्भीः) निर्भय होता हुवा (सौरूप्यं) सौन्दर्य को (अश्नुते) प्राप्त होता है ।।७५।।

भावार्थ-जो शारीरिक और मानसिक दुःखसे दुःखी हैं उन प्राणियों के दुःखको दूर कर अभयदान देता है-वह दयालु मानव अन्नदानादि देने वाले दाताओंमें मुखिया तथा निर्भय होकर सौरूप्य को प्राप्त होता है ।

यहाँपर सौरूप्य शब्द का अर्थ रूपातिशय है । रूपातिशय उपलक्षण मात्र है । परन्तु अभयदान के प्रभावसे दयालु मानव स्थैर्य, गांभीर्य, तेजस्वीपना, आदेयत्व, सौभाग्यत्व, सौम्यत्व, त्यागित्व, भोगित्व, यशस्वित्व, निरामयत्व और चिरजीवित्व आदि अनेक लोकोत्तरगुणोंकी प्राप्ति होती है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ में मूल कारण जीवन है। जीवनदान दिया, उसने सब कुछ दिया। इसलिये अभयदान देनेवाला सब दाताओं में मुखिया कहलाता है । सो ही कहा है-

तेनाधीतं श्रुतं सर्वं तेन तप्तं परं तपः ।
तेन कृत्स्नं कृतं दानं यः स्यादभयदानवान् ।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां जीवितं मूलमिष्यते ।
तद्रक्षता न किं दत्तं हरता तन्न किं हृतम् ।।
दानमन्यद्भवेन्मा वा नरश्चेदभयप्रदः ।
सर्वेषामेव दानानां यतस्तद्दानमुत्तमम् ।।
यो भूतेष्वभयं दद्यात् भूतेभ्यस्तस्य नो भयम् ।
यादृग्वितीर्यते दानं तादृगाष्यास्यते फलम् ।।
सौरूप्यमभयादाहुराहाराद्भोगवान्भवेत् ।
आरोग्यमौषधाज्ज्ञेयं श्रुतात्स्यात् श्रुतकेवली ।।
मनोभूरिव कान्ताङ्गः सुवर्णाद्रिरिव स्थिरः ।
सरस्वानिव गम्भीरः विवस्वानिव भासुरः ।।
आदेयः सुभगः सौम्यस्त्यागी भोगी यशोनिधिः ।
भवत्यभयदानेन चिरजीवी निरामयः ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ- जिसने अभयदान दिया उसने सब शास्त्र पढ लिये, परमतप तप लिया और सब प्रकारके दान दे लिए। यह जीवन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थका मूल है, इसलिये जीवनकी रक्षा करनेवालेने क्या नहीं दिया ? सब कुछ दिया। और जीवनके नाशको करनेवालेने क्या नहीं हर लिया ? सब ही वस्तुओंका अपहरण कर लिया। और कुछ दान हाथसे नहीं बने, और मनुष्य केवल अभय देनेवाला हो तो भी वह श्रेष्ठ है। कारण सब दानोमें अभयदान उतम है। जो प्राणियोंको अभयदान देता है उसे संसारमें किसीसे भी डर नहीं रहता है। ठीक ही है। क्योंकि जैसा ही दान दिया जाता है वैसा ही उसे फल मिलता है। अभयदानसे सौरूप्यकी, आहारदानसे भोगोंकी, औषधदानसे आरोग्यकी और शास्त्रदानसे श्रुतकेवल ऋद्धिकी प्राप्ति होती हैं। जो अभयदान करता है वह कामदेवके समान सुस्वरूप, सुमेरुके समान स्थिर समुद्रके समान गम्भीर, सूरजके समान प्रतापी होता है और आदेय, सुभग, सौम्य, त्यागी, भोगी, यशोनिधि, चिरंजीवी और निरोग होता है।

अब- 'कर्म, धर्म्यं, यशस्यं च' यह जो पहले कह आये हैं उसे स्पष्ट करते हुए आश्रितोंका भरणपोषण और निराश्रितोंका भी यथाशक्ति भरणपोषण करना चाहिये, यह बताकर गृहस्थोंको दिनमें भोजन करना चाहिये, रात्रिमें केवल पानीय आदिक ले सकता है यह बताते हैं—

> भृत्वाऽऽश्रितानवृत्त्याऽऽर्तान्कृपयाऽनाश्रितानपि ।
> भुञ्जीताह्न्यम्बुभैषज्य--ताम्बूलैलादि निश्यपि ॥७६॥

अन्वयार्थ- गृहस्थ (अनवृत्त्या) आजीविकाके अभावसे (आर्तान्) दुःखी (आश्रितान्) आश्रित प्राणियोंका (भृत्वा) भरण पोषण करके तथा (कृपया) करुणाबुद्धिसे (अनाश्रितान्) अपने आश्रित नहीं हैं उन प्राणियोंका (अपि) भी भरणपोषण करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अन्हि) दिनमें ही (भुञ्जीत) भोजन करे। और (अम्बुभैषज्य-ताम्बूलैलादि) जल, औषध, ताम्बूल, इलायची आदि (निशि) रात्रिमें (अपि) भी (भुञ्जीत) खा सकता है।

भावार्थ- अव्रती श्रावक आजीविका के अभावमें अनवस्थ चित्त अपने आश्रित नोकर, पशु आदिका तथा जो अपने आधीन तो नहीं हैं परन्तु अनाथ दुःखी जो हैं उन सबका दयाबुद्धिसे भरणपोषण करके दिनमें ही भोजन करें। पानी, औषध, ताम्बूल, सुपारी, इलायची, आदि शब्दसे जातिफल, कर्पूरादि मुखशुद्धिके पदार्थ रात्रिमें भी खा सकता है।

तथा चोक्तं—

ताम्बूलमौषधं तोयं मुक्त्वाऽऽहारादिकां क्रियाम्।
प्रत्याख्यानं प्रदीयेत यावत्प्रातर्दिनं भवेत्॥

अर्थ- दिन उगनेतक ताम्बूल, औषध और पानीको छोडकर सब प्रकारके आहारादिका व्रत देना चाहिये।

सूर्योदय पर्यन्त ताम्बूल, औषधी, पानी को छोडकर सम्पूर्ण पदार्थोंका त्याग कर देना चाहिये।

अब सेव्य पदार्थ भी जबतक सेवन करनेमें नहीं आते हैं तब उन पदार्थोंका काल की मर्यादासे त्याग करना चाहिये। तथा त्याग करनेसे क्या फल प्राप्त होता है-यह बताते हैं--

यावन्न सेव्या विषयास्तावत्तानाप्रवृत्तितः।
व्रतयेत्सव्रतो दैवान्मृतोऽमुत्र सुखायते॥७७॥

अन्वयार्थ- (यावत्) यावत् कालपर्यंन्त, (विषयाः) विषय (न सेव्याः) सेवन करनेमें नहीं आते हैं (तावत्) तबतक (तान्) उन विषयोंका (अप्रवृत्तितः) अप्रवृत्ति रूपसे (व्रतयेत्) नियम करे, अर्थात् जबतक में इन विषयों में प्रवृत्ति नहीं करूँगा तबतक मुझे इनका त्याग है ऐसा नियम करे। (दैवात्) यदि कर्मवश (सव्रतः) व्रतसहित (मृतः) मर गया तो (अमुत्र) परलोक में (सुखायते) सुखी होता है॥७७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(सर्वभूतानि) किसी भी जीवको (न हिंस्यात्) नहीं मारना चाहिये (इति) इस प्रकार (आर्षं) आचार्य प्रणीत शास्त्र को (प्रमाणयन्) प्रमाण मानता हुवा (धर्मे) धर्मनिमित्त (सदा) हमेशा (शक्त्या) अपनी शक्ति अनुसार (सागस:) अपराधी की (अपि) भी (रक्षेत्) रक्षा करे। (किं नु) परन्तु (निरागस:) निरपराधी की कहना ही क्या अर्थात् उनकी विशेष रूप से रक्षा करे ॥८१॥

भावार्थ-आचार्यप्रणीत शास्त्रोंमें लिखा है-किसीभी जीवोंको नहीं मारना चाहिये, इस वाक्य को प्रमाणीभूत मानता हुवा धार्मिक श्रावक हमेशा पापसे बचने के लिये अपराधी जीवों की भी रक्षा करता है, उनका भी घात नहीं करता है तो फिर निरपराधी त्रस-स्थावर का तो कहना ही क्या ? उनकी विशेष रूपसे रक्षा करेगा ॥८१॥

सांकल्पिक हिंसा के परित्याग का उपदेश देकर आगे अर्थान्तरन्याससे उसीका समर्थन करते हैं-

आरम्भेऽपि सदा हिंसां सुधी: साङ्कल्पिकीं त्यजेत् ।
घ्नतोऽपि कर्षकादुच्चै: पापोऽघ्नन्नपि धीवर: ॥८२॥

अन्वयार्थ-(सुधी:) बुद्धिमान (सदा) हमेशा (आरंभे) व्यापारादि कार्यों में (अपि) भी (सांकल्पिकीं) संकल्पीं (हिंसां) हिंसाका (त्यजेत्) परित्याग करे। क्योंकि (घ्नत:) खेती आदिके आरं जीव का घात करते हुये (अपि) भी (कर्षकात्) किसानसे (अघ्नन्) जीवों को नहीं मारनेवाला (अपि) भी (धीवर:) धीवर मारने का संकल्प करनेवाला होने से (उच्चै: पाप:) उत्कृष्ट पातकके भागी है ॥८२॥

भावार्थ-शास्त्र में हिंसा करना पाप का कारण वा दुर्गति में ले जानेवाला कहा है, ऐसा विचार कर बुद्धिमान श्रावक "मैं मांस केलिये इस जीव को मारूं" ऐसी संकल्पी हिंसा का त्याग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। यद्यपि आरंभ में होनेवाली हिंसा को परित्याग करने के लिये गृहस्थ असमर्थ है तथापि मैं कुटुम्ब का पोषण देव, पूजा, दान आदि की प्रवृत्ति के लिये खेती करता हूँ वा व्यापार करता हूँ, जीवों का घात करना नहीं चाहता हूँ, इस भावनासे व्यापार आदिमें प्रवृत्ति करते समय आरंभजन्य हिंसा करते हुये श्रावक की अपेक्षा "मैं बहुत सी मछलियों को मारूँगा" ऐसी भावना करनेवाला यदि कारणवश जीवों की हिंसा नहीं कर सका तो भी महापातकी है। क्योंकि आचार्यो ने कहा है-

पुण्य और पापमें मुख्य कारण जीवों के परिणाम ही है। परिणामों के अनुसार ही पुण्यास्त्रव और पापास्त्रव होता है।

अब-जो हिंस्र आदि प्राणियोंकी हिंसाका विधान बताते हैं उसका खंडन करते हैं-

हिंस्रदुःखिसुखिप्राणि-घातं कुर्यान्न जातुचित्।
अतिप्रसङ्गश्वभ्रार्ति--सुखोच्छेदसमीक्षणात् ।।८३।।

अन्वयार्थ-(अतिप्रसंगश्वभ्रार्तिसुखोच्छेदसमीक्षणात्) अति-प्रसंग, नरकसम्बन्धी दुःख तथा सुख का उच्छेद देखा जाता है इसलिये कल्याणेच्छुक मानव (जातुचित्) कभी भी (हिंस्रदुःखि-सुखिप्राणिघातं) हिंसक दुःखी तथा सुखी किसीभी प्राणिका (घातं) घात (न कुर्यात्) नहीं करें ।।८३।।

भावार्थ-कोई अज्ञानी जन कहते हैं कि एक हिंसक सर्पादिक का घात करने से बहुत से जीवों की रक्षा होती है और धर्माधिगम तथा पापोपरम होता है, इसलिये हिंसकजीवों को मारना चाहिये। हिंसकजीवो के मारने सें बहुत से जीवों की रक्षा के अभिप्राय से धर्म तथा पापोच्छेद होता है ऐसा विचार कर हिंसक जीवों को नहीं मारना चाहिये। क्योंकि हिंसक जीवों के मारने से अतिप्रसंग दोष आयेगा। जो हिंसकजीवको मारता है वह भी जीवघ्न होने से हिंसक है, इसलिये उसको भी मारनेवाला कोई दूसरा होना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– कारणवश जबतक जिन विषयोंको भोगने की संभावना नहीं है तबतक के लिये उनका भी त्याग कर देना चाहिये अर्थात् इतने दिनतक वा इतने समयतक रात्रिमें पानी आदिका सेवन नही करूँगा इस प्रकार के व्रत ग्रहण करने बाद यदि कर्म–वशात् व्रतसहित मर गया तो परलोकमें सुखी होता है ।

तपश्चर्यं च शक्तितः इस शब्द का विशेष रूपसे विधान करते हैं-

पञ्चम्यादिविधिं कृत्वा शिवान्ताभ्युदयप्रदम् ।
उद्योतयेद्यथासम्पन्निमित्ते प्रोत्सहेन्मनः ।।७८।।

अन्वयार्थ– (शिवान्ताभ्युदयप्रदं) मोक्षपर्यन्त अभ्युदयको देनेवाले (पञ्चम्यादिविधिं) पञ्चमी आदि व्रतोंको (कृत्वा) करके (यथासम्पत्) अपनी सम्पत्तिके अनुसार (उद्योतयेत्) उद्यापन करे (निमित्ते) नैमित्तिक अनुष्ठानमें (मनः) मन (प्रोत्सहेत्) उत्कृष्ट रूपसे उत्साहित करे ।

भावार्थ– अन्तमें जिसका फल मोक्ष है–मुक्ति के पहिलें इन्द्र, चक्रवर्ती आदि सम्पदाके कारणभूत पंचमी, पुष्पांजली, मुक्ता-वलि, कनकावली,रत्नत्रय आदि व्रत-विधि को करके अपनी सम्पत्ति अनुसार उद्यापन करे । यद्यपि नित्य अनुष्ठान पूजादिक प्रतिदिन किया जाता है, फिर भी नैमित्त व्रतादिक क्रियाओं में मनको अत्य-धिक उत्साहित करे ।

आगे– व्रतग्रहण, ग्रहण किये हुये व्रतोंका रक्षण तथा गृहीत व्रतों के छेद होनेपर रक्षण की विधि बताते हैं––

समीक्ष्य व्रतमादेयमात्तं पाल्यं प्रयत्नतः ।
छिन्नं दर्पात्प्रमादाद्वा प्रत्यवस्थाप्यमञ्जसा ।।७९।।

अन्वयार्थ– (समीक्ष्य) देश कालादिक को देखकर (व्रतं) व्रत (आदेयं) लेना चाहिये (आत्तं) ग्रहण किये हुये व्रतोंका (प्रयत्नतः) प्रयत्न पूर्वक (पाल्यं) पालन करना चाहिये । (दर्पात्) मदावेशसे (वा) अथवा (प्रमादात्) प्रमादसे (छिन्नं) व्रतभंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेपर (अञ्जसा) शीघ्र ही (प्रत्यवस्थाप्यं) प्रायश्चित्त लेकर पुनः व्रत ग्रहण करना चाहिये ।

भावार्थ– स्वहितवाञ्छक मनुष्योंको देश, काल, स्थान, सहचारी तथा आत्मशक्ति की अनुकूलताका विचार करके व्रत ग्रहण करना चाहिये । ग्रहण किये हुये व्रतोंका प्रयत्नपूर्वक निरतिचार पालन करना चाहिये । यदि प्रमादसे वा मदावेशसे गृहीत व्रतोंमें अतिचार लग जाय वा व्रतभंग हो जाय तो शीघ्र ही प्रायश्चित लेकर पुनः व्रतारोपण करना चाहिये ॥७९॥

व्रत क्या है इसप्रकार पूछनेपर कहते हैं---

सङ्कल्पपूर्वकः सेव्ये नियमोऽशुभकर्मणः ।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभकर्मणि ॥८०॥

अन्वयार्थ– (सेव्ये) सेवनीय विषयोंमें (संकल्पपूर्वकः) संकल्पपूर्वक (नियमः) प्रत्याख्यान करना (वा) अथवा (अशुभकर्मणः) हिंसादि अशुभ कार्योंसे संकल्पपूर्वक (निवृत्तिः) यावज्जीव निवृत्त होना (वा) अथवा (शुभकर्मणि) शुभ कार्योंमें (प्रवृत्तिः) संकल्प पूर्वक प्रवृत्ति होना (व्रतं) व्रत (स्यात्) व्रत कहलाता है ।

भावार्थ– स्त्री, ताम्बूल आदि ग्रहस्थ के सेवनयोग्य विषय है, उनमें मैं इतने समयतक प्रवृत्ति नहीं करूँगा वा इतने कालतक सेवन नहीं करूँगा ऐसा संकल्प करके नियमित कालतक विषयोंका त्याग करना व्रत कहलाता है । अथवा हिंसा, असत्यादिक पाप कर्मो से सर्वथा विरक्त होना वा पात्रदानादि शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति करना व्रत कहलाता है । संकल्पपूर्वक तीनों में ही लगाना चाहिये अर्थात् दान पूजादि में संकल्प करना चाहिये, इतने समयतक मैं धार्मिक कार्य करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये ॥८०॥

विशिष्ट आगमज्ञानके बलसे प्राणिरक्षाकी विधि कहते हैं–

न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन् ।
सागसोऽपि सदा रक्षेच्छक्त्या किं नु निरागसः ॥८१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये, फिर उसको मारनेवाला कोई दूसरा होना चाहिये इस प्रकार अतिप्रसंग दोष आयेगा।

कोई कहते है दु:खी जीवों को मार देना चाहिये जिससे वह दु:खसे मुक्त हो जायगा ऐसा विचार कर दु:खी जीवों को मारना भी ठीक नहीं है। क्योंकि तिर्यंच, मानुष्यसम्बन्धी दु:ख तो अल्प हैं। उन स्वल्प दु:खका नाश करने के विचार से दु:खी जीव का घात किया और वह मरकर नरक में गया तो महादु:खी होगा। इसलिये दु:खी को भी नहीं मारना चाहिये। कोई अज्ञ जन कहते है, सुखी मरकर परभवमें सुखी ही होता है, इसलिये सुखी को मारना चाहिये। यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि सुखी को मारनेसे वर्तमानमें तो प्रत्यक्ष सुखका नाश होता है। अथवा दुर्ध्यानसे मर कर दुर्गति में भी जा सकता है-इसलिये सुखी को भी नहीं मारना चाहिये। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है, सुखी की, दु:खी की, हिंसक की हिंसा करना वा स्वगत–परगत किसीभी प्रकारसे की हुई हिंसा धर्म का साधन नहीं है, पाप का ही कारण है। इसलिये कल्याण के चाहने वाले मनुष्यों को हिंसाका त्याग ही करना चाहिये।

अब–पाक्षिकके दर्शनविशुद्धि और लौकिकव्यवहारके क्या क्या कार्य करना चाहिये यह बताते हैं–

स्थूललक्ष: क्रियास्तीर्थयात्राद्या दृग्विशुद्धये।
कुर्यात्तथेष्टभोज्याद्या: प्रीत्या लोकानुवृत्तये ॥८४॥

अन्वयार्थ–(स्थूललक्ष:) व्यवहारप्रधानी सद्गृहस्थ (दृग्विशुद्धये) सम्यक्त्व को निर्मल करने के लिये (तीर्थयात्राद्या:) गिरनार आदि तीर्थयात्रा (तथा) तथा (लोकानुवृत्तये) लौकिक चिंताको दूर करने के लिये (प्रीत्या) हर्षसे (इष्टभोज्याद्या:) मित्रोंको भोजन कराना आदि (क्रिया:) क्रिया (कुर्यात्) करे ॥८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-व्यवहारप्रधानी गृहस्थ सम्यग्दर्शन की शुद्धि करने के लिये पुण्यपुरुषों के निर्वाणभूमि ऊर्जयन्त आदि क्षेत्रोंकी तीर्थ-यात्रा करे। तथा लोकचित्त अनुरंजन करने के लिये हर्षपूर्वक इष्ट, मित्र, साधर्मीजनों को भोजन अतिथिपूजनादि क्रिया भी करे ॥८४॥

कल्याणेच्छुक मानव कीर्तिको अर्जन करे यह कहते हैं–

अकीर्त्या तप्यते चेतश्चेतस्तापोऽशुभास्रवः ।
तत्तत्प्रसादाय सदा श्रेयसे कीर्तिमर्जयेत् ॥८५॥

अन्वयार्थ–(अकीर्त्या) अपयश से (चेतः) मन (तप्यते) संक्लेशित होता है (चेतस्तापः) मनके कालुष्य से (अशुभास्रवः) अशुभास्रव होता है। (तत्) इसलिये (श्रेयसे) आत्मकल्याण के लिये (तत्प्रसादाय) मन को प्रसन्न करने के लिये (सदा) हमेशा (कीर्ति) कीर्तिको (अर्जयेत्) उपार्जन करे ॥८५॥

भावार्थ–गृहस्थ को चित्त प्रसन्नताके लिये कीर्ति उपार्जन करना चाहिये। क्योंकि अपनी अपकीर्ति से मन संतापित होता है, मनके संताप से अशुभ कर्मोंका आस्रव होता है। और अशुभास्रव से पापबंध होता है। तथा कीर्ति से मन प्रसन्न होता है, मन की प्रसन्नता से शुभास्रव होता है और शुभास्रवसे पुण्यबंध होता है। इसलिये कीर्तिकारी काम करना योग्य है ॥८५॥

कीर्ति के उपार्जन के उपाय को कहते हैं–

परासाधारणान्गुण्यप्रगण्यानघमर्षणान् ।
गुणान् विस्तारयेन्नित्यं कीर्तिविस्तारणोद्यतः ॥८६॥

अन्वयार्थ–(कीर्तिविस्तारणोद्यतः) कीर्ति को विस्तरित करने में तत्पर मनुष्य (परासाधारणान्) दूसरों में नहीं पाये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाने वाले (गुण्यप्रगण्यान्) गुणवानों के द्वारा माननीय (अघमर्षणान्) पाप को नाश करनेवाले (गुणान्) दान, शीलादिगुणों को (नित्यं विस्तारयेत्) विस्तरित करे ॥८६॥

भावार्थ–जो मानव अपनी कीर्ति चाहता है उसको हमेशा अन्यमानवों में नहीं पाये जानेवाले असाधारण विद्वान के द्वारा प्रशंसनीय, पापनाशक दान, सत्य, शौच, शील, संयमादि प्रशंसनीय गुणोंको विस्तरित करना चाहिये।

अब– पाक्षिकके आचारमें तत्पर श्रावक नैष्ठिकके आचारको पालकर मुनिचार्यको प्राप्त होवें, इसका सालंकार वर्णन करते हैं–

> सैषः प्राथमकल्पिको जिनवचोऽभ्यासामृतेनासकृ—
> न्निर्वेदद्रुममावपन् शमरसोद्गारोद्धुरं बिभ्रति ।
> पाकं कालिकमुत्तरोत्तरमहान्त्येतस्य चर्याफला
> न्यास्वाद्योद्यतशक्तिरुद्धचरितप्रासादमारोहतु ॥८७॥

अन्वयार्थ– (जिनवचोऽभ्यासामृतेन) जिनेन्द्रभगवानके वचनोंके अभ्यासरूपी अमृतके द्वारा (निर्वेदद्रुमं) वैराग्यरूपी वृक्षको (असकृत्) निरन्तर (आवपन्) सीचनेवाला (सैषः प्राथमकल्पिकः) वही यह पाक्षिकश्रावक (शमरसोद्गारोद्धुरं) प्रशमसुखरूपी रसकी अभिव्यक्तिके द्वारा लबालब भरे हुए और (कालिकं पाकं) कालकृत आत्मीयपरिणतिरूपी पापको (बिभ्रति) धारण करनेवाले तथा (उत्तरोत्तरमहान्ति) उत्तरोत्तर वृद्धिको लिये हुए अर्थात् आगे आगे बडे बडे ऐसे (एतस्य) वैराग्यरूपी वृक्षके (चर्याफलानि) दर्शनिकादिप्रतिमारूपी फलोंका (आस्वाद्य) आस्वादन करके (उद्यतशक्तिः) उत्पन्न हुई है शक्ति जिसके ऐसा अर्थात् सामर्थ्यवान होता हुआ (उद्धचरितप्रासादं) मुनिधर्मरूपी प्रासादका (आरोहतु) आरोहण करे अर्थात् मुनिधर्मरूपी प्रासादके ऊपर चढे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- पाक्षिक श्रावक जिनवचनरूपी अमृतके अनुभव द्वारा संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर सल्लेखनापर्यंत यतिधर्मरूपी महलके ऊपर चढनेकी सामर्थ्यको प्राप्त करे । किससे प्राप्त करे ? ऐसा पूछे जानेपर यह बताया जाता है कि ११प्रतिमा-रूपी निर्वेद वृक्षके मधुरफलोंका उपभोग कर अपनेमें शक्ति बढानी चाहिये । पहले अध्यायमें पाक्षिकका लक्षण कहा जा चुका है, नैष्ठिक अवस्थाकी तैयारी करनेवाला पाक्षिक होता है । यह अपनी अवस्थामें निर्वेद (वैराग्य) रूपी वृक्षको बोता है । संसार, शरीर और भोगसे विरक्तता यह नैष्ठिकोंकी प्रथम प्रतिमामें बताया है उसको यहां कल्पवृक्षकी उपमा दी हैं और उसके उत्तरोत्तर प्रतिमाओंको, उत्तम मधुररसवाले, यथाकाल मधुर और पौष्टिक रससंपन्न फलोंकी उपमा दी है । उन ११ प्रतिमारूपी रसभरे शक्तिवर्द्धक फलोंका अनुभव करके अपनी मुनिधर्मकी पालनेकी योग्यता बढाकर, पाक्षिकश्रावक क्रम से मुनिधर्मरूपी उत्तम, उन्नत सुखशांतिके आधाररूप महलके ऊपर आरोहण करे ऐसा आशावादमय तथा आर्शीवादात्मक भाव इस पद्यका है ।

द्वितीय अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें ग्रंथकारने समस्त सावद्य विषयोंको छोडनेमें असमर्थ जीवोंके लिये सबसे पहिले गृहस्थधर्मकी अनुमति दी है । श्रावकधर्मकी मूलभित्ति अष्टमूल गुणोंपर है । मद्य, मांस, मधु, पंच उदुंबर फल इनका त्याग करना अष्टमूलगुण है । ग्रंथकारने प्रथमतः अष्ट मूलगुणोंका विवेचन करते हुए मद्य, मांस, मधुके सेवनसे क्या क्या हानियाँ होती है और जीवहिंसाकी बहुलता इसमें किस प्रकार है इन बातोंका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । इसी प्रसंगमें रात्रिभोजनत्याग और द्यूतवेश्यादि व्यसनोंका त्याग आवश्यक बतलाया है । ऐसे मूलगुणोंका धारण करनेवाला श्रावक यथार्थमें जिनधर्मश्रवणके योग्य होता है । और उसीमें धर्मश्रवणकी योग्यता प्राप्त होती है । इस बातका निरूपण करते हुए श्रावकोंके लिये अनुष्ठेय मुख्य धर्म जिनेंद्रपूजा व पात्रदानका विवेचन किया है । जिनेंद्रपूजाके नित्यनैमित्तिक पूजाओंका भेद करते हुए पूजाके फलका भी निरूपण किया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार यथाशक्ति गुरुवोंकी एवं आगमकी भी उपासना करनेका विधान किया है । तदनंतर अपने द्रव्यकी सार्थकताके लिए पात्रदानके लिए भी प्रेरणा की गई है । धर्मपात्रोंका भेद करते हुए समयिक, साधक, समयद्योतक, नैष्ठिक और गणाधिप इनको यथाशक्ति दान देकर सत्कार करनेका विधान किया गया है । इसी प्रसंगमें साधर्मी भाईयोंको समदत्ती आदि दानका विधान कर दानके उत्तम फलका निरूपण किया है । जिनेंद्रपूजा और दान करनेवाला सद्गृहस्थ यथाशक्ति व्रतोंका भी आचरण करें और मुख्यत: सांकल्पिक हिंसाका परित्याग करे, इस बातका निरूपण करते हुए गृहस्थको सत्कीर्तिका भी अर्जन करना आवश्यक है, यह कहा गया है । उसी प्रकार कीर्ति-अर्जनके लिए उपयुक्त उपायोंका भी निरूपण किया गया है । इस प्रकार इस अध्यायमें गृहस्थ धर्मके लिए जो मूल योग्यता चाहिये, उसका सुंदर विवेचन किया गया है । सारांशत: पाक्षिक श्रावकका इसमें विवेचन है । जो अपनेको जैनी समझता है, जैनधर्मका, जैनगुरुवोंका, जैनागमका और जिनेंद्रदेवका जिसको पक्ष है वह पाक्षिक कहलाता है । नैष्ठिककी पात्रता प्राप्त करनेके पहिले पाक्षिक श्रावक होना आवश्यक है । पाक्षिककी योग्यता प्राप्त होनेपर ही नैष्ठिकके आचरण करनेके लिए वह समर्थ होता है । इसलिये इस अध्यायमें जीवनके मूला ारका विवेचन है, ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी ।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्य कुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे ११ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे द्वितीय
अध्याय समाप्त
हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीयोऽध्यायः

नैष्ठिकका लक्षण

देशयमघ्नकषायक्षयोपशमतारतम्यवशतः स्यात् ।
दर्शनिकाद्येकादशदशावशो नैष्ठिकः सुलेश्यतरः ॥१॥

अन्वयार्थं-(देशयमघ्नकषायक्षयोपशमतारतम्यवशतः) देश संयम का घात करनेवाली कषायोंके क्षयोपशमकी तारताम्यताके वशसे (दर्शनिकाद्येकादशदशावशः) दर्शनिक आदि ग्यारह श्रावक सम्बन्धी संयम स्थानों के वशीभूत तथा (सुलेश्यतरः) उत्तम लेश्या वाला (नैष्ठिकः) नैष्ठिक श्रावक (स्यात्) होता है ॥१॥

भावार्थ-व्याकरण दृष्टिसे अतिशय अर्थ में ठक् अर्थात् इकण प्रत्यय करने से दर्शनं निर्मलंमद्यादिविरत्याहितातिशयं सम्यक्त्वं अस्यास्तीति दर्शनिकः। मद्यमांसादिकका त्याग सहित निर्मल सम्यक्त्व जिसके हो उसको दार्शनिक कहते हैं उसी प्रकार अतिचार रहित पांच अणुव्रत जिसके हों उसको व्रतिक कहते हैं।

देशसंयम का घात करनेवाली अप्रत्याख्यानावरण कषाय के वर्तमान निषेकों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं आगे उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्याना वरणी कषाय के उदय के क्षयोपशम की तारतम्यता से दर्शनिकादि श्रावकके ग्यारह प्रतिमा होती है। यह सब देशसंयम के भेद है। जितनी कषायों की मन्दता पहिली प्रतिमा में है उससे विशेष क्षयोपशम दूसरी प्रतिमा में है। इसप्रकार परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर अधिक अधिक होती है। वह लेश्या, द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो प्रकार की होती है। कषाय के उदयसे अनुरंजित मन, वचन तथा काय की प्रवृत्ति को भावलेश्या कहते हैं तथा शरीर के रंग को द्रव्यलेश्या कहते हैं। यहाँ पर भावलेश्या का प्रकरण है। उनमें दुर्लेश्या तथा सुलेश्या की अपेक्षा भी दो भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कृष्ण, नील और कापोत यह तीन दुर्लेश्या कहलाती है। दुर्लेश्यावाला पंचम गुणस्थानवर्ती तथा नैष्ठिक श्रावक नहीं बन सकता है। अत: जिनकी सुलेश्या अर्थात् पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या की विशुद्धि होती जा रही है अर्थात् पहली प्रतिमा से दूसरी प्रतिमा में लेश्या की विशुद्धि है इस प्रकार उत्तरोत्तर लेश्याकी विशुद्धि अधिक अधिक होती है। इसलिये सुलेश्यतर: कहा है। अथवा प्रशस्त लेश्या जिसके हो उसको सुलेश्य कहते हैं। प्रकरण वश लेश्याओंका स्वरूप भी ग्रन्थांतरसे यहा लिखा जाता है-

१ लिम्पत्यात्म: करोत्यात्मा पुण्यपापे यया स्वयम् ।
सा लेश्येत्युच्यते सद्भिर्द्विविधा द्रव्यभावत: ॥१॥
प्रवृत्तिर्यौगिकी लेश्या कषायोदयरञ्जिता ।
भावतो द्रव्यतो देहच्छवि: षोढोमयी मता ॥२॥
कृष्णा नीलाऽथ कापोती पीता पद्मा सिता स्मृता ।
लेश्याषड्भि: सदा ताभिर्गृह्यते कर्मजन्मिभि: ॥३॥
योगाविरतिमिथ्यात्व कषायजनितोऽङ्गनाम् ।
संस्कारो भावलेश्याऽस्ति कल्माषास्रवकारणम् ॥४॥
कापोती कथिता तीव्रो नीला तीव्रतरो जिनै: ।
कृष्णा तीव्रतमो लेश्या परिणाम: शरीरिणाम् ॥५॥
पीता निवेदिता मन्द पद्मा मन्दतरो बुधै: ।
शुक्ला मन्दतमस्तासां बुद्धि: षट्स्थानयायिनी ॥६॥

अर्थ:-१ जिससे पाप और पुण्य आत्मासे चिपकते हैं उसे ज्ञानीजन लेंश्या कहते हैं। वह लेश्या द्रव्य और भाव इस प्रकारसे दो प्रकारकी है। २-योगकी प्रवृत्ति जो कषायके उदय सहित होती है उसे भावलेंश्या तथा देहके रंगरूपको द्रव्यलेश्या कहते हैं। द्रव्य और भावलेश्या वे दोनों ही छै प्रकारकी मानी गई हैं। ३-कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ये लेश्याएं हैं, संसारी लोग इन्हीके द्वारा कर्म बांधते हैं। ४-योग, अविरति मिथ्यात्व और कषायजनित जो संस्कार हैं उसे भाव लेश्या कहते हैं, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वही संस्कार, संसारी जीवोंके कर्मोंके आश्रवका कारण है। ५– जीवोंकी कापोतलेश्याको तीव्र नीललेश्याको तीव्रतम परिणाम माना है। ६– पीत लेश्याको मन्द, पद्मलेश्याको मंदतर तथा शुक्ललेश्याको मंदतम माना है और इन छह ही लेश्याओंकी षट्गुणी वृद्धि (और) हानी मानी है।

निर्मूलस्कन्धयोच्छेत्तुं भावाः शाखोपशाखयोः।
उच्चये पतितादाने भावलेश्या फलार्थिनाम् ॥७॥

षट्षट्चतुर्षु विज्ञेयास्तिस्रस्तिस्रः शुभास्त्रिषु।
शुक्ला गुणेषु षट्स्वेका लेश्यानिर्लेश्यमन्तिमम् ॥८॥

रागद्वेषग्रहाविष्टो दुर्ग्रहो दुष्टमानसः।
क्रोधमानादिभिस्तीव्रैर्ग्रस्तोऽनन्तानुबन्धिभिः ॥९॥

निर्दयो निरनुक्रोशो मद्यमांसादिलम्पटः।
सर्वदा कदनासक्तः कृष्णलेश्यान्वितो जनः ॥१०॥

कोपी, मानी, मायी लोभी, रागी द्वेषी मोही शोकी।
हिंस्रः क्रूरश्चण्डश्चौरो मूर्खः स्तब्धः स्पर्द्धाकारी ॥११॥

निद्रालुः कामुको मन्दः कृत्याकृत्याविचारकः।
महामूर्च्छो महारम्भो नीललेश्यो निगद्यते ॥१२॥

शोकभीमत्सरासूयापरनिन्दापरायणः।
प्रशंसति सदाऽऽत्मानं स्तूयमानः प्रहृष्यति ॥१३॥

वृद्धिहानी न जानाति न मूढः स्वपरान्तरम्।
अहङ्कारग्रहग्रस्तः समस्तां कुरुते क्रियाम् ॥१४॥

श्लाघितो नितरां दत्ते रणे मर्त्तुमपीहिते।
परकीययशोध्वंसी युक्तः कापोतलेश्यया ॥१५॥

समदृष्टिरविद्वेषो हिताहितविवेचकः।
वदान्यः सदयो दक्षः पीतलेश्यो महमनाः ॥१६॥

शुचिर्दानरतो भद्रो विनीतात्मा प्रियंवदः।
साधुपूजोद्यतः साधुः पद्मलेश्यो नयक्रियः ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्णिदानोऽनहंकारः पक्षपातोज्झितोऽशठः ।
रागद्वेषपराचीनः शुक्ललेश्यः स्थिराशयः ॥१८॥
तेजः पद्मा तथा शुक्ला लेश्यास्तिस्रः प्रशस्तिकाः ।
संवेगमुत्तमं प्राप्तः क्रमेण प्रतिपद्यते ॥१९॥

अर्थ– फलकी इच्छासे ६ लेश्यावालोंमेसे क्रमसे ऐसे भाव होते हैं कि कृष्णलेश्यावालोंके समूल वृक्षच्छेदनके, नीललेश्यावालेके वृक्षस्कंधके छेदनेके, कापोतलेश्यावलेके शाखा छेदनेके, पीत लेश्यावालेके उपशाखा छेदनेके, पद्मलेश्यावालेके फल छेदनेंके और शुक्ललेश्यावालेके टपके हुए फलोंके ग्रहणके परिणाम होते हैं ।।७।।

पहले ४ गुणस्थानोमें छै २ लेश्याएं संम्भव है, ५ वें ६वें और ७ वें गुणस्थानमें ३ शुभलेश्याएं संम्भव है और ८ वें गुणस्थानसे १३ वें गुणस्थान तक एक शुक्ललेश्या होतीं है तथा १४ वें गुणस्थानमें कोई लेश्या नहीं मानी है ।।८।।

कृष्णलेश्यावाला– रागद्वेषरूप ग्रहसे ग्रस्त रहता है, दुराग्रही होता है, दुष्ट अभिप्रायवाला होता है, अनन्तानुबन्धी क्रोधादिकके ग्रहसे चक्करमें रहता है, निर्दय होता है, निरन्तर अनुक्रोश करनेवाला होता है, मद्य–मांसादिमें लम्पटी होता है, सर्वदा अभक्ष्य भक्षणमें आसक्त होता है ।।९–१०।।

नीललेश्यावाला– क्रोधी, मानी, मायाचारी, लोभी, रागी, द्वेषी, मोही, शोक करनेवाला हिंस्र, क्रूर, अत्यन्त कोप करनेवाला मूर्ख, स्तब्ध, ईर्ष्या करनेवाला, निद्रालु, कामी, सुस्त, कर्तव्य अकर्तव्यका विचार न करनेवाला, महा–आसक्त (बहुपरिग्रही) बहु आरम्भी होता है ।।११।।१२।।

कापोतलेश्यावाला– शोक, भय, मत्सर, असूया और परनिंदामें तत्पर होता है । आत्मप्रशंसामें तत्पर रहता है । कोई तारीफ करे तो बडा खुश होता है, हानि लाभ नहीं समझता है । वह मूढ अपने और परायेका भेद नहीं समझता है, अहंकारभावसे ग्रस्त होकर सब काम करता है, प्रशंसा करनेवालेको सब कुछ दे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डालता है, रणमें मरनेकी इच्छा करता है, परकीय यशके नाशकी इच्छा करता है ॥१३-१४-१५॥

पीतलेश्यावाला- समदृष्टि होता है, किसीसे द्वेष नहीं करता है, अहित और हितका जाननेवाला होता है। उदार, दयालु, चतुर और बडे दिलका होता है ॥१६॥

पद्मलेश्यावाला- पवित्र, दानशील, भद्र, विनयशील, प्रिय-भाषी, साधुजनोंका पूजक स्वतः साधु (सज्जन) होता है ॥१७॥

शुक्ललेश्यावाला- निदान नहीं करता, अहंकार नहीं करता, पक्षपात नहीं करता, शठ (धूर्त) नहीं होना और रागद्वेषसे विमुख रहता है ॥१८॥

पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएं प्रशस्त लेश्याएं हैं, जो उत्तमसंवेगके धारक हैं। वे क्रम क्रमसे इन लेश्याओंको प्राप्त करते हैं ॥१९॥

इसप्रकार व्रती पुरुषके उत्तरोत्तर परिणामोंकी विशुद्धि बढती जाती है लेश्या भी पीत, पद्म और शुक्लरूप शुभतर होती जाती है।

दर्शनिकादि ग्यारह प्रतिमाओंके नाम बताकर उसके गृहस्थ ब्रह्मचारी और भिक्षुक तथा जघन्य, मध्यम और उत्तम इन भेदोंको बताते हैं—

दर्शनिकोऽथ व्रतिकः सामयिकी प्रोषधोपवासी च ।
सचित्तदिवामैथुनविरतौ गृहिणोऽणुयमिषु हीनाः षट् ।२।
अब्रह्मारम्भपरिग्रहविरता वर्णिनस्त्रयो मध्याः ।
अनुमतिविरतोद्दिष्टविरतावुभौ भिक्षुकौ प्रकृष्टौ च ॥३॥

अन्वयार्थ-(दर्शनिकः) दर्शनिक (अथ) इसके बाद (व्रतिकः) व्रतिक (सामयिकी) सामयिकी (प्रोषधोपवासी) प्रोषधोपवासी (च) और (सचित्तदिवामैथुनविरतः) सचित्तविरत तथा दिवामैथुनविरत ये (षट्) छह श्रावक (अणुयमिषु) देश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयमको पालन करने वाले श्रावकों में (हीनाः) जघन्य (गृहिणः) गृहस्थ होते हैं। तथा (अब्रह्मारंभपरिग्रहविरताः) अब्रह्मविरत, आरंभविरत और परिग्रहविरत ये (त्रयः) तीन श्रावक (मध्याः) मध्यम (वर्णिनः) ब्रह्मचारी होते हैं। (च) और (अनुमतिविरतोद्दिष्टविरतौ) अनुमतिविरत तथा उद्दिष्टविरत ये (उभौ) दो श्रावक (प्रकृष्टौ) उत्कृष्ट (भिक्षुकौ) भिक्षुक होते हैं ॥२॥ ॥३॥

भावार्थ–श्रावक के उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार के हैं।

दर्शनप्रतिमासे लेकर षष्ठी प्रतिमापर्यंत जघन्यश्रावक कहलाते हैं। सातवीं, आठवीं तथा नवमी प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी मध्यमश्रावक कहलाते हैं। और अनुमतित्यागविरत, उदिष्ट त्यागविरत ये दोनो श्रावक उत्कृष्ट है। तथा भिक्षावृत्ति से भोजन करनेंवाले होने से इनको भिक्षुक भी कहते हैं।

उक्तं– षडत्र गृहिणो ज्ञेयास्त्रयः स्युर्ब्रह्मचारिणः।
भिक्षुकौ द्वौ तु निर्दिष्टौ ततः स्यात्सर्वतो यतिः ॥१॥
आद्यास्तु षड् जघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनु त्रयः।
शेषौ द्वावुत्तमावुक्तौ जैनेषु जिनशासने ॥२॥

अणुव्रतधारियों में दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत और दिवामैथुनत्याग ये छह प्रतिमाधारी श्रावक जघन्य श्रावक है। सातवीं, आठवीं, नववीं प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी मध्यमश्रावक है। तथा दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाधारीश्रावक उत्कृष्टश्रावक कहलाते हैं और उनको भिक्षुक कहते हैं। इनके आगे की अवस्थावाले यति कहलाते हैं।

नैष्ठिक होकर भी यदि वह अपने पदमें अस्थिर है तो वह पाक्षिक ही कहलाता है, उसीको बताते हैं–

दुर्लेश्याभिभवाज्जातु विषये क्वचिदुत्सुकः।
स्खलन्नपि क्वापि गुणे पाक्षिकः स्यान्न नैष्ठिकः ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(दुर्लेश्याभिभवात्) कृष्ण, नील, कापोत इन तीनों लेश्याओंमे से किसी एक लेश्याके आक्रमणके संस्कारसे (जातु) किसी समय (क्वचित्) पचेन्द्रियों के विषयोंमें से किसी एक (विषये) विषयमें (उत्सुकः) अभिलाषा करनेवाला (क्वापि) किसीभी (गुणे) मांसत्यागादि मूलगुणों में (स्खलन्नपि) स्खलित होनेवाला श्रावक (पाक्षिकः) पाक्षिक (स्यात्) होता है (न नैष्ठिकः) नैष्ठिक श्रावक नहीं हो सकता है ॥४॥

भावार्थ-यदि परिणामों में कदाचित् कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्याओं के संस्कार से नैष्ठिक श्रावक पंचेन्द्रियसम्बन्धी किसी एक विषय में उत्सुक हो जाय अथवा मूलगुणों में किसी मूलगुणमें स्खलित हो जाय वा व्रतों में अतिचार लगाने लग जाय तो वह नैष्ठिकपनेसे च्युत होकर पाक्षिक श्रावक हो जाता है।

इसका सारांश यह है कि जब तक नैष्ठिक वास्तव में अपने व्रतों को निर्दोषरीति से पालता है तब तक ही वह नैष्ठिक है। व्रतोंमें दूषण लगाने के बाद वह नैष्ठिक नहीं रह सकता है।

आगे-दर्शनिकादिप्रतिमा धारियोंकी यदि अपनी अपनी प्रतिमा कें योग्य दृढता न पाई जाय तो वह द्रव्यसे प्रतिमाधारी है, भावप्रतिमाधारी नहीं है यह बताते हैं-

तद्वद्दर्शनिकादिकादिश्च स्थैर्यं स्वे स्वे व्रतेऽव्रजन्।
लभते पूर्वमेवार्थाद्व्यपदेशं न तूत्तरम् ॥५॥

अन्वयार्थ-(तद्वत्) नैष्ठिक के समान (स्वे स्वे) अपने अपने (व्रते) व्रतोंमे (स्थैर्यं) स्थिरता को (अव्रजन्) नहीं प्राप्त होने वाले (दर्शनिकादिः) दर्शनिकादि श्रावक (च) अभी (पूर्वमेव) पूर्वकी ही (व्यपदेशं) संज्ञा को (लभते) प्राप्त होते हैं (तु) किन्तु (उत्तरं न) आगे के व्यपदेश को प्राप्त नहीं होते हैं ॥५॥

भावार्थ- जिसप्रकार नैष्ठिक श्रावक किसी मूल गुणोंमें अतिचार लगानेपर अथवा इन्द्रियोंके विषयोंमें उत्सुक हो जानेपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाक्षिक हो जाता हैं । उसी प्रकार दर्शनिकादि श्रावक भी यदि अपनी प्रतिमाके योग्यव्रतोंमें क्वचित् कदाचित् अतिचार लगाता है उन व्रतोंमें स्थिर नहीं रहता है तो वह परमार्थ उस प्रतिमावाला नहीं है । व्यवहारमें व्रती कहा जाता है अर्थात् अपनी अपनी प्रतिमा में किसी भी दोषके आनेपर वह वास्तवमें उस पदसे च्युत होकर उससे नीचे की प्रतिमावाला हो जाता है चाहे व्यवहार में वह उक्त प्रतिमामें क्यों न गिना जावे ॥५॥

इसी बात का प्रकारान्तर से समर्थन करते हैं—

प्रारब्धो घटमानो निष्पन्नश्चार्हतस्य देशयमः ।
योग इव भवति यस्य त्रिधा स योगीव देशयमी ॥६॥

अन्वयार्थ- (आर्हतस्य) अर्हंत भगवान ही है शरण जिसके ऐसे (यस्य) जिस श्रावकके (योग इव) योग के समान (प्रारब्धः) प्रारब्ध (घटमानः) घटमान (च) और (निष्पन्नः) निष्पन्न (देशयमः) देशसंयम है (सः) और वह (देशयमी) देश संयमी भी (योगीव) योगी के समान (त्रिधा) तीन प्रकारके हैं ॥६॥

भावार्थ- जिस प्रकार नैगम-नयादि की अपेक्षासे योग अर्थात् समाधि प्रारब्ध, घटमान और निष्पन्न के भेदसे तीन प्रकार के हैं तथा उसको धारण करनेवाले योगी भी प्रारब्धयोगी, घटमान, योगी और निष्पन्न योगी के भेदसे तीन प्रकारके हैं। उसी प्रकार देशसंयम और देशसंयमी प्रारब्ध, घटमान तथा निष्पन्न के भेदसे तीन प्रकार के हैं । यहाँ प्रारब्ध का अर्थ उपक्रांत अर्थात् शुरू किया है जिसने ऐसा होता है । घटमान का ग्रहण किये हुये व्रतों का निर्वाह करनेवाला है । और निष्पन्न का अर्थ पर्यन्त को प्राप्त अर्थात् परिपूर्ण है । इसलिये इसका सारांश यह है कि पाक्षिक श्रावक व्रतोंका अभ्यास करता है इसलिये प्रारब्धदेश-संयमी है । नैष्ठिक प्रतिमाओंके व्रतोंका क्रमसे पालन करता है, इसलिये वह घटमान-देशसंयमी कहलाता है । और साधक आत्मलीन होनेसे-निष्पन्न-देशसंयमी है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार स्थलशुद्धि करके इस समय दो श्लोकों के द्वारा दर्शनप्रतिमा का स्वरूप कहते हैं--

पाक्षिकाचारसंस्कार—दृढीकृतविशुद्धदृक् ।
भवाङ्गभोगनिर्विण्णः परमेष्ठिपदैकधीः ॥७॥
निर्मूलयन्मलान्मूलगुणेष्वग्रगुणोत्सुकः ।
न्याय्यां वृत्तिं तनुस्थित्यै तन्वन्दर्शनिको मतः ॥८॥

अन्वयार्थं- (पाक्षिकाचारसंस्कारदृढीकृतविशुद्धदृक्) पाक्षिकाचार के संस्कारसे दृढ हो गया है निर्दोष सम्यग्दर्शन जिसका (भवांगभोगनिर्विण्णः) संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त वा संसार के कारणभूत पंचेन्द्रिय विषयोंसे विरक्त (परमेष्ठिपदैकधीः) पंचपरमेष्ठी के चरणोंमें ही है एक बुद्धि जिसकी ऐसा और (मूल-गुणेषु) मूलगुणोंमें (मलान्) अतिचारोंको (निर्मूलयन्) नष्ट करनेवाला (अग्रगुणोत्सुकः) आगेके प्रतिमादिक गुणों को पालन करने में उत्सुक (न्याय्यां) न्यायपूर्वक (वृत्तिं) आजीविका (तन्वन्) करनेवाला (दर्शनिकः) दर्शनिक श्रावक (मतः) माना गया है ॥७-८॥

भावार्थ- द्वितीयअध्यायमें पाक्षिकश्रावक के आचार का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। उस आचारके संस्कारसे जिसका सम्यग्दर्शन विशुद्ध हो गया है। जो संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है। तथा प्रत्याख्यानावरणी चारित्रमोहनीय कर्म-उदयसे संसार के कारणभूत कामिन्यादि विषयों को भोगते हुये भी मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधि, अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय का अभाव होनेसे उन विषयोंमें जिसकी अत्याशक्ति नहीं हैं। तथा अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्वसाधु इन पंचपरमेष्ठियों के चरणोंमें ही जिसकी अन्तर्दृष्टि है, कुदेव आदि की आराधना करनेवाला नहीं है, तथा आपत्तिसे आकुलित होकर पाक्षिक श्रावक जिनशासनदेवताओंकी आराधना कर सकता है परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनिक श्रावक उसका भी त्याग करता है। मूलगुणोंके अतिचारों को दूर करनेवाला है अर्थात् निरतिचार मूलगुणोंका पालन करने वाला है। क्योंकि निरतिचार मूलगुणों का पालन किये विना व्रतों का परिपूर्ण रूपसे पालन नहीं हो सकता है-कहा भी है--

आदावेते स्फुटमिह गुणा निर्मला धारणीया: ।
पापध्वंसि व्रतमपमलं कुर्वता श्रावकीयम् ॥
कर्तुं शक्यं स्थिरमुरुभरं मन्दिरं गर्त्तपूरं ।
न स्थेयोभिर्दृढतमममृते निर्मितं ग्रावजालैः ॥१॥

अर्थः-जिसप्रकार टिकाऊ और मजबूत पत्थरोंसे अच्छी प्रकार गड्ढेको भरे बिना स्थिर और बडा मन्दिर नहीं बनाया जा सकता है, टिकाऊ मंदिरके निर्माण. के लिये पहले नीवको पक्की करना आवश्यक है, उसीप्रकार पापोंका नाश करने वाले और निरतिचार श्रावकके व्रतोंको धारण करनेवाले पुरुषको व्रतोंको धारण करनेके पहले आठ मूलगुणोंको निरतिचार धारण करना चाहिए। उनको धारण किये बिना व्रतोंका पालन नहीं हो सकता है।

तथा आगेके व्रतोंके अनुष्ठान के लिये उत्सुकता रखने वाला हो, अपने शरीरकी स्थितिके लिये न्यायपूर्वक अपने कुल, वर्ण और व्रतों के अनुकूल आजीविका करने वाला ही श्रावक दर्शन-प्रतिमाधारी होता है। यहां पर तनुस्थित्यै यह शब्द है इससे यह सूचित किया गया है कि दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक विषयभोगों की इच्छासे अन्यायपूर्वक आजीविका नहीं करता है।

उक्तं च-- कृषिं वणिज्यां गोरक्ष्यमुपायैर्गुणिनं नृपम् ।
लोकद्वयाविरुद्धां च धनार्थी संश्रयेत् क्रियाम् ॥२॥

धनका इच्छुक श्रावक उचित उपायोंके द्वारा कृषि, वाणिज्य, गोरक्षण गुणी राजा और इहलोक और परलोक के अविरुद्ध क्रियाको प्राप्त करे ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब-मद्यत्याग, मधुत्याग आदि व्रतोंकी निर्मलता प्रकट करनेके लिये अनेक व्यापारआदिकका निषेध बताते हैं-

मद्यादिविक्रयादीनि नार्यः कुर्यान्न कारयेत् ।
न चानुमन्येत मनोवाक्कायैस्तद्व्रतद्युते ॥९॥

अन्वयार्थः-(आर्यः) दर्शनिक श्रावक (तद्व्रतद्युते) मद्यत्याग आदि मूलगुणोंको निर्मल करनेके लिए-निर्मल रखनेके लिए (मनोवाक्कायैः) मन, वचन और कायसे (मद्यादिविक्रयादीनि) मद्यादिकके खरीदने तथा बेचने वगैरहको (न कुर्यात्) न स्वयं करे (न कारयेत्) न दुसरोंसे करावे (च) और (न अनुमन्येत) उसके मद्यादिकके खरीदने-बेचने आदिमें अनुमति न देवे ।

भावार्थ-दर्शनिकश्रावक मद्यादिविरतिरूप मूलगुणोंको निर्मल करने के लिये मद्य, मांस, मधु, नवनीत तथा आदि शब्दसे आचार, मुरब्बा आदिके बनाने का उपदेश न देवे और मन, वचन, कायसे मद्य, मांस, मधु आदि हिंसाजनक पदार्थोंका व्यापार न करे । और न करावे और न ऐसे व्यापार करनेवालों को मन वचन कायसे अनुमति देवे ॥९॥

जिनके सेवन करने से मद्यादित्यागव्रतकी हानि होती है उसको बताते हैं-

भजन्मद्यादिभाजस्स्त्री-स्तादृशैःसह संसृजन् ।
भुक्त्याऽऽदौ चैति साकीर्ति मद्यादिविरतिक्षतिम् ॥१०॥

अन्वयार्थ- (मद्यादिभाजः) मद्यपानादिसेवन करनेवाली (स्त्रीः) स्त्रीको (भजन्) सेवन करनेवाला (च) और (भुक्त्यादौ) भोजन आदिमें (तादृशैः) मद्यमांससेवन करनेवाले पुरुषोंके (सह) साथ (संसृजन्) संसर्ग करनेवाला (व्रती) व्रतीपुरुष (साकीर्ति) निन्दाके साथ साथ (मद्यादिविरतिक्षतिं) अष्टमूलगुण की हानि को (एति) प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थ- मद्यमांसादि का भक्षण करनेवाली स्त्रियों के संसर्ग करनेसे तथा उनके पात्रमें भोजन करनेसे उनके पास बैठनेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा मद्यपानादिसेवन करनेवालों की संगति करनेसे, उनके साथ भोजनादि करनेसे अपकीर्ति होती है तथा व्रतोंमें दूषण आता है इसलिये दर्शनिक पुरुष इनकी संगति को छोड देवें ।

उक्तं च– मद्यादिस्वादिगेहेषु पानमन्नं च नाचरेत् ।
तदामत्रादिसम्पर्कं न कुर्वीत कदाचन ॥१॥

अर्थ– जिन घरोंमें मद्यादिकके पानका व्यवहार होता है वहां श्रावकको भोजनपान नहीं करना चाहिये, उनके पात्रोंका संपर्क नहीं करना चाहिये ॥१॥

इस प्रकार सामान्यसे अष्टमूलगुणोंके अतिचारों की निवृत्ति कहकर प्रत्येक मूलगुणोंके अतिचारोंको बताते हैं–

मद्यव्रतके अतिचार

सन्धानकं त्यजेत्सर्वं दधि तक्रं द्व्यहोषितम् ।
काञ्जिकं पुष्पितमपि मद्यव्रतमलोऽन्यथा ॥११॥

अन्वयार्थ– दर्शनिक श्रावक (सर्वं) सब प्रकारके (सन्धानकं) आचार मुरब्बादि सन्धान को (द्व्यहोषितम्) जिसमें दो दिन तथा दो रात्रि व्यतीत हो गई हैं ऐसे (दधि) दही और (तक्रं) छांछको (अपि) और (पुष्पितं) जिसपर फूल आ गये हैं ऐसी (काञ्जिकं) कांजिको (त्यजेत्) छोड देवे (अन्यथा) नहीं छोडे तो (मद्यव्रत-मलः) मद्यत्यागव्रतमें अतिचार होता है ॥११॥

भावार्थ– दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक सब प्रकार के आचार मुरब्बा आदि के खाने का त्याग करे । तथा बहुत दिनके बने हुए बडी पापड आदिको भी नहीं खाना चाहिये । कहा भी है––

जायन्तेऽनन्तशो यत्र प्राणिनो रसकायिकैः ।
सन्धानानि न वल्भ्यन्ते तानि सर्वाणि भक्तिकैः ॥१॥

अर्थ– आचारआदिमें रसात्मक देहवाले अनंत संमूर्च्छन जीव पैदा होते हैं, इसलिये श्रावक उन सबको नहीं खाते हैं । तथा दो रात्रिका बांसा दही और मठा नहीं खाना चाहिये । और जिस-पर फफुंदा आ गया है ऐसी दो रात्रिकी बांसी कांजी नहीं खानी चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि इन सबको सेवन करेगा तो मद्यादिव्रतमें अतिचार दोष लगेगा। इसका यह भाव है कि मर्यादाको उल्लंघन करके रसीली चीजोंके खानेसे मद्यव्रतका अतिचार लगता है।

मांसव्रतके अतिचार

चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च हिंग्वसंहृतचर्म च।
सर्वं च भोज्यं व्यापन्नं दोषः स्यादामिषव्रते ॥१२॥

अन्वयार्थ– (चर्मस्थं) चमडेके पात्रमें रखा हुवा (अम्भः) जल (स्नेहः) तैलघृतादि (च) तथा (असंहृतं) चर्मसे आच्छादित (हिंगु) हिंग (च) और (व्यापन्नं) स्वादचलित (सर्वं) सम्पूर्ण (भोज्यं) भोज्यपदार्थोंका उपयोग करनेसे (आमिषव्रते) मांसत्यागव्रतमें (दोषः) अतिचार (स्यात्) होता है ॥१२॥

भावार्थ– चर्मके पात्र में रखे हुये पानी, घृत, तैलआदिका उपयोग करना, चर्मसे ढकी हुई वा चर्ममें रखी हुई हिंग आदि का खाना खदिकादि के चर्म के पात्रमें रखे हुये आमकेलादि फलोंका उपयोग करना तथा और भी लवण आदि कोई भी वस्तु चर्म के पात्रमें रखी हुई हो उसका भक्षण करना, चलनी, सूप आदि जिसमें चमडा लगा हो उसमें रखे हुये आटा, दाला, आदि खाने के काम में लेना तथा जिनका स्वाद बिगड गया हो जो चलितरस हो ऐसे सम्पूर्ण खाने-पीने की वस्तुओंका खाना मांसत्यागव्रतका अतिचार है- इसलिये निर्दोष मांसत्यागव्रतके पालन करने की इच्छा करनेवाला दर्शनप्रतिमाधारीश्रावकको चर्मस्पर्श वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये। अन्यथा मांसव्रतमें अतिचार लगता है ॥१२॥

मधुव्रतके अतिचार की निवृत्तिके लिये कहते हैं–

प्रायः पुष्पाणि नाश्नीयान्मधुव्रतविशुद्धये।
वस्त्यादिष्वपि मध्वादिप्रयोगं नार्हति व्रती ॥१३॥

अन्वयार्थ–(मधुव्रतविशुद्धये) शहदत्यागव्रतको निर्मल करने के लिये (प्रायः) प्राय निम्बादि के (पुष्पाणि) फूलोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नाश्नीयात्) नहीं खावे तथा (व्रती) दर्शनप्रतिमाधारी आदि व्रतीश्रावक (बस्त्यादिषु) बस्तिकर्म आदि में (अपि) भी (मध्वादिप्रयोगं) शहदआदिका प्रयोग (नार्हति) नहीं कर सकता है ॥१३॥

भावार्थ–दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक शहदत्यागव्रतके अतिचार को दूर करने के लिये जिनका संशोधन अशक्य है ऐसे नीम्ब, केतकी आदिके पुष्पों के खानेका त्याग करे। परन्तु प्रायः शब्दसे जिन पुष्पों का संशोधन करना शक्य हो ऐसें भिलावेके मधुक के तथा सूखे हुये नागकेसर आदि के फूलों को खा सकता है तथा व्रतिकश्रावक बस्तिकर्म, पिंडप्रदान, नेत्रांजन और सेंक आदि कार्योंमें भी मद्य, मांस और मधु का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। अब दर्शनिकश्रावक शरीर पर लगाने आदि के कार्यों में मद्य-मांसादि का प्रयोग नहीं कर सकता है तो स्वास्थ्य की वृद्धिके लिये और बाजीकरण आदि औषधीविधिमें इनका प्रयोग कैसे कर सकेगा।

पंचोदुम्बरत्यागव्रतके अतिचार की निवृत्तिके लिये कहते हैं–

सर्वं फलमविज्ञातं वार्ताकादि त्वदारितम्।
तद्वद् भल्लादिसिम्बीश्च खादेन्नोदुम्बरव्रती ॥१४॥

अन्वयार्थ–(उदुम्बरव्रती) उदम्बरफलत्यागी (अविज्ञातं) जिनका नाम ज्ञात नहीं है ऐसे (सर्वं) सम्पूर्ण (फलं) फलों को (तु) और (अविदारितं) बिना विदीर्ण किये (वार्त्ताकादि) बैंगन आदि को (च) और (तद्वत्) उसीके समान बिना विदारी (भल्लादिसिम्बीः) सेम की फली आदि को (न खादेत्) नहीं खावे ॥१४॥

भावार्थ–पंचोदुम्बरफलत्यागी दर्शनिकश्रावकको कोई भी अजान फल नहीं खाना चाहिये। तथा विदीर्ण करके संशोधन किये बिना बैंगन, ककडी, अमरूद, सुपारी आदिको और उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार बिना चिरे हुई सेम की फली, चवलेकी फली आदि नहीं खाना चाहिये। क्योंकि उनमें त्रसजीवों के रहने की संभावना है। इसप्रकार फलों को बिना विदारे खाने से पंचोदुम्बर फल त्यागमें अतिचार लगता है।

रात्रिभोजन त्यागव्रत के अतिचार बताते हैं–

मुहूर्त्तेऽन्त्ये तथाऽऽद्येऽह्न बल्भाऽनस्तमिताशिनः।
गदच्छिदेऽप्याम्रघृताद्युपयोगश्च दुष्यति ॥१५॥

अन्वयार्थ–(अनस्तमिताशिनः) रात्रिभोजनत्यागव्रतके पालन करनेवाले श्रावकको (अह्न) दिनके (अन्त्ये) अन्तिम (तथा) और (आद्ये) प्रथम (मुहूर्ते) मुहूर्तमें (बल्भा) भोजन करना (च) तथा (गदच्छिदेऽपि) रोगको दूर करनेके लिये भी (आम्रघृतादिउपयोगः) आम और घी वगैरहका सेवन करना (दुष्यति) अतीचार होता है।

भावार्थ–रात्रिभोजनके त्यागी दर्शनिकश्रावकको दिनके आदिमुहुर्तमें और अन्त्यमुहूर्तमें भोजन नहीं करना चाहिये। तथा रोगके दूर करनेके लिये भी उक्तकालमें आम, घी, केला आदिका सेवन नहीं करना चाहिये। आदिके और अन्तके मुहूर्तको छोडकर दिनमें ही दवाई आदि खानी चाहिये, नहीं तो रात्रिभोजन त्यागव्रतमें अतिचार लगेगा।

जलगालनव्रत के अतिचारों की निवृत्ति के लिये कहते हैं–

मुहूर्त्तयुग्मोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालनमम्बुनो वा।
अन्यत्र वा गालितशेषितस्य न्यासो निपानेऽस्य न तद्व्रतेऽर्च्यः॥

अन्वयार्थ–(मुहूर्त्तयुग्मोर्ध्वं) दो मुहूर्त्त अर्थात् चार घडी के बादमें (अम्बुनः) जल का (अगालनं) नहीं छानना (वा) अथवा (दुर्वाससा) फटे हुये छिद्रवाले पुराने कपडेसे (गालनं) पानी छानना (वा) अथवा (गालितशेषितस्य) छानने के बाद बचे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुये (अस्य) जलको (अन्यत्र) दूसरे (वा) ही (निपाने) जलाशयमें (न्यासः) क्षेपण करना (तद्व्रते) जलगालनरूपव्रत में (नार्च्यः) योग्य नहीं हैं।

भावार्थ–जलगालनके व्रतवाले श्रावकको दो मुंहूर्तके अनंतर पानीको नहीं छानने, जीर्ण–शीर्णवस्त्रसे पानी छाननें, बिलछानीको अन्य अलाशयमें डालनेसे व्रतमें अतिचार लगते हैं।

पंचुंबरसहियाइं सत्तवि वसणाइ जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ॥

जो पांच उदुंबर और सात व्यसनोंका त्याग करता है तथा जिसकी मति सम्यग्दर्शनसे निर्मल हो गई है वह दर्शनप्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक कहा जाता है। यह वसुनन्दि आचार्यके मतसे दर्शनप्रतिमावालेका लक्षण है।

अब–द्यूत आदि सप्तव्यसनोंके त्यागका उपदेश देनेके लिए इन व्यसनोंके द्वारा इहलोकमें और परलोकमें जो अपाय और अवद्य (पाप) होता है उसीको उनके प्रसिद्ध उदाहरणों द्वारा बताते हैं–

द्यूताद्धर्मतुजो बकस्य पिशितान्मद्याद्यदूनां विप–
श्चारोः कामुकया शिवस्य चुरया यद्ब्रह्मदत्तस्य च।
पापर्द्धया परदारतो दशमुखस्योच्चैरनुश्रूयते–
द्यूतादिव्यसनानि घोरदुरितान्युज्झेत्तदार्यस्त्रिधा॥१७॥

अन्वयार्थ–(यत्) जिस कारणसे कि (द्यूतात्) जुआ खेलनेसे (धर्मतुजः) धर्मपुत्रको, युधिष्ठिरको (पिशितात्) मांस खानेसे (बकस्य) बक नामके राजाको (मद्यात्) मदिरा पीनेसे (यदूनां) यादवोंको–यदुवंशियोंको (कामुकया) वेश्यासेवन करनेसे (चारोः) चारुदत्तनामके सेठको (चुरया) चोरी करनेसे (शिवस्य) शिवभूतिनामक ब्राम्हणको (पापर्द्धया) शिकार खेलनेसे (ब्रह्मदत्तस्य) ब्रह्मदत्तनामक चक्रवर्तीको (च) और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(परदारतः) परस्त्रीके सेवन करनेकी अभिलाषा से (दशमुखस्य) रावणको (उच्चैः विपत्) बडी भारी विपत्ति भोगना पडी थी ऐसा (अनुश्रूयते) पूर्वपरम्परासे सुना जाता है (तत्) तिस कारणसे (आर्यः) दर्शनिकश्रावक (त्रिधा) मन, वचन, काय तथा कृत-कारित-अनुमोदनासे (घोरदुरितानि) दुर्गति सम्बंधी दुःखोंके कारणभूत हिंसादिक पाप होते हैं, जिनसे ऐसे, अर्थात् दुर्गतिके दुःखोंको देनेवाले हिंसादिकपापोंके कारणभूत (द्यूतादिव्यसनानि) जुआ आदि सातों ही व्यसनोंको (उज्झेत्) छोडे-उनका त्याग करे।

यहां जुआसे युधिष्ठिर, मांससे बकराजा, मद्यसे यादवजन, वैश्यासेवनसे चारुदत्त, मृगोंके विनाशरूप शिकारसे ब्रम्हदत्त राजा, चोरीसे शिवभूती ब्राम्हण तथा परस्त्रीदोषसे रावण, इस प्रकार एक एक व्यसनके सेवनसे ये सातों जन महान् कष्टको प्राप्त हुए हैं। फिर भला जो सभी व्यसनोंका सेवन करता है उसका विनाश क्यों न होगा ? अवश्य होगा।

विशेषार्थः-' यत् पुंसः श्रेयसः व्यस्यति तत् व्यसनम् ' अर्थात जो पुरुषोंको कल्याणके मार्गसे भ्रष्ट करके दुःखको प्राप्त कराता है उसे व्यसन कहा जाता हैं। ऐसे व्यसन मुख्यरूपसे सात हैं। इनमेंसे केवल एक-एक व्यसनमें ही तत्पर रहनेसे जिन युधिष्ठिर आदिने महान् कष्ट पाया है उनके नामोंका निर्देश मात्र यहाँ किया गया है।

युधिष्ठिर की कथा

हस्तिनापूरमें धृतराज नामका एक प्रसिद्ध राजा था। उसके अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा नामकी तीन रानियां थी। इनमेंसे अम्बिकासे धृतराष्ट्र, अम्बालिकासे पाण्डु और अम्बासे विदुर उत्पन्न हुए थे। इनमें धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र तथा पाण्डुके युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहदेव नामक पांच पुत्र थे । पाण्डुराजाके स्वर्गस्थ होनेपर कौरवों और पाण्डवोंमें राज्यके निमित्तसे परस्परविवाद होने लगा था । एक समय युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ द्यूतक्रीडा करनेमें उद्यत हुए । वे उसमें समस्त सम्पत्ति हार गये । अन्तमें उन्होंने द्रौपदी आदिको भी दावपर रख दिया और दुर्योधननें इन्हें भी जीत लिया । इससे द्रौपदी आदिको भी अपमानित होना पडा तथा कुन्ती और द्रौपदीके साथ पांचों भाइयोंको बारह वर्षों तक वनवास भी करना पडा । इसके अतिरिक्त उन्हें द्यूतव्यसनके निमित्तसे और भी अनेक दुःख सहने पडे ।

इसलिये आत्मकल्याण इच्छुक मानवको सर्वप्रथम द्यूतव्यसन का त्याग करना चाहिये । क्योंकि यह द्यूतव्यसन सर्व अनर्थोंकी खान है ।

यादव की कथा

किसी समय भगवान् नेमिजिनका समवसरण गिरनार पर्वतपर आया था । उस समय अनेक पुरवासी उनकी वंदना करने और उपदेश श्रवण करनेके लिये गिरनार पर्वतपर पहुंचे थे । धर्मश्रवणके अन्तमें बलदेवने पूछा कि भगवन् ! यह द्वारिकापुरी कुबेरके द्वारा निर्मित की गई है । उसका विनाश कब और किस प्रकारसे होगा ? उत्तरमें भगवान् नेमिजिन बोले कि यह पुरी मद्यके निमित्तसे बारहवर्षमें द्वीपायनकुमारके द्वारा भस्म की जावेगी । यह सुनकर रोहिणीका भाई द्वीपायनकुमार दीक्षित हो गया और इस अवधिको पूर्ण करनेके लिये पूर्व दिशामें जाकर तप करने लगा । तत्पश्चात् वह द्वीपायनकुमार भ्रान्तिवश 'अब बारह वर्ष बीत चुके' ऐसा समझकर फिरसे वापिस आ गया और द्वारिकाके बाहिर पर्वतके निकट ध्यान करने लगा । इधर जिनवचनके अनुसार मद्यको द्वारिकादाहका कारण समझकर कृष्णने प्रजाको मद्य और उसकी सामग्रीको भी दूर फेंक देनेका आदेश दिया था । तदनुसार मद्यपायी जनोंने मद्य और उसके साधनोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कादम्बपर्वतके पास एक गड्ढेमें फेंक दिया था । इसी सबब शंब आदि राजकुमार वनक्रीडाके लिये उधर गये थे । उन लोगोंने प्याससे पीडित होकर पूर्वनिक्षिप्त उस मद्यको पानी समझकर पी लिया । इससे उन्मत्त होकर वे नाचते गाते हुए द्वारिकाकी ओर वापिस आ रहे थे । उन्होंने मार्गमें द्वीपायनमुनिको स्थित देखकर और उन्हें द्वारिकादाहक समझकर उनके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा आरंभ की, जिससे क्रोधवश मरणको प्राप्त होकर वे अग्निकुमार देव हुए । उसने चारों ओरसे द्वारिकापुरीको अग्निसे प्रज्वलित कर दिया । इस दुर्घटनामें कृष्ण और बलदेवको छोडकर अन्य कोई भी प्राणी जीवित न बच सका । यह सब मद्यपानके ही दोषसे हुआ था ।

शिवभूति की कथा

बनारसनगरमें राजा जयसिंह राज्य करता था । रानीका नाम जयावती था । इस राजाके एक शिवभूतिनामक पुरोहित था जो अपनी सत्यवादके कारण पृथिवीपर 'सत्यघोष' इस नामसे प्रसिद्ध हो गया था । उसने अपने यज्ञोपवीतमें एक छुरी बांध रक्खी थी । वह कहा करता था कि यदि मैं कदाचित् असत्य बोलू तो इस छुरीसे अपनी जिव्हा काट डालूंगा । इस विश्वाससे बहुतसे लोग इसके पास सुरक्षार्थ अपना धन रखा करते थे । किसी एक दिन पद्मपुरसे धनपाल नामका सेठ आया और इसके पास अपने पासकी कीमती चार रत्न रखकर व्यापारार्थ देशान्तर चला गया । वह बारह वर्ष विदेशमें रहकर और बहुतसा धन कमाकर वापिस आ रहा था । मार्गमें उसकी नाव डूब गई और सब धन नष्ट हो गया । इस प्रकार वह धनहीन होकर बनारस वापिस पहुंचा । उसने शिवभूतिपुरोहितसे अपने चार रत्न वापिस मांगे । पुरोहितने पागल बतलाकर उसे घरसे बाहर निकलवा दिया । पागल समझकर ही उसकी बात राजा आदि किसीने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं सुनी । एकदिन रानीने उसकी बात सुननेके लिये राजासे आग्रह किया । राजाने उसे पागल बतलाया जिसे सुनकर रानीने कहा कि पागल वह नहीं है, किन्तु तुम ही हो । तत्पश्चात् राजाकी आज्ञानुसार रानीने इसके लिये कुछ उपाय सोचा । उसने पुरोहितके साथ जुवा खेलते हुए उसकी मुद्रिका और छुरीयुक्त यज्ञोपवीत भी जीत लिया, जिसे प्रत्यभिज्ञानार्थ पूरोहितकी स्त्रीके पास भेजकर वे चारों रत्न मंगा लिये । राजाको शिवभूतिके इस व्यवहारसे बडा दुःख हुआ । राजाने उसे गोबरभक्षण, मुष्टिघात अथवा निजद्रव्यसमर्पणमेंसे किसी एक दण्डको सहनेके लिये बाध्य किया । तदनुसार वह गोबरभक्षणके लिये उद्यत हुआ, किन्तु खा नहीं सका । अतएव उसने मुष्टिघात (घूसा मारना) की इच्छा प्रगट की । तदनुसार मक्कों द्वारा मुष्टिघात किये जानेपर वह मर गया और राजाके भाण्डारमें सर्प हुआ । इस प्रकार उसे चोरीव्यसनके वश यह कष्ट सहना पडा ।

चोरी करने के दुःख में प्रसिद्ध शिवभूति की कथा आठवें अध्यायमें लिखी है ।

बकराजा की कथा

पांडव वहाँसे चलकर धीरे धीरे श्रुतपुर नामके एक नगरमें आये और यहाँ उन्होने एक जिनालयमें जाकर भगवानकी प्रतिमाओंका पूजन किया और भक्तिभावसे उनकी स्तुति की । वहाँ कुछ देर ठहरकर वे रातमें रहनेके लिये एक वणिकके घरपर आये । वे बहुत थके हुअे थे, इसलिये शयन करना चाहते थे । वे उसकी कुटीमें ठहर गये । संकटको हरनेवाले बिकट पराक्रमी, पांडव बेठे हुअे वहाँके विचित्र जिनालयोंकी बाबत कुछ चर्चा कर रहे थे कि इतनेमें संध्या होतें ही, उस घरवाले वैश्यकी भार्या महान् शोकसे पीडित होकर अत्यन्त दीनताके साथ विलाप करने लगी । तब दयालु कुन्तीनें उसके पास जाकर उसे आश्वासन दिया, धीरज बँधाया और आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाली खेदखिन्न उस वैश्यभार्यासे प्रेमके साथ पूछा कि तुम इतना भारी शोक क्यों कर रही हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैश्यभार्याने कहा कि सुनिये, मैं अपने दुःखपूर्ण रोनेका कारण बताती हूँ।

देवी, इसी श्रुतपुरमें श्रीमान् बकनामक राजा था। वह बगुले की नाँई ही धर्म-हीन था; परन्तु प्रजाके ऊपर शासन कर-नेमें अच्छा प्रवीण था। उसे कारण-वश मांस खानेकी चाट पड गई और वह इतनी जबरदस्त कि वह हमेशा मांसके संबंधमें ही अपनी सारी बुद्धि खर्च किया करता था। उसका रसोइया उसे सदा पशुका मांस पका-पका कर देता था और वही नीच, निर्दय उसके लिये पशुओंका घात करता था। लेकिन एक दिन कहींसे भी जब उसे पशुका मांस न मिला तब वह दुष्ट मांसकी खोजमें नगरसे बाहिर निकला और स्मसानभूमिके किसी गढमेंसे एक मरे हुओ बच्चेको खोद कर ले आया। एवं उस पापीने उस बच्चेको मसाला आदि डाल कर बडी चतुराईसे पकाया और उसका मांस बक राजाको खिला दिया। राजाको वह मांस बहुत ही अच्छा स्वाद मालूम पडा। अतः उस मांसलोलुपीने बडे भारी आग्रहके साथ रसोइयेसे पूछा कि पाकवर, तुम ऐसा अच्छा सुस्वाद मांस कहाँसे लाये। मैंनें तो कभी ऐसा उत्तम मांस खाया ही नहीं। यह सुन रसोइया अभयदान माँग कर डरता डरता बोला कि प्रभो, माफ कीजिये, यह मांस मनुष्यका है। आज कहींसे भी जब मुझे पशुका मांस न मिल सका तब मैंने इसे ही चतुराईसे पकाकर आपको खिलाया है।

यह सुनकर राजा बोला कि प्रिय, यह मांस मुझे बहुत ही अच्छा मालूम हुआ है और इससे मुझे तृप्ति हुई है। इसलिये अबसे तुम मुझे मनुष्यका ही मांस खिलाया करो। राजाकी इतनी सम्मति पाकर वह रसोइया और भी निडर हो गया। और अब वह हमेशा मनुष्यके मांसकी खोजमें गली-कूचोंमें जाकर नगरके बच्चोंको मिठाई आदि बाँटने लगा। मिठाई लेकर सब बच्चोंके चले जानेपर जो बच्चा पीछे रह जाता उसे पकडकर वह उसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गला घोंट देता और उसका मांस राजाको खिला देता। ऐसा दुष्कृत्य वह रोज रोज करने लगा।

उधर धीरे धीरे जब नगरके बच्चे प्रतिदिन कम होने लगे तब सारे नगरमें खलबली मच गई और लोगोंने छुप-छुप कर बच्चोंके घातकको देखना-खोजना आरंभ कर दिया। इसके थोडे ही दिनोंमें वह रसोइया पकडा गया। लोगोंके पूछने पर उसने साफ साफ कह दिया कि मेरा तनिकसा भी इस दुष्कृत्यमें अपराध नहीं है। किन्तु मुझसे राजाने जैसा करवाया वैसा ही मैंने किया। इस पर सब लोगोंकी सम्मतिसे राजा बक राजगद्दी परसे उतार दिया गया। इसके बाद बक वनमें रहकर मनुष्योंको मारकर खाने लगा। धीरे धीरे जब उसने नगरके बहुतसे मनुष्योंको मार खाया तब नगरके लोगोंने मिलकर विचार कर हय निश्चय किया कि इसके लिये बारी बारीसे हररोज एक मनुष्य खानेको देना चाहिये। बस, इसी नियमके अनुसार अपनी-अपनी बारीपर सब लोगोंने उसे घर घरसे एक एक मनुष्य प्रतिदिन खानेको दिया और धीरे धीरे आज बारह वर्ष ऐसे ही बीत गये पापयोगसे आज मेरे प्यारे बच्चेकी बारी है और इसीसे दुःखी होकर मैं रो रही हूँ। देवी, मेरे रोनेका दूसरा और कोई निमित्त नहीं है। नगरके लोग आज ही एक गाडीमें मिठाई आदि भर कर और उसके बीचमें मेरे प्यारे पुत्रको बैठा कर उस अधर्मीको भेंटमें देंगे तथा साथमें एक भैंसा भी देंगे। माता, मेरा यह एक ही तो प्यारा आँखोंका तारा सर्वस्व पुत्र है और यही आज कालके गालमें पहुँचाया जा रहा है। इसके बिना हाय! अब मैं क्या करूँगी और कैसे अपना जीवन बिताऊँगी। पुत्रके वियोगका चित्र मेरे आँखोंके सामने खिच रहा है और वह मेरी छाती चीरे डालता है-हृदयमें वज्रके जैसी चोट कर रहा है। बताइए अब मैं कैसे और किसके भरोसे धीरज धरूँ। मुझे तो कोई उपाय ही नहीं सूझ पडता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सुनकर कुन्तीका हृदय दयासे भीग गया। वह मिष्ट-भाषिणी उसके लिये सुखका उपाय सोचती हुई उसे शान्ति देकर बोली कि वणिग्वधू, तुम डरो मत। सबेरा होने दो। तुम्हारे पुत्रकी बारी आनेपर मैं उसकी रक्षाका उपाय करूँगी। सुनो, मैं उस भूतकी बलिके लिये अपना अतीव रूप-शाली पुत्र भेज दूंगी। तुम्हारा पुत्र आनंद-चैनसे अपने मंदिर ही में रहेगा। तुम्हें और उसे कोई चिंता न करनी चाहिये। उस वैश्य-भार्याको इस तरह समझा कर कुन्ती वहाँ गई जहाँ कि भीम बैठा हुआ था। उसे आती देखकर भीम उठ खडा हुआ और उसने उसके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया। इसके बाद कुछ देर बैठ कर सबके मनको अपनी ओर झुकानेके लिये कुन्तीने भीमको उस दुष्ट बकराजाका सारा हाल कह सुनाया। वह बोली कि भीम! जरा शान्तचित्तसे मेरी बात पर ध्यान दो। इस बेचारी वैश्यपत्नीका एक ही पुत्र है और उसीको लोग आज नरभक्षी बकराक्षसके लिये बलि देंगे। पुत्रके बिना यह बेचारी जन्म-भरके लिये दुःखिनी हो जायगी, इसे अपना जीवन भी बोझ-मय हो जायगा। देखो, आज रातमें तुम लोग इसके घर बडे आरामके साथ ठहरे हो। इसके सिवा इसने तुम्हारा खूब अतिथि-सत्कार किया है; वस्त्र, जल आदि द्वारा तुम्हारी पाहुनगत की है। अस्तु, जब कि तुम लोग परोपकारी हो और तुम्हारा यही सच्चा व्रत है तब तुम्हें इन बातोंकी तो परवाह नहीं है कि कोई तुम्हारी भलाई करें या न करें। तब तुम परोपकार दृष्टिसे ही ऐसा काम करो जिससे कि इसका प्यारा पुत्र जीता रह जाय-इसकी आँखोंके सामने बना रहे। और बेटा भीम, आगेके लिये कोई ऐसा उपाय कर दो जिससे यह मनुष्य जो कि हमेशा मनुष्योंको खाया करता है और महान् निर्दय है, नरभक्षणसे रुक जाय। आगे ऐसा दुष्कृत्य न करे, जिससे लोगोंमें बडी भारी खलबली मच रही है। कुन्तीके वचनोंको सुनकर कर्म-वीर भीमने कहा कि माता, भला आप यह क्या कहती हो, मैं तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ। तुम्हारी आज्ञा पालनेके लिये आज ही उस मनुष्यराक्षसके पास जानेको तैयार हूँ। इस प्रकार अति प्रवीण और न्यायके जानकार माता-पुत्र इस प्रकार परोपकारकी बातें कर ही रहे कि इतनेमें उस वैश्य-पुत्रको ले जानेके लिये कोतवालने आकर उससे कहा कि वैश्यवर, उस मनुष्य-राक्षसकी बलिके लिये गाडीमें सवार होकर अतिशीघ्र मेरे साथ चलो; देर न करो! और जरा देरके जीवनके लिये देर करनेसे भी क्या होगा।

कोतवालकी बात सुनकर उससे भीमने कहा कि आप जाइए, मै आकर उस नर-पिशाचको अपनी बलि दे दूंगा। भीमके वचनोंको सुन कर यमके दूत जैसा कोतवाल हर्षित होता हुआ चला गया। इसी समय पूर्व दिशामें सूरजका उदय हो आया। जान पडता था कि मानों उसके दुश्चरित्रको देखनेके लिये ही आया है। और है भी सच कि दयालु पुरुषलोगोंके दुश्चरित्रको देख-कर जहाँतक बन सकता है-उसे सुधारनेकी कोशिश करते हैं।

इसके बाद एक गाडी सजाई गई और उसमें कढाईपर भोजन रक्खा गया। उसके ऊपर भीम बडी निर्भयता-पूर्वक सवार होकर चला। वह ऐसा जान पडता था मानों उस नर-पिशाचको जलानेके लिये आग ही जा रही है। वह थोडी ही देरमें उस यमके जैसे पापी बकके पास पहुँच गया। उसे सामने आया देख कर वह दुष्ट उसके ऊपर झपटा और क्रोधसे गर्जना कर उसने सभी दिशाओंको शब्दमय बना दिया। उसे इसतरह क्रोधित देखकर भीमने कहा कि दैत्येन्द्र, आओ मैं आज तुम्हारे भुजदण्डोंका पराक्रम देखकर ही तुम्हें अपनी बलि दूंगा; वैसे नहीं। खेद है कि इतने कालतक तुमने इन गरीब लोगोंको व्यर्थ ही सताया। सच है कि जो दीनता दिखाते हैं, दाँतोंमें तिनकोंको दबाकर रहते हैं वे संसारमें मारे जाते हैं। तात्पर्य यह कि गरीबोंपर ही सबका वश चलता है, बलवानों पर नहीं। क्योंकि बलीका सामना करनेके लिये कुछ ताकतकी जरूरत होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बाद क्रोधसे उद्धत हुअे वे दोनों ही खम ठोककर भिड गये; और आकाश तथा पृथ्वीको उन्होंने गुंजा दिया। वे कभी मस्तकके द्वारा और कभी पाँवोंके द्वारा एक–दूसरे पर प्रहार करते थे; तथा हाथोंकी कुहनियोंसे एक दूसरेका सिर फोडते थे। इस समय वे दोनों ही दयासे कोसों दूर थे–कोई भी किसीपर तीव्र प्रहार करनेमें कसर न रखता था। दोनों ही निर्दय–भावसे एक दूसरे पर टूटते थे। यमके पुत्र जैसे उन दोनोंमें बडा भारी भीषण युद्ध हुआ। आखिर निर्भय भीमने उस पापी, नरभक्षक, दुष्ट और क्रोधसे काँप रहे नर–पिशाचको तृणके जैसा निःसत्व कर उसके सिरमें अपने भुज–दण्डका एक ऐसा भीषण प्रहार किया कि वह बिल्कुल ही हतप्रभ हो गया। इसके बाद ही वह फिर न उठ खडा हो इसके लिये क्रोधमें आकर बली भीमने उसकी पीठमें एक ऐसी जोरकी लात मारी कि जिससे वह अधम जमीनपर लौट गया। भीमने उसका तब भी पिण्ड न छोडा और वह उसके दोनों पाँव पकड, उसे आकाशमें चारो ओर घुमाने लगा। जान पडता था कि उसे जमीन पर पछाडना ही चाहता है, तब वह नर–पिशाच बडा डरा और भीमके हा हा खाने लगा।

अंतमें आयुष्यपूर्ण होने के बाद बक राजा मरा। तैंतीस सागरकी आयुवाला सातने नरकमें नारकी हुवा। वहाँपर घोर दुःसह दुःखों को सहन किया।

ब्रह्मदत्तकी कथा

उज्जयिनी नगरीमें एम ब्रह्मदत्त नामका राजा था। वह मृगया (शिकार) व्यसनमें अत्यंत आसक्त था। किसी समय वह मृगयाके लिये वनमें गया था। उसने वहां एक शिलातलपर ध्यानावस्थित मुनिको देखा। इससे उसका मृगया कार्य निष्फल हो गया। वह दूसरे दिन भी उक्त वनमें मृगयाके निमित्त गया, किन्तु मुनिके प्रभावसे फिर भी उसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिली। इस प्रकार वह कितने ही दिन वहां गया, किन्तु उसे इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्यमें सफलता नहीं मिल सकी। इससे उसे मुनिके ऊपर अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। किसी एक दिन जब मुनि आहारके लिये नगरमें गये हुये थे, तब ब्रह्मदत्तने अवसर पाकर उस शिलाको अग्निसे प्रज्वलित कर दिया। इसी बीच मुनिराज भी वहां वापिस आ गये और शीघ्रतासे उसी जलती हुयी शिलाके ऊपर बैठ गये। उन्होंने ध्यान को नहीं छोडा, इससे उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुयी। वे अंतकृत्केवली होकर मुक्तिको प्राप्त हुये। इधर ब्रह्मदत्त राजा मृगयाव्यसन एवं मुनिप्रति द्वेषके कारण सातवें नरकमें नारकी होकर उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् बीच बीचमें क्रूर, हिंसक, तिर्यंच होकर क्रमसे छठे और पांचवें आदि शेष नरकोंमें भी गया। मृगया व्यसनमें आसक्त होनेसे प्राणियोंको ऐसे ही भयानक कष्ट सहने पडते हैं।

इस ग्रन्थमें अन्तिम चक्रवर्ति ब्रह्मदत्त नाम लिखा है। परन्तु अन्तिम चक्रवर्ती का वर्णन हमें ऐसा नहीं मिला।

रावण की कथा

किसी समय अयोध्या नगरीमें राजा दशरथ राज्य करते थे। उनके ये चार पत्नियां थी–कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा। इनके यथाक्रमसे ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे–रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न। एक दिन राजा दशरथको अपना बाल सफेद दिखायी दिया। इससे उन्हें बडा वैराग्य हुआ। उन्होंने रामचंद्रको राज्य देकर जिनदीक्षा ग्रहण करनेका निश्चय किया। पिताके साथ भरतके भी दीक्षित हो जानेका विचार ज्ञातकर उसकी माता कैकेयी बहुत दुःखी हुई। उसने इसका एक उपाय सोचकर राजा दशरथसे पूर्वमें दिया गया वर मांगा। राजाकी स्वीकृती पाकर उसने भरतके लिये राज्य देनेकी इच्छा प्रकट की। राजा विचारमें पड गये। उन्हें खेदखिन्न देखकर रामचंद्रने मंत्रियोंसे इसका कारण पूछा और उनसे उपर्युक्त समाचार ज्ञातकर स्वयं ही भरतके लिये प्रसन्नतापूर्वक राज्यतिलक कर दिया। तत्पश्चात् 'मेरे यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहनेपर भरतकी प्रतिष्ठा न रह सकेगी ' इस विचारसे वे सीता और लक्ष्मणके साथ अयोध्यासे बाहिर चले गये । इस प्रकार जाते हुए वे दण्डकवनके मध्यमें पहुंचकर वहां ठहर गये । यहां वनकी शोभा देखते हुए लक्ष्मण इधर-उधर घूम रहे थे । उन्हे एक बांसोंके समूहमें लटकता हुआ एक खड्ग (चन्द्रहास) दिखायी दिया । उन्होंने लपककर उसे हाथमें ले लिया और परीक्षणार्थं उसी बांससमूहमें चला दिया । इससे बांससमूहके साथ उसके भीतर बैठे हुए शम्बूककुमारका शिर कटकर अलग हो गया । यह शम्बूककुमार ही वहां बैठकर उसे बारह वर्षोंसे सिद्ध कर रहा था । इस घटनाके कुछ ही समयके पश्चात् खरदूषणकी पत्नी और शम्बूककी माता सूर्पणखा वहां आ पहुंची । पुत्रकी इस दुरवस्थाको देखकर वह विलाप करती हुई इधर उधर शत्रुकी खोज करने लगी । वह कुछ ही दूर रामचन्द्र और लक्ष्मणको देखकर उनके रूपपर मोहित गयी । उसने इसके लिये दोनोंसे प्रार्थना की । किन्तु जब दोनोंमेंसे किसीने भी उसे स्वीकार न किया तब वह अपने शरीरको विकृतकर खरदूषणके पास पहुंची और उसे युद्धके लिये उत्तेजित किया । खरदूषण भी अपने साले रावणको इसकी सूचना कराकर युद्धके लिये चल पडा । सेनासहित खरदूषणको अब देखकर लक्ष्मण भी युद्धके चल दिया । वह जाते समय रामचन्द्रसे यह कहता गया कि यदि मैं विपत्तिग्रस्त होकर सिंहनाद करूं तभी आप मेरी सहायताके लिये आना, अन्यथा यहीं स्थित रहकर सीताकी रक्षा करना । इसी बीच पुष्पकविमानमें आरूढ होकर रावण भी खरदूषणकी सहायतार्थं लंकासे इधर आ रहा था । वह यहां सीताको बैठी देखकर उसके रूपपर मोहित हो गया और उसके हरणका उपाय सोचने लगा । उसने विद्याविशेषसे ज्ञात करके कुछ दूरसे सिंहनाद किया । इससे रामचन्द्र लक्ष्मणको आपत्तिग्रस्त समझकर उसकी सहायतार्थं चले गये । इस प्रकार रावण अवसर पाकर सीताको हरकर ले गया । इधर लक्ष्मण खरदूषणको मारकर युद्धमें विजय प्राप्त कर चुका था । वह अकस्मात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचन्द्रको इधर आते देखकर बहुत चिन्त्रित हुआ। उसने तुरन्त ही रामचन्द्रको वापिस जानेके लिये कहा। उन्हें वापिस पहुंचनेपर वहां सीता दिखायी नहीं दी। इससे ये बहुत व्याकुल हुए। थोड़े देरके पश्चात् लक्ष्मण भी वहां आ पहुंचा। उस समय उनका परिचय सुग्रीव आदि विद्याधरोंसे हुआ। जिस किसी प्रकारसे हनुमान लंका जा पहुंचा। उसने वहां रावणके उद्यानमें स्थित सीताको अत्यन्त व्याकुल देखकर सात्वना दी और शीघ्र ही वापिस आकर रामचन्द्रको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। अन्तमें युद्धकी तैयारी करके रामचन्द्र सेनासहित लंका जा पहुंचे। उन्होंने सीताको वापिस देनेके लिये रावणको बहुत समझाया, किन्तु वह सीताको वापिस करनेके लिये तैयार नहीं हुआ। उसे इस प्रकार परस्त्रीमें आसक्त देखकर स्वयं उसका भाई विभीषण भी उससे रुष्ट होकर रामचन्द्रकी सेवामें आ मिला। अन्तमें दोनोंमें घमासान युद्ध हुआ, जिसमें रावणके अनेक कुटुम्बी जन और स्वयं वह भी मारा गया। परस्त्रीमोहसे रावणकी बुद्धी नष्ट हो गयी थी। इसीलिये उसे दूसरे हितैषी जनोंके प्रिय वचन भी अप्रिय ही प्रतीत हुए और अन्तमें उसे इस प्रकारका दुःख सहना पड़ा।

चारुदत्त सेठकी कथा

देवों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंको नमस्कार कर चारुदत्त सेठकी कथा लिखी जाती है।

जिस समयकी यह कथा है, उस समय चम्पापुरीका राजा शूरसेन बड़ा बुद्धिमान और प्रजाहितैषी था। उसके नीतिमय शासनकी सारी प्रजा एक स्वरसे प्रशंसा करती थी। वहीं भानुदत्त सेठ अपनी स्त्री सुभद्राके साथ रहता था। सुभद्राके कोई सन्तान न थी। सन्तान प्राप्ति की इच्छासे वह अनेक देवी-देवताओंकी पूजा किया करती और मानताएं माना करती थी। फिर भी वह सफल-मनोरथ न हुई। कुदेवोंकी पूजा-स्तुतिसे कभी कोई कार्य सिद्ध हुआ है क्या? एकदिन वह भगवानका दर्शन करने मन्दिरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयी वहां चारण मुनिको देखा। उन्हें नमस्कारकर उसने पूछा, प्रभो! क्या कभी मेरा मनोरथ पूर्ण होगा? अन्तर्यामी मुनिराज बोले-बेटी! तू जिस इच्छासे कुदेवोंकी पूजा मानता करती है, वह ठीक नहीं हैं। इससे लाभके बदले हानि हो सकती है। तू विश्वास कर कि संसारमें अपने पुण्य-पापके सिवा और कोई देवी-देवता किसीको कुछ देने लेनेमें समर्थ नहीं होते। अब तक पापका उदय था, इसलिये तेरी इच्छा पूरी न हो सकी। अब तेरे पुण्य का उदय होगा जिससे तुझे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। इसलिये तुम पवित्र जिनधर्मपर विश्वास करो। मुनिराजकी बातोंको सुनकर सुभद्रा बडी खुश हुई। उन्हें नमस्कारकर वह घर चली आई और तबसे कुदेवोंकी पूजा मानता छोड जिन भग-वानके पवित्र धर्मपर विश्वास कर दान, पूजा, व्रत आदि करने लगी। इस तरह कुछ दिन सुखके साथ बीतनेपर मुनिराजके कहे अनुसार उसके पुत्र हुआ। जिसका नाम चारुदत्त रखा गया। उम्रकी बढतीके साथ उसमें सद्गुण भी बढते गये। पुण्यवानोंको अच्छी बातें अपने-आप प्राप्त होती हैं।

चारुदत्त बचपनसे ही मन लगाकर पढता-लिखता था। पच्चीस वर्षकी उम्रतक किसी प्रकारकी विषय-वासना उसे छू तक न गई। वह दिन-रात पुस्तकोंका अभ्यास विचार, मनन, चिन्तनमें मग्न रहता, इससे बचपनसे ही उसमें विरक्ति-सी आने लगी थी। वह नहीं चाहता था कि ब्याह कर संसारके माया-जालमें फंसे। पर माता पिताके बहुत आग्रह करनेपर उसे अपने मामाकी गुणवती पुत्री मित्रवतीके साथ ब्याह करना पडा।

ब्याह हो गया सही, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया। उसने कभी अपनी स्त्रीका मुंह तक नहीं देखा। पुत्रकी यह दशा देख उसकी मांको बडी चिन्ता हुई। चारुदत्तकी विषयोंकी ओर प्रवृत्ति हो इसके लिये उसे व्यभिचारी लोगोंके संगतिमें डाल दिया। इससे उसकी इच्छा सफल हुई। अब चारुदत्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयों में इतना फंस गया कि वह वेश्या-प्रेमी बन गया। उसे लगभग बारह वर्ष वेश्याके यहाँ रहते बीत गये। इस अरसेमें उसने अपने घर का सब धन खो दिया। चम्पापुरमें चारुदत्त एक अच्छे धनिकोंकी गिनतीमें था, पर अब वह एक साधारण स्थितिका आदमी रह गया। रुपयेकी कमी हो जानेसे उसकी स्त्रीका गहना अब उसके खर्चके काममें आने लगा। वेश्याकी कुटनी मांने जब देखा कि चारुदत्त दरिद्र हो गया है, तो अपनी लड़कीसे कहा कि बेटी! अब तुम्हें इसका साथ जल्द छोड देना चाहिए। क्योंकि दरिद्र मनुष्य अपने कामका नहीं। वसन्तसेनाकी माँने युक्तिसे चारुदत्तको घरसे निकाल बाहर किया। वेश्याओंका प्रेम धनके साथ रहता है, मनष्यके साथ नहीं। अतएव जहां धन नहीं, वहां वेश्याका प्रेम नहीं। अब चारुदत्तको जान पडा कि इस प्रकार विषय-भोगमें आसक्त रहनेका भयंकर दुष्परिणाम होता है। वह अब वहाँ एक पलके लिये भी न ठहरा और अपनी स्त्रीका आभूषण साथ ले विदेश चलता बना। उस अवस्थामें अपना काला मुंह वह अपनी मांको दिखला ही कैसे सकता था?

वहांसे चलकर चारुदत्त उलूख देशके उशिरावर्त शहरमें पहुंचा। चम्पापुरसे चलते समय इसका मामा भी साथ ही गया था। उशिरावर्तमें कपास खरीदकर ये ताम्रलिप्तापुरीकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें इन्होंने विश्रामके लिये एक बनमें डेरा डाल दिया। इतनेमें एक आंधी आई, उससे परस्परकी रगडसे बांसोंमें आग लग गई। आगकी चिनगारियां उडकर कपासपर जा पडी। देखते-देखते सब कपास भस्मीभूत हो गया। इस हानिसे चारुदत्त बहुत दु:खी हुआ। वहांसे अपने मामा से सलाह कर वह समुद्रदत्त सेठके जहाज द्वारा पवन द्वीपमें पहुंचा, यहां इसके भाग्यका सितारा चमका और इसने खूब धन कमाया। अब इसे माताके दर्शनके लिये देश लौट जानेकी इच्छा हुई। इसने चलनेकी तैयारी कर जहाजमें अपना माल असबाब लाद दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाज अनुकूल समय देखकर रवाना हुआ। जैसे-जैसे वह अपनी जन्मभूमिकी आगे बढता जाता था वैसे-वैसे उसकी प्रसन्नता अधिक होती जाती थी। पर अपना चाहा तो कुछ होता नहीं है, जबतक दैवको वह मंजूर न हो। यही कारण था कि चारुदत्तकी इच्छा पूरी न हो पायी। क्योंकि अचानक किसी अनिष्टकर चीलसे टकराकर जहाज फट गया। चारुदत्तका सब माल-असवाब समुद्रके विशाल उदरमें विलीन हो गया। वह फिर पहिले सरीखा दरिद्र हो गया, पर दुःख उठाते-उठाते उसकी सहन-शक्ति अधिक हो गयी थी। एकके बाद एक आनेवाले दुःखोने उसे निराशाके गहरे गढेसे निकाल पूर्ण आशावादी और कर्तव्यशील बना दिया था। इसलिये इस बार भी उसे अपनी हानिका कुछ विशष दुःख नहो हुआ, वह फिर धन कमानेके लिये विदेश चल पडा। इस बार फिर उसने बहुत धन कमाया। घर लौटते समय फिर उसकी पहिले जैसी दशा हुई। इतनेंमें ही उसके बुरे कर्मोंका अन्त न हुआ। ऐसी भयंकर घटनाओंका उसे सात बार सामना करना पडा। कष्टपर कष्ट आनेपर भी वह अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं हुआ। आखिरी बार जहाजके फट जानेसे वह स्वयं भी समुद्रमें जा गिरा, पर भाग्यसें एक तख्ताके सहारे वह किनारे लग गया। यहां से चलकर वह राजगृह पहुंचा, जहां विष्णुमित्र नामक संन्यासीसे उसकी भेट हुई। संन्यासीनें उससे अपना काम निकलता देख, पहले बडी सज्जनताका बर्ताव किया। चारुदत्तने भी उसे भोला आदमी समझ अपनी सब हालत कह सुनाई। विष्णुमित्र भी हां में हां मिलाते हुए बोला अच्छा हुआ; जो तुमने अपना सब हाल कह सुनाया धनके लिये अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पडेगा। आओ, मेरे साथ चलो। यहांसे कुछ दूर आगे एक जंगल है, वहां पर्वतकी तल-हटीमें रसायनसे भरा एक कूआ है, जिससे सोना बनाया जाता है। उससे थोडा-सा रस निकालकर तुम ले आओ तो तुम्हारी सारी दरिद्रता दूर हो जाएगी। चारुदत्त संन्यासीके पीछे-पीछे चला। दुर्जनों द्वारा धनके लोभी इसी प्रकार ठगे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संन्यासीके साथ चारुदत्त एक पर्वतके पास पहुंचा। रस लानेकी सब बातें समझाकर सन्यासीने चारुदत्तके हाथमें एक तूम्बी दी। सींकेपर बैठाकर उसे कुएंमें उतार दिया। चारुदत्त तूम्बीमें रस भर रहा था कि इतनेमें एक मनुष्यने उसे ऐसा करनेसे रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्यने कहा कि डरो मत— तब वह कुछ सरस होकर बोला तुम कौन हो और इस कुएंमें कैसे आये? कुंएमें बैठा हुआ मनुष्य बोला—मैं उज्जैनीका रहनेवाला हूं और मेरा नाम धनदत्त है। सिंहलद्वीपसे लौटते समय तूफानमें पडकर मेरा जहाज फट गया, जिससे बहुत धनजनकी हानि हुई। शुभकर्मसे एक पटिया मेरे हाथ लग गया, जिसके सहारे मैं बच गया। समुद्रसे निकलकर मैं अपने शहरकी ओर जा रहा था कि रास्तेमें मुझे यही संन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहां लाया। कुएंमेसे रस भरकर देनेपर भी इस पापीने पहले मेरे हाथसे तुम्बी ले ली और फिर रस्सी काटकर भाग गया। मैं आकर कुंएमें गिरा। भाग्यसे चोट तो अधिक न लगी, पर दो-तीन दिन इसमें पडे रहनेसे अब मेरे प्राण घुट रहे हैं। उसकी हालत सुनकर चारुदत्तको बडी दया आई, पर वह स्वयं भी उसी परिस्थितिमें आ फंसा था, इसलिए उसकी कुछ सहायता न कर सका। चारुदत्तने उससे पूछा-तो मैं इसे रस भरकर न दूं? धनदत्तने कहा—ऐसा मत करो, रस तो भरकर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपरसे पत्थर वगैरह मारकर बडा कष्ट पहुंचावेगा। तब चारुदत्तनें एक बार तुम्बी रससे भरकर सींकेमें रख दी। संन्यासीने उसे निकाल लिया। चारुदत्तको निकालनेके लिये उसने फिर सींका नीचे डाला। अबकी बार स्वयं सींकेपर न बैठ चारुदत्तने कुछ वजनदार पत्थरोंको उसमें रख दिया। जब सींका आधी दूर आया, तब सन्यासी उसे काटकर चलता बना। चारुदत्तकी जान बच गयी। उसने धनदत्तका बडा उपकार माना और कहा—मित्र! आज तुमनें मुझे जीवन दान दिया है, जिसके लिये मैं जन्मजन्मातर तुम्हारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋणी रहूंगा। उस कुएंसे निकलनेंका उपाय पूछनेपर धनदत्त बोला–यहां रस पीने प्रतिदिन एक गोह आया करती है, जो आज चली गई, कल फिर आवेगी सो तुम पूंछ पकडकर निकल जाना। इतना कहते–कहते उसका गला रुक गया और प्राण संकटमें पड गये। अपने उपकारीकी कुछ भी सेवा करनेमें असमर्थ समझ उसने धनदत्तको उत्तम गतिमें जानेके लिये पवित्र जिनधर्मका उपदेश देकर पंचनमस्कारमन्त्र सुनाया और साथ ही संन्यास भी लिवा दिया।

सबेरा होते ही सदा की तरह उस दिन भी गोह रस पीनें आई। रस पीकर जाते समय चारुदत्तने उसकी पूंछ पकड ली और उसके सहारे बाहर निकल आया। तमाम जंगल पार करनेपर रास्तेमें उसकी रुद्रदत्तसे भेट हो गयी। वहांसे वे दोनो अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये रत्नद्वीप गये। रत्नद्वीप जानेके लिये पहले एक पर्वतपर जाना पडता था। पर्वतपर जानेका रास्ता बहुत संकीर्ण था। इसलिए वहां जानेके लिये इन्होनें दो बकरे खरीदे और उनपर सवार होकर सुकुशल पर्वतपर पहुंच गये। वहां जाकर चारुदत्तके साथीने विचारा कि इन दोनों बकरोंको मारकर दो चमडेकी थैलियाँ बनानी चाहिए और उलटकर उनके भीतर घुस दोनोंका मुंह सी देना चाहिए। मांसके लोभसे यहां सदा भैरुण्ड पक्षी आया करते हैं। वे अपनेको उठाकर उस पार रत्नद्वीप ले जायेंगे। वहां थैलियोंको फाडकर हम बाहर हो जायेंगे। मनुष्य को देखकर पक्षी उड जायेगा और सीधी तरह अपना सब काम बन जायेगा।

चारुदत्तने रुद्रदत्तकी पाप–भरी बात सुनकर उसे बहुत फटकारा और कहां कि ऐसे पापद्वारा प्राप्त किये धनकी मुझे कुछ जरुरत नहीं। रातको ये दोनों सो गये। चारुदत्तको गाढी नींदमें सोया देख पापी रुद्रदत्त चुपकेसे उठा और जहां बकरे बंधे थे वहां गया। उसने पहले अपने बकरेको मारा और फिर चारुदत्तके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बकरेपर हाथ बढाया। इतनेमें अचानक चारुदत्तकी नींद खुल गयी। रुद्रदत्तको अपने पास सोया न पाकर उसका सिर ठनका। जाकर देखा कि पापी रुद्रदत्त बकरेका गला काट रहा है। मारे क्रोधके चारुदत्त लाल पीला हो गया। उसने रुद्रदत्तके हाथसे छुरा छीनकर उसे खूब खरी-खोटी सुनायी। सच है, निर्दयी पुरुष कौन-सा पाप नहीं करते।

उस अधमरे बकरेको टकर-टकर देखते देखकर चारुदत्तका हृदय दयासे भर आया। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी बूंदे टपकने लगी बकरा प्रायः काटा जा चुका था। इसलिये उसके बचानेका प्रयत्न करनेसे वह लाचार था। उसकी शान्तिके साथ मृत्यु और सुगतिके लिये चारुदत्तने उसे पंच नमस्कार मन्त्र सुनाकर संन्यास दे दिया। जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवानके उपदेशका रहस्य समझते हैं उनका जीवन परोपकारके लिये ही होता है।

चारुदत्तकी इच्छा थी कि मैं पीछे लौट जाऊं पर इसके लिये उसके पास कोई साधन न था। इसलिये लाचार हो उसे भी रुद्रदत्तकी तरह उस थैलीकी शरण लेनी पडी। उडते हुए भेरुण्ड पक्षी दो मांस-पिण्ड देख वहां आये और उन दोनोंको चोचोंसे उठा चलता बने। रास्तेमें उनमें परस्परमें लडाई होने लगी, जिसके फलस्वरूप रुद्रदत्त जिस थैली में था, वह चोंचसे छूट पडी। रुद्रदत्त समुद्रमें गिरकर मर गया। मरकर भी अपने पापके फलको भोगनेके लिये उसे नरकगामी होना पडा। चारुदत्तकी थैलीको जो पक्षी लिये था, उसने उसे रत्नद्वीपके एक सुन्दर पर्वतपर ले जाकर रख दिया। चोंच मारते ही चारुदत्त देख पडा और पक्षी डरकर भाग गया। जैसे ही चारुदत्त थैलीको बाहर निकला की धूपमें ध्यान लगाये एक महात्मा देख पडे। उन्हें धूपमें मेरुकी तरह निश्चल देखकर चारुदत्तकी उनपर बहुत श्रद्धा हुई। मुनिराजका ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्तसे कहा-क्यों चारुदत्त, अच्छी तरह तो हो न? मुनि द्वारा अपना नाम सुनकर चारुदत्तको बडी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुशी हुई कि इस अपरिचित देशमें भी उसे कोई पहचानता है, साथ ही उसे इस बातपर आश्चर्य भी हुआ। वह मुनिराजसे बोला-प्रभो! मालूम होता है कि आपने कहीं मुझे देखा है, बतलाइये तो आपको मैं कहां मिला था? मुनि बोले-सुनो, मैं अमितगति विद्याधर हूं। एक दिन मैं चम्पापुरीके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ सैर करने गया था। उसी समय धूमसिंह नामक विद्याधर वहां आया और मेरी स्त्रीको देख उसकी नियत खराब हो गयी। अपनी विद्याके बलसे उस कामान्ध पापीने मुझे एक वृक्षमें कील दिया और मेरी प्यारीको विमानपर बैठाकर आकाश मार्गसे लेकर चल दिया। भाग्यवश उस समय तुम वहां आ गये। तुम्हें दयावान समझ मैंने वहीं रखी, एक औषधिको पीसकर मेरे शरीरपर लेप करनेको कहा। तुमने वैसा ही किया, जिससे दुष्ट विद्याओंका प्रभाव नष्ट हुआ और मैं छूट गया। जिस प्रकार गुरूपदेशसे जीव माया मिथ्याकी कीलसे छूट जाता है। मैं उसी समय कैलासपर्वतपर गया और धूमसिंहको उचित दण्ड दे अपनी स्त्रीको छुडा लाया। ' उस समय तुमको मैंने मनमानी वस्तु मांगनेको कहा, पर तुमने कुछ भी लेनेसे इन्कार किया। वह भी ठीक ही था, क्योंकि सज्जन पुरुष दूसरोंकी भलाई किसी प्रकारकी आशासे नहीं करते हैं। इसके बाद मैं अपने नगरको गया और कुछ वर्षों तक राजश्रीका खूब आनन्द लूटा। बादको आत्म-कल्याणकी इच्छासे पुत्रोंको राज्य सौंप मैंने दीक्षा ले ली, जो मोक्षको देनेवाली है। चारण ऋद्धिके प्रभावसे मैं यहां आकर तपस्या कर रहा हूं। यही कारण है कि मैं तुम्हें पहचानता हूं। चारुदत्त इन बातोंको सुनकर बडा प्रसन्न हुआ। वह वहां बैठा ही था कि मुनिराजके दो पुत्र उनकी पूजा करने वहां आये। मुनिराजने चारुदत्तसे भी उनका परिचय कराया। परस्पर मिलकर इन सबको बडी प्रसन्नता हुई।

इसी समय एक खूबसूरत युवक वहां आया। युवकने आते ही चारुदत्तको प्रणाम किया। चारुदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोकते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए कहा कि पहले तुम्हें गुरुदेवको नमस्कार करना उचित था। आगत युवकने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं पहिले बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा आधा गला काट चुका था, उस समय भाग्यसे आकर आपने मुझे नमस्कार मन्त्र सुनाया और साथ ही संन्यास दे दिया। मैं शान्तिसे मरकर मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म-स्वर्गमें देव हुआ। इसलिये मेरे गुरु तो आप ही हैं-आपने ही मुझे सन्मार्ग बतलाया है। सौधर्मदेव धर्मप्रेमसे प्रेरित हो दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्तको भेंटकर और उसे नमस्कारकर स्वर्ग चला गया। परोपकारियोंका इस प्रकार सन्मान होना ही चाहिये।

इधर विद्याधर सिंहयश और वराहग्रीव मुनिराजको नमस्कार-कर चारुदत्तसे बोले-चलिये, हम आपको आपकी जन्मभूमि चम्पा-पुरीमें पहुंचा आवें। चारुदत्त कृतज्ञता प्रकाश करते हुये जानेको सहमत हो गया। उन्होंने चारुदत्तको माल-असबाब सहित बहुत जल्द विमान द्वारा चम्पापुरी पहुंचा दिया। इसके बाद वे उसे नमस्कारकर अपने स्थानको लौट गये। पुण्यबलसे संसारमें सब कुछ हो सकता है, अतएव पुण्यप्राप्तिके लिये जिनभगवानके आदेशानुसार दान,पूजा,व्रत,शीलरूप, चार पवित्र धर्मका सदा पालन करते रहना चाहिये।

अचानक अपने प्रियपुत्रके आ जानेसे चारुदत्तकी माताको बडी खुशी हुई। उन्होंने बार-बार उसे छातीसे लगाकर अपने हृदयको ठण्डा किया। मित्रवतीके भी आनन्दका ठिकाना न रहा। वह आज अपने प्रियतमसे मिलकर जिस सुखका अनुभव कर रही थी, उसकी समानतामें स्वर्गका दिव्यसुख भी तुच्छ है। बातकी बातमें चारुदत्तके आनेके समाचार सारी नगरमें फैल गये, जिससे सबको आनन्द हुआ।

चारुदत्त किसी समय बडा धनी था। अपने कुकर्मोंसे वह राहका भिखारी बन गया। जब उसे अपनी दशाका ज्ञान हुआ तो फिर कर्मशील बनकर उसने कठिनाइयोंका सामना किया। कई बार असफल होनेपर भी वह निराश नहीं हुआ। अपने उद्योगसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके भाग्यका सितारा फिर चमक उठा और पूर्ण तेज प्रकाश करने लगा। कई वर्षोंतक खूब सुख भोगकर अपनी जगह अपने "सुन्दर" नामके पुत्रको नियुक्त कर वह उदासीन हो गया। दीक्षा ले उसने तप आरम्भ किया और अन्तमें संन्याससहित मर-कर सर्वार्थ सिद्धिमें गया। वहांपर तेत्तीस सागर जैसी दीर्घ आयुको प्राप्त कर सदा तत्वचर्चा, धर्मचर्चा आदि आत्महितके कार्योंमें अपना समय व्यतीत करते हुए वह देव परम सुखका अनुभव करता है। उस सुखकी कोई सीमा नहीं है, संसारमें यह सर्वोत्तम सुख है। जिनभगवानके उपदेशधर्मकी इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर आदि भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं,तुम भी उसी धर्मका आश्रय लो,जिससे उस परम-पदको प्राप्त कर सको।

अब- व्यसन शब्दकी निरुक्ति बताकर द्यूतादि महापाप आत्माको श्रेयसे परावृत्त करनेवाले हैं-इसलिये इन व्यसनोंके त्याग का और इन्हींके समान श्रेयोमार्गसे च्युत करानेवाले उपव्यसनोंके त्याग का उपदेश देते हैं--

जाग्रत्तीव्रकषायकर्कशमनस्कारार्पितैर्दुष्कृतै-
श्चैतन्यं तिरयत्तमस्तरदपि द्यूतादि यत्श्रेयसः ।
पुंसो व्यस्यति तद्विदो व्यसनमित्याख्यान्त्यतस्तद्व्रतः
कुर्वीतापि रसादिसिद्धिपरतां तत्सोदरीं दूरगाम् ॥१८॥

अन्वयार्थ- (यत्) जिस कारणसे (जाग्रत्तीव्रकषायकर्कशम-नस्कारार्पितैः) निरन्तर उदयमें आनेवाले तीव्र क्रोधादिकके निमि-त्तसे दृढकर्मोंके दृढबंधको करनेवाला जो मन का उपयोगरूप आत्माके परिणामोंके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले (दुष्कृतैः) पापोंके द्वारा (तमः) मिथ्यात्व कर्मको (तरत् अपि) उल्लंघन करनेवाले भी (चैतन्यं) चैतन्यको (तिरयत्) आच्छादित करनेवाले (द्यूतादि) जुआ आदि सातो हीं व्यसन (पुंसः) पुरुषोंको (श्रेयसः) कल्याण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्गसे (व्यस्यति) भ्रष्ट कर देते हैं। (अतः) इसलिये (तद्व्रतः) जुआ आदि सप्तव्यसनोंका त्याग करनेवाला मानव (तत्सोदरीं) जुआ आदि व्यसनोंकी बहिन (रसादिसिद्धिपरतां) रसादिकोंके सिद्धि करने की तत्परता को (अपि) भी (दूरगां) दूर रहनेवाली (कुर्वीत) करे ॥१८॥

भावार्थ–जो आदत मिथ्यात्वपर विजय प्राप्त करनेवाले सम्यग्दर्शनयुक्त चैतन्यआत्मा को भी श्रेयोमार्ग से भ्रष्ट कर देती है, उस आदत को ज्ञानी जन व्यसन कहते हैं। अतः व्यसनका त्याग करनेवाला दर्शनिक, इन सात व्यसनोंकी सहोदरी–बहिन रसादिसिद्धिपरताको भी छोडे। क्योंकि इन कामोमें भी मनकी वृत्ति व्यसनके समान श्रेयोमार्गसे परावृत्त करनेवाली होती है। इसलिए सातों ही व्यसनोंको तथा इसी प्रकारके जो उपव्यसन है जैसे कि ऐसा रस करनेसे सोना बनाया जा सकता और बडा धनीपना प्राप्त हो सकता है, यदि ऐसा अंजन बनाया जावे कि जिससे पृथ्वीमें गढा हुआ धन आंखोंसे दिखने लगे तो बडा काम हो जावेगा, ऐसे अंजन तैयार करनेकी तत्परताको तथा ऐसी खडाउं मन्त्रादिकसे सिद्ध की जावे कि जिनके योगसे चाहे जहां अदृश्य होकर जाना हो सकता है इत्यादि कामोंके लिए रातदिन लगे रहना और सब धर्म–कर्म छोड देना यह सब उपव्यसन हैं, इनको भी छोडना चाहिये।

द्यूतव्यसन के अतिचार का वर्णन–

दोषो होढाद्यपि मनो–विनोदार्थं पणोज्झितः।
हर्षामर्षोदयाङ्गत्वात् कषायो ह्यंहसेऽञ्जसा ॥१९॥

अन्वयार्थ–(पणोज्झितः) जुआ खेलने का त्याग करने वालेके (हर्षामर्षोदयाङ्गत्वात्) हर्षामर्ष के उदय का कारण होने से (मनोविनोदार्थं) मनोरंजन करनेके लिये (होढाद्यपि) परस्पर स्पर्धासे दौडने आदि की होढ लगाना भी (दोषः) दोष है। (हि)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि (अंजसा) वास्तविकमें (कषायः) कषाय ही (अंहसे) पापका कारण है।

भावार्थ–जुआ खेलने का त्यागी दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक अपने मन को रंजायमान करनेके लिये हर्ष–विषाद का कारण-भूतस्पर्धासे दौडना होढ लगाना आदि भी नहीं करे। क्योंकि होढ लगानेमें कषाय उत्पन्न होती हैं। और कषाय ही पाप का कारण है। इसलिये होढ लगाना जुआत्यागका अतिचार है।

वेश्याव्यसनव्रतके अतिचार–

त्यजेत्तौर्यत्रिकासक्तिं वृथाटयां षिड्गसङ्गतिम्।
नित्यं पण्याङ्गनात्यागी तद्गेहगमनादि च ॥२०॥

अन्वयार्थ– (पण्याङ्गनात्यागी) वेश्याव्यसनत्यागव्रती (तौर्यत्रिकासक्तिं) गीत, नृत्य, वादित्र आदि की आसक्ति (वृथा) बिनाप्रयोजन (आटयां) घूमना (षिड्गसंगतिं) बिटपुरुषोंकी संगति (च) तथा (तद्गेहगमनादि) वेश्याओं के घर आना–जाना (नित्यं) हमेशाके लिये (त्यजेत्) छोड देवें।

भावार्थ–जिसने वेश्याव्यसन का सर्वथा त्याग कर दिया है ऐसे दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक रागोत्पादक गीत गाना, नृत्य करना, वादित्र बजाना आदि की आसक्ति को छोड देवे। वीतराग प्रभु के चैत्यालय आदिमें धर्म के गीतादि सुनना गाना निषेध नहीं हैं। तथा व्यर्थ में घूमना, विट्–पुरुषोंकी संगति करना, वेश्याके घर आन जाना, उनका सत्कार करना, उनसे संभाषण करना आदि भी सर्वथा छोड देवे। क्योंकि यह सब कार्य करने से वेश्यात्यागव्रतमें अतिचार लगता है। इस व्रतमें यत्न करना आवश्यक है ऐसा उपदेश दिया है।

चोरीव्यसन–त्याग के अतिचार–

दायादाज्जीवतो राज–वर्चसाद्गृह्णतो धनम्।
दायं वाऽपह्नुवानस्य क्वाचौर्यव्यसनं शुचि ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(राजवर्चसात्) राजा के प्रताप से (जीवतः) जीवित (दायादात्) भाई आदिसे (धनं) धन को (गृह्णतः) गृहण करनेवाले के (वा) अथवा (दायं) कुलकी साधारणसम्पत्तिको (अपह्नुवानस्य) भाई वगैरहसे छिपानेवालेके (अचौर्यव्यसनं) अचौर्यव्रत (शुचि) निरतिचार (क्व) कैसें हो सकता है? ॥२१॥

भावार्थ-राजा का भय दिखाकर अथवा कानूनी दाव-पेंच आदिसे जीवित भाई आदिके ग्राम सुवर्णादि धन को गृहण करनेवालेके तथा दूसरे के हकका लोप करनेवाले के चोरीव्यसन का त्यागव्रत निर्मल कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। तथा अपने हकीकी कुटुम्बी मर जावे तो अपने हकके अनुसार उसकी जायदाद लेने में कोई दोष नहीं हैं।

आखेटव्यसनत्यागव्रतके अतिचार-

वस्त्रनाणकपुस्तादि-न्यस्तजीवच्छिदादिकम्।
न कुर्यात्त्यक्तपापर्द्धि-स्तद्धि लोकेऽपि गर्हितम् ॥२२॥

अन्वयार्थ-(त्यक्तपापर्द्धिः) त्याग कर दिया है शिकार खेलनें का जिसने ऐसा दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक (वस्त्रनाणकपुस्तादि न्यस्तजीवच्छिदादिकम्) वस्त्र, सिक्का, काष्ठ और पाषाण आदि शिल्पमें निकाले गये जीवोंके छेदनादिकको (न कुर्यात्) नहीं करे (हि) क्योंकि (तत्) वस्त्रादिक में निकाले गये जीवों का छेदन-भेदन (लोके) लोकमें (गर्हितम्) निन्दित है।

भावार्थ-जिसने शिकारव्यसन का त्याग किया है ऐसा दर्शन-प्रतिमाधारीश्रावक वस्त्र में पंच रंग आदि से बनाये हुये, सिक्कों में उकरे हुये लेप और चित्रोंमें अंकित, काष्ठ, हस्तीदंत आदिके बने हुये अर्थात् चित्रलेप आदिमें यह वह है इस प्रकार नामोच्चारणपूर्वक स्थापित हाथी, घोडा आदि प्राणियों के आकार को छेदन-खण्डन आदि नहीं करे, क्योंकि ऐसा करना व्यावहारिक लोगों की दृष्टिमें भी निंदनीय माना जाता है और शास्त्र-विरुद्ध भी है ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्त्रीव्यसनत्यागव्रतके अतिचार को कहते हैं–

कन्यादूषणगान्धर्व–विवाहादि विवर्जयेत् ।
परस्त्रीव्यसनत्यागव्रतशुद्धिविधित्सया ॥२३॥

अन्वयार्थ–परदार त्यागव्रतवाला श्रावक (परस्त्रीत्यागव्रत–शुद्धिविधित्सया) परस्त्रीव्यसन (के) त्यागरूपव्रतकी शुद्धि करने की इच्छासे (कन्यादूषणगान्धर्वविवाहादि) कन्या के लिये दूषण लगाना और गान्धर्व विवाहादि करना (विवर्जयेत्) छोड देवे ॥२३॥

भावार्थ–माता, पिता तथा बन्धुजनों की सम्मतिके बिना ही वर और वधू जो परस्परके अनुराग से सम्बन्ध करते हैं उसको गान्धर्वविवाह कहते हैं। कन्या का हरण करके विवाह किया जाता है उसको हरणविवाह कहते हैं।

परस्त्रीव्यसनत्यागीश्रावक परस्त्री त्यागव्रतकी विशुद्धि के लिये, अपने विवाह के लिये कन्याके दोषों को उद्भावन करता गान्धर्व विवाह, हरणविवाह, आदि न करे। ऐसा करना परस्त्रीव्यसन–त्यागव्रत के अतिचार है।

मूलगुणों के अतिचारों को वर्णन करतेसमय मद्य, मांस व्यसनत्यागव्रतके अतिचारों को वर्णन कर दिया है–इसलिये यहाँपर उनका पुनः वर्णन न करके इससमय दोनों लोक के विरुद्ध होने से जिस वस्तु का स्वयं त्याग किया है उस बात का प्रयोग व्रतों की विशुद्धिके लिये, दूसरों के लिये भी नहीं करे इस बात को बताते हैं–

व्रत्यते यदिहामुत्रा–प्यपायावद्यकृत्स्वयम् ।
तत्परेऽपि प्रयोक्तव्यं नैव तद्व्रतशुद्धये ॥२४॥

अन्वयार्थ– (इह) इस लोकमें (अपि) और (अमुत्र) पर–लोकमें भी (अपायावद्यकृत्) अकल्याण तथा निन्दाको करनेवाली (यत्) जिस वस्तुको (स्वयं) स्वतः (व्रत्यते) संकल्पपूर्वक छोड देता है (तत्) वह वस्तु (तद्व्रतशुद्धये) उन उन व्रतों की विशुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिये (परे) दूसरेमें (अपि) भी (नैव प्रयोक्तव्यं) प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥२४॥

भावार्थ- परलोक में स्वर्गादि अभ्युदय तथा मोक्षादिका नाश करनेवाली इस लोकमें निन्दा का कारणभूत जिस मांस आदि वस्तुका स्वयं संकल्प पूर्वक त्याग किया है, उस वस्तुका प्रयोग दूसरे के लिये भी नहीं करना चाहिये । क्योंकि दूसरे के लिये भी उस वस्तुका प्रयोग करनेसे व्रत मलिन होते हैं ॥२४॥

इसप्रकार पहिली दर्शनप्रतिमाधारकश्रावकको अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिये आगे के श्लोकोंके द्वारा शिक्षा देते हैं—

अनारंभवधं मुञ्चेच्चरेन्नारम्भमुद्धुरम् ।
स्वाचाराप्रतिलोम्येन लोकाचारं प्रमाणयेत् ॥२५॥

अन्वयार्थ- दर्शनिक श्रावक (अनारंभवधं) विनाप्रयोजन की हिंसाको (मुञ्चेत्) छोड देवे । (उद्धुरं) अपने द्वारा ही निर्वाह करनेयोग्य सारा भार जिसका ऐसे (आरंभं) कृष्यादि आरंभको (न) नहीं (चरेत्) करे । (स्वाचाराप्रतिलोम्येन) अपने द्वारा ग्रहण किये हुये व्रतोंको घात नहीं करते हुये (लोकाचारं) लौकिक आचार को (प्रमाणयेत्) प्रमाण करे ॥२५॥

भावार्थ- दर्शनिकश्रावक तप, संयमादिकके साधनभूत तथा शरीर की स्थितिमें कारणभूत कृषि आदि क्रियामें होनेवाली हिंसा को छोडकर अन्य संपूर्ण हिंसा को छोड देवे । इससे यह सिद्ध होता है कि दर्शनप्रतिमाधारी संकल्पीहिंसा का त्यागकर पंचाणुव्रत को धारण करे । इससे (दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः) स्वामी समन्तभद्रके इस दर्शनप्रतिमाके लक्षण का भी संग्रह हो जाता है । और स्वयं कृषि आदि क्रियाओंको न करे, नौकरोंसे करा सकता है-क्योंकि स्वयं करनेसे जो आकुलता होती है, वैसी आकुलता करानेसे नहीं होती है । तथा स्वामिसेवा, बेचना, लेनदेन व्यापारादिक लौकिकक्रियाओंको भी अपने व्रतोंके अनुसार करे, जिससे अपने व्रतोंमें दूषण न लगें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मके विषयमें धर्मपत्निको सबसे अधिक व्युत्पन्न करना चाहिये यह बताते हैं--

व्युत्पादयेत्तरां धर्मे पत्नीं प्रेम परं नयन् ।
सा हि मुग्धा विरुद्धा वा धर्माद्भ्रंशयते तराम् ।२६।

अन्वयार्थ- दर्शनप्रतिमाधारीश्रावक (परं) उत्कृष्ट (प्रेम) प्रेम को (नयन्) करता हुवा (पत्नीं) अपनी धर्मपत्नी को (धर्मे) धर्म में (व्युत्पादयेत्तरां) अपने कुटुम्बकी अपेक्षा अतिशयरूपसे व्युत्पन्न करे । (हि) क्योंकि (मुग्धा) मूर्ख (वा) अथवा (विरुद्धा) विरुद्ध (सा) वह स्त्री (धर्मात्) धर्मसे पुरुषको (भ्रंशयये तरां) परिवारके लोगोंकी अपेक्षा अधिक भ्रष्ट कर देती है ।

भावार्थ- दर्शनिकश्रावक अपनेमें तथा धर्मके विषयोंमें अपने कुटुम्बीजनोंमें वा अपनी स्त्रीमें उत्कृष्ट प्रीतिको पैदा कराता हुवा धर्मके विषय में कुटुम्बीजनोंको व्युत्पन्न करे ही, परन्तु अपनी धर्मपत्नीको अर्थादि पुरुषार्थ को अपेक्षासे भी धार्मिककार्योंमें अधिक व्युत्पन्न करे । क्योंकि धर्म के विषय में मूढ तथा अपने पतिसे वा धर्मसे द्वेष करनेवाली अज्ञान स्त्री कुटुम्बजनकी अपेक्षा पुरुषको अतिशीघ्र धर्मसे भ्रष्ट कर देती है ।

इसका सारांश यह है कि जिसके परिवारके मानव तथा स्त्री धर्म से द्वेष करनेवाले हैं वा धर्मके मर्मको जाननेवाले नहीं हैं वे धर्मात्माओंको धर्मसे पराङ्मुख करनेका प्रयत्न करते हैं । इसलिये कुटुम्बियोंको तथा विशेषकर अपनी धर्मपत्नी को प्रेमपूर्वक धर्मके मार्गमें व्युत्पन्न करे ।।२६।।

पूर्व पद्य में आये हुये 'प्रेम परं नयन्' इस वाक्य का समर्थन करते हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रीणां पत्युरुपेक्षैव परं वैरस्य कारणम् ।
तन्नोपेक्षेत जातु स्त्रीं वाञ्छल्लोकद्वये हितम् ॥२७॥

अन्वयार्थं-(स्त्रीणां) स्त्रियोंको (पत्युरुपेक्षैव) पतिकी उपेक्षा ही-अनादर हीं (परं) उत्कृष्ट (वैरस्य) वैरका (कारणं) कारण ("भवति") होता है (तत्) इसलिए (लोकद्वये) इस लोक और परलोकमें (हितं) सुखको (वाञ्छन्) चाहनेवाला पुरुष (जातु) कभी भी (स्त्रीं) स्त्रीको (नोपेक्षेत) उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखे अर्थात् कभी भी उसका अनादर नहीं करे।

भावार्थः-इस लोक और परलोकमें हित चाहनेवाला पुरुष अपनी स्त्रीके साथ धर्मादिक सभी कार्योंमें प्रेमका व्यवहार करे, कभी भी उसकी उपेक्षा न करे, क्योंकि स्त्रीके प्रति पतिका केवल उपेक्षाभाव ही स्त्रियोंके वैरका कारण होता है। स्त्रियां जितनी पतिके उपेक्षाभावसे अर्थात् अप्रेमव्यवहारसे असंतुष्ट रहती हैं उतनी पतिकी कुरूपता और निर्धनता आदिसे नहीं।

धर्मादिक को चाहनेवाली कुलीन स्त्रियों को भी अपने पतिके अनुकूल ही अपना वर्ताव करना चाहिये, यह प्रसंगानुसार उपदेश देते हैं-

नित्यं भर्तृमनीभूय वर्तितव्यं कुलस्त्रिया ।
धर्मश्रीशर्मकीर्त्येककेतनं हि पतिव्रताः ॥२८॥

अन्वयार्थ-(कुलस्त्रिया) कुलीन स्त्रियों को (नित्यं) हमेशा (भर्तृमनीभूय) पति के चित्तके अनुकूल ही (वर्तितव्यं) आचरण करना चाहिये (हि) क्योंकि (पतिव्रताः) पतिव्रता स्त्रियां ही (धर्मश्रीशर्मकीर्त्येककेतनं) धर्म, लक्ष्मी, सुख और कीर्तिका एक स्थान है।

भावार्थ-कुलीन स्त्रियों को हमेशा मन, वचन और कायसे अपने पतिके अनुकूल रहकर ही सब व्यवहार करना चाहिये। अर्थात् पति के विचार, संभाषण और चेष्टाओं के अनुकूल ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना बर्त्ताव करना चाहिये। क्योंकि पतिसेवा, व्रत, प्रतिज्ञा अथवा पतिसेवा को शुभकर्मप्रवृत्ति समझनेवाली स्त्री, धर्म, विभूति, आनन्द और यश की उत्कृष्ट सदन वा पताका मानी गई है।

धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ के इच्छुकश्रावक को अपनी धर्मपत्नीमें भी अत्यासक्ति का निषेध करते हैं–

भजेद्देहमनस्तापशमान्तं स्त्रियमन्नवत् ।
क्षीयन्ते खलु धर्मार्थकायास्तदतिसेवया ॥२९॥

अन्वयार्थ–दर्शनिकश्रावक (अन्नवत्) अन्न के समान (देहमनस्तापशमान्तं) शारीरिक तथा मानसिक सन्ताप की शांति पर्यंत ही (स्त्रियं) स्त्री को (भजेत्) सेवन करे। (खलु) क्योंकि (तदतिसेवया) अन्नके समान स्त्री को भी अधिक सेवन करने से (धर्मार्थकायाः) धर्म, अर्थ और शरीर (क्षीयंते) नष्ट होते हैं ॥२९॥

भावार्थ–जैसे मनुष्यको अन्न उतना ही खाना चाहिये जितने से शारीरिक तथा मानसिक संताप दूर हो जावे–अत्यासक्त होकर भूख से अधिक अन्नभक्षण करनेसे अजीर्ण, ज्वरादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिस से धर्म और शरीर दोनों की ही हानि होती है, उसी प्रकार स्वदार को भी मानसिक तथा शारीरिक संताप को दूर करने के लिये सेवन करना चाहिये। अत्यासक्ति से सेवन नहीं करना चाहिये। अपनी स्त्री को भी अत्यासक्तिसे सेवन करनेसे अन्न के अधिकसेवन करनेके समान धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं। और शरीर भी शक्तिहीन होता है ॥२९॥

अब–अपनी धर्मपत्नीमें पुत्र उत्पन्न करनेके लिए और उसको अपने कुलाचारमें व्युत्पन्न करनेका उपदेश देते हैं–

प्रयतेत सधर्मिण्यामुत्पादयितुमात्मजम् ।
व्युत्पादयितुमाचारे स्ववत्त्रातुमथापथात् ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थः–('दर्शनिकः') दर्शनिकश्रावक (सधर्मिण्यां) अपनी धर्मपत्नीमें (आत्मजं) पुत्रको (उत्पादयितुं) उत्पन्न करनेके लिये (प्रयतेत) प्रयत्न करे (अथ) और (स्ववत्) अपने समान ही ('आत्मजं') पुत्रको (आचारे) कुललोकसम्बन्धी व्यवहारमें (व्युत्पादयितुं) व्युत्पन्न करनेके लिये तथा (अपथात्) खोटे मार्गसे दुराचारसे (त्रातुं) रक्षा करनेके लिये ('प्रयतेत') प्रयत्न करे।

भावार्थ– क्षेत्रज आदिके भेदोंसे पुत्र ग्यारह प्रकारके होते हैं। उन सबके कथनका यहां प्रयोजन नहीं है। किन्तु कुल धर्मकी रक्षाके लिये आत्मज–औरस पुत्रसे ही प्रयोजन है। अतः अपनी सधर्मिणीमें औरसपुत्रके उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए और उसे कुलाचार तथा लोक व्यवहारमें अपने समान विज्ञ बनानेका तथा दुराचारसे बचानेका प्रयत्न करना चाहिए।

अष्टांगहृदयके अनुसार पुत्रोत्पादनविधि इस प्रकार है।

पूर्णषोडषवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥१॥
वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥२॥
शुक्रं शुक्लं गुरु स्निग्धं मधुरं बहुलं बहु।
घृतमाक्षिकतैलाभं सद्गर्भायार्तवं पुनः ॥३॥
लाक्षारसशशास्राभं धौतं यच्च विरज्यते।
शुद्धशुक्रार्त्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः ॥४॥
स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलितवस्तिकम्।
नरं विशेषात्क्षीराद्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ॥५॥
नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत्।
क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरत्श्रोणिपयोधराम् ॥६॥
स्रस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं स्त्रियम्।
पदं सङ्कोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋतावतीते योनिः स्याच्छुक्रं नातः प्रतीच्छति ।
मासेनोपचितं रक्तं दमनिभ्यामृतौ पुनः ॥८॥
ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् ।
ततः पक्षेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी त्र्यहम् ॥९॥
स्रजालङ्काररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ।
क्षैरेयं यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्शनम् ॥१०॥
पर्णे शरावे हस्ते वा भुंजीत ब्रम्हचारिणी ।
चतुर्थेऽन्हि ततः स्नाता शुक्लमाल्याम्बरा शुचिः ॥११॥
इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम् ।
ऋतुस्तु द्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्त्रोऽथ निन्दिताः ॥१२॥
एकादशी च युग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका ।

अर्थ– जिसका गर्भाशय, रक्त, शुक्र और कोठेकी वायु और मन शुद्ध है, इस प्रकारकी १६ वर्षकी स्त्री यदि बीसवर्षके वयस्क-पुरुषसे समागम करे तो शक्तिशाली पुत्र होता है और इस अव–स्थासे कमके स्त्री पुरुषोंके समागमसे पहले तो सन्तान नहीं होगी और यदि होगी तो रोगी होगी या अल्पायुष्क होगी तथा अधन्य होगी। पुरुषका शुक्र यदि शुक्लवर्ण, गुरु (वजनदार) स्निग्ध, मधुर और विपुल हो तथा घृत, तैल और मधुके समान हो तभी वह अच्छे गर्भके लिये समर्थ होता है। और स्त्रीका आर्तव (रज) भी जो लाखके समान तथा खरगोशके रक्तसमान हो और जिसको धोनेपर दाग छूट जाय तो वह आर्तव गर्भके लिये युक्त है। ऊपर बताये हुए शुद्ध, शुक्र और शोणितके अनुसार जिन युवक और युवतियोंका (दंपत्तियोंका) शुद्ध, शुक्र और रक्त है और परस्परमें गाढ स्नेह है, उनके योग्य सन्तान होती है। पुरुषको मधुर औष–धोंसे संस्कृत दूध वगैरह पीना चाहिये और स्त्रीको तेल, उडद तथा पित्तकारक पदार्थोंसे बलवृद्धिका उपचार करते रहना चाहिये। जससमय स्त्रीका मुख क्षाम (कृश) और प्रसन्न हो, कमर व स्तनके भागमें स्फुरण हो रहा हो व उसके नेत्र व उदरगलितसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालूम पडते हों उससमय उसे पुरुषसमागमकी इच्छा रखनेवाली तथा ऋतुमती समझना चाहिये। जैसें सूर्यके डूबते समय कमल संकुचित होते हैं वैसे ही ऋतुकालके पूर्ण होनेपर स्त्रीका योनि कमल भी संकुचित होने लगता है और फिर वह शुक्रग्रहण करनेमें असमर्थसी होती है। महीनेभरमें स्त्रीकी योनिमें जो रक्त संचित है उसे कोठेकी वायु धमनियोंके द्वारा जननेन्द्रियके मार्गसे बाहर डालती है। वह रक्त थोडासा कृष्णवर्णका होता है, दुर्गंधरहित होता है। इस प्रकार ऋतुमती स्त्री होती है और उसको इन तीन दिनोंमें अपने विचार पवित्र रखना चाहिये तथा इन ३ दिनोंमें स्नान नहीं करना चाहिये। अलंकाररहित रहना चाहिये। शय्या-पर शयन नहीं करना चाहिये। उसे कोठेको शुद्ध करनेवाले अथवा मलशुद्ध करनेवाले दूधमें पकाये गये जौकी चीजोंको थोड़ा खाना चाहिये, भोजन पत्तेपर या माटीके बर्तनमें करना चाहिये, ब्रम्ह-चर्यसे रहना चाहिये। चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होकर स्वच्छ वस्त्र पहनकर सफेद फूलोंकी माला पहननी चाहिये। फिर अपने पति जैसा पुत्र होवे, इस भावनासे पतिके मुखका अवलोकन करना चाहिये। स्त्रीका यह ऋतुकाल १२ दिन तक रहता है, इनमेसे पहले तीन दिवस और ११ वीं रात निषिद्ध है। और शेष रात्रि-योमें समरात्रियोमें समागम करनेसे पुत्र होता है और विषमरातोंमें समागम करनेसे पुत्री होती है।

सत्पुत्ररहितश्रावकके द्वारा उत्तरपदके प्रति प्रोत्साह दुष्कर है, ऐसा दृष्टांत के द्वारा बताते हैं-

विना सुपुत्रं कुत्र स्वं न्यस्य भारं निराकुलः।
गृही सुशिष्यं गणिवत् प्रोत्सहेत परे पदे ॥३१॥

अन्वयार्थ:-(सुपुत्रं) सुपुत्रके (विना) बिना (कुत्र) किस पुरुषमें (स्वं) अपने आपके (भारं) भारको (न्यस्य) स्थापित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके (गृही) गृहस्थी श्रावक (सुशिष्यं विना) उत्तम शिष्यके विना (गणिवत्) आचार्यके तरह (निराकुल:) निराकुल होता हुआ (परे पदे) उत्कृष्ट पदमें (प्रोत्साहेत) उत्साहित करे ।।३१।।

भावार्थ–जिसप्रकार धर्माचार्य योग्य शिष्य नहीं होनेपर किस मुनिपर संघ निर्वाहलक्षण अपने भार को रखकर निराकुल होकर मोक्ष पदमें वा आत्मकल्याणमें प्रवृत्त कैसे हो सकते है अर्थात् नहीं हो सकते। इसलिये आचार्य को अपने समान योग्य शिष्य को बनाना चाहिये। और उसके ऊपर अपने संघके भार को सौंपकर मोक्षमार्गमें प्रयत्न करना चाहिये। उसी प्रकार दर्शनिक श्रावक भी योग्यपुत्र के बिना अपनें द्वारा पोषण करने योग्य अपनी गृहस्थी के भार को किसके ऊपर सोंपकर तथा निराकुल होकर अपने को द्वितीय प्रतिमादिक धर्म के मार्ग को कैसे प्राप्त कर सकता है–अर्थात् नहीं कर सकता। इसलिये दर्शनिकश्रावक को भी व्रतिक आदि प्रतिमा से लेकर वानप्रस्थादिआश्रमतक संयमस्थान को ग्रहण करनेके लिये अर्थात्–ग्रहविरतपद्धतिसे दूसरी आदि प्रतिमाओं को पालने के लिये अपने समान योग्य पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

इसका सारांश यह है कि दर्शनिक श्रावक तथा धर्माचार्य इन दोनों को ही निराकुल होकर परमपदका आश्रय लेने के लिये योग्यशिष्य और योग्यपुत्र को निष्पादन करने का प्रयत्न करना चाहिये ।।३१।।

दर्शन प्रतिमा के स्वरूप का उपसंहार करते हुये दूसरी प्रतिमा के आरोहण करने की योग्यताको कहते हैं–

दर्शनप्रतिमामित्थमारुह्य विषयेष्वरम् ।
विरज्यन् सत्त्वसज्जः सन्व्रती भवितुमर्हति ।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(इत्थं) इसप्रकार (दर्शनप्रतिमा) दर्शनप्रतिमा को (आरुह्य) धारण करके (विषयेषु) विषयोंमें (अरं) पाक्षिक की अपेक्षा तथा अपने पूर्वकी अवस्थाकी अपेक्षा अधिक (विरज्यन्) विरक्त होता हुवा तथा (सत्वसज्जः सन्) धैर्य आदिक सात्विक भावोंसे युक्त होनेवाला श्रावक (व्रती) व्रती (भवितुं) होनेके लिये (अर्हति) योग्य होता है ।३२॥

भावार्थ- पाक्षिकाचार संस्कारादि पूर्वोक्त दर्शनप्रतिमाके आचरण को सम्यक्प्रकार पालन करके पाक्षिक श्रावककी अपेक्षा अथवा अपनी पूर्वकी अवस्था की अपेक्षा अधिक विषयभोगोंसे विरक्त होता हुवा दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक सत्व, धैर्यादि गुणोंसे सुसज्जित होकर आगे की व्रतादि प्रतिमाके धारण करने के लिए योग्य होता है ॥३२॥

तीसरे अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें ग्रंथकारने नैष्ठिकश्रावकका लक्षण प्रतिपादन करते हुवे सबसे पहिले दर्शनिकश्रावक का विवेचन किया है। दर्शनिकादि ग्यारह प्रतिमाओंका नामोल्लेख करते हुवे इन दर्शनि-कादि श्रावको में प्रारब्ध घटमान और निष्पन्न के भेदसे कर्तव्य पालन का निर्देश करते हुवे दर्शनिकका सुंदर लक्षण किया गया है। दर्शनिक को अष्टमूलगुणोंका धारण करना आवश्यक ही हैं। उसी प्रकार सप्तव्यसनोंका त्याग करना भी अनिवार्य है। इस संदर्भ में सप्त व्यसनोंके त्याग का भी विवेचन किया गया है। व्यसनोंमें आसक्त होनेसे किन किन की दुर्दशा हुई इसका भी सोदाहरण कथन है। सप्त व्यसनोंके त्यागसे मानवोंका कैसा उत्थान होता है यह बताते हुये सप्तव्यसनोंके त्यागमें पोषण करनेवाले इतर नियमोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी प्रतिपादन किया है। मद्यत्याग करनेवालेको सन्धानक पदार्थोंका त्याग मांस त्याग करनेवालेकी चर्मस्थित जल, तेल आदि पदार्थोंका त्याग और मधुत्यागव्रतके धारीको अनेक पुष्पफलोंका त्याग भी अवश्य बतलाया है। इसीप्रकार रात्रिभोजनत्याग भी दर्शनिकके लिये आवश्यक बताते हुअे रात्रिभोजनसे होनेवाली हानियोंका भी विवेचन किया गया है। इस संदर्भ में परस्त्रीसेवनत्याग को आवश्यक बताते हुवे अपनी धर्मपत्नी में ही संतुष्ट रहनेका उपदेश दिया है। कुलधर्मकी रक्षाके लियें अपनी धर्मपत्नी में पुत्रकी उत्पत्ती का विधान करते हुवे ग्रंथकारने धर्मपत्नीको किसप्रकार व्युत्पन्न करे और पुत्रको किस प्रकार सुसंस्कृत करे इसका भी प्रतिपादन किया है। इस प्रकार इस अध्यायमें मुख्यत: दर्शनिक प्रतिमाधारी व उसके लिये आवश्यक परिकर नियमोंका विवेचन किया गया है ।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्य कुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १२ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे तृतीय
अध्याय समाप्त
हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

आगे व्रतिकप्रतिमाका तीन अध्यायके द्वारा विस्तार करनेकी इच्छा करनेवाले ग्रंथकार सर्व प्रथम अुसके लक्षणका संग्रह करनेके लिये कहते हैं।

सम्पूर्णदृग्मूलगुणो निःशल्यः साम्यकाम्यया।
धारयन्नुत्तरगुणानक्षूणान्व्रतिको भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-(सम्पूर्णदृग्मूलगुणः) पूर्ण है दर्शन और मूलगुण जिसके (निःशल्यः) माया, मिथ्या, निदानशल्यरहित (साम्यकाम्यया) इष्टानिष्टमें रागद्वेष न रखकर समताभाव रखनेकी इच्छासे (अक्षूणान्) निरतिचार (उत्तरगुगान्) उतर गुणोंको (धारयन्) धारण करनेवाला (व्रतिकः) व्रती (भवेत्) होता है।

भावार्थ-जो शरीरमें प्रवेश की हुई कांटे आदि शल्यके समान निरंतर शरीर व मनके संतापमें कारण हो उसको शल्य कहते हैं। वह शल्य माया, मिथ्या, निदानके भेदसे तीन प्रकारकी है।

माया- दूसरोंको ठगाना.

मिथ्यात्व- अतत्वश्रद्धान अर्थात् विपरीताभिनिवेश.

निदान- संसारके भोगोंकी इच्छा। वह निदान भी प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारका है।

उक्तं च-

तपःसंयमाद्यनुभावनकांक्षाविशेषो निदानम्। तद्द्वेधा प्रशस्तेतरभेदात्, प्रशस्तं पुनर्द्विविधं विमुक्तिसंसारनिमित्तभेदात्. तत्र विमुक्तिनिमित्तं कर्मक्षयाद्याकाङ्क्षा।

तप और संयमके प्रभावसे किसी प्रकारकी भोगोंको प्राप्तीकी अभिलाषा करना निदान कहते हैं। और वह निदान प्रशस्त अप्रशस्तके भेदसे २ प्रकार हैं। उनमेंसे प्रशस्त निदान भी २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकारका है। १ ला विमुक्तिके लिये, २ रा संसारके लिये। उनमेंसे कर्मके क्षयकी इच्छा रखना विमुक्ति-विषयक निदान है।

उक्तं च—

कर्मव्यपायं भवदुःखहानिं बोधिं समाधिं जिनबोधसिद्धिम्।
आकांक्षितं क्षीणकषायवृत्तेर्विमुक्तिहेतुः कथितं निदानम्।
जिनधर्मसिद्ध्यर्थं तु जात्याद्याकाङ्क्षणं संसारनिमित्तम्।
जातिं कुलं बन्धविवर्जितत्वं दरिद्रतां वा जिनधर्मसिद्ध्यै।
अयाचमानस्य विशुद्धवृत्तेः संसारहेतुर्गदितं निदानम्।
मोक्षेऽपि मोहादभिलाषदोषो विशेषतो मोक्षनिषेधकारी।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो मुमुक्षुर्भवेत्किमन्यत्र कृताभिलाषः।

अपनी कषायोंके क्षीणताके बदले कर्मोंका नाश, संसार-दुःखोंके उच्छेद, बोधिकी प्राप्ति, समाधिकी प्राप्ति और जिन-भगवानके स्वरूपके सिद्धिकी वांछा करना विमुक्तिनिमित्तक निदान है। जिनधर्मकी आराधनाके लिये सत्-जाति आदि परम-स्थानकी इच्छा करना संसारनिमित्त निदान है अथवा जो अपने निर्दोषचारित्रके बदलेमें जिनधर्मकी सिद्धिके लिये जाति, कुल, बंधका अभाव और निर्ग्रंथता आदिको चाहना है वह संसारनिमित्त निदान है। वास्तवमें देखा जाय तो मोक्षकी इच्छा करना भी अभिलाषादोष होनेसे, मोक्षका प्रतिबंधक है अर्थात् जबतक मोक्षकी वांछा करते रहोगे मोक्ष नहीं मिलेगा, इसलिये मुमुक्षुको अपनी आत्मामें लीन होना चाहिये। किसी विषयकी वांछा कर-नेकी उसे क्या जरूरत है ?।

इस प्रकार तीन प्रकारकी शल्योंका त्याग करनेवाला विशल्य होता है। इष्टवियोग अनिष्टसंयोगमें राग-द्वेष के विनाश की भावनासे आगे कहे जानेवाले पंचाणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत इन श्रावकके बारह व्रतों को परमप्रीतिसे धारण करने-वाला, पहिली प्रतिमा से सम्बन्ध रखनेवाले सम्यग्दर्शन और अष्टमूलगुणों को, उपयोगमात्रके अवलम्बनरूप अंतरंगरीतिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चेष्टामात्र के अवलम्बनरूप बहिरंगरीति से अतिचार-रहित पालनेवाला, और तीन प्रकारके शल्यों से दूर रहनेवाला श्रावक व्रतिक होता है। यहाँ शरीर तथा मनके संताप के कारण होने से शल्य को कांटे की उपमा दी गई है। इसलिये कांटे के समान चुभने वाले कर्मोदय को शल्य कहते हैं। वह शल्य माया, मिथ्या और निदान के भेद से तीन प्रकार की है। तीनो से रहित निःशल्य होता है और निःशल्य ही व्रती होता है।

शंका– व्रतिक के लक्षण में "सम्पूर्णदृग्मूलगुण:" इस पद के गृहण करने से ही कार्य चल सकता है, फिर निःशल्य इस पद को ग्रहण करने से क्या प्रयोजन है?

उत्तर– यद्यपि निरतिचार, सम्यग्दर्शन और अष्टमूल गुण पालनेवाला व्रतिक होता है, इसलिये इस कथन से भी निःशल्य-ताका बोध हो सकता है, परन्तु शुरू में व्रत ग्रहण करनेवाले व्रतिक के पूर्वसंस्कारवश शल्यों के किंचित् अनुसरण की आशंका रहती है। उसको निवारण करने के लिये "निःशल्य" यह विशेषण दिया गया है। अथवा स्पष्ट करनेके लिये निःशल्य विशेषण दिया है और स्पष्ट करनेमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता है ॥१॥

तीनो शल्यों के दूर करने का कारण बताते हैं–

सागारो वाऽनगारो वा यन्निःशल्यो व्रतीष्यते ।
तच्छल्यवत्कुदृङ्मायानिदानान्युद्धरेद्हृद: ॥२॥

अन्वयार्थ–(तत्) उस (शल्यवत्) शल्यके समान (कुदृङ्-मायानिदानानि) मिथ्यात्व, माया, निदान को (हृद:) हृदयसे (उद्धरेत्) निकाल देना चाहिये। (यत्) क्योंकि (सागार:) गृहस्थ हो (वा) अथवा (अनगार:) मुनि हो (निःशल्य:) शल्य-रहित होनेसे ही (व्रती) व्रती (इष्यते) माना जाता है।

भावार्थ–जिस प्रकार शल्य (कांटा) निरंतर चुभता रहता है उसको निकाले बिना शांति प्राप्त नहीं होती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, माया और निदान यह तीनों भी हमेशा मनको अशांत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते रहते हैं। इनको निकाले बिना भी परिणाम निर्मल नहीं हो सकते हैं। इसलिये व्रती होने की इच्छा करनेवाले मानवको अपने हृदयसे माया, मिथ्यात्व और निदानरूपी तीनो शल्यों को निकाल देना चाहिये। क्योंकि निःशल्य हुये बिना महाव्रती वा अणुव्रती नहीं बन सकता है।

जैसे केवल गाय–भैंस के पालने से 'गोमान्' नहीं हो सकता परन्तु दूध देनेवाली गायों आदि के पालनेसे 'गोमान्' कहलाता है, उसी प्रकार केवल हिंसादि पापोंका त्याग स्वरूप व्रतों के सम्बन्धसे व्रती नहीं हो सकता है, किन्तु शल्य के त्याग करनेसे ही 'सच्चे' व्रती इस पदके अधिकारी हो सकता हैं। इसलिये निःशल्य होकर व्रतोंका पालन करना चाहिये ॥२॥

शल्यसहचारीव्रतों को धिक्कार देते हैं–

आभान्त्यसत्यदृङ्मायानिदानैः साहचर्यतः ।
यान्यव्रतानि व्रतवद्दुःखोदर्काणि तानि धिक् ॥३॥

अन्वयार्थ–(दुःखोदर्काणि) दुःख ही है आगे फल जिन्होंके (यानि) जो ऐसे (अव्रतानि) अव्रत भी (असत्यदृङ्माया-निदानैः) मिथ्यात्व, माया और निदान के (साहचर्यतः) सम्बन्धसे (व्रतवत्) व्रत के समान (आभान्ति) प्रतिभासित होते हैं (तानि) उन शल्यसहित व्रतोंको (धिक्) धिक्कार हो ॥३॥

भावार्थ–माया, मिथ्यात्व और निदानसहित धारण किये गये अणुव्रत तथा महाव्रत व्रताभास अथवा अव्रत कहलाते हैं। उन व्रतोंसे कभी संवर और निर्जरा नहीं हो सकती है। उन व्रतों का आगे फल दुःखरूप ही है। इसलिये शल्यवान व्रतो को धिक्कार हो।

उत्तरगुणोंका निर्णय करने के लिये कहते हैं–

पंचधाऽणुव्रतं त्रेधा गुणव्रतमगारिणाम् ।
शिक्षाव्रतं चतुर्धेति गुणाः स्युर्द्वादशोत्तरे ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(पंचधा) पांच प्रकारके (अणुव्रतं) अणुव्रत (त्रेधा) तीन प्रकार के (गुणव्रतं) गुणव्रत और (चतुर्धा) चार प्रकार के (शिक्षाव्रतं) शिक्षाव्रत (इति) इस प्रकार (अगारिणां) गृहस्थियोंके (द्वादश) बारह प्रकारके (उत्तरे) उत्तर (गुणाः) गुण (स्युः) होते हैं ॥४॥

भावार्थ-पंचाणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये गृहस्थियों के बारह उत्तरगुण कहलाते हैं। ये मूलगुणके अनंतर पाले जाते हैं। इसलिए इन्हें 'उत्तरगुण' कहते हैं। अथवा मूल-गुणोंकी अपेक्षा उत्तमगुण हैं। इसलिए १२ व्रतोंको श्रावकोंके 'उत्तरगुण' यह संज्ञा है। और महाव्रतकी अपेक्षासे श्रावकके ये अहिंसादि व्रत लघु हैं, इसलिए 'अणुव्रत' कहलाते हैं। कोई २ ग्रन्थकार रात्रिभोजन त्यागको छट्टा अणुव्रत मानते हैं।

उक्तं च चारित्रसारे-

वधादसत्याच्चौर्याच्च कामाद्ग्रन्थान्निवर्तनम्।
पंचधाऽणुव्रतं रात्र्यभुक्तिः षष्ठमणुव्रतम् ॥

अर्थः-हिंसा, झूठ, चोरी, काम और परिग्रहके त्यागको पांच अणुव्रत कहते हैं, तथा रात्रिभोजनत्याग यह छट्टा अणुव्रत है। उनके मतसे ६ अणुव्रत होने चाहिये परन्तु बहुधा आचार्य ५ अणुव्रत ही मानते हैं, इसलिए यहां ५ ही अणुव्रत बताए हैं। अणुव्रतोंमें गुण लानेवाले अर्थात् अणुव्रतोंके पालनेमें उपकार करनेवाले व्रतोंको "गुणव्रत" कहते हैं। ये गुणव्रत प्रायः याव-ज्जीव धारण किए जाते हैं। और अणुव्रतोंके लिए शिक्षाप्रधान जो व्रत हैं उन्हें "शिक्षाव्रत" कहते हैं। देशावकाशिक आदि व्रतोंसे शिक्षा प्रतिदिन मिलती है अथवा विशिष्ट श्रुतज्ञानभावना परिणत होनेसे ही शिक्षाव्रतों का निर्वाह होता है। अतः शिक्षा (विद्या) की प्रधानताके कारण देशावकाशिक आदि व्रतोंको शिक्षाव्रत कहते हैं। शिक्षाव्रतोंमें शिक्षाका अर्थ अभ्यास भी है। शिक्षाव्रत और गुणव्रतोंमें यह भेद है कि शिक्षाव्रत शिक्षा-प्रधा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं और गुणव्रत अणुव्रतोंके उपकारक अथवा उपबृंहण करनेवाले होते हैं।

सामान्यरीतिसे पंचाणुव्रतोंका लक्षण:—

विरतिः स्थूलवधादेर्मनोवचोऽङ्गकृतकारितानुमतैः।
क्वचिदपरेऽप्यननुमतैः पञ्चाहिंसाद्यणुव्रतानि स्युः ॥५॥

अन्वयार्थः—(क्वचित्) कहींपर—गृहविरतश्रावकमें (मनोवचोऽङ्गकृतकारितानुमतैः) मन, वचन, काय तथा कृत कारित-अनुमोदना इन नौ भंगोंके द्वारा (स्थूलवधादेः) स्थूल हिंसादिकसे (विरतिः) निवृत्त होता (पञ्च) पांच (अहिंसाद्यणुव्रतानि) अहिंसा आदि अणुव्रत (स्युः) होते हैं (अपि) और (अपरे) कहीं-पर गृहविरत श्रावकमें (अननुमतैः) अनुमोदनाको छोडकर बाकीके छह भंगोंके द्वारा (स्थूलवधादेः) स्थूल हिंसादिकसे (विरति) निवृत्त होना (पञ्चाहिंसाद्यणुव्रतानि) पांच अणुव्रत (स्युः) होते हैं।

भावार्थः—दूसरी प्रतिमामें व्रतीके 'गृहवासविरत' और 'गृहवासनिरत' ऐसे दो भेद होते हैं, उनमेंसे १ गृहवासविरतके मन, वचन, काय इन तीनों भंगोको कृत, कारित और अनुमोदना इन तीन भंगोंसे गुणा करनेपर नौ ९ भंग होते हैं, उनके द्वारा स्थूलहिंसादि ५ पापोंका त्याग होता है। इसप्रकार ९ भंगसे त्याग करनेवाला द्वितीय प्रतिमाधारी उत्कर्षवृत्तिसे अणुव्रत पालता है। और मन, वचन तथा काय इन तीनों ही भंगोंको केवल कृत और कारित भंगसे गुणा करनेपर ६ भंगसे पंच स्थूलपापोंका जो त्यागी होता है वह मध्यम रीतिसे अणुव्रत पालनेवाला है। इसीको ही "गृहवासनिरत" कहते हैं। यह घरमें ही रहकर दूसरी प्रतिमा पालता है और गृहवासविरत घरमें नहीं रहता इसलिए वह ९ भंगसे पांच पापोंका त्यागी हो सकता है, क्योंकि गृहवासके अंगीकार करनेवालोंको पुत्रादिक द्वारा जो आरम्भादिमें हिंसा होती है अथवा वे अन्यद्वारा आरम्भादि भी कराते हैं उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain: Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमोदनाका दोष लगता है, इसलिए गृहवासनिरत ९ भंगका त्यागी नहीं हो सकता है।

"अपि शब्दसे प्रकारान्तरसे अणुव्रतत्वके प्रतिपादनकी सिद्धि होती है। जैसे १ 'मनसे' २ "वचनसे' ३ 'कायसे' ४ "मन और कायसे" ५ "मन और वचनसे" ६ "वचन और कायसे" तथा ७ "मन वचन और कायसे" इस प्रकार 'कृतकी' अपेक्षासे ७ 'कारितकी' अपेक्षासे ७ और 'अनुमोदनाकी' अपेक्षासे ७ और 'कृतकारितके' ७ 'कृत और अनुमोदनाके' ७ 'कारित और अनुमोदनके' ७ तथा 'कृतकारितानुमोदनके' ७ इस तरह सातको सातसे गुणा करनेपर ४९ भंगसे त्याग करनेवाला भी अणुव्रती होता है। यदि ४९ भंगको तीन कालसे त्याग किया जावे तो तीनसे और गुणना चाहिए ४९×३ = १४७ भंग हो जाते हैं। यहां स्थूल शब्द उपलक्षण है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि निरपराधियोंकी संकल्पपूर्वक हिंसा अणुव्रती स्वयं नहीं करता है न दूसरोंसे कराता है और न हिंसा करनेवालोंको अनुमति ही देता है और तीनों भंगोको मन वचन और कायसे गुणा करनेसे यह ९ भंगका त्यागी होता है। ६ भंगके त्यागको भी इसीप्रकार यथायोग्य समझ लेना चाहिए। इस कथनका तात्पर्य यह है कि शासनकर्ता, चक्रवर्ती आदि जो दंडविधान करते हैं वह दोषदायक नहीं है।

"दण्डो हि केवलो लोकमिमं चामुं च रक्षति ।
राज्ञा शत्रौ च पुत्रे च यथादोषं समं धृतः ॥"

पुत्र व शत्रुमें समतारूपसे क्षत्रियों द्वारा दिया गया दंड, इसलोक और परलोककी रक्षा करता है यह शास्त्रवचन है। अतः अपनी अपनी पदवी और शक्तिके अनुसार ही राजा आदि भी स्थूल हिंसादिकके त्यागी होते हैं। और अपराधियोंको उनका दण्ड देना दोषदायक नहीं हैं, किन्तु कर्तव्य है।

हिंसा करना महापाप है- उक्तं च-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंगुकुष्टिकुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः ।
निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥

भावार्थ- लंगडा, कुष्टी रोगी आदि सब हिंसाका फल है । अर्थात् हिंसा करनेसे प्राणी कुष्टरोगी पंगु धनजनसे विहीन होता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुषोंको निरपराधी त्रस जीवोंके घात करनेका संकल्पपूर्वक त्याग करना चाहिये ।

स्थूल विशेषण का अर्थ कहते हैं--

स्थूलहिंस्याद्याश्रयत्वात् स्थूलानामपि दुर्दृशाम् ।
तत्त्वेन वा प्रसिद्धत्वाद्वधादि स्थूलमिष्यते ॥६॥

अन्वयार्थ- (स्थूलहिंस्याद्याश्रयत्वात्) स्थूल हिंस्यादिके आश्रय होनेसे (वा) अथवा (स्थूलानां) स्थूल (दुर्दृशां) मिथ्या-दृष्टियोंके (अपि) भी (तत्त्वेन) वधादि रूपसे (प्रसिद्धत्वात्) प्रसिद्ध होनेसे (वधादि) वधादि (स्थूलं) स्थूल (इष्यते) कहे जाते हैं ।

भावार्थ- जिस हिंसा, झूठ आदि पापके विषय स्थूल होते हैं, अथवा जिस हिंसादि पापोंको व्यवहार में मिथ्यादृष्टि लोग भी हिंसा, झूठ आदि नामसे पुकारते हैं, वे हिंसादि स्थूल शब्दसे कहे जाते हैं । अथवा "वा" शब्दसे यह भी अर्थ ग्रहण होता है कि जो पाप स्थूलोंके द्वारा किये जाते हैं उन्हें अणुव्रतके प्रकरणमें स्थूल, हिंसा आदि कहा हैं । और उस स्थूल हिंसादि के त्यागीको अणुव्रती कहते हैं । इसका सारांश यह है कि जगत में सर्व साधारण जिसको हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहके नामसे पुकारते हैं उनको स्थूल हिंसादि कहते हैं तथा उन स्थूल पापोंके त्यागी को अणुव्रती कहते हैं ।

इस समय अहिंसाका व्यापक लक्षण कहते हैं--

शांताद्यष्टकषायस्य सङ्कल्पैर्नवभिस्त्रसान् ।
अहिंसतो दयार्द्रस्य स्यादहिंसेत्यणुव्रतम् ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(शांताद्यष्टकषायस्य) शांत हो गये है अनन्तानु बन्धी अप्रत्याख्यान आठ कषाय जिसके तथा (दयार्द्रस्य) करुणासे कोमल है हृदय जिसका ऐसे (नवभिः) मन, वचन, काय तथा कृतकारित-अनुमोदनारूप को (संकल्पैः) संकल्पोंसे (त्रसान्) द्वीन्द्रियादि त्रसजीवोंको (अहिंसतः) नहीं हिंसा करनेवालेके (अहिंसा) अहिंसा (इति) इसप्रकार (अणुव्रतं) अणुव्रत (स्यात्) होता हैं।

भावार्थ-जिसके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, और अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ ये आठ कषायें शांत हो गयी हैं और जिसका हृदय करुणासे ओतप्रोत है जो मनसे, वचनसे, कायसे तथा कृत-कारित-अनुमोदनासे द्वीन्द्रियादि त्रसजीवोंके द्रव्य और भावप्राणोंका घात नहीं करता हैं अुसके अहिंसाणुव्रत होता है।

विशेषार्थ-जो स्वयं त्रसजीवोंका घात मनसे 'इसको मारो इसप्रकार की हिंसा संकल्प नहीं करता, दुसरोंसे मनसे हिंसा कराता नहीं और न हिंसा करनेवालेकी मनसे अनुमोदना करता है। इसी प्रकार वचनसे न त्रसहिंसा करता है और न तुम हिंसा करो ऐसा वचन उच्चारण करता है और न वचनसे हिंसा करने-वालेको तुमने अच्छा किया ऐसा वचन उच्चारण करता है। तथा कायसे त्रसजीवोंके घात करनेके लिये दृष्टि, मुष्टि, लाठी आदिके इषारेसे स्वयं व्यापार नहीं करता और न हाथ आदिके इशारेसे दुसरोंको त्रसजीवोंके घात करनेकी प्रेरणा करता है और त्रस जीवोंका घात करनेवाले पुरुषोंकी चुटकी आदिके द्वारा अनुमोदना भी नहीं करता है। इस प्रकार जो नौ प्रकारके संकल्पसे त्रस जीवोंके घातका त्याग करता है अर्थात् संकल्पपूर्वक त्रसजीवोंका घात नहीं करता है अुसके अहिंसाणुव्रत होता है।

दो श्लोकोंके द्वारा इसी अर्थके संग्रहको कहते हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इमं सत्वं हिनस्मीति हिन्धि हिन्ध्येष साध्विमम् ।
हिनस्तीति वधं नाभिसन्दध्यान्मनसा गिरा ॥८॥
वर्तेत न जीववधे करादिना दृष्टिमुष्टिसन्धाने ।
न च वर्तयेत्परं तत्परे नखच्छोटिकादि न च रचयेत् ॥९॥

अन्वयार्थ–जिसने घर छोड दिया है ऐसा श्रावक (इमं सत्वं) इस जीवको (हिनस्मि) मारता हूँ (इति) इसीप्रकार से (हिन्धि हिन्धि) तुम इस प्राणीको मारो मारो (एषः) यह मानव (इमं) इस प्राणी को (साधु) अच्छा (हिनस्ति) मारता है (इति) इस-प्रकार (वधम्) हिंसा को (मनसा) मन के द्वारा (गिरा) वच-नके द्वारा (वधं) हिंसा करने का (नाभिसंन्दध्यात्) संकल्प नहीं करे। तथा (दृष्टिमुष्टिसंधान) दृष्टि और मुष्टिका है जोडना जिसमें (जीववधे) जीवघात में (करादिना) हस्तादिक के द्वारा (न वर्तेत) स्वयं प्रवृत्ति न करे (च) और (न परं वर्तयेत्) न दूसरों को हस्तादिकी संज्ञा से प्रवृत्त करावे। (च) तथा (तत्परे) स्वयं हिंसा करनेवाले पुरुषों में (नखच्छोटिकादि) चुटकी, ताली आदि बजाना (न रचयेत्) नहीं रचे अर्थात् हिंसा करनेवाले की काय को अनुमोदना न करे ॥९॥

भावार्थ–जिस श्रावकने घर छोड दिया है वह श्रावक मनसे, वचनसे, कायसे मैं इस जीवको मारता हूँ ऐसा संकल्प नहीं करता है और मनवचनकायसे तुम इसको मारो इसप्रकार हिंसा नहीं करवाता है। और न त्रसजीवोंके मारनेके व्यापारमें आँखका इषारा, हाथके अंगूलीं आदिके इशारेसे भी प्रयत्न करता है और न पुस्तक, आसन आदि उपकरणोंमें उसमें भी हिंसारूप प्रवृत्ति नहीं करता है। गृहत्यागीश्रावक जीववधके संभवमें हाथ, अंगुली आदि अंगोपांगसे किसीको प्रवृत्त नहीं करता है। उक्तं च–

आसनं शयनं यानं मार्गमन्यच्च वस्तु यत् ।
अदृष्टं तन्न सेवेत यथाकालं भजन्नपि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय समय पर काम आनेवाले आसनसे सवारीकी चीजे रास्ता आदि जो भी है उनका उपयोग विना देखे नहीं करना चाहिये । यहां गृहस्थोंको ज्ञानका और मुष्टिको ग्रहणादि क्रियाका उपलक्षण मानना चाहिये । जिससे " दृष्टि, मुष्टि, संधाने;" इस पदका यह अर्थ भी निकलता है कि इस प्रकारके हीं समान, जिन अन्य प्रकारोंसे भी कायके द्वारा, हिंसा व हिंसाकी प्रेरणा व अनु-मोदना संभव है, उसका भी त्याग करे ।

तात्पर्य यह है कि मनके द्वारा मैं मारता हूं, तुम मारो, यह ठीक मारताहै, इस प्रकार संकल्पसे हिंसा होती है तथा इसी प्रकारसे तीन प्रकारकी संकल्पी हिंसा वचनोंसे भी हो सकती है तथा हाथसे भी हिंसाका संकल्प होता है और जिस हिंसामें दृष्टि और मुठ्ठी बांधकर कायकृत प्रेरणा होती है वह हिंसा कायकृत संकल्प है, हिंसाकी चुटकी बजाकर, ताली बजाकर कायद्वारा आनुमोदना की जाती है । इन सब विकल्पोंका त्यागकर अहिंसाणुव्रती अहिंसा-व्रत पालता है ।

इस प्रकार गृहविरत श्रावकके अहिंसाव्रतकी विधि बताकर अब गृहनिरत श्रावकके लिये अहिंसाणुव्रतका उपदेश देते हैं—

इत्यनारम्भजां जह्याद्धिंसामारम्भजां प्रति ।
व्यर्थस्थावरहिंसावद्यतनामावहेद्गृही ॥१०॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (गृही) घरमें रहनेवाला श्रावक (अनारम्भजां) कृष्यादिक आरम्भसे अन्यत्र होनेवाली (हिंसां) हिंसाको (जह्यात्) छोडे और (आरम्भजां प्रति) कृष्या-दिक आरम्भसे होनेवाली हिंसाके प्रति (व्यर्थस्थावरहिंसावत्) निष्प्रयोजन एकेन्द्रियप्राणियोंके वधकी तरह (यतनां) सावधानताको (आवहेत्) करे ।

भावार्थ- जिसप्रकार गृहविरत श्रावक विना प्रयोजन होने-वाली स्थावरहिंसाका त्याग करता है । उसीप्रकार विनाप्रयोजन उठनें-बैठने शयनादि में होनेंवालीं हिंसामें भी सावधानी रखे !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च-

"गृहकार्याणि सर्वाणि दृष्टिपूतानि कारयेत् ।"

घरके सम्पूर्ण कार्य देखभाल करके करे ।

हिंसा दो प्रकार की होती है आरंभजनित और अनारंभजनित उसमें आरंभीहिंसा का त्याग गृहस्थ नहीं कर सकता है ।

उक्तं च-

हिंसा द्वेधा प्रोक्ताऽऽरम्भानारम्भभेदतो दक्षैः ।
गृहवासतो निवृत्तो द्वेधाऽपि त्रायते तां च ।१।।
गृहवाससेवनरतो मन्दकषायः प्रवर्तितारम्भः ।
आरम्भजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम् ।।२।।

अर्थ- आरंभजनित और अनारम्भजनित भेदसे ज्ञानियोंने दो प्रकारकी हिंसा बनायी है । उनमेंसे जो गृहवाससे विरक्त द्वितीय प्रतिमाधारी है वह इन दोनों ही हिंसाओंका त्यागी होता है और जो गृहवासी द्वितीयप्रतिमाधारी श्रावक है वह इन दोनों-मेंसे आरंभजनित हिंसाका त्याग नहीं कर सकता है ।

परन्तु संकल्पी त्रसहिंसाका तथा विनाप्रयोजन होनेवाली स्थावरहिंसा का त्याग तो अवश्य करे ।

स्थावर जीवोंकी भी हिंसा न करने का उपदेश देते हैं—

यन्मुक्त्यङ्गमहिंसैव तन्मुमुक्षुरुपासकः ।
एकाक्षवधमप्युज्झेद्यः स्यान्नावर्ज्यभोगकृत् ।।११।।

अन्वयार्थ- (यत्) क्योंकि (अहिंसा) अहिंसा (एव) ही (मुक्त्यङ्गं) मुक्तिका कारण है (तत्) इसलिये (मुमुक्षुः) मोक्षकी इच्छा करनेवाला (उपासकः) श्रावक (यः) जो (अवर्ज्य-भोगकृत्) त्याग नहीं करने योग्य भोगोपभोग को करनेवाला अथवा (आवर्ज्यभोगकृत्) सेवन करने योग्य भोगोपभोगको करने-वाला (न स्यात्) नहीं है ।(एकाक्षवधं अपि) उस ऐकेन्द्रियवध को भी (उज्झेत्) छोड देवे ।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- अहिंसा ही मुक्ति कारण है, इसलिये मुक्तिकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको द्रव्य-भावरूप हिंसाका त्याग करना चाहिये। तथा जो भोगनेयोग्य नहीं है वा त्याज्य है ऐसी एकेन्द्रिय के घातसे होनेवाली हिंसाका भी त्याग करना चाहिये।

उक्तं च-

जे तसकाया जीवा पुव्वुद्दिट्ठा ण हिंसिदव्वा ते।
एगिंदियावि णिक्कारणेण पढमं वदं थूलं ॥१॥

अर्थ- जो त्रसकायवाले जीव बताए गये हैं उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिये तथा विना कारण स्थावरजीवोंकी भी हिंसा नहीं करना यह प्रथम अहिंसाव्रत है।

स्तोकैकेन्द्रियघातात् गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणाम्।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति कर्तव्यम् ॥२॥

अर्थ-गृहस्थियोंके अपने विषयके योग्य स्तोक एक इन्द्रियके घातसे होनेवाली स्थावरहिंसाको छोडकरके बाकी सम्पूर्ण स्थावरघातका त्याग करना चाहिये।

भूपयःपवनाग्नीनां तृणादीनां च हिंसनम्।
यावत्प्रयोजनं स्वस्थं तावत्कुर्यादजन्तुजित् ॥३॥

अर्थ- बिना प्रयोजन पृथ्वी, जल, अग्नी, वायु, तृण आदिका घात भी नहीं करना चाहिए। जितनी प्रयोजन भूत हो उतना ही करना चाहिए।

तात्पर्य- यह है कि गृहनिरत श्रावकको भी संकल्पीहिंसाके समान निरर्थक स्थावरहिंसाका भी त्याग करना चाहिये।

संकल्पीहिंसाके त्याग का उपदेश देते हैं--

गृहवासो विनाऽऽरम्भान्न चारम्भो विना वधात्।
त्याज्यः स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषंगिकः ॥१२॥

अन्वयार्थ- (गृहवासः) गृहस्थाश्रम (आरम्भात् विना) आरम्भके विना (न 'भवति') नहीं होता है (च) और (आरम्भः) आरम्भ (वधात् विना) प्राणियोंकी हिंसाके विना (न 'भवति') नहीं होता है (तत्) इसलिये (मुख्यः) संकल्पपूर्वक होनेवाला

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सः) वह वध (यत्नात्) प्रयत्नपूर्वक (त्याज्यः) छोडनेके योग्य है (तु) किन्तु यहांपर इतनी विशेषता है कि (आनुषङ्गिकः) कृष्यादिक कार्योंके करनेसे होनेवाला जो वध है वह (दुस्त्यजः) छोडनेके लिए अशक्य है अर्थात् गृहस्थके लिये कृष्यादिक कर्मोंसे होनेवाली हिंसाका छोडना अशक्य है ।

भावार्थ- आरम्भके विना गृहवास नहीं है और आरम्भ हिंसाके विना नहीं होता है । अतः गृहवासीको अपने मतलबसे " इसे मैं मारता हूं " इस प्रकारकी संकल्पी हिंसाको यहां मुख्य हिंसा कहा है । उसका त्याग यत्नपूर्वक जरूर करना चाहिये । कृषि आदि आजीविका करते समय जो संकल्परहित आरम्भी हिंसा है वह गृहवासीके लिए छोडी नहीं जा सकती ।

अब- हिंसाके त्यागके लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए यह बताते हैं--

दुःखमुत्पद्यते जन्तोर्मनः संक्लिश्यतेऽस्यते ।
तत्पर्यायश्च यस्यां सा हिंसा हेया प्रयत्नतः ॥१३॥

अन्वयार्थ- (यस्यां) जिसमें (जन्तोः) प्राणिको (दुःखं) दुःख (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है (मनः) मनको (संक्लिश्यते) सन्ताप होता है (च) तथा (तत्पर्यायः) उस प्राणीके वर्तमान पर्याय (अस्यते) नष्ट होती है (सा)वह (हिंसा) हिंसा (प्रयत्नतः) प्रयत्नपूर्वक (हेया) छोडनेयोग्य है ॥१३॥

भावार्थ-जिस क्रियामें प्राणियोंको दुःख उत्पन्न होता है । वह मन संतापित होता है तथा उस निरपराध प्राणीकी वर्तमान पर्याय का वियोग होता है उसको हिंसा कहते हैं । किसीके शारीरिक मानसिकसंताप करनेवाली संकल्पीहिंसाको गृहस्थीको प्रयत्न पूर्वक छोडना चाहिये ॥१३॥

यहांसे आगे अहिंसाणुव्रतके आराधना का उपदेश है उसमें प्रथम अहिंसाणुव्रतीका आश्रय लेकर कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तोषपोषतो यः स्यादल्पारम्भपरिग्रहः ।
भावशुध्द्येकसर्गोऽसावहिंसाणुव्रतं भजेत् ॥१४॥

अन्वयार्थ–(संतोषपोषतः) संतोषकी उत्कृष्टता होनेसे (यः) जो (अल्पारंभपरिग्रहः) अल्प आरंभ और परिग्रहवाला है तथा (भावशुध्द्येकसर्गः) भावशुद्धि है एकाग्रता जिसके ऐसा (असौ) वह श्रावक (अहिंसाणुव्रतं) अहिंसाणुव्रतको (भजेत्) धारण करने वाला होता है ॥१४॥

भावार्थ–विषयभोगोंमें अनासक्ति होनेसे जिसका संतोष वृद्धिगत हो रहा है। यह पुत्र, पौत्र, भार्यादिक मेरे हैं इसप्रकार बुद्धिग्राह्य आर्त्तरौद्रध्यान को उत्पन्न करानेवाले बाह्यपदार्थ और परिग्रह जिसके अल्प हैं तथा जो अपने भावशुद्धिमें एकाग्र रहता है वही श्रावक अहिंसाणुव्रत धारण करने वाला होता है ॥१४॥

वचन, मन, गुप्त्यादि पांच भावनापूर्वक अहिंसाणुव्रत के पांचअतिचारों को दूर करने का उपदेश देते हैं–

मुंचन् बन्धं वधाच्छेदावतिभारादिरोपणम् ।
भुक्तिरोधं च दुर्भावाद्भावनाभिस्तदाविशेत् ॥१५॥

अन्वयार्थ–(दुर्भावात्) दुष्परिणामोंसे (बन्धं) बन्धको (वधच्छेदौ) वध और छेद को (अतिभारारोपणं) शक्तिसे अधिक पशु, नोकरमनुष्यपर भार लादनेको (च) और (भुक्तिरोधं) अन्न पानके रोध को (मुञ्चन्) छोडने वाला श्रावक (भावनाभिः) पांचभावना के साथ (तत्) अहिंसाणुव्रतको (आविशेत्) पालन करे।

भावार्थ–अहिंसाणुव्रतकी मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण और आलोकितपानभोजनसमिति ये पांच भावनाएँ हैं। इन पांच भावनाओं के साथ पांच अतीचाररहित अहिंसाणुव्रतको पालन करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांच अतिचारों का विस्तार

बंधातिचार:-गाय, बैल, मनुष्य आदिकोंको रस्सी आदिसे बांधनेको बंध कहते हैं। जो शिक्षा आदिके लिए, योग्य बनानेके लिए, किसीको बांधा जाता है वह अतीचार नहीं है। इसको जतानेके लिए इस श्लोकमें "दुर्भावात्" यह पद दिया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि कषायोंके तीव्र उदयके वश होनेसे ही 'बन्ध' अतिचार होता है। विनय आदि गुण सिखानेके लिये प्रयुक्त 'बंध' अतिचार नहीं है।

विशेषार्थ:-बन्ध दो प्रकारका है-सार्थक और निरर्थक। उनमेंसे निरर्थकबन्ध तो श्रावकको करना बिलकुल योग्य नहीं है। रहा सार्थक, सो सार्थकबन्धके भी दो भेद हैं-सापेक्षसार्थकबंध और निरपेक्षसार्थकबन्ध. इन दोनों बंधोंमें अग्नि आदिके उपद्रव आनेपर अपने पालतू जनावर स्वयं बन्ध ढीला होनेसे अपनी रक्षा कर सकें, इस अपेक्षासे ढीले बंधनको सापेक्ष = "सार्थकबंध" कहते हैं। तथा ये दासी, दास, चोर, जार, बिगडे हुए प्रमादी पुत्र वगैरह, अग्नि आदिके आकस्मिक उपद्रवसे नष्ट न हो जावे इसलिए उनको इस ढंगसे बांधना चाहिए कि जिससें वे भी समय पडनेपर अपनी रक्षा कर सके। पालतू जानवर, तथा सुधार विशेषके लिए बांधे हुए जानवर व दासीदास आदिकी रक्षा भी (पालनपोषण भी) यथायोग्य करना चाहिए।

'निरपेक्षसार्थकबंध' निश्चलरूपसे कसके बांधनेको कहते हैं. इसका विशेष खुलासा नहीं किया है। उनकी रक्षाकी जिम्मेदारी रखनी चाहिए इतना लिखा है। अथवा श्रावकको वे ही पालतू जनावर व दासदासी रखना चाहिए जो विनाबंधके रहते हों।

वधातिचार:-बेंत-चाबुकसे मारनेको 'वध' कहते हैं। दुर्भावोंसे बेंत वगैरह मारना अतीचार है। यदि कोई आश्रित विनय न करता हो, उद्दण्ड हो तो उसे इस ढंगसे चाबुक मारना चाहिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे उसके मर्मस्थानोंको आघात न पहुँचे तथा लात व डोरीके चाबुकसे एक दो बार ही ताडना देनी चाहिये । इसके विपरीत करनेसे यह भी अहिंसाव्रतका अतीचार होता है ।

छेदातिचार- नाक, कान वगैरह शरीरके अवयवोंके खोटे भावोंसे निर्दयतापूर्वक काट डालनेको छेदनामक अतीचार कहते हैं । स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए वैद्य जो रोगीके अवयवोंको सान्त्वना देते हुए छेद करता है उसके खोटे भाव नहीं हैं । इसलिए वह अतीचार नहीं है ।

अतिभाराधिरोपणातीचार- जो जानवर जितना बोझ लाद सकता है अथवा वहन कर सकता है वह न्याय्य है. उससे अधिक लादना व ढोना अतीचार है । यह अतीचार भी खोट भावोंके कारण होता है । कभी कभी क्रोध व लोभके कारणसे भी हो सकता है । उत्तम पक्ष तो यह है कि श्रावकको ऐसे धंदे नहीं करना चाहिए, कदाचित् करना ही पडे तो मनुष्योंको इतना बोझ लादना चाहिए जिसे वे स्वयं लाद सकें और उतार सकें, योग्य समयपर छुट्टी देनी चाहिए । तथा जानवरोंको हल व गाडीमें जोतते समय इसका ख्याल रखना चाहिये कि उनको समयपर विश्राम दिया गया या नहीं । उन्हें समयपर छोडना चाहिए और जितना वे ढो सकते हैं उससे कुछ कम ही भार लादना चाहिए । ढोनेके समय भी यथोचित ख्याल रखना अन्यथा अतिचारदोष लगेगा ।

भुक्तिरोधातीचार-दुर्भावोंसे अन्नपानके रोक देनेको भुक्तिरोध अतिचार कहते हैं । बिना भोजनके प्राणी मर जाते हैं इसलिए अपराधीको भय दिखानेको चाहे तो यह कहे कि भले ही तुझे खाना नहीं दिया जावेगा, परन्तु समयपर उसको देना जरूर चाहिये । कारण भोजन करते समय आश्रितको खिला-पिलाकर स्वयं भोजनपान करना चाहिये । हां, जो आश्रित अपराधी वा रोगी हैं उनकी बात दूसरी हैं । उनको अन्न नहीं देना, स्वास्थकी दृष्टिसे लाभदायक हैं । इसलिए ऐसी अवस्थावालेको भोजनादिक न देकर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजन किया जा सकता है। शांतिके लिये उपवास करना भी अतीचार नहीं हैं। कहनेका तात्पर्य यही है कि जिसतरह मूल अहिंसाव्रतमें अतीचार न लगे ऐसा वर्तन करना चाहिये।

अब- मन्दबुद्धियोंके लिये ऊपरके श्लोकमें कहे हुए अर्थका और खुलासा करते हैं---

गवाद्यैर्नैष्ठिको वृत्तिं त्यजेद्बन्धादिना विना।
भोग्यान् वा तानुपेयात्तं योजयेद्वा न निर्दयम् ॥१६॥

अन्वयार्थ- (नैष्ठिकः) नैष्ठिक श्रावक (गवाद्यैः) गौ, बैल आदि जनावरोंके द्वारा (वृत्तिं) अपनी आजीविकाको (त्यजेत्) छोडे अर्थात् अजीविका नहीं करे (वा) अथवा यदि इस उत्तम पक्षको स्वीकार करनेमें असमर्थ हो तो (भोग्यान्) भोग करनेके योग्य (तान्) उन गौ आदि जानवरोंको (बन्धादिना विना) बन्धन ताडन आदिके विना (उपेयात्) ग्रहण करे (वा) अथवा यदि इस मध्यमपक्षको भी स्वीकार करनेमें असमर्थ हो तो (निर्दयं) निर्दयतापूर्वक (तं) उस बन्धादिकको (न योजयेत्) नहीं करे।

भावार्थ- नैष्ठिक श्रावक, गाय आदि जानवरोंसे आजीविका न करे। गाडी रखना, बैलोंको लादना, हल जोतना आदि रूपसे आजीविका न करे। कदाचित् दूध, दही व लादने ढोनेके लिए जनावरोंको पाले तो उन्हें बांधे नहीं। यदि बांधे तो निर्दयतापूर्वक न बांधे।

उत्तमपक्ष तो यह है कि बैल आदिको स्वयं न रखे; किन्तु जरूरत पडनेपर भाडेसे उचित रीतिसे अपना व्यवहार चलावें, खरीदकर दूध-दहीको लेवें।

मध्यमपक्ष यह है कि भोगके उपयोगी जानवर यदि रखे तो उनके गलेमें रस्सी आदि न बांधें। उनके रखनेकी ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे उनके गलेमें बंधन डालनेकी ही जरूरत न पडे। और जघन्यपक्ष यह कि पालतू जनावरोंके गलेमें रस्सी ढीली बांधे, निर्दयतापूर्वक कसके न बांधे। क्योंकि कहा है कि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रतानि पुण्याय भवन्ति जन्तो-र्न सातिचाराणि निषेवितानि ।
सस्यानि किं क्वापि फलन्ति लोके मलोपलीढानि कदाचनापि ॥

अर्थः-जीवोंको व्रत पुण्य फल देते हैं। परन्तु अतीचारसहित व्रत पुण्यजनक नहीं होते हैं। जिस प्रकार केवल धान बो देनेसे खेती फलप्रद नहीं होती-उसमेंसे आनेवाले घासको गोठकर साफ करना पडता है, उसके विना फसल घरमें नहीं आती है, उसी प्रकार केवल लिये हुए व्रत पुण्यफलके दाता नहीं हैं। उनके ग्रहण करनेके बाद बीच-बीच में लगनेवाले अतीचारसे रक्षा करनी पडती है। उनको निरतिचार रखकर ही व्रतोंसे पुण्य होता है अन्यथा नहीं।

शङ्का-व्रतीने हिंसाका त्याग किया है, बन्ध आदि अतिचारों का त्याग नहीं किया है। अतः उसे बन्धके करनेपर अतीचार कदाचित् नहीं लगना चाहिए। कहा जावे कि उसने बन्ध आदि अतीचारोंका भी त्याग किया हैं तो कहना पडेगा कि बन्ध आदिके करनेमें अहिंसाव्रतका ही भंग होता है, अतीचारका नहीं ?

दूसरी बात यह भी है कि बन्ध आदिका त्याग करनेपर ५ अणुव्रत नहीं रहेंगे, जितने अतीचारोंका त्याग उसने किया है व्रतोंकी संख्या भी उतनी ही माननी पडेगी, इस तर्कसे बन्ध आदि अतीचार नहीं कहे जाने चाहिए।

उत्तरः-तुम्हारा कहना ठीक है। हिंसाका ही अहिंसाणुव्रतीके त्याग है। उसने बन्ध आदिका व्रत नहीं किया है। तथापि स्थूलहिंसाके त्यागसे बंध आदिका भी त्याग उसने किया है यह समझना चाहिए। क्योंकि बंध आदि सभी हिंसाके कारण हैं। और उन बंध आदिके किए जानेपर उनका व्रतभंग नहीं होता, किन्तु अतीचार ही लगता है, क्योंकि व्रत दो प्रकार का होता है-एक अन्तर्वृत्तिसे, दूसरा बहिर्वृत्तिसे। बंध आदिके करते हुए " मैं मार रहा हूँ" इस प्रकारका विकल्प उसके अन्तःकरणमें नहीं है। किन्तु " बांध रहा हूं" ऐसा विकल्प हैं। इसलिए वह बांधे जानेवाले जीव के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणोंकी क्रोधके आवेशमें परवाह नहीं कर रहा है और बांध रहा है। इस अपेक्षासे यद्यपि उसके द्वारा उसकी समझसें हिंसा नहीं हो रही है तथापि निर्दयता पाई जाती है। निर्दयताका त्याग अहिंसाव्रतमें होना चाहिए, इस बातकी उससमय वह अपेक्षा नहीं कर रहा है। इसलिए अन्तर्वृत्तिसे तो जरूर हिंसा है परन्तु बहिर्वृत्तिसे उसने प्राण-हानि नहीं की है, इसलिए उसके व्रतका पालन भी हो रहा है, एकदेश की रक्षा हो रही है और एकदेशका भंग भी हो रहा है। इस दृष्टिसे बंध आदिके करनेमें अतीचार समझना चाहिए। कहा भी है–

न मारयामीति कृतव्रतस्य विनैव मृत्युं क इहातिचारः।
निगद्यते यः कुपितो वधादीन् करोत्यसौ स्यान्नियमानपेक्षः॥१॥

मृत्योरभावान्नियमोऽस्ति तस्य कोपाद्दयाहीनतया हि भङ्गः।
देशस्य भङ्गादनुपालनाश्च पूज्या अतीचारमुदाहरन्ति॥२॥

अर्थः–जब अहिंसाणुव्रतीके "मै किसीको मारुंगा नहीं" इस प्रकारसे हिंसाका त्याग है तब जीवको विना मारे उसको बन्ध आदिके करनेपर भी उसके अहिंसाव्रतमें अतीचार कैसे लगेगा? अर्थात् नहीं लग सकता है तथापि वह व्रतकी परवाह न करके क्रोधके आवेशमें बन्ध वगैरह कर रहा है, ऐसी स्थितिमें देखनेमें तो उस जीवकी मृत्यु न होनेसे नियम पल रहा है, परन्तु निर्दयतायुक्त व्यवहार होनेसे वास्तवमें यह अहिंसाके व्रतसे च्युत भी है। इस तरह एकदेशके पालनेसे बंध आदिको अहिंसाणुव्रतका अतीचार बडे पूज्य आचार्योंने कहा है।

और यहां शंकाकारने जो यह कहा था कि यदि बंध आदिका भी त्याग है तो व्रतोंकी संख्या का भंग हो जावेगा अर्थात् अणुव्रतों की संख्या ५ न रहकर अधिक माननी पडेगी। इसका उत्तर यह है कि विशुद्धिसहित परिणामोंसे अहिंसाके पालनेपर बन्ध आदि अतीचार लगते ही नहीं है। शुद्धभावसे पाली हुई अहिंसामें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध आदि अतीचार नहीं लगते। इसलिए व्रतोंकी अधिक संख्यासे आननेका प्रसंग ही नहीं आता है। इसी विषयका स्पष्टीकरण–

न हन्मीति व्रतं क्रुध्यन्निर्दयत्वान्न पाति न।
भनक्त्यघ्नन् देशभङ्गत्राणात् त्वतिचरत्यधीः ॥१७॥

अन्वयार्थ (क्रुध्यन्) क्रोध करनेवाला (अधीः) अज्ञानी (निर्दयत्वात्) करुणारहित होनेसे (न हन्मि) मैं जीवोंको नहीं मारूँगा (इति) इस प्रकारसे (व्रतं) अहिंसाणुव्रतकी (न पाति) रक्षा नहीं करता है, तथा (अघ्नन्) जीवोंको, प्राणोंको वियोग नहीं करनेसे (न भनक्ति) अहिंसाणुव्रत का पूर्ण घात भी नही करता है। (तु) परन्तु (देशभंगत्राणात्) एकदेश व्रतभंग तथा एकदेश पालन होनेसे (अतिचरति) व्रतोंमें अतिचार लगता है ॥१७॥

भावार्थः–क्रोधी कसके बांधनें आदिमें जब प्रवृत्त होता है तब उसके दयाका अभाव होनेसे अंतरंगमे तो अहिंसाव्रतका सच्चा पालन नहीं हो रहा है, परन्तु जीवको वह बांध रहा है, साक्षात् मार नहीं रहा हैं इसलिये बहिरंगमें पालन हो रहा है, इसतरह एक दृष्टिसे एकदेशभंग और एक दृष्टिसे पालन होनेके कारण वन्ध आदि करनेपर अतिचारीके अतीचारदोष लगता है।

अतिचारका लक्षण बताकर पन्द्रहवें श्लोकमें "भुक्तिरोधं च" इस वाक्यमें जो 'च' शब्द आया है उस 'च' शब्दसे गृहीत अन्य अतीचारोंको भी बताते हैं–

सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभञ्जनम्।
मन्त्रतन्त्रप्रयोगाद्याः परेऽप्यूह्यास्तथाऽत्ययाः ॥१८॥

अन्वयार्थः–(हि) क्योंकि (व्रते) व्रतमें (सापेक्षस्य) अपेक्षा रखनेवाले पुरुषका (अंशभञ्जनं) एकदेश व्रतभंग होना (अतिचारः) अतीचार (स्यात्) होता है–कहलाता है तथा (मन्त्रतन्त्रप्रयोगाद्याः) मन्त्रतन्त्रके प्रयोग आदिमें जिनके ऐसे दुष्टकर्मोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धिके कारणभूत ध्यानादिक और (परेऽपि) दूसरे शास्त्रोंमें कहे गये खोटेकर्मं भी (तथा) व्रतकी अपेक्षापूर्वक अुसके एक देश-भंग होनेरूप प्रकारसे (अत्यया:) अतीचार (ऊह्या:) लगा लेना चाहिये अर्थात् अतीचार समझना चाहिये।

भावार्थ:–व्रतमें अपेक्षा रखनेवाले व्यक्तिके अंतरंग वा बहिरंग वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिका भंग होना अतीचार है। इसलिए ५ अतीचारोंके अतिरिक्त मन्त्रतन्त्र आदिके द्वारा भी किसी जीवके लिए किए गए बन्ध आदि भी अतीचार हैं। "इष्टक्रियाक सिद्ध करनेमें समर्थ विशिष्ट अक्षरोंके समूहको मन्त्र" और सिद्ध औषधियोंको 'तन्त्र' कहते हैं। इनके द्वारा भी जो किसीकी गतिका रोकना, गतिका स्तंभन कर देना, उच्चाटन करना ये भी सब अहिंसाणुव्रतके अतीचार हैं। क्योंकि यह सब कषायपूर्वक किए जाते हैं इसलिये दयाके घातक हैं।

अब–बंधादिके अतीचारोंका समर्थनपूर्वक आचारके मलपरिहारमें यत्न कराते हुए कहते हैं–

मन्त्रादिनाऽपि बन्धादिः कृतो रज्ज्वादिवन्मलः।
तत्तथा यतनीयं स्यान्न यथा मलिनं व्रतम् ॥१९॥

अन्वयार्थ:–(मन्त्रादिना) मन्त्रादिके द्वारा (अपि) भी (बन्धादि:) बंधन–ताडन आदि (कृतो) किया होगा (रज्ज्वादिवत्) रस्सी आदि बांधनेके समान (मल:) अतीचार है, (तत:) इसलिये (तथा) अुसप्रकार (यतनीयं) प्रयत्न करना चाहिये (यथा) जिससे (व्रतम्) व्रत (मलिनं) मलिन (न स्यात्) न होवे।

भावार्थ:–जिस प्रकार लाठी आदिके ताडनेसे व्रतका एकदेश भंग होता है, इसलिए अतीचार है। उसी प्रकार मन्त्र आदिके द्वारा बंधनादि करना भी अतीचार है। इसलिए मैत्र्यादि भावनास प्रमादपरिहारपूर्वक चेष्टा करनी चाहिए, जिससे विशुद्धाध्यवसायलक्षण व्रतोमें अतीचार न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसाणुव्रत स्वीकार करनेकी विधी–

हिंस्यहिंसकहिंसातत्फलान्यालोच्य तत्त्वतः ।
हिंसां तथोज्झेन्न यथा प्रतिज्ञाभङ्गमाप्नुयात् ॥२०॥

अन्वयार्थ– (तत्त्वतः) तत्त्वसे (हिंस्यहिंसकहिंसातत्फलानि) हिंस, हिंसक, हिंसा और हिंसाके फलको (आलोच्य) विचार करके (हिंसां) हिंसाको (तथा) उस प्रकार (उज्झेत्) छोडना चाहिये (यथा) जिससे (प्रतिज्ञाभंगं) नियमका खंडन (न आप्नुयात्) नहीं होवे ।

भावार्थ– अहिंसाणुव्रतीको अहिंसाके व्रतमें हिंसक कौन होता है, हिंसा किसे कहते हैं, हिंसाफल क्या है इन बातोंका अपने साथी गुरु और अन्य मुमुक्षुओंके साथ तत्वदृष्टिसे खूब विचार करके इस ढंगसे हिंसाका त्याग करना चाहिये कि जिससे वह अपनी व्रतके विषयमें ली हुई प्रतिज्ञाको पूरा पालता रहे, किसी भी प्रकारसे उसकी प्रतिज्ञाका भंग न होने पावें ।

हिंस्य, हिंसक, हिंसा और हिंसाका फल बताते हैं––

प्रमत्तो हिंसको हिंस्या द्रव्यभावस्वभावकाः ।
प्राणास्तद्विच्छिदा हिंसा तत्फलं पापसञ्चयः ॥२१॥

अन्वयार्थ– (प्रमत्तः) प्रमादी (हिंसकः) हिंसक कहलाता है (द्रव्यभावस्वभावकाः) द्रव्य और भावरूप(प्राणाः)प्राण (हिंस्याः) हिंस्य कहलाते हैं तथा (तद्विच्छिदा) उन द्रव्यभावरूप प्राणोंका वियोग करना (हिंसा) हिंसा और (पापसञ्चयः) खोटे कर्मोंका बन्ध (तत्फलं) हिंसाका फल कहलाता है ।

भावार्थ– हिंसादि का वर्णन विस्तारपूर्वक महाव्रत के प्रकरण में किया है इसलिये पुनः यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया । वास्तविकमें कषायादि युक्त प्रमादी मानव हिंसक कहलाता है । पुद्गलात्मक इन्द्रियबल और आयु इन द्रव्य प्राणोंका तथा चैतन्यात्मक भावप्राणोंका घात करना हिंसा कहलाती है । द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भाव प्राण हिंस्य कहलाते हैं। नानाप्रकारके नरकादि दुःख प्रद कर्मबन्ध हिंसाका फल है।

ग्रहस्थी के अहिंसाव्रतकी निर्मलताकी विधी कहते हैं--

कषायविकथानिद्राप्रणयाक्षविनिग्रहात्।
नित्योदयां दयां कुर्यात्पापध्वान्तरविप्रभाम् ॥२२॥

अन्वयार्थ-अहिंसाव्रतको निर्मल करनेके लिये (कषाय विकथा निद्राप्रणयाक्षविनिग्रहात्) कषाय, विकथा, निद्रा, स्नेह और इन्द्रियोंको निग्रह करनेसे (पापध्वान्तरविप्रभां) पापरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य की किरणोंके समान (नित्योदयां) नित्योदयको प्राप्त होनेवाली (दयां) दया (कुर्यात्) करनी चाहिये।

भावार्थ- क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं। मार्गविरुद्ध भक्तकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, राजकथा ये चार विकथा हैं, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांच इन्द्रियां हैं। मेरा यह हितकर है इसप्रकार स्नेह और भोजनके परिणमनमें हेतु निद्रा ये १५ प्रमाद होते हैं। इन पन्द्रह प्रमादोंको निरोधकरके पापरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्यके समान तथा जिसका अविच्छिन्नरूपसे उपाय है ऐसी अनुकम्पा का उदय निरंतर हृदय में होना चाहिये।

पापको अन्धकार और पुण्यको प्रकाशरूप कहा है। और दया पापको नाश करनेवाली है इसलिये उसको सूर्य के समान कहा है। उक्तं च-

पुण्यं तेजोमयं प्राहुः प्राहुः पापं तमोमयम्।
तत्पापं पुंसि किं तिष्ठेद्दयादीधितिमालिनि ॥१॥
स्नेहानुविद्धहृदयो ज्ञानचारित्रान्वितोऽपि न श्लाघ्यः।
दीप इवापादयिता कज्जलमलिनस्य कार्यस्य ॥२॥

अर्थ- पुण्यको तेजमय और पापको तमोमय कहा है, इसलिए दयारूपी सूर्यके उगनेपर पापरूपी अन्धकार कैसे ठहर सकता है? ज्ञान और चारित्रसे युक्त होकर भी यदि मोहसहित है तो उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसा नहीं की जा सकती है । जो दीपक काजलको पैदा करता है वह प्रशंसनीय नहीं है ।

यद्यपि सूर्य रात्रिमें अस्त होता है केवल दिन में अर्थप्रकाशक है, परन्तु अनुकम्पा निरंतर उदय रहनेवाली है, इसलिये नित्योदयी कहा है । अहिंसाणुव्रत को निर्मल करने की इच्छा करनेवाले मनुष्य को निरंतर कोमलपरिणामी होना चाहिये ।

विशेषार्थ– भक्तकथा– ये बढिया चावल हैं तथा मोहक हैं, अच्छी तरह मुझे खाना चाहियें, तुम खावो, जो लोग खाते हैं, सो बहुत अच्छा करते हैं, इस प्रकारकी कथाओंको भक्तकथा कहा है ।

स्त्रीकथा– "कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया ।" कर्णाटक देशकी स्त्रियां भोगविलासके समय उपचार करनेमें चतुर हैं, लाट देशकी स्त्रियां विदग्ध=चतुर होती हैं और प्यारी होती हैं, अमुक स्त्रियोंके हावभाव अच्छे होते हैं,पहनाव मनोज्ञ मालूम पडता है, अमुकके कटाक्ष बहुत सुन्दर होते हैं,इत्यादि कथाको स्त्रीकथा कहते हैं ।

देशकथा– दक्षिणदेश मनोहर भोजन और भोगविलासकी सामग्रीसे युक्त है; पूर्वदेशमें गुड, खांड, धान और नानाप्रकारके मद्य तैयार होते हैं इत्यादि देशकथा है ।

राजकथा– हमारा राजा शूर है, दानी है, हमारे राजाके यहां सबसे अधिक घोडे हैं, हाथी हैं इत्यादि कथाको राजकथा कहते हैं ।

इन कथाओंको निन्दाके रूपमें भी प्रतिपादन किया जा सकता है । ये भोजन खराब है, अमुक स्त्रियां बदसूरत है, अमुक देश खराब है, अमुक राजा खराब है इत्यादि । परन्तु ये ही कथाएँ वस्तुस्वरूपप्रतिपादनमें कही जावें तो धर्मकथाका रूप धारण करती है तब प्रमादमें गर्भित नहीं होती है ऐसा समझना चाहिये । ये कथाएँ लालसा बढानेवाली हो तब ही प्रमादमें गर्भित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है यह अभिप्राय समझना चाहिये । इन्द्रिय और कषायके विषयसे सब परिचित है, इसलिये इनकी व्याख्या नहीं की ।

गृहस्थके अहिंसाणुव्रत पालन कठिन है ऐसी शंका का उत्तर देते हैं—

विष्वग्जीवचिते लोके क्व चरन् कोऽप्यमोक्ष्यत ।
भावैकसाधनौ बन्धमोक्षौ चेन्नाभविष्यताम् ॥२३॥

अन्वयार्थ– (चेत्) यदि (भावैकसाधनौ) परिणाम ही हैं एक प्रधान कारण जिनका ऐसे अर्थात् भावोंके आधीन (बन्धमोक्षौ) बन्ध और मोक्ष (नाभविष्यतां) नहीं होते तो (विष्वग्जीवचिते) चारों तरफसे जीवोंके द्वारा भरे हुए (लोके) संसारमें (क्व चरन्) कहींपर भी चेष्टा करनेवाला शरीरादिकके द्वारा व्यापार करनेवाला (कोऽपि) कोई भी मुमुक्षु पुरुष (अमोक्ष्यत) क्या मोक्षको जा सकता है अर्थात् कभी भी मोक्षको नहीं जा सकता है ।

भावार्थ– संसारमें ऐसी कोई जगह नहीं है जहां संमूर्च्छन जीव नहीं हैं । यह जग जीवोंसे भरा है । यदि बन्ध और मोक्ष भावके आधीन नहीं माने होते तो कहां रहकर कोई मुक्ति प्राप्त कर सकता था? कहीं रहकर भी नहीं । कारण जीवोंसे संसार ठसाठस भरा है । द्रव्यहिंसा जीवसे हुए विना रह नहीं सकती है । इस युक्तिसे सिद्ध होता है कि शुभपरिणामोंसे शुभबन्ध और अशुभपरिणामोंसे अशुभबन्ध होता है और विशुद्धभावोंसे मोक्ष होता है । हिंसा-अहिंसा प्रधानरूपसे मानी गई हैं ।

इस प्रकार अतिचारोंको टालते हुए अहिंसाणुव्रतके पालनेका उपदेश देकर अब रात्रिभोजनत्याग अहिंसाणुव्रतकी रक्षाकें लिये और अष्टमूलगुणोंकी विशुद्धिके लिए जरूर करना चाहिये यह बताते हैं—

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये ।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धाऽपि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत् ।२४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थं-व्रती श्रावकको (अहिंसाव्रतरक्षार्थं) अहिंसा व्रतकी रक्षा करने के लिये (अपि) तथा (मूलव्रतविशुद्धये) मूलगुणोंकी विशुद्धि करने के लिये (धीरः) धैर्यसे युक्त होकर (त्रिधा) मन, वचन और कायसे (सदा) जीवनपर्यन्त के लिये (चतुर्धा) अन्न, पान, लेह्य और स्वाद्य इन चारों के (भुक्ति) आहारों को (नक्तं) रात्रिमें (त्यजेत्) छोड देना चाहिये ॥२४॥

भावार्थ-परीषह और उपसर्ग सहन करनेवाले को धीर कहते हैं। अहिंसाव्रत की रक्षा करने के लिये तथा मूलगुणों की विशुद्धि करने के लिये धैर्य से युक्त होकर व्रतीश्रावक को मन, वचन, कायसे अन्न, पान, स्वाद्य और लेहके भेद से होनेवाले चारों ही प्रकारके आहार को जीवनपर्यन्त रात्रिमें खाने क त्याग कर देना चाहिये ॥२४॥

दृष्ट, अदृष्ट अनेक दोषोंसे युक्त रात्रिभोजनका वक्रोक्तिसे तिरस्कार करते हैं-

जलोदरादिकृद्यूकाद्यङ्कमप्रेक्ष्यजन्तुकम् ।
प्रेताद्युच्छिष्टमुत्सृष्टमप्यश्नन्निश्यहो सुखी ॥२५॥

अन्वयार्थं-(अहो) आश्चर्य है कि (जलोदरादिकृद्यूकाद्यङ्कं) जलोदरादिक रोगोंको करनेवाले जूं वगैरह हैं मध्यमें जिसके ऐसे और (अप्रेक्ष्यजन्तुकं) नहीं दिखाई देते हैं जन्तु जिसमें ऐसे तथा (प्रेताद्युच्छिष्टं) प्रेतादिकके द्वारा उच्छिष्ट ('भोज्यं') भोजन को और (उत्सृष्टं अपि) त्यागी हुई वस्तुको भी (निशि) रात्रिमें (अश्नन्) खानेवाला पुरुष (सुखी) अपनेको सुखी मानता है।

भावार्थ-यहां अपि शब्द अन्त्यदीपक है। इसलिये चारों ही विशेषणोंमें लगाना चाहिये। रातमें भोजन करते समय सूर्य प्रकाश न मिल सकनेसे भोजनके ग्रासमें जलोदर आदि रोगोत्पादक जूं आदि देखे नहीं जा सकनेके कारण खानेमें आ सकते हैं। जल, घी आदिमें पडे हुए छोटे-छोटे कीडे देखें नहीं जा सकते हैं। खजूर आदिमें लिप्त छोटे-छोटे कीडे देखे नहीं जा सकते हैं। भोजन परो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सने आदिके लिये चलने-फिरनेमें जीवोंका घात संभव है। क्षुद्र-व्यंतरों द्वारा भोजन उच्छिष्ट किया जा सकता है। जिस चीजका त्याग किया गया है, यदि भोजनमें मिल रही हो तो उसकी पहचान भोजनमें की नहीं जा सकती। अतः रातमें भोजन करनेवाला क्या सुखी हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है।

भोजनके साथ पेटमें यदि जूं चला जाय तो जलोदर पैदा करता है। मकडी कुष्टरोगको करती है। मक्खी वमन कराती है। भोजनमें मिला हुआ विच्छू तालूगतरोगको उत्पन्न करता है। कुंटक नामका कीडा वा एक प्रकारका काष्टका टूकडा भोजनसे पेटमे चला जाय तो गलेमे पीडा करता है बालस्वर भंग करता है। ऐसे बहुतसे विश्वासमें आ जानेवाले दोष रातके भोजनमें हैं। इसलिए रात्रिभोजनका त्याग करना चाहिये।

अब-रात्रिभोजन कितना बडा पाप है इसको वनमालाके उदाहरणसे बतातें हैं-

त्वां यद्युपैमि न पुनः सुनिवेश्य रामं।
लिप्ये वधादिकृदघैस्तदिति श्रितोऽपि।
सौमित्रिरन्यशपथान्वनमालयैकं।
दोषाशिदोषशपथं किल कारितोऽस्मिन् ॥२६॥

अन्वयार्थ-(किल) रामायणमें इस प्रकार सुना जाता है कि (यदि) यदि (रामं) रामको (सुनिवेश्य) अच्छी तरहसे व्यवस्थित करके ('अहं') मैं (पुनः) फिरसे लौटकर (त्वां) तुमको (न उपैमि) प्राप्त नहीं होवुं अर्थात् यदि तुम्हारे पास नहीं आऊँ (तत्) तो (वधादिकृदघैः) हिंसा आदिको करनेवाले पुरुषोंके पापोंसे ('अहं') मैं (लिप्ये) लिप्त होऊँ (इति) इस प्रकारसें (अन्यशपथान्) दूसरी प्रतिज्ञाओंको (श्रितोऽपि) प्राप्त होनेपर भी-ग्रहण करनेपर भी (सौमित्रिः) लक्ष्मण (अस्मिन्) इसलोकमें (वनमालया) वनमालाके द्वारा (एकं) दूसरी प्रतिज्ञाओंसे रहि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक (दोषाशिदोषशपथं) रात्रिमें भोजन करनेवाले पुरुषोंके पापसे लिप्त होनेरूप प्रतिज्ञाको (कारितः) प्राप्त कराये गये थे।

भावार्थः-कैकेयी महारानीके कथनानुसार भरतको राज्य महाराजा दशरथने दिया, तब श्रीराम अपने लक्ष्मण भाई और महारानी सती सीताके साथ वनवासके लिए चले गए थे। बीचमें कूर्च नगरके अधिपति महीधर राजाकी कन्या श्री वनमालाके साथ श्री लक्ष्मणका पाणिग्रहण हुआ। लग्नके अनन्तर श्री लक्ष्मण श्रीरामके साथ प्रस्थान करने लगे और अपनी परिणीता वधू वनमालाको समझाने लगे कि मैं अभी रामकी सेवामें हूं, उनको योग्य व उनकी इच्छानुसार इष्ट स्थानपर पहुंचाकर उनकी व्यवस्था करके मैं वापिस आता हूं, तू चिंता मत कर। परन्तु विरहातुर वह वनमाला सन्तुष्ट नहीं हुई। ऐसी परिस्थितिमें लक्ष्मणजीने वनमालाको विश्वास दिलानेके लिए कई प्रकारकी शपथें खाई। यदि मैं बडे भाईको उनके इच्छित स्थानपर पहुंचाकर तेरे पास वापिस न आऊं तो गोहत्या, स्त्रीवध आदिके पापसे लिप्त होऊँ। परन्तु वनमालाने श्री लक्ष्मणसे इन सब शपथोमेसे कठिन शपथ केवल यह कराई कि यदि मैं श्री रामको उनके इष्ट स्थानमें पहुंचाकर वापिस नही आऊँ तो रात्रिभोजनके पापसे लिप्त होऊं। और तब ही वनमालाको भी लक्ष्मणके वापिस आनेका विश्वास हुआ। यह रामायणकी कथा है। इससे सिद्ध है कि प्राचीन कालमें अन्यमतावलम्बीयोंमें भी रात्रिभोजन कितना बडा पाप समझा जाता था। इसलिए रात्रिभोजनका त्याग करना ही चाहिये।

लौकिकसंवाद दिखाकर भी रात्रिभोजनका निषेध करते हैं-

यत्र सत्पात्रदानादि किंचित्सत्कर्म नेष्यते।
कोऽद्यात्तत्रात्ययमये स्वहितैषी दिनात्यये ॥२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(यत्र) जिस समयमें (सत्पात्रदानादि) सत्पात्र दानादि (किंचित्) कोई भी (सत्कर्म) शुभकार्य (न) नहीं (इष्यते) किया जाता है, (तत्र) उस (अत्ययमयं) अत्यन्त दोष-पूर्ण (दिनात्यये) रात्रिके समय (स्वहितैषी) आत्मकल्याण इच्छुक (कः) कौन बुद्धिमान (अद्यात्) भोजन करेगा अर्थात् कोई नहीं करेगा ।।२७।।

भावार्थ--जैनधर्म से बहिर्भूत मिथ्यादृष्टियों के भी रात्रिमें सत्पात्रदान, स्नान, देवार्चन, आहुति, श्राद्ध और विशेष करके भोजन आदि शुभकर्म इष्ट नहीं हैं। क्योंकि रात्रिका समय बहुत दोषयुक्त है। इसलिये इस लोक और परलोक दोनो लोक के हित-वाञ्छक कौन बुद्धिमान पुरुष रात्रिके समय भोजन करेगा अर्थात् कोई नहीं करेगा ।।२७।।

दिनरात के भोजन से मनुष्यकी उत्तम, मध्यम और जघ-न्यता को बताते हैं--

भुञ्जतेऽह्नः सकृद्वर्या द्विर्मध्याः पशुवत्परे ।
रात्र्यहस्तद्व्रतगुणान् ब्रह्मोद्यान्नावगामुकाः ।।२८।।

अन्वयार्थ--(अह्नः) दिन में (सकृत्) एकबार (भुञ्जते) भोजन करता है, (वर्याः) वह उत्तमपुरुष है (द्विः) दिनमें दो बार भोजन करनेवाला (मध्याः) मध्यमपुरुष है। और जो (ब्रह्मोद्यान्) सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहे गये (तद्व्रतगुणान्) रात्रि-भोजन के त्यागव्रतके गुणों को (नावगामुकाः) नहीं जाननेवाले (पशुवत्) पशुके समान (रात्र्यहः) रात दिन (भुञ्जते) खाते हैं वे (परे) अधमपुरुष हैं ।।२८।।

भावार्थ--शुभक्रियाओं में निरंतर दत्तचित्त रहने वाले उत्तमपुरुष दिन में एक ही बार भोजन करते हैं। मध्यमरीतिसे शुभाचरण करनेवाला मध्यमपुरुष दिनमें दो बार भोजन करते हैं। परन्तु सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहे गये रात्रिभोजनत्याग के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलको नहीं जाननेवाले अधम पुरुष गाय, भैंस आदि पशु के समान रात-दिन भोजन करते हैं।

सारांश– दिनमें एकबार भोजन करना उत्तमपुरुषोंका आचरण है। दिनमें दो बार भोजन करना मध्यमपुरुषोंका कार्य हैं। परन्तु जो पशुके समान रात–दिन भक्षण करते हैं, वे अधम पापी हैं।

शास्त्रके उदाहरणविना केवल सकलजन अनुभवसिद्ध रात्रिभोजनत्याग के फल विशेषको कहते हैं—

योऽत्ति त्यजन् दिनाद्यन्तमुहूर्तौ रात्रिवत्सदा।
स वर्ण्येतोपवासेन स्वजन्मार्द्धं नयन् कियत् ॥२९॥

अन्वयार्थ– (यः) जो मानव (रात्रिवत्) रात्रिके समान (सदा) हमेशा (दिनाद्यन्तमुहुर्तौ) दिनके शुरूवात की और अन्तकी एक मुहुर्तको (त्यजन्) छोडकर (अत्ति) भोजन करता है। (सः) वह (स्वजन्मार्द्धं) अपने जन्मके आधे भाग को (उपवासेन) उपवाससे (नयन्) व्यतीत करनेवाला (कियत्) कितना (वर्ण्येत) प्रशंसनीय है ॥२९॥

भावार्थ– जो मानव रात्रिके समान सूर्योदय के उदय कालकेबाद दो घटिका तथा सूर्यास्तके पूर्वकी दो घटिका कालको छोडकर भोजन करता है, उसका जन्म आधा-काल चतुर्विध आहार के त्यागसे व्यतीत होता है अर्थात् उसको एक वर्ष में छह महिने के उपवास का फल प्राप्त होता है। वह सज्जन पुरुषोंके द्वारा स्तुति का पात्र होता है।

अब– रात्रिभोजनत्यागके समान अन्तराय टालकर भोजन करना भी अहिंसाणुव्रतका रक्षक है तथा मूलगुणोंकी विशुद्धि करनेवाला है, इसलिये इन अग्रिम चार श्लोकोंसे अन्तरायोंका वर्णन करते हैं—

अतिप्रसङ्गमसितुं परिवर्धयितुं तपः।
व्रतबीजवृतीः भुक्तेरन्तरायान् गृही श्रयेत् ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (गृही) गृहस्थ व्रती (अतिप्रसंगं) अतिप्रसंगको (असितुं) दूर करने के लियें (तपः) तपको (परिवर्धयितुं) बढाने के लिये (व्रतबीजवृती:) व्रतरूपी बीजकी रक्षा करनेके लियें वाडी के समान (भुक्तेः) भोजनके (अंतरायान्) अंतरायोंका (श्रयेत्) पालन करे ॥३०॥

भावार्थ–जिसप्रकार वाडसे खेतकी रक्षा होती है उसी प्रकार अन्तरायोंका पालन करने से अहिंसाणुव्रतकी रक्षा होती है ।

भोजन करते समय अन्तरायका ध्यान नहीं रखा जायगा तो भोजनमें लोलुपता बढ जायगी । और जिससे वह भोजनके विषय में कितना शिथलाचारी हो जायगा यह विवेचन करना भी अशक्य है । इसी को अतिप्रसंगदोष कहते हैं । इच्छा निरोध को तप कहते हैं । भोजन करते समय यदि अन्तराय आ जाय तो अन्न–जल छोडना पडेगा । और भोजन करते–करते बीचमें भोजन छोडनेसे स्वाभाविक इच्छानिरोधतप हो जाता है । इसलिये व्रतीश्रावक को व्रतोंकी रक्षा करने के लिये तप की वृद्धि करने के लिये और अतिप्रसंग दोषको दूर करने के लिए अंतराय टालकर ही भोजन करना चाहिये ।

अब– तीन श्लोकमें उन्हीं अन्तरायोंके स्वरूपको बताते हैं–

दृष्ट्वाऽऽर्द्रचर्मास्थिसुरामांसासृक्पूयपूर्वकम् ।
स्पृष्ट्वा रजस्वलाशुष्कचर्मास्थिशुनकादिकम् ॥३१॥
श्रुत्वाऽतिकर्कशाक्रन्दविड्वरप्रायानिःस्वनम् ।
भुक्त्वा नियमितं वस्तु भोज्येऽशक्यविवेचनैः ॥३२॥
संसृष्टे सति जीवद्भिर्जीवैर्वा बहुभिर्मृतैः ।
इदं मांसमिति दृष्टसङ्कल्पे चाशनं त्यजेत् ॥३३॥

अन्वयार्थ– ('व्रतिकः') व्रतोंको पालनेवाला गृहस्थ (आर्द्रचर्मास्थिसुरामांसासृक्पूयपूर्वकम्) गीलाचमडा, हड्डी, मदिरा मांस, लोहू तथा पीप आदि पदार्थोंको (दृष्ट्वा) देखकरके और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(रजस्वलाशुष्कचर्मास्थिशुनकादिकं) रजस्वला स्त्री, सूखा चमडा, हड्डी, कुत्ता, बिल्ली व चांडालादि वगैरहको (स्पृष्ट्वा) स्पर्श करके अर्थात् इनका स्पर्श हो जानेपर तथा (अतिकर्कशाक्रन्दविड्वरप्रायनिःस्वप्नं) 'इसका मस्तक काटो' इत्यादि रूप अत्यंत कठोरशब्दोंको, हा, हा, इत्यादि रूप आर्तस्वरशब्दोंको और परचक्रके आगमनादि विषयक विड्वरप्राय शब्दोंको (श्रुत्वा) सुन करके तथा (नियमितं वस्तु) त्यागी हुई वस्तुको (भुक्त्वा) खा करके और (अशक्यविवेचनैः) खानेयोग्य पदार्थसे अशक्य है अलग करना जिनका ऐसे (जीवद्भिः) जीते हुए (जीवैः) द्वीइन्द्रियादि जीवोंके द्वारा (वा) अथवा (बहुभिः) तीन, चार आदि (मृतैः) मरे हुए ('जीवैः') जीवोंके द्वारा (भोज्यं) खानेयोग्य पदार्थके (संसृष्टे सति) मिल जानेपर अर्थात् भोजनमें, भोजनसे अशक्य है अलग करना जिनका ऐसे जीवित अथवा तीन, चार आदि मृत जीवोंके मिल जानेपर (च) तथा (इदं मांसं) यह खानेयोग्य पदार्थ मांसके समान है (इति) इस प्रकारसे (दृष्टसङ्कल्पे) खाने योग्यपदार्थमें मनके द्वारा सङ्कल्प होनेपर (अशनं) भोजनको (त्यजेत्) छोडे ।

भावार्थ– गीला चमडा, हड्डी, दारु, मांस, रक्त, पूं आदिको देखकर रजस्वला स्त्री, सूखा चमडा, हाड और कुत्ते आदिको छूकर इसके "शिरको काटो" इत्यादि कर्कश वचनोंको "हाय हाय" इत्यादि आर्तस्वरको, "शत्रुकी सेना चढ आई" इत्यादि आतंक-उत्पादक शब्दोंको विड्वरप्रायनिस्वन कहते हैं । इन वचनोंको सुन-कर भोजन छोड देवें । खानेके ग्रासमें त्यागी हुई वस्तुके आ जाने-पर भोजन छोड देवें । जिनको निकाल नहीं सकते अर्थात् निका-लनेपर जिनके मरणकी आशंका है ऐसे लटपिपीलादिक द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, या चतुरिन्द्रिय जीवित जीव खानेके पदार्थमें पड जावे तो भोजन छोड देवे । तथा घी आदिमें चींटी वगैरह मरे हुए ३–४जीव होवें तो भोजन छोड देवे । तथा कोई यह कह देवे कि यह पदार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मांसके समान है, अथवा स्वयं मांसका संकल्प किसी खाद्यपदार्थोंमें उत्पन्न हो कि यह "मांस जैसा दिखता है, तब उसी समय भोजन छोड देवे। यही सब भोजनके अन्तराय हैं। भोजन जिन कारणसे छोडना चाहिये उसे अन्तराय कहते हैं।

अहिंसाणुव्रतके लिए मौन व्रतशील है अर्थात् उसका पोषक है, इसलिये इन ५ श्लोकोमें मौनव्रतका व्याख्यान करते हैं–

गृध्द्यै हुङ्कारादिसञ्ज्ञां संक्लेशं च पुरोऽनु च।
मुञ्चन् मौनमदन् कुर्यात्तपः संयमबृंहणम् ॥३४॥

अन्वयार्थ– (गृध्द्यै) खानेयोग्य इष्टपदार्थकी प्राप्तिके लिये अथवा भोजन विषयस्थ इच्छाको प्रकट करनेके लिये (हुङ्कारादिसंज्ञां) हुंकारना, ललकारना आदि इशारोंको (च) और (पुरा) भोजनके पहले (च) तथा (अनु) भोजनके पीछे (संक्लेश) संक्लेशको (मुञ्चन्) छोडता हुआ (अदन्) भोजनको करनेवाला (व्रतिकः) व्रतीश्रावक (तपः संयमबृंहणं) तप और संयमको बढानेवाला (मौनं) मौनको (कुर्यात्) करे।

भावार्थ– व्रती श्रावकको भोजन करते समय तप और संयम बढानेके लिये मौन धारण करना चाहिये। और भोजन करते समय भोजनकी लोलुपतासे हुंकार करना, खंकारना, शिर हिलाना, चुटकी बजाना इन सारेका त्याग करना चाहिये। अथवा ये लोग भोजन कराते समय परोसने आदिका ख्याल नहीं रखते हैं इसलिए इस प्रकारका संक्लेश भोजनके पहले अथवा पीछे नहीं करना चाहिये। कहा भी है––

हुंकारांगुलिखात्कार भ्रूमूर्धचलनादिभिः।
मौनं विदधता संज्ञा विधातव्या न गृद्धये ॥
भ्रूनेत्रहुंकारकरांगुलीभिर्गृद्धिप्रवृत्यै परिवर्ज्य संज्ञाम्।
करोति भुक्तिं विजिताक्षवृत्तिः स शुद्धमौनव्रतवृद्धिकारी ॥

अर्थः–हूं हूं करना, अंगुलीका इशारा करना, खांसना, खखारना, भौंहे चलाना, सिर मटकाना आदि भोजन पदार्थके परोसनेके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये इशारे, भोजनके समय मौन पालनेवालोंको नहीं करना चाहिये। किन्तु जितेन्द्रिय बनकर भ्रूनेत्र अंगुलीके द्वारा किये जानेवाले इशारोंका त्याग करके मौनपूर्वक सन्तोषसे जो भोजन करता है वह शुद्ध मौनव्रतकी वृद्धि करनेवाला है।

यदि कोई अधिक परोसता हो, अथवा कोई चीज खाना नहीं है तो उसका निषेध करना दोषदायक नहीं है।

अब-मौनव्रत तप बढानेवाला और पुण्यका संचय करानेवाला है यह बताते हैं-

अभिमानावने गृद्धि-रोधाद्वर्धयते तपः।
मौनं तनोति श्रेयश्च श्रुतप्रश्रयतायनात् ॥३५॥

अन्वयार्थ-(मौनं) मौनव्रत (अभिमानावने) अयाचक वृत्ति की रक्षा करनेवाला होनेसे तथा (गृद्धिरोधात्) भोजनकी लोलुपता के नाश करनेका कारण होनेसे (तपः) तपको (वर्द्धयते) बढाता है (च) और (श्रुतप्रश्रयतायनात्) श्रुतज्ञानके विनय का कारण होनेसे (श्रेयः) पुण्यको (तनोति) विस्तरित करता है॥३५॥

भावार्थ-मौनपूर्वक भोजन करनेसे अयाचक वृत्ति की रक्षा होती है, स्वाभिमान सुरक्षित रहता है। भोजनाभिलाषा नष्ट होती है, इसलिये मौन तपको बढानेवाला है। तथा मौनपूर्वक भोजन करनेसें द्रव्यश्रुतका विनय होता है। ज्ञानके विनय का कारण होने से मौन पुण्य को बढाने वाला भी है। अन्य ग्रन्थों में भी मौन व्रतकी अत्यन्त प्रशंसा की है।

सर्वदा शस्यते जोषं भोजने तु विशेषतः।
रसायनं सदा श्रेष्ठं सरोगत्वे पुनर्न किम् ॥१॥

अर्थः-यों तो मौनकी सर्वजगह प्रशंसा योग्य समझी जाती है, भोजनमें खासकर करणीय है। जैसे रसायन सब ही समय उपयोगी होती है। परंतु रोगके होनेपर विशेषरीतिसे लाभदायक समझी जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तोष भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दर्श्यते ।
संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते ॥१॥
लौल्यत्यागात्तपोवृद्धिरभिमानस्य रक्षणम् ।
उतश्च समवाप्नोति मनः सिद्धि जगत्त्रये ॥२॥
श्रुतस्य प्रश्रयात् श्रेयः समृद्धेः स्यात्समाश्रयः ।
ततो मनुजलोकस्य प्रसीदति सरस्वती ॥३॥
वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता ।
आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्ज्वलम् ॥४॥
पदानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः ।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिना मौनकारिणा ॥५॥

अर्थ-१)- जिसने मौन धारण किया है, उसकी सन्तोषकी भावना जागृत होती है, वैराग्यका दर्शन होता है और संयमकी पुष्टी होती है।

२)- लोलुपताका त्याग होनेसे तपकी वृद्धि होती है, स्वाभिमानकी रक्षा होती है और इससे मौन धारण करनेवाला तीन लोकमें मनकी सिद्धिको प्राप्त होता है।

३)- द्रव्यश्रुतकी विनयके प्रसारसे वह पुण्यवान बनता है और नाना प्रकारकी समृद्धियोंको पाता है।

४)- जो निर्मल मौन पालता है उसके प्रतापसे उसकी वाणी-शास्त्र संदर्भसहित मनोरथ होती है और आदेय होती है।

५)- और विद्वानोंके द्वारा जितनी वंदनीय पदवियां है वे सब मौनव्रतके प्रतापसे होती है।

मौनका विशेष प्रयोजन

शुद्धमौनान्मनःसिध्द्या शुक्लध्यानाय कल्पते ।
वाक्सिध्द्या युगपत्साधुस्त्रैलोक्यानुग्रहाय च ॥३६॥

अन्वयार्थ-(साधुः) मुनि वा देशसंयती (शुद्धमौनात्) निरतिचार मौनव्रतसे (मनःसिध्द्या) मनकी सिद्धि होने से (शुक्लध्यानाय) शुक्लध्यान प्राप्त करने के लिये (कल्पते) समर्थ होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है (च) और (वाक्सिध्द्या) वचनसिद्धि होनेसे (युगपत्) एक साथ (त्रैलोक्यानुग्रहाय) तीन लोक का अनुग्रह करने के लिये (कल्पते) समर्थ होता है।

भावार्थ–भोजन करते समय निरतिचार मौन व्रतपालन करनेसे मन वशमें होता है। जिससे साधु वा देशसंयमी पुरुष शुक्लध्यान प्राप्त करनेके लिये समर्थ होते हैं। क्योंकि शुक्लध्यान में चित्तविशुद्धि ही प्रधान कारण है। मौनव्रतसे वचन की शुद्धि होती है और वाक्यशुद्धि होनेसे एक ही सत्य तीन जगतका उपकार करने में समर्थ भारतीकी विभूति प्राप्त होती है। अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है।

नियतकालिक और सार्वकालिक मौन के उद्योतन विशेष के निर्णयके लिये कहते हैं–

उद्योतनं महेनैकघण्टादानं जिनालये।
असार्वकालिके मौने निर्वाहः सार्वकालिके ॥३७॥

अन्वयार्थ–(असार्वकालिके) अपनी शक्ति अनुसार नियत कालतक लिये हुये (मौने) मौनमें (जिनालये) जिनालयमें (महेन) महोत्सव के साथ (एकघंटादानं) एक घंटादान करना (उद्योतनं) उद्यापन है, और (सार्वकालिके) सार्वकालिकमौनमें (निर्वाहः) निराकुल होकर व्रतका करना उद्योतन है ॥३७॥

भावार्थ–मौनव्रत दो प्रकारका है एक सार्वकालिक और एक असार्वकालिक। जो यावज्जीवन मौनव्रत धारण किया जाता है उसको सार्वकालिक कहते हैं। और जो अपनी शक्ति अनुसार परिमित कालतक मौनव्रत धारण किया जाता है उसको असार्वकालिक कहते हैं। असार्वकालिक मौन की समाप्ति होनेपर महापूजा के साथ जिनमन्दिर में एक घण्टादान करके उद्यापन करना चाहिये। तथा असार्वकालिक मौन का यावज्जीवन निराकुलतासे निर्वाह करना उद्यापन है। सो ही अन्य ग्रन्थोंमें भी लिखा है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव्येन शक्तितः कृत्वा मौनं नियतकालिकम् ।
जिनेन्द्रभवने देया घण्टैका समहोत्सवम् ॥६॥
न सार्वकालिके मौने निर्वाहव्यतिरेकतः ।
उद्योतनं परं प्राज्ञैः किंचनापि विधीयते ॥७॥

अर्थ–इसलिये भव्योंको असार्वकालिकमौनव्रत पूरा करके उसका उद्यापन करना चाहिये और उद्यापन कराते समय १ घंटा जिनालयमें भेंट करना चाहिये ॥६॥

तथा सार्वकालिकमौनव्रतको जिन्होंने लिया है उन्हे उसको सदैव पालते रहना यही यमरूप लिये हुए मौनव्रतका सच्चा उद्यापन हैं ॥७॥

शक्ति अनुसार आवश्यकादिमें मौन धारण करना चाहिये तथा वचनके दोष को दूर करनेके लिये हमेशा मौनधारण करनेके लिये कहते हैं–

आवश्यके मलक्षेपे पापकार्ये च वान्तिवत् ।
मौनं कुर्वीत शश्वद्वा भूयो वाग्दोषविच्छिदे ॥३८॥

अन्वयार्थ–(वान्तिवत्) जैसे वान्ति होने पर मौन स्वीकार करते हैं उसीप्रकार (आवश्यके) सामायिक आदि षट् आवश्यकके समय में (मलक्षेपे) मलमूत्र करने के समयमें (च) और (पापकार्ये) हिंसा आदि पापकार्यो में (मौनं) मौन (कुर्वीत) धारण करे (वा) तथा (भूयो वाग्दोषविच्छिदे) बहुत से वचनके दोषोंका छेद करने के लिये (शश्वत्) हमेशा मौन रखें ॥३८॥

भावार्थ–सामायिक, देवपूजा आदि षट् आवश्यक्यके समय में, मलमूत्र विसर्जन के समयमें हिंसादि पापकार्य के दृष्टिगोचर होने के समय तथा वान्ति होनेके बाद जब तक मुखशुद्धि नहीं की हो तबतक मौनधारण करना चाहिये। और स्नान करते समय, भोजन करतेसमय, मैथुन के समय भी मौन रखना चाहिये। मुनिलोग जब गोचरी को जाते हैं उस समय उनको मौन धारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना चाहिये तथा जिनकी भाषा कठोर है उनको अपनी वाणी के दोषों को दूर करनेके लिये हमेशा मौनव्रत पालन करना चाहिये । ये अहिंसाणुव्रत की रक्षा के उपाय हैं ।

सत्याणुव्रतकी रक्षा के लिये कहते हैं--

कन्यागोक्ष्मालीक कूटसाक्ष्यन्यासापलापवत् ।
स्यात्सत्याणुव्रती सत्यमपि स्वान्यापदे त्यजन् ॥३९॥

अन्वयार्थ- (कन्यागोक्ष्मालीककूटसाक्ष्यन्यासापलापवत्) कन्या, गो, पृथ्वीसंबंधी, अलीक, कूटसाक्षी और धरोहरके अपलापके समान (स्वान्यापदे) स्वकी और अन्यकी आपत्तिमें कारणभूत (सत्यं) सत्य को (अपि) भी (त्यजन्) छोडनेवाला (सत्याणुव्रती) सत्याणुव्रती (स्यात्) होता है ।

भावार्थ- जिस प्रकार व्रतीश्रावक कन्यालीक, गो अलीक, कूटसाक्षी और न्यासापलापको नहीं बोलता है, उसी प्रकार जिस बातको बोलनेसे अपनेको तथा परको आपत्ती आनेकी संभावना हो ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिये । और न दूसरोंको बोलनेकी प्रेरणा करनी चाहिये । ऐसा करनेपर ही सत्याणुव्रती हो सकता है ।

कन्यालीक- जिस कन्याके साथ किसी कुमारकी शादीकी बातचीत चल रही हो या होनेकी हो उसके विषयमें विवाद उपस्थित होनेपर विपरीत बोलना कन्यालीक है । 'कन्या' शब्द द्विपदका उपलक्षण है । इसलिए इसी प्रकारके अन्य द्विपदोंके सम्बन्धमें झूट बोलना भी (असत्य बोलना भी) कन्यालीकमें गर्भित समझना चाहिए ।

गो अलीक- गायकी विक्रीके समय या लेते समय कम दूध देनेवालीको अधिक दूध देनेवाली बताना और अधिक दूध देनेवालीको कम दूध देनेवाली बताना "गो अलीक" नामक असत्य है । यहांपर 'गो' शब्द उपलक्षण है । इसलिए संपूर्ण चतुष्पादोंका सम्बन्धकी झूठका ग्रहण करना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्ष्मालीक— क्ष्मा नाम पृथ्वीका है, खेत जमीदारी, वृक्ष व इसी प्रकारकी जो चीजें हैं, उनके सम्बन्धकी झूठको क्ष्मालीक समझना चाहिये। तीनों ही प्रकारके झूठ लोकमें भी निन्दनीय समझते हैं। इसलिए द्विपद व चतुष्पद सम्बन्धी झूठ ग्रहण कन्यालीक गो अलीकके कथनमें प्रतिपादित हो जाता है। अतः उनको भिन्नरूपसे समझानेके लिये द्विपादालीक, चतुष्पादालीक कहनेकी जरूरत नहीं है। और ये तीनों ही झूठ लोकविरोधी होनेसे श्रावकको नहीं बोलना चाहिये।

कूटसाक्ष्य— धनके लोभमें आकर अथवा मत्सरभावसे झूठी गवाही देना 'कूटसाक्ष्य' कहलाता है। यह झूठ पहले कहे हुए झूठोंसे भिन्न जातिका है। कारण झूठी गवाही देनेवालेके द्वारा दूसरोंको द्वारा किए हुए पापोंका समर्थन होता है और यह धर्मविरुद्ध है। इसलिए झूठी गवाही नहीं देनी चाहिये। क्योंकि प्रतिपक्षी, गवाहीसे सदैव यही कहता है कि अधर्ममूल नहीं बोलना धर्मयुक्त ही बोलना।

न्यासापलाप—सुरक्षित रहनेकी इच्छासे कोई चीज जो किसीके पास धरोहर रखी जाती है उसको 'न्यास' कहते हैं। इसलिए जेवर वगैरहको यहां न्यास समझना चाहिये। उसके सम्बन्धमें झूठ बोलना न्यासपलाप कहलाता है। अज्ञान वा संशयके कारण भी जब झूठ बोलना उचित नहीं है तो रागद्वेषपूर्वक बोली गई कोई भी झूठ झूठ ही है अतः नहीं बोलनी चाहिये। इस प्रकार शास्त्रोंमें कहा हैं कि ५ पांच प्रकारके झूठोंको नहीं बोलना चाहिये तथा स्वपर पीडाजनक सत्य भी नहीं बोलना चाहिये।

अब— लोकव्यवहारके अनुसार किस प्रकारके वाक्य बोलने और किस प्रकारके बोलने योग्य नहीं ये बताते हैं—

लोकयात्रानुरोधित्वात्सत्यसत्यादिवाक्त्रयम्।
ब्रूयादसत्यासत्यं तु तद्विरोधान्न जातुचित् ॥४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- सत्याणुव्रती श्रावक (लोकयात्रानुरोधित्वात्) लोक व्यवहार के अविरोधी होनेसे (सत्यासत्यादिवाक्त्रयं) सत्यासत्यादि तीन प्रकारके वचनोंको (ब्रूयात्) बोल सकता है (तु) परन्तु (तद्विरोधात्) लोकव्यवहारके विरुद्ध होनेवाले (असत्यासत्यं) असत्यासत्यको (जातुचित्) कभी भी (न) नहीं (ब्रूयात्) बोले ॥४०॥

भावार्थ- सत्याणुव्रती श्रावक लोकव्यवहारके वशीभूत होकर सत्यसत्य, सत्यासत्य और असत्यसत्य इन तीन प्रकारके वचनोंको बोल सकता है। परन्तु लोकव्यवहारके विरोधी "असत्यासत्य" वचन कभी नहीं बोलना चाहिये।

आगे सत्यसत्यादि का लक्षण तीन श्लोकों के द्वारा कहते हैं-

यद्वस्तु यद्देशकाल—प्रमाकारं प्रतिश्रुतम् ।
तस्मिस्तथैव संवादि सत्यसत्य वचो वदेत् ॥४१॥

अन्वयार्थ- (यद्वस्तु) जो वस्तु (यद्देशकालप्रमाकारं) जिस देश, कालादिके प्रमाणसे (प्रतिश्रुतं) ज्ञात है (तस्मिन्) उस देश, काल, प्रमाण और आकारमें (तथैव) उसी प्रकार (संवादि) बोलनेवाले (वचः) वचनको (सत्यसत्यं) सत्यसत्य (वदेत्) कहते हैं।

भावार्थ- जो वस्तु जिस देशमें, जिस कालमें है तथा जितनी संख्यावाली है और जिस आकारमें हो उसको उसी देशमें, उसी कालमें, उतनी ही संख्यामें और उसी आकारमें बोलना 'सत्यसत्य' बोलना है और ऐसे सत्यसत्य वचन बोलने चाहिये।

असत्यं वय वासोऽन्धो रन्धयेत्यादि सत्यगम् ।
वाच्यं कालातिक्रमेण दानात्सत्यमसत्यगम् ॥४२॥

अन्वयार्थ- ('सत्याणुव्रतिना') सत्याणुव्रतको पालन करनेवाले श्रावकके द्वारा (वासः) वस्त्रको (वय) बुनो और (अन्धः) भातको (रन्धय) पकाओ (इत्यादि) इत्यादिक (सत्यगं) सत्यको प्राप्त होनेवाले (असत्यं) असत्यवचन तथा (कालातिक्रमेण) कालकी मर्यादाको उल्लंघन करके (दानात्) देनेसे (असत्यगं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असत्यको प्राप्त होनेवाले (सत्यं) सत्यवचन (वाच्यं) बोलनेके योग्य हैं अर्थात् सत्याणुव्रती ऐसे वचनोंको बोल सकता है ।

भावार्थ– सत्याश्रित असत्य वचनको सत्यासत्य कहते हैं । असत्यकी तरफ झुकनेवाले वचनको असत्यसत्य कहते हैं । सत्याणुव्रती श्रावक लोकव्यवहारके अविरोधी होनेसे सत्यासत्य असत्यसत्य वचन बोल सकता है ।

असत्यसत्य– हे जुलाह ! तुम आतान–वितान रूपतया वस्त्र बुनो, हे पाचक ! तुम भात पकाओं । हे पेषक ! तुम आटा पीसो आदि वाक्य यद्यपि वर्तमानसमयमें असत्य है–क्योंकि जिससमय तुमने आज्ञा दी हैं–उससमय वह कपडा नहीं बना रहा है, भात नहीं पका रहा है, किन्तु वस्त्र बुनने की सामग्रीमें वस्त्र बुनने का व्यवहार होता है । परन्तु वर्तमानकालमें असत्य दिखनेवाला भी वाक्य भाविकालमें सत्य हो जायगा । यद्यपि यह एवंभूतनयकी अपेक्षा असत्य है तथापि नैगमनयकी अपेक्षा सत्य है । अतः यह वाक्य सत्याश्रित असत्य है । यह प्रक्रिया " भात बनाओ " आदि आदिमें भी लगाना चाहिये ।

असत्यसत्य– किसीको यह कहना कि मैं तुम्हारे रुपये १५ दिनमें दे देदूंगा । परन्तु किसी कारणवशात् १५ दिनमें नहीं दे सका और कालका अतिक्रम करके एक महिने में वा एक वर्ष आदि बीतनेपर दिये गये तो यह व्यवहार भी प्रतिपन्नकालका असत्य है, परन्तु रुपया दे दिये इसलिये भावी कालकी अपेक्षा सत्य भी है । यह असत्यकी तरफ झुकनेवाला सत्य है ।

ऊपरी श्लोकमें कहे गये सत्यसत्य वचन तथा इस श्लोकमें कही गई सत्यासत्य तथा असत्यसत्य यह तीनों प्रकारके वाक्य लोक व्यवहार में विरुद्ध नहीं हैं इसलिये व्रती श्रावक इन दोनों प्रकारके वचनोंको कभी बोल सकता है । क्योंकि सत्यासत्य तथा असत्यसत्य बोलने सत्याणुव्रतमें हानी नहीं होती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा–

यत्स्वस्य नास्ति तत्कल्ये दास्यामीत्यादिसंविदा ।
व्यवहारं विरुन्धानं नासत्यासत्यमालपेत् ॥४३॥

अन्वयार्थ–सत्याणुव्रती श्रावक (यत्) जो वस्तु (स्वस्य) अपनी (न अस्ति) नहीं है (तत्) वह वस्तु (कल्ये) प्रातःकाल (दास्यामि) देवूंगा (इत्यादिसंविदा) इत्यादि प्रतिज्ञा के द्वारा (व्यवहारं) लोकव्यवहार को (विरुन्धानं) बाधा देनेवाला (असत्यासत्यं) असत्य-असत्य वचनको (न आलपेत्) नहीं बोले ॥४३॥

भावार्थ–जो वस्तु अपनी नहीं है, तथा जो वस्तु अपने पास भी नहीं हैं, उसको मै तुम्हें कल दे दूंगा, इस प्रकार के लोक विरुद्ध पडने वाले "असत्य-असत्य वाक्य" सत्याणुव्रती को नहीं बोलना चाहिये ।

अब–गृहस्थोंको भोगोपभोगनिमित्तसे उपयोगमें आनेवाले संपूर्ण सावद्यवचनोंका त्याग अशक्य है । अतः उन्होंने इन पांच प्रकारके झूठ (सावद्य) वचनोंका सदैव त्याग करना चाहिये ।

मोक्तुं भोगोपभोगाङ्गमात्रं सावद्यमक्षमाः ।
ये तेऽप्यन्यत्सदा सर्वं हिंसेत्युज्झन्तु वाऽनृतम् ॥४४॥

अन्वयार्थ–(वा) अथवा अधिक कहने से क्या प्रयोजन है (ये) जो मानव (भोगोपभोगांगमात्रं) भोगोपभोगके कारणभूत (सावद्यं) सावद्यवचनों को (मोक्तुं) छोडनेके लिये (अक्षमाः) असमर्थ हैं (ते) वे मानव (अन्यत्) भोगोपभोगके साधनभूत सावद्यवचनोंको छोडकर (सर्वं) सर्व (अपि) ही (अनृतं) असत्य वचनों को (हिंसा) हिंसा है (इति) ऐसा समझकर (उज्झन्तु) छोड देवे ॥४४॥

भावार्थ–जो सम्पूर्णरूपसे हिंसाके पुष्टिकारक अयोग्य वचनों के त्यागनेमें श्रावक असमर्थ हैं, वह मानव अपने भोग और उपभोगमें उपयोगी पडनेवाले सावद्यवचन को बोल सकते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है-इस बात की सूचना देनेके लिये ग्रन्थकार ने इस श्लोक में वा शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् कहा है कि अधिक कहने से क्या प्रयोजन है ?। व्रती गृहस्थ श्रावक स्वकीय भोगोपभोग के साधनभूत जैसे खेत इत्यादि प्राणिबाधादि प्रवृत्तक सावद्य वचनोंको छोड कर सत्अपलपनादि पांच प्रकारके असत्य वचनोंको छोड देवे।

सद्-अलपनं, असदुद्भावनं, विपरीतवदनं, अप्रिय और आक्रोश के भेदसे असत्य पांच प्रकारकी हैं।

सद्अपलपन-आत्मा नहीं है, इस प्रकारसे सद्रूप आत्माके असद्भावके प्रतिपादक वचनको सत्का अपलाप करनेवाला वचन कहते हैं।

असद्उद्भावन-आत्मा वास्तवमें स्वदेहप्रमाण है। उसको व्यापक-सर्वगत कहना, श्यामा धानके कणके बराबर आत्मा है, जिसका जो स्वरूप नहीं है, उस बातको प्रतिपादन करनेवाला वचन असदुद्भावन कहलाता है।

विपरीतवचन-गायको घोडा कहना विपरीत कथन करनेवाला वचन है।

अप्रियवचन-कानेको चिडानेके लिये 'काना' कहना अप्रिय वचन है।

साक्रोशवचन-अरे विधवा पुत्र! हे रांडके बेटे! इत्यादि कुवचनोंको चिल्लाकर बोलनेको साक्रोशवचन कहते हैं। जैसे अप्रयोजनभूत स्थावरहिंसाका त्याग अहिंसाणुव्रतमें अणुव्रतीको अवश्य करना चाहिये, उसी प्रकार भोगोपभोगवचनोंके त्यागनेमें असमर्थ सत्याणुव्रतीको भी इन पांच प्रकारके असत्यवचनोंका भी त्याग सदैवके लिये जरूर करना चाहिये।

आचार्योंने हिंसा के पुष्टिकारक वचनों को असत्य कहा है। और रागद्वेषके उत्पत्ति को हिंसा कहा है। सदलपन आदि वचन रागद्वेषपूर्वक ही बोले जाते हैं-इसलिये हिंसाकी पर्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने से हिंसारूप हो हैं-अत एव हिंसा के समान उनका भी त्याग करना चाहिये। और जहां प्रमादका योग नहीं है वे वचन हिंसाके पोषक न होनेसे असत्यवचन नहीं है। इसलिये इन वचनोंको अणुव्रतीश्रावक बोल सकता है जैसे—

'सा मिथ्याऽपि न गीर्मिथ्या या गुर्वादिप्रसादिनी'

जो गुरूको अपने ऊपर प्रसन्न करनेके लिये स्तुतिरूपमें जो वाणी बोली जाती है वह वाणी मिथ्या होनेपर प्रमादयोगपूर्वक नहीं बोली जाती है। इसलिये मिथ्या नहीं है किंतु सत्य है।

अब-सत्याणुव्रतके पांचो ही अतिचारोंके त्यागका उपदेश देते है।

मिथ्यादिशं रहोऽभ्याख्यां कूटलेखक्रियां त्यजेत्।
न्यस्तांशविस्मर्त्रनुज्ञां मन्त्रभेदं च तद्व्रतः ॥४५॥

अन्वयार्थ-(तद्व्रतः) सत्याणुव्रती श्रावक को (मिथ्यादिशं) मिथ्या उपदेश (रहोऽभ्याख्यां) रहोऽभ्याख्यान (कूटलेखक्रियां) कूटलेखक्रिया (न्यस्तांशविस्मर्त्रनुज्ञां) न्यस्तांश विस्मर्त्रनुज्ञा (च) और (मंत्रभेदं) मंत्रभेद को (त्यजेत्) छोड देना चाहिये ॥४५॥

भावार्थ-मिथ्योपदेश, रहोऽभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यस्तांश विस्मर्त्रनुज्ञा (न्यासापहार) और मंत्रभेद ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार है। स्थूलअसत्य का त्याग करना सत्याणुव्रत है।

१ मिथ्योपदेश-मिथ्योपदेश तीन प्रकार का हैं-अज्ञान से स्वर्ग मोक्षकी साधनभूत क्रियाओंमें दूसरों को अन्यथा प्रवर्तन कराना या किसी तत्वके विषय में संशय हो जाने से किसी ने आकर पूछा इसका स्वरूप क्या है-अज्ञानभावसे अन्यथा कहना मिथ्योपदेश है। जान-बूझकर तत्वका लोप करनेपर तो अनाचार हो जाता है।

२ प्रमादके वशीभूत होकर परपीडाकारक वचन बोलना भी मिथ्योपदेश है। जैसे ऊँटोंसें, गधोंसे माल ढोना चाहिये। डाकु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओंको मारना चाहिये। इस प्रकारके वचनोंको बिना प्रयोजनके बोलना मिथ्योपदेश कहलाता है।

३ विवादके उपस्थित होनेपर स्वयं व दूसरोंके द्वारा किसी एकके ठगनेके लिये उपायके बतानेको मिथ्योपदेश कहते हैं। इस प्रकार 'मिथ्योपदेश' के तीन अर्थ किये हैं।

रहोभ्याख्या–एकांतमें स्त्री–पुरुषोंकी आपसमें होनेवाली चेष्टाओंको हास्य तथा विनोद आदिसे प्रगट करना, उन दंपती तथा दूसरोंके लिये रागवर्द्धक होनेसे अतीचार है। (अभिनिवेश-पूर्वक किसी प्रकारकी हठसे या रागादिके आवेशसे प्रतिपादन करना अतीचार नहीं किन्तु अनाचार होता है।)

कूटलेखक्रिया–किसीने तो न कहा ही है और न लिखा ही है, केवल परप्रयोगसे जानकर किसीको ठगनेके लिये यह लिख देना कि–"इस प्रकारसे उसने कहा है अथवा लिखा है" यह कूटलेख-क्रिया कहलाती है। अन्य आचार्योंके मतसे दूसरोंके अक्षर व मुहर बनानेको कूटलेखक्रिया कहते हैं।

न्यस्तांशविस्मर्त्रनुज्ञा–कोई अपनी धरोहर रख गया और कालांतरमें उठानेको आया, परंतु उसकी संख्या उसे ठीक मालूम न रही और उसने कुछ कम संख्या बोली, उस समय उससे यह कहना–"क्योंजी, इतनी ही है न? हमारे ध्यानमें भी जितनी संख्या तुम बता रहे हो उतनी ही ले जाओ।" यह न्यस्तांशविस्म-र्त्रनुज्ञा नामक अतीचार है।

मन्त्रभेद-अंगविकार तथा भौहोंके निक्षेपणसे (फडकनेसे) परके अभिप्रायको (मन्त्रको अनुमानसे) समझ कर ईर्ष्यादिकके कारण प्रगट करना मंत्रभेद कहलाता है। अथवा विश्वासपात्र मित्रादिकके साथ अथवा अपने साथ मंत्र किये, जो लज्जा उत्पादक अभिप्राय है उसका प्रगट करना मंत्रभेद कहलाता है। इन सत्याणु-व्रतके अतिचारोंको टालकर सत्याणुव्रत पालना चाहिये॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशस्तिलकमें सोमदेवाचार्यने जो कहा है–

मन्त्रभेदः परीवादः पैशून्यं कूटलेखनम् ।
मुधा साक्षिपदोक्तिश्च सत्यस्यैते विघातकाः ॥

अर्थ- मन्त्रभेद, परिवाद, चुगली कूटलेखक्रिया, और झूठी गवाही देना ये पांच सत्यव्रतके विघातक अतिचार बताये हैं, वे अतिचार इन पांच अतिचारोंसे कुछ भिन्न मालूम पडते हैं सो उनका भी ग्रहण 'परेप्यूह्या तदात्ययाः' इस इसी अध्यायके १८ वें श्लोकके वाक्यसे समझना चाहिये । अर्थात् सत्याणुव्रतीको इनका भी त्याग करना चाहिये ।

अब- अचौर्याणुव्रतका लक्षण कहते हैं—

चोरव्यपदेशकरस्थूलस्तेयव्रतो मृतस्वधनात् ।
परमुदकादेश्चाखिलभोग्यान्न हरेद्दीत न परस्वम् ॥४६॥

अन्वयार्थ- (चौरव्यपदेशकरस्थूलस्तेयव्रतः) यह चोर इस प्रकार के नाम को उत्पन्न करनेवाली स्थूलचोरी का त्यागी श्रावक (मृतस्वधनात्) पुत्रादिरहित मरे हुये अपने संबंधी के धनके (च) तथा (अखिलभोग्यात्) सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा भोगमें आनेवाले (उदकादेः) जल आदि पदार्थोंके (परं) सिवाय (परं) दूसरेके (स्वं) धनको (न हरेत्) विना दिया नहीं लेवे तथा (न ददीत) न दूसरोंको देवे ॥४६॥

भावार्थ- यह चोर है धर्मघातक है जीवोंका वध करनेवाला है इत्यादि नामको उत्पन्न करनेवाली खात्र-खननादि करके परकीय अदत्त चेतनात्मक वा अचेतनात्मक वस्तुओंके ग्रहण करनेको चोरी कहते हैं । उस चोरीके त्यागीको अचौर्याणुव्रती कहते हैं । अचौर्याणुव्रती मानव जिसपर अपना हक्क है ऐसा अपना सम्बन्धी मर जाय और उसके धनको ग्रहण करनेवाले कोई पुत्र पौत्रादिक नहीं हो ऐसे मृतककुटुम्बीके धनको तथा जिस वस्तुको सर्वसाधारण उपयोगमें ला सकते हैं ऐसे जल, मिट्टी, घासादिक विना दिये भी ले सकता है । परन्तु इसके सिवाय जो वस्तु परकीय है अचौर्या–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णुव्रती उसको विना दिये नहीं ले सकता है और न दूसरोंको दे सकता है ।

तात्पर्य– जिस मृतकपुरुषके पुत्र पौत्रादिक कोई न होत था अपना समीप का कुटुम्बी हो उस वस्तुको वह ले सकता है परन्तु अपनेसे दूसरा नजदीकका हक्कदार हो उसको नहीं ले सकता । तथा जलादि भी जिसको आगन्तुक सर्वसाधारण लोग उपयोगमें लेते हो वह ले सकता है किसी व्यक्तिविशेष का संचय किया हुवा पानी, मिट्टी भी व्रती नहीं ले सकता है ।

अब– प्रमत्तयोगपूर्वक विना दिये हुये तृणको भी उठानेमें और दूसरेको देनेमें अचौर्याव्रतका भङ्ग होता है यह बताते हैं––

संक्लेशाभिनिवेशेन तृणमप्यन्यभर्तृकम् ।
अदत्तमाददानो वा ददानस्तस्करो ध्रुवम् ॥४७॥

अन्वयार्थ– (संक्लेशाभिनिवेशेन) रागादिके वशीभूत होकर (अन्यभर्तृकं) जिसका स्वामी दूसरा है ऐसे (तृणम्) तृण को (अपि) भी (अदत्तं) विना दिये हुये (आददानः) गृहण करनेवाला (वा) अथवा (ददानः) दूसरेको देनेवाला (ध्रुवं) निश्चयसे (तस्करः) चौर है ॥४७॥

भावार्थ– रागद्वेषपूर्वक तृण मात्र भी परकीय वस्तुको गृहण करनेवाला चोर है तो सुवर्णादिक को चुरानेवालेका तो कहना ही क्या, वह तो चोर है ही । क्योंकि आचार्योंने प्रमत्तयोग होनेपर हो चोर कहा है–अन्यथा नहीं ॥४७॥

जमीन आदिसे निकला हुवा भी धन राजकीय है ऐसा समर्थन करते हुये अचौर्याणुव्रतीको उसका भी त्याग करना चाहिये यह बताते हैं––

नास्वामिकामिति ग्राह्यं निधानादिधनं यतः ।
धनस्यास्वामिकस्येह दायादो मेदिनीपतिः ॥४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थं- (अस्वामिकं) इसका कोई स्वामी नहीं है (इति) ऐसा विचार करके (निधानादिधनं) नदी गुफादिमें स्थित धनको (न ग्राह्यं) ग्रहण नहीं करना चाहिये । (यत:) क्योंकि (इह) इस लोकमें (अस्वामिकस्य) जिसका स्वामी नहीं है ऐसा जमीन आदिमें से निकले हुये (धनस्य) धनका (दायाद:) स्वामी (मेदिनीपति:) राजा है ॥४८॥

भावार्थ- नदी, गुफा, जमीन आदिमें निकलता हुवा धन इसका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये यह परधन नहीं है ऐसा विचार करके अचौर्याणुव्रतीको जमीनादिमें निकला हुवा धन नहीं ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि जमीनादिमेंसे निकले हुए स्वामीरहित धनका सर्वधारण स्वामी राजा है ॥४८॥

अपने वस्तुमें भी यदि संशय हो जाय कि यह मेरा है कि नहीं तो अपने धनका भी ग्रहण नहीं करना चाहिये यह बताते हैं--

स्वमपि स्वं मम स्याद्वा न वेति द्वापरास्पदम् ।
यदा तदाऽऽदीयमानं व्रतभङ्गाय जायते ॥४९॥

अन्वयार्थं- (यदा) जब (स्वं) यह धन (मम) मेरा (स्यात्) है (वा) अथवा (न) वा नहीं है (इति) इस प्रकार (द्वापरास्पदं) संशयको प्राप्त हुवे (स्वं) धनको (आदीयमानं) ग्रहण करता है (तदा) तब (स्वमपि) अपने भी धन (व्रतभंगाय) व्रतभंगके लिये (जायते) होता है ॥४९॥

भावार्थ- जब मानवको यह संशय उत्पन्न हो जाता है कि यह वस्तु मेरी है कि नहीं अर्थात् यह मेरी है ऐसा निर्णय नहीं कर पाता है, उससमय यदि अचौर्याणव्रती उस संशयात्मक वस्तुको ग्रहण करता है, वह अपनी ही है तो भी संशय होनेसे अचौर्याणु-व्रतका भंग होता है । इसलिये जिस वस्तुमें संशय हो जाय जबतक हम उसका निर्णय न कर सके तबतक उस वस्तुको करना चाहिये ॥४९॥

अचौर्याणुव्रतके अतिचारोंको दूर करने के लिये कहते हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोरप्रयोगचोराहृतग्रहावधिकहीनमानतुलम् ।
प्रतिरूपकव्यवहृतिं विरुद्धराज्येऽप्यतिक्रमं जह्यात् ।।५०।।

अन्वयार्थ- अचौर्याणुव्रती (चोरप्रयोगचोराहृतग्रहौ) दूसरोंको चोरी करनेमें प्रेरित करना और चुराकर लाई हुई वस्तुको ग्रहण करना (अधिकहीनमानतुलम्) माप वा तोलने के बाट आदिको हीन वा अधिक रखना (प्रतिरूपकव्यवहृतिं) अच्छी वस्तुमें नकली वस्तु मिलाना (विरुद्धराज्ये) विरुद्धराज्यमें (अतिक्रमं) अतिक्रमण करना (जह्यात्) छोड देवे ।।५०।।

भावार्थ- चोरप्रयोग, चोराहृतग्रह, हीनाधिकमानतुला प्रतिरूपकव्यहृति और विरुद्ध राज्यातिक्रम ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं ।

चोर प्रयोग- चोरी करनेवालेको स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा "तुम चोरी करो" इस प्रकार चोरीकी क्रियामें प्रेरित करना वा जिसको चोरी करनेमें प्रेरित किया था उसको "तुम अच्छा कर रहे हो" इस प्रकार कहकर चोरी की अनुमोदना करना तथा चोरी करनेवाले को चोरी के साधनभूत जमीन खोदनेका शस्त्र करवत दिवालादि को भेदनेवाले शस्त्रोंको चोरको देना तथा इन शस्त्रोंके बेचनेका व्यापार करना चोरप्रयोग कहलाता है । मैं यद्यपि चोरी नहीं करता हूं न कराता हूं इस प्रकार व्रतमें प्रतिपन्न हुये व्यक्ति के चोरीका प्रयोग बताना व्रतभंग ही है । इसका विशेष अर्थ यह है कि तुम आजकल निर्व्यापार क्यों बैठे हो ? यदि आपको चावल आदि खानेको नहीं है तो मैं दे देता हूं । तुम्हारे द्वारा चुराकर लाई हुई वस्तुका कोई खरीदनेवाला नहीं होगा तो मैं विकवा दूंगा अर्थात् मैं बेच दूंगा, इस प्रकार चोरको चोरीमें प्रेरित करनेवाला स्वयं चोरी के व्यापारसे दूर है इसलिये एक देशव्रतकी रक्षा है । परन्तु चोरी की प्रेरणा कर रहा है इसलिये व्रतभंग होनेसे चोरप्रयोग नामका अचौर्याणुव्रतमें अतिचार लगता है ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोराहृतग्रहण– जिस चोरको चोरी करनेकी प्रेरणा भी नहीं दी तथा अनुमति भी नहीं दी है परन्तु स्वयंमेव चोर वस्तुको चुराकर लाया है उस सुवर्ण, वस्त्र आदि वस्तुको मूल्य देकर वा मुद्रिका आदिसे खरीदना चोराहृतग्रहण कहलाता है ।

स्पष्टार्थ–चोर के द्वारा चोरी करके लाई हुई वस्तु गुप्तरीति से खरीदी जाती है अथवा बाजारभावसे कीमत कमी दी जाती है, इसलिये चोरी होनेसे एकदेश व्रतभंग होता है । तथा मेरे द्वारा व्यापार किया जाता है, अर्थात् मैं व्यापार कर रहा हूं चोरी नहीं कर रहा हुं ऐसे विचारसे व्रतकी सापेक्षा होने से व्रतभंग नहीं होता है । इसलिये चोराहृतग्रहण व्रत के भंगाभंग रूप होने से अतिचार है ॥२॥

अधिकहीनमानतुला–गेहूं आदि मापने का प्रस्थ (माप) वा कपडा आदि मापने के हाथ गजादि को मान कहते हैं । तराजु आदि को तुला वा उन्मान कहते हैं । जो अधिकमानतुला आदि से लेता है, तथा दूसरे को देते समय हीनमानतुला आदि से देता है आदि कूटप्रयोग अधिकहीनमानतुला नाम का अतिचार है । क्योंकि ऐसा करनेसे दूसरेकी अदत्त वस्तुका एक प्रकारसे ग्रहण होनेसे एकदेश व्रतभंग होता है और प्रत्यक्षमें भंग नहीं कर रहा है, इसलिये उसके एकदेशसे व्रतभंग और अभंग हो रहा है । इसीलिये यह अतीचार है । क्योंकि जबतक व्रतकी अपेक्षा रहती है, तबतक अनाचार नहीं कहा जा सकता है ।

प्रतिरूपकव्यवहृति–सदृश बहुमूल्यवाली वस्तु में अल्पमूल्यवान वस्तु मिलाकर बेचनेका व्यवहार करना प्रतिरूपकव्यवहृति कहलाती है । जैसे चावल का धान्य में और चावलों के भूसेको, घृत में चर्वी को, हींग में खदिरको, तैल में मूत्र को, असली सोनेमें नकली सुवर्ण और असली रजतमें नकली रजतको मिलाकर व्यापार करना इत्यादि प्रतिरूपकव्यवहृति नाम का अचौर्याणुव्रतका अतिचार है । क्योंकि हीनाधिक मानोन्मान तथा प्रति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपक व्यवहृति इन दोनोंमें अदत्त परधन का ग्रहण होता है, इसलिये इन दोनोमें व्रतभंग होता है। परन्तु किसीका ताला तोडना दिवालादिको भेदकर धन निकालना यह चोरी है यह तो मैं नहीं कर रहा हूँ, हीनाधिक मानोन्मान, प्रतिरूपकव्यवहारादि तो व्यापार की कला है, यह तो मैंने अपनी नैपुण्यतासे व्यापार किया है ऐसी भावना से एकदेशव्रतकी सापेक्षा है। इसलिये आचार्योंने इस को अतिचार कहा है।

विरुद्धराज्यातिक्रम–राजाके पृथ्वीपालनोचित कार्य को राज्य कहते हैं। राजाके राज्य नष्ट हो जानेपर अथवा एक राजाके ऊपर दूसरे राजाका आक्रमण होने को विरुद्ध कहते हैं। उनका समय विरुद्धराज्य कहते हैं। राज्यआक्रमण के समय राजानुशासन वा राज्यव्यवस्थामे विचलितता रहती है। अतः उस समय अतिलोभ से उचित न्यायमार्ग का उल्लंघन करके व्यापार करना अर्थात् वस्तुका ग्रहण करना वा विरुद्ध राज्य में अल्पमूल्यमें लभ्यवस्तुको अधिकमूल्यमें देना वा महामूल्यकी वस्तुको अल्पमूल्यमें खरीदना विरुद्धराज्यातिक्रम नामका अतिचार कहलाता है। अथवा परस्परमें विरोधीराजाओंकी जो सीमा व सेनाकी व्यवस्था होती है उसका अतिक्रमण करना अर्थात् अमुक सीमातक ही परस्पर विरोधीराजाओंके आदमी जा सकते हैं, सीमाका उल्लंघन करके नहीं जा सकते हैं, इस प्रकारकी व्यवस्थाका व्यापार आदिके लोभसे उल्लंघन करना, सीमाकी परवाह न करके दूसरेके राज्यमें आदमीको भेजना व बुलाना, विरुद्धराज्यातिक्रम नामका अतीचार है। क्योंकि सीमाका उल्लंघन करते समय वहांके राजाकी आज्ञापालन नहीं होता है। उस भूमिपर जाना एक प्रकार अदत्तआदान भी है और उसकी आज्ञाभंगके बदलेमे दण्ड भी दिया जा सकता है, इस दृष्टिसे व्रतभंग होता है, परंतु मैं दूसरेकी भूमिमें आया हूं या दूसरे आदमीको भेजा है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता तथा हमको व्यापारमें विशेष फायदा भी नहीं हो सकता। मैंनें व्यापार किया है चोरी नहीं की, इस प्रकारकी भावना करता है। इसलिये विरुद्ध राज्यमें अतिक्रमण करनेंवाला अपने व्रतोंका भंग नहीं मानता है। अत एव भंगाभंगरूप होनेसे विरुद्धराज्यातिक्रम अतीचार है। अथवा विरुद्धराज्यातिक्रमके प्रथमअर्थमें भी शासनकी गडबडसे लोभातिरेकके कारण भी उसकी व्यापारकी भावनासे अभंग सिद्ध होनेसे अतीचार है अथवा चोरप्रयोग वगैरह पांचो ही अतीचार यदि साक्षात् किये जाय तो चोरीरूप ही है, केवल सहकारीपनेंकी विवक्षामें ही वे सब अतीचारके नामसे कहे जाते हैं।

यहां शंका हो सकती है कि ये अतीचार राजा व उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियोंमें कैसे लागू पडेंगे ? इसका समाधान यह है कि चोरप्रयोग और चोराहृतादान तो लोभके कारण राजा व उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा भी हो सकते हैं। कारण वे भी लोभादिकके वश होकर ऐसा कर सकने हैं। और राजाके भंडारकी वस्तुके लेने देनेके व्यवहारमें, अधिक नापना तोलना तथा कम कीमतकी वस्तु बहुत कीमतमें मिश्रकर देना हो सकता है। इसलिये तीसरा और चौथा भी अतीचार घट सकता है। पांचवा अतीचार राजाके प्रति और उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियोंमें इस प्रकारसे घटता है कि कोई सामन्त अपने मालिकके यहां रहकर शत्रु राजाके साथ उसको सहायता देनेकी क्रिया करता हो तो उसका वह विरुद्धराज्यातिक्रम नामका अतीचार है।

सोमदेवाचार्यने अपने यशस्तिलकग्रंथमें अचौर्याणुव्रतके अतीचारोंमें अधिक लेना, कम देना ये दो अतीचार माने हैं—

मानवन्न्यूनताधिक्ये तेन कर्म ततो ग्रहः।
विग्रहो संग्रहोर्थस्यास्तेयस्यैते निवर्तकाः॥

अर्थ— मापनेके योग्य चीजोंको कम देना १ और अधिक लेना २ चोरको चोरीका प्रयोग बताना ३, चोरके द्वारा लाई हुई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुको खरीदना ४, और युद्धके समय अतिलोभसे पदार्थोंका संग्रह करना ५, ये पांच अतिचार बताये हैं ।

स्वदार-सन्तोष-व्रतग्रहण करनेकी विधी--

प्रतिपक्षभावनैव न रती रिरंसारुजि प्रतीकारः ।
इत्यप्रत्ययितमनाः श्रयत्वहिंस्रः स्वदारसन्तोषम् ॥५१॥

अन्वयार्थ- (प्रतिपक्षभावना) पहिले कही हुई विधीसे ब्रह्मचर्यव्रतका बार बार मनमें चितवन करना (एव) ही (रिरंसारुजि) योनि आदिमें रमण करने की इच्छारूप परिणामोंका (प्रतीकारः) प्रतीकार है (न रती) स्त्रीसंभोग वेदना का प्रतीकार नहीं है, (इति) इस प्रकार उपदेश देनेपर भी (अप्रत्ययितमनाः) अविश्वासित है मन जिसका एसा (अहिंस्रः) अणुव्रती (स्वदार-सन्तोषं) स्वदारसन्तोष व्रतको (श्रयतु) स्वीकार करे ॥५१॥

भावार्थ- मैथुनसंज्ञारूपीरोगका वास्तविक चिकित्सा ब्रह्मचर्यव्रतकी भावना तथा ब्रह्मचर्यव्रत है अर्थात् जिस समय मानसिक रतिवेदना उत्पन्न होती है, उससमय शास्त्रोक्तविधिसे ब्रह्मचर्य व्रतके गुणोंका विचार करना चाहिये । तथा उसके नाश करनेसे दुर्गति होती है ऐसा विचार करना चाहिये । ऐसी भावनासे ही मैथुनसंज्ञारूपी वेदना दूर हो सकती है-स्त्रीसंभोगसे नहीं क्योंकि यद्यपि स्त्रीसंभोगसे दर्दको खुजानेके समय तत्काल वेदना शांत होती है तथा क्षणिक सुखका अनुभव होता है, परन्तु उत्तरकालमें दुःख होता है, इसीप्रकार भोगसे भी क्षणिक सुख होता है और उत्तर कालमें पुनः भोगतृष्णा बढती हैं, घटती नहीं है । ऐसा आप्तोपदिष्टवचन सुननेपर भी जिसके मनमें विश्वास उत्पन्न नहीं होता है-अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना ही उत्तम है भोग नहीं, ऐसा मनमें जानता हुवा भी जो अपने मनको विषयवासनाओंसे रोकनेमें असमर्थ है ऐसा अहिंसा-णुव्रती श्रावक स्वदारसन्तोषव्रतको धारण करे तथा परस्त्री सम्बन्धी पापमयप्रवृत्ति का त्याग करे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वदारसन्तोषव्रतका स्वरूप

सोऽस्ति स्वदारसन्तोषी योऽन्यस्त्रीप्रकटस्त्रियौ ।
न गच्छत्यंहसो भीत्या नान्यैर्गमयति त्रिधा ।।५२।।

अन्वयार्थ– (यः) जो मानव (अंहसः) पापके (भीत्या) डरसे (त्रिधा) मन-वचन-कायसे (अन्यस्त्रीप्रकटस्त्रियौ) परस्त्री तथा वेश्याको (न गच्छति) नहीं सेवन करता है तथा (अन्यैः) दूसरोंको भी मनवचनकायसें (न गमयति) सेवन नहीं कराता हैं (सः) वह (स्वदारसन्तोषी) स्वदारसन्तोषी (अस्ति) है ।।५२।।

भावार्थ– परिगृहिता अपरिगृहिताके भेदसे अन्यस्त्री दो प्रकारकी होती है ।

परिगृहिता– जिसका पति मौजूद हो उसको परिगृहिता-अन्यस्त्री कहते हैं तथा भाविकालमें जिसका स्वामी होनेवाला है और पिता, भाई आदिके परतंत्र होनेसे कन्या भी परिगृहिता अन्यस्त्रीं कहलाती है ।

जिसका पति मर गया हो जो अपनें पतिके द्वारा परित्यक्ता हो जिसका स्वामी परित्यागकर परदेशमें चला गया हो ऐसी अनाथकुलांगना अपरिगृहिता परदारा कहलाती है ।

वेश्याको प्रकटस्त्री कहते हैं । जो मानव पापके डरसे दोनों प्रकार की परस्त्री का मनवचनकायसे तथा कृतकारितानुमोदनासे त्याग करता है अर्थात् परस्त्री को सेवन नहीं करता है। और न मन वचन काय तथा कृतकारितअनुमोदनासे परदारासेवन करने के लिये दूसरेको उत्साहित करता है, वह स्वदारसन्तोषव्रती कहलाता है । अर्थात् मैथुनसंज्ञारूपी वेदताके प्रतीकारकी इच्छा रखता हुवा केवल अपनी धर्मपत्नीमें ही सन्तोष रखता है ।

स्वदारसंतोषव्रत तथा परदारत्यागव्रतके भेदसे गृहस्थोंके ब्रह्मचर्यव्रत दो प्रकार का है–

जो मद्य, मांस तथा मधु, पंच उदुम्बर फल का त्यागरूप अष्टमूलगुणोंको निरतिचार पालन करता है,तथा विशुद्ध सम्यग्दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्त है उसको नैष्ठिक श्रावक कहते हैं। और नैष्ठिक श्रावक प्रकटस्त्री तथा परदारा दोनोंका ही त्यागी होता है। क्योंकि दर्शनप्रतिमाधारी भी सप्तव्यसनका त्यागी होता है तो दूसरी प्रतिमाधारी श्रावक वेश्यासेवन कैसे कर सकता है? इसलिये इस श्लोकमें दूसरी प्रतिमाधारी के लिये स्वदारसन्तोषव्रत कहा है। परन्तु जो स्वस्त्रीके समान साधारणस्त्री(प्रकटस्त्री)का व्रत लेनेमें असमर्थ हैं केवल परस्त्रीके त्यागका व्रत धारण करता है, वह भी एक प्रकारसे ब्रह्मचर्याणुव्रती है। क्योंकि दो प्रकारसे ब्रह्मचर्याणुव्रत माना है-एक "स्वदार-सन्तोष" दूसरा "परस्त्रीत्याग" है। और हमारा यह कथन स्वदारसन्तोषव्रतका लक्षण करते समय "अन्यस्त्री प्रकटस्त्रियौ" इस वाक्य के द्वारा अन्यस्त्री और प्रकट स्त्री,इस तरह दो प्रकार स्त्रियोंके त्यागके उपदेशसे सिद्ध होता है अर्थात् यदि केवल "स्वदारसन्तोष" एक ही व्रत होना "परदार" निवृत्ति नामका दूसरा व्रत न हो सकता तो अपनी स्त्रीमें ही सन्तोष करनेवाला स्वदारसन्तोषी होता है इतना ही लक्षण किया जाना चाहिये था। परन्तु ऐसा लक्षण न करके स्त्रियोंके भेद बताकर उनके त्यागका उपदेश दिया गया है इससे सिद्ध होता है कि दो प्रकारके व्रत हैं। उनमेंसे "स्वदारसंतोष" व्रत नैष्ठिकश्रावकके लिये इष्ट और "परदारनिवृत्ति" यह अभ्यासोन्मुखश्रावकके लिये इष्ट है, ऐसा समझना चाहिये। इसका खुलासा यशस्तिलक ग्रंथमें भी सोमदेवाचार्यने स्वयं किया है-

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥

अर्थात् अपनी स्त्री और (वेश्या) वित्तस्त्रीको छोडकर सब प्रकारकी स्त्रियोंमें माता, बहिन, पुत्रीकी बुद्धि रखना गृहस्थाश्रमका ब्रह्मचर्यव्रत माना है।

श्री वसुनंदी आचार्यने भी दर्शनप्रतिमाका स्वरूप यह बताया है कि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचुंबरसहियाइं सत्त वि वसणाइ जो विवज्जेइ ।
सम्मतविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ ।।

अर्थात्–जो पंच उदुम्बर फल और सात व्यसनोंका त्याग करके विशुद्धसम्यग्दर्शन धारण करनेवाला है वह दर्शनप्रतिमा-वाला है । तथा उनके ही मतानुसार ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप माना है कि–

पव्वेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जेइ ।
थूलअड बंभयारी जिर्णेहिं भणिदो पवयणम्हि ।।

अर्थात् जो पर्वमें स्त्रीसेवाका त्यागी होता है सदैव अनंगक्रीडा नहीं करता हैं उसे जिनप्रवचनमें भगवानने स्थूलब्रह्मचारी कहा है ।

इस लक्षणमें स्वदारसन्तोषनैष्ठिकका व्रत होता है तथा स्वामी समंतभद्रके मतसे दर्शनप्रतिमाका लक्षण इस प्रकार है कि–

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ।।

अर्थात् जो पंच परमेष्ठीका ही शरण लेता है और संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है, तत्त्वपथका जिसको सदैव पक्ष होता है, उसे दार्शनिकश्रावक कहते हैं ।

इस दर्शनप्रतिमाके लक्षणसे "स्वदार-सन्तोष" नैष्ठिक-श्रावकका व्रत है और अन्यस्त्री, प्रकटस्त्री आदि उस व्रतके अतीचार हैं । इन अतिचारोंको टालकर मन, वचन और कायस तथा कृतकारितअनुमोदनसे स्वदारसन्तोषव्रत धारण करना चाहिये । ऐसा ऊपर कहे हुअे स्वदारसन्तोषके लक्षणवाचक पद्यका अर्थ करना चाहिये ।

तात्पर्य यह है, कि ग्रंथकारने यशस्तिलकग्रंथके "वधूवित्त-स्त्रियौ" इत्यादि श्लोकमें बताये हुअे गृहस्थीके ब्रह्मचर्यव्रतकी अपेक्षासे "परदारनिवृत्ति" नामका ब्रह्मचर्याणुव्रत अभ्यासोन्मुख श्रावकके लिये बताया है और स्वामी समंतभद्र तथा वसुनंदि आचार्यके सिद्धांतानुसार दर्शनप्रतिमाको परिपूर्ण पालते हुअे दूसरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा पालनेवालेको (नैष्ठिक) स्वदारसन्तोषव्रत होता है यह बताया है और इसी व्रतके अतीचार अन्यस्त्रीगमन, प्रकटस्त्रीगमन हैं, इनको टालकर मन, वचन, काय और कृतकारितअनुमोदनासे स्वदारसंतोषव्रत पालना चाहिये, ऐसा उपदेश दिया है यह अर्थ करना चाहिये।

यद्यपि-जो स्वदारसन्तोषव्रत पालता है उसको अव्रतीके समान पापबंध नहीं होता, तथापि गृहस्थव्रतीको अपने गृहस्थाश्रममें रहते हुये मुनिधर्ममें अनुरागी होना चाहिये। जबतक यतिव्रतकी प्राप्ति नहीं हुई उसके पहिले उत्कृष्टरीतिसे श्रावकव्रत पालनेके लिये कामभोगोंसे विरक्त होकर वह अपने व्रतकी अन्तिमसीमाको प्राप्त हो इसके लिये अब्रह्म (स्त्रीसंभोग) के दोषोंका सामान्य रीतिसे वर्णन करते हैं-

सन्तापरूपो मोहाङ्गसादतृष्णानुबन्धकृत्।
स्त्रीसम्भोगस्तथाऽप्येष सुखं चेत्का ज्वरेऽक्षमा ॥५३॥

अन्वयार्थ-(स्त्रीसंभोगः) स्त्रीसंभोग (सन्तापरूप) सन्तापरूप है और (मोहांगसादतृष्णानुबंधकृत्) मोह शरीरको निःसहत्व तथा तृष्णाको करनेवाला है (तथापि) तथापि (चेत्) यदि (एषः) यह स्त्रीसंभोग (सुखं) सुखरूप है तो (ज्वरे) बुखार में (का) क्यों (अक्षमा) ईर्षा क्यों अर्थात् ज्वर को भी सुखस्वरूप मानना चाहिये।

भावार्थ-हिताहित के विवेक से रहित होना मोह है। शरीर का निःसहत्व होना अर्थात् शरीर की शक्तिका क्षीण होना अंगसाद है। तृष्णाका बढना तृष्णानुबंध है।

स्त्रीसंभोगसे संताप उत्पन्न होता है। मानव स्त्रीसंवास से हिताहित विवेक से रहित होता है। स्त्रीसंभोगसे शारीरिक शक्ति क्षीण होती है, तृष्णा उत्पन्न होती है। ऐसा दुःखरूप भी यदि स्त्रीसंभोग सुखरूप है तो ज्वर भी सुखरूप होना चाहिये। क्योंकि जो लक्षण स्त्रीभोगमें हैं वही ज्वर में भी है-ज्वरमें भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पित्तका प्रकोपरूप संताप होता है, शरीरभी तप्त होता है, हिताहितका विवेक नष्ट हो जाता है, ज्वरसे शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तथा प्यासरूप तृष्णा अधिक बढती है अर्थात् ज्वरमें प्यास अधिक लगती वहीं तृष्णा हैं-इसलिये हे आत्मन्! स्त्रीसंभोग तथा ज्वर यह दोनों समान है, इन दोनो में कोई विशेषता ही नहीं है तो फिर स्त्रीसंभोग को तो सुखरूप तथा ज्वर को दुःखरूप क्यों माना जाय-अपितु ताप भी सुखरूप है ऐसा मानना चाहिये।

तथा चोक्तमार्षे-

स्त्रीभोगो न सुखं चेतस्समोहात् गात्रसादनात्।
तृष्णानुबन्धात् संन्तापरूपत्वाच्च यथा ज्वरः॥

अर्थात्-जैसे चित्तको मूर्च्छित करनेसे, शरीरको शिथिल करनेसे, तृष्णाकी संततीका जनक होनेस और संतापरूप होनेसे ज्वर सुख नहीं हो सकता वैसे ही स्त्री संभोग भी इन चारों कारणोंसे सुखरूप नहीं हो सकता है।

परस्त्रीसेवनमें सुखका अभाव है ऐसा बताते हैं-

समरसरसरङ्गोद्गममृते च काचित्क्रिया न निर्वृतये।
स कुतः स्यादनवस्थितचित्ततया गच्छतः परकलत्रम्॥५४॥

अन्वयार्थ-(समरसरसरङ्गोद्गमं) परस्पर समान रतिके (ऋते) विना (काचित्) आलिंगादि कोई भी (क्रिया) क्रिया (निर्वृतये) सुख के लिये (न) नहीं होती हैं (च) और (अनवस्थितचित्ततया) अनवस्थित चित्तसे (परकलत्रं) परस्त्री के पास (गच्छतः) जानेवाले के (सः) वह परस्पर समान रति (कुतः) कैसे (स्यात्) हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती॥५४॥

भावार्थ-जिस स्त्री-पुरुष में परस्पर समान रति हो-वहाँपर परस्पर में की हुई आलिंगनादि क्रियायें सुखरूप होती हैं और सन्तोषपूर्वक निर्भयता से आलिंगनादि क्रिया स्वस्त्री में ही हो सकती है। स्वजन, परजनशंकासे आकुलितचित्त होकर परस्त्री को सेवन करनेवाले पुरुष के समानरति कैसे हो सकती है। क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस का चित्त स्वजनादि के भयसे भयभीत रहता है। जब समान रति नहीं है तो चुम्बनादि क्रिया सुखरूप कैसे हो सकती है? इसलिये परस्त्रीसेवन इस लोकमे भी सुख का कारण नहीं है।

स्वदार का सेवन करनेवाले के भी द्रव्यहिंसा और भाव हिंसा दोनो होती है यह बताते हैं–

स्त्रियं भजन् भजत्येव रागद्वेषौ हिनस्ति च।
योनिजन्तून् बहून् सूक्ष्मान् हिंस्रः स्वस्त्रीरतोऽप्यतः ॥५५॥

अन्वयार्थ–(स्त्रियं) स्त्रीका (भजन्) सेवन करनेवाला (रागद्वेषौ) राग और द्वेष को (भजति एव) प्राप्त होता ही है। (च) तथा (बहून्) बहुतसे (सूक्ष्मान्) सूक्ष्म (योनिजन्तून्) योनि में उत्पन्न होनेवाले जीवोंको (हिनस्ति) मारता है (अतः) इसलिये (स्वस्त्रीरतः) स्वस्त्री में रत होनेवाला (अपि) भी (हिंस्रः) हिंसक है तो परस्त्रीसेवन करनेवाले तो हिंसक है ही।

भावार्थ–स्वस्त्री को सेवन करनेवाले मनुष्य के भी रागद्वेष उत्पन्न होते ही हैं और रागद्वेष का उत्पन्न होना ही भावहिंसा है, स्त्री को सेवन करनेसे योनि में उत्पन्न होने वाले असंख्यात पंचेन्द्रिय सूक्ष्मजीवों का घात होता है।

वात्स्यायनने भी योनि में जीव होते हैं ऐसा स्वीकार किया है, उनके ग्रन्थमें लिखा है–

रक्तजाः कृमयः सूक्ष्मा मृदुमध्यादिशक्तयः।
जन्मवर्त्मसु कण्डूतिं जनयंति तथाविधाम् ॥

मृदु तथा मध्यम शक्ति वाले रक्तसे उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म जीव जन्मस्थानमें (योनिमें) इस प्रकार की खुजाल उत्पन्न करते हैं जिससे काम उत्पन्न होता है। इसलिये योनिसम्बन्धी जीवों का घात होने से द्रव्यहिंसा भी होती है। जब स्वस्त्री को सेवन करनेवाला मानव भी द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसा दोनो प्रकारकी हिंसा होनेसे हिंसक हैं तो परस्त्रीसेवन करनेवाला हिंसक क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होगा, उसके तो स्वदारसंतोषीकी अपेक्षा विशिष्टकषायका उद्रेक रहता है। इसलिये वह तो विशेषरूपसे हिंसक है ॥५५॥

ब्रह्मचर्यके महिमा की स्तुति करते हैं-

स्वस्त्रीमात्रेऽपि सन्तुष्टो नेच्छेद्योऽन्याः स्त्रियः सदा।
सोऽप्यद्‌भुतप्रभावः स्यात् किं वर्ण्यं वर्णिनः पुनः ॥५६॥

अन्वयार्थ-(यः) जो मानव (सदा) हमेशा (स्वस्त्रीमात्रे) स्वस्त्रीमात्रमें ही (संतुष्ट) सन्तुष्ट है (अपि) तथा (अन्याः) दूसरी (स्त्रियः) स्त्रियों को (न इच्छेत्) नहीं चाहता है (सः) वह मानव (अपि) भी (अद्‌भुतप्रभावः) अद्‌भुत प्रभाववाला (स्यात्) होता है (पुनः) तो फिर (वर्णिनः) ब्रह्मचारी का (किं वर्ण्यं) क्या वर्णन (स्यात्) किया जाय ॥५६॥

भावार्थ-जो मानव अपनी स्त्रीमें ही सन्तोष रखता है, स्वप्न में भी परस्त्री की इच्छा नहीं करता हैं, उसका भी लोक को विस्मय करनेवाला अद्‌भुत प्रभाव है तो जिसने स्वस्त्री तथा परस्त्री दोनों का त्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया है, उस ब्रह्मचारी के माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय अर्थात् उसका माहात्म्य तो वर्णनातीत है।

इस समय स्वपति के सिवाय अन्य पुरुषका त्याग करने वाली स्त्रियों की बहुमान्यता को दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट करते हैं-

रूपैश्वर्यकलावर्यमपि सीतेव रावणम्।
परपूरुषमुज्झन्ती स्त्री सुरैरपि पूज्यते ॥५७॥

अन्वयार्थ-(रूपैश्वर्यकलावर्यं) रूप, ऐश्वर्य और कलाओं में श्रेष्ठ (अपि) भी (परपूरुषं) परपुरुष (रावणं) रावण को (उज्झन्ती) छोडनेवाली (सीता इव) सीता के समान (स्त्री) स्त्री (सुरैः) देवोंके द्वारा (अपि) भी (पूज्यते) पूजी जाती है ॥५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—आकार व शरीरके सौन्दर्यको रूप कहते हैं। पूजा, अर्थ और आज्ञाके आधिपत्यको ऐश्वर्य कहते हैं। गीत, नृत्यादिक के ज्ञान को कला कहते हैं।

जिसप्रकार सौन्दर्य, ऐश्वर्य तथा कलाओंमें अर्थात् दूसरे साधारणपुरुषोंमें नहीं पाये जाने वाले ऐसे सौन्दर्यादि से युक्त त्रिखंडाधिपति रावण को परपुरुष होने से नहीं स्वीकार करने वाली सीता देवों के द्वारा पूजित हुई—उसी प्रकार जो स्त्रिया पर-पुरुषसेवन पापका कारण है ऐसा समझकर परपुरुषका त्याग करती है वह देवोंके द्वारा पूजित होती है।

सीताकी कथा

मिथलापुरी में जनक नामका राजा राज्य करता था। उसके सर्व गुणसम्पन्न पतिव्रतादि गुणोंसे सुशोभित विदेहा नामकी रानी थी। उन दोनोंके सीता नामका कन्यारत्न उत्पन्न हुवा। जिसने अपने मुखसे चन्द्रमाको, गति से हंसको, हाथसे अशोकवृक्षको तथा पादपद्मसे कमलों को पराजित किया था। जब सीता युवावस्था को प्राप्त हुई, जनकने अयोध्यानरेश दशरथ के पुत्र रामचन्द्रके साथ सीताका विवाह किया।

सीता को प्राप्त कर रामचंद्र परमानंद को प्राप्त हुये। सीताके साथ संसार भोगोंका अनुभव करते हुये रामका काल सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था।

एकदिन दशरथ राजा को संसार शरीर—भोगोंसे विरक्ति हो गई और वे पुरुषोत्तम राम को राज्य पद देकर आत्मकल्याण करनेके लिये तपोवन को जानेके लिये उद्युक्त हुये। पिता को आत्मकल्याण के सन्मुख हुये देखकर भरत ने भी उनके साथ दीक्षा लेने का निश्चय किया। पति और पुत्र दोनोंको संसारसे विरक्त होकर तपोवन में जाने का निश्चय देखकर कैकयी विचारने लगी इस समय मेरा आधार कौन है, मुझे क्या करना चाहिये। थोडी देर विचार कर समय पाकर भरतकी माँ कैकयी, अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वस्वीकृत वर मांगकर भरतके लिये राज्य माँगती है। राजा दशरथ असमंजसमें पड गये, रामके समक्ष वे अपनी इस दुरवस्थाको प्रकट करते हैं। राम दृढताके साथ कहते हैं कि आप भरतको राज्य देकर अपने सत्यवचनकी रक्षा कीजिये, मेरी चिन्ता छोड दे। इसी बीच भरत संसारसे विरक्त हो दीक्षाके लिए महलसे नीचे उतरता है, तब राजा दशरथ और राम उसे जिस किसी तरह समझाबुझाकर रोकते हैं। भरतका राज्याभिषेक होता है। और राम पिताके पाससे उठकर अपनी माता अपराजिता के पास जाते हैं और उसे समझाकर तथा सान्त्वना देकर वनको जानेके लिए उद्यत होते हैं। सीता और लक्ष्मण उनके साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके अनेक लोग थे। सूर्यास्तका समय आया और राम, लक्ष्मण तथा सीता तीनों ही नगरके बाहर श्री जिनमन्दिरमें ठहर गये। दशरथकी अन्य रानियोंने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि आप राम, लक्ष्मणको लौटाकर शोकसागरमें डूबते हुए इस कुलकी रक्षा करो। परन्तु दशरथके विरक्तहृदयने अब इस प्रपंचमें पडना उचित नहीं समझा। राम, लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सब लोग बाह्यमण्डपमें सो रहे थे, मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निकलकर दक्षिणदिशाकी ओर चल पडे। प्रातः जागनेपर कितने ही लोग उनके पीछे दौडे तथा कुछ दूरतक साथ गये। अन्तमें परियात्रा नामक बनके बीचमें पडनेवाली भयंकर नदीको राम, लक्ष्मण, तैरकर पार कर गये परन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। फलस्वरूप कितने हीं घर लौट गये और कितने हीं दीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहितमुनिराजके पास दीक्षा धारण कर ली। कौशल्या और सुमित्रा पति एवं पुत्रके विना बहुत दुःखी हुईं। भरतकी माता कैकयी इन दोनोंकी दुःखपूर्ण अवस्था देख भरतसे कहती है कि तू राम, लक्ष्मणको लौटानेके लिये जा। मैं भी पीछेसे आती हू। तदनन्तर सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम, लक्ष्मणको देखा। सबका मिलाप हुआ। कैकयी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतने वापिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ । राम वापिस नहीं लौटे । भरत निराश हो वापिस लौट आया और राज्यका पालन करने लगा । उसने द्युतिभट्टारकके समक्ष प्रतिज्ञा ली कि मैं रामके दर्शनमात्रसे मुनिदीक्षा ले लूँगा। द्युतिभट्टारकने सबको धर्मका यथार्थ उपदेश दिया ।

राम,लक्ष्मण तथा सीताका कर्णरवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियोंको आहार दान देनेसे पञ्चाश्चर्यकी प्राप्ति, मुनिराजके दर्शनके गृध्रपक्षीका पूर्वभव ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्यशरीरकी प्राप्ति, मुनिद्वारा गृध्रके पूर्वभवका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा गृध्रका, 'जटायु' नामकरण तथा उसने रामके आश्रममें निवास किया । इसके बाद एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्‌भुत गन्ध आई, उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढते गये । श्रेणिकके पूछनेपर गौतमस्वामीने राक्षसवंश तथा लंकाका वर्णन किया । एक बाँसके भिडमें शम्बूक सूर्यहास खड्‌ग सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत खड्‌ग आकाशमें लटक रहा था । उसीकी सुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लपककर सूर्यहास खड्‌ग हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी बांसोके भिडेपर चला दिया । चलाते ही बाँसोका भिडा कट गया और साथही उसके भीतर स्थित शम्बूक भी कट कर दो टूकडे हो गया । शम्बूक, रावणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस पुत्रके दो टूकडे देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका करुण विलाप आकाशमें गूंजने लगा । कुछ समय बाद राम-लक्ष्मणके सौंदर्यसे उसका मन हरा गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छलसे कन्या बन आई । राम, लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हुए। कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर धर दबाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति खरदूषणके पास गई। खरदूषणने स्वयं आकर पुत्रको मरा देखा। उसका क्रोध उबल पडा। वह राम-लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ खडा हुआ। खरदूषणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी। खरदूषणका इधर लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायताके लिए आता है सो बीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है। छलसे सिंहनाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है। जटायु शक्ति भर प्रयत्न करता है, पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है। रणभूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशंकासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं। पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं। उसके विना करुण विलाप करते हैं।

उसके बाद हनूमान् लंकामें जाकर सर्वप्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपालम्भ देता है। तदनन्तर विभीषणकी विवशताका विचार कर प्रमदोद्यानमें जाता है। वहाँ अशोकवृक्षके नीचे सीताको देख अपने जन्मको सफल मानता है। वह उसकी गोदमें रामप्रदत्त अंगूठी छोडता है। सीता उसे बुलाती है। वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका सन्देश सुनाता है। ग्यारहवें दिन रामका सन्देश पाकर सीता आहारग्रहण करती है। मन्दोदरी आदिके साथ हनूमान्का संघर्ष होता है। हनूमान् उद्यानको क्षतिग्रस्त करता है। बन्धनबद्ध होनेपर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड तथा लंकाको नष्ट-भ्रष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है। वापिस आकर हनूमान्ने रामको सीताका सब समाचार सुनाया उसका चूडामणि उन्हें अर्पित किया। साथही सीताकी दयनीय दशाका भी वर्णन किया। चन्द्रमरीचि विद्याधरकी प्रेरणासे उत्तेजित हो सब विद्याधरोंने रामको साथ ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया। अखेर राम-रावणका घनघोर युद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ और रामने रावणका पराभव किया और सीताको मुक्त किया। तदनन्तर रावणको मारकर सीताको लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्यामें आये। अयोध्यावासि भरतादि सब लोगोंने बडे हर्षादिसे सबका स्वागत किया। कौसल्या आदि चारों माताओंने पुत्रोंको आलिंगन दिया और पुत्रोनें माताओंकों नमस्कार किया।

तदनन्तर एक दिन सीताने स्वप्नमें देखा कि दो अष्टापद मेरे मुखमें प्रविष्ट हुए हैं और मैं पुष्पकविमानसे नीचे गिर गई हूँ। रामने स्वप्नोंका फल सुनकर सीतको सन्तुष्ट किया। द्वितीय स्वप्नको कुछ, अनिष्ट जान उसकी शान्तिके लिए मन्दिरोंमें जिनेन्द्र भगवान्का पूजन किया। सीताको जिनमन्दिरोंकी वन्दनाका दोहल्ला उत्पन्न हुआ और रामने उसकी पूर्ति की। मन्दिरोंको सजाया गया तथा रामने सीताके साथ मन्दिरोंके दर्शन किये। इसके बाद एक दिन श्रीराम महेन्द्रोदयनामक उद्यानमें स्थित थे। प्रजाके चुने हुए लोग रामचन्द्रजीसे कुछ, प्रार्थना करनेके लिये गये पर उनका साहस कुछ कह सकनेसे लिए समर्थ नहीं होता था। दाहिनी आँखका अधोभाग फडकनेसे सीता भी मन ही मन दुःखी थी। सखियोंके कहनेसे उसने जिस किसी तरह शान्त हो मन्दिरमें शांतिकर्म किया। भमवान्का अभिषेक किया। मनोवांच्छित दान दिया। अन्तमें साहस इकठ्ठा कर प्रजाके प्रमुख लोगोंने रामसे सीता विषयक लोकनिन्दाका वर्णन किया और प्रार्थना की कि 'आप रावणके द्वारा अपहृत सीताको घर लाये हैं इसलिये प्रजामें स्वच्छन्दता फैलने लगी है।' यह सुनकर रामका हृदय अत्यन्त खिन्न हुआ।

रामचन्द्रजी लक्ष्मणको बुलाकर सीताके अपवादका समाचार सुनाते हैं। लक्ष्मण सुनते ही आगबबूला हो जाते हैं और दुष्टोंको नष्ट करनेके लिए तयार हो जाते हैं। वे सीताके शीलकी प्रशंसा कर रामके चित्तको प्रसन्न करना चाहते हैं। परन्तु राम लोकापवादके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भयसे सीताका परित्याग करनेका ही निश्चय करते हैं। कृतान्तवक्त्र सेनापतिको बुलाकर उसके साथ सीताको जिनमन्दिरोंके दर्शन करानेके बहाने अटवीमें भेज देते हैं। अटवीमें जाकर कृतान्तवक्त्र अपनी पराधीनवृत्तिपर बहुत पश्चात्ताप करता है। गङ्गानदीके उस पार जाकर कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको रामका आदेश सुनाता है। सीता वज्रसे ताडित हुई के समान मूर्छित हो पृथिवीपर गिर पडती है। सचेत होनेपर आत्मनिरीक्षण करती हुई रामको सन्देश देती है कि जिस तरह लोकापवादके भयसे आपने मुझे छोडा इस तरह जैनधर्मको नहीं छोड देना। सेनापति वापिस आ जाता है। सीता विलाप करती है। उसी समय पुण्डरीकपुरका राजा वज्रजङ्घ सेनासहित वहाँसे निकलता है और सीताका विलाप सुन उसकी सेना वहीं रुक जाती है।

सेनाको रुकी देख वज्रजङ्घ उसका कारण पूछता है। जब तक कुछ सैनिक सीताके पास जाते हैं तबतक वज्रजङ्घ स्वयं पहुंच जाता है। सैनिकोंको देख सीता भयसे काँपने लगती है। उन्हें चोर समझ आभूषण देने लगती है पर वे सान्त्वना देकर राजा वज्रजङ्घका परिचय देते हैं। सीता उन्हें अपना सब वृत्तान्त सुनाती है और वज्रजङ्घ उसे धर्मबहिन स्वीकृत कर सान्त्वना देता है।

सुसज्जित पालकीमें बैठकर सीता पुण्डरीकपुर पहुंची। भयंकर अटवीको पार करनेमें उसे तीन दिन लग गये। वज्रजङ्घने बडी विनय और श्रद्धाके साथ सीताको अपने यहाँ रक्खा। कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको बनमें छोड जब अयोध्यामें पहुँचा तो रामने उससे सीताका सन्देश पूछा। सेनापतिने सीताका संदेश सुनाया कि--जिस तरह आपने लोकापवादके भयसे मुझे छोडा है उसतरह जिनधर्म व जिनेंद्रदेवकी भक्ति नहीं छोड देना-। वनकी भीषणता और सीताकी गर्भदशा बिचारकर राम बहुत दुःखी हुए। लक्ष्मणने आकर उन्हें समझाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्रजङ्घके राजमहलमें सीताकी गर्भावस्थाका वर्णन नौमाह पूर्ण होनेके बाद सीताके गर्भसे अनङ्गलवण और लवणाङ्कुशकी उत्पत्ति होती है। इन पुण्यशाली पुत्रोंकी पुण्यमहिमासे राजा वज्रजङ्घका वैभव निरन्तर वृद्धिगत होने लगता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों पुत्रोंको विद्याएँ ग्रहण कराता है।

विवाहके योग्य अवस्था होनेपर राजा वज्रजङ्घने अपनी लक्ष्मीरानीसे उत्पन्न, शशिचूला आदि बत्तीस पुत्रियाँ लवणको देनेका निश्चय किया और अङ्कुशके लिए योग्य पुत्रीकी तलाशमें लग गया। उसने बहुत कुछ विचार करनेके बाद पृथिवीपुरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी पुत्री प्राप्त करनेके लिए अपना दूत भेजा। परन्तु राजा पृथुने प्रस्तावको अस्वीकृत कर इनको अपमानित किया। इस घटनासे वज्रजङ्घने रूष्ट होकर उसका देश उजाडना शुरू किया। जबतक वह अपनी सहायताके लिए पोदनदेशके राजाको बुलाता है तबतक वज्रजङ्घने अपने पुत्रोंको बुला लिया। दोनों ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। वज्रजङ्घ विजयी हुए और राजा पृथुने अपनी कनकमाला पुत्री अङ्कुशके लिए दे दी। विवाहके बाद दोनों वीरकुमारोंने दिग्विजयकर अनेक राजाओंको अधीन किया।

साक्षात्कार होनेपर नारदने लवणाङ्कुशसे कहा कि तुम दोनोंकी विभूति राम और लक्ष्मणके समान हो। यह सुन कुमारोंने राम और लक्ष्मणका परिचय पूछा। उत्तरस्वरूप नारदनें उनका परिचय दिया। राम और लक्ष्मणका परिचय देते हुए नारदने सीताके परित्यागका भी उल्लेख किया। एक गर्भिणी स्त्रीको असहाय निर्जन अटवीमें छुडवाना यह रामकी बात कुमारोंको अनुकूल नहीं जँची और उन्होंने रामसे युद्ध करनेका निश्चय कर लिया। इसी प्रकरणमें सीताने अपनी सब कथा पुत्रोंको सुनायी। तथा कहा कि तुम लोग अपने पिता तथा चाचासे नम्रताके साथ मिलो। परन्तु वीरकुमाराका यह दीनतः रुचिकर नहीं हुई। उन्होंने सेनासहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाकर अयोध्याको घेर लिया तथा राम-लक्ष्मणके साथ उनका घोर युद्ध होने लगा ।

राम और लक्ष्मण अमोघ शस्त्रोंका प्रयोग करके भी जब दोनों कुमारोंको नहीं जीत पाये तब नारदकी सम्मतिसे सिद्धार्थ नामक क्षुल्लकने राम–लक्ष्मणके समक्ष उनका रहस्य प्रकट करते हुए कहा कि अहो ! देव ! ये आपके सीताके उदरसे उत्पन्न युगल पुत्र हैं, सुनते ही राम–लक्ष्मणने शस्त्र फेंक दिया । तथा पिता पुत्रका बडे सौहार्दसे समागम हुआ । राम–लक्ष्मणकी प्रसन्नताका पार नहीं रहा ।

हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषणकी पार्थनापर रामने सीताको इस शर्तपर बुलाना स्वीकृत कर लिया कि वह देश देशके समस्त लोगोंके समक्ष अपनी निर्दोषता शपथ द्वारा सिद्ध करे । निश्चया–नुसार देश–विदेशके लोग बुलाये गये । हनूमान् आदि सीताको भी पुण्डरीकपुरसे ले आये । जब सीता राज–दरबारमें रामके समक्ष पहुँची तब रामने तीक्ष्ण शब्दों द्वारा उसका तिरस्कार किया ।

तदनन्तर सीताने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दुसरा नहीं है । जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्याका तिर–स्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो । हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वनमें ले जाकर मुझ गर्भिणीको छोडना क्या तुम्हें उचित था ? यदि मैं वहां कुमरणको प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती । यदि मेरे ऊपर आपका थोडा भी सद्भाव होता अथवा थोडी भी कृपा होती तो मुझे शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंकी वसतिके पास ले जाकर क्यों नहीं छोडा ? यथार्थमें अनाथ, अबन्धु, दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका यह जिनशासन ही परम शरण है । हे राम ! यहां अधिक कहनेसे क्या ? इस दशामें भी आप प्रसन्न हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मुझे आज्ञा दें इस प्रकार कह कर वह अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी ।

तदनन्तर रामने कहा कि हे देवि! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्रायकी उत्कृष्ट विशुद्धताको जानता हूँ किन्तु यतश्च तुम लोगोंके द्वारा इस प्रकट भारी अपवादको प्राप्त हुई हो अतः स्वभावसे ही कुटिलचित्तको धारण करनेवाली इस प्रजाको विश्वास दिलाओ । इसकी शङ्का दूर करो । तब सीताने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मैं पांचो ही दिव्य शपथोंसे लोगोंको विश्वास दिलाती हूँ । उसने कहा कि हे नाथ ! मैं उस कालकूटको पी सकती हूँ जो विषोंमें सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूंघकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्म हो जाता है । मैं तुलापर चढ सकती हूँ अथवा भयङ्कर अग्निकी ज्वालामें प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ । क्षणभर विचारकर रामने कहा कि अच्छा अग्निमें प्रवेश करो । इसके उत्तरमें सीताने बडी प्रसन्नतासे कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ । 'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली, यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोकके भारसे पीडित हो उठे । 'माता अग्निमें प्रवेश करना चाहती है' यह निश्चयकर लवण और अङ्कुशने बुद्धिमें अपनी भी उसी गतिका विचार कर लिया अर्थात् हम दोनों भी अग्निमें प्रवेश करेंगे ऐसा उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया । तदनन्तर महाप्रभावसे सम्पन्न एवं बहुत भारी हर्षको धारण करनेवाले सिद्धार्थ क्षुल्लकने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीताके शीलव्रतका देव भी पूर्णरूपसे वर्णन नहीं कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? हे राम ! मेरु पातालमें प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं परन्तु सीताके शीलव्रतमें कुछ चञ्चलता उत्पन्न नहीं की जा सकती । चन्द्रमा सूर्यपनेको प्राप्त हो सकता है और सूर्य चन्द्रपनेको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त कर सकता है परन्तु सीताका अपवाद किसी भी तरह सत्यताको प्राप्त नहीं हो सकता । मैं विद्याबलसे समृद्ध हूँ और मैंने पाँचों मेरु पर्वतोंपर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जो जिन-प्रतिमाएँ है उनकी वन्दना की हैं । हे राम ! मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीताके शीलमें थोडी भी कमी है तो मेरी दुर्लभ वन्दना निष्फलताको प्राप्त हो जाय । मैंने वस्त्रखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप क्रिया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हों तो मेरे तप निष्फल हो जाय । मैं उस तपकी शपथ करता हूँ अर्थात् तपको शपथपूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं । इसलिये हे बुद्धिमान् राम! जिसमें भयङ्कर ज्वालावली रूप लहरें उठ रही हैं तथा जो सबका संहार करनेवाली है ऐसी अग्निमें सीता प्रवेश नहीं करे । क्षुल्लककी बात सुन आकाशमें विद्याधर और पृथ्वीपर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यताको प्राप्त होओ ! हे नाथ ! हे राम ! हे राम ! मनमें अग्निका विचार मत करो । सीता सती है, सीता सती है, इस विषयमें अन्यथा सम्भावना नहीं हो सकती महापुरुषोंकी पत्नियोंमें विकार नहीं होता । इस प्रकार समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाले, तथा अश्रुओंके भारसे गद्गद् अवस्थाको प्राप्त हुए शब्द, संक्षुभित जनसागरसे निकलकर सब ओर फैल रहे थे । तीव्र शोकसे युक्त समस्त प्राणियोंके आंसुओंकी बडी बडी बूंदें महान् कलकल शब्दोंके साथ-साथ निकलकर नीचे पड रही थी ।

तदनन्तर रामने कहा कि हे मानवो ! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करनेमें तत्पर हैं तो पहले आप लोगोंने अपवाद क्यों कहा था ? इस प्रकार लोगोंके कथनकी अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धतामें मन लगाया था ऐसे रामने परम दृढताका आलम्बन कर किङ्करोंको आज्ञा दी कि यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौडी चौकोन पृथ्वी प्रमाणके अनुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दनके सूखे और बडे मोटे ईन्धन परिपूर्ण करो । तदनन्तर उसमें बिना किसी विलम्बनके ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षात् मृत्यूके समान जान पडती हो । तदनन्तर बडे बडे कुदाले जिनके हाथमें थे तथा जो यमराजके सेवकोंसे भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकोंने 'जो आज्ञा' कहकर रामकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया ।

अथान्तर तृण और काष्ठसे भरी उस वापीको देख श्रीराम व्याकुलचित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि, गुणोंकी पुञ्ज महा सौन्दर्यसे सम्पन्न एव कान्ति और शीलसे युक्त इस कान्ताको अब पुनः कैसे देख सकूंगा । खिली हुई मालतीकी मालाके समान सुकुमार शरीरको धारण करनेवाली यह कान्ता निश्चित ही अग्निके द्वारा स्पृष्ट होते ही नाशको प्राप्त हो जायगी । यदि यह राजा जनकके कुलमें उत्पन्न नहीं हुई होती तो इस लोकापवादको तथा अग्निमें मरणको प्राप्त नहीं होती । इसके बिना मैं क्षणभरके लिये भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वनमें निवास करना भी अच्छा हैं पर इसके विना स्वर्गमें रहना भी शोभा नहीं देता । यह भी महा निश्चिन्तहृदया है कि मरनेके लिए उद्यत हो गई । अब दृढताके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली है, सो इसे कैसे रोक जाय ? लोगोंके समक्ष रोकनेमें लज्जा उत्पन्न हो रही है । उस समय बडे जोरसे हल्ला करनेवाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक भी चुप बैठा है; अतः इसे रोकनेमें क्या बहाना करूँ ? अथवा जिसने जिस प्रकारके मरणका अर्जन किया है नियमसे वह उसी मरणको प्राप्त होता है, उसे रोकनेके लिये कौन समर्थ है ? उस समय जब कि यह पतिव्रता लवण समुद्रके ऊपर हरकर ले जाई जा रही थी तब 'यह मुझे नहीं चाहती है' इस भावसे कुपित हो रावणने खड्गसे इसका शिर क्यों नहीं काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यन्त दुस्तर संशयको प्राप्त हुई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर जाना अच्छा है परन्तु दुःसह वियोग अच्छा नहीं है। क्योंकि श्रुति तथा स्मृतिको हरण करनेवाला वियोग कोई अत्यन्त निन्दित पदार्थ है। विरह तो जीवन-पर्यन्तके लिए चित्तको संताप प्रदान करता रहता है और 'मर गई' यह सुन उस सम्बन्धी कथा और इच्छा तत्काल छूट जाता है। इस प्रकार रामके चिंतातुर होनेपर वापीमें अग्नि जलाई जाने लगी। दयावती स्त्रियाँ रो उठीं।

तदन्तर अत्यधिक उठते हुए धूमसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पडने लगा मानो असमयमें प्राप्त हुए वर्षा-कालीन मेघोंसे ही व्याप्त हो गया हो। उस समय जगत् ऐसा जान पडने लगा मानो भ्रमरोंसे युक्त, कोकिलाओंसे युक्त अथवा कबूतरोंसे युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है। सूर्य आच्छादित हो गया, सो ऐसा जान पडता था मानों दयासे आर्द्रहृदय होनेके कारण उस प्रकारके उपसर्गको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कहीं जा छिपा हो। उस वापीमें ऐसी भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओंमें जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोशों प्रमाण लम्बी-लम्बी ज्वालाओंसे विकराल थी। उस समय उस अग्निको देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारों सूर्योंसे आकाश आच्छादित हो रहा है? अथवा पाताललोकके पलाश वृक्षोंका समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है? अथवा आकाशको क्या प्रलयकालीन सन्ध्याने घेर लिया है? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होनेकी तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार बिजलीमय हो रहा है अथवा जीतनेकी इच्छासे क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है?।

तदनन्तर जिसका मन अत्यन्त दृढ था ऐसी सीताने उठकर क्षणभरके लिए कायोत्सर्ग किया, भावनासे प्राप्त जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरको नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनेन्द्र, जिसके कि तीर्थंकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय हर्षके धारक एवं परम ऐश्वर्यसे युक्त देव, असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मतमें स्थित सर्वप्राणि हितैषी आचार्यके चरणयुगल इत सबको नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और अत्यधिक विनयसे युक्त सीताने कहा–कि मैंने रामको छोडकर किसी अन्य मनुष्यको स्वप्नमें भी मन–वचन और कार्यसे धारण नही किया है यह मेरा सत्य है। यदि मैं यह मिथ्या कह रही हुं तो यह अग्नि दूर रहने पर भी मुझे क्षणभरमें भस्मभावको प्राप्त करा दें–राखका ढेर बना दे। और यदि मैंने रामके सिवाय किसी अन्य मनुष्यको मनसे भी धारण नही किया है तो त्रिशुद्धिसे सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे। यदि मैं मिथ्यादृष्टि, पापिनी, क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचारमें स्थित सती होऊँगी तो नहीं जला सकेगी। इतना कह-कर उस देवीने उस अग्निमें प्रवेश किया। परन्तु आश्चर्यकी बात कि वह अग्नि स्फटिकके समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गई। मानो सहसा पृथिवीको फोड कर वेगसे उठते हुए जलसे वह वापिका लबालब भर गई तथा चञ्चल तरङ्गोंसे व्याप्त हो गई। वहाँ अग्नि थी इस बातकी सूचना देनेवाले न लूए, न काष्ठ, न अंगार और न तृणादिक कुछ भी दिखाई देते थे। उस वापिकामें ऐसी भयंकर भँवरें उठने लगीं जिनके कि चारों ओर फेनोंके समूह चक्कर लगा रहे थे जो अत्यधिक वेगसे सुशोभित थी तथा अत्यन्त गंभीर थी। कहीं मृदङ्ग जैसा शब्द होनेसे 'गुलु गुलु' शब्द होने लगा, कहीं 'भुं भुंदभुंभ' की ध्वनि उठने लगी और कहीं 'पट पट' की आवाज आने लगी। उस वापीमें कहीं हुँकार, कहीं लम्बी-चौडी धूंकार, कहीं दिमिदिमि, कहीं जुगद् जुगद्, कहीं कल कल ध्वनि, कहीं शसद्–भसद् और कहीं चांदीके घण्टा जैसी आवाज आ रही थी इस प्रकार जिसमें क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द उठ रहा था। ऐसी वह वापी क्षणभरमें तटपर स्थित-मनुष्योंको डुबाने लगी। वह जल क्षणभरमें घुटनोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बराबर, फिर नितम्बके बराबर, फिर निमेष मात्रमें स्तनोंके बराबर हो गया। वह जल पुरुष प्रमाण नहीं हो पाया कि उसके पूर्व ही पृथिवी पर चलने वाले लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए, इस विचारसे दुःखी विद्याधर आकाशमें जा पहुँचे। तदनन्तर तीव्र वेगसे युक्त जल जब कण्ठका स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल हो कर मंचोंपर चढ गये किन्तु थोडी देर बाद वे मञ्च भी डूब गये। नन्तर जब वह जल शिरको उल्लंघन कर गया तब कितने ही लोग तैरने लगे। उस समय उनकी एक भुजा वस्त्र तथा बच्चोंको संभालनेके लिए ऊपरको ओर उठ रही थी। "हे देवि! रक्षा करो, हे मान्ये! हे लक्ष्मी! हे सरस्वति! हे महाकल्याणि! हे धर्मसहिते! हे सर्वप्राणिहितैषिणि! रक्षा करो! हे महापतिव्रते! हे मुनिमानसनिर्मले! दया करो।" इस प्रकार जलसे भयभीत मनुष्योंके मुखसे शब्द निकल रहे थे।

तदनन्तर वापीरूपी वधू, तरङ्गरूपी हाथोंके द्वारा कमलके मध्यभागके समान कोमल एवं नखोंसे सुशोभित चरणयुगलका स्पर्शकर क्षणभरमे सौम्यदशाको प्राप्त हो गई। उसकी मलिन भँवरें शान्त हो गई और उसका भयंकर शब्द छूट गया। इससे लोग भी सुखी हुए। वह वापी क्षणभरमें नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलोंसे व्याप्त हो गई और सुगन्धिसे मदोन्मत्त भ्रमर समूहकी संगतिसे मनोहर दिखने लगी। सुन्दर शब्द करनेवाले क्रौञ्च, चक्रवाक, हंस तथा बदक आदि पक्षियोंके समूहसें सुशोभित हो गई। मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढियों और लहरोंके बीचमें स्थित मरकतमणिकी कान्तिसे समान कोमल पुष्पोंसे उसके किनारे अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे।

अथानन्तर उस वापीके मध्यमें एक विशाल, विमल, शुभ खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल सहस्रदल कमल प्रकट हुआ और उस कमलके मध्यमें एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका आकार नानाप्रकारके वेल-बूटोंसे व्याप्त था, जो रत्नोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशरूपी वस्त्रसे वेष्टित था, और कान्तिसे चन्द्रमण्डलके समान था। तदनन्तर 'डरो मत' इसप्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सान्त्वन दे रहीं थी ऐसी सीता सिंहासन पर बैठाई गई। उस समय आश्चर्य-कारी अभ्युदयको धारण करनेवाली सीता लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी। आकाशमें स्थित देवोंके समूहने संतुष्ट होकर पुष्पा-ञ्जलियोंके साथ-साथ 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े। गुंजा नामक मनोहर वादित्र गूंजने लगे, नगारे जोरदार शब्द करने लगे, तूर्य गम्भीर शब्द करने लगे, बाँसुरी स्पष्ट शब्द कर उठीं तथा काँसेकी झाँझें मधुर शब्द करने लगी। वल्गित, क्ष्वेडित, उद्घृष्ट तथा क्रुष्ट आदिके करनेमें तत्पर, संतोषसे युक्त विद्याधरोंके समूह परस्पर एक दूसरेसे मिलकर नृत्य करने लगे। सब ओरसे यही ध्वनि आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनककी पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीरामकी परम अभ्युदयवती पत्नीकी जय हो। अहो बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है इसका शील अत्यन्त निर्मल है। शीलधर्म का प्रभाव अचिन्त्य है। शीलके प्रभाव से अग्नि का जल होता है जलका थल होता है।

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम्॥
अग्नि नीरसम होय मालसम होय भुजंगम।
नाहर मृगसम होय कुटिल गज होय तुरंगम॥
विषं पीयूषसम होय शिखरपाषाण खंडमित।
विघन उलट आनंद, होय रिपुपलट होयहित॥
लीलातलावसम उदधिजल, गृहसमान अटवी विकट।
इहिविधि अनेक दुःख होहिं सुख शीलवन्त नरके निकट॥
हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपंकं।
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचिशीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥
कुल कलंक दलमलहि पापमलपंक पखारहि
दारुन संकट हरहि जगत महिमा विस्तारहि
सुरग मुकति पद रचहि सुकृतसंचहि करुणासि
सुरगन बंदहि चरन शील गुण कहत बनारसि ॥

इसप्रकार शीलका माहात्म्य अचिंत्य है। शील व्रतके विना जप, तप, संयम सब निरर्थक हैं। शील आंकके समान है, बाकी व्रत शून्यके समान है। जिसप्रकार आंकके विना शून्य का कुछ भी महत्व नहीं उसी प्रकार शीलके विना किसी व्रतका महत्व नहीं हैं। इसलिये सीताके समान अपने शीलपर दृढ रहना चाहिये।

ब्रह्मचर्यव्रतके अतिचारोंको कहते हैं--

इत्वरिकागमनं परविवाहकरणं विटत्वमतिचाराः ।
स्मरतीव्राभिनिवेशोऽनङ्गक्रीडा च पञ्च तुर्ययमे ॥५८॥

अन्वयार्थ- (इत्वरिकागमनं) वेश्याके यहाँ जाना (परविवाह करणं) अपनी सन्तान के सिवाय दूसरोंकी सन्तान का विवाह कराना (विटत्वं) भंड वचन बोलना (स्मरतीव्राभिनिवेशः) काम की तीव्रभिलाषा होना (च) और (अनंगक्रीडा) अनंगक्रीडा ये (पंच) पांच (तुर्ययमें) ब्रह्मचार्याणुव्रतके (अतिचाराः) अतिचार हैं।

भावार्थ- इत्वरिकागमन, परविवाहकरण, विटत्व, स्मरतीव्राभिनिवेश,और अनंगक्रीडा ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार हैं।

इत्वरिकागमन- अस्वामिका असति वेश्या पुंश्चली प्रत्येक पुरुषोंको प्राप्त होती है,इसलिये इत्वरी कहलाती है। हरेक पुरुषको प्राप्त होती है, इसलिये वेश्याको इत्वरी कहते हैं, उस कुत्सित इत्वरीके गमन करना अर्थात् वेश्याको सेवन करना ब्रह्मचर्याणुव्रत का अतिचार हैं। यहां एक शंका होती है कि वेश्या सेवन करना ब्रह्मचर्याणुव्रत का अतिचार कैसे हो सकता है वह तो अनाचार होना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर– वित्त देकर स्वल्पकालतक वेश्या वा इत्वरिका को अपनी बुद्धिसे स्वकलत्र की कल्पना करके सेवन करनेवाले स्वदाराकी सापेक्षा होनेसे और अल्पकाल तक परिग्रहण होनेसे व्रत भंग नहीं है तथा लोकरूढिमें परदारा होनेसे व्रतभंग है अतः भंगाभंगरूप होनेसे इत्वरिकागमन अतिचार है। कोई कोई आचार्य अपरिगृहीत कुलांगनाको सेवन करना भी परदारत्यागव्रत का अतिचार कहा है–तत्त्वार्थ सूत्रमें लिखा है। इत्वरिका परिगृहीतापरिगृहीतागमन लक्षण अतिचार कहा है। यहां भी जैसे इत्वरिका और वेश्याका सेवन करनेमें एकदेश व्रतकी रक्षा होनेसे अतिचार है। उसी प्रकार अपरिगृहीता कुलांगना भी पतिका अभाव होनेसे परदारा नहीं है तथा लोकरूढि में परदारा है। इसलिये उसके भी सेवन करनेमें व्रतकी सापेक्षा होनेसे अर्थात् भंगाभंग रूप होनेसे अतिचार है। तथा इत्वरिका शब्दसे परिगृहीता अपरिगृहिता दोनों इत्वरिकाका ग्रहण होता है।

परविवाहकारण– जिसने ऐसा व्रत लिया है कि मैं अपनी स्त्रीको छोडकर किसी भी प्रकारकी स्त्रीका सेवन नहीं करूंगा, ऐसे "स्वदार–सन्तोषी" के तथा स्वपत्नी और वेश्याको छोडकर अन्य सब प्रकारकी स्त्रियोंका सेवन मन वचन कायसे न करूंगा और न दूसरोंके लिये प्रेरक ही होऊंगा, इस प्रकारसे "परदारनिवृत्ति" व्रत लिया है, उन दोनोंको ही "परविवाहकरण" एक प्रकारसे विवाह करनेवाले दम्पतियोंके मैथुनके साधन जुटाना है, इसलिये निषिद्ध है। परंतु इस प्रकारके व्रत लेनेवाले, अपने अपने मनमें ऐसा समझते हैं कि मैंने तो इन वधूवरका विवाह किया है। उन दोनोंके (दम्पतियोंके) लिए मैथुनमें प्रेरणा थोडो ही की है, इस दृष्टिसे गृहीत व्रतका अभंग है। परन्तु वास्तवमें मैथुनके लिये वह (विवाह) कारण है। इसलिये व्रतका भंग समझना चाहिये। इस प्रकारसे भंग और अभंगकी अपेक्षा 'परविवाहकरण' अतीचार है। यहां व्रत पालनेवाले दो हैं–एक सम्यग्दृष्टि, दूसरा भद्रमिथ्या–दृष्टि, उनमेंसे सम्यग्दृष्टि तो अज्ञानके कारण कन्यादानके फलकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छासे अतीचार करता है तथा भद्रमिथ्यादृष्टि अनुग्रहकी दृष्टिसे दूसरोंके कन्या–पुत्रोंके विवाह करके अतीचार सेवन करता है।

शङ्का– तो फिर अपने कन्या तथा पुत्रका भी व्रतीको विवाह नहीं करना चाहिये ? इसका उत्तर यह है कि यदि अपनी कन्याका विवाह नहीं किया जावेगा तो विना विवाहके वह स्वच्छन्दाचारिणी हो जावेगी। इसी तरह पुत्रका यदि विवाह नहीं किया गया तो वह भी स्वेच्छाचारी हो जावेगा और इस तरह कुल शास्त्र तथा लोकव्यवहारमें विरोध आवेगा। इसलिए अपनी जिम्मेवारीका ख्याल करके पुत्र और पुत्रीका विवाह व्रतीको करना लाजमी हो जाता है। हां ! यदि किसीके योग्य भाई भतीजे घरमें हों और अपनी कन्या व पुत्रके विवाहकी जिम्मेदारी वे अपने ऊपर ले लेवें तो फिर व्रतीको अपनी कन्या और पुत्रका विवाह नहीं करना चाहिये, यह सर्वश्रेष्ठ पक्ष है।

जब व्रती अपनी एक स्त्रीके रहते हुए भी दूसरी शादी करता है,उस समय भी उसको विशेष सन्तोषके अभावसे अन्य विवाहकरण नामका अतीचार लगता है। उस समय "अन्यविवाहकरण" शब्दका "अन्य कलत्रके साथ अपना विवाह करना" यह अर्थ लगाकर अतीचार समझना चाहिये।

तात्पर्य– यह है कि अपने पुत्र व पुत्रीके अतिरिक्त दूसरोंके पुत्र पुत्रियोंका कन्यादानके फलकी इच्छासे व स्नेह सम्बन्धसे विवाह करना मैथुनमें निमित्त होनेके कारण अतीचार है अथवा अपनी स्त्रीके रहते हुए भी विशेष सन्तोषके अभावमें दूसरा विवाह करना भी परविवाहकरण नामका अतीचार है।

विटत्वः–का अर्थ भंडिया, अर्थात् अत्यंत भण्ड वचन बोलनेवाला पुरुषके द्वारा अशिष्ट वचन प्रयोग करना है। अर्थात् रागवर्द्धक आसक्तिद्योतक अश्लील वचन बोलना विटत्व नामका अतीचार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मरतीव्राभिनिवेश–अत्यन्त आसक्तिपूर्वक कामसेवन करना अर्थात् कामसेवनमे एक प्रकारसे लीन होकर कामकी आसक्तिके कारण सब पुरुषार्थ छोडकर एक कामसेवनका ही व्यवसाय मान लेना, चिडवा चिडवीके समान अपनी स्त्रीके साथ पुनः पुनः कामसेवन करना तथा उसीके साथ और भी अनेक प्रकारकी कुचेष्टाओंमें लीन रहना और अति कामसेवनके कारण क्षीण शक्तिके होनेपर वाजीकरण औषधि खाकर स्त्रीसेवन करना तथा ऐसी बुद्धि करना कि इन वाजीकरण औषधियोंसे मैं हाथी व घोडे के समान बल प्राप्त करके भोग भोगनेमें समर्थ हो जाऊँगा, इत्यादि कामकी आसक्तिपूर्वक अधिकतामें रागद्वेष करनेको स्मरतीव्राभिनिवेश नामक अतीचार कहते हैं। यह अतीचार अपनी ही स्त्रीमें अत्यासक्तिके कारण होता है।

अनङ्गक्रीडा–यहां अंग शब्दसे स्त्रीकी योनि और पुरुष चिन्हका बोध होता है। पुरुषको स्त्रीके अंगके सिवाय दूसरे अंगोंमें कायकृत कुचेष्टा करना अनंगकीडा है। नाना प्रकारकी रागोत्पादक कुचेष्टाएं जो अतिकामी लोग कहते हैं वह सब अनंगक्रीडामें शामिल हैं। जैसे अपने लिंगसे विषय सेवन से कृतार्थ होकर भी चर्ममय लिंगादिसे स्त्रियों के अवाच्य स्थान को बार बार कुद्रेना, केशादि को खींच कर के काम क्रीडामें प्रबल राग उत्पन्न कराना यह सब अनंगक्रीडा हैं।

श्रावक अत्यन्त पापभीरुपनेसे पूर्ण ब्रम्हचर्य पालन करना चाहता है, परंतु वेदकषायके उदयके वेगको जब नहीं सहन कर सकता है तब उस वेगको निष्प्रभ करनेके हेतुसे स्वदार–संतोषादि व्रत धारण करता है। उसकी यह स्वदारसंतोषादि व्रत लेते समय दृष्टि रहती है, इसलिये विटत्व, स्मरतीव्राभिनिवेश और अनंगक्रीडा स्वदारसंतोषीके निषिद्ध ही है। विटत्व आदिके करनेसे उसका कुछ लाभ नही, किन्तु तात्कालिक रागोद्दीपन होता है। अतः उलटी बलकी हानि होती है और निर्बलताके कारण राजयक्ष्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे भयंकर रोगोंकी उत्पत्ति होनेकी संभावना रहती है। कहा भी है–

> ऐदंपर्यमतो मुक्त्वा भोगानाहारवद्भजेत्।
> देहदाहोपशान्त्यर्थमभिधानविहानये ॥

अर्थात्–आसक्तिको छोडकर विकारको दूर करनेके हेतुसे भोगोंको देह और मनकी शांतिके लिये आहारके समान सेवन करना चाहिये।

इस कथनानुसार स्वदारसंतोषीके लिये विटत्वादि निषिद्ध आचरण है, उसके सेवन करनेसे भंग और वह अपनी समझमे स्वदारसंतोषरूपी नियमका पालन कर रहा है इससे अभंग भी है। इस प्रकार एकदेश भंग और अभंगके पाये जानेसे 'विटत्व' स्मरतीव्राभिनिवेश तथा अनंगक्रीडा नामके अतीचार होते हैं।

अथवा स्वदारसन्तोष व्रतवाला अपने मनमें जब ऐसे भाव करता है कि मैंनें तो वेश्या आदिके साथ मैथुनका त्याग किया है, हास–उपहास आदिका त्याग नहीं किया है तो उसकी उस दृष्टिसे व्रतका अभंग है। परन्तु विटत्वादिके कारण वास्तवमें व्रतभंग होता है, इसलिए एकदेशभंग और अभंगके कारण य तीनों अतिचार समझना चाहिए। "परदारनिवृत्ति" नामके व्रतमें भी स्वदारसन्तोषव्रतोकी कल्पनाके समान भावनाके कारण व्रतका भंग–अभंगकी अपेक्षा विटत्वादि ३ अतीचार समझने चाहियं। स्त्रियोंकी अपेक्षासे भी ४ अतीचार तो पुरुषोंके समान होते हैं। एक "इत्वरिकागमन" की जगह "परपुरुषगमन" नामका अतीचार इस प्रकारसे समझना चाहिए कि किसी पुरुषकी दो स्त्रियां हैं, उनके सहूलियतके लिये उसने दिन नियत कर दिये हैं। जिस पत्नीका जो दिवस हैं उस पत्नीको उसी दिन अपने पतिके साथ स्त्रियोचित व्यवहार करना चाहिये। दूसरी पत्नीके दिन उसका पति इसके लिये परपुरुष ही (दूसरी पत्नीका पुरुष है इसका नहीं) हैं। यदि उस दिन इसकी वारी नहीं है अपने पतिके साथ वह स्त्रीवत् व्यवहार करेगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो इसको "परपुरुषगमन" नामका अतीचार लगेगा अथवा अपना पति जिस दिन ब्रम्हचर्यव्रतसे हो उस दिन अतिक्रम करनेवाली स्त्रीके यह प्रथम अतीचार लगेगा।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रतका वर्णन करते हैं–

ममेदमिति सङ्कल्पश्चिदचिन्मिश्रवस्तुषु।
ग्रन्थस्तत्कर्शनात्तेषां कर्शनं तत्प्रमाव्रतम् ॥५९॥

अन्वयार्थ–(चिदचिन्मिश्रवस्तुषु) चेतन, अचेतन और मिश्र वस्तुओंमें (मम इदं) यह मेरा है (इति) इस प्रकार का (संकल्पः) संकल्प (ग्रन्थः) परिग्रह है (तत्कर्शनात्) उस ममत्वको स्वल्प करनेके लिये (तेषां) उन चेतनाचेतन तथा मिश्र वस्तुओं का (कर्शनं) कमी करना (तत्प्रमाव्रतम्) परिग्रहपरिमाण व्रत है ॥५९॥

भावार्थ–चेतन, अचेतन और मिश्रके भेदसे परिग्रह तीन प्रकार का हैं।

चेतन–पुत्र, कलत्र, भृत्यादि सचेतनपरिग्रह है।

अचेतन–सुवर्ण, चान्दी, घर आदि अचेतनपरिग्रह है।

मिश्र–पुष्प वाटिकादि मिश्रपरिग्रह है। मिथ्यात्वादि अंतरंग–परिग्रह हैं।

उन तीनो प्रकार के परिग्रहमें यह वस्तु मेरी है, मैं इनका स्वामी हूँ, इस प्रकार अध्यवसायरूप ममत्वपरिणाम है, उसको परिग्रह कहते हैं। क्योंकि "मूर्च्छापरिग्रह" ऐसा आचार्यो का वाक्य है। बाह्यपरिग्रहमें होनेवाली मूर्च्छा वा ममत्वपरिणाम को कमी करनेके लिये ममता का कारणभूत चेतनाचेतनादि बाह्य-परिग्रहको कम करना परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहलाता है ॥५९॥

अंतरंगपरिग्रहके निग्रहका उपाय कहते हैं–

उद्यत्क्रोधादिहास्यादिषट्कवेदत्रयात्मकम्।
अन्तरंगं जयेत्संगं प्रत्यनीकप्रयोगतः ॥६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थं- (उद्यत्क्रोधादिहास्यादिषट्कवेदत्रयात्मकं) दुर्जय क्रोधादि हास्यादि छह तथा तीन वेदस्वरूप (अंतरंगं) अन्तरंग (संगं) परिग्रहको (प्रत्यनीकप्रयोगतः) उत्तमक्षमादि प्रत्यनीक प्रयोगसे (जयेत्) जीतना चाहिये ॥६०॥

भावार्थं- अनन्तानुबंधि क्रोध, मान, माया, लोभ देशसंयम तथा सकलसंयम का घात करनेवाली अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण तथा यथाख्यात चारित्र का घात करनेवाली संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद तथा मिथ्यात्व ये अंतरंग परिग्रह हैं। पंचमाणुव्रतीके अन्तानुबन्धि अप्रत्याख्यानावरण कषाय तथा मिथ्यात्व का अस्तित्व नहीं हैं। क्योंकि इनका नाश सम्यक्त्व तथा देशसंयम ग्रहण करनेके समय हो गया-क्योंकि इनके उदयमें भाव अणुव्रती बन नहीं सकता। इसलिये मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधि आदि आठ कषाय को छोडकर शेष बचे हुए अंतरंगपरिग्रहको उत्तम क्षमा आदि भावनाओंके द्वारा जीतने का प्रयत्न करें ॥६०॥

बहिरंगपरिग्रहके त्यागकी विधी कहते हैं-

अयोग्यासंयमस्याङ्गं सङ्गं बाह्यमपि त्यजेत् ।
मूर्च्छांगत्वादपि त्यक्तुमशक्यं कृशयेच्छनैः ॥६१॥

अन्वयार्थ- (अयोग्यासंयमस्य) पंचम गुणस्थानव्रती श्रावक के अयोग्यसंयमका (अंगं) कारणभूत (बाह्यं) बाह्य (संगं) परिग्रहको (अपि) भी (मूर्च्छाङ्गत्वात्) मूर्च्छाका कारण होनेसे (त्यजेत्) छोडे (अपि) तथा जो (त्यक्तुं) छोडनेके लिये (अशक्यं) अशक्य हो उसको भी (शनैः) धीरे धीरे (कृशयेत्) कृश करे।

भावार्थ- पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक जो पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकके करनेके अयोग्य अनारंभ त्रसबध, व्यर्थस्थावर घात, परदारागमनादिक असंयमके कारणभूत वास्तु क्षेत्रादि बाह्य-परिग्रह है- उनका त्याग करे। क्योंकि बाह्यपरिग्रह मूर्च्छाका कारण है। इसलिये असंयमके कारणभूत अयोग्य बाह्यपरिग्रहका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो त्याग करे । और जिस परिग्रहको छोडनेके लिये असमर्थ हैं उसको धीरे धीरे कमी करे । क्योंकि परिग्रह संज्ञा अनादि कालसे प्रवर्त्तमान हैं, उसका सहसा परित्याग करना अशक्य हैं—और त्याग कर देनेपर भी अनादि कालकी वासनासे भंग होनेकी सम्भावना है, इसलिये शक्तिहीन मानवोंके लिये कालपरिपाटीसे परिग्रह संज्ञाको शनैः शनैः कृश करनेका उपदेश दिया हैं ॥६१॥

इसीका विस्तारस्वरूपसे वर्णन

देशसमयात्मजात्याद्यपेक्षयेच्छां नियम्य परिमायात् ।
वास्त्वादिकमामरणात्परिमितमपि शक्तितः पुनः कृशयेत् ॥

अन्वयार्थ– (देशसमयात्मजात्याद्यपेक्षया) देश–काल अपनी आत्मा जाति आदिकी अपेक्षासे (इच्छां) इच्छाका (नियम्य) संतोषभावनासे निग्रह करके (आमरणात्) मरणपर्यंत (वास्त्वादिकम्) धनधान्यादिकका (परिमायात्) परिमाण करे (पुनः) फिर (परिमितम्)परिमाण की हुई वस्तूको(अपि)भी (शक्तितः) शक्ति अनुसार (कृशयेत्) कृश करे ॥६२॥

भावार्थ– देश काल अपनी शक्ति तथा अपनी जातिके विचारसे अपनी इच्छाको संतोषभावनासे निग्रह करके घर, क्षेत्र, धनधान्य, द्विपद, चतुष्पद, शयनासन, यान, कुप्य, भाण्ड आदि दशप्रकारके बाह्यपरिग्रहका यावज्जीव परिमाण करे । तथा तत्पश्चात् परिमितवस्तुका भी अपनी शक्त्यनुसार कृश करनेका प्रयत्न करे ॥६२॥

परिग्रह के प्रति वक्रोक्तिसे दूषण देते हुये कहते हैं–

अविश्वासतमोनक्तं लोभानलघृताहुतिः ।
आरंभमकराम्भोधिरहो श्रेयः परिग्रहः ॥६३॥

अन्वयार्थ– (अहो) आश्चर्य है (अविश्वासतमोनक्तं) अविश्वासरूपी अंधकार की रात्रि (लोभानलघृताहुतिः) लोभरूपी अग्निके लिये घृतकी आहुति (आरम्भमकराम्भोधिः) आरंभरूपी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मगर-मच्छके लिये समुद्र ऐसा (परिग्रहः) परिग्रह (श्रेयः) कल्याणकारी है ? (अपितु न) यह कभी भी नहीं ॥६३॥

भावार्थ- ग्रन्थकार खेद प्रकट करते हुए कहते हैं अहो आश्चर्य है-जो दुःखका कारण होनेसे अविश्वासरूपी अन्धकार के लिये रात्रिके समान है, चित्तमें सन्तापका कारण होनेसे लोभ-रूपी अग्निको प्रज्वलित करने के लिये घृत की आहुतिके समान है, त्रास, रोग आदिका निमित्त होनेसे कृषि आदि आरंभरूपी जलचर जीवोंके रहने लिये समुद्रके समान है; ऐसा परिग्रह क्या पुरुषोंका कल्याण करनेवाला है । अर्थात् किसी भी काल में कल्याणकारी नहीं हो सकता है । तात्पर्य यह है कि धन पासमें आनेसे अविश्वास उत्पन्न होता है, पिता पुत्रका तथा पुत्र पिताका ी विश्वास नहीं करता है, धनसे लोभ बढ़ता है तथा कृष्यादि आरंभ करने पडते हैं ।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके पंचातिचारोंके निषेध का वर्णन करते हैं--

वास्तुक्षेत्रे योगाद्धनधान्ये बन्धनात्कनकरूप्ये ।
दानात्कुप्ये भावान्न गवादौ गर्भतो मितिमतीयात् ॥६४॥

अन्वयार्थ- परिग्रहपरिमाणव्रतको पालनेवाले श्रावक (योगात्) वास्त्वन्तर तथा क्षेत्रान्तर के संयोगसे (वास्तुक्षेत्रे) वास्तु और क्षेत्रमें (बंधनात्) बन्धनसे बंधनका आश्रय करके (धनधान्ये) धन तथा धान्यमें (दानात्) दानसे दानका आश्रय करके (कनकरूप्ये) सुवर्ण और चांदीमें (भावात्) परिमाणांतर वा अभिप्रायका आश्रय लेकर (कुप्ये) सुवर्ण, चांदीको छोडकर आदि सम्पूर्ण पदार्थोमें तथा (गर्भतः) गर्भका आश्रय लेकर (गवादौ) गाय, बैल आदिमें (मितिं) परिग्रहपरिमाणाणुव्रतकी मर्यादा को (न अतियात्) उल्लंघन नहीं करे ॥६४॥

भावार्थ- घरके साथ दूसरे घरको मिलाकर खेतसे दूसरे खेतको जोडकर-धन और धान्यकी बंधी बांधकर अर्थात् रज्वादिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियत करके सुवर्ण और चांदीकी मर्यादाको, अपने इष्टमित्रोंको देकर, सुवर्ण और चांदीसे भिन्न सम्पूर्ण वस्तुओंको कुप्य कहते हैं । उनकी मर्यादा अवस्थान्तर करके अथवा प्रतिज्ञाके अभिप्रायको बदल करके, घोडी, गाय, आदिकी मर्यादामें अधिक लोभसे गर्भवती घोडी आदि रखकर, मर्यादाके अतिक्रमसे परिग्रहपरिणामव्रतमें अतीचार नहीं लगाना चाहिये ।

वास्तुक्षेत्रातिचार– धनधान्यबंधनातिचार, कनकरूप्यदाना-तिचार, कुप्ये भावातिचार और गवादौ गर्भातिचारके भेदसे परिग्रह-परिमाणाणुव्रतके अतिचार पांच प्रकारके होते हैं ।

वास्तुक्षेत्रातिचार–वास्तुका अर्थ, घर, ग्राम, नगर आदि है । उसमेंसे खात, उच्छ्रित, और खातोच्छ्रित, भेदसे घर तीन प्रकारके होते हैं । खात–भूमि, घर आदिको खात कहते हैं, उच्छ्रित–प्रासाद आदिको उच्छ्रित कहते हैं तथा भूमि, घरके उपर बनाये हुये घरको खातोच्छ्रित कहते हैं ।

सस्योत्पतिके भूमिको क्षेत्र कहते हैं । वह क्षेत्र भी सेतु, केतु और सेतुकेतुके भेदसे तीन प्रकारका होता है । जिनकी सिंचाई आकाशके पानीसे होती है उनको 'केतुखेत' कहते हैं और जितनी सिंचाई आकाशके भी पानीसे होती है और कुएके पानीसे भी की जाती है उनको 'सेतुकेतु' खेत कहते हैं । इस प्रकारके वास्तु और क्षेत्रको यहां वास्तु कहते हैं । इन दोनों शब्दोंका समास करके वास्तुक्षेत्र एक शब्द इसलिये बनाया है कि आगममें प्रत्येक व्रतके अतीचार पांच पांच बताये हैं इसलिये इन दस परिग्रहके वाचक वास्तु क्षेत्र आदिक पांच शब्द बनाए हैं ।

जिस श्रावकने जन्मपर्यंत तथा नियत काल तकको घर व खेतकी मर्यादा, देव, गुरु और शास्त्रके साक्षीपूर्वक ली है उस मर्यादाका, घरसे घर जोडकर और खेतकी बारी काट करके, खेतसे खेत जोडकर उल्लंघन नहीं करना चाहिये । अर्थात् इस प्रकारके भावसे वह मर्यादा बढाता है कि हमने तो केवल अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घरको अथवा खेतको बढाया है, मर्यादाके समय जितने घर वा खेत रखे थे उनकी संख्याका उल्लंघन नहीं किया, इस प्रकारसे व्रतकी अपेक्षा रखनेसे अभंग और भावोंसे परिग्रहकी उसने वृद्धि की है इसलिये व्रतभंग होनेसे वास्तुक्षेत्रयोग नामका प्रथम अतिचार होता है।

धनधान्यबंधनातिचार– गणिम धरिम, मेय और परीक्ष्यके भेदसे धन चार प्रकारका है। जो चीजे गिनकर ली दी जाती हैं जैसे सुपारी,जायफल आदि उनको"गणिम"कहते हैं । कुंकुम कपूर आदिको 'धरिम' तथा तेल नमक आदिको "मेय" और रत्नादि-कको "परीक्ष्य" कहते हैं । धान्य व्रीह्यादि के भेदसे १५ प्रकारका होता है । उक्तं च–

> व्रीहिर्यवो मसूरो गोधूमो मुद्‌गमाषतिलचणकाः ।
> अणवह प्रियंगुकोद्रवमयुष्टिकाशालिराढक्यः ॥१॥

व्रीहि, जवा, मसूर, गेहूं, मूंग, उडद, तिल, चना, अणु,कोद्रव भोठ, शालि, तूर, मटर और कुलथ यह पंधरा प्रकारके धान्य होते हैं । हमारी सुपारी, जायफल आदिकी विक्री जब हो जायेगी अथवा खर्च हो जावेगा तब तुम्हारा माल खरीदूंगा, मेरे इतनेका परिमाण है अतः इसके बिकनेके बाद व खर्च होनेके बाद सुपारी वगैरह तुम्हारी ही खरीदूंगा तुम बेचना नहीं, इस प्रकारसे दूसरेके मालकी बंदनी बांधकर श्रावकको धनधान्यकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिए । यदि उल्लंघन करेगा तो धनधान्य बन्धना-तिचार होगा ।

कनकरूप्यदानातिचार– एक गृहस्थनें सोने, चांदी व सोने चांदीकी बनी हुई चीजोंकी कुछ काल तक मर्यादा कर ली, इतनेमें राजा वगैरहने उसपर सन्तुष्ट होकर उसकी मर्यादासे अधिक सुवर्ण और रुप्यका इनाम दिया । ऐसी स्थितिमें व्रतीने किसी दूसरेसे कहा की भाई, हमारी इन चीजोंको जबतक मेरी मर्यादा है धरोहर रूपमें रख लो, मैं अपनी मर्यादाका काल पूरा होनेपर उठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लूंगा, अथवा अधिक सोना, चांदी मिला है तो उसे अपने इष्ट बांधवोंको दे देना, इस प्रकारसे सुवर्ण और रूपाका दान करके की हुई मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये अन्यथा कनकरुप्य-दानातिचार लगेगा ।

कुप्ये भावातिचार- सोने चांदीसे भिन्न, जैसे तांबा आदि धातुओंकी चोजोंको, बांसकी बनी चीजोंको, लकडी व मिट्टीसे बनी चीजोंको 'कुप्य' कहते हैं, उनमेंसें दो दोको मिलाकर एक एक करनेको "भाव" कहते हैं । ऐसा करके कुप्यसंबंधी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिए, अथवा सुवर्णादिकके समान ही इन चीजोंकी भीं अधिक प्राप्ति हो जाने तो किसोसे जाकर यह कहना कि इतने कालतक मेरे इन चोजोंका परिमाण किया हुआ है सो मैं ले नहीं सकता, आप धरोहर रख लीजिये, मेरो मर्यादाका काल पूरा होनेपर मैं उठा ले जाऊंगा, इस प्रकारके भाव याने अभिप्रायसे की हुई मर्यादाका श्रावकको उल्लंघन नहीं करना चाहिये । यदि उसके द्वारा उल्लंघन किया जायगा तो यह उसे चौथा अतीचार लगेगा । अथवा कुप्य-सोना चांदी को छोडकर कांसी, लोहा, तामा, सिसा, त्रपु, मट्टीके बर्तन, बांसकी बनी हुअी चीज, दंकीका काण्ठ,पलंग छोटी फलंग,मसूर,रथ गाडी आदि सब कुप्प कहलातेहैं । उन कुप्पमें जितनी संख्याकी प्रतिज्ञा ले रखी है उसकी जब संख्या बढने लगी तो उनमें कई चीजोंको मिलाकर (ढलवाकर) संख्याकी रक्षाके लिए बडी चीजें बनवा लेना भी अतीचार है, क्योंकि संख्या यद्यपि मर्यादित रही परन्तु उसकी स्वाभाविक संख्यामें ढलवा लेनेसे बाधा जरूर आती है इसलिये कथंचित् अभंग और भंगके होनेसे यह कुप्ये भावातिचार है ।

अथवा किसी चीजके लानेवालेसे यह कहना कि मुझे यह जरूर लेना है, परन्तु इसे मेरी मर्यादाके बाहर होनेसे आज नहीं ले सकता, तुम किसीको बेचना नहीं, मेरी मर्यादाका काल पूरा होते ही मैं इसे जरूर लूंगा । इस प्रकारसे मनमे संख्याकी वृद्धिक भाव आ जानेसे भीं अतीचार होता है यह भी कुप्ये भावातिचार है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गवादौ गर्भतातिचारः–यहां भैंस, हाथी, घोडा, तोता, मैना, दासी, दास आदिका ग्रहण "गवादौ" में आदि ग्रहणसे समझना चाहिये। इन गाय, भैंस आदिमें गर्भ धारणकरनेपर परिग्रहपरिमाण-व्रतकी संख्याका उलंघन नहीं करना चाहिये।

जो गाय, भैंस आदि अपनी मर्यादाके भीतर हैं उनके भी गर्भधारणको ४–६ महीनेके लिये टालना कि यदि मैं अभी इनका गर्भ धारण करा सकता हूं तो इनकी संख्या बढ जायगी और इससे मेरा व्रतभंग हो जावेगा। इसलिये अभी इनके गर्भधारणको टाल कर कुछ कालके अनन्तर गर्भधारण कराना चाहिये। जिससे जब ये जानवर बच्चें जनेंगे, इस समय अपना नियम पूरा हो जावेगा। अतः उनके रख लेनेमें हमे फिर दोष नहीं लगेगा। इस प्रकारके परिणामोंसे भी संख्यामें अतीचार नहीं लगाना चाहिये। यह "गवादौ गर्भतातिचार" है।।

यह "क्षेत्रवास्तुसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः" इस सूत्रमें बताये अतीचारोंका वर्णन हुआ।

स्वामी "समन्तभद्र" ने तो–

अतिवाहनातिसंग्रह विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पंच कथ्यन्ते ॥

जानवर या मजूरकी शक्तिका ध्यान न करके लोभके कारण अधिक दूर तक ले जाना या अधिक काल तक जोतना प्रथम अतीचार कहा है। आगे अधिक लाभ होगा। इसलिये धान्यादिकका अधिक कालतक संग्रह करना "अतिसंग्रह" नामका अतीचार है।

किसीको धान्यादिके रखने या बेचनेसे अधिक नफा हुआ है, इस बातका मनमें विचार करना कि मैंने नहीं खरीद पाया। यदि मैंने भी रखा होता तो आज मैं भी क्या नफा नहीं पाता? अथवा इसने अभी खरीदा और थोडे ही कालमें अधिक लाभ प्राप्त किया है, इसका विषाद करना, इस प्रकार लोभके कारण यही तीसरा अतीचार होता है। विशिष्ट अर्थके मिलनेपर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक लाभके मिलनेंकी इच्छाको "लोभ" नामका चौथा अतीचार कहते हैं। अर्थात् और देरसे बेचते तो बहुत अच्छा होता। इस प्रकारका "नफाके मिलने पर भी लोभका भाव रखना" "लोभ" नामका अतीचार है। लोभके आवेशसे भाडेके जानवर या घरके लदनेवाले या भार ढोनेवाले जानवरों या पल्लेदारोंपर मर्यादासे अधिक बोझ लादना "अतिभारारोपण" नामका पांचवा अतिचार है।।

श्री सोमदेवाचार्यके मतसे तो–

कृतप्रमाणाल्लोभेन धनाद्यधिकसंग्रहः।
पञ्चमाणुव्रतहानिं करोति गृहमेधिनाम्॥

अर्थात्–अतिलोभके कारण, किए हुए प्रमाणसे अधिक धनके संग्रह करनेको, गृहस्थोंके परिग्रहपरिमाणव्रतका अतीचार बताया है। सो इन सब अतीचारोंको भी "परोप्यूह्यास्तथात्यया" इसी अध्यायमें कहे हुए वाक्यके अनुसार अतीचार समझना चाहिए। अर्थात् ५ अतीचार प्रत्येक व्रतके बताए हैं सो यह केवल उदाहरणार्थ हैं। ऐसे दूसरे भी अतीचार जो संभव हों उनका भी परित्याग करना चाहिये।

अब–निरतिचार परिग्रहपरिमाणाणुव्रत पालनेवालेके माहात्म्यका वर्णन दृष्टान्त द्वारा करते हैं।

यः परिग्रहसंख्यानव्रतं पालयतेऽमलम्।
जयवज्जितलोभोऽसौ पूजातिशयमश्नुते॥६५॥

अन्वयार्थ–(यः) जो (अमलं) निरतिचार (परिग्रहसंख्यानव्रतं) परिग्रहपरिमाणव्रतको (पालयते) पालता है (असौ) वह (जितलोभः) लोभ को जीतने वाला श्रावक (जयवत्) जयकुमार के समान (पूजातिशयं) पूजातिशयको (अश्नुते) प्राप्त होता है॥६५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जो परिग्रह परिमाणव्रतको निरतिचारपूर्वक पालन करता है वह जयकुमारके समान लोकादरको प्राप्त करता है ।

जयकुमारकी कथा

जिस समय की यह कहानी है, उस समय हस्तिनापुरमें राजा सोमप्रभ राज्य करते थे । उनके पुत्रका नाम जयकुमार था । वह बडा सन्तोषी और धर्मात्मा था । उसकी स्त्रीका नाम सुलोचना था ।

एक दिन राजपुत्र जयकुमार और उनकी स्त्री सुलोचनाने एक विद्याधर और विद्याधरीको विमानमें बैठकर जाते देखा, तो उन्हें पूर्वभवका स्मरण हो आया । इससे वे दोनों अर्थात् जयकुमार, सुलोचना बेसुध हो गये । थोडी देरमें जब वे सचेत हुए तब पूर्वजन्मकी साधी हुई विद्याऐं उनके पास आयी और प्रकट होकर कहने लगी कि आप जो आज्ञा देवेंगे सो ही हम करेंगी ।

जब उन्हें पूर्वजन्मकी विद्याए सिद्ध हो गयीं तो वे दोनों स्त्री, पुरुष, कैलाशगिरीकी वन्दनाको गये । वहां राजा भरतके बनवाये हुए जिनमंदिरोंकी पूजा कर रहे थे कि—स्वर्गमें देवताओंके राजा इन्द्रने देवताओंकी सभामें परिग्रहप्रमाणकी चर्चा करते हुए जयकुमारकी बडी बडाई की । उसे सुनकर रतिप्रभदेवकी इच्छा हुयी कि—जयकुमारके व्रतकी परीक्षा करें ।

जब जयकुमार और सुलोचना पूजा करके बहुत दूर पर बैठे हुये थे, तब रतिप्रभदेव स्त्रीका रूप धरके तथा साथमें चार देवांगनायें लेकर जयकुमारके पास पहुंचा और कहने लगा कि—आपकी स्त्री सुलोचनाके विवाहके समय जिस नमि विद्याधरने आपसे लडाई की थी उनकी मैं स्त्री हूं, सुरूपा मेरा नाम है, मुझे सब प्रकारकी विद्याऐं सिद्ध हैं, मैं आपके रूपकी सुन्दरता सुनकर आपके पास आयी हूं, और आपका रूप देखकर प्रसन्न भी हुयी हूं, अब मैं आपके रूपके सामने अपने पतिसे विरक्त हुयी हूं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप मुझे अङ्गीकार करो, मैं संपूर्ण विद्याएें और राज्य आपको सौंपनेके लिये तत्पर हूँ।

यह सुनकर जयकुमारने उत्तर दिया कि ऐसा मत कहो, ऐसा राज्य और विद्याऐं मुझे नहीं चाहिये, मेरा प्राण चाहे रहें चाहे जाय, पर मैं परस्त्रीसेवन नहीं करूंगा। तेरा जैसा सुन्दर रूप है, वैसा ही तू यदि शीलवान होती तो कितना अच्छा होता? सोनेमें सुगंध हो जाती। मनुष्यके देह और सब अच्छे साधन पाकर तू अपने जीवकी भलाई नहीं करती, यह जानकर मुझे बहुत दुःख होता है। सो अब तू पातिव्रत्यधर्म धारण करके भगवानकी पूजा, स्वाध्याय आदिमें तत्पर हो।

इसप्रकार बहुत समझाकर जयकुमारने सामायिकमें मन लगाया और विधिपूर्वक सामायिक किया। सामायिक करके ध्यान में लीन हो गये, तो वह बनावटी स्त्री अर्थात् रतिप्रभदेव, उन्हें ध्यानसे चिगानेके लिये अनेक विघ्न करने लगा। वह भांति भांतिके खोटे गीत गाने लगा और तरह तरहके विकराल रूप दिखाने लगा, परन्तु उस धीरवीर जयकुमारका चित्त चंचल न कर सका। तब अन्तमें हार मानकर उस रतिप्रभदेवने अपना सच्चा रूप दिखा दिया और बडे सन्तोषसे कहने लगा कि, हे जयकुमार! तुम धन्य हो! तुम्हारा संतोष और मनकी स्थिरता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं स्वर्गका देव हूं, मेरा नाम रतिप्रभ है। इन्द्र महाराजने स्वर्गमें आपकी जैसी महिमा कही थी मैंने तुम्हें वैसा ही पाया। इस प्रकार रतिप्रभने जयकुमारकी बहुत बडाई की और बहुतसे कपडे, गहने आदि भेंटमें देकर, वह रतिप्रभ स्वर्गको चला गया।

जयकुमार अपनी स्त्री सुलोचना सहित कई दिन तक कैलासपर्वत पर रहे और भगवानकी पूजा वन्दना की। फिर अपने घर पर आये और कुछ दिनों तक गृहस्थीका सुख भोगकर मुनि हो गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और महातप करके मोक्षको पधारे। रानी सुलोचनाने भी श्रावकके व्रत धारण किये और समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्गको गई।

सारांशः–जयकुमार भी न्य हैं। जो विद्याओं और राज्यके लोभमें न पडकर धर्ममें दृढ रहें, उनकी यह कथा बांचकर हम सबको परिग्रहसे विरक्त होना चाहिये, अथवा तृष्णा घटाते घटाते बहुत थोडे परिग्रहमें सन्तोष मानना चाहिये।

जो इस परिग्रहपरिमाणव्रतको अतीचारोंसे बचाकर निर्मल रीतिसे पालता है वह लोभका विजय करनेवाला होनेसे जयकुमार (भरतचक्रवर्तीके सेनापति) के समान इन्द्रादिकके द्वारा प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है।

अब– इस प्रकार निर्मलरीतिसे पंच अणुव्रतके पालनेके लिये श्रावकको आगेके सात शीलोंको भी निर्मलतासे पालन करना चाहिये, इस बातका उपदेश देकर जो इस रीतीसे (निर्मलतासे) पालते हैं उनके माहात्म्यका वर्णन करते हैं—

पञ्चाप्येवमणुव्रतानि समतापीयूषपानोन्मुखे।
सामान्येतरभावनाभिरमलीकृत्यार्पितान्यात्मनि॥
त्रातुं निर्मलशीलसप्तकमिदं ये पालयन्त्यादरात्।
ते सन्यासविधिप्रमुक्ततनवः सौर्वीः श्रियो भुंजते॥६६॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (ये)जो भव्य जीव (सामान्येतरभावनाभिः) सामान्य और विशेष भावनाओंके द्वारा (अमलीकृत्य) अतीचारोंको दूर करके (समतापीयूषपानोन्मुखे) समतारूपी अमृतका पान करनेके लिये उन्मुखतापर (आत्मनि) आत्मामें (अर्पितानि) अर्पित किये गये (पञ्चापि) पाचों ही प्रकारके (अणुव्रतानि) अणुव्रतोंको (त्रातुं) पालन करने के लिए (इदं) वक्ष्यमाण–आगेके अध्यायमें कहे जानेवाले (निर्मलशीलसप्तकं) निरतिचार सातों ही शीलोंको (आदरात्) अत्यन्त आदरपूर्वक (पालयन्ति) पालन करते हैं (ते) भव्य जीव (सन्यासविधिप्रमुक्ततनवः) समाधिमरणके द्वारा शरीरको छोडते हुए (सौर्वीः) स्वर्गसम्बन्धी (श्रियः) लक्ष्मीको (भुञ्जते) भोगते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- सम्यग्दर्शनके प्रभावसे समताभावरूपी अमृतके पानकी भावना आत्मामें प्रकट होती है, ऐसी सम्यग्दर्शन सहित आत्मामें इन व्रतोंको धारण करनेसे पहिले तत्वार्थसूत्रमें जो अहिंसादि महाव्रतोंकी सामान्य, भावना और प्रत्येक भावना बताई हैं, उन सामान्यविशेष भावनाओंके साथ (नैष्ठिककी अपेक्षा) जो पांचो ही अणुव्रतोंको तथा अपि शब्दसे (अभ्यासकी दशाकी अपेक्षासे) जो एक, दो, तीन व चार अणुव्रतोंको अन्तरात्मामें धारण करते हैं तथा इनका भले प्रकारसे निर्वाह हो इस दृष्टिसे तीन गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतोंको निरतिचार जो श्रावक पालते हैं वे इसी ग्रंथके आठवे अध्यायमें वर्णित सन्यासविधिसे मरणको प्राप्त करके स्वर्गसम्बन्धी उत्तम संपदाको पाते हैं ।

चतुर्थ अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें ग्रंथकारने नैष्ठिकव्रतीका वर्णन करते हुए उसे मुख्यतः निःशल्य होना चाहिये इस प्रकार प्रतिपादन किया है, वह गृहस्थ हो या यति हो परन्तु अपने व्रतोंकी विशुद्धिके लिए उसे निःशल्य होना परमावश्यक है, क्योंकि शल्योंके कारणसे व्रतोमें विशुद्धि नहीं आ सकती है ।

तदनन्तर गृहस्थोंके उत्तर गुणोंको प्रतिपादन करते हुए पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंका उल्लेख किया है । तथा इस संदर्भमें विस्तारके साथ पंचाणुव्रतोंका विवेचन और पंच पापोंसे होनेवाली हानियोंका निरूपण भी किया है । अहिंसाव्रतकी रक्षाके लिये रात्रिभोजन त्याग भी आवश्यक है । रात्रिभोजनसे अनेक प्रकारके रोगादिक होते हैं । रात्रिभोजनके त्यागसे अहिंसाव्रतकी पूर्ण रक्षा होती है, इसका कथन करते हुए दिनमें भी दो ही बार भोजन व्रतीको करना चाहिये इसका निरूपण किया है। नियमित भोजन भी गृद्धीका त्याग कर अंतरायोंको टालकर मौनपूर्वक करना चाहिये यह बताते हुए मौनके लाभ व भोजनके अंतरायोंका भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रसंगमें निरूपण किया है। इसी प्रसंगमें मौन धारण करनेसे एवं अन्तराय टालकर भोजन करनेसे क्या लाभ है यह भी ग्रन्थ-कारने प्रतिपादन किया है। मौनग्रहण करनेवाला हुंकार आदि संज्ञाका भी परित्याग करें। साथमें किन प्रसंगोंमें मौन आचर-णीय है इसका भी स्पष्टीकरण ग्रंथकारने किया है। अहिंसाणुव्रतके समान ही सत्य, अचौर्य, स्वदारसंतोष और परिग्रहपरिमाणव्रत का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए पंच अणुव्रतोंके अतिचारोंका भी सांगोपांग कथन किया है। पंच अणुव्रतोंके पालनसे किसप्रकार आत्मविशुद्धि होती है। और व्रतोंकी विशुद्धिके लिए अतिचारोंका परिहार किस प्रकार करना चाहिये इसका विस्तारपूर्वक ग्रंथकारने निरूपण किया है। साथ ही पंचाणुव्रतोंके पालनसे किन महापुरुषोंका जीवन समृद्ध हुआ इसका विवेचन भी इस प्रसंगमें ग्रंथकारने किया है। इन व्रतोंका और शीलसप्तकोंका पालन करनेसे यह जीव समतामृतका पान करता है। उस अमृतके पानसे आत्मविशुद्धिका लाभ होता है यह कथन करते हुए जीवनका अन्तिम कलश समाधिमरण है। उसे साधकर जीवन सार्थक करना चाहिये उसकी साधना के लिये पंचाणुव्रतोंका पालन व शीलसप्तकोंका अनुष्ठान आवश्यक यह प्रतिपादन कर इस प्रकरणका ग्रंथकारने उपसंहार किया है।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १३ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे चतुर्थ
अध्याय समाप्त
हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमोऽध्यायः

अब सात शीलोंके वर्णन करनेंकी इच्छासे अुनके विकल्पभूत गुणव्रतोंका लक्षण कहते हैं–

यद्गुणायोपकारायाणुव्रतानां व्रतानि तत् ।
गुणव्रतानि त्रीण्याहुर्दिग्विरत्यादिकान्यपि ॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो (अणुव्रतानां) अणुव्रतोंको (गुणाय) बढानेके लिये (वा) अथवा (उपकाराय) उपकारके लिये (व्रतानि) व्रत है (तत्) इसलिये (दिग्विरत्यादिकानि) दिग्व्रतादि (त्रीणि) तीन (गुणव्रतानि) गुणव्रत (आहुः) कहे हैं ।

भावार्थ–जो अणुव्रतोंमें विशुद्धि लाने वाले हो तथा अणुव्रतोंके उपकारक हो, उनको गुणव्रत कहते हैं । दिग्विरत, अनर्थदंडविरत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत के भेदसे गुणव्रत तीन प्रकार के होते हैं । श्लोकमें जो अपि शब्द उससे श्वेताम्बर मत में कहे गये खरकर्मोंके त्यागका गृहण भी इन तीन व्रतोंमे हो जाता है । विशेषार्थ इन व्रतों को पालन करने से अणुव्रतों में निर्मलता आती है, चारित्रगुण का विकास होता है इसलिये निरतिचार पंचाणुव्रतों के पालन करने वाले श्रावकको इनका पालन अवश्य करना चाहिये । जैसे बाढसे खेतीकी रक्षा होती है वैसेही अणुव्रतोंकी रक्षा सात शीलसे होती है । बिना शीलोंके अणुव्रत अणुव्रत रूपमें नहीं रह सकते हैं । जैसे कि दिग्व्रतके पालनसे क्षेत्रविशेषकी अपेक्षा सर्व पापोंका त्याग हो जाता है । अनर्थदण्डत्यागव्रतके पालनेसे निरर्थकपापोंके त्यागका लाभ होता है । भोगोपभोगकी मर्यादामें योगभोगोपभोगके अतिरिक्त सर्व पापोंका त्याग होता है । इसलिये महाव्रतकी पालनेकी इच्छा रखते हुअे अणुव्रतीके अणुव्रत विशेष गुणसंपन्न होते हैं । अतएव विशेषगुणोंके आधार होनेसे इनको गुणव्रत कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह दिग्व्रत क्या है उसका स्वरूप कहते हैं–

यत्प्रसिद्धैरभिज्ञानैः कृत्वा दिक्षु दशस्वपि ।
नात्येत्यणुव्रती सीमां तत्स्याद्दिग्विरतिर्व्रतम् ॥२॥

अन्वयार्थ– (अणुव्रती) अणुव्रती (यत्) जो (प्रसिद्धैः) प्रसिद्ध पर्वत, नदी आदि (अभिज्ञानैः) चिन्होंके द्वारा (दशसु) दशों (दिक्षु) दिशाओंमें (अपि) भी (सीमां) मर्यादा (कृत्वा) करके (न अत्येति) उसका उल्लंघन नहीं करता है (तत्) वह (दिग्विरतिः) दिग्विरति नामका (व्रतं) व्रत (स्यात्) होता है ।

भावार्थ– किसी भी नामके एक देशके उच्चारण करनेसें सम्पूर्ण नामका ज्ञान किया जाता है, जैसे भीम कहनेसे भीम सेन का ग्रहण होता है,उसी प्रकार इस श्लोकमें व्रत शब्दसे गुणव्रत को ग्रहण करना चाहिये । तथा अणुव्रती इस शब्दसे दिग्विरतिव्रत अणुव्रती श्रावकका ही ग्रहण होता है महाव्रतीका नहीं–क्योंकि महाव्रती आरंभ और परिग्रहका त्यागी होता है । तथा ईर्यासमिति पालन करते हुए वह अपनी इच्छानुसार सारे मनुष्यलोकमें परि-भ्रमण कर सकता है । इसलिये उसके दिग्विरति व्रत की अनुप-पत्ति है। परन्तु अणुव्रतीकी ऐसी परस्थिती नहीं है। इसलिये उसको तो मर्यादा के भीतर ही आरंभ व्यापारादि करना चाहिये । इस भावको प्रकट करने के लिये ग्रन्थकारने दिग्विरतिव्रत का लक्षण करते समय "अणुव्रती" इस शब्दका प्रयोग किया है। और इस श्लोकमें जो अपि शब्द है उससे ऐसा ध्वनित होता है कि एक, दो तथा तीन दिशाओंकी मर्यादा करनेवाला भी दिग्विरतिव्रत धारण करनेवाला हो सकता है। अथवा देशदिशाओंकी मर्यादा यावज्जीव वा कुछ कालके लिये भी कर सकता है । जो अणुव्रती श्रावक नगर पर्वत, नदी आदि प्रसिद्ध चिन्होंके द्वारा दशों दिशोओंमें मर्यादा करके उस सीमाका उल्लंघन नहीं करता है, उसका दिग्व्रत नाम-का गुणव्रत होता है । अर्थात् दशोंदिशाओंमें यावज्जीव आने जाने की मर्यादा करना दिग्व्रत कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रती के दिग्व्रत धारण करनेसें आनें जानेकीं सीमाके बाहिर महाव्रतित्व है ऐसा बताते हैं।

दिग्विरत्या बहिः सीम्नः सर्वपापनिवर्तनात्।
तप्तायोगोलकल्पोऽपि जायते यतिवद्गृही ॥३॥

अन्वयार्थ– (दिग्विरत्या) दिग्विरतीकी (सीम्नः) मर्यादाके (बहिः) बाहर (सर्वपापनिवर्तनात्) सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्ति हो जानेसे (तप्तायोगोलकल्पः) तप्त हुए लोहेके गोलेके समान आरम्भ और परिग्रहके द्वारा युक्त होनेके कारण गमन, भोजन, शयन आदि सम्पूर्ण क्रियाओंमें हिंसा करनेवाला (अपि) भी (गृही) गृहस्थ (यतिवत्) मुनीके समान (जायते) हो जाता है।

भावार्थ– कर्मोंका आस्रव कैसे होता है इसको समझानेके लिये आचार्योंने ग्रंथोमें "तप्तायोगोल" का दृष्टांत दिया है कि जैसे अग्निसे संतप्त लोहेको पानीमें डाल दिया जाय तो वह चारों तरफसे पानीको खींचता है, उसी प्रकार आरम्भ परिग्रहजनित कषायरूपी अग्निसे संतप्तमान गृहस्थीकी आत्मा भी चारों तरफसे कार्माण वर्गणाओंको खींचती है, परंतु अणुव्रतीकी आत्मा दिग्व्रतकी मर्यादाके बाहर सर्व आरम्भ, परिग्रह और भोगोपभोगजनित पापोंका त्याग होनेसे यतिके समान आस्रवोंसे बचती है। तात्पर्य यह है कि दिग्व्रतीके पालनेसे विविक्षित क्षत्रके बाहरके क्षेत्रमें महाव्रतका अभ्यास हो जाता है। इसी कारगसे अणुव्रती दिग्विरतीव्रतकी मर्यादाके बाहर महाव्रतके समान आचरण करनेवाला कल्पित किया गया है, यह कहा जाता है।

इसीकी दृढताके लिये कहते हैं–

दिग्व्रितोद्रिक्तवृत्तघ्नकषायोदयमान्द्यतः।
महाव्रतायतेऽलक्ष्यमोहे गेहिन्यणुव्रतम् ॥४॥

अन्वयार्थः–(दिग्व्रतोद्रिक्तवृत्तघ्नकषायोदयमान्द्यतः) दिग्व्रतके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होनेवाला, जो व्रतोंका घात करनेवाली कषायोंके उदयका मन्दपना, उस मन्दपनेसे (अलक्ष्यमोहे) लक्ष्यमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं आता है मोह जिसका ऐसे (गेहिनि) गृहस्थमें (अणुव्रतं) अणुव्रत (महाव्रतायते) महाव्रतके समान आचरण करता है ॥५॥

भावार्थः-सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चारों ही कषायोंका अभाव होता है और अप्रत्याख्यानावरण-(देश चारित्रकी घातक कषाय) प्रत्याख्यानवरण (सकलचारित्रका घातक कषाय) और संज्वलन तथा नो-कषायका- (यथाख्यानचारित्र घातक कषायका) यथासंभव उदय होता है तथा पंचम गुणस्थान-वर्ती श्रावकके अप्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशम होता है और प्रत्याख्यानवरण आदि का उदय होता है। इसलियें उक्त कथनानुसार दिग्विरती व्रतीके प्रतिज्ञासे अुन सकल संयमकी घातक प्रत्याख्याना-वरणादि द्रव्यक्रोधादि कषायोंकी उत्कृष्ट रीतीसे मंदता हो जाती है और दिग्विरती व्रतके कारण जो प्रत्याख्यानावरणजनित चारित्र मोहका उदय होता है इस विषयमें किसीका भी लक्ष नहीं जाता हैं अर्थात् मंदता रूपसे प्रत्याख्यानावरणादिका उदय किसीके भी लक्ष्यमें नहीं आता है। इसलिये दिग्विरती गुणव्रत पालनेवाला अणुव्रती दिग्विरतिकी मर्यादाके बाहर महाव्रतीके समान आचरण करता है, यह कहा जाता है।

सारांशः-यह है कि उसके मर्यादाके बाहर सर्व प्रकारका आरंभ परिग्रह नहीं है, भोग और उपभोग नहीं है, इन सबका अभाव है, इसलिये वह वहांपर महाव्रतीके समान है यह समझना चाहिये। जबतक सकलसंयमके घातक प्रत्याख्यानावरणादि मंदता नहीं होती है तबतक दिग्विरति व्रतकी संभावना नहीं है।

दिग्विरति व्रतके अतिचार-

सीमविस्मृतिरूर्ध्वाधस्तिर्यग्भागव्यतिक्रमाः।
अज्ञानतः प्रमादाद्वा क्षेत्रवृद्धिश्च तन्मलाः ॥५॥

अन्वयार्थः-(अज्ञानतः) अज्ञानसे (वा) अथवा (प्रमादात्) प्रमादसे (सीमविस्मृतिरूर्ध्वाधस्तिर्यग्भागव्यतिक्रमाः) नियमित मर्यादाको भूल जाना, ऊपर नीचे तथा पूर्वादि दिशाओंमें जो निय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित प्रदेश हैं उन नियमितप्रदेशोंका उल्लंघन करना (च) और (क्षेत्रवृद्धिः) मर्यादित क्षेत्रसे अधिक क्षेत्रको बढा लेना ये पांच (तन्मलाः) दिग्व्रतके अतीचार (सन्ति) हैं।

भावार्थः-(१) अज्ञानसे अथवा प्रमादसे दिग्विरति व्रतमें की हुई सीमा भूल जाना, (२) ऊर्ध्वभागातिक्रम, (३) अधोभागाऽतिक्रम करना, (४) तिर्यग्भागाऽतिक्रम करना और, (५) क्षेत्रकी वृद्धि कर लेना ये पांच दिग्विरति व्रतके अतीचार है।

सीमाविस्मृतिः-अतीचार बुद्धिकी अर्थात् क्षयोपशमकी मन्दतासे जिसे सीमाकी प्रतिज्ञाका स्मरण नहीं रहता हैं वह अज्ञानसे दिग्विरति व्रतके पाचों अतीचार लगाता है। और बुद्धिकी तो मन्दता नहीं है, किंतु अन्य नानाप्रकारके विचारोंमें निमग्न रहनेसे जिसने अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण नहीं रखा है। उसके प्रमाद अर्थात् असावधानताके कारण ये पांचों अतीचार होते हैं।

उदाहरणार्थ-किसीने १०० योजनकी मर्यादा की हैं। जब जानेका समय आया तब अज्ञान अथवा प्रमादसे अपनी सीमाकी बात भूल गयी और वह विचार करता है कि नहीं मालूम १०० योजनकी प्रतिज्ञा थी या ५० योजनकी। इस स्थितीमें यदि वह ५० योजनके भीतर ही गमन करता है तो उसका व्रत निर्दोष है। ५० योजनके बाहर जाता है तो अतिचारसहित है और १०० योजनके बाहर जाता है तो अनाचार है। क्योंकि ५० योजनके भीतर जानेवालेने व्रतका पालन पूरा किया है और उससे अधिक बाहर जानेवालेने संशयके कारण एकदेशव्रतभंग किया है। १०० योजनके बाहर गमन करनेवालेने पूरा व्रतभंग किया है।

ऊर्ध्वभागातिक्रमः-ऊर्ध्व, पर्वत, तरु, शिखरादि पर प्रदेशोंके प्रतिज्ञासे अधिक उल्लंघन करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधोभागातिक्रम– नीचे ग्राम, भूमि, घर कुआदिके स्थानमें प्रतिज्ञासे नीचे जाना ।

तिर्यग्भागातिक्रम– तिर्यग्भागकी जो प्रतिज्ञा की थी अज्ञान वा प्रमादसे उसका उल्लंघन करना ।

अज्ञान वा प्रमादसे उल्लंघन करना अतीचार होते हैं और स्वयं साक्षात् इन भागोंके उल्लंघन किये जानेपर तो अनाचार होता है ।

क्षेत्रवृद्धिविचार– व्रतीने चारों दिशाओंमें १०० योजन तक जानेकी मर्यादा की है, परन्तु समय आनेपर जिस ओर उसे अधिक जाना है उस ओर १०० योजनसे भी अधिक चला जाता है, और उसके विरुद्ध दिशाओंमें उतने ही कम जानेका विचार करता है, तो यह उसका क्षेत्रवृद्धि नामका अतीचार है । क्योंकि उसने एक तरफकी मर्यादाको कम करके; दूसरी ओर उतनी ही मर्यादा बढायी है ।

अनर्थदण्डव्रतका लक्षण–

पीडा पापोपदेशाद्यैर्देहाद्यर्थाद्विनाऽङ्गिनाम् ।
अनर्थदण्डस्तत्त्यागोऽनर्थदण्डव्रतं मतम् ॥६॥

अन्वयार्थ– (देहाद्यर्थात् विना) अपने अथवा अपने कुटुम्बी-जनोंके शरीर वचन तथा मन सम्बन्धी प्रयोजनके विना (पापोपदे-शाद्यैः) पापोपदेशादिकके द्वारा (अङ्गिनां) प्राणियोंको (पीडा) पीडा देना (अनर्थदण्डः) अनर्थदण्ड है (तत्त्यागः) उसका त्याग करना (अनर्थदण्डव्रतं) अनर्थदण्डव्रत (मतम्) माना है ॥६॥

भावार्थ– पापोपदेश, हिंसादान, दुश्रुति, अपध्यान और प्रमादचर्याके द्वारा त्रस और स्थावर जीवोंके मन वचन कायके योजनके विना घात करना अनर्थदण्ड है और इसका त्याग करना अनर्थदण्डव्रत कहलाता है ।

अनर्थदण्डके पांच भेद है– १) पापोपदेश २) हिंसादान ३) दुश्रुति ४) अपध्यान ५) प्रमादचर्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापोदेशका स्वरूप तथा अुसके त्यागको कहते हैं–

पापोपदेशो यद्वाक्यं हिंसाकृष्यादिसंश्रयम् ।
तज्जीविभ्यो न तं दद्यान्नापि गोष्ठ्यां प्रसञ्जयेत् ।।७।।

अन्वयार्थ– (हिंसाकृष्यादिसंश्रयम्) हिंसा, खेती आदिसे है संबंध जिसका ऐसे (यद्वाक्यं) जो वचन है (पापोपदेश:) उसको पापोपदेश कहते हैं । इसलिये अनर्थदण्डविरति (तज्जीविभ्यो) पापकी आजीविका करनेवाले भिल्ल ठग चोरादिको (तं) उस पापो पदेशको (न) नहीं (दद्यात्) देवें (अपि) और (गोष्ठ्यां) कथादिमें (प्रसञ्जयेत्) संबंध नहीं लावे ।।७।।

भावार्थ– जिन वाक्योंमें हिंसा, झूठ, कृषि, वाणिज्य, व्यापार आदिका संबंध हो उसको पापोपदेश कहते हैं। जैसे भिल्ल, ठग, चोर, किसान आदिके लिये तुम यहां क्यों बैठे हो ? नदीके किना-रेपर बहुतसे पक्षी आये हुए हैं, अभी बीज बोनेसे खेती बहुत सुंदर होती है । वहांके देशमें बहुत अच्छा व्यापार होता है । तुम इस जंगलको जलाओ आदि पापारंभका उपदेश देना पापोपदेश कहलाता है । अनर्थदण्डविरति श्रावकको इस प्रकारका उपदेश नहीं देना चाहिये । जिसमें आरम्भजनित पापका प्रसंग हो तथा भिल्ल, चोर आदिके साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये ।

हिंसोपकरण दानका परिहार करते हैं–

हिंसादानं विषास्त्रादिहिंसाङ्गस्पर्शनं त्यजेत् ।
पाकाद्यर्थं च नाग्न्यादि दाक्षिण्याविषयेऽर्पयेत् ।।८।।

अन्वयार्थ– (विषास्त्रादिहिंसाङ्गस्पर्शनं) विष, शस्त्र आदि हिंसाके कारणत भूपदार्थोंका देना (हिंसादानं) हिंसा दानको (त्यजेत्) छोडना चाहिये (च) और (दाक्षिण्याविषये) परस्परके व्यवहारमें (पाकाद्यर्थं) पाकादिके लिये (अग्न्यादि) अग्नि, मुसळ, झाडू आदि भी (न अर्पयेत्) नहीं देना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- अनर्थदण्डविरति श्रावक विष, शस्त्र, लाठी, गाडी, फावडा, छुरी आदि हिंसाके साधनभूत पदार्थोंको दुसरोंको नहीं देवे। तथा परस्परके व्यवहारमें पकाने, पीसने, कूटने आदिके निमित्त अग्नि, चक्की, मुसळ, उखळ आदि वस्तुओंकी लेनदेन भी न करे। क्योंकि इन वस्तुओंको देना हिंसादान कहलाता है।

दुश्रुति और अपध्यानका लक्षण तथा उसके परिहारका उपदेश-

चित्तकालुष्यकृत्कामहिंसाद्यर्थं श्रुतश्रुतिम् ।
न दुःश्रुतिमपध्यानं नार्तरौद्रात्म चान्वियात् ॥९॥

अन्वयार्थ-अनर्थदण्डविरति (चित्तकालुष्यकृत्कामहिंसाद्यर्थ-श्रुतश्रुतिम्) चित्तको कालुष्य करनेवाले काम, हिंसा आदिक शास्त्रोंको सुनना (दुःश्रुतिम्) दुश्रुतिकी (न अन्वियात्) प्रवृत्ति नहीं करे (च) और (आर्तरौद्रात्म) आर्तरौद्रको बढानेवाले (अपध्यानं) अपध्यानको भी (न अन्वियात्) प्रवृत्ति नहीं करे ॥९॥

भावार्थ-काम और हिंसारूप अर्थोंका जिन शास्त्रोंमें वर्णन है उन शास्त्रोंको कामहिंसादि शास्त्र कहते हैं ऐसे शास्त्र मोक्ष-मार्गके साधन नहीं हैं। किन्तु "चित्तकालुष्यकृत्" होते है अर्थात् रागद्वेषको बढानेवाले हैं। इसलिये चित्तमें कलुषता उत्पन्न कराने-वाले जो कामहिंसादि अर्थ शास्त्र हैं उनके सुननेसे दुश्रुति नामका अनर्थदण्ड होता है।

वात्स्यायनादि कामशास्त्र, लटकादि अभिमत हिंसाशास्त्र वार्तानीति आदि आरम्भपरिग्रहशास्त्र, "वर्णानं ब्राह्मणो गुरुः" इत्यादि ग्रंथ मदशास्त्र, वशीकरणादि तंत्ररागशास्त्र हैं। उनका सुनना तथा इकठ्ठा करना, उपजीविका करना अनर्थदण्ड है। सारांश यह है कि शास्त्र चित्तके रागद्वेषको नष्ट करनेके लिये सुना जाता है परंतु जिसके सुननेसे चित्तमें कलुषता निर्माण होती ह उसको दुश्रुति नामका अनर्थदण्ड कहते है। अनर्थदण्ड त्याग व्रतीको दुश्रुतिका त्याग करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्त और रौद्र ध्यानको "अपध्यान" नामक अनर्थदण्ड कहते हैं। उनमेंसे 'ऋति' किंवा 'अर्ति' शब्दसे 'आर्त' शब्द बनता है। इसका अर्थ दुःख किंवा किसी प्रकारकी यातना होनेपर जो वेदना व यातनाके कारण समयपर चित्तकी एकाग्रता होती है उसको आर्तध्यान कहते हैं। और परके रोध करनेसे जो ध्यान होता है उसको रौद्रध्यान कहते हैं। इन दोनों ध्यानोंमें अपध्यान नामका अनर्थदण्ड होता है। यह नहीं करना चाहिये। तथा इसी श्लोकमें जब "न दुश्श्रुतिमपध्यानं नार्तरौद्रात्म चान्वियात्" इसकी जगहपर न दुश्श्रुतिमपध्यानमार्त-रौद्रात्म चान्वियात्" ऐसा पाठ भी विवक्षित है। तब इसका अर्थ यह है कि मैं नरेंद्र होकर, विद्याधर होकर, रानी विद्याधरी जनोंका भोग करूंगा, वैरियोंका नाश करूंगा, ऐसे आर्त और रौद्र ध्यानका चिंतवन नहीं करना चाहिये।

प्रमादचर्याका लक्षण और उसके त्यागका उपदेश देते हैं—

प्रमादचर्यां विफलक्ष्मानिलाग्न्यम्बुभूरुहाम्।
खातव्याघातविध्यापसेकच्छेदादि नाचरेत्॥१०॥

अन्वयार्थ— अनर्थदण्डविरति (विफलक्ष्मानिलाग्न्यम्बुभूरुहां) निष्प्रयोजन, पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और वनस्पतिको (खातव्या-घातविध्यापसेकच्छेदादि) खोदना, रोकना, बुझाना, सिंचना और छेदना काटना आदि रूप (प्रमादचर्यां) प्रमादचर्या नामक अनर्थ-दण्डको (न आचरेत्) नहीं करे॥१०॥

भावार्थ— विना प्रयोजन भूमिको खोदना, स्वयं आती हुओ वायुको कवाड आदिके द्वारा प्रतिबन्ध करना, व्यर्थमें अग्निको जलादिके द्वारा बुझाना, पानी आदिको भूमिपर डालना, वृक्षके फल, पुष्प, पत्र आदिको तोडना प्रमादचर्या नामका अनर्थदंड है। अनर्थदंडविरति प्रमादचर्या नामके अनर्थदंडका त्याग करे॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा:-

तद्वच्च न सरेद्व्यर्थं न परं सारयेन्महीम् ।
जीवघ्नजीवान् स्वीकुर्यान्मार्जारशुनकादिकान् ॥११॥

अन्वयार्थ-(तद्वच्च) असी प्रकार (व्यर्थं) निष्प्रयोजन (महीम्) पृथ्वीपर (न सरेद्) भ्रमण न करे । (च) और (परं) दुसरोंको (न सारयेत्) भ्रमण न करावे । तथा (मार्जारशुनकादिकान्) बिल्ली, कुत्ता आदि (जीवघ्नजीवान्) जीवोंके घातक प्राणियोंको (न स्वीकुर्यात्) स्वीकार न करे ॥११॥

भावार्थः-जिस प्रकार निष्प्रयोजन पृथ्वी खोदना आदि प्रमादचर्या स्वरूप अनर्थदण्डका त्याग करना चाहिये असो प्रकार बिना प्रयोजन पृथ्वीपर भ्रमण नहीं करना तथा दुसरोंको भ्रमण नहीं कराना चाहिये । तथा जीवोंके घात करनेवाले हिंसक बिल्ली, कुत्ता, नेवला, मुर्गा आदि जीवोंका पालन नहीं करना तथा जिस वस्तुका त्याग कर दिया है असु वस्तुको ग्रहण न करे ।

अनर्थदण्डव्रतके अतिचारके परिहारको कहते हैं-

मुंच्चेत्कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याणि तदत्ययान् ।
असमीक्ष्याधिकरणं सेव्यार्थाधिकतामपि ॥१२॥

अन्वयार्थ-अनर्थदण्डका त्याग करनेवाला श्रावक (कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याणि) कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य (असमीक्ष्याधिकरणं) असमीक्ष्याधिकरण (अपि) और (सेव्यार्थाधिकताम्) सेव्यार्थाधिकता इन (तदत्ययान्) अनर्थदण्डव्रतके अतिचारोंको (मुंच्चेत्) छोड देवे ।

भावार्थ-कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और सेव्यार्थाधिकता यह अनर्थदण्डव्रतके पांच अतिचार है ।

कन्दर्प-कामके उत्पादकभूत अथवा जिन वाक्योंमें कामकी प्रधानता है उसको कन्दर्प कहते हैं । अथवा रागके उद्रेकसे हास्यमिश्रित अशिष्टवचनोंको बोलना कन्दर्प है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौत्कुच्य–हास्य और भंड वचनसहित भी, नेत्र, नाक, ओष्ठ, मुख, हाथ, पैर आदिके संकोचन आदिके द्वारा कुचेष्टा करना कौत्कुच्य है। कन्दर्प और कौत्कुच्य यह दोनो प्रमादचर्या नामके अनर्थदण्डव्रतके अतिचार है।

मौखर्य–धृष्टतापूर्वक असत्य, तथा संबंधरहित व्यर्थमें बकवाद करना मौखर्य है। यह पापोपदेश विरतनामक अनर्थदण्डव्रतका अतिचार है। क्योंकि मौखर्यके कारण पापोपदेशकी संभावना रहती हैं।

असमीक्ष्याधिकरण–अपने प्रयोजनका विचार न करके प्रयोजनसे अधिक कार्योंको करना असमीक्ष्याधिकरण है। जैसे तुम बहुतसी चटाईयां बनाकर लावो। जितनी हमको चाहिये उतनी हम लेंगे और भी बहुतसे लोग खरीदने वाले हैं, यह भी लेंगे, हम तुम्हारी सब वस्तु बिकवा देंगे, इस प्रकारसे चटाई बनानेवालेसे बिना प्रयोजन अधिकार्य कराना। बनानेवालेको बहुतसे तृणादि आरंभमें लगाना। इसी प्रकार खेती ईंटे पकाने वालेको कहना यह अमीक्ष्याधिकरण नामका चौथा अतिचार है। अथवा हिंसाके उपकरणोंको उसके साथ ही दुसरें उपकरणोंको पासमें रखना जैसे–उखलीके पास मुसल, हलके पास फाल, गाडीके पास दिया, धनुष्यके पास बाण तैयार रखना यह भी असमीक्ष्याधिकरण है। क्योंकि ऐसा करनेसे आरंभादिजनित पापकार्य कोई भी मनुष्य सरलतापूर्वक कर सकता है। अन्यथा नहीं। तथा देनेके लिये निषेध भी नहीं किया जा सकता है। और उससे आरंभ हिंसा अधिक होती है। इसलिये इस बातका विचार न करके अधिक तैयारी की जाती है, उसको हिंसादानविरति अनर्थदण्डव्रतका अतिचार कहा है।

सेव्यार्थाधिकता–जितने भोगोपभोग साधनोंसे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है उससे अधिक साधन सामुग्रीको जुटाना सेव्यार्थाधिकता कहलाती है। जैसे–यदि स्नान करनेके लिये तालाबपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते समय बहुतसा तेल, खल, आवला आदि लेकर जानेसें लोलुपतासे बहुतसे मित्रगण ही साथ हो जावेंगे। और जिससे बहुतसे वायुका, अप्कायादि जीवोंका वध होगा, इसलिये घरमें भी स्नान करना चाहिये। अथवा घरमें ही तेल आदि लगाकर तालाब आदिपर जाना चाहिये। और तालाबके किनारेपर बैठकर छने हुए पानीसे स्नान करना चाहिये और जिस तालाबमें पुष्पादि हो तो दूरसे छोड देना चाहिये। ऐसा नहीं करनेपर सेव्यार्थाधिकता नामका अनर्थदण्डव्रतका अतिचार होता है। यह प्रमादचर्या विरत पांचवे अनर्थदण्डव्रतका अतिचार है।

भोगोपभोग नामक तृतीय गुणव्रत स्वीकार करनेकी विधी—

भोगोऽयमियान् सेव्यः समयमियन्तं मयोपभोगोऽपि।
इति परिमायानिच्छस्तावधिकौ तत्प्रमाव्रतं श्रयतु ॥१३॥

अन्वयार्थ—(अयम् भोगः) यह भोग (इयान्) इतना (उपभोग) उपभोग (अपि) और (मया) मेरे द्वारा (इयन्त) इतने (समयम्) समयपर्यंत (सेव्यः) सेवन करने योग्य है। (इति) इसतरह (परिमाय) प्रमाण करके (तो अधिकौ) अधिक भोगोपभोगको (अनिच्छन्) नहीं चाहनेवाला श्रावक (तत्प्रमाव्रतं) उस भोगोपभोग परिमाणव्रतको (श्रयतु) स्वीकार करे।

भावार्थ— यह भोग और उपभोग मेरे द्वारा इतने इतनें समयतक सेवन किये जायेंगे अर्थात् इतनी भोगोपभोग वस्तुओंका सेवन करूंगा, इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञासे अधिक भोगोपभोग वस्तुका त्याग करना भोगोपभोगपरिमाण नामका व्रत है। इन भोगोपभोगकी मर्यादा विधीमुखसे व निषेधमुखसे भी की जाती है। जैसे यह चार मालाऐं दस दिनतक पहनूंगा। यह दस पानके बीडे दस दिनमें खाऊँगा वा यह साडी दस दिनतक नहीं पहनूंगा दस दिनतक तूप, घीं नहीं खाऊँगा आदि इतने वस्त्र अलंकारादि इतनें दिनतक सेवन करूंगा, और वस्त्र, अलंकार वगैरे इतने दिनतक सेवन नहीं करूंगा, इस प्रकार विधी और निषेध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों रीतीसे भोगोपभोग पदार्थोंकी मर्यादा की जाती है। मर्यादाके कालके भीतर उन त्यागे भोगोपभोगकी इच्छा नहीं करना। भोगोपभोगपरिमाण नामका व्रत है।

भोगोपभोगका लक्षण तथा उनके यावत्जीवित और नियत-कालके त्यागकी संज्ञाविशेषको कहते हैं-

भोगः सेव्यः सकृदुपभोगस्तु पुनः पुनः स्रगम्बरवत् ।
तत्परिहारः परिमितकालो नियमो यमश्च कालान्तः ॥१४॥

अन्वयार्थ- (स्रगनम्बरवत्) माला और वस्त्रकी तरह (सकृत्) एकबार (सेव्यः) सेवन करने योग्य वस्तुको (भोगः) भोग कहते हैं। (तु) और (पुनः पुनः) बारबार भोगने योग्य वस्तुको (उपभोगः) उपभोग कहते हैं। (परिमितकालः) परिमितकालतक (तत्परिहारः) भोगवस्तुका त्याग करना (नियमः) नियम है (च) और (कालान्तः) जीवनपर्यंत त्याग करना (यमः)यम कहलाता है।

भावार्थ- जो एकबार भोगने योग्य है उसको भोग कहते हैं जैसे माला, चन्दन, रोटी आदि और जो बारबार भोगनेमें आते हैं उनको उपभोग कहते हैं, जैसे वस्त्र, आभूषण, वाहन, स्त्री आदि। जो एक, दो, तीन दिन आदि कालकी मर्यादा करके उसको नियम कहते हैं। और यावत्जीवन त्याग किया जाता है उसको यम कहते हैं। यह यम और नियममें विशेषता है। त्रसघात, बहुघात, प्रमाद विषय अनिष्ट और अनुपसेव्य इन पाचोंका त्यागका अंत-र्भाव भोगोपभोग परिमाणमें होता है। इसको बताते हैं-

पलमधुमद्यवदखिलस्त्रसबहुघातप्रमादविषयोऽर्थः ।
त्याज्योऽन्यथाऽप्यनिष्टोऽनुपसेव्यश्च व्रताद्धि फलमिष्टम् ॥

अन्वयार्थ- (पलमधुमद्यवत्) मांस, मधु और मदिराके समान (त्रसबहुघातप्रमादविषयः) त्रसघात, बहुघात और प्रमदके विषय करनेवाले ऐसे तथा (अन्यथा) अपि त्रसघातका विषय कर-नेवाले नहीं होकर भी जो (अनिष्टः) अनिष्ट है (च) और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इष्टः अपि) इष्ट होकरके भी (अनुपसेव्यः) अनुपसेव्य है, ऐसे (अखिलः) संपूर्ण (अर्थः) बहुत पदार्थोंका (त्याज्यः) त्याग करना चाहिये (हि) क्योंकि (व्रतात्) व्रतसे (इष्टम्) इष्ट स्वर्गादि (फलम्) फलकी प्राप्ती होती है।

भावार्थ–भोगोपभोगपरिसंख्यान व्रतीको जिन इंद्रियोंके भोग्य पदार्थोंके भक्षण करनेमें मांसके समान बहुतसे त्रस जीवोंका घात होता है असे इंद्रियभूत विषयोंको त्याग करना चाहिये। जिसके सेवन करनेसे मधुके समान रसात्मक बहुतसे तदाश्रित जीवोंका घात होता है तथा जिन कंदमूलादिक भक्षणसे अनंत स्थावरजीवोंकी हिंसा होती है, वे सब पदार्थ नहीं खाना चाहिये। जिस प्रकार त्रसघातका आश्रय होनेसे मांसका भक्षण करना छोड देते हैं अथवा बहुघातका आश्रय होनेसे शहदका और प्रमादका आश्रय होनेसे मदिराका त्याग किया जाता है, अुसी प्रकार जिसमें उड करके बहुतसे समुच्छंन जीव बैठते हैं तथा जिनमें त्रसजीवोंकी रहनेकी जगह जैसे कमल, नाल आदि त्रसघात पदार्थ और केतकीके फूल, केतकी, नीमके, अर्जुनके फूल, अरणीके फूल, बिल्लू फल आदि वस्तुको नहीं खाना चाहिये। क्योंकि इनके भक्षण करनेसे त्रसजीवोंका घात होता है।

बहुघातविषय–गुरवेल, लसून, आर्द्रक, मूली आदि कंदमूलके भक्षण करनेसे बहुतसे स्थावरजीवोंका घात होता है।

प्रमादविषय–विष, भांग, धतूरा आदि वस्तु भक्षण करनेसे प्रमाद उत्पन्न होता है। इसलिये बहुस्थावरघात और त्रसघात पदार्थोंको खानेका त्याग करना चाहिये। और इनका धनोपार्जन करनेके लिये धर्मात्मा पुरुषोंके द्वारा व्यापार भी नहीं करना चाहिये।

अनिष्ट–यद्यपि जिन पदार्थोंमें त्रसघात और स्थावरघात नहीं है, प्रासुक है परंतु जो अपनी प्रकृतीके अनुकूल नहीं है अुन पदार्थोंको अनिष्ट कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुपसेव्य–जिसमें त्रस और स्थावर जीवोंका घात नहीं है और अनिष्ट भी नहीं है, परंतु अनुपसेव्य है अर्थात् उत्तम पुरुषोंके सेवन करने योग्य नहीं है अैसे चित्रविचित्र वस्त्र, विकृत वेषाभरण आदि तथा लाला, मूत्र, मल, कफ आदि अनुपसेव्य है।

व्रतीपुरुषोंको अनिष्ट, अनुपसेव्य पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। बहुत्रसघात, बहुस्थावरघात, प्रमादविषय, अनिष्ट और अनुपसेव्य यह पांच प्रकारके अभक्ष्य कहलाते हैं। इनका त्याग करनेसे व्रत होता है। और व्रतोंसे स्वर्गादि इष्टफलकी प्राप्ति होती है। इसलिये योग्यपदार्थोंका भी त्याग करना चाहिये।

इसी अर्थको व्यवहारकी प्रसिद्धीके लिये तीन श्लोकोंके द्वारा दिखाते हैं–

नालीसूरणकालिन्द्रद्रोणपुष्पादि वर्जयेत्।
आजन्म तद्भुजां ह्यल्पं फलं घातश्च भूयसाम् ॥१६॥

अन्वयार्थ–(नालीसूरणकालिन्द्रद्रोणपुष्पादि) धर्मात्मा पुरुषको नालीं, सूरण, तरबूज, द्रोणपुष्प आदि को (आजन्म) जन्म-पर्यंत (त्यजेत्) छोड देना चाहिये। (हि) क्योंकि (तद्भुजां) अुनको भक्षण करने वालेको (अल्पं) अल्प (फलं) फल होता है (च) और (भूयसाम्) बहुतसे जीवोंका (घातः) घात होता है।

भावार्थ–धर्मात्मा पुरुषोंको नाली, सूरण, तरबूज, द्रोणपुष्प, मूली, गाजर, निंबके फूल, केतकीके फूल आदि पदार्थोंका आजन्म त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि इनके भक्षण करनेसे जिव्हा इंद्रियकी तृप्ति मात्र अल्पफलकी प्राप्ती होती है। और अुनके आश्रित रहनेवाले अनंत जीवोंका घात होता है।

इसी अर्थको व्रतकी दृढता करनेके लिये पुनः विशेष रूपसे वर्णन करते हैं–

अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदा हेया दयापरैः।
यदेकमपि तं हन्तुं प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(दयापरैः) अनुकंपाप्रधान श्रावकको (सदा) हमेशा (सर्वेऽपि) संपूर्ण ही (अनन्तकायाः) अनंतकाय भक्षण करनेका (हेयाः) त्याग करना चाहिये। (यत्) क्योंकि (एक-मपि) एक भी (तं) अुस अनंतकायको (हन्तुं) मारनेके लिये (प्रवृत्तः) प्रवृत्ति करनेवाला मानव (अनन्तकान्) अनंतानंत जीवोंको (हन्ति) मारता है।

भावार्थ-दयालु मनुष्योंको हमेशाके लिये अनंतकायवाली साधारण वनस्पतिके खानेका त्याग करना चाहिये। क्योंकि एक ही एक साधारण वनस्पतिके जीवको भक्षणादि द्वारा मारनेके लिये प्रवृत्त होनेपर अनंतजीवोंका घात होता है।

जिस वनस्पतीके एक शरीरमें अनंत साधारण जीव रहते, है अुसको अनंत कहते हैं, वह साधारण वनस्पति है। मूलज, अग्रज, पर्वज कंदज, इस्कंधज, बीजज और समूर्च्छनके भेदसे सात प्रकारकी है।

मूलज-आर्द्रक, हलदी वगैरे मूलज वनस्पति है।

अग्रज-आर्यकादि वनस्पति

पर्वज-देवनार, इक्षु, वेत्र आदि गांठसे उत्पन्न होनेवाली वनस्पति

कंदज-प्याज, सूरणादि कंदज वनस्पति

स्कंधज-सलखी, कंटेरी, पलाश आदि वनस्पति

बीजज-चावल, गहूं, चना आदि वनस्पति

समूर्च्छन-अपने नियत बीजके अभावमें अपने योग्य पुद्ग-लोंके द्वारा शरीरको निष्पन्न करनेवाली वनस्पति।

उक्तं च-

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीजबीजरुहा।
संमुच्छिमा य भणिया पत्तेया णंतकाया य॥

जिन वनस्पतिओंका बीज, मूल, अग्र, अंग अथवा स्कंध है अथवा जो बीजसे उत्पन्न होती है और सम्मूर्च्छन है वे सभी वनस्प-तियां सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित भेदसे दो प्रकारकी होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अुनमेंसे व्रतीमनुष्यको सप्रतिष्ठित अनंतकाय वनस्पतिके खानेका त्याग करना चाहिये। क्योंकि अुनके भक्षण करनेसे अनंतानंत जीवोंका घात होता है।

तथा-

आमगोरससंपृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्।
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत् ॥१८॥

अन्वयार्थ-(आमगोरससंपृक्तं) कच्चे दूध दहींमें मिले हुअे (द्विदलं) द्विदल-मूंग, चना आदि अन्नको (प्रायशः) बहुत कालके काले पडे हुअे (अनवम्) पुराने अन्नको (च) और (वर्षासु) वर्षाकालमें (अदलितं) बिना विदारे हुअे द्विदलको (च) और (अत्र) वर्षाकालमें (पत्रशाकं) पत्तेवाली शाकको (नाहरेत्) नही खावे ॥१८॥

भावार्थ-दयालु व्रती मनुष्यको अग्निसे बिना गरम किये हुअे दूधके साथ तथा विना गरम किये हुअे दूधके बने हुअे दही, छांछके साथ मूंग, चना आदि द्विदल अन्नको नहीं खाना चाहिये। क्योंकि कच्चे दूध, दही आदि गोरसके साथ द्विदलका संयोग होनेसे बहुतसे सूक्ष्मजीवोंकी उत्पत्ति होती है, अैसे आगममें सुना जाता है।

तथा बहुत कालके पुराने वा जिनमें दृष्टिके अगोचर सूक्ष्मजीवोंकी उत्पत्ति हो गयी हो अथवा जो ऊपरसे काले पड गये हो जिनपर फूली वगैरे आ गयी हो अैसे कूलथी, चना आदि भक्षण नहीं करना चाहिये। वर्षाकालमें बिना विदारे हुअे मूंग, चना आदि भी अभोज्य है। क्योंकि आयुर्वेदमें अुनमें अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्ति मानी है। और त्रससमुर्च्छनजीवोंकी उत्पत्ती भी दृष्टिके द्वारा संभाव्यमान है। अथवा इनको भक्षण करना रूढिसे भी निषेध किया गया है। वर्षाकालमें हरित् पत्तेवाली सागभाजी नहीं खाने चाहिये। क्योंकि वर्षाकालमें त्रसस्थावरोंकी उत्पत्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत होती है और पत्रादिकी भाजी खानेमें फल अल्प होता है। हरित् फल वर्षाकालमें खाना दोषदायक नहीं है।

इस व्रतका विशेष आदानकी स्थितिके कारणका उपदेश-

भोगोपभोगकृशनात्कृशीकृतधनस्पृहः ।
धनाय कोट्टपालादिक्रियाः क्रूराः करोति कः ॥१९॥

अन्वयार्थ- (भोगोपभोगकृशनात्) भोगोपभोगकी इच्छासे कृश हो जानेसे (कृशीकृतधनस्पृहः) क्षीण कर ली है धनकी अभिलाषाको जिसने ऐसा (कः) कौन पुरुष (धनाय) धनके लिये (क्रूराः कोट्टपालादि क्रियाः) क्रूर कोट्टपालादि क्रिया (करोति) करता है ॥१९॥

भावार्थ- भोगोपभोगकी इच्छाओंसे कृश हो जानेसें जिनोंकी धनकी अभिलाषा क्षीण हो गयी ऐसे व्रती पुरुष धनकी इच्छासे कोट्टपाल आदिके प्राणघातक क्रूर क्रियाओंको कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं कर सकता।

भोगोपभोगव्रतके पांच अतिचार कहते हैं-

सचित्तं तेन सम्बद्धं सम्मिश्रं तेन भोजनम् ।
दुष्पक्वमप्यभिषवं भुञ्जानोऽत्येति तद्व्रतम् ॥२०॥

अन्वयार्थ- (सचित्तं) सचित्त भोजनको (तेन सम्बद्धं भोजनम्) सचित्तसे सम्बन्ध रखनेवाले भोजनको तथा (तेन सम्मिश्रं) उस सचित्तसे मिले हुए भोजनको (दुष्पक्वं अपि अभिषवं भुञ्जानः तद्व्रतं अत्येति) अधपके तथा गरिष्ट भोजनको करनेवाला श्रावक भोगोपभोग परिमाण व्रतका उल्लंघन करता है। अर्थात् ये पांच भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतीचार है।

भावार्थ- सचित्तभोजन, सचित्तसम्बन्धभोजन, सचित्तसे मिला हुआ भोजन, दुष्पक्वभोजन और अभिषवभोजन पांच भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतीचार हैं। उनमेंसे कच्ची ककडी आदिको सचित्त कहते हैं। अज्ञानसे या प्रमादसे कदाचित् कच्ची

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ककडी वगैरेह मुहमें डाल ली जावे या खानेमें आ जावे तो सचित्त नामका प्रथम अतीचार होता है ।

यहांपर यह शंका हो सकती है कि १५ वें श्लोकमें त्रसघात बहुघातादि विषयक सब ही वनस्पतियोंके भक्षणका निषेध कर चुके हैं । पुनः सचित्तभक्षणको अतीचार क्यों कहा जाता है । इसका समाधान यह है कि वहांपर बुद्धिपूर्वक जिन वनस्पतियोंके भक्षणमें त्रसघातादिककी संभावना हैं उसके त्यागका विधान है,और उसका पालन भोगोपभोगपरिणामव्रतीको अवश्य करना चाहिये । परन्तु यहांपर अज्ञानभावसे या असावधानीसे त्यागी हुई सचित्त वस्तुके भक्षणका मौका आ जावे तो वह 'सचित्त' नामका अतीचार है । और यहीं युक्ति सचित्तसे सम्बन्धित तथा सम्मिश्रित आहारको अतीचारके कथनमें लागू करना चाहिये ।

सचित्तसंबंध- अज्ञान व असावधानीके कारण वृक्षमें लगी हुई गोंदके खानेसे, पके फलोंके खाते समय भीतरके बीजके खानेमें आजानेसे सचित्तसंबंध नामका अतीचार होता है ।

उदाहरणार्थ- " इस फलमें केवल बीज मात्र सचित्त है और हमने केवल सचित्तका त्याग किया है । इसलिये खाते समय उसे छोड दूंगा और शेष जो भाग अचित्त है उसे खाऊंगा ऐसी स्थितीमें आम, खजूर आदि पके फलोंके खाते समय सचित्तसंबंध नामका अतीचार होता है । क्योंकि सचित्त बीजका संबंध उससे नहीं छूटा है ।

सचित्तसम्मिश्र- जिस पदार्थमें सचित्त वनस्पति इस प्रकारसे मिल गई हो कि जिसको किसी प्रकारसे भी अलग नहीं किया जा सकता हो और प्रमाद व अज्ञानसे उसका खानेमें आ जाना सचित्तसंमिश्र नामका अतीचार है । अथवा सचित्तमें मिली हुई वस्तुको सचित्तसंमिश्र कहते हैं-जैसे अदरखसे अनारके दानोंसे व ककडी आदिसे मिश्रित पकोडी व पुओंका खाना 'सचित्तसंमिश्र' नामका अतिचार है । अथवा जो तिल मिलाकर यवधानादिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनाये जाते हैं अर्थात् जौ व धान वगैरहके पदार्थ बनाये जाते हैं वे 'सचित्तसंमिश्र' कहलाते हैं। इसप्रकारकी कोई भी चीज भोगोपभोगपरिमाणव्रतीको प्रमाद और अज्ञानसे नहीं खानी चाहिये।

दुष्पक्वम्– जो अपनी योग्यतासे अधिक पक गया हो अर्थात् अधजला हो गया हो अथवा कम पका हो। जैसे चावल जिसकी भीतरकी कनी कच्ची रह जाती है उसको 'दुष्पक्व' कहते हैं। ऐसे पदार्थको खानेसे जितना अंश कच्चा है उसके खानेमें आजानेसे सचित्ताहारकृत दोषकी संभावनासे व्रतभंग होता है और ऐसे पदार्थके खानेसे शारीरिक अपाय भी होता है। जैसे पृथक् शब्दका अर्थ पोहे (मराठीमें) होता है, वह जब अधिक भुंज जाती है तब भी उसका कुछ भाग अचित्त रहता है और कुछ भाग अधिक सिक जाता है। इसलिये सचेतन और अचेतनके संमिश्रितपनेसे अतीचार लगता है। यह अधिक पकेका उदाहरण है। उसी प्रकार कम पकेमें भी सचित्त और अचित्त भागकी संभावना रहती है जैसे कम पका भात। ये दोनों ही "दुष्पक्व" नामके अतीचार हैं। ये सब अतीचार अज्ञान व प्रमादसे होते हैं।

अभिषव– कांजी आदि पतले पदार्थ अथवा खीर आदि पुष्टीकारक पदार्थ भी स्वाद व पुष्टीकी अभिलाषासे अधिक इच्छा रखकर बनाये जाते हैं। उस समय उसमें (भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें) अतिक्रमादि दोष लगते हैं इसलिये यह भी अतीचार होता है। चारित्रसारमें इन सचित्त, आदि अतीचारोंके विषयमें यह युक्ति दी है कि इनके कारण अतिथीका उपयोग इन सचित्त आदिके विषयमें जाता है। इनके भक्षणसे इन्द्रियोंका मद बढता है, वातादि रोगोंका प्रकोप होता है और दवाई खानी पडती है। इसलिये कुछ पापोंका अंश भी लगता है। अतः व्रतियोंको इनको टालना चाहिये।

स्वामी समंतभद्रने तो भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतीचार दूसरे बताए हैं, जैसे–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयविषतोऽनुप्रेक्षाऽनुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥

अर्थात्- विषय एक प्रकार विष है इसलिये इनके विषयमें अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव ये पांच भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतीचार हैं ।

अनुप्रेक्षा- विषयरूपी विषोंका आदर करना अर्थात् विषयोंके भोगनेसे विषय सम्बन्धी वेदनाके दूर होनेपर भी भोगी हुई इष्ट स्त्रीसंबंधी संभाषण आलिंगनका त्याग नहीं करना, पुनः पुनः चिंतवन करना, अनुप्रेक्षा नामका अतीचार है ।

अनुस्मृति- भोगोंके अनुभव द्वारा विषयसंबंधी वेदनाके पूरे होनेपर भी अत्यन्त आसक्तिके कारण अपनी स्त्री आदिके सौंदर्य, सुखसाधनपनेका बार बार स्मरण करना 'अनुस्मृति' नामका दूसरा अतीचार है ।

अतिलौल्य- अत्यन्त भोगोंकी लोलुपता रखना, भोगभोगकर भी उसके भोगनेकी अत्यन्त आकांक्षा रखना अतिलौल्य नामका अतीचार है ।

अतितृषा- अपनी कामनीके भोगादिकोंकी अत्यन्त गृद्धितापूर्वक इच्छा रखना अतितृषा नामका अतीचार है ।

अनुभव- भोगोंकी वेदनाका प्रतीकार न समझकर अपने नियतकालमें भी अत्यासक्तिसे भोगना अनुभव नामका अतीचार है ।

ये सब अतीचार भी "परेप्यूह्यास्तथात्यया:" इसी ग्रंथके इस वाक्यके अनुसार अतीचार समझना चाहिये । क्योंकि पांच पांच अतीचार बता दिये हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल पांच ही अतीचार प्रत्येक व्रतमें होते हैं, किंतु पांच पांच अतीचार सिर्फ उदाहरणके लिये बताये हैं, जहां भी अंतर्वृत्तिसे व्रती च्युत होता है, केवल बाह्यवृत्तिसे अपने व्रतोंको पालता रहता है उस समय उसको नानाप्रकारके अतीचार लगते हैं यह समझना चाहिये । इसी प्रकार अन्तर्वृत्तिसे पालते हुये भी यदि बाह्यवृत्तिसे कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रती च्युत हो जावे तो भी अतीचार होता है यह सब इस कथनका सारांश है ।

इसी प्रकार श्री सोमदेवाचार्यके बताये हुये—

दुष्पक्वस्य निषिद्धस्य जन्तुसम्बन्धमिश्रयोः ।
अवीक्षितस्य च प्राशः सत्संख्याक्षतिकारणम् ।

दुष्पक्व भोजन करना दुष्पक्व नामका अतीचार है। निषिद्ध भोजन, अर्थात् शास्त्रमें जिनका निषेध है उन पदार्थोंका खाना, निषिद्धभोजन नामका अतीचार है। जिनमें सूक्ष्म जंतुओंका सम्बन्ध पाया जाता हो ऐसे पदार्थोंका खाना "सूक्ष्मजंतुसम्बन्ध" नामका अतीचार है। "जंतुमिश्र" अर्थात् जिसमें सूक्ष्म जीव मिले हुये हों उनका खाना, जंतुसंमिश्र नामका अतीचार है और "अवीक्षितप्राशः" अर्थात् विना शोधे, विना देखे भोजन करना अवीक्षितप्राश नामका अतीचार है। ये पांच भोगोपभोगपरिमाण व्रतके अतीचार हैं। इनमें यद्यपि कुछ विशेष अन्तर नहीं है तथापि जो थोडा बहुत अन्तर है उसका भी ग्रहण "परेप्यूह्यास्तथात्ययाः" इस ग्रन्थोक्त वाक्यसे समझना चाहिये ।

इस विषयमें श्वेतांबर आचार्योंके मतसे इन भोगोपभोगके साधनभूत जो द्रव्य हैं अथवा व्यापार हैं वह भी भोगोपभोग शब्दसे कह सकते हैं। और इसका नाम खरकर्म भोगोपभोग त्याग रखना चाहिये तथा इस व्रतके वन, जीविका आदि १५ अतीचार मानना चाहिये। और खरकर्म तथा इनके इन अतिचारोंका त्याग करना चाहिये। इसका उत्तर ग्रंथकारने यह कह दिया है। यह सब "सावद्य कर्म" हैं और ये१५ही होते हैं यह नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि संसारमें सावद्यकर्म बहुतसे हैं। इसलिये इनकी संख्या गिनाना ठीक नहीं है। अथवा यदि कहा जावे कि अत्यन्त मंदमतियोंके लिये इसका उपदेश देना गैरठीक नहीं है, तो उसके ऊपर ग्रन्थकारने स्वीकारता दी है। क्योंकि अत्यन्त मंदमती यह पहचान नहीं कर सकते कि संसारमें सावद्य और निरवद्य कर्म कौनसे हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये उनके लिये नाम निर्दोष करके समझा देना ही ठीक है, परन्तु बुद्धिमानोंके लिये गिनाना ठीक नहीं है। क्योंकि जितने भी क्रूर कर्मवाली आजीविकायें हैं उन सबका ही त्याग भोगोपभोग परिमाणव्रतीको करना चाहिये। सावद्यकर्मोंकी संख्याका गिनाना उचित नहीं है।

अब— आगेके तीन पद्योंसे श्वेतांबर मतमें प्रतिपादित पन्द्रह खरकर्मोंके त्यागका भी भोगोपभोगपरिमाणमें अन्तर्भाव है। इसलिये उनका पृथक् कथन करना ठीक नहीं है तथा मंदमतियोंको समझानेके लिये कथन करना बाधक भी नहीं है यह बताते हैं—

व्रतयेत्खरकर्मात्र मलान् पञ्चदश त्यजेत्।
वृत्तिं वनाग्न्यनस्फोटभाटकैर्यंत्रपीडनम् ॥२१॥
निर्लाञ्छनासतीपोषौ सरःशोषं दवप्रदाम्।
विषलाक्षादन्तकेशरसवाणिज्यमङ्गिरुक् ॥२२॥
इति केचिन्न तच्चारु लोके सावद्यकर्मणाम्।
अगण्यत्वात्प्रणेयं वा तदप्यतिजडान् प्रति ॥२३॥

अन्वयार्थ— ('श्रावकः') एक देशव्रतको पालन करनेवाला श्रावक (खरकर्म) खरकर्मको अर्थात् प्राणियोंको बाधा देनेवाले व्यापारको (व्रतयत्) छोडे तथा (अत्र) क्रूर कर्मों के-खोटे कर्मोंके त्यागरूप इस खरकर्म व्रतमें (वनाग्न्यनःस्फोटभाटकैः) वन, अग्नि, गाडी, स्फोट और भाटकके द्वारा (वृत्तिं) आजीविकाको-व्यापारको (यंत्रपीडनं) यंत्रपीडनको (निर्लाञ्छनासतीपोषौ) निर्लाञ्छन तथा असतीपोषको (सरःशोषं) सरः शोषको (दवप्रदां) दवदानको और (अङ्गिरुक्) प्राणियोंको बाधा देनेवाले (विषलाक्षादन्तकेशरसवाणिज्यं) विष, लाक्षा, दन्त, केश, तथा रसके व्यापारको करनेरूप (पञ्चदश) पन्द्रह (मलान्) अतीचारोंको (त्यजेत्) छोडे (इति) इस प्रकार (केचित्) कोई श्वेतांबर आचार्य कहते हैं परन्तु (लोके) संसारमें (सावद्यकर्मणां) सावद्य कर्मोंकी-पाप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित क्रियाओंकी (अगण्यत्वात्) परिगणना करनेके लिये असमथ होनेसे (तत् चारु न) उनका वह कथन ठीक नहीं है (वा) अथवा (अतिजडान् प्रति) अत्यन्त मूढ बुद्धिवालें पुरुषोंको उद्देश करके (तदपि) वह खरकर्म व्रत भी (प्रणेयं) प्रतिपादन करनेके योग्य है अर्थात् अत्यन्त मंद बुद्धिवालें पुरुषोंके लिये उस खर कर्मव्रतका भी प्रतिपादन करना चाहिये ।

भावार्थ-प्राणियोंको पीडा उत्पन्न करनेवाले व्यापारको खर-कर्म अर्थात् क्रूरकर्म कहते हैं, इनका त्याग करना चाहियें । इस व्रतका नाम खरकर्म भोगोपभोगत्यागव्रत है । इनके १५ अतीचार हैं, उनका भी त्याग करना चाहिये । उन १५ अतीचारोंका खुलासा पृथक् पृथक् इस प्रकार है—

१ वनजीविका—स्वयं टूटे हुवे अथवा तोडकर वृक्ष आदि वन-स्पतिका बेचना, अथवा गेंहूं आदि धान्योंका पीस कूटकर व्यापार करना ।

२ अग्निजीविका—कोयलाको तैयार करना । यह आजीविका षट् कायके जीवोंकी विराधनाके लिये हेतु हैं ।

३ अनोजीविका—स्वयं गाडी, रथ तथा उसके चका वगैरह बनाना अथवा दूसरोंसे बनवाना, गाडी जोतनेका व्यापार स्वयं करना तथा दूसरोंसे कराकर आजीविका करना, गाडी आदिके बेचनेका धंदा करना अनोजीविका है । इस आजीविकासे बैल आदिको बन्धनमें रखना पडता है तथा इन वाहनोंके द्वारा बहुतसे प्राणियोंका उपमर्दन होता है ।

४ स्फोटजीविका—पटाखे व आतिशबाजी आदि बारूदकी चीजोंसे आजीविका करना, स्फोटजीविका है । इस कर्मसे भी षट् कायिक जीवोंका घात होता है ।

५ भाटकजीविका—गाडी, घोडा आदिसे बोझा ढोकर जो भाडेकी आजीविका की जाती है वह भाटकजीविका कहलाती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ यंत्रपीडन–तेल निकालनेके लिये कोल्हू चलाना, सरसों तिल आदिको कोल्हूमें पिलवाना, तिल वगैरह देकर उनके बदलेमें तेल लेना, यह सब यंत्रपीडन कहलाता है। इस व्यापारमें तिलादिकमें रहनेवाले जीवोंका घात होता है इसलिये यह भी दुष्टकर्म-खरकर्म है।

७ निर्लाञ्छनकर्म–बैलों आदिकी नाक आदि छेदनेका धंदा करना अर्थात् नितरां लांछन अर्थात् शरीरके अवयवके छेदनको निर्लांछनकर्म कहते हैं।

८ असतीपोष–हिंसक प्राणियोंका पालनपोषण करना और किसी प्रकारकी भाडेकी उत्पत्तिके लिये दास और दासियोंका पोषण करना असतीपोष कहलाता है।

९ सरःशोष–अनाज बोनेके लिये जलाशयोंसे नाली खोदकर पानी निकालना सरःशोष कहलाता है। इससे जलकाय, जलचर, त्रस और जलाश्रित ६ कायिक जीवोंकी विराधना होती है।

१० दवप्रदा–वनमें घास वगैरहके जलानेके लिये आग देना दवप्रदा कहलाता है। वह दो प्रकारका है–एक व्यसनज और दूसरा पुण्यबुद्धिज। उनमेंसे विनाप्रयोजनके भीलोंद्वारा वनमें आग लगवाना व्यसनज दवप्रदा कहलाता है और जब मैं मर जाऊँगा उस समय मेरे कल्याणके लिये इतने दीपोंका उत्सव कराया जाय इस प्रकारकी पुण्यकी बुद्धिसे जो दीपोंमें अग्नि प्रज्वलित कराई जाती है उसको पुण्यबुद्धिज दवप्रद कहते हैं। तथा सूखे घासको जला देनेसे उस जगह अच्छी उपज होती है, गायोंको अच्छा घास पैदा होता है इस बुद्धिसे आग लगवाना दवप्रद कहलाता है। इनमें भी करोडों जीवोंका वध होता है।

११ विषवाणिज्य–प्राणिघातक विषका व्यापार करना विषवाणिज्य कहलाता है।

१२ लाक्षावाणिज्य–लाखके धंदेको लाक्षावाणिज्य कहते हैं। लाख जिन पत्तोंपर लगाई जाती है उनकी हिंसा हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब वृक्षसे लाख निकाली जाती है, तब जिन जीवोंकी शरीरकी वह लाख बनती है उसमें भी असंख्य अनेक त्रस रहते हैं उनका भी घात होता है। लाखके कीडे जिन छोटे छोटे पत्तोंपर बैठते हैं तथा उनमें जो सूक्ष्म त्रस होते हैं उनके घातके विना लाख पैदा ही नहीं होती है। इसलिये यह व्यापार निषिद्ध है और यह भी खरकर्म है। इसी प्रकार टाकनखार, मनसिल आदि पदार्थोंका व्यापार तथा गुगूलका व्यापार तथा धायके फूल व छाल जिससे मद्य बनता है उसके व्यापारका भी ग्रहण लाक्षावाणिज्यमें गर्भित है।

१३ दन्तवाणिज्य–जहां हाथी वगैरह रहते हैं उस जगहपर व्यापारके लिये भीलादिकोंको द्रव्य देकर दांत आदि खरीदना दन्त-वाणिज्य है, यह भी खरकर्म है। क्योंकि वे भिल्ल दंत आदि लानेके लिये हाथी आदिका वध करेंगे। यहां इतना विशेष है कि जहां उत्पत्तिस्थान नहीं है और उसके निमित्तसे जीवोंके वधकी संभावना नहीं है वहांपर हाथीदंत आदिका व्यापार किया जा सकता है, उसमें दोष नहीं है।

१४ केशवाणिज्य–दासी, दास और पशूओंके व्यापारको केशवाणिज्य कहते हैं। इस व्यापारमें भी दासी, दास आदिकी परतंत्रता, क्षुधा, तृषा, बंध, वध आदि कृत पीडा होती है।

१५ रसवाणिज्य–मक्खन वगैरहके व्यापारको रसवाणिज्य कहते हैं। मक्खनमें संमूर्च्छन जीव उत्पन्न होते रहते हैं। मधू, चरबी और मद्यमें भी जीवोंका घात होता है। मद्यसे मद पैदा होता है और बहुत जीवोंका घात भी होता है इसलिये इन चीजोंका व्यापार करना दुष्टकर्म है।

ये पन्द्रह खरकर्म त्यागव्रतके अतीचार हैं। इस खरकर्मका त्याग करना चाहिये। यह किसी श्वेतांबर आचार्यका कथन है। परंतु पापरूप आजीविकाओंकी गिनती नहीं की जा सकती है इसलिये १५ ही के त्यागका उपदेश देना ठीक नहीं है। हां! जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यंत मंद बुद्धि हैं उनके लिये इतने खरकर्म बताकर त्याग कराना बुरा नहीं है।

तात्पर्य यह है कि दिगम्बर आचार्योंने त्रसघात, बहुघात और प्रमादके विषयभूत अर्थोंका त्याग कराया है उसमें इन सबका समावेश हो ही जाता है। अतएव इस खरकर्म व्रतके पृथक् उपदेशकी आवश्यकता नहीं है।

आगे शिक्षाव्रतके लक्षणपूर्वक उसके पालनेका उपदेश देते हैं-

शिक्षाव्रतानि देशावशिकाशिकादीनि संश्रयेत् ।
श्रुतिचक्षुस्तानि शिक्षाप्रधानानि व्रतानि हि ॥२४॥

अन्वयार्थ-(श्रावकः) नैष्ठिक श्रावक (श्रुतिचक्षुः) श्रुतज्ञानरूपी नेत्रवाला होकरके (देशावकाशिकादीनि) देशावकाशिक है आदिमें जिसके ऐसे अर्थात् देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग इन चार (शिक्षाव्रतानि) शिक्षाव्रतोंको (संश्रयेत्) ग्रहण करे (हि) क्योंकि (तानि व्रतानि) वे देशावकाशिक आदि व्रत (शिक्षाप्रधानानि) शिक्षाप्रधान होते हैं ॥२४॥

भावार्थ-व्रतीश्रावक श्रुतज्ञानरूपी नेत्रका धारक होकर, जिनसे मुनिव्रतकी शिक्षा मिलती हैं ऐसे शिक्षाप्रधानभूत देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग इन चार शिक्षाव्रतोंको धारण करे।

देशावकाशिकव्रतका निरुक्तिलक्षण-

दिग्व्रतपरिमितदेशविभागेऽवस्थानमस्ति मितसमयम् ।
यत्र निराहुर्देशावकाशिकं तद्व्रतं तज्ज्ञाः ॥२५॥

अन्वयार्थ-(यत्र) जिसमें (मितसमयं) परिमित समयतक (दिग्व्रतपरिमितदेशविभागे) दिग्व्रतमें किये हुये परिमित देशविभागमें (अवस्थानम्) अवस्थान (अस्ति) है (तद्व्रतं) उसी व्रतको (तज्ज्ञाः) व्रतको जाननेवाले आचार्य (देशावकाशिकं) देशावकाशिक शिक्षाव्रत (निराहुः) कहते हैं ॥२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिसमें दिग्व्रतमें परिमित किये हुअे क्षेत्रमें कालकी मर्यादासे अवस्थान किया जाता है अर्थात् ग्रामादिकी मर्यादा की जाती है अुसको आचार्य देशावकाशिकव्रत कहते हैं।

देशावकाशका लक्षण बताते हैं–

स्थास्यामीदमिदं यावदियत्कालमिहास्पदे।
इति संकल्प्य सन्तुष्टस्तिष्ठन्देशावकाशिकी ॥२६॥

अन्वयार्थ–(इदमिदं यावत्) घर, पर्वत, ग्रामादि की मर्यादा करके (सन्तुष्टः) सन्तुष्ट होता हुआ अर्थात् सीमाकी बाहर तृष्णारहित होता हुआ (इयत्कालम्) इतने कालतक (इहास्पदे) इस स्थानमें (स्थास्यामि) ठहरूँगा (इति) इस प्रकार (संकल्प्य) नियमको करके (तिष्ठन्) रहनेवाला (देशावकाशिकी) देशावकाशिक श्रावक याने देशव्रत पालन करनेवाला श्रावक होता है ।२६॥

भावार्थ–दिग्व्रतमें की हुई मर्यादामें तृष्णाको घटानेके लिये ग्राम, घर, पर्वत आदि की मर्यादा करके सीमाके बाहर जानेकी तृष्णाको घटाकर मैं घंटे, घटिका, प्रहर आदि तक यहीं रहूँगा अथवा इतनी जगह जाऊँगा, इसके बाहर नहीं जाऊँगा ऐसी प्रतिज्ञा करनेको देशावकाशिकीव्रत कहते हैं। उसको पालन करनेवालेको देशावकाशिकी श्रावक कहते हैं। जिस प्रकार दिग्व्रतमें मर्यादाके बाहर लोभका त्याग होनेसे हिंसादि पापोंकी निवृत्ति होती है अुसी प्रकार देशावकाशिकव्रतमें भी परिमित कालतक नियमित देशके बाहर लोभका त्याग होनेसे हिंसादि पापोंकी निवृत्ति होती है। यही इसका प्रत्यक्ष फल है। और परभवमें आज्ञा, ऐश्वर्य आदिक सुखसंपत्तिके कारण है। इसलिये यह व्रत अवश्य पालन करने योग्य है। यह सुतराम् सिद्ध हो जाता है। तथा मर्यादाके बाहर सर्वदेशरूपसे पापके त्याग करनेके अभ्यासकी शिक्षा मिलती है और यह व्रत परिमित कालतक होता है। दिग्व्रतके समान इस व्रतमें यावत्जीवके लिये नियम नहीं होता, तथा इसे शिक्षाव्रत कहना युक्तिसंबंध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थसूत्रमें उमास्वामी आचार्यने देशावकाशिकव्रतको गुणव्रत मानकरके इसके स्थानमें भोगोपभोगपरिमाणव्रत को शिक्षाव्रत माना है। इसका अभिप्राय यह है कि दिग्व्रतिकोंमें की हुई मर्यादाका संक्षेप करनेका नाम देशावकाशिकव्रत है। और उस दिग्व्रतका देशावकाशिकव्रतसे संक्षेप करना उपलक्षण होनेसे इसी प्रकारसे सभी बातोंमें संक्षेप करनेका द्योतक है। क्योंकि प्रत्येक व्रतका भी संक्षेपीकरण इसी प्रकारसे होना अवश्य है। परंतु प्रत्येक व्रतके संक्षेपीकरणको स्वतन्त्र व्रत मान लेनेपर उत्तरगुण बारह होते हैं यह नियम नहीं रह सकता। इसलिये देशावकाशिकव्रतको ही संक्षेपीकरण करनेसे किसी आचार्यने गुणव्रतमें और किसी आचार्यने शिक्षाव्रतमें गर्भित किया है।

देशाव्रतके अतिचारके त्यागके लिये कहते हैं—

पुद्गलक्षेपणं शब्दश्रावणं स्वाङ्गदर्शनम्।
प्रैषं सीमबहिर्देशे ततश्चानयनं त्यजेत् ॥२७॥

अन्वयार्थ—देशावकाशिकी अपने व्रतको निर्मल करनेके लिये (सीमबहिर्देशे) मर्यादा की हुई सीमाके बाहर (पुद्गलक्षेपणं) पुद्गलको फेंकना (शब्दश्रावणं) खादकार आदिके द्वारा शब्दको सुनाना (स्वाङ्गदर्शनम्) अपने शरीरको दिखाना (प्रैषं) दूसरोंको भेजना (च) और (ततः) सीमाके बाहरसे (आनयनं) किसीको बुलाना (त्यजेत्) छोड देवे ॥२७॥

भावार्थ—देशावकाशिकव्रतके पुद्गलक्षेपण, शब्दश्रावणं, स्वाङ्गदर्शनम्, प्रेषप्रयोग और प्रेषानयन पांच अतिचार हैं।

पुद्गलक्षेपण—ग्रहण की हुई सीमाके बाहर स्वयं न जाकर कार्यके लोभसे व्यापारके पुरुषोंको प्रेरित करनेके लिये पत्थर आदि फेंककर संकेत करना पुद्गलक्षेपण नामका अतीचार है।

शब्दश्रावणं—सीमाके बाहरके मनुष्यको अपने पास बुलानेके लिये उनके कानमें सुनाई पडे ऐसे खंकारना, चुटकी बजाना शब्दश्रावण नामका अतीचार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाङ्गदर्शनम्–शब्द उच्चारणके विना सीमाके बहारके मनुष्यको अपने पास बुलानेकी लिये अपने शरीरका अवयव दिखाना स्वाङ्गदर्शनम् नामका अतीचार है। यह तीनों अतीचार मायाचार होनेसे होते हैं।

प्रेष्यप्रयोग–मर्यादा किये हुअे देशमें बैठ करके मर्यादाके बाहर तुम यह वस्तु लावो; ऐसा करो ऐसा कहकर मर्यादाके बाहर किसीको भेजना यह प्रेष्यप्रयोग नामका अतीचार है।

प्रेष्यानयन–स्वयं मर्यादाके भीतर रहकर "तुम यह लावो, तुम यह करो" ऐसा कहकर मर्यादाक बाहरसे किसी वस्तुको मंगवाना यह प्रेष्यानयन नामका अतीचार है।

क्योंकि गमनागमनादि व्यापारजनित प्राणियोंका घात मत हो इस अभिप्रायसे देशावकाशिकव्रत ग्रहण किया जाता है। परंतु स्वयं करना व करानेमें कुछ भी अंतर नहीं रहता प्रत्युत स्वयं गमन करनेमें ईर्यापथशुद्धि होनेसे गुण होता है और दूसरेसे करानेसे करनेवाला मूर्ख होनेसे ईर्यासमितीका अभाव होता है, इसलिये दोष है। इसलिये प्रेष्यप्रयोग और प्रेष्यानयन दोनो अतीचारोंका त्याग करना चाहिये।

इस श्लोकमें आये हुअे 'च' पदसे यह सूचित किया है कि मर्यादाके बाहर अपना सेवक इच्छित हो, तो अुसे किसी कार्य करनेकी आज्ञा देना भी अतिचार है। यह अतीचार अज्ञानसे तथा उतावलीपनासे होता है।

व्रतोंकी सापेक्षा होनेसे एक अंशका भंग करना अतीचार है। उक्तं च–

सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभञ्जनम्।

जिसके स्वरूपका निरूपण नहीं किया है अुसका अनुष्ठान नहीं होता इसलिये सामायिकव्रतका निरूपण करते हैं।

एकान्ते केशबन्धादिमोक्षं यावन्मुतेरिव।
स्वं ध्यातुः सर्वहिंसाविरत्यागः सामायिकव्रतम् ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(केशबन्धादिमोक्षं) केशबंध आदिके छोडने (यावत्) पर्यंत (एकान्ते) एकांतमें (मुनेः) मुनिके (इव) समान (स्व) अपने आत्मका (ध्यातुः) ध्यान करनेवाले श्रावकके (सर्वं हिंसादित्यागः) सर्व हिंसादिका त्याग करना (सामायिकव्रतम्) सामायिक व्रत है ॥२८॥

भावार्थ- रागद्वेषकी निवृत्ति 'सम' है। प्रशमादिकरूप ज्ञान का लाभ 'अय' है, दोनोंके मिलनेसे समाय होता है। और समाय प्रयोजन जिसका उसे सामायिक कहते हैं। अथवा रागद्वेषमें माध्यस्त भाव रखना सामायिक है। वा समय माने आप्त और आप्तके द्वारा कहे हुअे कार्यमें नियुक्त होना सामायिक है। अर्थात् व्यवहारनयसे जिनेंद्रभगवानकी अभिषेक, पूजा, स्तुति, जप, तपको सामायिक कहते हैं। निश्चयनयसे अपनी आत्माका ध्यान करना सामायिक हैं। अतएव सामायिकरूप जो व्रत अुसका नाम सामायिकव्रत कहते हैं। सामायिकव्रतमें प्रमत्तयोगसे होनेवाले प्राणव्यपरोपण आदि पांच पापोंका त्याग सर्वथा होता है। देशावकाशिकमें मर्यादाके बाहर सब पापकी निवृत्ति होती है, यही इन नोमें अंतर है। केशबंधन, मुष्ठिबंधन, वस्त्रबंधन आदि नियमित कालतक प्रतिज्ञा करके समसुखकी प्राप्ती करनेके लिये एकांतमें मुनिके समान अपने आत्माका ध्यान करनेवालें पुरुषके संपूण पांच पापोंका त्याग किया जाता है अुसको सामायिकव्रत कहते हैं। अर्थात् ग्रंथमें इस बंधनादिकके मोक्षपर्यंत सामायिक करनेका विधान किया है, इसका अभिप्राय यह है कि सामायिक करते समय ऐसी प्रतिज्ञा लेनी पडती है कि जबतक मैं केशोंकी गांठ नहीं छोड़ूंगा, बंधी मुठ्ठी नहीं छोडूंगा, वस्त्रकी गांठ नहीं छोड़ूंगा तबतक मेरे सर्व सावद्यका त्याग है। समता भावका धारण करता हूं। सामायिकके भावनाको बताते हैं-

परं तदेव मुक्त्यङ्गमिति नित्यमतन्द्रितः।
नक्तं दिनान्तेऽवश्यं तद्भावयेच्छक्तितोऽन्यदा ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (तदेव) सामायिक व्रत ही (परं) उत्कृष्ट (मुक्त्यङ्गम्) मुक्तिका कारण है (इति) इसलिए (अतन्द्रितः) आलसरहित होकर (नित्यं) हमेशा (नक्तं दिनान्ते) रात्री और दिनके अंत समयमें अर्थात् दोनों संध्याकालमें (अवश्यं) अवश्य (तद्) सामायिक व्रतका (भावयेत्) अभ्यास करे (शक्तितः) शक्तिकी अपेक्षा (अन्यदा) मध्यान्हकालमें भी अभ्यास करे ॥२९॥

भावार्थ- सामायिक व्रत ही उत्कृष्टमुक्तिका कारण है इसलिये मुक्तिकी इच्छा करनेवाले व्रतिकश्रावकको आलस का त्याग करके हमेशा प्रातःकाल और संध्याकाल सामायिक करना चाहिये और यथाशक्ति मध्यान्हकालमें भी सामायिक करना चाहिये। यहांपर अवश्य शब्दसे व्याधि आदिसे परतंत्र होनेपर भी सामायिक करना चाहिये। क्योंकि मुक्तिका साक्षात् कारण चारित्र है। चारित्रकी परम् प्रकाशताका कारण सामायिक है। इसलिये सामायिक मुक्तिका हेतु सिद्ध है। व्रतिकके लिया प्रातःकाल, संध्याकाल सामायिक करना अवश्य है। और मध्यान्ह आदि कालमें अपने शक्तिको न छिपाकर सामायिक करना दोषवर्धक नहीं है। क्योंकि जितने अंशमें समता भावको वृद्धि होती है उतने अंशमें चारित्रकी वृद्धि होती है।

सामायिकस्थ पुरुषके द्वारा परीषहउपसर्ग आ जानेपर भी उनको जीतनेके लिये क्या विचारना चाहिये सो कहते हैं-

मोक्ष आत्मा सुखं नित्यः शुभः शरणमन्यथा।
भवोऽस्मिन्वसतो मेऽन्यत्किं स्यादित्यापदि स्मरेत्।३०।

अन्वयार्थ- सामायिक करनेवाला पुरुष (मोक्षः) मोक्ष (आत्मा) आत्मा है (सुखं) सुख है (नित्यः) नित्य है (शुभः) शुभ है (शरणम्) मोक्ष हीं शरण है। (भवः) सन्सार (अन्यथा) विपरीत है (अस्मिन्) इस संसारमें (वसतः) रहनेवाले (मे) मेरे (अन्यत्) परिषह उपसर्गको छोड करके और (किं स्यात्) क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चात्रापि मलानुज्झेदनुपस्थापनं स्मृतेः ।
कायवाङ्मनसां दुष्टप्रणिधानान्यनादरम् ॥३३॥

अन्वयार्थ–सामायिकव्रतीश्रावक (अत्रापि) सामायिकव्रतमें भी (स्मृतेः) स्मृतिका (अनुपस्थापनमं) विस्मरण हो जाना (कायवाङ्मनसा) काय, वचन और मनका (दुष्टप्रणिधानानि) पापप्रवृत्ति होना और (अनादरम्) अनादर करना इन (पञ्च) पांच (मलान्) अतिचारोंको (उज्झेत्) छोडे ॥३३॥

भावार्थ–स्मृत्यनुपस्थापन, कायदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान, मनदुष्प्रणिधान और अनादर ये पांच सामायिकव्रतके अतीचार हैं।

स्मृत्यनुपस्थापन–मनकी एकाग्रता नहीं होना स्मृत्यनुपस्थापन है। अथवा मुझे सामायिक करना चाहिये कि नहीं अथवा मैंने सामायिक किया कि नहीं किया, इस प्रकार प्रबलप्रमादके वशसे सामायिकक्रियाको भूल जाना यह स्मृत्यनुपस्थापन नामका सामायिकव्रतका अतीचार है। क्योंकि व्रतानुष्ठानका स्मरण मोक्षमार्गके अनुष्ठानका प्रधान कारण है। इसलिये व्रतानुष्ठानकी विस्मृति होना आत्माके व्रतकी अंतर्वृत्तीसे च्युत होना है। अतः सामायिक क्रिया भूलना स्मृत्यनुपस्थान नामका अतिचार कहा है।

कायदुष्प्रणिधान–सामायिक करते समय शरीरसे सावद्यमें प्रवृत्त होना वा हाथ, पैर आदि अवयवको स्थिर नहीं रखना कायदुष्प्रणिधान नामका अतीचार है।

वचनदुष्प्रणिधान–सामायिक पाठ वा सामायिक मंत्र उच्चारण करते समय वर्णोंके संस्कारसें उत्पन्न होनेवाले अर्थका ज्ञान नहीं होना वा पाठके अक्षर उच्चारणमें वचनकी चंचलता होना वचनपुष्प्रणिधान नामका अतीचार है।

मनदुष्प्रणिधान– सामायिक करते समय क्रोध, लोभ, द्रोह, अभिमान और ईर्षा आदिसे उत्पन्न होनेवाले मनोवि–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारका उत्पन्न होना तथा कार्यको बहुलता अंतःकरणमें संभ्रम उत्पन्न होना मनोदुष्प्रणिधान नाम का अतीचार है ।

शंका—मनोदुष्प्रणिधान और स्मृत्यनुपस्थानमें क्या अंतर है ?

उत्तर—सामायिकमें क्रोधादिकके आवेशसे मनका चिरकाल-तक स्थिर नहीं होना स्मृत्यनुपस्थान नाम का अतीचार है और कार्यबाहुल्यमें चिंताकेकारण चित्तमें एकाग्रता न होना मनोदुष्प्र-णिधान नाम का अतीचार है ।

अनादर- सामायिकमें उत्साह नहीं होना । निश्चित कालमें सामयिक नहीं करना तथा कथंचित् करना । करनेके बाद ही शीघ्र भोजनादि कार्यमें लग जाना अनादर नाम का अतीचार है । "अविधिपूर्वक की हुई सामायिकके अपेक्षासे सामायिक न करना अच्छा है" इस असूयावाचक शब्दोंको प्रमाणभूत मानकर भंगकी संभावनासे सामायिकका नहीं करना अच्छा नहीं है। क्योंकि पूर्व संस्कारके बिना प्रथमअवस्थामें मुनियोंके भी सामायिक की एकदेशविराधना होती है,परंन्तु इतने मात्रसे उसका भंग होनेपर भी उनके सामायिकव्रतका भंग नहीं हो सकता । क्योंकि मनसे सावद्य नहीं करूँगा,इस प्रकार सब प्रकारके पापोंकात्याग भी किया है। उपर्युक्त अतीचारोंके कारण सामायिकके एकदेशका भंग होता है सर्वथा सामायिकव्रतका अभाव नहीं होता तथा अभ्यास दशामें जब सामायिक अतीचार रहित होगा तभी वह श्रावक तृतीय प्रतिमाका धारक होगा । इसलिये सामायिकव्रतका पूर्णरूपसे पालन कर-नेकी इच्छा करनेवाला श्रावक इन सामायिक के पांच अतीचारोंका त्याग करना चाहिये ।

प्रोषधोपवासव्रतका लक्षण कहते हैं–

स प्रोषधोपवासो यच्चतुष्पर्व्यां यथागमम् ।
साम्यसंस्कारदार्ढ्याय चतुर्भुक्त्युज्झनं सदा ॥३४॥

अन्वयार्थ- (सदा) हमेशा (साम्य संस्कारदार्ढ्याय) साम्य-भावके संस्कारको दृढ करनेके लिये यथागमम्) आगमानुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(यत्) जो (चतुष्पर्व्यां) चारों पर्वमें (चतुर्भुक्त्युज्झनं) चारों प्रकारकी आहारका त्याग करना)स) वह (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास है ॥३४॥

भावार्थ- आहार, स्वाद्य, खाद्य,और पेय द्रव्योंके भेदसे भोजन चार प्रकारका है । एक बार भोजन करनेको एकभुक्ती कहते हैं । धारणाके दिन एकभुक्ती उपवासके दिन दो भुक्तीका और पारणाके दिन एकभुक्तोका त्याग किया जाता है इसलिये चतुर्भुक्तिका त्याग कहलाता है । प्रोषध अथवा पर्वमें उपवास करना अर्थात् प्रोषधोपवास कहलाता है । व्रतीश्रावकके द्वारा अपने सम्यभावसे संस्कारको दृढ करनेके लिये वा परीषहादिक आदिके अज्ञान अविचल रहनेके लिए एक महीनेमें दो अष्टमी, दो चतुर्दशीके दिन आगमानुसार चारों भुक्तीका त्याग करना प्रोषधोपवास कहलाता है ।

इस प्रकार उत्तमपुरुष प्रोषधका विधान करके और मध्यम जघन्यके भेद का उद्देश कहते हैं-

उपवास ाक्षमैः कार्योऽनुपवासस्तदक्षमैः ।
आचाम्लनिर्विकृत्यादि शक्त्या हि श्रेयसे तपः ॥३५॥

अन्वयार्थ- (उपवासाक्षमैः) जिनकी उपवास करनेकी शक्ति नहीं हैं अुनको अनुपवास जलको छोडकर चार प्रकारके आहारका त्याग (कार्यः) करना चाहिये । (तदक्षमैः) जो अनुप-वास करनेके लिये समर्थ नहीं हैं उनको (आचाम्लनिर्विकृत्यादि) आचाम्लनिर्विकृत्यादि करना चाहिये (हि) क्योंकि (शक्त्याः) शक्तीके द्वारा किया हुआ (तपः) तप (श्रेयसे) कल्याणके लिये होता है ॥३५॥

भावार्थ- प्रोषधोपवास उत्तम, मध्यम, जघन्यके भेदसे तीन प्रकारका होता है । अष्टमी चतुर्दशीके दिन चारों प्रकारके आहा-रका चतुर्भुक्तित्याग करना उत्कृष्ट प्रोषधोपवास है । जिनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट करनेकी शक्ति नहीं है वह श्रावक पानीको छोडकरके चार प्रकारके आहारका त्यागकर अनुपवास करे। और जिनकी अनुपवास करनेकी शक्ति नहीं है वे आचाम्लनिर्विकृति आदि करे।

आचाम्ल– कांजीसहित केवल भातके भोजनको आचाम्ल–आहार कहते हैं।

निर्विकृतीआहार– विकृति शब्दका अर्थ गोरस, इक्षुरस, फलरस और धान्यरस है क्योंकि जिसके खानेसे जिव्हा और मनमें विकार पैदा हो अुसे विकृति कहते हैं। इसलिये उपर्युक्त चारों प्रकारके रस विकृति कहलाते हैं।

गोरस– घृत, दुग्ध, दही आदि
इक्षुरस– शक्कर, गुड आदि
फलरस– द्राक्ष, आम्र, केला, अनार आदि का रस
धान्यरस– तेल, मांड आदि

अथवा जिसको मिलाकर भोजन करनेसे भोजनमें स्वादिष्ट–पना उत्पन्न होता है अुसको विकृति कहते हैं। और विकृतिरहित भोजनको निर्विकृतिआहार कहते हैं। आचाम्लनिर्विकृति आदि शब्दसे एक स्थानपर बैठकर ही भोजनपान करनेका अथवा रस छोडकर ग्रहण किया गया है। इस प्रकार अपनी शक्ति अनुसार उत्तम, मध्यम, जघन्य भेदसे कहे गये प्रोषधोपवास करना चाहिये। क्योंकि शक्ति अनुसार किया हुआ तप ही कल्याणकारी है।

यथागम इस प्रकारके अर्थको चार श्लोकोंके द्वारा प्रकट करते हैं–

पर्वपूर्वदिनस्यार्धे भुक्त्वाऽतिथ्यशितोत्तरम्।
लात्वोपवासं यतिवद्विविक्तवसतिं श्रितः ॥३६॥
धर्मध्यानपरो नीत्वा दिनं कृत्वाऽऽपराह्निकम्।
नयेत्त्रियामां स्वाध्यायरतः प्रासुकसंस्तरे ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (अतिथिअशितोत्तरम्) अतिथिके आहार करनेंके बाद (पर्वपूर्वदिनस्य) पर्वके पूर्वदिनके (अर्धे) अर्धे दिनमें (भुक्त्वा) भोजन करके (अुपवासं) अुपवासको (लत्वा) स्वीकार करके (यतिवत्) मुनीके समान (विविक्तवसतिं) निर्जन स्थानको अर्थात् प्रासुक अयोग्यजनित वसतिकाको (श्रितः) आश्रय लेकर (दिनं) दिनको (धर्मध्यानपराः) धर्मध्यानमें लीन होकर (नीत्वा) बिताकर तदनन्तर (अपराण्हिकम्) संध्याकालके सामायिकको (कृत्वा) करके (स्वाध्यायरतः) स्वाध्यायमें लीन होकर [प्रासुक-संस्तरे प्रासुकसंस्तरपर (त्रियामां) रात्रीको (नयेत्) बिताये ।

भावार्थ– प्रोषधोवासीश्रावक साधुके आहार होनेके बादमें मध्यान्हकालमें भोजन करे अर्थात् सप्तमी, त्रयोदशीके पूर्व दो प्रहर बीत जानेके बादमें वा कुछ हीनाधिक कालमें भोजन करे । तदनन्तर शीघ्र ही विधिवत् अुपवास ग्रहण करे और बादमें गुरुके पास जाकर फिर उच्चारण करे । प्रोषधोपवासमें श्रावक भी सर्व सावद्यव्यापार, शरीरसंस्कार तथा अब्रह्मका त्याग करता है । अुसके बाद प्रासुक अयोग्यजनरहित निर्जन वसतिकाका आश्रय लेकर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय एकाग्रचिंता, निरोधलक्षण धर्मध्यानमें लीन होता हुआ स्वाध्याय, अनुप्रेक्षाका चिंतवन,आदि करता हुवा दिनको बितावे । संध्याकालके समय संध्याकालीन सामायिक करके प्रासुक याने निर्जन्तुभूमिपर अथवा तृणादिके आसनपर बैठकर स्वाध्यायमें लीन होता हुआ रात्रीको बितावे । इससे यह सूचित होता है कि निद्रा, आलस्यको छोडे ।

तथा–

ततः प्राभातिकं कुर्यात्तद्वद्यामान् दशोत्तरान् ।
नीत्वाऽतिथिं भोजयित्वा भुञ्जीतालौल्यतः सकृत् ॥३८॥

अन्वयार्थ–(ततः) इसके बाद (प्राभातिकं) प्रभात में होने वाली सामायिक आदि क्रियाओंको (कुर्यात्) करे (तद्वत्) अुपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कही हुई षड्प्रहरके समान (दशोत्तरान्) बाकी बची दस (यामान्) प्रहरोंको (नीत्वा) बिताकर (अतिथिं भोजयित्वा) अतिथिको भोजन कराकर (सकृत्) एक बार (अलौल्यतः) भोजनमें आसक्त न होता हुआ (भुञ्जेत्) भोजन करे ॥३८॥

भावार्थ–असके बाद प्रभातकालका सामायिक करे। जिस प्रकार त्रयोदशीके वा सप्तमीके दिनकी दो प्रहर और रात्रिकी चार प्रहर इन षट्प्रहरकी प्रक्रियाका वर्णन किया असी प्रकार अष्टमी वा चतुर्दशीके दिनकी और रात्रिकी आठ प्रहर और नवमी अथवा पौर्णिमाकी प्रथम दो प्रहर इन दस प्रहरको षट्कर्मादिके द्वारा बितावे। तदनंतर अतिथिको भोजन कराकर भोजनमें अतिलौल्यताका त्याग करके एकबार भोजन करे।

तथा–

पूजयोपवसन् पूज्यान् भावमय्यैव पूजयेत्।
प्रासुकद्रव्यमय्या वा रागाङ्गं दूरमुत्सृजेत् ॥३९॥

अन्वयार्थ–(उपवसन्) प्रोषधोपवासी (भावमय्या) भावमय (पूजया) पूजासे (वा) अथवा (प्रासुकद्रव्यमय्या) प्रासुक द्रव्यमय पूजासे (एव) ही (पूज्यान्) पंच परमेष्ठीकी (पूजयेत्) पूजा करे और (रागाङ्गं) रागके कारणको (दूरम्) दूरसे (उत्सृजेत्) छोड देवें ॥३९॥

भावार्थ–प्रोषधोपवासी श्रावक पंचपरमेष्ठी शास्त्र और गुरुकी उनमें अनुरागगत गुणस्मरण लक्षण भावपूजाके द्वारा वा अक्षत मौक्तिक माला आदि प्रासुक द्रव्यके द्वारा आराधना करे। और इंद्रिय और मनको उत्तेजन करनेवाले गीत नृत्यादिकको दूरसे परित्याग करे ॥३९॥

इस व्रतके अतिचारोंको दूर करनेको कहते हैं:–

ग्रहणास्तरणोत्सर्गाननवेक्षाप्रमार्जनान्।
अनादरमनैकाग्र्यमपि जह्यादिह व्रते ॥४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थः-(इह व्रते) इस प्रोषधोपवास व्रतमें (अनवेक्षा॰ प्रमार्जनान्) बिना देखे हुये उपकरणोंको (ग्रहणास्तरणोत्सर्गान्) ग्रहण करना, बिछानोंको बिछाना, मलमूत्र त्याग करना (अनादरम्) अनादर करना (अपि) और (अनैकाग्र्यम्) चंचलताको (जह्यात्) छोड देवे ॥४०॥

भावार्थ-अनवेक्षाप्रमार्जनग्रहण, अनवेक्षाप्रमार्जनस्तरण, अनवेक्षाप्रमार्जनोत्सर्ग, अनादर और अनैकाग्र्य यह प्रोषधोपवासके पांच अतिचार है।

अनवेक्षाप्रमार्जनग्रहण-यहांपर प्राणी है कि नहीं इस प्रकार चक्षुके द्वारा अवलोकन करनेको अवेक्षा कहते हैं और मृदुवस्त्रादि उपकरणसे स्थानादिके सोधनेको प्रमार्जन कहते हैं। तथा इस प्रकारसे बिना देखे, बिना शोधे अरहंतभगवानकी पूजाके उपकरण शास्त्र आदिको ग्रहण करना अनवेक्षाप्रमार्जनग्रहण नामका अतिचार है। ग्रहण उपलक्षण मात्र है इसलिये बिना देखे, बिना शोधे हुअे वस्तुको रखना भी अतिचार है।

अनवेक्षाप्रमार्जनस्तरण-बिना देखे, बिना शोधे हुअे बिछाना आदिको रखना, उठाना भी अतिचार है।

अनवेक्षाप्रमार्जनोत्सर्ग-बिना देखे, बिना शोधे जगहपर मलमूत्रादि क्षेपण करना। वहांपर नहीं देखना, नहीं शोधना अविधि है और यद्वा तद्वा देखना अतीचार है। यह भाव अनवेक्ष और अप्रमार्जन शब्दोंमें कुत्स्य अर्थमें नञ् समासके करनेसे निकलता है। जैसे कि अब्राह्मण पदमें किये गये नञ् समासका अर्थ ब्राह्मणका अभाव नहीं किंतु कुत्सित ब्राह्मण है। वैसेही अनवेक्ष और अप्रमार्जन शब्दमें भी कुत्सितरीतिसे देखना और शोधना अतीचार है। बिल्कुल नहीं देखना और बिल्कुल नहीं शोधना अतीचार नहीं किन्तु अनाचार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनादर- क्षुधादिककी वेदनासे प्रोषधोपवास व्रतमें अथवा अन्य आवश्यक कर्ममें उत्साहका न होना अनादर नाम का अतीचार है ।

अनैकाग्र्य- क्षुधादि वेदनाके कारण प्रोषधोपवास व्रतमें व अन्य आवश्यक कर्ममें चित्तका एकाग्रता न रहना याने चंचलता निर्माण होना अनैकाग्र्य नाम का अतीचार है ।

अब- आग अतिथिसंविभागव्रतका स्वरूप बताते हैं-

व्रतमतिथिसंविभागः पात्रविशेषाय विधिविशेषेण ।
द्रव्यविशेषवितरणं दातृविशेषस्य फलविशेषाय ॥४१॥

अन्वयार्थ- ('यत्') जो (दातृविशेषस्य) विशेषदाताका (फलविशेषाय) विशेष फलके लिये (विधिविशेषेण) विशेष विधिके द्वारा (पात्रविशेषाय) विशेषपात्रके लिये (द्रव्यविशेषवितरणं) विशेषद्रव्यका दान करना है वह (अतिथिसंविभाग) अतिथिसंविभाग (व्रतं) व्रत (भवति) कहलाता है ।

भावार्थ- अतिथिसंविभागव्रतके श्रावकके लिये प्रतिपादन करनेका यहां यह प्रयोजन है कि उसको अपने भोजनके पहले अतिथिकी प्रतीक्षा करनी ही चाहिये, इससे उसको अतिथिके न मिलनेपर दानके फलमें बाधा नहीं आती किन्तु वह दानके फलका अधिकारी भावनाके बलसे हो जाता है । संविभागमें, 'सं' इस शब्दसे निर्दोष और निर्बाध तथा 'वि' भाग, इस शब्दसे अपने लिये बनाये हुअे भोजनके अंशका अतिथिके लिये हिस्सा रखना, वह अतिथिसंविभाग कहलाता है । सुयोग्य अतिथिके लिये,सुयोग्य-दाता द्वारा योग्यद्रव्यके देनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है, इसका खुलासा ग्रंथकारने आगेके पद्योंसे स्वयं किया है ।

अब- निरुक्तिपूर्वक अतिथिका स्वरूप बताते हैं-

ज्ञानादिसिध्द्यर्थतनुस्थित्यर्थान्नाय यः स्वयम् ।
यत्नेनातति गेहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथिः ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (ज्ञानादिसिद्ध्यर्थतनुस्थित्यर्थान्नाय) ज्ञानादिक के साधनभूत शरीरकी स्थित्यर्थं अन्नके लिये (स्वयं) स्वतः किसी दातारके प्रेरणाके विना (यत्नेन) संयमकी विराधना नहीं करता हुवा समितीपूर्वक (गेहं) दाता के घरमें (अतति) जाता है (सः) वह (अतिथिः) अतिथि कहलाता है। (वा) अथवा (यस्य) जिसके (तिथिः) पर्वोत्सवादि तिथि (न) नहीं है वह अतिथि हैं।

भावार्थ- शरीर, ज्ञान, तपः, संयमादिकी सिद्धिका साधन हैं और शरीर की स्थितिका कारण अन्न हैं। अन्नसिवाय शरीर स्थिर रहता नहीं। इसलिये साधु दाताकी प्रेरणा वा निमंत्रणके विना हीं अपने संयमकी रक्षा करता हुवा ईर्यासमितिपूर्वक दाताके घर भोजन के लिये जाता है। इसलिये इसको अतिथि कहते हैं अथवा जिसके पर्वोत्सवादि कोई भी तिथि नहीं हैं, उसको अतिथि कहते हैं। उक्तं च-

"तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः॥"

अर्थात् गृहस्थाश्रममें माने जानेवाली तिथियां, अष्टमी आदि पर्व, दिवाली आदि उत्सव दिनोंका जिस महात्माने त्याग किया है अर्थात् सब तिथियां जिसके सरीखी हैं उसे अतिथि कहते हैं। और शेष व्यक्तियोंको अभ्यागत कहते हैं।

अब- पात्रके स्वरूप और भेदोंको बताते हैं-

यत्तारयति जन्माब्धेः स्वाश्रितान्यानपात्रवत्।
मुक्त्यर्थगुणसंयोगभेदात्पात्रं त्रिधा मतम्॥४३॥

अन्वयार्थ- (यत्) जो (यानपात्रवत्) नौका के समान (स्वाश्रितान्) अपने आश्रितोंको (जन्माब्धेः) संसार समुद्रसे (तारयति) पार करता है वह पात्र है (मुक्त्यर्थगुणसंयोगभेदात्) मुक्तिके कारणभूत सम्यग्दर्शनादि गुणोंके संयोगसे (पात्रं) वह पात्र (त्रिधा) तीन प्रकारका (मतं) माना गया है॥४३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– जैसे जहाज अपने आश्रितोंको समुद्रसे पार कर देता है वैसे ही जो दानके कर्ता, कारिता और अनुमोदना करनेंवालोंको संसार-समुद्रसे पार करनेमें आदर्श है उसे पात्र कहते हैं। वह पात्र मोक्षके लिए आवश्यक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी गुणोंके संयोगके भेदसे तीन प्रकारका माना गया है। अर्थात् उत्तम मध्यम और जघन्य पात्र इस प्रकारसे पात्रके तीन भेद माने हैं।

अब– आगे उक्तकथनका खुलासा करते हैं–

यतिः स्यादुत्तमं पात्रं मध्यमं श्रावकोऽधमम् ।
सुदृष्टिस्तद्विशिष्टत्वं विशिष्टगुणयोगतः ॥४४॥

अन्वयार्थ– (यतिः) मुनि (उत्तमं) उत्तम (पात्रं) पात्र (स्यात्) कहलाता हैं (श्रावकः) देशसंयमीश्रावक (मध्यमं) मध्यमपात्र (सुदृष्टि) सम्यग्दृष्टि (अधमम्) जघन्यपात्र कहलाते हैं। (विशिष्टगुणयोगतः) विशिष्ट गुणके संयोगसे (तद्विशिष्टत्वं) पात्रोमें विशेषता आतीं हैं ॥४४॥

भावार्थ– सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रसहित मुनि उत्तमपात्र कहलाते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और देशसंयमसहित श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसहित तथा व्रतरहित अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र कहलाते हैं। यह उत्तम मध्यम और जघन्य भेद गुण विशिष्ट के संयोगसे होते हैं। परन्तु यह तीनों ही पात्र हैं और दाताको संसारसमुद्रसे तारक है।

अब– दानकी विधिके प्रकार और विशेषताको बताते हैं–

प्रतिग्रहोच्चस्थानांघ्रिक्षालनार्चानतीर्विदुः ।
योगान्नशुद्धिश्च विधीन् नवादरविशेषितान् ॥४५॥

अन्वयार्थ– ('पूर्वाचार्याः') पूर्वाचार्य (आदरविशेषितान्) यथायोग्य विनयके द्वारा विशेषताको प्राप्त हुये (प्रतिग्रहोच्चस्थानांघ्रिक्षालनार्चानतीः) प्रतिग्रह, उच्चस्थान, अंघ्रिक्षालन, अर्चा, आनती (च) और (योगान्नशुद्धिः) मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा अन्नशुद्धि इन (नवविधीन्) दानके नौ प्रकारोंको (विदुः) जानते हैं ॥४५॥

भावार्थः-पात्रको आहार देते समय प्रतिग्रह, उच्चस्थान, अंघ्रिक्षालन, अर्चा, आनती, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि तथा अन्नशुद्धि ये नौ प्रकारकी विधि होती हैं।

प्रतिग्रहः-जब पात्र अपने द्वारपर आवे तब भक्तिपूर्वक प्रार्थना करे कि भो गुरो! मेरेपर प्रसन्न हो जाइए। नमोऽस्तु, नमोऽस्तु यहां 'ठहरिए ठहरिए' इस प्रकारसे आहारके लिए पात्रका स्वागत करके स्वीकार करना प्रतिग्रह कहलाता है।

उच्चस्थानः-जब पात्र अपने यहां भोजन ग्रहण करना स्वीकार करले, तब पात्रको अपने घरके भीतर ले जाकर निर्दोष, निर्बाध उच्च स्थानपर (पाटपर) बैठानेका नाम उच्चस्थान है।

अंघ्रिक्षालनः-उनके भक्तिपूर्वक पैर धोनेका नाम अंघ्रिक्षालन है।

अर्चाः-जल गंध आदिकसे पूजन करनेका नाम अर्चा है।

आनतिः-पञ्चांग नमस्कार करनेका नाम आनति है।

मनशुद्धिः-आर्तरौद्र ध्यानरहित अवस्थाको मनशुद्धि कहते हैं।

वचनशुद्धिः-परुष कर्कश आदि वचन नहीं बोलनेको वचनशुद्धि कहते है।

कायशुद्धिः-शरीरसे संवृत आचार करनेका नाम कायशुद्धि है।

अन्नशुद्धिः-यत्नपूर्वक शोधकर पिंडशुद्धि अनगारधर्मामृतमें कहे गये १४ पिंड सम्बन्धी दोषोंसे रहित आहारका नाम अन्नशुद्धि है। इस प्रकारसे इनमें जितनी आदर और भक्ति अधिक होगी वह सब विधिविशेष कहलाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब:- आगे देनेयोग्य द्रव्यकी विशेषताको बताते हैं-

पिण्डशुद्ध्युक्तमन्नादिद्रव्यं वैशिष्टचमस्य तु ।
रागाद्यकारकत्वेन रत्नत्रयचयाङ्गता ॥४६॥

अन्वयार्थ- (पिण्डशुद्धयुक्तं) ४६ मलदोषरहित (अन्नादि) आहारादि (द्रव्यं) द्रव्य देने योग्य है (तु) और (रागाद्यकारकत्वेन) रागादिके जनक न होना तथा (रत्नत्रयचयांगता) रत्नत्रय की वृद्धिका कारण होना (अस्य) यह द्रव्यकी (वैशिष्ठ च) विशेषता है ।

भावार्थ- पिण्डशुद्धि प्रकरणमें अनागारधर्मामृतकी पांचवी अध्यायमें निरूपित पिण्डशुद्धिउक्त आहार, औषध, आवास, पुस्तक, पिच्छिकादि साधुको देने योग्य द्रव्य कहलाते हैं । जिस द्रव्यके ग्रहण करनेसे रागद्वेष, असंयम, मद आदि आत्मविकार उत्पन्न न हों-तथा जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके वृद्धि कारण हो उसको द्रव्य विशेष कहते हैं ।

दाताके लक्षण और दाताकी विशेषता को कहते हैं-

नवकोटीविशुद्धस्य दाता दानस्य यः पतिः ।
भक्तिश्रद्धासत्त्वतुष्टिज्ञानालौल्यक्षमागुणः ॥४७॥

अन्वयार्थ- (भक्तिश्रद्धासत्त्वतुष्टिज्ञानालौल्य क्षमागुणः) भक्ति श्रद्धा, सत्व, तुष्टि, ज्ञान, अलोल्य और क्षमा ये गुण जिसमें हो (यः) जो (नवकोटिविशुद्धस्य) नवकोटि शुद्ध (दानस्य) दानका (पतिः) स्वामी हो वह (दाता) दान देनेवाला कहलाता है ।

भावार्थ- मनवचन कायको कृतकारित और अनुमोदनासे गुणा करनेपर नव विकल्प होते हैं । नवकोटिसे शुद्ध आहारको नवकोटिशुद्ध आहार कहते हैं । नवकोटिविशुद्ध शब्दका अर्थ और यह भी है कि-

देयशुद्धि और उसके लिये आवश्यक दाता तथा पात्रकी शुद्धि ये ३, दाता की शुद्धि और उसके लिये आवश्यक जो देय और पात्रकी शुद्धि ये तीन तथा पात्रशुद्धि और उसके लिये उपयोगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडनेवाली जो देय और दाताकी शुद्धि ये तीन, इस प्रकारसे भी नवकोटिविशुद्धदान कहलाता है। इस नवकोटिसे विशुद्धदानका जो पति है अर्थात् प्रयोग करनेवाला है उसे दाता कहते हैं। और वह दाता, भक्ति, श्रद्धा, सत्व, तुष्टि, ज्ञान, अलौल्य और क्षमा गुणवाला होना चाहिये।

१- पात्रगत गुणके अनुरागको भक्तिगुण कहते हैं।

२- पात्रको दिये गये दानके फलमें प्रतीति रखनेको श्रद्धा कहते हैं।

३- "सत्व" मनका वह गुण है कि दाता अल्प धनवाला होकर भी बडे बडे धनाढयोंको भी अपनी दानवृत्तिसे आश्चर्यमें डालता है।

४- देते समय अथवा दिये जानेपर जो हर्ष होता है उसे तुष्टि कहते हैं।

५- देनेयोग्य द्रव्यादिककी जानकारी रखनेको ज्ञान कहते हैं।

६-दुर्निवार क्रोधादिकके कारण होनेपर भी क्रोध न करनेको क्षमा कहते हैं।

७- सांसारिकफलकी इच्छाका न रखना अलौल्य कहलाता है।

तदुक्तं- भाक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं संविज्ञानमलौल्यकम्।
सात्विकं क्षमकं सन्तो दातारं सप्तधा विदुः॥

सज्जन भाक्तिक, तौष्टिक, श्राद्ध, संविज्ञानी, अलौल्यक, सात्विक, क्षमकके भेदसे दाताको सात प्रकारसे जानते हैं अर्थात् कहते हैं। तथा सत्वादि गुणवाले दाता जिन दानोंमें पाए जाते हैं, उन दानोंको सात्विक, राजस और तामस दान कहते हैं।

तदुक्तं यथा- सात्विकदान।

आतिथेयं हितं यत्र यत्र पात्रपरीक्षणम्।
गुणाः श्रद्धादयो यत्र तद्दानं सात्विकं विदुः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस-जिस दानमें अतिथिके हितका विचार किया जाता हैं, जहां पात्रके गुणोंकी यथार्थ परीक्षा होतीं है और जिसमें श्रद्धा आदि सात दाताके गुण पाए जाते हैं वह सात्विकदान है।

राजसदान।

यदात्मवर्णनप्रायं क्षणिकाहार्यविभ्रमम्
परप्रत्ययसम्भूतं दानं तद्राजसं मतम् ॥

दान देते समय जिसमें अपने वर्णनकी ही प्रमुखता रहती है, क्षणभरके लिए अर्थात् दान देते समय ही आहार देनेयोग्य क्षमा-सत्वादि गुणोंकी दिखावट रहती है और जिस दानकी वृत्ति परप्रत्ययसे अर्थात् परनिमित्तसे पाई जाती है वह दान राजसदान है।

तामसदान

पात्रापात्रसमावेक्षमसत्कारमसंस्तुतम्।
दासभृत्यकृतोद्योगं दानं तामसमूचिरे ॥

जिस दानमें पात्रको अपात्र समझा जाता है, सत्काररहित प्रशंसनीय नहीं है, जिसमें दास भृत्यके द्वारा उद्योग किया जाता है उस दानको तामसदान कहते हैं।

इस प्रकारसे भी दानके उत्तम, मध्यम और जघन्य भेद होते हैं।

उत्तमं सात्विकं दानं मध्यमं राजसं भवेत्।
दानानामेव सर्वेषां जघन्यं तामसं पुनः ॥

इन तीनों दानोमें सात्विकदान उत्तम, राजसदान मध्यम, तामसदान सबसे जघन्य है।

अब-आगे दानका फल और उसकी विशेषताको बताते हैं-

रत्नत्रयोच्छ्र्यो भोक्तुर्दातुः पुण्योच्चयः फलम्।
मुक्त्यन्तचित्राभ्युदयप्रदत्वं तद्विशिष्टता ॥४८॥

अन्वयार्थ-(भोक्तुः) आहारादि पदार्थोंको उपभोग करनेवाले मुनिके (रत्नत्रयोच्छ्र्यः) रत्नत्रयकी वृद्धि होना तथा (दातुः) दान देनेवाले श्रावकके (पुण्योच्चयः) पुण्यास्रवकी वृद्धि होना (फलं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानका फल है (मुक्त्यन्तचित्राभ्युदयप्रदत्वं) मुक्ति है अंतमें जिसके नानाप्रकारके चक्रवर्ती आदि अभ्युदय देना (तद्विशिष्टता) उस दानकी विशिष्टता है।

भावार्थ-दानका फल दाता और पात्र दोनोंको ही होता है, ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। इसी अपेक्षासे यहाँ वर्णन किया है। दान देनेसे दाताको दानके प्रसादसे विशिष्टपुण्यकी वृद्धि होना तथा दानग्रहण करनेवाले पात्रके सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयकी उन्नति होना यह दानका फल हैं। अर्थात् दानके निमित्तसे मोक्षमार्गस्थ साधुओंकी शरीरकी स्थिती रहती है और उसके कारणसे वे अपनी आत्मविशुद्धि करके रत्नत्रयका पूर्ण विकास करते हैं।

भोगभूमित्व, देवत्व, चक्रवर्तित्व, पारिव्राज्य आदि लोगोंको विस्मयमें डालनेवाले अभ्युदय और अन्तमें निर्वाणपदकी प्राप्ती, यह सब दानके फलकी विशषता है। दानका मुख्य फल अन्तमें मोक्षप्राप्ति और उसके पहले विश्वमें आश्चर्य पैदा करनेवाले अभ्युदय हैं।

तदुक्तं:- पात्रदाने फलं मुख्यं मोक्षः सस्यं कृषेरिव।
पलालमिव भोगास्तु फलं स्यादानुषङ्गिकम्॥

अर्थ:-जैसे कृषिका असली फल धान्यप्राप्ति है और आनुषङ्गिक फल उसका भूसा आदि है, उसी प्रकार पात्रदानका भी मुख्य फल मोक्षप्राप्ति है और स्वर्गादिके भोग यह सब आनुषङ्गिक फल है।

अब:-मुनिदानके प्रभावसे घरके आरम्भसे पैदा हुये सब पापोंका प्रक्षालन हो जाता है यह बताते हैं-

पञ्चसूनापरः पापं गृहस्थः सञ्चिनोति यत्।
तदपि क्षालयत्येव मुनिदानविधानतः॥४९॥

अन्वयार्थः-(पञ्चसूनापरः) पांच सूना हैं प्रधान जिसके ऐसा ('यः') जो (गृहस्थः) गृहस्थ (यत् पापं) जिन पापोंको (सञ्चिनोति) संचित करता है (तदपि) उन सब पापोंका भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

('सः') वह गृहस्थ (मुनिदानविधानतः) मुनियोंके लिये विधिपूर्वक दान देनेसे (क्षालयत्येव) अवश्य धो डालता है अर्थात् नष्ट कर देता है।

भावार्थः-पीसना, कूटना, चौकाचूली करना, पानीकी घिनोची वगैरेकी सफाई करना और घर द्वारको झाडना-बुहारना इनको गृहस्थोंकी पंचसूनाक्रिया कहते है। ये पांच तो प्रधानतासे गृहस्थोंमें पाई जाती हैं और गौणतासे दूसरी आरम्भकी क्रियाए भी पाई जाती हैं उनका ग्रहण इन "पंचसूना" क्रियाओंमें समझना चाहिए। इन हिंसात्मक क्रियाओंमें सदैव प्रवृत्त रहनेवाला गृहस्थ जो पापसंचय करता है वह सब और दूसरे भी व्यापारादिजनित पाप अतिथिदानके प्रभावसे प्रक्षालित (दूर) हो जाते हैं। 'तदपि' इस पदमें जो 'अपि' शब्द आया है वह विस्मय और समुच्चय दोनो अर्थका वाचक है।

विस्मयार्थः-आश्चर्य यह है कि केवल मुनिदानके प्रभावसे गृहस्थके आरम्भजनित सब पापोंका नाश होता है। और 'अपि' शब्दका समुच्चयार्थ यह है कि आरम्भजनित पापोंका भी नाश होता है और अन्य व्यापारादिजनित भी पापोंका नाश होता है।

अबः-आगे दानके करनेवाले, करानेवाले और अनुमोदना करानेवालोंको कैसे कैसे अभ्युदयोंकी प्राप्ति होती है यह बताते हैं-

यत्कर्ता किल वज्रजंघनृपतिर्यत्कारयित्री सती
श्रीमत्यप्यनुमोदका मतिवरव्याघ्रादयो यत्फलम्।
आसेदुर्मुनिदानतस्तदधुनाऽप्याप्तोपदेशाब्दक-
व्यक्तं कस्य करोति चेतसि चमत्कारं न भव्यात्मनः ॥५०॥

अन्वयार्थः-(यत् किल) आगममें इस प्रकार सुना जाता है कि (मुनिदानतः) मुनियोंके लिये दान देनेसे (कर्ता) स्वदानको करनेवाला (वज्रजंघनृपतिः) वज्रजंघ नामका राजा (यत् फलं) जिस फलको ('आससाद') प्राप्त हुआ था (अपि) और (कार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यित्री) दानको करानेवाली (श्रीमती) श्रीमती नामकी (सती) सती (यत्फलं) जिस फलको ('आससाद') प्राप्त हुई थी (अपि) तथा (अनुमोदकाः) दानकी अनुमोदना करनेवाले (मतिवरव्याघ्रादयः) मतिवर मन्त्री और व्याघ्र आदिक (यत् फलं) जिस फलको (आसेदुः) प्राप्त हुये थे (तत्) वह मुनियोंको दान देने आदिका फल (अधुना अपि) इस समय भी (आप्तोपदेशाब्दकव्यक्तं 'सत्') आप्तके उपदेश रूपी दर्पणके द्वारा व्यक्त होता हुआ–प्रतीतिका विषयभूत होता हुआ (कस्य भव्यात्मनः) किस भव्यजीवके (चेतसि) हृदयमें (चमत्कारं) आश्चर्यको (न करोति) नहीं करता है अर्थात् सब ही के हृदयमें आश्चर्यको करता है।

भावार्थः–'उत्पल–खेट' नगरके राजा वज्रजंघने दान देकर, पुण्डरीकिनी नगरीके वज्रदंत चक्रवर्तीकी पुत्री और उक्त वज्रजंघ राजाकी रानी श्रीमतीने दानकी प्रेरणा करके और दान देते समय उपस्थित मतिवर नामक मन्त्री, आनंदनामक पुरोहित, अकंपन नामके सेनापति, धनमित्र नामक सेठ तथा व्याघ्र, शूकर, वानर और नकुल इन पुरुष और तिर्यंचोंने दानकी अनुमोदना करके जो फल पाया है, जोकि आगमरूपी दर्पणके द्वारा आज भी जग-जाहिर है वह दानका फल किस भव्य आत्माके चित्तमें चमत्कार (आश्चर्य) पैदा नहीं करता? अर्थात् सबको ही आश्चर्य पैदा करता है।

गृहस्थके दान और पूजा ये कार्य मुख्य हैं। जैसे मुनियोंके ध्यान और अध्ययन मुख्य हैं। इस श्लोकमें दान देनेवाला, दिलानेवाला और अनुमोदना करानेवालेको कैसा फल प्राप्त हुवा उसका वर्णन किया गया है।

वज्रजंघकी कथा

उत्पल–खेट नगरमें वज्रबाहु नामका राजा राज्य करता था। उसकी वसुंधरा नामकी अतिसुन्दर रानी थी। उन दोनोंको वज्रजंघ नामका पुत्र था। वज्रदंत चक्रवर्तीकी पुत्री श्रीमती वज्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जंघकी प्राणप्रिया थी। वज्रबाहु राजाने नृप वज्रजंघको राज्य देकर जैनेन्द्रीदीक्षाको ग्रहणकर शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्मेंधनको भस्मकर शाश्वत सुख प्राप्त किया। इधर पिताकी सम्पदाको प्राप्तकर वज्रजंघ श्रीमतीके साथ सांसारिक सुखोंका अनुभव कर रहे थे।

इधर एक दिन वज्रदन्त चक्रवर्ती सभाभवनमें स्थित था, तब वनपालने आकर उसे कुछ विकसित एक कमलकी कलीको दिया। उसमें मरे हुए भ्रमरको देखकर वज्रदन्त चक्रवर्तीको वैराग्य हो गया, तब उसने पुत्रोंको राज्य देना चाहा। किन्तु पुत्रोंने राज्य स्वीकार नहीं किया। अन्तमें उसने अमिततेजके पुत्र पुण्डरीक (अपने नाती) को, जो कि वज्रजंघका भानजा था, राज्य देकर एक हजार पुत्रों, बीस हजार मुकुटबद्धों और साठ हजार स्त्रियोंके साथ यशोधर भट्टारकके चरणसान्निध्यमें दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वह मोक्षको प्राप्त हुआ। अन्य जन अपने-अपने पुण्यके योग्य गतिको प्राप्त हुए। इधर अनार्य देशवासी (अथवा समीपवर्ती) शत्रु पुण्डरीक बालकको कुछ भी न समझकर उसके देशमें उपद्रव करने लगे। उसको रोकनेके लिए लक्ष्मीमतीने विजयार्ध पर्वतस्थ गन्धर्वपुरके राजा चिंतागति और मनोगति नामके दो विद्याधरोंके हाथमें एक लेख (पत्र) देकर वज्रजंघके लिए भेजा। उक्त लेखको पढकर जब वज्रजंघको वज्रदन्त चक्रवर्तीके दीक्षा ग्रहण कर लेनेका समाचार ज्ञात हुआ, तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब वह चतुरंगसेनाके साथ उसी समय निकल पडा। वह पुण्डरीकिणीपुरीको जाता हुआ मार्गमें सर्पसरोवरके किनारे डेरा डालकर स्थित हुआ। उस समय वहां दमवर और सागरसेन नामके दो चारणमुनि चर्यामार्गसे आहारके निमित्त आये। तब श्रीमती और वज्रजंघने उन्हें नवधाभक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे वहां पञ्चाश्चर्य हुए। उस समय उस वनमें निवास करनेवाले व्याघ्र, शूकर, बन्दर और नेवला ये चार पशु आये और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन दोनों मुनियोंको नमस्कार करके उनके समीपमें बैठ गये। पश्चात् वज्रजंघने मुनियोंको नमस्कार करके पूछा कि मतिवर, आनन्द, अकम्पन और धनमित्र नामके जो ये मेरे मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और राजसेठ हैं इनके ऊपर मेरे स्नेहका कारण क्या है? इन व्याघ्र आदिकोंके क्रूरताको छोडकर शान्त हो जानेका कारण क्या है? तथा आप दोनोंके ऊपर मेरे अनुरागका भी कारण क्या है? इन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए दमवर मुनि बोलें—

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें वत्सकावती देशके भीतर प्रभाकरी नामकी एक नगरी है। वहाँका राजा अतिगृद्ध बहुत लोभी था। उसने अपने नगरके समीपमें स्थित एक पर्वतके ऊपर बहुत-सा द्रव्य गाड रक्खा था। वह रौद्रध्यानसे मरकर पङ्कप्रभा पृथिवी (चौथे नरक) में गया। फिर वह वहाँसे निकलकर उसी पर्वतके ऊपर व्याघ्र हुआ। उस समय उस नगरका राजा प्रीतिवर्धन अनार्य देशवासियों (शत्रुओं) के ऊपर आक्रमण करनेके लिए जा रहा था। वह नगरके बाहिर पडाव डालकर स्थित हुआ। उस समय एक मासका उपवास करनेवाले पिहितास्रव मुनि उस नगरके बाहिर एक वृक्षके खोतेमें स्थित थे। जब उनका उपवास पूरा होकर पारणाका दिन उपस्थित हुआ तब किसी ज्योतिषीने आकर उस राजासे प्रार्थना की कि हे राजन्! यदि ये मुनि आपके घरपर पारणा करेंगें तो आपको महान् धनका लाभ होगा। यह ज्ञात करके प्रीतिवर्धनने नगरके मार्गमें कीचड कराकर उसके ऊपर फूलोंको बिखरवा दिया। उक्त कीचड और फूलोंके कारण मुनिका नगरके भीतर जाना असम्भव हो गया था, अतएव वे प्रीतिवर्धन राजाके डेरेपर चर्याको लिये आ पहुँचे, राजाने उन्हें निरन्तराय आहार दिया। आहार हो जानेके पश्चात् उसके डेरेपर पञ्चाश्चर्य हुए। उस समय मुनि पिहितास्रवने कहा कि इस पर्वतके ऊपर बहुत-सा द्रव्य है। उसकी रक्षा व्याघ्र कर रहा है। उसे तुम्हारे प्रस्थान कालीन भेरीके शब्दको सुनकर जातिस्मरण हो गया है। वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौन है, इसका सम्बन्ध बतलानेके लिए उन्होंने पूर्वोक्त कथा कही। वह व्याघ्र इस समय संन्यास लेकर स्थित है। वह तुम्हें उस सब धनको दिखला देगा। यह सुनकर प्रीतिवर्धन राजाको बहुत सन्तोष हुआ। वह उन मुनिको नमस्कार करके उस पर्वतके ऊपर गया। वहाँ उसने उक्त व्याघ्रको सम्बोधित किया। तब व्याघ्रने उस धनको दिखला दिया, जिसे प्रीतिवर्धन राजाने ग्रहण लिया। व्याघ्र अठारह दिनोंमें मरकर ईशान स्वर्गके अन्तर्गत दिवाकरप्रभ विमानमें दिवाकरप्रभ देव हुआ। प्रीतिवर्धन राजाके द्वारा किए गये आहारदानकी अनुमोदना करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ उसके प्रभा-वसे उसके मन्त्री, पुरोहित और सेनापति ये तीनों जम्बूद्वीपके उत्तरकुरुमें आर्य हुए। राजा प्रीतिवर्धन उक्त मुनिराजके समी-पमें दीक्षित होकर तपके प्रभावसे मुक्तिको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रीतिवर्धन के मन्त्रीका जीव वह आर्य ईशान कल्पके अन्तर्गत काञ्चन विमानमें कनकप्रभ नामका देव हुआ। पुरोहितका जीव आर्य रुषित विमानमें प्रभंजन देव हुआ। जब तुम ललितांग देव थे, तब ये चारों ही देव तुम्हारे परिवारके देव थे। पश्चात् वह दिवाकरप्रभ देव स्वर्गसे च्युत होकर मतिसागर और श्रीमतिके यह तुम्हारा मन्त्री मतिवर हुआ है। वह प्रभाकर देव वहांसे च्युत होकर अपराजित और आर्यवेगाके यह अकम्पन सेनापति हुआ है। वह कनकप्रभ देव वहांसे च्युत होकर श्रुतकीर्ति और अनन्तमतीके यह आनन्द पुरोहित हुआ है। वह प्रभंजन देव वहाँसे आकर धनदेव और धनदत्ताके यह धनमित्र सेठ हुआ। तुम (वज्रजंघ) इस भवसे आठवें भवमें इसी भरत क्षेत्रके भीतर जब प्रथम तीर्थं-कर होओगे तब यह मतिवर भरत, यह अकम्पन बाहुबली, यह आनन्द वृषभसेन और यह धनमित्र अनन्तवीर्य; इन नामोंसे प्रसिद्ध तुम्हारे चरमशरीरी चार पुत्र होवेंगे।

अब व्याघ्र और शूकर आदि के भव कहे जाते हैं—इसी देशके भीतर हस्तिनापुरमें वैश्य धनदत्त और धनमतीके एक उग्रसेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामका पुत्र था। वह चोरीमें पकडा गया था। उसे कोतवालोंने लातों और घूँसोंसे खूब मारा। इस प्रकारसे वह क्रोधके वशीभूत होकर मरा और यह व्याघ्र हुआ है।

इसी देशके भीतर विजयपुरमें वैश्य आनन्द और वसन्तसेनाके हरिकान्त नामका एक पुत्र था जो बडा अभिमानी था। वह किसीको नमस्कार नहीं करता था। कुछ लोगोंने पकडकर उसे माता, पिताके चरणोंमें डाल दिया। तब उसने अभिमानसे अपने शिरको पत्थरपर पटक लिया। इस प्रकारसे मरकर यह शूकर हुआ है।

इसी देशके भीतर धान्यपुरमें वैश्य धनदत्त और वसुदत्ताके एक नागदत्त नामका पुत्र था, जो बहुत कपटी था। वह वेश्याके निमित्त बहिनके आभूषणोंको ले गया था। जब वह उन्हें मांगती तो "लाता हूँ" कहकर रह जाता। वह मरकर यह बन्दर हुआ है।

इसी देशके भीतर सुप्रतिष्ठपुरमें कोई पूरी आदिका बेंचनेवाला वैश्य (हलवाई) रहता था। वह बहुत लोभी था। वहाँ राजा सुवर्णमय ईंटोंके द्वारा एक चैत्यालय बनवा रहा था ये ईंटे बाह्यमें मिट्टीके समान काली दिखतीं थीं, पर थी वे एक सोनेकी दिन उन ईंटोंको ले जाते हुए किसी मजदूरको देखकर उक्त हलवाईने उसे पूरियाँ दी और पाँव धोनेके निमित्त एक ईंट ले ली। फिर वह उसे सुवर्णकी जानकर उक्त मजदूरके हाथमें प्रतिदिन पूरियाँ देता और एक एक ईंट मँगा लेता था। एक दिन वह अपने पुत्रसे ईंटको ले लेनेके लिये कहकर किसी दूसरे गाँव को गया था। परन्तु पुत्रने इस ईंटको नहीं लिया था। जब वह लोभी घर वापिस आया और उसे ज्ञात हुआ कि लडकेने ईंट नहीं ली है तो इससे क्रोधित होकर उसने पुत्रको लाठियोंके द्वारा मार डाला तथा स्वयं अपने पाँवोंके ऊपर एक भारी पत्थरको पटक लिया। इससे उसके पाँव मुड गये। इस प्रकार वह बहुत कष्टसे मरा और यह नेवला हुआ है। ये चारो अपने भव्यत्व गुणके प्रभावसे इस समय शान्तिको प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए हैं। इस आहारदानकी अनुमोदनासे ये चारों तुम्हारे साथ दोनोंके गतियोंके सुखको भोगकर जब तुम तीर्थंकर होओगे तब ये तुम्हारे अनन्त, अच्युत, वीर और सुवीर नामके चरमशरिरी पुत्र होवेंगे। हम दोनों चूँकि तुम्हारे अन्तिम पुत्रयुगल है, इसलिए हम दोनोंके उपर भीं तुम दोनोंको मोह है। इस प्रकारसे उक्त वृत्तान्तको कहकर वे दोनों मुनिराज चले गये।

वज्रजंघ पुण्डरीकके राज्यको स्थिर करके अपने नगरमें वापिस आ गया। उसने बहुत समयतक राज्य किया। एक दिन रातमें शयनागारकी व्यवस्था करनेवाला सेवक सूर्यकान्त मणिमय धूपघटमें कालागरूको डालकर खिडकीको खोलना भूल गया। उसके धुएँसे उस शयनागारमें सोये हुए श्रीमती और वज्रजंघ मर गये। वे मुनिदानके प्रभावसे इसी जम्बूद्वीपके उत्तरकुरुमें आर्य दम्पती (पति–पत्नीं) हुए। उधर वे व्याघ्र आदि भी उपर्युक्त शयनागारमें उसीं धुएँके द्वारा मरकर उस मुनिदानकी अनुमोदना करनेसे प्राप्त हुए पुण्यके प्रभावसे उसी उत्तरकुरुमें आर्य हुए। इधर मणिवर आदिने वज्रजंघ और श्रीमतीके शरीरका अग्नि–संस्कार करके वज्रजंघके पुत्र वज्रबाहुको राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे जिनदीक्षा लेकर तपके प्रभावसे अधोग्रैवेयकमें देव हुए। इधर भोगभूमिमें उस युगल (वज्रजंघ और श्रीमतीके जीव) को सूर्यप्रभ नामक कल्पवासी देवके देखनेसे जातिस्मरण हो गया। उसी समय वहाँ दो चारण मुनि आकाश मार्गसे नीचे आये। उनको नमस्कार करके वज्रजंघ आर्य बोला कि आप दोनोंके ऊपर मुझे मोह क्यों हो रहा है? इसके उत्तरमें उनमेंसे प्रीतिंकर मुनि बोले कि जब तुम महाबल हुए थे तब तुम्हारा मन्त्री स्वयंबुद्ध तपके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। फिर वहाँसे आकर इसी पूर्व विदेहमें पुण्डरीकिणीपुरके राजा प्रियसेन और रानी सुन्दरीके मैं प्रीतिंकर हुआ हूँ। यह प्रीतिदेव नामका मेरा छोटा भाई है। तपके प्रभावसे हम दोनोंको चारण ऋद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है। हम तुम्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण करानेके लिये यहाँपर आये हैं। तत्पश्चात् वे दोनों मुनिराज उन छहोंको सम्यग्दर्शन ग्रहण कराकर वापिस चले गये। तीन पल्य-प्रमाण आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त होकर उन छहोंमें वज्रजंघ आर्यका जीव ईशान स्वर्गके भीतर श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर देव, श्रीमती आर्याका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ देव, व्याघ्र आर्यका जीव चित्राङ्गद विमानमें चित्राङ्ग देव, शूकर आर्यका जीव नन्द विमानमें मणिकुण्डल देव, बानर आर्यका जीव नन्द्यावर्त विमानमें मनोहर देव और नेवला आर्यका जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ देव हुआ। इस प्रकार इन सबका परस्पर सम्बन्ध जानना चाहिये। आहारदानको करनेवाले वज्रजंघ राजाका जीव आर्य, श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र और आठवे भवमें आदिनाथ हुये।

आहारदान करानेवाला श्रीमतीका जीव क्रमसे आर्या, स्वयंप्रभ देव, सुविधिका पुत्र केशव, अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र, धनदेव सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र और फिर वहाँसे च्युत होकर इस समय श्रेयांस राजा हुआ।

आहारदानकी अनुमोदना करनेवाला मतिवर मन्त्री, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र, बाहु (वज्रनाभिका अनुज) व सर्वार्थसिद्धमें अहमिन्द्र और अंतमे आदिनाथ भगवानकी पत्नी यशस्वतीको भरत नामका पुत्र हुये।

राजा प्रीतिवर्धनके मन्त्रीका जीव क्रमसे आर्य (भोगभूमिज), कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, ग्रैवेयकका अहमिन्द्र, पीठ और फिर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भरतका लघुभ्राता वृषभसेन हुआ। धनमित्रका जीव अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धीमें अहमिन्द्र हुआ था। वह वृषभसेनका लघुभ्राता अनन्तवीर्य हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो व्याघ्रका जीव भोगभूमिज, चित्रांगद देव, वरदत्त, अच्युत कल्पका देव, विजय और सर्वार्थसिद्धमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता अनन्त हुआ।

जो शूकरका जीव आर्य, मणिकुण्डल देव, वरसेन, अच्युत कल्पका देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता अच्युत हुआ।

जो बन्दरका जीव आर्य, मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्गका देव, जयन्त और सर्वार्थसिद्धमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी असका लघुभ्राता वीर हुआ। अकंपन सेनापति अधोग्रैवेयकमें देव, सुबाहु सर्वार्थसिद्धि और बाहुबली हुवा। जो नेवलाका जीव भोगभूमिमें आर्य, मनोरथ देव, शान्तमदन, अच्युतकल्पमें देव, अपराजित देव और अन्तमें सर्वार्थसिद्धिका देव हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता सुवीर हुआ।

प्रसिद्ध वज्रजंघ राजा उसकी पत्नी श्रीमती, मतिवर मन्त्री, अकम्पन सेनापति, आनंद पुरोहित, धनमित्र सेठ, व्याघ्र, शूकर, वानर और दुष्ट नेवला ये सब मुनिदानके फलसे देवलोक और मनुष्यलोकमें उत्तमसुखको भोगकर अन्तमें शरीरसे रहित (सिद्ध) हुये। इसलिये निर्मल गुणोंके धारक भव्यजीवोंको उत्तम पात्रके लिए दान देना चाहिये। यह कथा विस्तारपूर्वक आदि-पुराणमें लिखी है उसमें देखना चाहिये।

अब– अतिथिके अन्वेषणकी विधिको दो श्लोकमें कहते हैं–

कृत्वा माध्यान्हिकं भोक्तुमुद्युक्तोऽतिथये ददे।
स्वार्थं कृतं भक्तमिति ध्यायन्नतिथिमीक्षताम्॥५१॥

अन्वयार्थ–अतिथीसंविभाग व्रती श्रावक (माध्यान्हिकं) मध्यान्हकालकी स्नानादि क्रियाको करके (भोक्तुं) भोजन करनेके लिये (उद्युक्तः) उद्युक्त हुआ श्रावक (स्वार्थं) अपने लिये (कृतं) बनाये हुये (भक्तं) भोजनको (अतिथये) अतिथिके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ददे) देवुं (इति) इसप्रकार (ध्यायन्) चिंतवन करता हुवा (अतिथिं) अतिथीकी (ईक्षतां) प्रतीक्षा करे ।।५१।।

भावार्थ–अतिथिसंविभाग व्रती श्रावक मध्यान्हकालीन स्नान, देवपूजा आदि क्रियाओंको करनेके बाद भोजन करनेके लिये तत्पर श्रावक अपने लिये बनाये हुये भोजनको पात्रको देकर भोजन करूं इस प्रकार चिंतवन करता हुवा अतिथीकी प्रतीक्षा करे ।।५१।।

तथा–

द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु पात्रेभ्यो वितरन्ति ये ।
ते धन्या इति च ध्यायेदतिथ्यन्वेषणोद्यतः ।।५२।।

अन्वयार्थ–(च) और (अतिथ्यन्वेषणोद्यतः) अतिथिके अन्वेषण करनेमें तत्पर श्रावक (यः) जो दाता (अर्धतृतीयेषु) ढाई (द्वीपेषु) द्वीपमें रहनेवाले (पात्रेभ्यः) पात्रोंके लिये (वितरन्ति) विधिपूर्वक दान देते हैं, (ते) वे ही (धन्याः) धन्य है कृतकृत्य हैं (इति) इस प्रकार (ध्यायेत्) विचार करे ।।५२।।

भावार्थ-अतिथिकेलिये द्वारापेक्षण करनेवाला श्रावक अपने मनमें चिंतवन करे कीं अहो ! जम्बूद्वीप धातकी खंड तथा पुष्करार्ध इन ढाई द्वीपमें जो श्रावक शास्त्रोक्तविधिके अनुसार सत्पात्रोंको आहारदान देते हैं वेही इस जगतमें धन्य हैं, पुण्यवन्त हैं ।।५२।।

अब–आगे नैष्ठिकश्रावक, हिंसाका कारण होनेसे तथा सम्यक्त्वका उपघातक होनेसे ग्रहण वा संक्रांति आदिके समयपर भूमि आदिका दान नहीं दे सकता यह बात कहते हैं–

हिंसार्थत्वान्न भूगेहलोहगोश्वादि नैष्ठिकः ।
दद्यान्न ग्रहसङ्क्रान्तिश्राद्धादौ च सुदृग्द्रुहि ।।५३।।

अन्वयार्थ– (नैष्ठिकः) नैष्ठिकश्रावक (हिंसार्थत्वात्) हिंसाके कारणभूत होनेसे ग्रह, संक्रान्ति, श्राद्धादिमें (भूगेहलोहगोश्वादि) जमीन, घर, लोहा, गाय, घोडा आदि (न दद्यात्) नहीं देवे । (च) और (सुदृग्द्रुहि) जिनको पर्व माननेसे सम्यक्त्वका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घात होता है ऐसे (ग्रहसंक्रांतिश्राद्धादौ) ग्रहण, संक्रांति तथा श्राद्ध वगैरहमें ('स्वद्रव्यं') अपने द्रव्यको (न दद्यात्) नहीं देवे।

भावार्थ– अन्य मतावलंबियोंने ऐसी कल्पना की है कि चन्द्र और सूर्यके ऊपर ग्रहण पडनेसे संकट आता है। शनिवारके दिन जोषियोंको दान देनेसे शनिका अरिष्ट दूर हो जाता है। जन्म कुण्डलीमें जो घात वार हो उस दिन दान देनेसे घातका अरिष्ट दूर हो जाता है। ब्राह्मणोंको भूमि आदिक जैसा दान दिया जायगा परभवमें वैसी संपत्ति आदि प्राप्त होती है। तीर्थविशेषमें पिण्डदान करनेसे पिता आदिका तर्पण होता है। इत्यादि कल्पनासे दिया हुआ ग्रहण आदिके अवसरका दान मिथ्यात्व पोषक होनेसे उसे नैष्ठिकश्रावकको नहीं करना चाहिये। तथा जो हिंसाका साधन हो ऐसा भूमि, ग्रह, अश्व, लोह आदिकका भी दान नहीं करना चाहिये। समदत्तिमें कन्यादानके समय जो भूमि, स्वर्णादिकका दहेज दिया जाता है उसका हेतु दंपतिके लिए अर्थ पुरुषार्थ आदिका साधन कराना है। ऐसा करनेसे गृहस्थको गृहस्थाश्रमके दानका श्रेय प्राप्त होता है। परन्तु जिस दानका यह प्रयोजन नहीं किन्तु केवल दूसरोंके देने मात्रसे ही लोकव्यवहारमें धर्म समझा जाता है, और परिणाममें जिस दानके लेनेवाले हिंसादिक करते हैं ऐसे भूमिदान, गोदान, स्वर्णदान, लोहदान आदि भी नैष्ठिकश्रावक न करे। सारांश यह है कि सम्यक्त्व और चारित्रके उपघातक दानको नैष्ठिकश्रावक न करे।

अब– आगे अतिथिसंविभागव्रतके अतीचारोंको बताते हैं–

त्याज्याः सचित्तनिक्षेपोऽतिथिदाने तदावृतिः।
सकालातिक्रमपरव्यपदेशश्च मत्सरः ॥५४॥

अन्वयार्थ–('तद्व्रतिना') अतिथिसंविभागव्रतके पालन करनेवाले श्रावकको (अतिथिदाने) अतिथिसंविभागव्रतमें (सचित्तनिक्षेपः) सचित्त, पृथ्वी वगैरहमें देनेयोग्य वस्तुका रखना (तदावृतिः) सचित्त पत्र–पुष्पादिकके द्वारा ढाकना (च) और (सकालातिक्रम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परव्यपदेशः) कालातिक्रम तथा परव्यपदेशसहित (मत्सरः) मात्सर्यं ('अमी पंचातिचाराः') ये पांच अतीचार (त्याज्याः) छोड़ना चाहिये ।

भावार्थ– सचित्तनिक्षेप, सचित्तावृति, कालातिक्रम, परव्यपदेश और मत्सर ये पांच अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार हैं, इनका त्याग करना चाहिये ।

सचित्तनिक्षेप– अतिथिको दान देते समय सचित्त पृथ्वी, जल, चुल्लि, भुवल्लि, धान्यादिमें देयवस्तुको निक्षेप करना, उसे सचित्तनिक्षेप कहते हैं । यह आदानबुद्धिसे रखनेसे अतिचार हैं । दाता तुच्छबुद्धिसे अपने मनमें यह विचार करता है कि सचित्तपर रखी हुई साधु ग्रहण नहीं करते इसलिये उनका ग्रहण नहीं करना हमारे लिये लाभ ही हैं । इसमें दाताका देय पदार्थमें आदानबुद्धिका अभिप्राय हैं । इसलिये यह सचित्तनिक्षेप नामका प्रथमातीचार हैं ।

सचित्तावृति– आदानबुद्धिसे सचित्त पत्र-पुष्पादि पदार्थसे देयवस्तु ढकना सचित्तावृति अतिचार है । अथवा सचित्तनिक्षेप और सचित्तावृति सचित्तवस्तुसे ढकें हुये, अज्ञानतासे संयत को देना भी अतिचार है ।

कालातिक्रम– साधुओंके उचित आहारके समयका उल्लंघन करना कालातिक्रम हैं । यतियोंको अयोग्यकालमें आहार देना वा साधुओंके आहारके पहिले अथवा पश्चात् विलंबसे भोजन करना भी कालातिक्रमातिचार हैं ।

परव्यपदेश– यह देने योग्य गुड, खांड वगैरह परकीय हैं । इस प्रकार व्याजसे कहना परव्यपदेश नामका अतीचार है । अथवा अपने आप्तेष्टोंको भी पुण्यबंध हो इस हेतुसे जिस पदार्थको मैं यहां आहारदान करते समय दे रहा हूँ उसका दाता अमुक व्यक्ति हैं । अथवा देयपदार्थ अमुक व्यक्तिका है, इस बुद्धिसे समर्पण करना भी परव्यपदेश नामका अतीचार है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत्सर- मत्सर शब्दका अर्थ कोप है। पात्रकी प्रतीक्षा करते समय क्रोधभाव रखना, जैसे-"मैं रोज खडा होता हूँ फिर भी मेरे यहां कोई पात्र आता नहीं" अथवा मैं कितनी देरसे खडा हूं अभी कोई भी पात्र मेरे यहां आये नहीं, ऐसे भाव रखना इसको मत्सर नामका अतीचार कहते हैं। अथवा संयतको पडगाह देने पर भी अपने पास रखे हुए देय पदार्थका समर्पण नहीं करना यह भी मत्सर नामका अतीचार है। सारांश यह है कि वह देता है परन्तु आदर पूर्वक नहीं देता है, तो भी मत्सर नामका अतीचार होता है। अन्य दाताके गुणोंको न सह सकना भी मत्सर नामका अतीचार है। अथवा इस श्रावकने आहारदान किया है "मैं क्या इससे भी हीन हूँ," इस प्रकार दूसरेकी उन्नतिके प्रति वैमनस्य भावसे जो दान देना है वह भी मत्सर नामका अतीचार है। इस प्रकार मत्सर शब्दके अनेक अर्थ होते हैं।

तदुक्तं- "मत्सरः परसम्पत्त्यक्षमायां तद्वति क्रुधि ॥

मत्सर शब्दके- क्रोध, क्रोधवान और परद्रव्यमें असहिष्णुता ये तीन अर्थ हैं। ये सब अतिचार अज्ञान वा प्रमादके कारण होते हैं।

अब- आगे व्रत-प्रतिमाके सम्बन्धके संपूर्ण कथनको उपसंहार करते हुए श्रावक महाश्रावककी पदवीको कैसे पाता है यह बताते हैं—

एवं पालयितुं व्रतानि विदधच्छीलानि सप्तामला-
न्यागूर्णः समितिष्वनारतमनोदीप्राप्तवाग्दीपकः ।
वैयावृत्यपरायणो गुणवतां दीनानतीवोध्दरं—
श्चर्यां दैवसिकीमिमां चरति यः स स्यान्महाश्रावकः ॥५५॥

अन्वयार्थ- (एवं) इस प्रकार (व्रतानि) पांचों अणुव्रतोंको (पालयितुं) पालन करनेके लिये (अमलानि) अतीचार रहित (सप्तशीलानि) सातों शीलोंको (विदधत्) पालन करनेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(समितिषु) ईर्या आदि पांचो समितियोंमें (आगूर्णः) उद्यत (अनारतमनोदीप्राप्तवाग्दीपकः) निरन्तर मनमें देदीप्यमान है आप्तके वचनसे उत्पन्न होनेवाला श्रुतज्ञानरूपी दीपक जिसके ऐसा और (गुणवतां) गुणवान पुरुषोंकी (वैयावृत्यपरायणः) वैयावृत्य करनेमें तत्पर, तथा (अतीव) पाक्षिकादिककी अपेक्षा अधिक रूपसे (दीनान्) दीन पुरुषोंको (उद्धरन्) दुःखसे छुडानेवाला (यः) वह गृहस्थ (इमां) आगेके अध्यायमें कही जानेवाली (दैवसिकीं) दिनरात सम्बन्धी (चर्यां) चर्याको (चरति) पालन करता है (सः) वह गृहस्थ (महाश्रावकः) महाश्रावक (स्यात्) होता है ।

भावार्थ– जो गुरुओंसे तत्त्वको सुनता है उसको श्रावक कहते हैं । और श्रावकोंमें उत्कृष्ट होता है उसको महाश्रावक कहते हैं ।

इस प्रकार सम्यक्दर्शनसहित पांच अणुव्रतोंको निरतिचार पालन करनेके लिये व्रतोंके परिरक्षारूप ३ गुणव्रतों और ४ शिक्षाव्रतों एवं ७ शीलोंको पालन करता है, तथा शास्त्रमें कहे हुए ईर्या, भाषा एषणा आदाननिक्षेपण, और व्युत्सर्ग इन ५ समितियोंको पालन करनेमें तत्पर है । क्योंकि कहा है कि समितिसहित अणुव्रत, महाव्रत, संयम कहलाते हैं और समितिरहित हो तो विरति कहलाते हैं ।'अणुवयमहव्वयाइं समिदीसहिदायि संजमो समिदिहिं विणा विरदि इति' इसलिये जो समितिसहित हो तथा जिसके मनमें निरन्तर आप्त उपदेशसे उत्पन्न, श्रुतरूपी दीपक जागृत है, यहांपर कारणमे कार्यका उपचार होनेसे आप्तके वचनको ही दीपक कहा है । जैसे दीपक स्वपर प्रकाश है उसी प्रकार ज्ञान भी स्वपर प्रकाशक है । और जो रत्नत्रय धारकोंकी वैयावृत्ती करनेमें तत्पर हो अर्थात् संयमीयोंके आपत्तीको निरवद्यरूपसे दूर करनेवाला हो, और जो आजीविकाके अभावसे शारिरीक मानसिक कष्टसे युक्त हो व्याधिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीडित हो उन दीनोंकी पीडाको दया बुद्धिसे दूर करनेवाला हो, और जो आगे छठ्ठे अध्यायमें वर्णित दिनचर्याको धारण करता हो वह इन्द्रादिकसे पूज्य महाश्रावकके पदको प्राप्त होता है ।

इसलिये सम्यग्दर्शनसहित होनेके कारण जो सम्यग्दर्शन-शुद्धत्व ' नामक गुणका धारक है, पांच अणुव्रतोंके निरतिचार पालनेसे जो 'व्रतभूषित्व' गुणका धारक है, निरतिचार सात शीलोंके पालनेसे जो 'निर्मलशीलनिधित्व' नामके गुणका धारक है, समितियोंमें तत्पर रहनेसे जो 'संयमनिष्ठत्व' नामके गुणका धारक है, आप्तवाणीके सदैव हृदयमें बिराजमान रहनेसे जो 'जिनागमत्व' नामके गुणका धारक है, वैयावृत्यमें तत्पर रहनेसे जो 'गुरुशुश्रूषकत्व' नामके गुणका धारक है, और दीनोंके उद्धार बुद्धिका धारक होनेसे जो 'दयादि सदाचारपरत्व' नामके गुणका धारक है । वह इन सात गुणोंके धारणसे इन्द्र आदिकके द्वारा पूज्य महाश्रावककी पदवीको पाता है और यह श्रावकका महत्वशाली पद किसी एक महान् व्यक्तिको कालादिलब्धिके कारण प्राप्त होता है ।

यहां इतना विशेष है कि अणुव्रत और महाव्रत यदि समितिसहित हों तो संयम कहलाते हैं, और समितिरहित हो तो विरति कहलाते हैं ।

पंचम अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें नैष्ठिक श्रावकके व्रतोंकी परिरक्षाके लिए सप्तशीलोंका विवेचन किया गया है, सप्तशीलोमें ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतोंका समावेश है । गुणव्रतोंके पालनसे व्रतोमें गुणोंकी वृद्धि और शिक्षाव्रतोंके पालनसें व्रतोमें आगे बढनेकी शिक्षा मिलती है, इन सप्तशीलोंका विस्तारके साथ विवेचन करते हुए ग्रंथकारने तदानुषंगिक कंदमूलादिक, द्विदलादिक, एवं संधानक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्योंका भी त्याग करना भी आवश्यक बताया है। इन सप्तशीलोंमें निर्दोषता प्राप्त करानेके लिए उपलक्षणसे युक्त उनके पांच पांच अतिचारोंका भी त्याग करनेका उपदेश दिया है। अन्तमें अतिथि संविभाग व्रतका निरूपण करते हुए गृहस्थ जीवनमें दानका कितना महत्व है, दान देना और उसमें अनुमोदना देना यह दोनों परंपरासे मुक्तिके लिए कारण है इस निरूपणका उदाहरणके साथ स्पष्टीकरण किया है।

इस प्रकार व्रत व सप्तशीलोंको पालन करनेवाला श्रावक, अग्रिम अध्यायमें निरूपित दिनचर्याका पालन करते हुए महाश्रावक होता है यह कथन करते हुए इस अध्यायका उपसंहार किया है।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १४ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे पंचम
अध्याय समाप्त
हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठोऽध्यायः

इस समय श्रावकके अहोरात्रिक आचारको कहनेकी इच्छासे पहिले पौर्वान्हिकी क्रियाका चौदह श्लोकोंके द्वारा वर्णन करते है-

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वृत्तपंचनमस्कृतिः ।
कोऽहं को मम धर्मः किं व्रतं चेति परामृशेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-(ब्राह्मे मुहूर्ते) ब्रह्ममुहूर्तमें (उत्थाय) उठकर (वृत्तपंचनमस्कृतिः) पढा है पंच नमस्कार मंत्र जिसने ऐसा मानव तदनन्तर (अहं) मैं (कः) कौन हूँ (कः मम धर्मः) मेरा धर्म क्या है (च) और (किं व्रतं) क्या व्रत है (इति) इस प्रकार (परामृशेत्) चिंतवन करे ॥१॥

भावार्थ-सूर्योदयके दो घटिकाके पहिलेका काल ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है अर्थात् पिछली रात्रिके अन्तकी दो घडीको ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं। जिसकी ब्राह्मी-सरस्वती देवता है उसको ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर पहिले अंतर्जल्पसे णमोकार मंत्रका स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर मैं कौन हुं? ब्राह्मण हूँ या क्षत्रिय हूँ, इक्ष्वाकुवंशी हूँ या अन्यवंशी हूँ, मेरा धर्म क्या है, मैं अविरत सम्यग्दृष्टि हूँ या पंचमगुणस्थानव्रती हूँ, श्रावक हूँ वा यति हूँ। च शब्दसे मेरे गुरु कौन हैं, मेरा नगर ग्रामादिक कौनसा है इत्यादिक चिंतवन करे। यह काल कौनसा है, मैं प्रमाता हूँ, अमुक प्रमेय है इत्यादिकका भी चिंतवन करे। क्योंकि ऐसे चिंतवनसे अपने वर्णादिकके विरुद्ध पडनेवाले आचारके सुधारनेमें सुगमता आती है। ऐसा विचार करनेसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी तथा अपनी परिस्थितीकी विशेषताका भी ज्ञान होता है, जिससे मानव अपनी कर्तव्यताका पालन सरलतासे कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च– ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय सर्वकार्याणि चिन्तयेत् ।
यतः करोति सान्निध्यं तस्मिन् हृदि सरस्वती ।।

अर्थ–ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सब कार्योंका विचार करना चाहिये । क्योंकि उस समय उसके हृदयमें सरस्वतीका निवास रहता है ।

सारांश यह है कि प्रातःकाल मलका पाक होता है और निरोग तथा आरोग्यवर्द्धक वायुका संचार होता है, इसलिये शरीर और मनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, इस कारणसे बुद्धिकी निर्मलता दिन वा रातके समयसे अधिक रहती है, ऐसे समयमें निश्चित किये हुये विचार अत्यंत कार्यकारी होते हैं ।

तथा च–

अनादौ बम्भ्रमन् घोरे संसारे धर्ममार्हतम् ।
श्रावकीयमिमं कृच्छ्रात् किलापं तदिहोत्सहे ।।२।।

अन्वयार्थ–(किल) शास्त्रमें सुना जाता है कि (अनादौ) आदिरहित (घोरे) भयंकर (संसारे) संसारमें (बम्भ्रमन्) भ्रमण करते हुये मैंने (आर्हतम्) अर्हन्त भगवानके द्वारा कहा हुवा (इमं) इस (श्रावकीयं) श्रावक (धर्मं) धर्मको (कृच्छ्रात्) कष्टसे (आपं) प्राप्त किया । (तत्) इसलिये (इह) इस धर्ममें (उत्सहे) प्रमादरहित प्रवृत्ति करना चाहिये ।।२।।

भावार्थ–शास्त्रमें लिखा है कि श्रावकधर्म प्राप्त करना बडा कठिन है । आदि अंतरहित, दुःखदायी, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भवभावके परिवर्तन स्वरूप इस संसारमें कुटिलता रूपसे भ्रमण करते हुये वीतराग सर्वज्ञ भगवानके द्वारा कहा हुवा श्रावक धर्म बडी कठिनतासे प्राप्त किया है । कहा भी है–

जगत्यनन्तैकहृषीकसंकुले त्रसत्वसंज्ञित्वमनुष्यतार्यता: ।
सगोत्रसद्गात्रविभूतिवार्ततासुधीसुधर्माश्च यथाग्रदुर्लभाः ।।

अनादिकालसे इस जीवने अनंतकाल तो एकेन्द्रियके शरीरको धारण करके बिताया । जिस प्रकार चिंतामणि रत्नका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त करना दुर्लभ है उसी प्रकार त्रसपर्यायका प्राप्त करना दुर्लभ है। उससे क्रमसे दुर्लभतर संज्ञिपद, मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्रमें जन्म, ऊँच गोत्र, धर्मसाधनका कारणीभूत व्याधिरहित शरीर, विभूति समीचीन आकुलतारहित आजीविका समीचीन बुद्धि और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति एक एकसे दुर्लभतर है। जिस प्रकार चिंतामणि रत्न प्रमादसे समुद्रमें गिर जाय तो उसका प्राप्त होना दुर्लभ है उसी प्रकार आत्मकल्याणके सहकारीभूत सम्पूर्ण कारणोंका मिलना अत्यन्त कठिन है। इसलिये इस समय अत्यन्त दुर्लभ इस जिनोक्त श्रावकधर्ममें प्रमादरहित प्रवृत्ति करना चाहिये ॥२॥

तथा-

इत्यास्थायोत्थितस्तल्पाच्छुचिरेकायनोऽर्हतः ।
निर्मायाष्टतयीमिष्टिं कृतिकर्म समाचरेत् ॥३॥

अन्वयार्थ- (इति) इस प्रकार (आस्थाय) प्रतिज्ञा करके (तल्पात्) शय्यासे (उत्थितः) उठकर (शुचिः) स्नानादिसे पवित्र होकर (एकायनः) एकाग्र मनसे (अर्हतः) अरहंत भगवानकी (अष्टतयीं) जलगंधादि अष्ट प्रकारकी (इष्टिं) पूजाको (निर्माय) करके (कृतिकर्म) देव-वन्दना (समाचरेत्) करें ॥३॥

भावार्थ- पूर्वकथित श्लोकके अनुसार अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमण करते हुये यह अत्यन्त दुर्लभधर्म मुझे प्राप्त हुवा है इसलिये इसका पालन प्रमादरहित करना चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक शौच, स्नान दन्तधावनादि क्रियाओंको करके, एकाग्र चित्तसे जल, गन्ध, अक्षत आदि अष्ट द्रव्यसे वीतराग देव शास्त्र तथा गुरुओंकी पूजा करना चाहिये। उसके बाद योग्य काल आसनादि पूर्वक पूर्व कहे हुए प्रबन्धसे देववन्दना करनी चाहिये।

ततश्च- इसके बादः-

समाध्युपरमे शान्तिमनुध्याय यथाबलम् ।
प्रत्याख्यानं गृहीत्वेष्टं प्रार्थ्यं गन्तुं नमेत् प्रभुम् ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (समाध्युपरमे) अवश्य करने योग्य कार्योंकी निवृत्ति हो जानेके बाद (शान्तिं) शान्तिभक्ति (अनुध्याय) बोलकर (यथाबलं) अपनी शक्तिके अनुसार (प्रत्याख्यानं) भोगोपभोग सामग्रीका नियम (गृहीत्वा) ग्रहण करके (इष्टं) भगवन् पुनः दर्शन मिले समाधिमरण होवे ऐसी (प्रार्थ्यं) प्रार्थना करके (गन्तुं) जाने के लिये (प्रभुं) प्रभुको (नमेत्) नमस्कार करे ।

भावार्थ– देववन्दनाके अवश्य करने योग्य पूजा, देववन्दना आदि कार्यकी समाप्ति हो जानेके अनन्तर येऽभ्यर्चिता मुकुट कुण्डलहाररत्नैः इत्यादि शांतिभक्ति पढकर अपनी शक्ति अनुसार भोगपभोग पदार्थोंका नियम ग्रहण करे । अनन्तर हे तीन लोकके नाथ तुम्हारे दर्शन फिर मिले । हे भगवन् ! जन्मसे लेकर आजतक जो मैंने आपकें चरणोंकी सेवाकी हैं उसका फल मरते समय आपका नामोच्चारण करते हुए प्राण विसर्जन हो । हे प्रभो! मेरा समाधिमरण हो, इस प्रकार इष्टप्रार्थना करके बाहिर जानेके लिये जगत्प्रभुको पंचांग नमस्कार करे ।

इसके बाद–

साम्यामृतसुधौतान्तरात्मराजज्जिनाकृतिः ।
दैवादैश्वर्यदौर्गत्ये ध्यायन् गच्छेज्जिनालयम् ।।५।।

अन्वयार्थ– (साम्यामृतसुधौतान्तरात्मराजज्जिनाकृतिः) समता परिणामरूपी अमृतके द्वारा विशुद्ध हुये अन्तरात्मामें विराजमान है परमात्माकी मूर्ति जिसके ऐसा श्रावक (ऐश्वर्यदौर्गत्ये) ऐश्वर्य और दरिद्रपना (दैवात्) पूर्वोपार्जित कर्मानुसार होते हैं ऐसा (ध्यायन्) विचार करता हुवा (जिनालयं) जिनालयमें (गच्छेत्) जावे ।

भावार्थ– पहिले सबके घर घरमें चैत्यालय होते थे । इसलिये श्रावक पहिले अपने घरके चैत्यालयमें भगवानकी पूजन करके तथा योग्यकालमे, योग्यआसनसे, योग्यस्थानमें, सामायिकके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्यमुद्रा धारण करके चारों दिशाओंमें तीन आवर्तनपूर्वक नमस्कार करे। तथा विनयपूर्वक मुनिके समान होकर कृति-कर्म करे। विधिपूर्वक सामायिक करे। सामायिकको ही कृति, कर्म या वन्दना कहते हैं। अनन्तर, शान्तिपाठ आदि बोलकर विसर्जन करे। तदनन्तर भगवान को नमस्कार के ग्रामस्थ जिनमन्दिरमें जावे। उस समय क्या विचार करे।

समता परिणामरूपी अमृतसे पवित्र हुये अन्तःकरणमें विराजमान की है जिनेंद्रकी मूर्तिको जिसने ऐसा श्रावक-धनाढ्यपना वा दारिद्रय यह पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मका फल है पुरुषार्थ कृत नहीं है। क्योंकि आत्मा धनी वा दरिद्री नहीं है। दैवाधीनतासे प्राप्त हुये दरिद्रता वा ऐश्वर्यपना किसीके द्वारा नाश नहीं किया जा सकता है इसलिये आत्मज्ञ पुरुषोंके यह हर्ष अथवा विषाद का स्थान नहीं है, ऐसा विचार करता हुवा जिनमन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जावे।

और भी अनुवाद मुखसे जिनालयमें जानेकी विधी कहते हैं-

यथाविभवमादाय जिनाद्यर्चनसाधनम्।
व्रजन्कौत्कुटिको देशसंयतः संयतायते ॥६॥

अन्वयार्थ- (यथाविभवं) अपनी शक्तिके अनुसार (जिनाद्यर्चनसाधनं) भगवानके पूजाकी सामग्रीको (आदाय) लेकर (कौत्कुटिकः) चार हाथ जमीन देखकर (व्रजन्) जाता हुवा (देशसंयत) देशव्रती श्रावक (संयतायते) मुनिके समान आचरण करता है ॥६॥

भावार्थ-अपनी सम्पत्तिके अनुसार देव, शास्त्र तथा गुरुओंके पूजनके योग्य जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प फलादिक सामग्रीको लेकर तथा रास्तेमें चार हाथ प्रमाण जमीन देखकर चलनेवाला देशव्रती श्रावक भी मुनिके समान मालुम होता है।

सारांश यह है कि मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जाते समय अपनी शक्ति अनुसार सामग्री लेकर जाना चाहिये और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रास्तेमें चार हाथ जमीन देखकर साधुके समान ईर्यासमितीसे चलना चाहिये ।

दृष्ट्वा जगद्बोधकरं भास्करं ज्योतिरार्हतम् ।
स्मरतस्तद्गृहशिरोध्वजालोकोत्सवोऽघहृत् ॥७॥

अन्वयार्थ- (तद्गृहशिरोध्वजालोकोत्सवः) जिनेन्द्र भगवानके मन्दिरके मस्तकपर लगी हुई ध्वजाके देखनेसे उत्पन्न हुवा आनन्द (जगद्बोधकरं) बहिरात्मा प्राणियोंकी मोहनिद्राको दूर करनेवाले (भास्करं) जिनसूर्यको देखकर (आर्हतं) अरहंत भगवानके (ज्योतिः) तेजोमय वचनको (स्मरतः) याद करनेवाले श्रावकके (अघहृत्) पापको नाश करनेवाला होता है ॥७॥

भावार्थ-इस श्लोकमें एक दृष्टांत दूसरा दार्ष्टांत दोनों दिय गये हैं ।

प्रातःकालमें पूर्वोक्तविधिसे जिनमन्दिरमें जानेवाला श्रावक जगतको प्रकाशित करनेवाले सूर्यको देखकर विचार करता है-कि जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशसे अपने अपने व्यवहारको सम्पादन करनेवाले प्राणियोंका मार्गदर्शक है तथा निद्रासे जगानेवाला है, उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान भी अपनी ज्ञानात्मक तथा वचनात्मक किरणोंसे संसारके बहिरात्मा प्राणियोंकी मोहनिद्राका नाश करनेवाले है, उद्बोधको देनेवाले है, हितमार्गके दर्शक हैं,प्राणियोंकी मनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले हैं । ऐसा विचार करनेवाले भव्यश्रावकके-जिनेन्द्र भगवानके मन्दिरपर लगी हुई ध्वजाको देखकर जो आनंद होता है, वह आनंद भगवानके गुणानुराग रंजित होनेसे उसके पापोंका नाश करनेवाला होता है ॥७॥

वाद्यादिशब्दमाल्यादिगन्धद्वारादिरूपकैः ।
चित्रैरारोहदुत्साहस्तं विशेन्निसहीगिरा: ॥८॥

अन्वयार्थ- (चित्रैः) नानाप्रकारके तथा आश्चर्यको पैदा करनेवाले (वाद्यादिशब्दमाल्यादिगंधद्वारादिरूपकैः) वादित्र तथा स्वाध्यादिक शब्दसे माला धूपचूर्णादिगंधसे तथा द्वारतोरण और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखरपर बने हुये चित्रों द्वारा (आरोहदुत्साहः) वृद्धिको प्राप्त हुवा है धर्माचरण सम्बन्धी उत्साह जिसको ऐसा श्रावक (निसहीगिरा) निःसही इस शब्दका उच्चारण करता हुवा (तं) उस मन्दिरमें (विशेत्) प्रवेश करे ॥८॥

भावार्थ- जिनमन्दिरमें प्रातःकालीन, घंटा आदि अनेक प्रकारके वादित्रोंके शब्द होते हैं, कोई भव्य स्वाध्याय करते हैं, कोई स्तुति, मंगल, गीत आदि गाते हैं। उनके शब्दोंसे, तथा मन्दिरजी में तोरण वन्दनमालामें लगीं हुई चम्पा, गुलाब आदि नानाप्रकारकी सुगन्धि मालाओंकी धूप आदिकी सुगन्धिसे और प्रवेशद्वारके खम्भोपर तथा शिखरपर अंकित नानाप्रकारके चित्रोंसे दर्शनार्थी भव्य श्रावकके अन्तःकरणका उत्साह वर्धित होता है। इस प्रकारके आनंदसे युक्त होकर निःसहि, निःसहि, निःसहि, इस प्रकार तीन वार उच्चारण करता हुवा श्रावक जिनभवनमें प्रवेश करे।

इसके बाद-

क्षालितांघ्रिस्तथैवान्तः प्रविश्यानन्दनिर्भरः ।
त्रिः प्रदक्षिणयेन्नत्वा, जिनं पुण्याः स्तुतीः पठन् ॥९॥

अन्वयार्थ- (क्षालितांघ्रिः) क्षालित किये है पैर जिसने (आनन्दनिर्भरः) आनन्दसे व्याप्त है सर्वांग जिसका ऐसा यह श्रावक (तथैव) निःसही, निःसही, निःसही ऐसा उच्चारण करता हुवा (अन्तः) जिनभवनके मध्यप्रदेशमें (प्रविश्य) प्रवेश करके (जिनं) जिनेंद्र भगवानको (नत्वा) नमस्कार करके (पुण्याः) पुण्यके आस्रवको करनेवाली (स्तुतीः) स्तुतियोंका (पठन्) पढता हुआ (त्रिःप्रदक्षिणयेत्) तीन वार प्रदक्षिणा करे ॥९॥

भावार्थ-जिनालयमें प्रवेश करते समय बाहिर छने पानीसे अपने पैर धोना चाहिये। विना पैर धोये मन्दिरमें प्रवेश करना निषिद्ध है तथा पापका कारण है। पैर धोनेके बाद तीन बार निःसही निःसही शब्द उच्चारण कर आनन्दसे गद्गद होता हुवा जिनभवनमें प्रवेश करे। तथा त्रिलोकीनाथको आनन्दसे गद्गद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर नमस्कार करे । और पाप मैल का प्रक्षालन करनेवाली तथा पुण्यास्रवको बढानेंवाली, अशुभ कर्मोंकी निर्जरा करनेवाली स्तुतिको पढता हुवा तीन लोकके प्रभुकी तीन प्रदक्षिणा करे ।

इसके बाद–

सेयमास्थायिका सोऽयं जिनस्तेऽमी सभासदः ।
चिन्तयन्निति तत्रोच्चैरनुमोदेत धार्मिकान् ॥१०॥

(इयं) यह (सा आस्थायिका) वही आगमप्रसिद्ध समवसरणभूमि हैं (अयं) यह प्रतिमार्पित जिनेंद्र भगवान ही (जिनः) साक्षात् जिनराज है (अमी) यह आराधक भव्य (ते) वे ही आगम प्रसिद्ध (सभासदः) सभासद हैं (इति) इसप्रकार (चिंतयन्) चिंतवन करता हुवा श्रावक (तत्र) उस चैत्यालयमें प्रदक्षिणा करते समय (उच्चैः) बार बार (धार्मिकान्) धार्मिक पुरुषोंकी (अनुमोदेत) प्रशंसा करे ।

भावार्थ– जिनमंदिरमें प्रवेश करते समय विचार करे कि, यह चैत्यालय आगमप्रसिद्ध समवशरणभूमि है । यह प्रतिमा स्थापित जिनमूर्ति ही आगमप्रसिद्ध अष्ट प्रतिहार्यादि विभूतिसे भूषित साक्षात् अरहंत है । और ये जिनेन्द्र भगवानकी आराधना करनेवाले भव्य आगमप्रसिद्ध जिनेंद्र भगवानके सेवामें दत्तचित्त, यति आदि बारह सभाके सभासद हैं । इस प्रकार विचार करता हुवा वह श्रावक उस चैत्यालयमें बैठे हुये धर्ममें तत्पर आराधक सागार–अनागार भव्योंकी बार बार प्रशंसा करे ।

तथा–

अथेर्यापथसंशुद्धिं कृत्वाऽभ्यर्च्य जिनेश्वरम् ।
श्रुतं सूरिं च तस्याग्रे प्रत्याख्यानं प्रकाशयेत् ॥११॥

अन्वयार्थ– (अथ) इसके बाद (ईर्यापथशुद्धि) ईर्यापथशुद्धि (कृत्वा) करके (जिनेश्वरं) जिनेश्वर भगवानकी (श्रुतं) शास्त्रकी (सूरिं) आचार्य की (अभ्यर्च्य) पूजा करके (च) और (तस्य) आचार्यके (अग्रे) सामने (प्रत्याख्यानं) घरचैत्यालयमें ग्रहण किये नियमको (प्रकाशयेत्) प्रकाशित करे ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– भगवानके सामनें नमस्कार पूर्वक स्तुति पाठ पढते हुये प्रदक्षिणा देकर ईर्यापथपूर्वक प्रतिक्रमण करे। ईर्या नाम गमनका है और वह गमनपथ कहिये मार्ग जिसका वह ईर्या पथ कहलाता है। ईर्यापथसे गमन करते हुये भी जो प्रमाद हो गया हो उसकी शुद्धि करनेको ईर्यापथशुद्धि कहते हैं। तथा संयम विराधना को सम्यक्प्रकारसे शोधन करना प्रतिक्रमण कहलाता है कहा भी है–

ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादाद्
एकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा,
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥

अर्थ– ईर्यापथसे चलते हुये भी मेरे द्वारा आज प्रमादसे किसी भी प्रकारके जीवोंको यदि बाधा पहुँचाई गई हो ४ हाथ जमीन शोधकर चलनेमें गलती हुई हो वह सब गुरुभक्तिसे मिथ्या होवे। इस प्रकार ईर्यापथशुद्धि करे। इस प्रकार ईर्यापथशुद्धि करने बाद कायोत्सर्ग करनेके लिये प्रतिज्ञा करे।

जाव अरहंताणं भगवंताणं णमोकार पज्जुवासं करोमि।
तावक्कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ॥

सारांश यह है कि जबतक णमोकारमंत्रका जप देता हूं। तबतक पापकर्म के करनेवाले तथा दुष्ट आचरण करनेवाले कायका उत्सर्ग करता हूँ अर्थात् कायोत्सर्ग करता हूँ। ईर्यापथशुद्धि प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करके नमो अर्हद्भ्यः, इत्यादि पाठके द्वारा तथा–

जयंति निर्जिताशेषसर्वथैकान्तनीतयः।
सत्यवाक्याधिपाः शश्वद्विद्यानन्दा जिनेश्वराः।

अर्थ–जिन्होंने सर्वथा एकान्तवादकी कथापर विजय प्राप्त की है जो अनेकान्तमयी सत्यवाणीके अधिपति है और जो निरन्तर विद्या और आनंदसहित है। वे जिनेश्वर जयवंत रहे इस प्रकारसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनेन्द्रके सम्मुख बैठकर वाचनिक नमस्कारसे अथवा जलादिकके अष्टकसे जिनेन्द्रकी पूजा करे तथा इसी प्रकार शास्त्र और गुरुकी पूजा करे । यह इसकी जघन्य वंदनाविधि हैं । उत्तम रीतीसे तो वंदनाविधि वह घरके चैत्यालयमें कर आया है ।

ततश्चावर्जयेत्सर्वान्यथार्हं जिनभाक्तिकान् ।
व्याख्यातः पठतश्चार्हद्वचः प्रोत्साहयेन्मुहुः ॥१२॥

अन्वयार्थ– (ततः) इसके बाद यह श्रावक (यथार्हं) यथा योग्य (सर्वान्) सम्पूर्ण (जिनभक्तिाकान्) जिनभगवानकी आराधना करनेवाले भव्यजीवोंको (आवर्जयेत्) प्रसन्न करे (च) तथा (अर्हद्वचः) अरिहंत भगवानके वचनोंका (व्याख्यातः) व्याख्यान करनेवालोंको तथा (पठतः) पढनेवालोको (मुहुः) बार बार (प्रोत्साहयेत्) उत्साहित करे ।

भावार्थ– इस प्रकार ईर्यापथशुद्धि प्रतिक्रमाणादिसे गुरुके समक्ष पूर्वग्रहण किये हुये प्रत्याख्यान–प्रकाशन तक सम्पूर्ण क्रियाको कर चुकनेके बाद जिनेन्द्र भगवान की आराधना करनेवाले उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारके मुनि आर्यिका और श्रावकोंका यथायोग्य विनय करे अर्थात् मुनियोंके लिये नमोस्तु आर्यिकावोके लिये वन्दे–वन्दामि तथा क्षुल्लकोंके लिये इच्छामि कहे ।

उक्तं च– अर्हद्रूपे नमोऽस्तु स्यात् विरतौ विनयक्रिया ।
अन्योऽन्यं क्षुल्लके चाहमिच्छाकारवचः सदा ।

अर्थ– अरहंतके रूपको धारण करनेवाले दिगम्बर साधुओंको नमोस्तु कहकर नमस्कार करे । आर्यिका साध्वीके लिये वन्दे वन्दामि कहे । और क्षुल्लक परस्पर इच्छाकार वचन कहे । अर्थात् क्षुल्लकोंका इच्छामि शब्द कहकर विनय करे ।

इस प्रकार जिनभक्तोंके प्रति अनुराग प्रदर्शित करनेके अनन्तर पद–पदार्थका समर्थन लक्षणविशेषतासे शिष्योंके व्युत्पन्न करनेके लिये परमागम (सिद्धांतशास्त्र) युक्त्यागम (न्यायशास्त्र) व्याकरण (शब्दागम) शास्त्रका व्याख्यान कर रहे हो ऐसे उपाध्यायकी तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके समीप अध्ययन करनेवाले उनके शिष्योंकी बार बार प्रशंसा करके उनको प्रोत्साहन देवें ॥१२॥

इसके बाद–

स्वाध्यायं विधिवत्कुर्यादुद्धरेच्च विपद्धतान् ।
पक्वज्ञानदयस्यैव गुणाः सर्वेऽपि सिद्धिदाः ॥१३॥

अन्वयार्थ–इसके बाद वह श्रावक (विधिवत्) विधिपूर्वक (स्वाध्यायं) स्वाध्याय (कुर्यात्) करे। (च) और (विपद्धतान्) विपत्तिसे आक्रान्त दीन पुरुषोंको (उद्धरेत्) विपत्तिसे छुडावे क्योंकि (पक्वज्ञानदयस्य) परिपक्व ज्ञान और दयावाले पुरुषोंके ही (सर्वेऽपि) सम्पूर्ण ही (गुणाः) गुण (सिद्धिदाः) सिद्धि देनेवाले होते हैं ॥१३॥

भावार्थ–पूजन आदि क्रिया कर चुकने बाद–

ग्रन्थार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च ।
बहुमानेन समन्वितमनिन्हवं ज्ञानमाराध्यं ॥

व्यंजनशुद्ध, अर्थशुद्ध, उभयशुद्ध पढना, विनयसे पढना, कालमें पढना, बहुमानसे उपधानसें पढना और गुरुका नाम नहीं छिपाना आदि ज्ञानके आठ अंग कहे गये है। इस विधियुक्त क्रमसे शास्त्र पढना चाहिये। अथवा गृहस्थोंके लिये कौनसे शास्त्र पढने योग्य है कौनसे नहीं इत्यादि शास्त्रोक्त विधिसे वाचना, प्रच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेशके भेदसे पांच प्रकारकी स्वाध्याय परमागममें कही हैं। ज्ञानवृद्धिके लिये, मन स्थिर करनेके लिये तथा अशुभ कर्म प्रक्षालन करनेके लिये स्वाध्याय भी करे। तथा असाता कर्मके उदयसे शारीरिक और मानसिक शक्तिसे क्षीण दुःखित, दीन पुरुषोंका उद्धार करे। क्योंकि परिपक्व ज्ञान और दयावाले मानवके ही काठिन्य त्याग, शौर्य और सौन्दर्यादि सम्पूर्ण गुण वाञ्छित अर्थको देनेवाले वा मुक्तिपद देनेवाले होते हैं।

यहां ज्ञानका अर्थ तत्त्वावबोध है, लौकिक ज्ञानसे प्रयोजन नहीं है तथा दयाका अर्थ सम्पूर्ण प्राणियोंके दुःखके उद्भेदकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिलाषा रखना है। ज्ञान और दया जिनकी परिपक्व है अर्थात् सात्मीभूत हो चुके हैं, उनको संस्कृतमें पक्वज्ञानदय कहते हैं। उनको ही त्याग तपादि सम्पूर्ण गुण इष्टसिद्धिमें समर्थ होते है। यहाँपर लौकिक ज्ञान और कदाचित्क दयासे प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार करनेयोग्य विधिका वर्णन कर निषिद्ध कर्मोका वर्णन करते है-

मध्ये जिनगृहं हासं विलासं दुःकथां कलिम्।
निद्रां निष्ठचूतमाहारं चतुर्विधमपि त्यजेत् ॥१४॥

अन्वयार्थ-(मध्ये जिनगृहं) जिनालयके मध्यमें (हासं) हंसीको (विलासं) शृंगारादि चेष्टाको (दुःकथां) चित्तको कलुषित करनेवाली कथाओंको (कलिं) कलहको (निद्रां) निद्राको (निष्ठचूतं) थूकना (अपि) और (चतुर्विधं) चार प्रकारके (आहारं) आहारको (त्यजेत्) छोड देवें ॥१४॥

भावार्थ-यह दिनचर्याका वर्णन महाश्रावककी अपेक्षासे है-इसलिये मध्ये जिनगृहका अर्थ सम्पूर्ण चैत्यालय लेना चाहिये। तथा इतर श्रावककी अपेक्षया गंधकुटी अर्थात् मन्दिरका मध्यभाग जिसमें भगवान विराजमान है ऐसी वेदो लेना चाहिये। उस गंधकुटीमें वा जिन चैत्यालयमें हंसी शृंगारकी चेष्टाएं चित्तको कलुषित करनेवाली कामक्रोधादीको बढानेवाली कथाऐं तथा राजकथा, चोरकथा, देशकथा आदि विकथायें, कलह, निद्रा, थूकना, खाद्य, स्वाद्य, पेय और लेह्य आदि चार प्रकारके आहार, इन सात बातोंका त्याग करे अर्थात् गंधकुटीमें इन सात प्रकारकी चेष्टाओंका त्याग करें।

इस प्रकार प्रातःकालीन धार्मिक क्रियाओंका वर्णन करके आगे-विधेय धनोपार्जन विधिका उपदेश देते हैं-

ततो यथोचितस्थानं गत्वाऽर्थेऽधिकृतान् सुधीः।
अधितिष्ठेद्व्यवस्येद्वा स्वयं धर्माविरोधतः ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थं- (ततः) पूजादि क्रियाओंके अनन्तर (सुधीः) हिताहितविचारक श्रावक (यथोचितस्थानं) द्रव्यादिके उपार्जन योग्य दुकानादिमें (गत्वा) जाकर (अर्थे) द्रव्योपार्जन करनेमें (अधिकृतान्) नियुक्त पुरुषोंको (अधितिष्ठेत्) सनाथ करे अर्थात् उनकी देखभाल करे। (वा) अथवा (धर्माविरोधतः) धर्मके अविरुद्ध (स्वयं) स्वतः (व्यवस्येत्) व्यवसाय करे ॥१५॥

भावार्थं- पूजादिक क्रिया करनेके बाद इस लोक और पर लोक सम्बन्धी हिताहितके विचार करनेमें चतुर श्रावक अर्थोपार्जन करनेके लिये यथोचित अर्थोपार्जनके योग्य दुकानादिमें जाकर धनकी रक्षा करनेके लिये धन वृद्धि करनेके लिये नियुक्त अधिकारियोंका निरीक्षण करे। तथा जिसकी आर्थिक स्थिति अन्य कर्मचारियोंद्वारा काम कराने योग्य नहीं हैं वे श्रावक स्वयं अर्थोपार्जन करने के लिये वा उपार्जित अर्थकी रक्षा करनेके लिये प्रवृत्ति करे। परन्तु धनोपार्जन करते समय यह ध्यान रखे कि उसकी प्रवृत्ति धर्मविरूद्ध न हों। न्याय और धर्मयुक्त अर्थोपार्जन का खुलासा यह है कि—

राजा का कर्त्तव्य है कि वह दरिद्र, धनाढच प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित और ऊंच,नीच आदि सबमें माध्यस्थभाव रखकर न्याय करें। तथा राज्याधिकारी जिसमें राजा और प्रजाका हित हो ऐसा व्यवहार करे। और जो व्यापारी हैं वे लेन देनमें हीनाधिक माप तोल न करे। तथा शास्त्रनिषिद्ध वनको जलाने आदिकी आजीविका न करे। अर्थात् इनका परित्याग करे। यही धर्म अविरुद्ध राजादिकोंका अर्थोपार्जन है।

पुरुषार्थताकी सफलता तथा निष्फलतामें हर्ष विषाद नहीं करना चाहिये ऐसा कहते हैं-

निष्फलेऽल्पफलेऽनर्थफले जातेऽपि पौरुषे।
न विषीदेन्नान्यथा वा हृषेल्लीला हि सा विधेः ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- वह श्रावक (पौरुषे) पुरुषार्थके (निष्फले) निष्फल (अल्पफलें) अल्पफल हैं जिसका ऐसा तथा (अनर्थफले) विपरीत फलवाला (जाते) हो जानेपर (अपि) भी (न विषीदेत्) विषाद न करे (अन्यथा) लाभ हो जानेपर (न वा हृषेत्) हर्षित भी न होवे (हि) क्योंकि (सा) वह सब (विधेः) भाग्यकी (लीला) लीला है ॥१६॥

भावार्थ- अर्थोपार्जनसम्बन्धी पुरुषार्थ करनेपर भी यदि लाभ न हो अथवा धनका नाश हो जाय वा जितना होना चाहिये था उतना न होकर न्यून फलकी प्राप्ति होनेपर अपने चित्तमें विषाद न करे । आकुलित चित्तवाला न होवे। और पुरुषार्थ करने पर अधिक फलकी प्राप्ति विशेष धनोपार्जन हो जाय तो हर्षित न होवे । क्योंकि पुरुषार्थकी सफलता निष्फलता वा अल्पफलता ये पूर्वोपार्जित शुभाशुभकर्मका फल है । इसलिये इसमें हर्ष विषा-दसे क्या लाभ है ।

आगे- प्राणयात्रा विधिके लिये नौ श्लोक कहते हैं-

कदा माधुकरी वृत्तिः सा मे स्यादिति भावयन् ।
यथालाभेन सन्तुष्ट उत्तिष्ठेत तनुस्थितौ ॥१७॥

अन्वयार्थ- (मे) मेरे लिये (सा) वह (माधुकरी) मुनिके समान वृत्ति (कदा) कब (स्यात्) होगी (इति) इस प्रकार (भावयन्) भावना करता हुवा (यथालाभेन) जैसा भी व्यापारमें लाभ हुवा उससे (संतुष्टः) संतुष्ट होता हुवा (तनुस्थितौ) शरीर की स्थितिकें लिये (उत्तिष्ठेत) उठें ॥१७॥

भावार्थ- तदनन्तर-अर्थोपार्जन कालमें जो कुच्छ भी लाभ हुवा है उसमें सन्तुष्ट होकर मुनियोंके आहारार्थ निकलनेके समयपर मुझे मुनियोंके समान माधुकरी वृत्ति कब प्राप्त होगी, अर्थात् मुझे शास्त्रोक्त विधिसे भिक्षा वृत्तिका लाभ किस समय होगा ऐसा मनमें चिंतवन करता हुवा अपनी शरीर सम्बन्धि स्वास्थ्य की रक्षाके लिये भोजनमें आसक्ति न रखता हुवा भोजनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये घर जावे। भ्रमरको मधुकर कहते हैं-उसकी वृत्तिको माधुकरी कहते हैं। जिस प्रकार भ्रमर पुष्पोंको दुःखित न करके प्रत्युत प्रफुल्लित करके उनका रस चूसता है, उसी प्रकार पुष्पके समान दाताओंको किसी प्रकारका कष्ट न देकर प्रत्युत उनके चित्तको हर्षित करके जो आहार लिया जाता है, उसको माधुकरीवृत्ति कहते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावकके मनमें निरंतर मुनिपद धारणा करनेकी भावना बनी रहती है। यद्यपि वह किसी कारणसे मुनिमुद्राको धारण नहीं कर सकता है, परन्तु उसके मनमें हमेशा संसार शरीर भोगोंसे विरक्ति रहती है। इसलिये वह प्रत्येक समय प्रत्येक कार्यमें मुनिचर्याकी भावना करता रहता है ॥१७॥

नीरगोरसधान्यैधः शाकपुष्पाम्बरादिभिः ।
क्रीतैः शुद्धयविरोधेन वृत्तिः कल्प्याऽघलाघवात् ॥१८॥

अन्वयार्थ- (शुद्धयविरोधन) श्रावकको अपने ग्रहण किये हुये सम्यक्त्व तथा व्रतोंका घात नहीं करते हुए (क्रीतैः) मूल्य देकर लाये हुये (नीरगोरसधान्यैधःशाकपुष्पाम्बरादिभिः) जल, दूध, दही, धान्य, लकडी, शाक, फूल, कपडा आदिके द्वारा (अघलाघवात्) अल्पपाप हो ऐसी (वृत्तिः) स्वास्थ्यानुवृत्ति (कल्प्या) करनी चाहिये ॥१८॥

भावार्थ- व्रती श्रावक अपने सम्यग्दर्शन और व्रतोंमें अतिचार न लगाते हुये खरीदकर लाये हुये पानी, दूध, दही, घृत तान्दुलादि धान्य, लकडी, पत्रादि शाक, भाजी, फल, फूल, कपडे, खाट आदिके द्वारा अपना उदरनिर्वाह करे। जिससे अधिक पाप न हों। जिस क्रियाके अथवा आहारादि करनेमें विशेष सावद्य होता है ऐसी क्रिया व्रती श्रावक न करे।

सधर्मिणोऽपि दाक्षिण्याद्विवाहादौ गृहेऽप्यदन् ।
निशिसिद्धं त्यजेद्दीनैर्व्यवहारं च नावहेत् ॥१९॥

अन्वयार्थ- (दाक्षिण्यात्) व्यवहार-निर्वाहके प्रयोजनसे (सधर्मिणः) साधर्मी भाईयोंके (अपि) भी (गृहे) घरमें तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विवाहादौ) विवाहादिकमें (अपि) भी (अदन्) भोजन करनेवाला यह व्रती श्रावक (निशि) रात्रिमें (सिद्धं) बनाये हुये भोजनको (त्यजेत्) छोडे (च) और (हीनैः) हीन पुरुषोंके (सह) साथ (व्यवहारं) व्यवहारको (न आवहेत्) नहीं करे ॥१९॥

भावार्थ- श्रावक, विवाह आदिके समयमें कोई साधर्मी आग्रह करे तो जा सकता है। अपने पुत्र पौत्रादिकके विवाहमें भी भोजन कर सकता है। परन्तु रात्रिमें बनाये हुये भोजनको नहीं खा सकता है। क्योंकि रात्रिमें भोजन बनानेसे बहुतसे त्रस जीवोंका घात होता है। भोजनमें त्रस जीवोंका मिश्रण हो जाता है जिनका दूर करना अशक्य है। इसलिये व्रती श्रावक रात्रिमें बनाये हुये भोजनको न खावे। तथा जो जिनधर्मरूपी धर्मसे रहित है, हीनाचारण करनेवाले हैं उनके साथ दान गृहणादिकका व्यव-हार नहीं करना चाहिये।

उद्यानभोजनं जन्तुयोधनं कुसुमोच्चयम्।
जलक्रीडान्दोलनादि त्यजेदन्यच्च तादृशम् ॥२०॥

अन्वयार्थ- वह व्रती श्रावक (उद्यानभोजनं) उद्यानमें भोजन करना (जन्तुयोधनं) प्राणियोंको परस्परमें लडाना, (कुसु-मोच्चयं) फूलोंको तोडना (जलक्रीडान्दोलनादि) जलक्रीडा झूलामें झूलना आदि क्रियाको (त्यजेत्)छोड देवे (च)तथा (तादृशं) इनके समान हिंसाकी कारणभूत (अन्यत्) दूसरी क्रियाओंको भी छोड देवे ॥२०॥

भावार्थ- व्रतीश्रावक विनोदके लिये अपने मित्र वर्गोंके साथ उद्यानमें भोजन करने के लिये नहीं जावे। तथा मुर्गोंको बैल,भेडा, आदि प्राणियोंको परस्पर भिडाकर आनंद माना जाता है, वह खेल कराया जाता है, व्रती ऐसा जन्तुओंको परस्पर न तो खुद लडावे,और न दूसरे कोई लडाते हो तो उनको देखे। वनमें जाकर आमोद, प्रमोदके लिये फल तोडे जाते हैं, उसको कुसुमोच्चय कहते हैं। व्रती श्रावक आमोद प्रमोदके लिये फूल न तोडे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान की पूजा करनेके लिये फूल तोडना श्रावकके लिए निषिद्ध नहीं है। शृंगारादिसे युक्त होकर जलाशय में जाकर रागके वशीभूत होकर स्त्रीपुरुष एक दूसरेके ऊपर जल फेंकते हैं, उसको जलक्रीडा कहते हैं। व्रती पुरुष जलक्रीडा झूला झूलना आदि शब्दसे चैत्र कृष्ण प्रतिपादके दिन एक दूसरेके ऊपर राख फैंकना अशलील गाली गलोज बोलकर होली खेलना आदिको न करे। तथा जिसमें द्रव्य हिंसा और भाव हिंसाकी बाहुल्यता हो ऐसे कौमुदी महोत्सव, कुट्टन नाटक, अवलोकन संग्राम रासक्रीडा आदिको भी व्रती श्रावक नहीं करे ॥२०॥

यथादोषं कृतस्नानो मध्यान्हे धौतवस्त्रयुक् ।
देवाधिदेवं सेवेत निर्द्वन्द्वः कल्मषच्छिदे ॥२१॥

अन्वयार्थ- (मध्यान्हे) मध्यान्ह कालमें (यथादोषं) दोषानुसार (कृतस्नानः) किया है स्नान जिसने ऐसा और (धौतवस्त्रयुक्) धुले हुये दो वस्त्रको धारण करनेवाला वह श्रावक (कल्मषच्छिदे) पापोंका नाश करनेके लिये (निर्द्वन्द्वः) आकुलता रहित होता हुवा (देवाधिदेवं) देवाधिदेवकी (सेवेत) आराधना करे अर्थात् माध्यान्हिक सामायिक करे ॥२१॥

भावार्थ-अनगारोंके आहारके समयमें अर्थात् माध्यान्हिककालमें दोषानुसार स्नान करके तथा धोये हुये दो वस्त्र धारण करे। एक वस्त्र पहिनकर पूजन और दान करना निषिद्ध है। तदनन्तर धोती, दुपट्टा पहिनकर पूर्वोपार्जित वा तत्कालीन व्यापारादि क्रियादिसे उपार्जन किये हुये पापपंक प्रक्षालन करनेके लिए देवेंद्रचक्रवर्ति आचार्यादिके द्वारा पूजनीय देवाधिदेव अरहंत देवकी आराधना करे।

जिनेन्द्रभगवान के अभिषेकविधि बताते हैं-

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां पीठ्यां चतुष्कुम्भयुक्-
कोणायां सकुशश्रियां जिनपतिं न्यस्यान्तमाप्येष्टदिक् ।
नीराज्याम्बुरसाज्यदुग्धदधिभिः सिक्त्वा कृतोद्वर्तनं
सिक्तं कुम्भजलैश्च गन्धसलिलैः सम्पूज्य नुत्वा स्मरेत् ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (स्नपनं) अभिषेक करनेकी (आश्रुत्य) प्रतिज्ञा करके (तदिलां) जहांपर भगवानका अभिषेक करना है वहाँ की भूमिकी (विशोध्य) शुद्धि करके (चतुष्कुंभयुक्कोणायां) चतुष्कुंभसे युक्त है कोणा जिनकी ऐसी तथा (सकुशश्रियां) जिसपर श्री लिखी हुई है तथा कुश रखा हुवा है ऐसी (पीठचां) पिठीकापर अर्थात् सिंहासनपर (जिनपतिं) जिनेन्द्र भगवानको (न्यस्य) स्थापित करके (नीराज्य) आरती उतार कर (इष्टदिक्) इष्ट दिशामें अर्थात् पूर्व दिशामें स्थित होकर (अम्बुरसाज्यदुग्धदधिभिः) जल,फलरस,घृत,दुग्ध,दधिके द्वारा(सिक्त्वा)अभिषेक करके(कृतोद्वर्त्तनं) किया है उद्वर्त्तन जिसने अर्थात् चन्दनका अनुलेपन करके(कुंभजलैः) चारों कोणके कलशोंसे (च) तथा (गन्धजलैः) सुगन्धित जलसे (सिक्तं) अभिषेक करे। तथा (सम्पूज्य) जलचन्दनादिक अष्ट द्रव्यसे पूजा करके और (नुत्वा) नित्य वन्दनादि विधिसे नमस्कार करके (अन्तमाप्य) अपने हृदयमें भगवानको विराजमान करके (स्मरेत्) अपनी शक्ति अनुसार भगवानका ध्यान करे व जप करे ॥२२॥

भावार्थ- अरहन्त देवकी उपासना छह प्रकारसे होती है।

उक्तं च-

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम् ।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥

अर्थ- प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजाका फलके भेदसे देवकी आराधना छह प्रकारकी है। भगवानके अभिषेक करनेकी प्रतिज्ञा करना प्रस्तावना है। प्रस्तावना आदि छहो प्रकारका अर्थ इस श्लोकमें संक्षेपसे वर्णन किया है। विशेष अन्यआचार्य निर्मित ग्रंथोंमें तथा ग्रंथकारके द्वारा रचित नित्य महोदय नामके अभिषेक पाठमें देखना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नपनं आश्रुत्य–इस पदके द्वारा सबसे पहिले जो अभिषेककी प्रतिज्ञा की जाती है। जिनेंद्र भगवानका यहां अभिषेक होनेवाला है यह प्रस्तावना है।

तदिलां विशोध्य–इस पदसे भूमि शुद्ध की जाती है। अर्थात्–जो रत्न, जल, कुश, अग्निसे तर्पण किया जाता है। इसको पुराकर्म कहते है।

न्यस्य–इस पदके द्वारा जो चन्दन और अक्षतोंकी श्रीकार लिखकर उसपर जिनबिम्बको विराजमान किया जाता है उसको स्थापना कहते हैं।

अन्तमाप्य–इस पदके द्वारा भगवानको हृदयमें विराजमान करना उसको सन्निधापन कहते हैं।

इष्टदिक्–इस पदसे इष्ट दिशामें स्थित होकर अर्थात् उत्तर दिशामें अपना मुख करे और पूर्व दिशामें भगवानका मुख कर बैठकर भगवानकी जल, चन्दन आदिके द्वारा अभिषेकपूर्वक पूजा करे उसको पूजा कहते हैं। और वीतराग प्रभुकी पूजा करनेसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है तथा सम्यग्दर्शन दृढ होता है यह पूजाका फल हैं। इस प्रकार छहों प्रकारके भेदका संक्षेपसे वर्णन किया है। श्लोकका पूर्ण अर्थ इस प्रकार है तथा अभिषेककी विधिका वर्णन किया जाता है।

मध्यान्हकालकी विधि करनेवाले सबसे पहिले मैं तीन लोकके प्रभुका अभिषेक करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके जिस स्थानमें जिनेन्द्र भगवानकी मूर्ति स्थापन करना है उस भूमिकी शुद्धि करना चाहिये अर्थात् जल, रत्न, कुश, अग्निसे संतर्पण करना चाहिये। तदनन्तर अभिषेक करनेके पात्रमें दर्भके द्वारा चंदनका श्रीकार वा ह्रींकार लिखना चाहिये। अथवा किसी आचार्योंके मतसे तन्दुलसे भी श्रीकार लिख सकते हैं। जैसे कहा भी है–

निस्तुष निर्व्रण निर्मल जलार्द्रशालीयतन्दुलालिखिते।
श्रीकामः श्रीनाथं श्रीवर्णे स्थापयाम्युच्चैः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–छिलकेसे रहित अखंड और निर्मल पानीसे धोये हुये धानके चावलोंसे लिखे हुये श्रीकार अक्षरके ऊपर श्रीकी कामना करनेवाला मैं श्रीनाथकी स्थापना करता हूँ। इस प्रकार आरती उतारकर सिंहपीठपर भगवानको विराजमान करे। तदनन्तर चारो दिशामें चार कलश स्थापित करे। जिनके नीचे श्री लिखे और ऊपर कुशका क्षेपण करे। कुश और श्रीकारसहित चारो दिशाओंमें चार कलश स्थापित करनेके बाद उत्तरदिशामें मुख करके पूजा करनेवाला स्थित होवे। अथवा–इष्ट दिग्का दूसरा अर्थ यह भी है कि मंत्र बोलकर दशो दिशाओंमें दश दिक्पालोंकी स्थापना करे। तदनन्तर तीर्थोदक, इक्षुरस, द्राक्षारस, आम्ररस, घृत, दुग्ध, दधि आदि गायके दूधादिके द्वारा अथवा महिषी के दूध, दधि आदि पंचामृतसे तीन लोकके नाथका अभिषेक करके इलायची, जायफल, लवंग आदि कषायले पदार्थोंसे उद्वर्तन करके तथा दूर्वा, गोमय, भस्म, अक्षत, चन्दन, जलादिके द्वारा आवतरणं वा आरती करके चतुष्कोण स्थित कलशोंसे भगवानका अभिषेक करे। इसके बाद जलचन्दनादि अष्टद्रव्य पूजा करके नित्यवन्दनाविधिसे नमस्कार करे। और इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार भगवानका ध्यान करे तथा उनका हृदयमें स्मरण कर अंतर्जल्पसे जाप्य करे। विशेष विधि अन्य शास्त्रोंमें देखना चाहिये।

और भी पूजान्तरका वर्णन–

सम्यग्गुरूपदेशेन सिद्धचक्रादि चार्चयेत्।
श्रुतं च गुरुपादांश्च को हि श्रेयसि तृप्यति ॥२३॥

अन्वयार्थ–इसके बाद वह श्रावक (सम्यग्गुरूपदेशेन) सच्चे गुरुके उपदेशसे (सिद्धचक्रादि) सिद्धचक्र पार्श्वनाथ यंत्रादिकी (च) और (श्रुतं) शास्त्रकी (च) तथा (गुरुपादान्) गुरुचरणोंकी (अर्चयेत्) पूजा करे (हि) क्योंकि (श्रेयसि) कल्याण कार्योमें (कः) कौन (तृप्यति) तृप्त होता है अर्थात् कोई नहीं ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-अभिषेक विधिके अन्तर सच्चे गुरुके उपदेशसे लघुसिद्धचक्र, बृहद्सिद्धचक्र, पार्श्वनाथयंत्र, गणधरवलय, श्रुतकी गणधरोंकी सरस्वती यंत्रकी जिसमें सम्यक्त्व और संयमसे विरोध नहीं करके तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष फलके देनेवाले जिनागममें सिद्ध पूजा करे। कोई शंका करे कि अकेले जिनेन्द्रकी पूजासे ही सम्पूर्ण विघ्न नष्ट हो जाते है, सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जातीं है तो फिर अन्य यंत्रादिककी पूजासे क्या फायदा है? इसका समाधान यह है कि मोक्षमार्गके साधनोंके मिलनेपर उनकी प्राप्ति किये विना कौन मुमुक्षु सन्तुष्ट हो सकता है?

इस श्लोकमें सम्यग्गुरूपदेश जो शब्द दिया है इससे यह सूचित किया गया है कि-सिद्धचक्र कलिकुण्ड आदिकी पूजामें गूढ अर्थ वा गूढविधि रहती है। इसका विस्तार भावसंग्रहमें पदस्थ ध्यानके प्रकारणमें विशेषरूपसे किया गया है-क्योंकि यंत्रोंका पदस्थ ध्यानमें ध्यान भी किया जाता है। गुरु उपदेशके विना यंत्रोंका गूढ रहस्य नहीं जाना जाता है। अथवा यद्वा तद्वा विधि हो जानेसे निष्फलता वा विपरीतता भी हो सकती है। इसलिये यंत्रोंकी पूजा गुरुओंके उपदेशसे विधि जानकर करे। इति मध्यान्ह पूजाविधिः ॥२३॥

ततः पात्राणि सन्तर्प्य शक्तिभक्त्यनुसारतः।
सर्वांश्चाप्याश्रितान् काले साम्यं भुञ्जीत मात्रया ॥२४॥

अन्वयार्थ-(ततः) इसके बाद (शक्तिभक्त्यनुसारतः) अपनी शक्ति और भक्तिके अनुसार (पात्राणि) मुनि आर्यिकादिक पात्रोंको (च) तथा (सर्वान्) सर्व (आश्रितान्) अपने आश्रितोंको (संतर्प्य) सन्तुष्ट करके (काले) कालमें (मात्रया) जिससे अजीर्ण आदि न हो ऐसा (सात्म्यं) अपनी प्रकृतिके अविरुद्ध (भुञ्जीत) भोजन करे ॥२४॥

भावार्थ-पूजा करनेके बाद व्रती श्रावक द्वारापेक्षण करे। अपनी शक्ति और भक्तिके अनुसार पात्रोंको दान देवे। तथा अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रित बालक, मातापिता, कार्य करनेवाले वा तिर्यंचादि सम्पूर्ण प्राणियोंको भोजनपानके द्वारा भरण पोषण करके योग्य कालमें स्वयं प्रमाणसे सात्म्य भोजन करे।

इस श्लोकमें मात्रामें भोजन करे उसका लक्षण है जिसके खानेसे अजीर्ण न होकर वा शीघ्र पच सकता हो उसको मात्रा कहते हैं–

उक्तं च– पानाहारादयो यस्य विरुद्धाः प्रकृतेरपि।
सुखित्वायावकल्पन्ते तत्सात्म्यमिति कथ्यते ॥

अर्थ–प्रकृतिविरुद्ध भी आहार जिसके संयोगसे खानेपर सुखी बनानेके लिये कल्पित होते हैं, उसे सात्म्य कहते हैं। जैसे किसी चीजको मेथीका छौंक देकर खाना, किसी चीजको सोंठ आदि मिलाकर खाना। मात्रा शब्दका अर्थ अच्छी तरह सुगमतासे पचनेवाला है अर्थात् जितना खानेसे अन्न जल्दी और सुगम रीतिसे पच जावे उतना ही खाना चाहिये। कहा भी है कि–

सायं प्रातर्वा वन्हिमनवसादयन् भुञ्जीत।

अर्थात् सुबह और शामको उतना ही खावे जो जठराग्नीको कष्ट देनेवाला न हो। जठराग्नि जितनेको सुगमतासे पचा सके उतना ही सुबह शामको भोजन करना चाहिये। और भी कहा है कि-

गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्रप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं तावद्विजीर्यति ॥

अर्थ–गरिष्ठ पदार्थ जो हों उन्हें अपनी भूखसे आधा खाना चाहिये और हल्के पदार्थ अति तृप्त होकर नहीं खाना चाहिये। सामान्य तृप्तिपर्यंत खाना चाहिये। अति नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार खाया हुआ अन्न सुखसे पच जाता है। यही मात्राका प्रमाण है और इस मात्रासे सात्म्य किया हुआ भोजन भूख लगनेपर खाना चाहिये, इसीका नाम कालमें भोजन करना कहलाता है।

तद्विस्तरस्तश्शास्त्रंत्विदम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् भोजन कालके सम्बन्धमें यह शास्त्र वाक्य है कि-

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे ।
विशुद्धे चोद्वारे क्षुदुपगमनेँ वातेऽसरति ।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ,
प्रयुञ्जीताहारं त्रिधिनियमितं कालः स ह्रि मतः ।।

अर्थ- मल मूत्र उत्सर्ग हो जानेपर, हृदयके प्रसन्न होनेपर, वात पित्त और कफजनित दोषोंके अपने अपने मार्गगामी होनेपर मलवाहक द्वारोंके खुलनेपर,भूखके लगनेपर, वातके ठीक अपसरण होनेंपर, जठराग्निके प्रदीप्त होनेपर, इन्द्रियोंके प्रसन्न होनेपर, देहके हलके होनेपर विधिपूवक तैयार किया हुआ नियमित आहार का ग्रहण करे । यही भोजन का काल माना गया है ।

यहाँ "काले" इस पद के द्वारा, भोजनके काल विशेषका उपदेश दिया है, इसलिए मध्यान्हकाल सम्बन्धी देवपूजा और आहार का कोई नियमित काल नहीं है यह अर्थ ध्वनित होता है । अतः यदि भूख लग आवे तो मध्यान्ह कालसे कुछ समय पहिले भी गृहीत प्रत्याख्यानके अनुसार देवपूजा आदि करके भोजन करे तो दोषाधायक नहीं है ।

भोजनोत्तर कर्त्तव्यका निर्देश-

लोकद्वयाविरोधीनि द्रव्यादीनि सदा भजेत् ।
यजेत व्याध्यनुत्पत्तिच्छेदयोः स हि वृत्तहा ।।२५।।

अन्वयार्थ- यह श्रावक (लोकद्वयाविरोधीनि) इस लोक और परलोक का बिरोध नहीं करनेवाले (द्रव्यादीनि) द्रव्योंको (सदा) हमेशा (भजेत्) सेवन करे । (व्याध्यनुत्पत्तिच्छेदयोः) व्याधिके उत्पत्ति न होने देनेमें तथा उत्पन्न हो गई हो तो उसके नाश करनेके लिये (यतेत) प्रयत्न करे (हि) क्योंकि (सः) वह व्याधि ही (वृत्तहा) संयमका घात करनेवाली है ।।२५।।

भावार्थ- व्रती श्रावक जो द्रव्य इस लोक और परलोकके पुरुषार्थ का घात करनेवाले नहीं है ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म और सहायकोंका सदैव सेवन करे। तथा ऐसी क्रिया करे जिससे शरीरमें व्याधि उत्पन्न न हो और यदि पूर्वोपार्जित असाता कर्मके उदयसे व्याधि उत्पन्न हो जाय तो शीघ्र ही उसके नाशका प्रयत्न करे। क्योंकि व्याधि संयमका घात करनेवाली है।

उसके आगे करने योग्य कार्य का निर्णय–

विश्रम्य गुरुसब्रह्मचारिश्रेयोऽर्थिभिः सह।
जिनागमरहस्यानि विनयेन विचारयेत् ॥२६॥

अन्वयार्थ– भोजन करनेके बाद श्रावक (विश्रम्य) थोडी देर विश्रांति लेकर (गुरुसब्रह्मचारिश्रेयोऽर्थिभिः) गुरु, सहपाठी और अपना चाहनेवालोंके (सह) साथ (जिनागमरहस्यानि) जिनागमके रहस्यका (विनयेन) विनयपूर्वक (विचारयेत्) विचार करे।

भावार्थ– वह श्रावक भोजन करनेके बाद थोडी विश्रांति लेकर गुरुके मुखसे सुने हुये शास्त्रका रहस्य परिशीलनके विना अथवा ऊहापोहके विना हृदयमें प्रतिष्ठित नहीं होते हैं ऐसा मनमें विचार करके शास्त्रका उपदेश देनेवाले गुरु, सहपाठी, ब्रह्मचारी तथा आत्मकल्याण इच्छुक पुरुषोंके साथ जिनागमके रहस्यका विनयपूर्वक ऊहापोह करे अर्थात् उनके साथ इसका अर्थ क्या है यह अर्थ है कि नहीं ऐसा विचार करे।

इसके बाद–

सायमावश्यकं कृत्वा कृतदेवगुरुस्मृतिः।
न्याय्ये कालेऽल्पशः स्वप्याच्छक्त्या चाब्रह्म वर्जयेत् ॥२७॥

अन्वयार्थ– (सायं) सन्ध्याकालीन (आवश्यकं) आवश्यक कर्मोंको (कृत्वा) करके (कृतदेवस्मृतिः) किया है देव और गुरुका स्मरण जिसने ऐसा वह श्रावक (न्याय्ये) उचित (काले) समयमें (अल्पशः) थोडी देर (स्वप्यात्) शयन करे (च) तथा (शक्त्या) अपनी शक्ति अनुसार (अब्रह्म) मैथुनको (वर्जयेत्) छोड देवें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ– सन्ध्याकालीन, देव, पूजा, सामायिक स्वाध्याय आदि करके एक प्रहर रात बीतने के बाद व्रती श्रावक देव गुरुका स्मरण करके थोडी देर शयन करे। यहांपर अल्पशः शब्दसे यह ध्वनित होता है थोडा शयन करना प्रशस्त होना चाहिये जिससे प्रमाद भी विशेष न हो और शरीरमें रोग भी न हो। निद्रा दर्शनावरणी कर्मका उदय है यह तो सोनेवाले के स्वतः सिद्ध है। किसीको ज्यादा निद्रा आती है और किसीको स्वल्प। रोग परिश्रमकी थकावट आदिके हो जानेपर अधिक देर तक भी शयन कर सकता है। निद्राका अल्प विशेषण शारीरिक शक्त्यनुसार लेना चाहिये। और रात्रिमें अपनी शक्ति अनुसार ब्रह्मचर्य व्रतका भी पालन करना चाहिये। अब्रह्मका त्याग तो यह उपलक्षण मात्र है इससे यावन्न सेव्या विषयातावत्तानप्रवृत्तितो व्रतयेदिति नियमवचनात् जबतक विषयोंमें प्रवृत्ति नहीं करूँगा तबतक त्याग करना यह पहिले कहा इस नियमसे एक क्षण भी त्यागके विना व्यतीत न करे। यह सूचित किया गया है ॥२७॥

आगे १७ श्लोकमें रात्रिमें निद्राभंग होजानेपर निर्वेदादि भावना भानी चाहिये उसका वर्णन करते हैं–

निद्राच्छेदे पुनश्चित्तं निर्वेदेनैव भावयेत् ।
सम्यग्भावितनिर्वेदः सद्यो निर्वाति चेतनः ॥२८॥

अन्वयार्थ– वह श्रावक (निद्राच्छेदे) रात्रिमें निद्राके भंग हो जानेपर (पुनः) फिर (निर्वेदेन) वैराग्यके द्वारा (एव) ही तत्क्षण (चित्तं) मनको (भावयेत्) संस्कृत करे क्योंकि (सम्यग्भावितनिर्वेदः) भली प्रकार अभ्यास किया हुवा वैराग्यका जिसने ऐसा (चेतनः) आत्मा (सद्यः) शीघ्र ही (निर्वाति) प्रशम सुखका अनुभव करता है ॥२८॥

भावार्थ– रात्रिमें योग्य कालमें शयन करनेपर भी यदि निद्रा उच्छेद हो जानेपर अर्थादिकका चिंतवन न करे। परन्तु निर्वेद भावनासे संसार शरीर और भोगोंकी अस्थिरताका चिंतवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके उनसे विरक्त होनेका प्रयत्न करें। क्योंकि सम्यक्प्रकार अभ्यास किया है वैराग्य का जिसने ऐसा आत्मा शीघ्र ही प्रशम सुखका अनुभव करता है।

संसारमें वैराग्यके उपदेश देते हैं–

दुःखावर्त्ते भवाम्भोधावात्मबुध्द्याऽध्यवस्यता।
मोहाद्देहं हहाऽऽत्माऽयं बद्धोऽनादि मुहुर्मया ॥२९॥

अन्वयार्थ– (हहा) बडे दुःखकी बात है कि (दुःखावर्ते) दुःख ही है लहरे जिसमें ऐसे (भवाम्भोधौ) संसाररूपी समुद्रमें (मोहात्) मोहसे (देहं) शरीरको (आत्मबुद्धया) आत्म बुद्धिसे (अध्यवस्यता) निश्चय करनेवाले (मया) मैंने (अयं) यह (आत्मा) आत्मा (मुहुः) बार बार (अनादि) अनादि कालसे (बद्धः) कर्मोंसे बंधित किया ॥२९॥

भावार्थ– अहो बडे दुःखकी बात है–अनियत रूपसे निरंतर एकके बाद एक होनेवाली तथा दुर्निवार नरकातिर्यंचादिमें होनेवाली वेदना ही है लहर जिसमें ऐसे भवरूपी समुद्रमें भ्रमण करते हुये मैंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई अविद्याके संस्कारसे पौद्गलिक शरीर को ही आत्मा समझा। और शरीरमें आत्मबुद्धिकेनिश्चयसे ही अनादि कालसे स्वसंवेदनसे जानने योग्य अपनी आत्माको ज्ञानावरणादि कर्मोंसे परतंत्र किया। क्योंकि शरीरमें आत्मबुद्धि होना ही संसार का कारण है।

उक्तं च– मूलं संसारदुःखस्य देहे एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः।

संसार के दुःखका मूल कारण शरीरको ही आत्मा समझना है। इसलिये इस मिथ्या मान्यताको छोडकर अपनी इन्द्रियोंके व्यापारको रोककर अपनी आत्मामें प्रवेश करना चाहिये। इसलिये शरीरमें आत्मबुद्धि कर्मबन्धका कारण है ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये इस समय मुझे क्या करना चाहिये—

तदेनं मोहमेवाहमुच्छेत्तुं नित्यमुत्सहे ।
मुच्येतैतत्क्षये क्षीणरागद्वेषः स्वयं हि ना ॥३०॥

अन्वयार्थ—(तद्) इसलिये (एनं) इस (मोहं) मोहको (एव) ही (उच्छेत्तुं) नष्ट करनेके लिये (अहं) मैं (नित्यं) सदव (उत्सहे) प्रयत्न करता हूँ। (हि) क्योंकि (एतत्क्षये) उस मोहके नष्ट हो जानेपर (क्षीणरागद्वेषः) क्षीण हो गये हैं रागद्वेष जिसके ऐसी यह (ना) आत्मा (स्वयं) स्वयमेव (मुच्येत) कर्मोंसे छूट जाती है ॥३०॥

भावार्थ—मोह-मिथ्यात्वके उदयसे आत्माकी परपदार्थोंमें आसक्ति होती हैं—तथा परनिजका संकल्प होता है, निजका संकल्प होनेसे नानाप्रकारके विकल्प होते हैं। संकल्प विकल्पोंसेही जीवात्माकी वृत्ति रागद्वेषमय होती है। उससे आत्माका हेयोपादेयका विवेक नष्ट हो जाता है। रागद्वेषसे कर्मबंध, कर्मबंधसे रागद्वेषभाव यह संसारचक्र निरंतर घूमता रहता है। रागद्वेषके उच्छेदक कारण मिथ्यात्वका नाश करना है, मिथ्यात्वका नाश किये बिना रागद्वेषका नाश नहीं हो सकता है। इसलिये मैं सर्वप्रथम मोहके नाश करनेका सतत प्रयत्न करता हूँ। क्योंकि मिथ्यात्वका नाश हो जानेसे परपदार्थोंकी आसक्ति स्वयमेव छूट जाती है। जिससे यह आत्मा रागद्वेषका नाश कर मुक्तिपदको प्राप्त करता है ॥३०॥

अब—इस समय बंधके कारणकी अनर्थ परम्पराका विचार करते हुये, बन्धसे विषयासक्ति और विषयासक्तिसे बंध यह बंधकी परंपराका नाश करनेकी प्रतिज्ञा करता है—

बन्धाद्देहोऽत्र करणान्येतैश्च विषयग्रहः ।
बन्धश्च पुनरेवातस्तदेनं संहराम्यहम् ॥३१॥

अन्वयार्थ—(बन्धात्) पुण्यपापकर्मके विपाकसे (देहः) शरीर होता है। (अत्र) शरीरमें (करणानि) इन्द्रिया होती है। (च)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और (एतैः) इन इन्द्रियोंसे (विषयग्रहः) विषयोंका ग्रहण होता है। (च) और (अतः) स्पर्शादि विषयको ग्रहण करनेसे (पुनः) फिर (बंधः) बंध होता है। (तत्) इसलिये (अहं) मैं (एनं) इस बंधके कारणभूत विषयग्रहण करनेको (संहरामि) मूलसे नाश करता हूँ।

भावार्थ–बंध चार प्रकारका हैं–प्रदेश बंध, प्रकृति बंध, स्थिति बंध और अनुभाग बंध है।

मन, वचन, कायकी चंचलतासे सिद्धोंके अनन्तवे भाग तथा अभव्य राशीसे अनन्त गुणे समय प्रबद्ध निरंतर बंधते है उनको प्रदेश बंध कहते हैं।

कर्मोंके आत्माके साथ रहनेकी मर्यादाको स्थितिबंध कहते हैं।

कर्मोंके स्वभावको प्रकृतिबंध कहते हैं।

तथा शुभाशुभ कर्मोंके विपाकको अनुभाग बंध कहते हैं। यहाँपर अनुभाग बंध लेना चाहिये।

पुण्यपापात्मक कर्मोंके विपाकको अनुभाग बंध कहते हैं। उससे शरीरकी प्राप्ति होती है। शरीरमें इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। इन्द्रियोंसे स्पर्शनादि इन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है और इन विषयोंका ग्रहण होता है और विषयोंमें प्रवृत्ति होनेसे शुभाशुभ, कर्म पुद्गलोंका आगमन रूप आस्रव होता है। फिर उन कर्मोंका विपाक होनेपर उदय आता है, उससे शरीरसे इन्द्रिया इन्द्रियोंसे विषयमें प्रवृत्ति यह रागादियोंका चक्र अनादिकालसे चला आ रहा है। इसलिये मुझे सबसे प्रथम बंधका मूल कारण इन्द्रिय विषयभोग या परपदार्थमें उपादेय बुद्धिका त्याग करना चाहिये। जिसके कारण मैं अपने सच्चे उपादेय आत्मीय सुखको भूल रहा हूं। उस मोहका ही सबसे पहिले समूल नाश करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांचो इन्द्रियोंके विषयोंमें भी स्त्री की अभिलाषा का त्याग अत्यन्त दुर्निवार है। इसलिये यहाँ उस स्त्री आसक्तिको दूर करनेके उपायका विचार करते हैं–

ज्ञानिसङ्गतपोध्यानैरप्यसाध्यो रिपुः स्मरः।
देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्येणैव साध्यते ॥३२॥

अन्वयार्थ– (ज्ञानिसंगतपोध्यानैः) ज्ञानियोंकी संगति तप और ध्यानके द्वारा (अपि) भी (असाध्यः) जो असाध्य है अर्थात् वशमें नहीं किये जानेवाला (स्मरः) काम (रिपुः) शत्रु (देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्येणैव) शरीर और आत्मका भेदज्ञानसे उत्पन्न हुये वैराग्यके द्वारा (एव) ही (साध्यते) वशमें किया जाता है।

भावार्थ– मैथुन संज्ञासे उत्पन्न जो संस्कार आत्मामें उत्पन्न होते हैं उसको काम कहते हैं। अथवा स्त्रीपुरुष सम्बन्धी अभिलाषाको काम कहते हैं। वह काम ऐहिक तथा पारलौकिक पुरुषार्थका नाश करके तथा आत्माका अत्यन्त अपकारक होनेसे परम शत्रु है। क्योंकि शत्रु केवल इह लौकिक कार्योंका नाश करनेवाला है परन्तु कामरूपी शत्रु इस लोक और परलोक दोनोंको बिगाडनेवाला है। ऐसा यह कामरूपी शत्रु आत्मज्ञानियोंके सत्समागमसे पराजित नहीं होता है। बडे बडे कायक्लेशादि तपश्चरणोंसे भी नहीं जीता जा सकता है। पदपदार्थ आदिके चिंतवन रूप ध्यानसे भी इस पर विजय पाना अशक्य है। ऐसा यह दुर्धर कामरूपी शत्रु औदारिकादि तीन शरीर चिदानन्दमय आत्मा इन दोनोंके भेद ज्ञान रूपी सम्यग्ज्ञान तथा तथा आत्मानुभूतिसे उत्पन्न हुवा परपदार्थोंसे रागद्वेष निवृत्ति रूप वैराग्यके द्वारा हीं जींता जा सकता है। अर्थात् यह काम रूपी अरि सच्चे वैराग्य भावसे ही बशमें किया जा सकता है ॥३२॥

पूर्वमें जिन्होंने इस भेदज्ञानके द्वारा स्त्री आदि सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग किया था—प्रशंसा करते हुये और केवल अपनी स्त्रीके त्यागकी असमर्थताकी निन्दा करते हुये कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्यं भेदज्ञानाय तादृशम् ।
धिङ्मादृशकलत्रेच्छातंत्रगार्हस्थ्यदुःस्थितान् ॥३३॥

अन्वयार्थ- (ये) जिन्होंनें (भेदज्ञानाय) शरीर और आत्माके भेदज्ञान के लिये (तादृशं) उस प्रकारके ऐश्वर्यादियुक्त (राज्यं) राज्यको (अत्यजन्) छोड दिया था (ते) वे भरतादि चक्रवर्ती (धन्याः) धन्य हैं। किंतु (मादृशकलत्रेच्छातंत्रगार्हस्थ्यदुस्थितान्) मेरे जैसे स्त्रीकी इच्छाकी पराधीनतासे दुःखी गृहस्थोंको (धिक्) धिक्कार है ॥३३॥

भावार्थ- जिन्होंने पूर्वभवमें आचरित तप और श्रुतके अभ्यासजनित पुण्य विशेषसे प्राप्त हुई महान पुरुषोंके द्वारा श्लाघनीय साम्राज्य लक्ष्मीको भोग किया। परन्तु अन्तमें भेद ज्ञानकी प्राप्तिके महत्वको तथा आत्मगौरवको समझकर पूजा, ऐश्वर्य, वीर्य, आज्ञा, परिजन, कामभोग आदि तथा आत्मज्ञानहीन पुरुषोंके द्वारा दुस्त्याज्य ऐसी साम्राज्य लक्ष्मीको भी जीर्ण तृणके समान तुच्छ समझकर त्याग कर दिया है, वे भरत चक्रवर्ती, सगरचक्रवर्ती आदि महापुरुष धन्य है। किंतु हमारे समान तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके भी सम्यक्त्व प्राप्त करके भी, जो स्त्रीसम्बन्धी अभिलाषाकी परतंत्रताके आधीन होकर गृहस्थाश्रममें रहकर अनादि कालसे संसारमें परिभ्रमण कर रहे हैं। उन्हें धिक्कार हैं।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यस्त यह चार प्रकारके आश्रम है। इनमें दूसरे आश्रममें रहनेवालोंको गृहस्थ कहते हैं। और गृहस्थके भाव या कर्मको गार्हस्थ्य कहते हैं। गृहस्थाश्रममें स्थिति उन्हींकी होती हैं, जिनके मनकी वृत्ति स्त्रीसंसर्गकी अभिलाषाओंसे निवृत्त नहीं होती है, ऐसे जीवोंको स्त्री जिसमें कारणभूत है ऐसे मकान व्यापारादिक आरंभ करने पडते हैं। सब पापोंकी कारणभूत स्त्री है। जबतक स्त्रीका परित्याग नहीं है तबतक संसारके सम्पूर्ण कार्य करने पडते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनको शारीरिक, मानसिक व्याधि और आधियोंसे अपनी दुस्थितिका उपभोग करना पडता है, और जो चारित्ररूपी असली रसास्वादसे वंचित रहते हैं, ऐसे पुरुष तत्त्वका अनुभव करते हुये भी चारित्रमोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे गृहस्थाश्रमको छोड नहीं सकते हैं, उन्हें धिक्कार है और भरतचक्रवर्ती आदि जिन्होंने महान विभूतिका एक क्षणमें त्याग किया है उन्हें धन्य है। रात्रिमें निद्राके उच्छेद होनेपर व्रती श्रावक ऐसा विचार करे।

इस ग्रन्थकी टीकामें भरतादिका उदाहरण दिया है। उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्यके सामने जैसा निमित्त मिलता है वैसे ही परिणाम होते हैं। यह अनादिकालीन निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका निमित्त पाकर वस्तुका परिणमन होता है। जैसे पानी तो एक है परन्तु जैसा निमित्त मिलता है वैसा परिणमन करता है। नीम्बका निमित्त पाकर कडुवा होता है और इक्षुके संयोगसे मधुर। कहा भी है-

देखो ऐ स्वाति बून्द सीप मुख पडी मोती होय।
केलिमें कपूर बाँस माँहि बंसलोचना॥
ईखमें मधुर पुनि, नीममें कटुक रस,
पन्नगके मुख परी होय प्रानमोचना॥
अंबुज दलनपरि परी मोति सम दिपै,
तपन तवेपै परी नसै, कछु सोचना॥
उतकिष्ट मध्यम जघन्य जैसौ संग मिलै,
तैसौ फल लहै यति पोच मति पोचना॥

इसलिये जैसी संगति वा निमित्त मिलता है जीवकी परणति वैसीही हो जाती है, यद्यपि परिणमन करनेकी शक्ति प्रत्येक द्रव्यकी स्वकीय है, स्वमें ही परिणमन होता है परन्तु निमित्त बिना नहीं होता। जैसे सूर्यकान्त मणिमें अग्निरूप होनेकी शक्ति स्वतः है, शक्ति वह बाहिरसे नहीं आती है, परन्तु फिर भी सूर्यकी किरणोंके संयोग बिना कभी भी वह सूर्यकान्त मणि अग्निरूप नहीं हो सकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जैसे पुद्गल वर्गणाओमें कर्मरूप होनेकी शक्ति है और जीवमें भी रागद्वेषरूप परिणमन होनेकी शक्ति है। परन्तु जबतक जीवके रागद्वेष भावोंका निमित्त नहीं मिलेगा तबतक पुद्गल वर्गणा कर्मरूप नहीं हो सकती और पौद्गलिक कर्मोके उदय बिना रागद्वेष भाव नहीं हो सकता है। यह निमित्त नैमित्तिक सम्बध अनादिकालसे है। इसलिये हमारे सामने भोगविलासियोंका आदर्श रहेगा तो हमारा मन चंचल होकर उसी तरफ जायेगा और महान् पुरुषोंका विचार करेंगे तो अपने मनमें दृढता आयेगी। आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेगिनी, निर्वेदिनी ये चार कथायें हैं। इनमें बोधि और समाधिकी कारणभूत संवेगिनी और निर्वेदिनी कथा हैं जिसको सुनकर प्राणियोंके मनमें पापसे भीति और भोगोंसे विरक्ति होती है। इसलिये इन कथाओंका निरंतर चिंतवन करना चाहिये।

भरतचक्रवर्तीका संक्षेपसे वर्णन

अयोध्या नगरीमें वृषभनाथ भगवानके यशस्वती और सुनन्दा ये दो रानियां थी। सुनन्दाके बाहुबली और सुन्दरी ये दो पुत्र पुत्री थे और यशस्वतीके भरत, वृषभ, अनन्तवीर्यादि सौ पुत्र और ब्राह्मी नामकी एक पुत्री थी।

आदिनाथ भगवानने भरतादि पुत्रोंके लिये राज्यका विभागकर दैगम्बरी दीक्षा धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया और एक हजार वर्ष घाट एक लाख पूर्वतक भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देकर संसारसमुद्रसे पार किया। अन्तमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिर्वृति शुक्ल ध्यानरूपी अग्निसे अघातिया कर्म काष्ठको जलाकर मोक्षपद प्राप्त किया।

आदिनाथके पुत्र भरत चक्रवर्तीकी आयु ८४०००० लाख पूर्व की थी। ५०० धनुष ऊंचा शरीर था। ७७००००० लाख पूर्वतक तो उनका कुमार काल रहा अर्थात् इतने लम्बे कालतक उन्होंने राज्य नहीं किया। तदनन्तर एक हजार पूर्व वर्षतक वे भरत चक्रवर्ती माण्डलीक राजा रहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन पूर्वमें किये हुये तपके बलसे भरतचक्रवर्तीकी आयुधशालामें त्रिभुवनको विस्मित करनेवाला चक्ररत्न उत्पन्न हुवा।

चक्रकी उत्पत्तिसे अतिशय हर्षको प्राप्त हुये चक्रवर्तीनें चक्रकी पूजा की और विजयनिमित्त पूर्वदिशामें प्रयाण किया ।

क्रम-क्रमसे गंगा,सिंधु आदिओंको पार कर षट् खंडमें रहनेंवाले राजा तथा मागधादि सम्पूर्ण देवोंको अपने वश करके साठ हजार वर्षके बाद अपने पूर्वोपार्जित शुभकर्मके उदयसे विजय प्राप्त कर अयोध्या नगरीमें आये ।

चक्रका अयोध्यामें प्रवेश नहीं करना

जब सम्राट् शुभमुहूर्तमें अयोध्यामें प्रवेश करने लगे तो उनका चक्र आगे नहीं बढा । अयोध्याके बाहिर ही स्थित रहा । चक्रके अयोध्यामें प्रवेश नहीं करता हुवा देखकर चक्रवर्तीने अपने राजपुरोहितसे इसका कारण पूछा । पूरोहितने कहा- हे प्रभो ! आपने षट्खंड पृथ्वीपर रहनेवाले राजाओंपर विजय करली है, परन्तु आपके साथ द्वेष रखनेवाले आपके लघुभ्राता, बाहुबली आदि आपके आज्ञा स्वीकार नहीं करते हैं जबतक आप इनपर विजय प्राप्त नहीं करोगे तबतक चक्र भीतर प्रवेश नहीं करेगा । जैसे बाहिरी, वस्त्र आदिका त्याग करना सरल है, परन्तु अंतरंगम होनेवाली कषाय और विषयवासनाओंका त्याग करना कठिन है, उसी प्रकार बाहिरके शत्रुओंको जीतना सरल है परन्तु अपने नजदीक रहनेवाले अपने भाईयोंको जीतना कठिन है ।

इस प्रकार पुरोहितके वचन सुनकर सम्राटने अपने भाईयोंके पास दूत भेजा। सम्राट्की आज्ञा सुनकर बाहुबलीको छोडकर बाकी सम्पूर्ण भाईयोंने संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर आदिनाथ भगवानके समक्ष संसारनाशक जिनेन्द्रमुद्रा धारण कर मोक्ष पद प्राप्त किया ।

बाहुबलीके पास भी दूत गया था । परन्तु बाहुबलीने भरतकी आज्ञामें रहना स्वीकार नहीं किया । अन्तमें दोनों भाइयोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और मल्लयुद्ध हुवा अन्तमें तीनों प्रकारके युद्धमें भरत चक्रवर्ती हार गये और विजयश्री बाहुबलीको प्राप्त हुई। यह देखकर भरत चक्रवर्तीने क्रोधावेशमें आकर बाहुबलीपर चक्र चला दिया। बाहुबली चरमशरीरी थे, इसलिये चक्र उनको प्रदक्षिणा देकर वापिस आ गया।

भरत चक्रवर्तीके द्वारा चक्र चलाया हुआ देखकर बाहुबली संसारके स्वरूप का विचार करने लगे। अहो! क्षणिक सुखोंके लिये पिता पुत्रको मारना चाहता है भाई भाईको मारना चाहता हैं–

यह संसार असार है, कदलीवृक्षसमान
इसमें सारपनो लखे सो मूरख परधान
सो मूरख परधान जान कुसुमनि नभि देखे
सलिल मथै घृत चहें शृंग सुन्दर खर पेखैं।
अग्नि माहिं हिम लखैं सर्पमुख माहिं सुधा तह
जान ज्ञान मन माहिं नाहिं संसारसार यह।

ऐसा संसारके स्वरूपका विचार कर संसारसे विरक्त होकर आदिनाथ जिनेन्द्र भगवान के समक्ष दीक्षा ग्रहण कर कर्मकाष्ठ नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्तर कैलासपर्वतपर मोक्ष प्राप्त किया। बाहुबलीके दीक्षा लेनेके बाद भरत चक्रवर्तीके मनमें बहुत पश्चात्ताप हुवा। अनन्तर आयोध्यामें प्रवेश किया। भरत चक्रवर्ती का वैभव संसारके सम्पूर्ण प्राणियोंकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट था। उसके ९६००० देवांगनाके समान सुन्दर युवतियां थीं। उसके तनुरक्षक ३६०, रसोई करनेवाले ३६०, तथा १४ रत्न थे। घोडा-हाथी-–गृहपति–सेनापति–सुभद्रारानी–पुरोहित तथा कामवृष्टि ये सात सजीव रत्न थे। और छत्र–असि–दण्ड–चक्र–काकिणी–चिन्तामणि और चर्म ये सात निर्जीव रत्न थे। बत्तीस यक्ष चमर ढुराते थे। ३५००००००, साढे तीन करोड, बन्धुकुल था। ऋतुके योग्य द्रव्य, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, हर्म्य, आभरण और रत्नको समूह देनेवाली कालादि नवनिधियां थी। चौवीस शंख एक क्रोड।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोडी हल तीन करोड गायें थीं। जिनका शब्द बारह योजन तक सुनाई दे सकता है पृथक् पृथक् बारह पटह थे।

इसके अतिरिक्त १००००००० थालियां, ८४००००० हाथी, ८४००००० रथ, १८०००००००० अश्व, ८४०००००० वीर योद्धा और ८८००० म्लेंच्छ राजा सेवा करनेवाले थे, ३२००० मुकुटबध्ध राजा सेवा करते थे।

३२०००नाट्यशाला, ३२००० संगीतशाला, ९६०००००० ग्राम, ७५००० नगर, १६००० खेट थे। दिव्यपुरे, रत्ने, निधि, चमू (सैन्य), भाजन, भोजन, शय्या, आसन, वाहन और नाटय ये उस चक्रवर्तिके दशांग भोग थे। इस प्रकार अनेक प्रकारकी विभूतिसे युक्त भरतचक्रवर्तीने इकसठ हजार वर्ष कम छह लाख पूर्व वर्षतक राज्य किया। एक दिन संसार शरीरसे विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण की और अन्तर्मुहूर्तके भीतर केवलज्ञान प्राप्त किया। भरतचक्रवर्तीने एक लाख पूर्व वर्षतक भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देकर कैलाशपर्वतपर निर्वाणपद प्राप्त किया।

छ्यानवे हजार नार छिनकमें दीनी छार,
अरे मन ता निहए काहें तू डरत है।
छहो खंडकी विभूति छांडत न बेर कीन्हीं,
चमू चतुरंगनसों नेह न धरत हैं॥
नौ निधान आदि जे चउदह रत्न त्याग,
देहसेती नेह तोर वन विचरत है।
ऐसी विभो त्यागत विलम्ब जिन कीन्हो,
नाहिं तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है॥
ऐसा विचार करना चाहिये।

– इति भरतचक्रवर्तीकी कथा समाप्त –

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सगर चक्रवर्तीकी कथा

देवों द्वारा पूजित भगवान जिनेन्द्र नाथको नमस्कार कर दूसरे चक्रवर्ती सगरका चरित्र लिखा जाता है।

जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध और सुंदर विदेहक्षेत्रकी पूरव दिशामें सीता नदीके पश्चिमकी ओर वत्सकावती नामका एक देश है। इसकी राजधानी पृथिविनगरके राजाका नाम जयसेन था। जयसेनकी रानी जयसेना थी। इनके रतिषेण और धृतिषेण नामके दो पुत्र थे। दोनों भाई बडे सुंदर और गुणवान थे। रतिषेण अचानक मर गया। जयसेन पुत्रशोकसे दुःखित हो धृतिषेणको राज दे, मारुत और मिथुन राजाके साथ यशोधर मुनिके पास दीक्षित हो साधु हो गये। बहुत दिनोंतक इन्होंने तपस्या की। फिर संन्यास सहित शरीर छोड स्वर्गमें ये महाबलनामक देव हुये। इनके साथ दीक्षा लेनेवाला मारुत भी इसी स्वर्गमें मणिकेतु नामक देव हुआ। एक दिन इन दोनोंने विनोद करते-करते धर्मप्रेमसे प्रतिज्ञा की कि जो हम दोनोंमें मनुष्य जन्मधारण करे, उसे स्वर्गमें रहनेवाला देव जाकर समझावे और संसारमें उदासीनता उत्पन्न कराकर जिन दीक्षाके सम्मुख करे।

महाबलकी आयु बाईस सागरकी थी। मनमाना स्वर्गसुख भोगकर अन्तमें पुण्य-प्रभावसे वह अयोध्याके राजा समुद्रविजयकी रानी सुकताका सगर नामका पुत्र हुवा। इसकी उम्र ७० लाख वंवर्षोंकी थी। इसके सोनेके समान चमकते हुए शरीरकी ऊंचाई र सौ धनुष्य अर्थात् १५७५ हाथोंकी थी। इसकी अनुपम सभी प्रसन्न होते थे। सगरने राज्यश्री प्राप्त कर छहों की। अपनी भुजाओंके बल इसने दूसरे चक्रव- । इतना होनेपर भी वह धर्म-कर्म भूल न पुत्र हुये धन-जनसे परिपूर्ण हो सुखसे था। पुण्यबलसे जीवोंको सभी बुद्धिमानोंको जिनभगवानके ने।

पू-
साढे च.
सुंदरता देख
खंड पृथ्वी विजय
र्तीका मान प्राप्त किया
गया था। इसके साठ हजार
अपना समय व्यतीत करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी समय सिद्धबनमें चतुर्मुख महामुनिको केवल ज्ञान हुआ। स्वर्गके देव विद्याधर और राजे-महाराजे उनकी पूजाके लिये आये। सगर भी भगवानके दर्शनको आया था। सगरको आया देख मणिकेतुने कहा-राजराजेश्वर! क्या अच्युत स्वर्गकी बात याद है? जहां तुमने और मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो हम दोनोंमेंसे पहले मनुष्य जन्म ले, उसे स्वर्गका देव जाकर समझावे और संसारसे उदासीन कर तपस्याके सम्मुख करे। आपने बहुत समय तक राज्य-सुख भोग किया। अब इसे छोडनेका यत्न करना चाहिये। विषय-भोग दुःखके कारण और संसारमें घुमानेवाले हैं। आप स्वयं बुद्धिमान हैं, अधिक मैं क्या समझा सकता हूँ? सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा पालनके लिए आपसे इतना निवेदन किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इन क्षणभंगुर विषयोंसे अलग हो, जिन भगवानका परम पवित्र तपो-मार्ग ग्रहण करेंगे। मणिकेतुके इन उपदेशोंका पुत्रमोही सगरपर कुछ असर न हुआ। मणिकेतुने देखा कि अभी यह सांसारिक मायाजालमें इतना फँस रहा है कि इसे विषय भोगोंसे उदासीन बना देना कठिन ही नहीं वरन् असंभवसा है। अस्तु, फिर देखा जायगा। यह विचार कर मणिकेतु अपने स्थान पर चला गया। काललब्धिके बिना कल्याण हो भी तो नहीं सकता।

कुछ समयके बाद मणिकेतुके मनमें फिर एक बार तरंग उठी कि अब किसी दूसरे प्रयत्नसे सगरको तपस्याके सम्मुख करना चाहिये। फिर वह चारण मुनिका वेष बनाकर सगरके जिनमन्दिरमें आया और भगवानका दर्शन कर वहीं ठहर गया। उसकी नयी उम्र और सुंदरताको देख सगरको बडा अचम्भा हुआ। सगरने पूछा मुनिराज! आपने इस नयी उम्रमें, जिसने संसारका कुछ सुख नहीं देखा ऐसे कठिन योगको किस लिये धारण किया? मुझे तो आपको योगी हुये देखकर बडा आश्चर्य हो रहा है। मुनि वेषी मणिकेतुने उत्तर दिया कि मेरा विश्वास है कि संसारमें सुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है ही नहीं। जिधर मैं देखता हूं मुझे दुःख या अशांति ही देख पडती है। यह जवानी बिजलीकी तरह चमक कर पल भरमें नाश होनेवाली है। ये विषय भोग सर्पके समान भयंकर हैं। संसाररूपी अथाह समुद्र नाना प्रकारके दुःखरूपी जल जीवोंसे भरा हुआ है, जिसे पार करना जीवोंके लिये दुस्तर है। तब पुण्यसे जो यह शरीर मिला है, इसे इस अथाह समुद्रमें बहने दें या जिनेन्द्र भगवानके बताये तपरूपी जहाज द्वारा इसके पार होनेका यत्न करें। मैंने तो इस असार संसारको पार करना ही अपना कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्यदेहके प्राप्त करनेका फल समझा है। तुम्हें भी मैं यही सलाह देता हूं कि इस नाशवान माया—ममताको छोड कभी नाश न होनेवाली लक्ष्मीका यत्न करो। मणिकेतुने और भी कई उदाहरणोंद्वारा सगरको समझानेका यत्न किया, पर सब कुछ जानता हुआ भी पुत्रप्रेमके वश हो वह संसारको न छोड सका। मणिकेतुको इससे बडा दुःख हुआ सगरकी दृष्टिमें अभीं संसारकी तुच्छता नजर न आयी और वह उलटा उसीमें फंसता जाता है। लाचार हो वह स्वर्ग चला गया।

एक दिन सगर राजसभामें सिंहासनपर बैठे हुये थे। उस समय उनके पुत्रोंने आकर प्रार्थना की कि पूज्यपाद पिताजी! उन वीर क्षत्रिय पुत्रोंका जन्म व्यर्थ है जो कुछ काम न कर पडे—पडे खाते—पीते और मजा उडाया करते हैं, अतएव आप कृपाकर हमें कोई काम बतलाइये। फिर वह कितना ही कठिन क्यों न हो, हम पूरा करेंगे। सगरने जवाब दिया-पुत्रों! तुम्हारा कहना ठीक है पर मेरे पास अभी कोई ऐसा काम नहीं है जिसके लिये मैं तुम्हें कष्ट दूं। इसलिये पुण्यसे जो यह सम्पत्ति प्राप्त है, इसे तुम अभी भोगो, फिर देखा जायेगा। उस दिन तो लडके चुपचाप इसलिये चले गये कि पिताकी आज्ञा तोडना ठीक नहीं, पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ दिनों बाद फिर वे सगरके पास जा नमस्कार कर बोले—पिताजी ! अबतक आपके आज्ञानुसार हम लोगोंने भोगोंको भोगा, पर अब हम अत्यन्त लाचार हैं। हमारा मन यहां बिलकुल नहीं लगता, इसलिये आप हमें किसी काममें लगाइये, नहीं तो हमें भोजन न करनेको भी बाध्य होना पडेगा। सगरने उनका आग्रह देखकर कहा——मेरी इच्छा नहीं है कि तुम कष्ट उठानेको तैयार हो, पर जब तुम किसी तरह मानते नहीं, तो मैं तुम्हें यह काम बताता हूं कि श्रीमान भरत सम्राटने कैलाश पर्वत-पर चौवीस तीर्थंकरोंके चौबीस मंदिर बनवाये हैं। वे सब सोनेके हैं और उनमें बेसुमार धन खर्च किया गया है। उनमें जो आदि नाथ भगवानकी पवित्र प्रतिमायें हैं, वे रत्नमयी हैं। उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है। इसलिये तुम जाओ और कैलाशके चारों ओर एक गहरी खाई खोदकर उसमें गगाका प्रवाह लाकर भर दो, जिससे कभी कोई मंदिरोंको कुछ हानि न पहुंचा सके। सगर-पुत्र पिताकी आज्ञा सुन बडे प्रसन्न हुअे और अुन्हें नमस्कार कर उत्साहके साथ अपने करमके लिये चल पडे। कैलाशपर पहुंचकर कई वर्षोंके कठिन परिश्रमद्वारा उन्होंने चक्रवर्तीके दण्डरत्नकी सहायतासे अपने कार्यमें सफलता प्राप्त कर ली।

अच्छा, अब उस मणिकेतुकी बात सुनिये—उसने सगरको संसारसे उदासीन कर योगी बनानेके लिये दो बार यत्न किया पर उसे निराश होना पडा। इस बार उसने एक भयंकर काष्ठ रचा। जिस समय सगरके साठ हजार लडके खाई खोदकर गंगाका प्रवाह लाने हिमवान पर्वतपर गये और उन्होंने दण्ड—रत्न द्वारा पर्वत फोडनेके लिये उसपर चोट मारी; उस समय मणिकेतुने एक महाविषधर सर्पका रूप धर, जिसकी फुंकार मात्रसे कोसोंके जीवजन्तु भस्म हो सकते हैं, अपनी विषैली हवा छोडी, जिससे देखते—देखते वे सब जलकर खाक हो गये। सत्पुरुष दुसरेकी भलाई करनेके लिये कभी कभी पहले उसका अहित कर उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितकी ओर लगाते हैं। मंत्रियोंको इनके मरनेकी खबर मिली, पर उन्होंने राजासे इसलिये नहीं कहा कि वे इस महान् दुःखको वे सह न सकेंगे। तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप लेकर सगरके पास पहुंचा और बडे दुःखके साथ रोता रोता बोला—राजाधिराज! आप सरीखे न्यायप्रिय राजाके होते हुअे मुझे अनाथ हो जाना पडा। मेरी आँखोंके एकमात्र तारेको पापी लोग जबरदस्ती मुझसे छुडा ले जाय और मुझे द्वार द्वारका भिखारी बनाया जाय, इससे बढकर दुःखकी और क्या बात होगी? प्रभो! आज दुष्टोंनें मुझे बे-मौत मार डाला है। आप मेरी रक्षा कीजिये। सगरने उसे धीरज देकर कहा—ब्राह्मण देव! घबराइये मत, वास्तवमें बात क्या है, उसे कहिये, मैं आपका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करूंगा। ब्राह्मणने कहा—महाराज क्या कहूं? कहते हुए छाती फट जाती है, यह कहकर वह फिर रोने लगा। चक्रवर्तीको इससे बडा दुःख हुआ। उसके आग्रह करनेपर मणिकेतु बोला—अच्छा तो मेरी दुःख-गाथा सुनिये। मेरा एक लडका था, जो मुझे कमा-कर खिलाता-पिलाता था, पर आज मेरा भाग्य फूट गया। उसे काल नामका लूटेरा मेरे हाथोंसे जबरदस्ती छीनकर भाग गया। मैं बहुत रोया-कलपा, आरजू-मिन्नत की, दयाकी भीख माँगी, पर उस पापीने मेरी ओर आंख उठाकर भी न देखा। आप मेरे पुत्रको उस पापीसे छुडाकर ला दीजिये। नहीं तो मेरी जान न बचेगी। सगरको काल लुटेरेका नाम सुनकर कुछ हंसी आयी। उसने कहा—महाराज! आप बडे भोले हैं। भला, जिसे काल ले जाता हैं, वह फिर कभी जिन्दा हुआ है क्या? काल तो अपना काम किये ही चला जाता है। चाहे कोई बूढा हो या जवान अथवा बालक, सबके प्रति उसके समान भाव है। आप तो अभी अपने लडकेके लिये रोते हैं, पर वह आपको भी जल्द ले जानेवाला है। आप उससे अपनी रक्षा चाहते हैं तो दीक्षा लेकर मुनि हो जाइये और आत्मकल्याणका यत्न कीजिये। इसके सिवा कालपर विजय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। ब्राह्मणने सुनकर कहा- जब कालसें कोई मनुष्य विजय नहीं पा सकता तो लाचारी है। हाँ महाराज! एक जरूरी बात कहना मैं भूल ही गया था जिसकेलिये आप क्षमा करेंगे। जब मैं रास्तेमें आ रहा था तो लोग आपसमें बोल रहे थे कि हाय! बडा बुरा हुआ कि महाराजके लडके जो कैलाशपर्वतकी रक्षाके लिये खाई खोदने गये थे सबके सब एक साथ ही मर गये। ब्राह्मणका कहना पूरा भी न हुआ था कि सगर एकदम मूर्छित न होगा। उसी समय उपचारोंद्वारा सगर होशमें लाये गये। इसके बाद मौका पाकर मणिकेतुने उन्हें संसारकी दशा बतलाकर खूब उपदेश किया। इस बार वह सफल प्रयत्न हो गया। और भगीरथको राज्य देकर उन्होंने दृढधर्मकेवलीद्वारा दीक्षा ले ली, जो संसारचक्रसे छुडानेवाली है।

उन सगर चक्रवर्तीको धन्यवाद है जिन्होंने षट्खंड पृथ्वी ९६०००, देवांगनाके समान सुंदर स्त्रियां १२००००००, घोड़े ८४०००००, हाथी ८४००० सुंदर आदि दिव्य भोगोपभोगसामग्रीको जीर्ण तृणके समान छोडकर दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर घोर तपश्चरण कर मुक्तिरमा को प्राप्त किया।

मैं अनादिकालसे साररहित संसारमें सारपना समझकर परिभ्रमण कर रहा हूं। क्षणिक विषय के लिये अमूल्य मनुष्यजन्म को नष्ट कर रहा हूँ। धन्य है, जिन्होंने इस प्रकार विपुल सम्पदाको त्याग कर शाश्वत सुख प्राप्त किया। हे प्रभो! हे संसारतारक! मुझे भी वह शक्ति प्रदान करो जिससे मैं इन आत्माके अहितकारक विषय कषायोंको छोडकर मुक्तिसुखको प्राप्त करू।

—इति सगरचक्रवर्तीकी कथा समाप्त—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्माके द्वारा निरंतर अभिलाष्यमाण उपशमश्री और स्त्री उन दोनोंका अन्तःकरणमें जो परस्पर विरोध चालू है इन दोनोंमें सबल और निर्बल कौन है इसका प्रतिपादन करते हैं–

इतः शमश्रीः स्त्रीचेतः कर्षतो मां जयेन्नु का ।
आ ज्ञातमुत्तरैवात्र जेत्री या मोहराट्चमूः ॥३४॥

अन्वयार्थ– (इतः) एक तरफ तो (शमश्रीः) प्रशम सुखरूपी सम्पदा (च) और (इतः) एक तरफ (स्त्री) स्त्री इस प्रकार ये दोनों (मां) मुझको (कर्षतः) अपनी अपनी तरफ खींचती हैं। (आ) अहो ! (ज्ञातं) जान लिया (अत्र) इन दोनोंमें (उत्तरा) दूसरी स्त्री (एव) ही (जेत्री) मुझको जीतेगी (या) जो (मोहराट्चमूः) मोहराजाकी सेना है ॥३४॥

भावार्थ– मैं अतीन्द्रिय–आत्मीकसुख और इन्द्रियजनित विषयसुख इन दोनोंका अनुभव करनेवाला हूँ । इसलिये आश्चर्य है–कि मुझे एक तरफसे प्रशम सुखसम्पत्तिरूप शमश्री खींच रही है । और दूसरी ओर से गृहस्थाश्रमके निवासका मूल आधारभूत स्त्री खींच रही है । मेरे मनमें संशय हो रहा है कि इन दोनोंमें कौन शक्तिशालिनी है तथा न मालूम मेरा आकर्षण किधर होता है इस संशयके अन्तमें ही श्रावकका अंतःकरण जवाब देता है कि अहो ! मैं जान गया कि स्त्री ही विजय प्राप्त करेगी । उसीका ही बल अधिक है । अथवा व्रती अपनेमें किन्चित् क्रोधित होकर कहता है कि मैंने जान लिया कि इन दोनोंमेंसे शमश्रीका तिरस्कार कर यह स्त्री ही मेरेको अपनी तरफ खींचेगी । क्योंकि यह स्त्री केवल स्त्री ही नहीं हैं किन्तु प्रतापी मोहराजा की सेना है । जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी सेनाके द्वारा प्रतिपक्षीको पराभूत कर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार चारित्रमोहरूपी राजा स्त्रीरूपी अपनी सेनाके बलसे आत्माकी इस शमश्री को दबाकर मुझे अपनी ओर खींच रहा है । इसलिये ही मैं परिग्रहका तथा स्त्रीका त्याग करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ ॥३४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह स्त्री दुस्त्यज है यह बताते हैं-

चित्रं पाणिगृहीतीयं कथं मां विष्वगाविशत् ।
यत् पृथग्भावितात्माऽपि समवैम्यनया पुनः ॥३५॥

अन्वयार्थ-(चित्रं) यह आश्चर्य है कि (पाणिगृहीतो) हस्तके द्वारा ग्रहण की हुई (इयं) यह विवाहिता स्त्री (कथं) किस प्रकारसे (मां) मुझको (विष्वक्) चारो तरफसे (आविशत्) प्रविष्ट हो गई अर्थात् मेरे अन्तःकरणमें कैसे प्रविष्ट हो गई ? । (यत्) क्योंकि जिससे (पृथक्भावितात्मापि) पृथक्रूपसे बार बार चिंतवन किया है आत्माका जिसने ऐसा मैं भी (पुनः) बार बार (अनया) इस स्त्रीके (सह) साथ (समवैमि) तादात्मसंबन्धको प्राप्त हो रहा हूँ ॥३५॥

भावार्थ-मुझें बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि-मैंने इस स्त्रीका पाणिग्रहण किया था। विवाहके समयपर हाथ पकडकर परिणयन किया था, परन्तु आज यह मुझमें सर्वरूपसे कैसे व्याप्त हो रही है तथा इसने मुझको आत्ममय कैसे बना लिया है ? । क्योंकि स्त्रीकी ममताके कारणही आज मेरी यह स्थिति हो रही है। जिससे "मैं भिन्न हूँ" "यह भिन्न है" इस प्रकारके भेदज्ञानसे भावित होता हुवा भी मैं आज इस स्त्रीके साथ यह ही मैं हूं-मैं हूँ सो यह है, इस प्रकारके तादात्म्यसम्बन्धको प्राप्त हो रहा हूँ। अहो! मैं बार बार आत्मभावना करता हुवा भी मैं केवल चारित्रमोहके वशीभूत होकर अपने स्वरूप भूलकर इसके साथ अभेदभाव रखनेवाला हो रहा हूँ ।

यदि आत्मा स्त्रीसे विरक्त हो जाय तो उसे धनादि परिग्रहकी क्या जरूरत है-

स्त्रीतश्चित्त निवृत्तं चेन्ननु वित्तं किमीहसे ।
मृतमण्डनकल्पो हि स्त्रीनिरीहे धनग्रहः ॥३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(चित्त) हे मन (चेत्) यदि तूं (ननु) निश्चयसे (स्त्रीतः) स्त्रीसे (निवृत्तं) पराङ्मुख हो जायगा तो (वित्तं) धनको (किं) क्यों (ईहसे) चाहेगा। (हि) क्योंकि (स्त्रीनिरीहे) स्त्रीकी इच्छा न रहनेपर (धनग्रहः) धनका ग्रहण करना (मृत-मण्डनकल्पः) मरे हुये पुरुषको आभूषण पहिनानेके समान व्यर्थ है ॥३६॥

भावार्थ-हे मन ! यदि तूं अपने विवेकबलके सामर्थ्यसे स्त्रीकी अभिलाषासे विरक्त हो जायगा तो मुझे विश्वास है कि तुझे फिर धनकी आवश्यकता नहीं रहेगी। क्योंकि जिसका मन स्त्री अभिलाषासे परावृत्त है उसको धनके कमाने, रखने और बढानेकी इच्छा मुर्देको आभूषणोंसे सजानेके समान अनुपयोगी हो जाती है।

विषयसुखके लिये धन साधन है। स्त्री विषयसुखका मुख्य अवलम्बन है। महल, मकान, बागबगीचा आदि विषयसुखोंके गौण साधन हैं। इसलिये विषयसुखका मुख्य साधन कामिनी मानी गई है। यदि उसकी अभिलाषासे हमारा अन्तःकरण विमुख हो जायगा तो फिर विषयसुखके गौण साधनभूत धनादिकके तरफकी इच्छाकी निष्फलता स्वयं हो जाती है। जब साध्य ही नहीं चाहिये तो फिर साधनकी क्या जरूरत है ? जैसे मुर्देको आभूषण पहिनाकर सजाना व्यर्थ है वैसे ही स्त्रीसे विरत पुरुषके लिये धनकी इच्छा निरर्थक मानी जाती है ॥३६॥

इसप्रकारसे निर्वेद करानेवाली भावना भानेवालोंके परम सामायिक करानेवाली भावनासम्बन्धी सात श्लोक कहते हैं-

इति च प्रतिसन्दध्यादुद्योगं मुक्तिवर्त्मनि ।
मनोरथा अपि श्रेयोरथाः श्रेयोऽनुबन्धिनः ॥३७॥

अन्वयार्थ-(इति) इसप्रकार यह श्रावक (मुक्तिवर्त्मनि) मोक्षमार्गमें (उद्योगं) उत्साहको (प्रतिसन्दध्यात्) बार बार लगावे। (यत्) क्योंकि (श्रेयोरथाः) मोक्ष ही है रथ जिसका ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मनोरथाः) मनोरथ (अपि) भी (श्रेयो) कल्याणके (अनुबन्धिनः) सम्पादक होता है ॥३७॥

भावार्थ–ऊपरमें मोक्षमार्गसम्बन्धी उद्योगके लिये जिसप्रकार वैराग्यभावनाका चिंतवन किया था उसी प्रकार शरीर और आयुकी स्थिरताका भी विचार करे। यहाँ 'च' शब्द समुच्चयवाचक है। इसलिये केवल वैराग्यका ही चिंतवन न करे, किन्तु मोक्षमार्गमें दृढ करनेवाली भावनाओंका भी चिंतवन करे।

यहाँ यह शंका होती है कि आचरणके विना केवल मनोरथ स्वप्नराज्यके समान निष्फल है। परन्तु इसका समाधान यह है कि मोक्षमार्गसे सम्बन्ध रखनेवाले मनोरथ भी भव भवमें कल्याणके सम्पादक होते हैं।

मनोरथा अपि– यहाँके अपि शब्दसे यह सूचित होता है कि मोक्षमार्गसे सम्बन्ध रखनेवाली भावनाओंका इतना फल है तो अनुष्ठानके महात्म्यके विषयमें तो कहना ही क्या ?

उक्तं च– श्रेयो रथो येषां ते श्रेयोरथाः।

जो मोक्षमार्गमें आरूढ है उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं।

उक्तं च– यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ॥४॥

भावार्थ– संसारी जीव अपने शुद्धभावोंके द्वारा जब समस्त कर्मजालको काटकर उनके जन्म मरणसे मुक्त हो सकता है तब उसे स्वर्ग पा लेना तो एक सरल बात है। जैसे जिस मनुष्यमें दो कोस तक पैदल भार ले चलनेकी शक्ति हो तो उसे आधे कोस तक ले चलनेमें कोई विशेष कष्ट नहीं होता।

इसमें जीवन कायमय होनेसे उसके अपायका चिंतवन मुखसे जीवितव्यका उच्छेद की भावना करता हुवा वक्रोक्तिसे स्वार्थसिद्धिके नाशकी भावना भाते हैं–

क्षणे क्षणे गलत्यायुः कायो ह्रसति सौष्ठवात्।
ईहे जरां नु मृत्युं नु सध्रीचीं स्वार्थसिद्धये ॥३८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (आयुः) आयु (क्षणे क्षणे) प्रति समयमें (गलति) नष्ट होती है। (सौष्ठवात्) स्वार्थ क्रिया करनेकी सामर्थ्यसे (कायः) शरीर प्रतिसमय (ह्रसति) क्षीण होता है। इसलिये मैं (स्वार्थसिद्धये) स्वार्थकी सिद्धिके लिये (जरां नु) बुढापेको (सध्रीचीं) सहायक (ईहे) चाहूँ (नु) अथवा (मृत्युं) मृत्युको सहायक बनाऊँ।

भावार्थ– पुरुषार्थकी सिद्धिमें आयु और कायको प्रधान कारण माना है। परन्तु वास्तविकमें हमारी आयु तो अंजुलीके जल समान निरंतर क्षीण हो रही है और शरीर भी अपने कार्य करनेके सामर्थ्यसे प्रतिक्षण शिथिल हो रहा है। और उसकी यह हीनता बुढापेके लानेमें प्रवृत्त हो रही है। अब बताओं, मैं अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये मृत्यू और बुढापा इन दोनोंमें किसको मानुं। अर्थात् वास्तविकमें मुझे अपने अभिप्रेतार्थसिद्धिके लिये कोई सहायक नहीं दिख रहा है। ऐसा चिंतवन करें।

आगे– जिनधर्मको धारण करते हुये विपत्ति आये तो अच्छो हैं परन्तु जिनधर्मरहित सम्पदाका लाभ भी अच्छा नहीं है ऐसा चिंतवन करते हैं–

क्रियासमभिहारोऽपि जिनधर्मजुषो वरं।
विपदा सम्पदां नासौ जिनधर्ममुचस्तु मे ॥३९॥

अन्वयार्थ– (जिनधर्मजुषः) जिनधर्म प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले (मे) मेरे (विपदां) विपत्तियोंका (क्रियासमभिहारः) बार बार आना (अपि) भी (वरं) अच्छा है (तु) परन्तु (जिनधर्ममुचः) जिनधर्मसे रहित मुझको (सम्पदां) सम्पत्तियोंका (असौ) बार बार मिलना (वरं न) अच्छा नहीं है ॥३९॥

भावार्थ– क्रियासमभिहारका अर्थ बार बार होना अथवा अतिशयरूपसे होना होता है। अपि शब्दका अर्थ एकसाथ होना और भी ये तीन अर्थ होते हैं। जिनधर्म–जिनेन्द्र वीतराग प्रभुका कहा हुवा शुद्ध चिदानन्दमय आत्मपरिणतिको प्रीति पूर्वक सेवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुये मुझको यदि शारीरिक-मानसिक दुःख तथा परीषह और उपसर्ग बार बार प्राप्त होते हो तो भी उनको अच्छा मानता हूँ। किन्तु जिनधर्मको छोडकर सर्व इन्द्रियोंके प्रयोजनकी साधनविभूति धन, सम्पदा, ऐश्वर्य, पुत्र,पौत्रादिक की प्राप्तिको भी मैं अच्छा नहीं मानता हूँ। हे प्रभो! मुझे संसाररूपी रोगको नाश करनेवाली जिनधर्मसेवा प्राप्त हो। इस प्रकारकी भावना निरंतर भाना चाहिये। क्योंकि यदि मिथ्यात्वरूपी पापका आस्रव रुक गया तो और सम्पदासे क्या प्रयोजन है। और यदि दुर्गतियोंमें रुलानेवाले मिथ्यात्वका आस्रव नहीं रुका है तो और सम्पदासे क्या प्रयोजन है।

मुनिधर्मके आचरणसे ही प्राप्त होनेवाली सब जीवोंमें समता भावकी कामनाका वर्णन-

लब्धं यदिह लब्धव्यं तच्छ्रामण्यमहोदधिम्।
मथित्वा साम्यपीयूषं पिबेयं परदुर्लभम् ॥४०॥

अन्वयार्थ-(इह) इस गृहस्थाश्रममें वा मनुष्यजन्ममें (यत्) जो कुछ (लब्धव्यं) प्राप्त करनेयोग्य था (तत्) वह सब (मया) मैंने (लब्धं) प्राप्त कर लिया अब इस समय (श्रामण्यमहोदधि) मुनिव्रतरूपी महासमुद्रको (मथित्वा) मथन करके (परदुर्लभं) दूसरेको-मिथ्यादृष्टियोंको दुर्लभ ऐसी (साम्यपीयूषं) समतारूपी अमृतको (पिबेयं) पीवूं।

भावार्थ-यह किंवदंति है कि पहिले सुर और असुरोने क्षीर-समुद्रका मथन कर दूसरोंको दुर्लभ ऐसा अमृत निकालकर पिया था-जिससे वह देव अमर हो गया तथा उनको अमर कहते हैं, यह तो केवल कहना मात्र है। उसीकी कल्पना करके यहांपर वर्णन किया गया है।

जिसप्रकार समुद्रसे अमूल्य रत्न निकलते हैं, उसका अवगाहन करना कठिन हैं, समुद्रका पार पाना दुर्लभ है-उसी प्रकार मुनियोंके मूलगुण और उत्तरगुणोंसे अनमोल सम्यग्दर्शनादि गुणोंके विशुद्धताकी प्राप्ति होती है। उसका अवगाहन करना भी कठिन है तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका अन्त पाना भी दुर्लभ है। मुनियोंके मूलगुणोंके तथा उत्तर-गुणोंको श्रामण्य कहते हैं, उस श्रामण्यको समुद्रकी उपमा दी गई है।

व्रतीश्रावक ऐसा विचार करे कि मुझे गृहस्थावस्थामें जो कुछ करना था वह सब कर लिया। अब वह समय कब प्राप्त होगा जिस समय श्रामण्यरूपी समुद्रका मथन कर अर्थात् मुनिव्रत धारण कर अन्यको दुर्लभ साम्यभावरूपी अमृतका पान करू। अपनी आत्माका अनुभव करूं। परदुर्लभका अर्थात् समतारूपी अमृत अन्य मतावलम्बियोंको दुर्लभ है ही तो भी बहुतसे जिनसमयके ज्ञाताओंको भी दुर्लभ है। क्योंकि यह परम उपेक्षामय चारित्ररूपी समताभाव कतिपय जिनानुयायी महात्माओंको ही प्राप्त हो सकता है ॥४०॥

उसी समताका पुनः वर्णन—

पुरेऽरण्ये मणौ रेणौ मित्रे शत्रौ सुखेऽसुखे।
जीविते मरणे मोक्षे भवे स्यां समधीः कदा ॥४१॥

अन्वयार्थ—(पुरे) नगरमें (अरण्ये) जंगलमें (मणौ) मणिमें और (रेणौ) धूलिमें (मित्रे) मित्रमें और (शत्रौ) शत्रुमें (सुखे) सुखमें (असुखे) दुःखमें (जीविते) जीवनमें (मरणे) मरणमें (मोक्षे) मोक्षमें (भवे) संसारमें (कदा) किस समय मैं (समधीः) समान बुद्धिवाला (स्यां) होवूंगा ॥४१॥

भावार्थ—चातुर्वर्ण्यकी समृद्धिका स्थान तथा प्रीतिका कारण ऐसे नगरमें तथा इससे विपरीत जंगलमें—वज्रादिरत्नमें और धूलिमें, उपकार करनेवाले मित्रवर्गमें तथा अपकारक शत्रुमें, इन्द्रियोंके आल्हादकारक सुखमें तथा देहमनके तापकारक दुःखमें—पुरुषार्थकी सिद्धिकी कारणभूत जीवनमें और मरणमें, अनन्तसुखस्वरूप मोक्षमें तथा दुःखमय संसारमें समताभाव समान बुद्धि रखनेवाला किस समय होवूंगा। यहांपर एक विशेषता है नगरमें, वनमें समताभाव तो कहना ठीक है परन्तु मोक्ष और संसार दोनोंकी बराबरी कैसे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका समाधान है कि मोक्ष और संसारमे अभेद भावरूप परिणति निर्विकल्पध्यानमें ही होती है, पहिले नहीं। जहाँ ध्यान-ध्याता ध्येयका विकल्प नही है। सो ही कहा है-

मोक्षे भवे च सर्वत्र निस्पृहो मुनिसत्तमः।

उत्तमश्रेणीमें आरूढ शुक्लध्यानी मुनि, संसार और मोक्षमें सब जगह निस्पृही होते हैं।

आगे- यतिधर्मकी परमसीमाकी प्राप्तिकी भावना करते है-यह बताते हैं—

मोक्षोन्मुखक्रियाकाण्डविस्मापितबहिर्जनः।
कदा लप्स्ये समरसस्वादिनां पंक्तिमात्मदृक् ॥४२॥

अन्वयार्थ- (मोक्षोन्मुखक्रियाकाण्डविस्मापितबहिर्जनः) मोक्षमार्गमें सन्मुख मुनियोंकी क्रियाओंके समूहको पालन करनेके द्वारा विस्मित कर दिया है बहिरात्मा लोगोंको जिसने ऐसा होकर (आत्मदृक्) आत्मदर्शी होता हुवा मैं (कदा) किस समय (समरसस्वादिनां) समतारूपी रसका आस्वादन करनेवाले मुमुक्षुओंकी (पंक्ति) श्रेणीको (लप्स्यें) प्राप्त होऊंगा ॥४२॥

भावार्थ- अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य यह अनन्तचतुष्टय कहलाते हैं। और इन अनन्तचतुष्टयकी उत्पत्ति होना ही है स्वभाव जिसका ऐसे मोक्षमार्गमें उपयोगीभूत गुरुकुलका निवास आतापनयोग कायक्लेशरूप,बाहिरी क्रियाकाण्डके द्वारा विस्मित कर दिया है मिथ्यादृष्टि लोगोंको जिन्होंने ऐसा आत्मदर्शी तपस्वी बनकर ध्यान, ध्याता और ध्येयमें अभेददृष्टि रखनेवाले जो निर्विकल्प योगी है जिनके शास्त्रमें घटमानयोगी वा निष्पन्न योगवाले योगी कहते हैं ऐसे समरसके आस्वादन करनेवाले योगियोंकी पंक्तिमें बैठनेका अवसर किस समय प्राप्त करूँगा। ध्यान ध्याता और ध्येयमें अभेददृष्टि रखनेवाला कब बनूंगा।

सम्यग्दर्शनरहित जीवोंको बहिरात्मा कहते हैं वे बहिरात्मा जीव अपने द्वारा दुःसाध्य उत्कृष्ट तपको देखकर चकित हो जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इसलिये सम्यग्दृष्टि साधुओंके द्वारा सम्यग्दर्शनपूर्वक किया गया कायक्लेशादि दुर्द्धर तप बहिरात्मा जीवोंको आश्चर्यमें डालने-वाला है। इसको देखकर कितनेही जीव सम्यग्दृष्टि भी बन जाते हैं और अपने आध्यात्मताका प्रकाश भी होता है। इसलिये बाहिर तपकी भी इच्छा श्रावक करता है। इसलिये श्रावक निरन्तर भावना भाता है कि ऐसा अवसर मुझे कब प्राप्त होगा जिस दिन मैं जंगलमें आत्मध्यानमें लीन होवूंगा, और जंगलके पशु मुझे ठूंठ समझकर अपने शरीरसे खुजाल करेंगे। सम्यग्दृष्टिकी निरन्तर मुनि बन-नेकी भावना बनी रहती है। मुनियोंके प्रति उसका अत्यन्त अनुराग होता है। जो मुनियोंसे द्वेष करनेवाले होते हैं मिथ्यादृष्टि होते हैं।

योगकी परमकाष्ठाकी इच्छा—

शून्यध्यानैकतानस्य स्थाणुबुद्ध्याऽनडुन्मृगैः।
उध्दृष्यमाणस्य कदा यास्यन्ति दिवसा मम ॥४३॥

अन्वयार्थ-(शून्यध्यानैकतानस्य) निर्विकल्पसमाधिमें परिणत (स्थाणुबुद्ध्या) स्थाणुकी बुद्धिसे (अनडुन्मृगैः) उत्कृष्ट पशु और वनमें विचरनेवाले हरिणोंके द्वारा (उद्ध्दृष्यमाणस्य) सींग स्कन्धादिके द्वारा भली प्रकार खुजाये जानेवाला (मम) मेरे (दिवसाः) दिन (कदा) कब (यास्यन्ति) बीतेंगें ॥४३॥

भावार्थ- जब मैं नगरके बाहिर अरण्यमें तत्वज्ञान और वैराग्यसें सम्पन्न होकर कायोत्सर्ग धारण करूँ और निर्विकल्प समाधिमें लीन होऊँ, उस समय जंगलमें अपनी च्छानुसार भ्रमण करनेवाले वृषभ, भैंस, हरिणादि पशु मुझको लकडीका ठूंठ समझकर मेरे शरीरसे अपनी खाज खुजावें। तथा जब मैं जंगलमें इस प्रकारसे कायोत्सर्ग करूं कि हरणादि पशु भी मुझे ठूंठ समझकर खाज खुजावे, इस प्रकारकी उत्कृष्ट योगसीमा धारणकर चिदानंदमय स्वात्मामें लीन होकर आत्मरसस्वादन करूँ इस प्रकारका मनोरथ सम्यग्दृष्टी व्रती श्रावकके होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे-चतुर्दशीकी रात्रिमें प्रोषधोपवास करके नगरके बाहिर कायोत्सर्ग करते हुये उपसर्गके द्वारा चलायमान नहीं हुये ऐसे प्राचीन श्रावकोंकी प्रशंसा करते हैं-

धन्यास्ते जिनदत्ताद्याः गृहिणोऽपि न येऽचलन् ।
तत्तादृगुपसर्गोपनिपाते जिनधर्मतः ॥४४॥

अन्वयार्थ- (ये) जो (गृहिंण:) गृहस्थ होते हुये (अपि) भी (तत्तादृगुपसर्गोपनिपाते) शास्त्रप्रसिद्ध शस्त्रप्रहारादि असाधारण उपसर्ग आनेपर (जिनधर्मत:) जिनधर्मसे (न चलन्) चलायमान नहीं हुये (ते) वे (जिनदत्ताद्या:) जिनदत्तादि (धन्या:) धन्य हैं।

भावार्थ- जो शास्त्रप्रसिद्ध शस्त्र, प्रहारादि असाधारण उपसर्ग आनेपर भी चतुर्दशीके रात्रिमें अरण्यमें कायोत्सर्ग करनेवाले जिनदत्तसेठ, वारिषेण आदि महापुरुष जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुई जिनसेवित सामायिकसे चलायमान नहीं हुये, वे प्रशंसाके पात्र हैं। वे गृहस्थ होते हुये अपर श्रमण थे। श्रावक होते हुये भी ऐसा उपसर्ग सहन किया तो मुनियोंका तो कहना ही क्या?

जिनदत्त का चरित्र

इसी जम्बूद्वीपके जनपद नामक देशमें भूमितिलकपुर नामका नगर है। उसका स्वामी नरपाल नाम का राजा था। उसकी पट्टरानीका नाम गुणमाला था। उसके राजश्रेष्ठीका नाम सुनन्द था। सुनंदके समस्त परिवारके हृदयको आनंदित करनेवाली सुनंदा नामकी धर्मपत्नी थी। इन दोनोंको धनद, धनवन्धु, धनप्रिय, धनपाल, धनदत्त, धनेश्वर और धन्वन्तरि नामके पुत्र थे। छोटा पुत्र धन्वन्तरि सब जाल-फरेबकी मायामें निपुण था।

राजाका पुरोहित धर्म-कर्ममें निपुण सोमशर्मा था। उसकी पत्नीका नाम अग्निला था। उनके विश्वरूप, विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, विश्वामित्र, विश्वावसु, विश्वावलोक और विश्वानुलोभ नामके पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र विश्वानुलोभ समस्त सदाचारका विद्वेषी था।

धन्वन्तरि और विश्वानुलोभ दोनों साथ-साथ खेले थे तथा दोनोंका स्वभाव और आदतें भी समान थी। इसलिए दोनोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूध और पानीकी तरह घनिष्ट मित्रता थी। जुआ, शराब, परस्त्रीगमन और चोरी वगैरह दुराचारोंमें रत रहनेके कारण दोनोंका तिरस्कार करके राजाने उन्हें अपने देशसे निकाल दिया। वहाँसे निकाले जाकर वे दोनों कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नामक नगरमें आये। वहाँके राजाका नाम वीरनरेश्वर था और उसकी पट्टराणी वीरमणी थी। तथा यमदण्ड वहाँका कोतवाल था।

एक दिन संध्याके समय सूरजके डूब जानेपर वे दोनों घूमने निकले। सामनेसे नीलगिरिके समान एक मदोन्मत्त हाथीको स्वच्छन्दताके साथ सन्मुख आता हुआ देखकर दोनों एक नित्य-मण्डित नामके चैत्यालयमें घुस गये। वहाँ धर्माचार्य धर्मका उपदेश कर रहे थे।

विश्वानुलोभने धन्वन्तरिसे कहा–" धन्वन्तरि ! यदि संसारके मदिरा, माँस, व्यञ्जन आदि सुखोंको यथेच्छ भोगना चाहते हो तो इन दिगम्बर साधुओंका धर्म मत सुनो। ऐसा कहकर दोनों कानोंको बन्द करके और आँखोंको मींचकर विश्वानुलोभ सो गया। उधर आचार्य कह रहे थे कि यदि प्राणी दृढताके साथ नियमपूर्वक किसी भी व्रतका पालन करे तो उत्तरकालमें वह व्रत अवश्य ही उसका कल्याण करता है। यह सुनकर आचार्यको नमस्कार करके धन्वन्तरि बोला–'भगवन् ! यदि ऐसा है तो इस दासको भी कोई व्रत देनेकी कृपा करें।

आचार्यने उसकी स्थितीको समझकर कहा–तुम प्रतिदिन घुटे सिर व्यक्तिका दर्शन करके भोजन किया करो। धन्वन्तरिने इस व्रतको सहर्ष स्वीकार कर लिया।

एक दिन जैसे ही वह भोजन करनेके लिये बैठा, उसे अपने नियमकी याद आयी, उस दिन वह घुटे सिर व्यक्तिका दर्शन करना भूल गया था। अतः उसने भोजन नहीं किया और घुटे सिर व्यक्तिकी खोजमें चल दिया। उसके पडोसी एक कुम्हारने उसी दिन घुटवाया था, किन्तु वह मिट्टी लेनेके लिये बाहर चला गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्वन्तरि उसकी खोजमें चल दिया। जब वह कुम्हारके पास पहुँचा तो कुम्हार उसे देखकर घबरा गया। कुम्हारको उस समय मिट्टी खोदते हुये एक घडा मिला था उसमें धन था। जब धन्वन्तरि कुम्हारको देखकर तुरन्त ही लौट गया तो कुम्हारको सन्देह हुआ कि उसने मुझे जमीनसे घडा निकालते हुये देख लिया है और अब वह कहीं राजासे मेरी शिकायत न कर दे। अतः उसे धनका आधा भाग देकर राजी कर लेना चाहिये। राजा तो सब धन ले लेगा। यह सोचकर कुम्हार धनका घडा सिरपर रखकर धन्वन्तरिके पीछे—पीछे हो लिया। और उसके घर पहुँचकर उसने वह घडा उसके सामने रखकर सब हाल कहा। एक छोटे–से व्रतके कारण धनकी प्राप्तिको देखकर धन्वन्तरिका हृदय गुरुमहाराजके प्रति भक्तिसे गद्गद् हो गया। और वह नया व्रत ग्रहण करनेके लिये पुनः उनकी शरणमें पहुँचा।

इस बार मुनिराजने उससे कहा—बलिदानके लिये आटेका पशु वगैरेह बनाकर लोग चौराहों आदिपर रख देते हैं उसे तुम मत खाना।

एक दिन धन्वन्तरि अपने मित्र विश्वानुलोभ तथा अन्य साथियोंके साथ चोरी करके लौट रहा था। सब लोग भूखे थे। उन्होंने मार्गमें आटेके बने बैल रखे हुए देखे। विश्वानुलोभने उसकी रोटी बनाकर खानेका प्रस्ताव किया। किन्तु धन्वन्तरिने अपने व्रतके कारण उसे स्वीकार नहीं किया। तब विश्वानुलोभ उसपर बहुत नाराज हुआ। किन्तु धन्वन्तरि अपने नियमसे विचलित नहीं हुआ। उसके साथियोंने उस आटेकी रोटियाँ बनाई किन्तु धन्वन्तरिके स्नेहवश, विश्वानुलोभने नहीं खाई। वे दोनों बच गये और उन रोटियोंको खानेवाले उनके साथी मृत्युके मुखमें चले गये, क्योंकि कोई साँप उस आटेकी पुतलेको जहरीला कर गया था। व्रतके ही कारण जीवन रक्षा होनेसे धन्वन्तरि और भी अधिक प्रभावित हुआ और गुरुमहाराजके पास पुनः व्रत ग्रहण करनेके लिये गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु महाराजने कहा- जिस वृक्षका नाम अज्ञात हो, उसके फल नहीं खाना ।

एक दिन धन्वन्तरि और विश्वानुलोभ चोरी करके जंगलमें पहुँचे । सब लोग भूखे थे किन्तु खानेके लिये वहाँ कुछ भी नहीं था । खोज बीन करनेपर एक वृक्षपर फल लगे हुअे मिले । उन्हें ही तोडकर सब खानेके लिये बैठे । धन्वन्तरिने जैसे ही एक फल अपने मुखमें रखनेके लिये उठाया । उसे अपने व्रतका स्मरण हो गया । उसने तत्काल पूछा कि ये फल जिस वृक्षके हैं उसका नाम क्या है ? किन्तु कोई भी उसका नाम नहीं बता सका । अतः धन्वन्तरिने उनको खाना स्वीकार नहीं किया । धन्वन्तरिके साथ विश्वानुलोभने भी उन फलोंको नहीं खाया । वे विषफल थे, अतः खाते ही उनके साथी चल बसे और वे मित्र पुनः बच गये ।

व्रतके कारण दुबारा प्राणरक्षा होनेसे धन्वन्तरि गुरुमहाराजका और भी दृढभक्त बन गया और पुनः उनकी सेवामें उपस्थित होकर व्रतोंकी याचना करने लगा । इस बार आचार्यने उसे बिना विचारे कोई काम न करनेका व्रत दिया ।

एक दिन रातमें नगरके मुखियाके मकानपर नटोंका नृत्य होता था । उसे देखकर धन्वन्तरि देरसे घर लौटा । धीरेसे द्वार खोलकर जैसे ही उसने अन्दर देखा, अपनी माता और पत्नीको गाढ अलिंगन पूर्वक सोते हुये पाया । पुरुषकी आशंकासे उसे मारनेके लिये जैसे ही धन्वन्तरिने तलवार ऊपर उठाई वैसे ही उसे आचार्यके द्वारा लिये हुअे व्रतका स्मरण हो आया । भाग्यवश उसी समय उसने पत्नीकी आवाज सुनी, जो कह रही थी–माता ! 'जरा दूर हटो, मुझे कष्ट हो रहा है ।' तब धन्वन्तरि सोचनें लगा– यदि मैने यह व्रत न लिया होता तो आज अवश्य ही माता और पत्नीको मारकर इस लोकमें निन्दाका और परलोकमें भारी पापका भागी होता । यह सोचते ही उसे वैराग्य हो गया । तब सब परिवारके लोगोंके मनको जैसे- तैसे सान्त्वना देकर उसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनदीक्षा लेनेका विचार किया। आचार्यने कहा कि जिस देशमें अपनी बदनामी हो उस देशमें धारण किया हुआ आचरण निरप-वाद नहीं रहता। अतः आचार्यकी आज्ञासे धरणिभूषण नामके पर्वतके समीपमें तपस्या करनेवाले, श्रीधर्माचार्यके पास जाकर उसने जिनदीक्षा धारण कर ली। आम्नायकी जानने योग्य सब बातोंको जानकर धन्वन्तरि मुनि उसी पहाडकी उपत्यकामें आतापन योगसे स्थित होकर आत्मध्यानमें लीन हो गये, उन्हें देखकर यह सन्देह होता था क्या यह इसी पर्वतसे निकला है या पत्थरमें उकेरी गई कोई आकृति हैं ?

एक दिन विश्वानुलोभ अपने मित्र धन्वन्तरिसे मिलनेकी उत्कण्ठाके साथ उसके घर आया और वहाँ उसे धन्वन्तरिके कुटुंबीजनोंसे उसके दीक्षा लेनेका सब समाचार ज्ञात हुआ। 'मेरे मित्र धन्वन्तरिकी जो दशा हुअी वही मेरी भी हो' ऐसी प्रतिज्ञा करके वह धन्वन्तरिके पास गया और जैनमुनिके आचारको न जानता हुआ कहने लगा-'अरे प्रिय मित्र! बहुत दिनोंके बाद मिले हो। क्यों नहीं मुझसे गले मिलते ? क्यों मुझसे बात नहीं करते ? क्यों आदरके साथ मेरे कुशल समाचार नहीं पूछते ?' इस प्रकार बडे प्रेमसे बोलनेपर भी धन्वन्तरि मुनि आत्मध्यानमें लीन रहे। इससे रुष्ट होकर, विश्वानुलोभ उसी पहाडके समीप एक कुटीमें रहनेवाले जटाधारी साधुके निकट जटाधारी साधु बन गया। आतापनयोगके समाप्त होनेपर धन्वन्तरि मुनि उसे समझाने गये। बोले-'मेरे प्रेमरूपी पथिकके विश्राम करनेके लिये उद्यानके तुल्य विश्वानुलोभ! जैनधर्मकी मर्यादाको न जानकर, बिना कारण क्रोध करके तुम क्यों कुमार्गगामी हो गये हो ? चलो इस कुमार्गको छोडो, दोनों साथ ही तपस्या करेंगे।' इस प्रकार बार-बार कहनेपर भी बिलावके बच्चेके शब्दसे डरे हुअे पक्षी शावककी तरह मूक रहकर वह मौनका ढंग बनाये रहा और चलनीमें दूधकी तरह उसके मनमें धन्वन्तरिका सदुपदेश नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठहर सका। तब धन्वन्तरि उसे समझानेमें अपनेको असमर्थ जानकर गुरुके पादमूलमें लौट आये और आगमानुसार उत्कृष्ट चारित्रका पालन करते हुअे शरीर त्यागकर देवांगनाओंके मंगलगानसे मुखरित सोलहवें स्वर्गमें अमितप्रभ नामक देव हुअे। वहाँ देवसमाजने उनके महातपकी बडी प्रशंसा की।

विश्वानुलोभ भी मरकर विजय नामक व्यन्तरकी गजसेनामें विद्युत्प्रभ नामसे वाहनजातिका देव हुआ। एक बार अष्टान्हिका पर्वमें अमितप्रभ देव इन्द्रादिक देवताओंके साथ नंदीश्वरद्वीपके चैत्यालयोंकी पूजा करके लौट रहा था। मार्गमें विद्युत्प्रभ नामके हाथीको देखकर उसका मन बडा हर्षित हुआ और अवधिज्ञानसे पूर्वजन्मका सब वृतान्त जानकर वह बोला—'विद्युत्प्रभ! क्या पूर्वजन्मका वृत्तान्त याद है?'

विद्युत्प्रभ बोला—'अमितप्रभ, हाँ खूब याद है। किन्तु सपत्नीक चारित्रका पालन करनेसे मेरा कर्मोदय ऐसा हुआ और ब्रह्मचर्यके कारण कायक्लेश उठानेसे तेरा कर्मोदय ऐसा हुआ। किन्तु मेरे समयके जो जमदाग्नि, मतङ्ग, पिंगल, कपिञ्जल आदि महर्षि हैं वे तपस्याके प्रभावसे यहाँ आकर तुमसे भी बडे देव होंगे। इसलिए मुझे देखकर तुम्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिये।'

अमितप्रभ बोला—'विद्युत्प्रभ! अब भी अपने दुराग्रहको नहीं छोडते हो तो आओ हम दोनों अपने धर्मात्माओंके चित्तकी परीक्षा करें।'

इस प्रकार परस्परमें झगडते हुअे वे दोनों देव करहाट देशकी पश्चिम दिशामें पृथ्वीपर उतरे। वहाँ दण्डकारण्य वनमें समिधा, कुश और कमलोंसे भरे हुअे बदरिकाश्रममें उन्होंने बहुत कालसे कठोर तपस्या करते हुअे कश्यपऋषिके शिष्य जमदग्निको देखा। वे जमदग्नि ऋषि, चन्द्र, और सूर्य दोनोंकी किरणोंको पान करनेमें तत्पर थे। उनके दोनों हाथ ऊपर उठे हुअे थे, वे एक पैरसे खडे थे। उनके चारों ओर उगी हुई घनी लता, झाडी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामियोंने उनके शरीरको ढक दिया था और बहुत वृद्ध हो जानेके कारण उनके सिर और दाढी मूछोंके बाल चूनेकी तरह सफेद हो गये थे। उन्हें देखकर उन दोनों देवताओंने पक्षियोंके जोडेका रूप बनाया और उनकी जटाओंमें घोसला बनाकर रहने लगा।

एक दिन पक्षी बोला–'प्रिय! सुवर्णगिरिकी उपत्यकामें समस्त पक्षीकुलके सम्राट गरूडराजका वातराजकी सुता मदनकन्दलीके साथ महान् विवाहोत्सव हो रहा है। उसमें मुझे अवश्य जाना है। तुम्हारा प्रसवकाल समीप है इसलिये तुम्हें मैं अपने साथ नहीं ले जा सकता। विवाहोत्सवके बाद तुरन्त ही मैं लौट आऊँगा। मैं अपने माता-पिताकी शपथ करता हूँ कि मैं वहां बहुत समयतक नहीं ठहरूँगा। अधिक क्या कहूं, यदि झूठ बोलूं तो इस पापी तपस्वीके पापका भागी मैं होऊँ।'

इस अप्रिय बातके सुनते ही जमदग्निका क्रोध भडक उठा और उसने पक्षियोंको मारनेके लिये दोनों हाथोंसे अपने सिरको मसला। दोनों पक्षी भी तत्काल उडकर उसके सामनेवाले वृक्षपर जा बैठे और मीठे शब्दोंमें इस तापसकी खूब हँसी करने लगे। यह देखकर तापसका मन भय और आश्चर्यसे भर गया। वह सोचने लगा–'ये दोनों पक्षी नहीं हैं किन्तु रूप बदले हुअे शिव और पार्वतीके समान कोई देवता है, अतः इनके पास जाकर और प्रणाम करके अपने पापी होनेका कारण पूछूं।'

यह सोच उनके पास जाकर वह बोला–'दिव्य द्विजश्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न पक्षियुगल! मेरे पूर्वसंचित पुण्यसे ही आपका दर्शन हुआ है। बतलाइये। मैं कैसे पापी हूँ।'

पक्षी बोले–'सुनो तपस्वी–स्मृतिकारोंका कथन है कि–विना पुत्रके मनुष्यकी गति नहीं होती और स्वर्ग तो मिलता ही नहीं है। इसलिये पुत्रका मुख देखकर पीछे भिक्षुक होना चाहिये। तथा–विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन करके, धर्मपूर्वक पुत्रोंको उत्पन्न करके और शक्तिके अनुसार यज्ञ करके फिर साधु होना चाहिये।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु तुम स्मृतिकारके इस कथनको प्रमाण न मानकर तपस्या करते हो।

'तो मेरा परलोक कैसे शुभ हो सकता हैं?'

'विवाह करके औरस पुत्र उत्पन्न करनेसे।'

'यह क्या कठिन है'–ऐसा कहकर जमदग्नि ऋषिने विजया महादेवीके पति, इन्द्रपुरके समान ऐश्वर्यके भोगी अपने मामा काशीराजके महलमें जाकर उनकी लडकी रेणुकासे विवाह कर लिया और तृण, लता वगैरहसे सुशोभित गंगाके तटपर एक बडा आश्रम स्थापित करके परशुरामके पिता बन गये।

ऐसे ही लोगोंके लिये किसीने कहा है–

'आत्मज्ञानसे शून्य मनुष्यका व्रताचरणका प्रयास व्यर्थ है। ठीक ही है जो मनुष्य स्वभावसे ही डरपोक है, शस्त्रग्रहण करनेसे उसमें शौर्य नहीं आ जाता।'

फिर वे दोनों देव मगध देशके कुशाग्र नगरके निकटवर्ती स्मशानमें पहुँचे। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिका समय था। जिनदत्त नामका एक जैन श्रावक अकेला रात्रिमें प्रतिमा योगसे स्थित था। उसे देखकर वे दोनों देव तिरस्कारपूर्वक बोले–'अरे दुराचारी, विरूप, परमपदसे अनजान, नीच मनुष्य! शीघ्र ही इस सूखे ठूंठके समान प्रतिमायोगको छोडकर भाग जा। तेरा यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। क्योंकि हम दोनों इस स्मशान भूमिके पिशाचोंके स्वामी हैं। हम दोनोंका अंतःकरण अति स्वच्छन्द होकर क्रीडा करनेके लिये आतुर है। इसमें बाधा मत डालो।'

इस प्रकार कहनेपर भी उसे आत्मध्यानमें तल्लीन देखकर उन दोनोंने विघ्न करना प्रारंभ किया। यमराजके समान भयंकर काले–काले मेघ उमड आये, बिजलीका भयंकर गर्जनवर्तन होने लगा, जोरकी हवा सर–सर करती हुई बहने लगी, भयानक वेतालोंकी आवाजके जैसी आवाजें होने लगीं, जब इससे भी वह विचलित नहीं हुआ तो उसका गृह–दाह, बन्धु–बान्धवों और धन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिकका विनाश होता हुआ उसे दिखाया गया। जब इससे भी विचलित नहीं हुआ तो बडे आदरके साथ उसे अनेक वरदान दिये गये। इस प्रकार उसकी समाधिको भंग करनेके लिये रातभर दोनोंने विघ्न किये, किन्तु एकाग्रताके अभ्याससे अपने मनको वशमें कर लेनेवाले उस जिनदत्त श्रावकको वे सुखका महल बनानेवाले कर्म परमाणुओंके बंधमें कारणीभूत धर्मध्यानसे विचलित नहीं कर सके।

इतनेमें प्रभात हो गया, सूरजकी किरणोंके प्रकाशसे अंधकार दूर हो गया। तब उन्होंने अपने उपसर्गोंको समेट लिया और अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए भाग्यशालियोंके योग्य प्रेमभरे वचनोंसे जिनदत्तकी प्रशंसा करके उसे आकाशमें विहार करनेके लिये पैंतीस अक्षरोंकी एक विद्या प्रदान की। और कहा– 'यह विद्या बिना साधे ही हमारे प्रभावसे तुम्हें आकामें विहार करा सकेगी और दुसरोंको अमुक विधिसे सिद्ध करनेपर विहार करा सकेगी।'

जिनदत्तका मन भी कुलाचलोंपर स्थित जिनालयोंके दर्शनके लिये आकुल था। अतः उसने देवताओंके कहे अनुसार उस विद्याको ग्रहण करके सब कुलाचलोंपर स्थित चैत्यालयोंका दर्शन किया और फिर वह विद्या उन चैत्यालयोंके दर्शनके लिये उत्सुक जिनेन्द्र देवके परमभक्त धरसेनको दे दी।

वारिषेण कुमारकी कथा

सम्यग्दर्शनके छठवे अंग, स्थितिकरणकी कथामें लिख आये हैं कि पूर्वकालमें राजगृह नगरके राजा श्रेणिक थे, उनके कई पुत्रोंमेंसे एक का नाम वारिषेण था।

उसी राजगृही नगरीमें विद्युत चोर रहता था। उसकी प्रीति मगधसुन्दरी वेश्यासे थी। चौदशकी रात्रिको जब विद्युत चोर वेश्याके पास गया तो उसने कहा कि, श्रीकीर्ति सेठके यहाँ जो रत्नहार है वह मुझे ला दीजिये। वेश्याके कहनेसे विद्युत चोर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नहार तो चुरा लाया, परन्तु शहरके कोतवालने चोरके पास चमकता हुवा पदार्थ देखकर उसका पीछा किया। चोर भी मगधसुन्दरीके पास न जाकर भागते भागते मुर्दाखानेमें पहुँचा। वहाँ वारिषेणकुमार खडे हुए सामायिक कर रहे थे, सो उनके पास रत्नहार फेंककर वह चोर कहीं छिप गया।

जब कोतवाल वारिषेणके पास पहुँचा और उनके सामने रत्नहार रक्खा देखा तो उसे सन्देह हुआ कि, वारिषेण ही यह हार चुरा लाये है, और सामायिकका पाखण्ड करके खडे हो गये हैं। अन्तमें महाराज श्रेणिकको इस बातकी सूचना की गई तो उन्होंने कोतवाल आदिके कहनेपर भरोसा करके वारिषेणका मस्तक काट डालनेकी आज्ञा दे दी।

जब चाण्डाल, हाथमें तलवार लेकर श्री वारिषेण कुमारके गलेपर चलाने लगा, तब उनके पुण्यके प्रभावसे वह तलवार पुष्पमाला होके उनके कंठमें पड गयी। यह अद्भुत घटना देखकर देवता लोग जय जय शब्द बोलते हुए पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। वारिषेणनें न तो रत्नहार पासमें रखनेपर अपना ध्यान छोडा था, न अब भी छोडा।

जब श्रेणिक महाराजको यह समाचार मिले तो अपनी मूर्खतापर पछताने लगे। वारिषेणके पास गये और अपने अपराधकी क्षमा मांगी। राजा श्रेणिकने श्रीं वारिषेण कुमारसे घरपर चलनेको बार बार कहा, परन्तु उन्होंने संसारका ऐसा चरित्र देखकर जिनदीक्षा ले ली, और महा तप करके मोक्षको पधारे।

धन्य है उन जिनदत्त सेठ वारिषेणादि महापुरुषोंको जो ऐसा घोर उपसर्ग आनेपर भी अपने ध्यानसे चलायमान नहीं हुये और घोरोपसर्ग सहन कर परं धामको प्राप्त हुये। इन महापुरुषोंके चरित्रका स्मरण करनेसे परिणामोमें दृढता आती है। और अपन भी अपने समायिकमें स्थिर रहनेका प्रयत्न कर सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे व्रत प्रतिमाका उपसंहार करते हुए व्रतोंके अनुष्ठानके फल विशेषका वर्णन करते हैं-

इत्यहोरात्रिकाचारचारिणि व्रतधारिणि ।
स्वर्गश्रीः क्षिपते मोक्षश्रीर्षयेव वरस्रजम् ॥४५॥

अन्वयार्थ- (इति) इस प्रकार (अहोरात्रिकाचारिणि) दिन और रात्रिके आचारका आचरण करनेवाले (व्रतधारिणि) व्रतधारी श्रावकमें (स्वर्गश्रीः) स्वर्गलक्ष्मी (मोक्षश्रीर्षया) मोक्षश्री की ईर्ष्यासे ही (इव) मानो (वरस्रजं) वरमाला (क्षिपते) डालती है।

भावार्थ- इस प्रकार ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, आदिसे लेकर व्रती श्रावकके आचरण करने योग्य जिन क्रियाओंका वर्णन किया है, उन दिन और रात्रिकी सम्पूर्ण क्रियाओंका निरतिचार व्रतोंका पालन करनेवाले व्रती श्रावकके गलेमें मोक्षश्रीकी ईर्षासे ही मानो सौधर्मादि स्वर्गलक्ष्मी वरमाला डाल देती है अर्थात् उसको स्वीकार करती है, वह व्रती स्वर्गमें जाता है ।

यहाँपर उत्प्रेक्षा अलंकार है । जिस प्रकार कोई कुलीन कन्या अपने माता पिताकी अनुज्ञानसे 'मेरे अभीष्ट पतिको कोई-दूसरी कन्या न वर लेवे,' इस ईर्षाबुद्धिसे शीघ्र ही अपने पतिके गलेमें वरमाला डालती है, उसी प्रकार इस अध्यायमें वर्णित अहो रात्रिक आचारमें सम्पन्न व्रतप्रतिमाधारी श्रावकके गलेमें "इसे मोक्षलक्ष्मी न वर लेवे" ऐसी ईर्ष्यासे शीघ्रतासे स्वर्गलक्ष्मी वरमाला डालती है ।

छठे अध्यायका सारांश

नैष्ठिक श्रावकके प्रकरणमें व्रती श्रावकको दिन-रात किस प्रकारका आचरण करना चाहिये, इस विषयका निरूपण मुख्यतः इस अध्यायमें किया गया है ।

सबसे पहिलें प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर पंच नमस्कार मंत्रका स्मरण कर मैं कौन हूं, मेरा धर्म क्या है ? मेरा व्रत किस प्रकार है ? इसका विचार करना चाहिये। अनादिकालसे इस संसारमें परिभ्रमण करते हुए बहुत कठिनतासे इस जिनधर्मको प्राप्त किया है । ऐसे पवित्र धर्मको पाकर अपना कल्याण करना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रात:कालीन विधिको पूर्णकर शौच स्नानादिसे निवृत्त होकर जिनेन्द्र भगवंतके धाममें जाना चाहियें, वहांपर अभिषेक पूजादिसे जिनेन्द्रभक्ति व्यक्त करना चाहिये, तदनन्तर सामायिकादि शुभकर्मोंको करते हुए संवेग और निर्वेग भावनाको भानी चाहिये । तदनन्तर घरपर आकर अतिथियोंकी प्रतीक्षा कर आहारदान देवे, नन्तर स्वबन्धु, स्वाश्रितजन आदिको भोजन करातें हुए स्वयं भी भोजन करें । भोजनके बाद विश्रांति लेवें किंवा अपने अर्थोपार्जनके निरवद्य साधनके स्थानमें दुकानादिमें जावे वहाँपर न्यायपूर्वक व्यापार करें । नंतर संध्याकालके भोजनसे निवृत्त होकर सामायिक करें । और वैराग्यपर होकर समता भावकी भावना करें । संसारसे विरक्ति हो उस प्रकारका विचार करें । नन्तर योग्य समयमें शयन करें । बीचमें निद्राभंग होनेपर संसारकी स्थिति स्त्रीसंसर्गसे प्राप्त दुःख आदिका विचार करते हुए यह भी विचार करें मुझे मुक्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिये । मुक्तिमार्गमें संसारसे सम्पूर्ण विरक्ति ही भुक्ति है ।

इस प्रकार दिन व रात्रिका जो आचार निर्दोषपूर्वक पालन करता है वह निश्चयसे स्वर्गके अभ्युदयोंको पाकर क्रमशः मुक्ति लक्ष्मीको प्राप्त करता है यह कहते हुए इस प्रकरणका ग्रंथकारने उपसंहार किया है ।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १५ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे छठा
अध्याय समाप्त
हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमोऽध्यायः

आगे सामायकादि शेष नौ प्रतिमाका स्वरूप कहते हैं। उसमें जो व्रतप्रतिमामें सामायिकव्रतको शीलरूप कहा था, उसीको यहां तीसरी प्रतिमामें सामायिक व्रतरूप है ऐसा बताते हैं-

सुदृङ्मूलोत्तरगुणग्रामाभ्यास विशुद्धधीः।
भजंस्त्रिसंध्यं कृच्छ्रेऽपि साम्यं सामायिकी भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-(सुदृङ्मूलोत्तरगुणग्रामाभ्यासविशुद्धधीः) निरतिचार सम्यग्दर्शन अष्टमूलगुण तथा पंचाणुव्रतादि उत्तरगुणोंके अभ्याससे विशुद्ध हो गई है बुद्धि जिसकी ऐसा तथा (कृच्छ्रेऽपि) परीषहोपसर्गादि कष्टके आनेपर भी (त्रिसंध्यं) तीनो संध्यामें (साम्यं) साम्यभावको (भजन्) धारण करनेवाला व्रती श्रावक (सामायिकी) सामायिक प्रतिमाधारी (भवेत्) होता है ॥१॥

भावार्थ-मिथ्या दर्शनरूप परिणामोंको मोह कहते हैं तथा चारित्रमोहजनित कषायभावोंको क्षोभ कहते हैं और मोहक्षोभ-रहित आत्मपरिणामोंको साम्यभाव अथवा सामायिक कहते हैं।

पहिली प्रतिमामें निरतिचार सम्यग्दर्शन और अष्टमूलगुणोंका पालन किया जाता है और दूसरी प्रतिमामें पांच अणुव्रतरूप उत्तर-गुणोंका पालन किया जाता है। निरतिचार, सम्यग्दर्शन, अष्टमूल-गुण और उत्तरगुणोंका निरंतर अभ्यास करनेसे जिसकी बुद्धि पवित्र हो गई है ऐसा व्रती श्रावक तीनों काल सामायिक करते समय परीषहोपसर्गादिकके आनेपर भी अपने साम्यभावोंसे च्युत नहीं होता है, वह सामायिक प्रतिमावाला कहलाता है ॥१॥

व्यवहारसामायिकके साथ निश्चयसामायिकका उपदेश देते हैं-

कृत्वा यथोक्तं कृतिकर्म संध्यात्रयेपि यावन्नियमं समाधेः।
यो वज्रपातेऽपि न जात्वपैति सामायिकी कस्य स न प्रशंस्यः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(यः) जो (सन्ध्यात्रये) तीनो सन्ध्याओंमें (यथोक्तं) ऊपर कही हुई विधिसे (कृतिकर्म) कृतिकर्म (कृत्वा) करके (यावत्) जबतक (नियमं) नियम है तबतक (वज्रपाते) वज्रपात होनेपर (अपि) भी (समाधेः) सामायिकसे (जातु) कभी भी (न अपैति) च्युत नहीं होता है (सः) वह (सामायिकी) सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक (कस्य) किसके द्वारा (न प्रशंस्यः) प्रशंसा करनेयोग्य नहीं है अर्थात् सबके द्वारा प्रशंसा करने योग्य है।

भावार्थ-जो श्रावक तीनो संध्याओंमें अपने सामायिकके कालतक पूर्व आवश्यक अध्यायमें प्रतिपादित योग्य काल, योग्य आसन आदि सामायिक करनेकी विधि बतलाई है, उस कृतिकर्म वा देववन्दना करके वज्रपात होनेपर भी अर्थात् घोरोपसर्ग आनेपर भी रत्नत्रयकी एकाग्रता लक्षण निश्चय सामायिकसे च्युत नहीं होता हैं, वह सामायिक प्रतिमाधारी किसके द्वारा प्रशंसा करने-योग्य नहीं है अर्थात् इन्द्रादि सबके द्वारा प्रशंसा करने योग्य है। भक्ति बोलकर जो कृति कर्म किया जाता है, उसको व्यवहार सामायिक कहते हैं और रत्नत्रयकी एकाग्रता होती है उसको निश्चयसामायिक कहते हैं।

निश्चयसामायिकके शिखरपर आरूढकी प्रशंसा-

आरोपितः सामायिकव्रतप्रासादमूर्धनि।
कलशस्तेन येनैषा भूरारोहि महात्मना ॥३॥

अन्वयार्थ-(येन) जिस (महात्मना) महात्माके द्वारा (एषा) यह (भूः) निश्चयसामायिक भूमि (आरोहि) स्वीकार की गई है (तेन) उस महात्माके द्वारा (सामायिकव्रतप्रासाद-मूर्धनि) सामायिक व्रतरूपी महलके शिखरपर (कलशः) कलश (आरोपितः) स्थापित किया है ॥३॥

भावार्थ-जिस महापुरुषने गणधर चक्रवर्ती और इन्द्रादिकके द्वारा वांछनीय व्यवहारसामायिक पूर्वक निश्चयसामायिक व्रतप्रतिमा रूप भूमिको स्वीकार कर लिये उसने दुर्लभतासे प्राप्त करने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य सर्वसाधारण जिसको प्राप्त और इष्टसिद्धिका मूल कारणरूप अपने सामायिक व्रतरूपी महलपर कलश चढा दिया।

केशबंधनादि नियमित कालको समय कहते हैं और समयमें होनेवाले साम्यभावको सामायिक कहते हैं। सामायिककी प्रतिज्ञाको सामायिक व्रत कहते हैं। वही देव गृह है। क्योंकि देव गृह दुर्लभतासे प्राप्त होता है और इष्टसिद्धिके कारण है। उसी प्रकार वास्तविक सामायिकव्रत प्रतिमाधारण करना कठिन है तथा सम्पूर्ण इष्ट सिद्धियोंका कारण है। जिस प्रकार जिनमन्दिरकी शोभा शिखर और कलशोंसे होती है, उसी प्रकार व्रतकी शोभा सामायिकमें आरूढ होनेसे होती है, इसलिये सामायिक व्रतप्रतिमाको कलशके समान कहा है।

प्रोषधप्रतिमाका वर्णन–

स प्रोषधोपवासी स्याद्यः सिद्धः प्रतिमात्रये।
साम्यान्न च्यवते यावत्प्रोषधानशनव्रतम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(यः) जो श्रावक (प्रतिमात्रये) तीनों प्रतिमाओंमें (सिद्धः) निष्पन्न होता है और (यावत्) जबतक (प्रोषधानशनव्रतं) प्रोषधोपवास व्रत है तबतक (साम्यात्) साम्यभावोंसे (न च्यवते) च्युत नहीं होता है (सः) वह (प्रोषधोपवासी) प्रोषधोपवासी (स्यात्) कहलाता है ॥४॥

भावार्थ–जो श्रावक पहिलेकी दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिकप्रतिमाको निरतिचार पालन करता हुवा सोलह प्रहरतक प्रोषधोपवासके समय साम्यभावसे च्युत नहीं होता है उसको प्रोषधपवासी अर्थात् प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी कहते हैं। जबतक, प्रोषधोपवास व्रत शीलरूप पाला जाता है तबतक नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूपसे छह प्रकारका सामायिक कहलाता है। उनमेंसे भाव सामायिकको छोडकर नामादिक पांच प्रकारके सामायिकमय भावोंसे भी प्रोषधोपवास व्रत पाला जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जिस प्रकार सामायिकप्रतिमामें सामायिक करते समय साम्य-भावकी आवश्यकता है उसी प्रकार प्रोषधोपवासके समय भी सोलह प्रहरतक साम्यभावकी आवश्यकता है ॥४॥

प्रोषधोपवास व्रतीकी परमकाष्ठका निर्देश-

त्यक्ताहाराङ्गसंस्कार-व्यापारः प्रोषधं श्रितः।
चेलोपसृष्टमुनिवद्भाति नेदीयसामपि ॥५॥

अन्वयार्थ-(त्यक्ताहारांगसंस्कारव्यापारः) छोड दिया है चारों प्रकारका आहार और शरीरसंस्कार जिसने ऐसा (प्रोषधं) प्रोषधोपवास व्रतको (श्रितः) धारण करनेवाला (नेदीयसां) समीपवर्ती मनुष्योंको (अपि) भी (चेलोपसृष्टमुनिवत्) उपसर्गके वशसे वस्त्रसे वेष्टित किये हुये निर्ग्रन्थके समान (भाति) प्रतिभासित होता है।

भावार्थ-खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेयके भेदसे आहार चार प्रकारका है।

रोटी, दाल, भात, लड्डू आदि पदार्थोंको खाद्य कहते हैं।

पान, सुपारी, इलायची आदिको स्वाद्य कहते हैं।

रबडी, चटनी आदि जो पदार्थ चाटकर खाये जाते हैं उसको लेह्य कहते है और दूध और पानी आदिको पेय कहते है। जिन्होंने इस प्रकारके चार प्रकारके आहारको तथा स्नान, उबटन चन्दनादिकका विलेपन पुष्प, गंध, विशिष्ट वस्त्रादिकसे शरीरके संस्कारका भी त्याग किया है और च शब्दसे आरंभ व्यापारका भी त्याग किया है और जो शरीरसे भी ममत्वका त्यागी है ऐसा ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला प्रोषधोपवासी श्रावक अपनी समीपवर्ती मनुष्योंको उपसर्गके वशसे वस्त्रसे वेष्टित मुनिके समान मालुम होता है।

सामायिक और प्रोषधोपवासमें प्रतिमापना कैसे होता है उसका वर्णन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्प्राक्सामायिकं शीलं, तद्व्रतं प्रतिमावतः ।
यथा तथा प्रोषधोपवासोऽपीत्यत्र युक्तिवाक् ॥६॥

अन्वयार्थ– (यथा) जैसे (यत्) जो (सामायिकं) सामायिक (प्राक्) तीसरी प्रतिमाके पहिले (शीलं) शीलरूप था (तत्) वह सामायिक (प्रतिमावतः) तीसरी प्रतिमा धारण करनेवालेके (व्रतं) व्रत रूप हो जाता है (तथा) उसी प्रकार (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास (अपि) भी चतुर्थ प्रतिमावालेके व्रत रूप हो जाता है (इति) इस प्रकार (अत्र) इस सामायिक और प्रोषधोपवासमें प्रतिमारूप होनेमें (युक्तिवाक्) समाधान वचन हैं ॥६॥

भावार्थ–जिस प्रकार दूसरी प्रतिमामें सामायिक व्रत शील–रूप है, दूसरी प्रतिमाधारी श्रावक तीनों संध्याओंमें सामायिक नियमितरूपसे करे ऐसा विधान नहीं है। क्योंकि जबतक तीसरी प्रतिमा स्वीकार नहीं की तबतक सामायिक व्रत शीलरूप हैं। जैसे खेतीकी रक्षा बाड करती है उसी प्रकार सामायिक भी अणुव्रतोंका रक्षक रूपसे सहायक व्रत है, मुख्य व्रत नहीं है। और जब तीसरी प्रतिमा धारण की जाती है तब वह सामायिक शीलरूप न रहकर व्रतरूप हो जाता है। तीसरी प्रतिमाधारीके लिये तीनों संध्याओंमें समायिक करना अनिवार्य है। उसी प्रकार प्रोषधोपवास व्रत भी दूसरी, तीसरी प्रतिमामें शीलरूप था, मुख्यव्रत नहीं था। परन्तु चतुर्थ प्रतिमा स्वीकार करनेवालेके व्रतरूप होता है। अष्टमी और चतुर्दशी के दिन जघन्य, मध्यम और उत्तम रूप तीन भेद प्रोषधके कहे हैं उनमेंसे कोई एक भेद पालना जरूरी हो गया है। इसलिये यद्यपि बारह ही व्रत दूसरी प्रतिमामें पालन किये जाते हैं, परन्तु जबतक व्रत रूप नहीं है तबतक वह शीलरूप कहलाते हैं। जैसे दूसरी प्रतिमामें पांच अणुव्रत व्रतरूप है शेष सात व्रत शीलरूप है। परन्तु तीसरी प्रतिमामें सामायिकव्रत व्रतरूप होता है बाकी शेष छह शीलरूप होते हैं ऐसा शीलमें और व्रतमें अन्तर समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमोत्कृष्टताको प्राप्त प्रोषधोपवासी की प्रशंसा—

निशां नयन्तः प्रतिमायोगेन दुरितच्छिदे ।
ये क्षोभ्यन्ते न केनापि तान्नुमस्तुर्यभूमिगान् ॥७॥

अन्वयार्थ- (ये) जो (दुरितच्छिदे) अशुभकर्मकी निर्जरा करनेके लिये (प्रतिमायोगेन) मुनिके समान कायोत्सर्गसे (निशां) रात्रिको (नयन्तः) बिताते हुए (केनापि) किसी घोर उपसर्गसे भी (न क्षोभ्यन्ते) क्षोभित नहीं होते हैं, (तान्) उन (तुर्यभूमिगान्) चतुर्थी प्रतिमाको धारण करनेवाले श्रावकको (नुमः) नमस्कार करते हैं ॥७॥

भावार्थ- जो श्रावक अपने पूर्वबद्ध अशुभकर्मोंका नाश करनेके लिये अष्टमी चतुर्दशी की रात्रिको मुनिके समान कायोत्सर्ग से बिताते हैं और घोरोपसर्ग आनेपर भी अपनी समाधिसे च्युत नहीं होते हैं उस चतुर्थी प्रतिमाधारी श्रावक की हम स्तुति करते हैं। अर्थात् वह श्रावक प्रशंसा का पात्र है ॥७॥

आगे चार श्लोकोंके द्वारा सचित्तविरत स्थानका वर्णन करते हैं—

हरितांकुरबीजाम्बुलवणाद्य प्रासुकं त्यजन् ।
जाग्रत्कृपश्चतुर्निष्ठः सचित्तविरतः स्मृतः ॥८॥

अन्वयार्थ- (चतुर्निष्ठः) पूर्वकी चार प्रतिमाओंमें निष्ठ ऐसा (अप्रासुकं) अप्रासुक (हरितांकुरबीजाम्बुलवणादि) हरित अंकुर, बीज, नमक और पानी आदिको (त्यजन्) छोडता है अर्थात् नहीं खाता है, वह (जाग्रत्कृपः) दयामूर्ति (सचित्तविरतः) सचित्तत्यागप्रतिमावाला (स्मृतः) कहलाता है ॥८॥

भावार्थ- जिसके हृदयमें निरंतर अनुकम्पा स्फुरायमान हैं तथा जो पहिली चारों ही प्रतिमाओंका निरतिचार पालन करते हुये सचित्त. अंकुर, बीज, पानी, नमक और आदि पदसे सचित्त कन्दमूल, फल पत्ते आदिको भी नहीं खाता है, वह सचित्तत्याग प्रतिमावाला कहलाता है ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाग्रत्कृपका इस प्रकार समर्थन करते हैं–

पादेनापि स्पृशन्नर्थवशाद्योऽतिऋतीयते ।
हरितान्याश्रितानन्तनिगोतानि स भोक्ष्यते ॥९॥

अन्वयार्थ–(यः) जो (अर्थवशात्) किसी कारणके वशसे (आश्रितानन्तनिगोतानि) आश्रित है अनंत निगोद जिसके ऐसे (हरितानि) हरितकायको (पादेन) पैरसे (स्पृशन्) स्पर्श करता हुवा (अपि) भी (अतिऋतीयते) पाक्षिकादिक श्रावककी अपेक्षा अति दुःखी होता है (सः) पंचम प्रतिमाधारी श्रावक (भोक्ष्यते) उन हरितकायको कैसे खायेगा अर्थात् नहीं खायेगा ॥९॥

भावार्थ–पंचमी सचित्तत्याग प्रतिमाधारी श्रावक अनन्तान्त निगोद जीवोंका स्थान हरित वनस्पतिको कारणवशात् हाथसे स्पर्श तो दूर रहें, किन्तु पैरसे स्पर्श हो जानेपर भी पाक्षिक श्रावककी अपेक्षा विशेष दुःखी होता है तो क्या वह श्रावक अनन्तकाय वनस्पतिको कैसे खा सकता है अर्थात् नहीं खा सकता है। उक्तं चार्षे ब्राह्मणसृष्टिप्रस्तावे–

सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वंकुरादिषु ।
निगोता इति सार्वज्ञं देवास्माभिः श्रुतं वचः ॥

ब्राह्मणोंकी स्थापना करते समय भरतचक्रवर्तीसे दयालु श्रावकोने कहा कि हे राजन् ! हमने सर्वज्ञ भगवानके वचनोंसे सुना है कि हरितकाय अंकुरादिमें अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं।

सचित्तत्यागियोंकी प्रशंसा करते हैं–

अहो जिनोक्तिनिर्णीतिरहो अक्षजितिः सताम् ।
नालक्ष्यजन्त्वपि हरित् प्सान्त्येतेऽसुक्षयेऽपि यत् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(सतां) सज्जन पुरुषोंका (जिनोक्तिनिर्णीतिः) जिनेन्द्र भगवानके वचनोंका निश्चय (अहो) आश्चर्यकारी है (अक्षजितिः) इन्द्रियोंका जीतना (अहो) आश्चर्यकारी है। (यत्) क्योंकि (एते) यह पंचम प्रतिमाधारी श्रावक (अलक्ष्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्तु) नहीं दिख रहे हैं जीव जिसमें ऐसी (हरित्) वनस्पतिको (अपि) भी (असुक्षये) प्राण नष्ट होनेपर (अपि) भी (न प्सान्ति) नहीं खाते हैं ॥१०॥

भावार्थ–सचित्त त्यागप्रतिमाधारी श्रावकका जिनागमका दृढ विश्वास आश्चर्यकारी है और उनका इन्द्रियविजय भी आश्चर्यकारी है। जिस दृढ विश्वासके वशसे वह श्रावक जिस वनस्पतिमें प्राणी प्रत्यक्ष नहीं दीखते है, केवल आगमगम्य है, उन साधारण वनस्पतिको प्राण जानेपर भी नहीं खाते हैं तो विना प्रयोजन तो खायेगा ही कैसे ?

सारांश यह है कि जिन वस्तुओंमें प्रत्यक्ष जीव नहीं दीखते है उनको भी जिनेन्द्रभगवानकी आज्ञासे वीतराग प्रभुके वचनोंपर विश्वास करके नहीं खाता है तो जिनमें प्रत्यक्ष वा अनुमानसे जीव दीखते हैं उनको कैसे खायेगा? इस श्लोकसे पंचम प्रतिमावालेके जिनेन्द्र भगवानके प्रति दृढ विश्वास और जितेन्द्रियपनेका भी समर्थन किया गया है ॥१०॥

पहिले भोगोपभोगपरिमाण व्रतको शीलरूप कहा था वह भोगोपभोगपरिमाण व्रत पंचमीप्रतिमामें व्रतरूप होनेसे प्रतिमा-पनेको प्राप्त होता है यह बताते हैं–

सचित्तभोजनं यत्प्राङ् मलत्वेन जिहासितम् ।
व्रतयत्यंगिपंचत्व--चकितस्तच्च पंचमः ॥११॥

अन्वयार्थ–(प्राक्) पहिले (यत्) जिस (सचित्तभोजनं मलत्वेन) भोगोपपरिमाण शीलके अतिचाररूपसे (जिहासितं) छोडा था और (तत्) उसी सचित्तभोजनको (अंगिपञ्चत्वचकितः) जीवोंके मरणसे भयभीत हुवा (पंचमः) पंचम प्रतिमाधारी (व्रतयति) व्रतरूपसे स्वीकार करता है ॥११॥

भावार्थ–दूसरी प्रतिमामें भोगोपभोग परिमाण नामका गुणव्रत कहा है। उस गुणव्रतका सचित्तत्याग एक अतिचार भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताया है। पहिले जो दूसरी आदि प्रतिमामें भोगोपभोगपरिमाण नामका गुणव्रत अतिचारसहित अभ्यासरूपसे पालन किया जाता था। इसलिये शीलरूप था। परन्तु सचित्तभोजन त्याग पंचमी प्रतिमाधारी श्रावक खाने योग्य सचित्तद्रव्याश्रित प्राणियोंके वधसे भयभीत होकर भक्ष्यमाण सचित्त वस्तुका भी त्याग कर देता है। इसलिये भोगोपभोगपरिमाण गुणव्रत पंचम प्रतिमाधारीके व्रतरूप हो जाता है।

स्वामी समन्तभद्राचार्यने भोगोपभोगपरिमाणका अतिचार सचित्तत्याग न बताकर दूसरे रूपसे वर्णन किया है और पंचम प्रतिमाधारीका स्वरूप इस प्रकार कहा है-

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्त्तिः।

जो श्रावक दयामूर्ति अप्रासुक मूल, फल, शाक, शाखा, करीर, कंद, फूल और बीजोंको नहीं खाता है, वह सचित्तत्याग प्रतिमाधारी कहलाता है।

आगे रात्रिभोजनत्यागव्रतका चार श्लोकके द्वारा वर्णन करते हुए इसका लक्षण कहते हैं-

स्त्रीवैराग्यनिमित्तैकचित्तः प्राग्वृत्तनिष्ठितः।
यस्त्रिधाऽन्हि भजेन्न स्त्रीं रात्रिभक्तव्रतस्तु सः ॥१२॥

अन्वयार्थ (यः) जो (प्राग्वृत्तनिष्ठितः) पहिलेकी प्रतिमाओंको निरतिचार पालता हुवा (स्त्रीवैराग्यनिमित्तैकचित्तः) स्त्रियोंसे वैराग्य होनेके कारणोंमें है एकचित्त जिसका ऐसा श्रावक जो (त्रिधा) मन वचन कायसे और कृतकारित अनुमोदनासे (अन्हि) दिनमें (स्त्रीं) स्त्रीको (न भजेत्) सेवन नहीं करता है (सः तु) वही (रात्रिभक्तव्रतः) रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमावाला कहलाता है।

भावार्थ- आगममें कामदोष, स्त्रीदोष, स्त्रीसंग दोषका चिंतवन करना तथा स्त्री अशुचि है ऐसा विचार करना और आर्य पुरुषोंकी संगति करना यह पांच स्त्रियोंमें विरक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेमें कारण माने हैं। इन स्त्रियोंसे विरक्त होनेवाले निमित्त कारणोंमें दृढ है चित्त जिसका तथा जो दूसरीसे लेकर पांचवी प्रतिमातकके व्रतोंको निरतिचार पालन करता हुवा दिनमें मनवचन कायसे तथा कृतकारित अनुमोदनासे स्त्रीमात्र का त्याग कर देता है, उसको रात्रिभुक्तित्यागी कहते हैं अथवा रात्रिभुक्तिव्रतवाला श्रावक कहते हैं।

छठी प्रतिमाधारीकी प्रशंसा–

अहो चित्रं धृतिमतां संकल्पच्छेदकौशलम्।
यन्नामापि मुदे साऽपि दृष्टा येन तृणायते ॥१३॥

अन्वयार्थ– (यन्नामापि) जिसका नाम सुनना मात्र भी (मुदे) हर्षके लिये होता है, (दृष्टा) देखी हुई (अपि) भी (सा) वह स्त्री (येन) जिस सामर्थ्यसे (तृणायते) तृणके समान मालुम होती है, वह (धृतिमतां) धैर्य धारी पुरुषोंका (संकल्पच्छेदकौशलं) मनके व्यापारका निरोध करनेका सामर्थ्य (अहो) आश्चर्य-कारी है ॥१३॥

भावार्थ– अहो उन महापुरुषोंका स्त्रीसंकल्प रोकनेका सामर्थ्य आश्चर्यकारी है। जिस मनोव्यापारके रोकनेके सामर्थ्यमे जिसका नाम सुनना भी प्रीति को उत्पादन करता हैं, उसके देख लेनेके बाद तो हर्ष क्यों नहीं होगा। क्योंकि गृहस्थोंको स्वस्त्रीके प्रति प्रेमनेत्र व्यापारसे ही दुःख उत्पन्न करता है, उस स्त्रीको प्रत्यक्ष देखते हुए भी जो तृण के समान समझते हैं, अर्थात् उन्हें वह भोग्य रूपसे प्रतीत नहीं होती है।

इसको रात्रिमें भी मैथुनके त्यागका उपदेश देते हैं–

रात्रावपि ऋतावेव सन्तानार्थमृतावपि।
भजन्ति वशिनः कान्तां न तु पर्वदिनादिषु ॥१४॥

अन्वयार्थ– (वशिनः) षष्ठम प्रतिमाधारी जितेन्द्रिय (रात्रौ) रात्रिमें (अपि) भी (ऋतौ) ऋतुकालमें (एव) ही (ऋतौ) ऋतु कालमें (अपि) भी (सन्तानार्थं) सन्तान के लिये (कान्तां) स्त्रीको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(भजन्ति) सेवन करते हैं (तु) परन्तु (पर्वदिनादिषु) पर्वके दिनोंमें (न) कभी सेवन नहीं करते हैं।

भावार्थ–जितेन्द्रिय छठी प्रतिमाधारी पुरुष रात्रिमें भी स्त्रीका सेवन करते हुये भी पुष्पदर्शनके उत्तरभावि चतुर्थ दिनके स्नानन्तर ऋतुकालमें ही सेवन करते हैं और ऋतुकालमें भी सन्तानके लिये ही सेवन करते हैं, विषयसुखोंके अभिलाषासे नहीं। सन्तानके लिये स्त्रीका सेवन करते हुये भी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, ग्रहण आदिके दिनोमें कभी भी सेवन नहीं करते हैं।

आगे चारित्रसारादि शास्त्रोंके मतसे रात्रिभक्त व्रतकी निरुक्ति बताते हुये रत्नकरण्डादिग्रन्थोंमें प्रसिद्ध रात्रिभक्त व्रतके अर्थको भी बताते हैं–

रात्रिभक्तव्रतो रात्रौ स्त्रीसेवावर्तनादिह।
निरुच्यतेऽन्यत्र रात्रौ चतुराहारवर्जनात् ॥१५॥

अन्वयार्थ–(इह) इस ग्रन्थमें (रात्रौ) रात्रिमें (स्त्रीसेवावर्तनात्) स्त्रीसेवन करना अर्थात् दिनमें स्त्रीसेवनके त्यागको (रात्रिभक्तव्रतः) रात्रिभक्त व्रत कहा है। (अन्यत्र) दूसरे रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें (रात्रौ) रात्रिमें (चतुराहारवर्जनात्) चार प्रकारके आहारका त्याग करना (रात्रिभक्तव्रतः) रात्रिभक्ति त्यागव्रत (निरुच्यते) कहा जाता है ॥१५॥

भावार्थ–चारित्रसारादि ग्रन्थके अनुसार इस ग्रन्थमें रात्रिमें ही स्त्रीका सेवन करना दिनमे स्त्रीसेवनके त्याग करनेको रात्रिभक्त व्रत कहा है और समन्तभद्राचार्यने रात्रिमें चार प्रकारके आहारके त्याग करनेको रात्रिभक्त व्रत कहा है। सो ही लिखा है–

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नोति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभक्तविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥

सर्व प्राणियोंकी अनुकम्पासे युक्त है मन जिसका ऐसा जो श्रावक रात्रिमें अन्न, पान, खाद्य और लेह्य इन चार प्रकारके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारका त्याग करता है अर्थात् रात्रिमें चार प्रकारका आहार नहीं करता हैं वह रात्रिभक्त विरत कहलाता है ।

चारित्रसारादि ग्रन्थमें रात्रिभक्त व्रतकी व्याख्या–रात्रौ भक्तं स्त्रीभजनं व्रतयति इति रात्रिभक्तव्रतः। और रत्नकरण्डश्रावकाचार शास्त्रमें–रात्रौ भक्तं चतुर्विधमपि आहारं व्रतयति प्रत्याख्याति इति रात्रिभक्तव्रतः।

आगे ब्रम्हचर्यस्थानका वर्णन करते हैं–

तत्तादृक्संयमाभ्यासवशीकृतमनास्त्रिधा ।
यो जात्वशेषा नो योषा भजति ब्रह्मचार्यसौ ॥१६॥

अन्वयार्थ–(तत्तादृक्संयमाभ्यासवशीकृतमनाः) ऊपर कही हुई छहों प्रतिमापालनरूप संयमके अभ्याससे वश किया है मनको जिसने ऐसा (यः) जो श्रावक (त्रिधा) मन, वचन, कायसे (अशेषा) सम्पूर्ण (योषा) स्त्रियोंको (जातु) कभी भी (न भजति) सेवन नहीं करता है, (असौ) वह श्रावक (ब्रम्हचारी) ब्रम्हचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है ॥१६॥

भावार्थ–पूर्वप्रतिमाओंमें आचरित एकदेश प्राणिसंयम तथा एकदेश इन्द्रियसंयमके पालनके अभ्याससे जिन्होंने अपने मनको स्वाधीन कर लिया है ऐसे श्रावक मन, वचन और कायसे देवी, मानवी, तिर्यंचिनी और चित्रामकी आदि सम्पूर्ण स्त्रियोंके सेवनका त्याग कर देता है और ज्ञानस्वरूप अपने परम ब्रम्ह आत्मामें हीं रमण करता है वह सातवी प्रतिमाधारी ब्रम्हचारी कहलाता है ॥१६॥

ब्रम्हचारीकी प्रशंसा–

अनन्तशक्तिरात्मेति श्रुतिर्वस्त्वेव न स्तुतिः ।
यत्स्वद्रव्ययुगात्मैव जगज्जैत्रं जयेत्स्मरेत् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(आत्मा) आत्मा (अनन्तशक्तिः) अनन्त शक्तिवाला है (इति) इस प्रकार जो (श्रुतिः) आप्तोपदेश हैं (स्तुतिः) वह स्तुति (न) नहीं है परन्तु (वस्तु) वास्तविक (एव) हीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(यत्) क्योंकि (स्वद्रव्ययुक्) परद्रव्यसे व्यावर्त होकर, अपने आपमें युक्त होकर (आत्मा) आत्मा (एव) ही (जगज्जैत्रं) तीन जगतको जीतनेवाले (स्मरं) कामको (जयेत्) जीतता है ॥१७॥

भावार्थ- आत्मामें अनन्त शक्ति है, ऐसा आप्तकथित शास्त्रमें लिखा है वह पारमार्थिक है,स्तुतिरूप नहीं हैं। गुणोंसे अधिक गुणोंका वर्णन करना स्तुति है, वह वास्तविक नहीं है। परन्तु आत्माकी अनन्तशक्ति वास्तविक है। क्योंकि जिस शक्तिके बलसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें लीन होकर ब्रह्मचारी आत्मा तीन जगतके अनन्त संसारी जीवोंपर विजय प्राप्त करनेवाले जगद्विजयी कामको जीतता है। और जगद्विजयी कामको जीतनेवाला होनेसे आत्मा अनन्त शक्तिवाला सिद्ध होता है।

सर्वसाधारण दृष्टिसे ब्रह्मचर्यका माहात्म्य बताते हैं—

विद्या मंत्राश्च सिध्द्यन्ति किङ्करन्त्यमरा अपि
क्रूराः शाम्यन्ति नाम्नाऽपि निर्मलब्रह्मचारिणाम् ॥१८॥

अन्वयार्थ- (निर्मलब्रह्मचारिणां) निर्मल ब्रह्मचारियोंको (विद्या) विद्या (च) और (मंत्राः) मंत्र (सिध्द्यन्ति) सिद्ध होते हैं (अपि) और (अमराः) देव (किङ्करन्ति) किङ्करके समान आचरण करते हैं, (नाम्नापि) और उनके नाम उच्चारण मात्रसे ही (क्रूराः) क्रूर राक्षसादि पशु (शाम्यन्ति) शांत हो जाते हैं।

भावार्थ- निरतिचार ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाले ब्रह्मचारीको विद्या, साधितसिद्ध और वरप्रदा होती है। और मंत्र पढने मात्रसे सिद्ध हो जाते हैं। देव किङ्करके समान आचरण करते हैं। मनुष्य और तिर्यंचोंकी तो बात ही क्या। निर्मल ब्रह्मचारीके नाम उच्चारण मात्रसे क्रूर ब्रह्मराक्षसादि शांत हो जाते हैं, उन ब्रह्मचारियोंके सान्निध्यकी तो बात ही क्या कहना ॥१८॥

प्रसंगवश ब्रह्मचर्याश्रमका थोडासा वर्णन करतें हैं—

प्रथमाश्रमिणः प्रोक्ता ये पंचोपनयादयः।
तेऽधीत्य शास्त्रं स्वीकुर्युर्दारानन्यत्र नैष्ठिकात् ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (ये) जो (प्रथमाश्रमिणः) प्रथमाश्रमवाले अर्थात् मौञ्जीबन्धनपूर्वक व्रतको पालन करनेवाले (उपनयादयः) उपनयादि (पंच) पांच ब्रम्हचारी (प्रोक्ताः) कहे हैं (ते) वे सब (नैष्ठिकात्) नैष्ठिकके (अन्यत्र) शिवाय बाकी सब ब्रम्हचारी (शास्त्रं) शास्त्रको (अधीत्य) पढकरके (दारान्) स्त्रियोंको (स्वींकुर्युः) स्वीकार करे अर्थात् स्वीकार कर सकते हैं ।।१९।।

भावार्थ– आगममें उपनय, अवलम्ब, अदीक्षा, गूढ और नैष्ठिकके भेदसे पांच प्रकारके ब्रम्हचारी कहे गये हैं । यज्ञोपवीत धारक समस्त विद्याओंका अभ्यास करके जो पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, उनको उपनय ब्रम्हचारी कहते हैं ।

क्षुल्लकवेष धारण कर आगमका अभ्यास करते हैं, और आगमाभ्यास समाप्त होनेके बाद पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं उनको अवलम्ब ब्रम्हचारी कहते हैं ।

विना किसी वेशसे शास्त्राध्ययन करके गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं उनको अदीक्ष ब्रम्हचारी कहते हैं ।

जो कुमार मुनिभेष धारण कर विद्याभ्यास करते हैं विद्याकी समाप्ति होनेके बाद दुःसह परीषह, बन्धुजन तथा राजा आदिके कारण अथवा स्वयं मुनिपदको छोडकर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उनको गूढ ब्रम्हचारी कहते हैं ।

जो चोटी रखते हैं, भिक्षावृत्तिसे भोजन करते हैं, देवपूजामे तत्पर रहते हैं, उनको नैष्ठिकब्रम्हचारी कहते हैं । नैष्ठिक ब्रम्हचारीको छोडकर शेष चारों ही ब्रम्हचारी स्त्रीको स्वीकार कर सकते हैं । अर्थात् नैष्ठिक ब्रम्हचारी विवाह नहीं कर सकता है । बाकी चार ब्रम्हचारी अध्ययन समाप्त होनेके बाद विवाह कर सकते हैं ।।१९।।

जिनागममें वर्णाश्रमव्यवस्थाका निरूपण किया है उसका वर्णन–

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सप्तमें ।
चत्वारोऽङ्गे क्रियाभेदादुक्ता वर्णवदाश्रमाः ।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (सप्तमें) सातवे (अंगे) उपासकाध्ययन अंगमें (वर्णवत्) ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णके समान (ब्रह्मचारी) वर्णी– (गृही) गृहस्थ (वानप्रस्थ) वानप्रस्थ (च) और (भिक्षुः) भिक्षु इस प्रकार (क्रियाभेदात्) क्रियाके भेदसे (चत्वारः) चार प्रकारका (आश्रमः) आश्रम (उक्ताः) कहे गये हैं ॥२०॥

भावार्थ– किसी शास्त्रोक्त विवक्षित कालमें जहां यथायोग्य तपश्चर्या की जाती है उसे आश्रम कहते हैं । वे वर्णव्यवस्थाके समान क्रियाभेदसे चार प्रकारके हैं । उनका वर्णन उपासकाध्ययन अंगमें किया गया है, जिनका नाम ब्रम्हचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षु है । कहा भी है—

ब्रम्हचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
इत्याश्रमास्तु जैनानां सप्तमाङ्गाद्विनिःसृताः ।

ब्रम्हचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम सातवें अंगसे निकले हैं । आगे उनका क्रियाभेदसे दिग्दर्शन कराते हैं । उनमें ब्रम्हचारीकी ये क्रियाएं हैं—

गर्भसे आठवे वर्षमें जिनमन्दिरमें जिसने जिनदेवकी पूजा की है और जिसका मुंडनकर्म हो चुका है, ऐसे ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्यके पुत्रको तीन लडीका मौंजीबन्धन, सात लडीका यज्ञोपवीत आदि बाह्य लिंग तथा ब्रम्हचर्यसहित गुरुकी साक्षीपूर्वक विशुद्ध स्थूल, हिंसाविरति आदि व्रत धारण कराना चाहिये आगममें ब्रम्हचारीकी क्रियाका विस्तार इस प्रकार बतलाया है–

शिखी सितांशुकः सान्तर्वासा निर्वेषविक्रियः ।
व्रतचिन्हं दधत्सूत्रं तदोक्तो ब्रम्हचार्यसौ ॥

जिसने चोटी रखली है, जिसने शुक्ल वस्त्रका परिधान किया है, जो लंगोटी लगाता है, जिसका वेष विकार रहित है, जो व्रतके चिन्हरूप सूत्रको धारण करता है वह ब्रम्हचारी है ।

चरणोचितमन्यच्च नामधेयं तदास्य वै ।
वृत्तिश्च भिक्षयान्यत्र राजन्यादुद्धवैभवात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय इस ब्रम्हचारीका चारित्रके योग्य अथवा दूसरा उचित नाम रक्खा जाता है। और राजकुमारको छोडकर शेष सब ब्रम्हचारी भिक्षासे अपना उदरनिर्वाह करते हैं।

जो पूर्वोक्त नित्य और नैमित्तिक अनुष्ठानमें स्थित है उसे गृहस्थ कहते हैं। वह गृहस्थ जाति क्षत्रिय और तीर्थक्षत्रियके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें जाति क्षत्रिय–क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार प्रकारका है। तीर्थक्षत्रिय अपनी अपनी आजीविकाके भेदसे अनेक प्रकारका है।

जिन्होंने जिनरूपको धारण नहीं किया है, जो खण्ड वस्त्रको धारण करते हैं और जो निरतिशय तपश्चर्यामें उद्युक्त हैं उन्हें वानप्रस्थ कहते हैं।

जिनरूपको धारण करनेवाले भिक्षु अनेक प्रकारके होते हैं। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिः प्रोत्तर्ऋद्धि–
रारूढश्रेणियुग्मो जिनयतिरनगारोऽपरः साधुवर्गः।
राजा ब्रम्हा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्ति–
प्राप्तो बुध्द्यौषधीशो विविधनयपटुर्विश्ववेदी क्रमेण॥

एकदेश प्रत्यक्ष ज्ञानके धारी और सकल प्रत्यक्ष ज्ञानके धारीको मुनि कहते हैं। ऋद्धि प्राप्त साधुको ऋषि कहते हैं। दोनों श्रेणियोंपर आरूढ साधुको जिन यति कहते हैं। जो विक्रियाऋद्धि और अक्षीण महानस ऋद्धिका धारक है उसे राजर्षि कहते हैं। जो बुद्धि, ऋद्धि और औषधि ऋद्धिका अधिपति है उसे ब्रम्हर्षि कहते हैं। जो विविध नयोंमें पटु है उसे देवर्षि कहते हैं। और जो विश्वका वेत्ता है उसे परमर्षि कहते हैं।

उन सबकी क्रिया पहिले कही गयी है उसी प्रकार उनकी वर्ण क्रिया भी जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरंभत्याग प्रतिमाका स्वरूप—

निरूढसप्तनिष्ठोऽङ्गिघाताङ्गत्वात्करोति न।
न कारयति कृष्यादीनारंभविरतस्त्रिधा ॥२१॥

अन्वयार्थ— (यः) जो (निरूढसप्तनिष्ठः) पूर्वोक्त सात प्रतिमाओंको निर्दोष रीतीसे पालन करनेवाला श्रावक (अङ्गिघाताङ्गत्वात्) प्राणियोंकी हिंसाके निमित्त होनेसे (कृष्यादीन्) कृषि सेवा आदि कर्मोंको (त्रिधा) मन, वचन, कायसे, (न करोति) न स्वयं करता है (न कारयति) न कराता है वह श्रावक (आरंभविरतः) आरंभ त्याग प्रतिमावाला कहलाता है ॥२१॥

भावार्थ—प्राणिघातका कारण होनेसे कृषि, सेवा, वाणिज्य आदि व्यापारोंको आरंभ कहते हैं। किन्तु अभिषेक, दान, पूजा आदिको आरंभ नहीं कह सकते हैं। क्योंकि ये दानादिक प्राणिघातके अंग नहीं है। जो श्रावक पूर्वकी सात प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करता हुवा मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनासे कृषि, सेवा, वाणिज्यादि प्राणिघातका कारणभूत आरंभका त्याग करता है, वह आरंभत्याग नामकी आठवी प्रतिमाधारी कहलाता है। वह दान, पूजादिक कार्य करनेका त्यागी नहीं होता है। क्योंकि उनमें प्राणिघातका अभाव है, प्राणिघातका त्याग करना ही संयम है। कदाचित् सात प्रतिमाओंके संयमको निर्दोष पालन करते हुये भी पुत्रादिकको कार्यकी अनुमति देनेका त्याग करनेमें समर्थ नहीं हो तो कृत कारितरूप छह भंगसे भी सावद्यका त्याग कर सकता है।

उसीका समर्थन करते हैं—

यो मुमुक्षुरघाद्बिभ्यत् त्यक्तुं भक्तमपीच्छति।
प्रवर्त्तयेत्कथमसौ प्राणिसंहरणीः क्रियाः ॥२२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (मुमुक्षुः) मुमुक्षु (अघात्) पापसे (बिभ्यत्) डरता हुवा (भक्तं) भोजनको (अपि) भी (त्यक्तुं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोडना (इच्छति) चाहता है (असौ) वह अष्टम प्रतिमाधारी श्रावक (प्राणिसंहरणीः) प्राणियोंका घात करनेवाली (क्रियाः) क्रियाओंमें (कथं) कैसे (प्रवर्त्तयेत्) प्रवृत्ति कर सकता है ॥२२॥

भावार्थ–जो अष्टमी प्रतिमाधारी श्रावक पापसे भयभीत होकर जिसमें प्राणियोंका घात होता है ऐसा भोजन करना भी छोडता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंका नाशस्वरूप मोक्षकी इच्छा करनेवाला वह भव्य प्राणियोंके संहार करनेवाली क्रियाओंको कैसे कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता है ॥२२॥

आगे सात श्लोकके द्वारा परिग्रहविरतिका स्वरूप कहते हैं–

स ग्रन्थविरतो यः प्राग्व्रतव्रातस्फुरद्धृतिः ।
नैते मे नाहमेतेषामित्युज्झति परिग्रहान् ॥२३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो (प्राग्व्रतव्रातस्फुरद्धृतिः) पहिलेके व्रतोंके समूहसे स्फुरायमान है धैर्य जिसका ऐसा वह (एते) यह धनधान्यादिक (मे) मेरे (न) नहीं है और (एतेषां) इनका (अहं) मैं (न) नहीं हूँ । (इति) इस प्रकार विचार करके (परिग्रहान्) परिग्रहको (उज्झति) छोडता है (सः) वह (ग्रन्थविरतः) परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है ॥२३।

भावार्थ–दर्शनिकादिक पूर्वकी प्रतिमाओंके पालन करनेसे जिसके हृदयमें सन्तोष प्रकट हो गया है ऐसा श्रावक यह क्षेत्र-वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भांडादि दश प्रकारका परिग्रह मेरे योग्य नहीं है और न इनका मैं भोक्ता स्वामी हो सकता हूँ, यह सब दृष्टिगोचर होनेवाले परिग्रह मेरेसे सर्वथा भिन्न है, ऐसा विचार करके जो अपने पदके योग्य संयमके साधनभूत परिग्रहको छोडकर बाकी सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग करता है तथा 'स्वाचारप्रतिलोम्येन लोकाचारं प्रमाणयेत् ।' इस पूर्वोक्त उपदेशको ध्यानमे रखते हुये उसे अपने पदके अनुसार व्यवहार करना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब—आगेके श्लोकद्वारा सकलदत्तिका वर्णन करते हैं—

अथाहूय सुतं योग्यं गोत्रजं वा तथाविधम् ।
ब्रूयादिदं प्रशान् साक्षाज्जातिज्येष्ठसधर्मणाम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद (प्रशान्) प्रशमभावमें तत्पर नवमी प्रतिमाधारी श्रावक (योग्यं) योग्य (पुत्रं) अपने पुत्रको (वा) अथवा (तथाविधं) उसी प्रकार योग्य (गोत्रजं) गोत्रज पुत्रको (आहूय) बुलाकर (जातिज्येष्ठसधर्मणां) अपनी जातिमें श्रेष्ठ साधर्मियोंके (साक्षात्) सामने (इदं) ऐसा (ब्रूयात्) बोले ॥२४॥

भावार्थ—अथ शब्दके प्रारंभ, मंगल, हेतु आदि अनेक अर्थ होते है। तथापि यहाँपर अथ शब्द अधिकारवाचक है—अर्थात् अब सकलदत्तिके वर्णनका प्रारंभ किया जाता है। यह प्रशमभावको धारण करनेवाला नवमी प्रतिमाधारक श्रावक अपने घरके भारको धारण करनेमें योग्य पुत्रको अथवा अपने योग्य पुत्रका अभाव होनेपर योग्य अपने गोत्रके भाई तथा भाईक पुत्रको बुलाकर अपनी जातिमें मुख्य सहधर्मी पुरुषोंके सामने इस प्रकार कहे।

ताताद्ययावदस्माभिः पालितोऽयं गृहाश्रमः ।
विरज्यैनं जिहासूनां त्वमद्यार्हसि नः पदं ॥२५॥

अन्वयार्थ—(हे तात) हे प्रिय पुत्र (अद्य यावत्) आजतक (अस्माभिः) हमने (अयं) इस (गृहस्थाश्रमः) गृहस्थाश्रमक (पालितः) पालन किया। (अद्य) आज (विरज्य) विरक्त होकर (एनं) इस गृहस्थाश्रमको (जिहासूनां) छोडनेकी इच्छा करनेवाले (नः) हमारे (पदं) स्थानके (त्वं) तुम (अर्हसि) योग्य हो ॥२५॥

भावार्थ—तात यह शब्द पोष्यत्व सूचनगर्भ पुत्रादिके लिये प्रेमपूर्ण आमंत्रण है। हे प्रिय पुत्र! आजतक त्रिवर्गके साधनका सहकारी इस गृहस्थाश्रमका नवमी प्रतिमाके अनुष्ठानमें निष्ठामें उद्यत मैने यथाविधि निर्वाह किया। आज संसार, शरीर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगोंसे विरक्त होकर इस गृहस्थाश्रमको छोडनेकी इच्छा करने-वाले मेरे इस गृहस्थाश्रम पदके स्वीकारने योग्य तुम हो ॥२५॥

पुत्रः पुपूषोः स्वात्मानं सुविधेरिव केशवः ।
य उपस्कुरुते वप्तुरन्यः शत्रुः सुतच्छलात् ॥२६॥

अन्वयार्थ–(यः) जो (सुविधेः) सुविधिके (केशवः) केशवके (इव) समान (स्वात्मानं) अपने आत्माके (पुपूषोः) शुद्धि करनेकी इच्छा करनेवाले (वप्तुः) पिताका (उपस्कुरुते) उपकार करता है (पुत्रः) वही पुत्र है (अन्यः) दूसरा (सुतच्छलात्) पुत्रके छलसे (शत्रुः) शत्रु है ॥२६॥

भावार्थ–आत्मकल्याणके इच्छुक पिताके प्रति केशवके समान सुविधि पिताकी आत्माराधनामें सहायक होता है वही सच्चा पुत्र है बाकी सब पुत्रके छलसे शत्रु है।

पुत्रः सूनुरपत्यं च तुक् तोकं चात्मजः प्रजा। पुत्रः सूनुः अपत्यं तुक तोक् आत्मजः प्रजा, यह सब पुत्रके नाम हैं।

यः उत्पन्नः पुनाति वंशं स पुत्रः। अथ पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते वा पुत्रः ॥

जो अपने वंशको पवित्र करे वा मातापिताकी रक्षा करे उसको पुत्र कहते हैं।

न पतन्ति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यं।

जिसके उत्पन्न होनेपर पूर्वज नरकमें नहीं जावे उसको पुत्र कहते हैं, जिसमें यह गुण नहीं है वह पुत्रके छलसे उग्रसेनका पुत्र कंसके समान या श्रेणिक पुत्र कुणिकके समान शत्रु है।

ऋषभदेवके पूर्वभवसम्बन्धी सुविधि राजाकी पर्यायमें श्रीमति पत्नी का जीव केशव नामका पुत्र था, जिसके स्नेहवश राजाने दीक्षा लेनेके भाव होते हुये भी दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। घरमें रहकर तपश्चरण किया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुविधि और केशवकी कथा

आदिनाथ दशभव पहिले महाबल नामके राजा थे। सुबुद्धि मंत्रीके सदुपदेशसे बाईस दिनकी सल्लेखना धारण कर मरण प्राप्त किया, जिसके प्रभावसे वह मरकर सौधर्मस्वर्गमें एक सागरकी आयुके धारक ललितांग नामके देव हुये। वहांपर उनके श्री स्वयं प्रभा नामकी अत्यन्त प्रिया देवांगना थीं। आयु समाप्त होनेके बाद ललितांग स्वर्गसे चयकर वज्रबाहु राजाके वज्रजंघ नामका पुत्र हुवा। और स्वयंप्रभा वज्रदन्त चक्रवर्तीके श्रीमती नामकी पुत्री हुई। पूर्व संस्कारके संयोगसे वज्रजंघ का श्रीमतीके साथ पाणिग्रहण हुवा। एक दिन श्रीमति और वज्रजंघने चारण ऋद्धिधारी मुनिराजको आहारदान दिया जिसके प्रभावसे वे दोनों मरकर भोगभूमीमें आर्य और आर्या हुये। एक दिन वज्रजंघ आर्य अपनी श्रीमति स्त्रीके साथ कल्पवृक्षकी शोभाको देखता हुवा क्षणभरके लिए बैठा था कि इत-नेमें दो चारणऋद्धिधारक मुनियुगल आकाशमार्गसे नीचे उतरे। वज्रजंघके जीव आर्यने अपनी स्त्रीके साथ दोनों मुनियोंके चरण युगलमें अर्घ चढाकर नमस्कार किया। उस समय उसके आखोंसे हर्षके आँसू निकलकर मुनिराजके चरणोंपर पड रहे थे जिससे वह ऐसा जान पडता था मानो अश्रुजलसे उन मुनियोंके चरणारविन्दका प्रक्षालन ही कर रहा हो। तदनन्तर स्त्रीकें द्वारा प्रणाम करते हुये वे दोनों मुनियोने आर्य वज्रजंघको आशीर्वाद देकर धर्मोपदेश दिया।

” हे आर्य ! तूं निर्मल सम्यग्दर्शनके विना केवल पात्रदानकी विशेषतासे ही यहां उत्पन्न हुवा है।

महाबलके भवमें तूने हमसे ही तत्त्वज्ञान प्राप्त कर शरीर छोडा था, परन्तु उस समय भोगोंकी आकांक्षाके वशसे तूं सम्यग्द-र्शन की विशुद्धताको प्राप्त नहीं कर सका था। अब हम दोनों सर्व श्रेष्ठ तथा स्वर्ग और मोक्षसम्बन्धी सुखका प्रधान कारणरूप सम्यग्दर्शनको देनेकी इच्छासे यहां आये हैं। इसलिये आर्य तूं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज सम्यग्दर्शन ग्रहण कर। उसके ग्रहण करनेका यह समय है। क्योंकि कालादि लब्धिके विना इस संसारमे जीवोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नही हो सकती है। जब देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरंग कारण तथा करण लब्धिरूप अन्तरंग कारण सामग्रीकी प्राप्ति होती है तभी यह भव्य प्राणि विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक हो सकता है।

हे आर्य! सम्यग्दर्शन प्राप्त हो चुकनेके बाद संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है जो जीवको प्राप्त नहीं होता है।

इस संसारमें उसी पुरुषने श्रेष्ठ जन्म पाया है, वही कृतार्थ हैं और वही पंडित हैं जिसके हृदयमें छलरहित–वास्तविक सम्यग्दर्शन प्रकाशमान रहता है।

हे आर्य, तू यह निश्चित जान कि यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी महलकी पहली सीढी है। नरकादि दुर्गतियोंके द्वारके रोकनेवाले मजबूत किवाड है, धर्मरूपी वृक्षकी स्थिर जड है, स्वर्ग और मोक्षरूपी घरका द्वार है और शील रूपी रत्नहारके मध्यमें लगा हुआ श्रेष्ठ रत्न हैं।

यह सम्यग्दर्शन जीवोंको अलंकृत करनेवाला है, स्वयं देदीप्यमान है, रत्नोंमें श्रेष्ठ हैं, सबसे उत्कृष्ट है और मुक्तिरूपी लक्ष्मीके हारके समान है। ऐसे इस सम्यग्दर्शनरूपी रत्नहारको हे भव्य, तू अपने हृदयमें धारण कर। जिस पुरुषने अत्यन्त दुर्लभ इस सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्नको पा लिया है वह शीघ्र ही मोक्षतकके सुखको पा लेता है।

देखो, जो पुरुष एक मुहूर्तके लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है वह इस संसाररूपी बेलको काटकर बहुत ही छोटी कर देता है अर्थात् वह अर्द्ध पुद्गलपरावर्तनसे अधिक समयतक संसारमें नहीं रहता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके हृदयमें सम्यग्दर्शन विद्यमान है वह उत्तम देव और उत्तम मनुष्य पर्यायमें ही उत्पन्न होता है। उसके नारकी और तिर्यंचोंके खोटे जन्म कभी भी नहीं होते।

इस सम्यग्दर्शनके विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? इसकी तो यही प्रशंसा पर्याप्त है कि सम्यग्दर्शनके प्राप्त होनेपर अनन्त संसार भी सान्त (अन्तसहित) हो जाता है।

हे आर्य, तू मेरे कहनेसे अर्हन्त देवकी आज्ञाको प्रमाण मानता हुआ अनन्यशरण होकर अन्य रागी, द्वेषी देवताओंकी शरणमें न जाकर सम्यग्दर्शन स्वीकार कर।

इस प्रकार प्रीतिंकर आचार्यके वचनोंको प्रमाण मानते हुए आर्य वज्रजंघने अपनी स्त्रीके साथ-साथ प्रसन्नचित्त होकर सम्यग्दर्शन धारण किया। वह वज्रजंघका जीव अपनी प्रियाके साथ साथ सम्यग्दर्शन पाकर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। सो ठीक ही है, अपूर्व वस्तुका लाभ प्राणियोंके महान् सन्तोषको पुष्ट करता ही है।

पहले कहे हुए सिंह, वानर, नकुल और शूकरके जीव भी गुरुदेव प्रीतिंकर मुनिके चरण-मूलका आश्रय लेकर आर्य वज्रजंघ और आर्या श्रीमतीके साथ-साथ ही सम्यग्दर्शनरूपी अमृतको प्राप्त हुए थे।

जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे सम्यग्दर्शनरूपी रसायनका आस्वाद कर वे दोनों ही दम्पती कर्म नष्ट करनेवाले जैनधर्ममें बडी दृढताको प्राप्त हुए।

जिन्होंने हर्षसूचक चिन्होंसे अपने मनोरथकी सिद्धिको प्रकट किया है ऐसे दोनों दम्पतियोंको दोनों ही मुनिराज धर्मप्रेमसे बार-बार स्पर्श कर रहे थे। वह वज्रजंघका जीव जन्मान्तर-सम्बन्धी प्रेमसे आँखे फाड-फाडकर श्री प्रीतिंकर मुनिके चरण-कमलोंकी ओर देख रहा था और उनके क्षण-भरके स्पर्शसे बहुत ही सन्तुष्ट हो रहा था। तत्पश्चात् वे दोनों चारण मुनि अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य देशमें जानेके लिये तैयार हुए। उस समय वज्रजंघके जीवने उन्हें प्रणाम किया और कुछ दूरतक भेजनेके लिये वह उनके पीछे खडा हो गया। चलते समय दोनों मुनियोंने उसे आशीर्वाद देकर हितका उपदेश दिया और कहा कि हे आर्य, फिर भी तेरा दर्शन हो, तू इस सम्यग्दर्शनरूपी समीचीन धर्मको नहीं भूलना। यह कहकर वे दोनों गगनगामी मुनि शीघ्र ही अन्तर्हित हो गये।

अनन्तर जब दोनों चारण मुनिराज चले गये तब वह वज्र-जंघका जीव क्षणतक बहुत ही उत्कण्ठित होता रहा। सो ठीक ही है, प्रिय मनुष्योंका विरह मनके सन्तापके लिए ही होता है। वह बार बार मुनियोंके गुणोंका चिन्तवन कर अपने मनको आर्द्र करता हुआ चिरकालतक धर्म बढानेवाले नीचे लिखे हुए विचार करने लगा। अहा! कैसा आश्चर्य है कि साधु पुरुषोंका समागम हृदयसे सन्तापको दूर करता हैं, परम आनन्दको बढाता है और मनकी वृत्तिको सन्तुष्ट कर देता है। प्रायः साधुपुरुषोंका समागम दूरसे ही पापको नष्ट कर देता है, उत्कृष्ट योग्यताको पुष्ट करता है और अत्यधिक कल्याणको बढाता है। ये साधुपुरुष मोक्षमार्गको सिद्ध करनेमें सदा दत्तचित्त रहते है। इन्हें सांसारिक लोगोंको प्रसन्न करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता। ये मुनिजन केवल परोपकार करनेकी बुद्धिसे ही उनके पास जा-जाकर मोक्षमार्गका उपदेश दिया करते हैं। वास्तवमें यह महापुरुषोंका स्वभाव ही है।

मोक्षकी इच्छा करनेवाले ये साधुजन अपने दुःख दूर करनेके लिए सदा निर्दय रहते हैं अर्थात् अपने दुःख दूर करनेके लिये किसी प्रकारका कोई आरम्भ नहीं करते। परके दुःखोंमें सदा दुःखी रहते हैं। अर्थात् उनके दुःख दूर करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं और दूसरोंके कार्य सिद्ध करनेके लिए निस्वार्थ भावसे सदा तैयार रहते हैं। कहाँ हम और कहाँ ये अत्यन्त निःस्पृह साधु? और कहाँ यह मात्र सुखोंका स्थान भोगभूमि अर्थात् निःस्पृह मुनियोंका भोगभूमिमें जाकर वहाँके मनुष्योंको उपदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देना सहज कार्य नहीं है तथापि ये तपस्वी हम लोगोंके उपकारमें कैसे सावधान हैं? ये साधुजन सदा यही प्रयत्न किया करते हैं कि संसारके समस्त जीव सदा सुखी रहें और इसीलिए वे यति (यतते इति यतिः) कहलाते हैं।

जिस प्रकार इन चारण ऋद्धिधारी पुरुषोंने दूरसे आकर हम लोगोंका उपकार किया उसी प्रकार महापुरुष दूसरोंका उपकार करनेमें सदा प्रीति रखते हैं।

तपरूपी अग्निके सन्तापसे जिनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है ऐसे उन चारणमुनियोंको मैं अब भी साक्षात् देख रहा हूँ मानो वे अब भी मेरे सामने ही खडे हैं। मैं उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर रहा हूँ और वे दोनों चारणमुनि कोमल हाथसे मस्तकपर स्पर्श करते हुए मुझे स्नेहके वशीभूत कर रहे हैं। मुझ, धर्मके प्यासे मानवको उन्होंने सम्यग्दर्शनरूपी अमृत पिलाया है इसीलिए मेरा मन भोगजन्य सन्तापको छोडकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। जिस प्रकार सिद्धरसके संयोगसे तांबा आदि धातुएँ सुवर्णपनेको प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार गुरुके उपदेशसे प्रकट हुए गुणोंके संयोगसे भव्यजीव भी शुद्धिको प्राप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार जहाजके बिना समुद्र नहीं तीरा जा सकता है, उसी प्रकार गुरुके उपदेसके बिना यह संसाररूपी समुद्र नहीं तीरा जा सकता। जिस प्रकार कोई पुरुष दीपकके बिना गाढ अन्धकारमें छिपे हुए घट, पट आदि पदार्थोंको नहीं देख सकता उसी प्रकार यह जीव भी उपदेश देनेवाले गुरुके बिना जीव, अजीव आदि पदार्थोंको नहीं जान सकता है।

इस संसारमें भाई और गुरु ये दोनों ही पदार्थ मनुष्योंकी प्रीतिके लिए हैं। पर भाई तो इस लोकमें ही प्रीति उत्पन्न करते हैं और गुरु इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें विशेष रूपसे प्रीति उत्पन्न करते हैं। जब कि गुरुके उददेशसे ही हम लोगोंको इस प्रकारकी विशुद्धि प्राप्त हुई है, तब हम चाहते है कि जन्मान्तरमें भी मेरी भक्ति गुरुदेवके चरण-कमलोंमें बनी रहे। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार चितवन करते हुए वज्रजंघकी सम्यक्त्व भावना अत्यन्त दृढ हो गयी। यही भावना आगे चलकर इस वज्रजंघके लिए कल्पलताके समान समस्त इष्टफल देनेवाली होगी। श्रीमतीके जीवने भी वज्रजंघ के जीवके समान ऊपर लिखे अनुसार चिन्तन किया था इसलिए इसकी भी सम्यक्त्व भावना सुदृढ हो गयी थी। इन दोनों पति–पत्नियोंका स्वभाव एक–सा था, इसलिए दोनोंमें एक–सी अखण्ड प्रीति रहती थी। इस प्रकार प्रीतिपूर्वक भोग भोगते हुए उन दोनों दम्पतियोंका तीन पल्यप्रमाण भारी काल व्यतीत हो गया। और दोनों जीवनके अन्तमें सुखपूर्वक प्राण छोडकर बाकी बचे हुए पुण्यसे एक घरसे दूसरे घरके समान ऐशान स्वर्गमें जा पहुँचे। जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ अपने–आप ही उत्पन्न हो जाते हैं और समय पाकर आप ही विलीन हो जाते हैं उसी, प्रकार भोगभूमिज जीवोंके शरीर अपने–आप ही उत्पन्न होते हैं और जीवनके अन्तमें अपने–आप ही विलीन हो जाते हैं।

जिस प्रकार वैक्रियिक शरीरमें दोष और मल नहीं होते उसी प्रकार भोगभूमिज जीवोंके शरीरमें भी दोष और मल नहीं होते। उनका शरीर भी देवोंके शरीरके समान ही शुद्ध रहता है। वह वज्रजंघ आर्य ऐशान स्वर्गमें हमेशा प्रकाशमान रहनेवाले श्रीप्रभ विमानमें देदीप्यमान कांतिके धारक श्रीधर नामका ऋद्धिधारी देव हुआ। और आर्या श्रीमती भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्त्रीलिंगसे छुटकारा पाकर उसी ऐशान स्वर्गके स्वयम्प्रभ विमानमें स्वयम्प्रभ नामका उत्तम देव हुई।

इसके बाद श्रीधर देव भी स्वर्गसे च्युत होकर। जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें वत्सकावती देश, उसमें सुषीमा नगरीका राजा सदृष्टि और सुंदरनंदा नामकी राणीके सुविधि नामका पुत्र हुआ। युवावस्थामें पिताके उपरोधसे अभयघोष नामके चक्रवर्ति अपने मामा इसकी लडकी मनोरमा, उसके साथ विवाह किया। कालानुसार उन दोनों पति पत्निके श्रीमतीका जीव (स्वयंप्रभ देव) पुत्र हुआ। उसका नाम केशव रखा गया। सुविधि राजाका उस पुत्रपर अत्यन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नेह था। ठीक ही हैं प्रथम तो पुत्र ही परम स्नेहका कारण होता है यदि वह पूर्व जन्मका स्त्रीका जीव हो तो कहना ही क्या? एक दिन वहाँपर एक विमल वाहन मुनिराज आये। उनके उपदेशसे अठारह हजार राजाओंके साथ अभयघोष चक्रवर्तिने दीक्षा ग्रहण की परन्तु सुविधिराजा संसारकी असारताको जानते हुए भी पुत्रके स्नेहसे घरको छोडनेमें असमर्थ हुए, सो ही कहा है।

नृपस्तु सुविधिः पुत्रस्नेहाद्गार्हस्थ्यमत्यजन्।
उत्कृष्टोपासकस्थाने तपस्तेपे सुदुस्तरम्॥

अर्थ-सुविधि राजा पुत्रके स्नेहवश गार्हस्थ्य जीवनको न छोडकर उत्कृष्ट उपासकसंबंधी कठिन तपश्चर्या करते रहे। केशवने उन व्रतोंका पालन किया था। उस आत्मकल्याणेच्छुक पिताके प्रति जिसने केशवके समान पिताकी आत्माका धर्माराधनामें उपकार किया उसको पुत्र कहते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे पुत्रके व्याजसे शत्रु है। अन्तमें समाधिमरण कर सुविधि स्वर्गको प्राप्त हुवा।

उपसंहार करते हैं-

तदिदं मे धनं धर्म्यं पोष्यमप्यात्मसात्कुरु।
सैषा सकलदत्तिर्हि परं पथ्या शिवार्थिनाम्॥२७॥

अन्वयार्थ-(तत्) वह (इदं) यह (मे) मेरा (धनं) धन (धर्म्यं) चैत्यालय पात्रदानादिक धार्मिक कार्य (अपि) और (पोष्यं) स्त्री, मातृ, पितृ आदिक सर्व मेरे पोष्य वर्गको (आत्मसात्कुरु) अपने आधीन करो। (हि) क्योंकि (सा) वह (एषा) यह (सकलदत्तिः) सकलदत्ति (शिवार्थिनां) शिवार्थियोंके लिये (परं) उत्कृष्ट (पथ्या) पथ्य है॥२७॥

भावार्थ-हे पुत्र! इसलिये मेरे इस ग्राम, सुवर्णादिक धनको चैत्यालय पात्रदानादिक धार्मिक कार्योंको तथा गृहिणी, मातृ पित्रादिक पोष्य वर्गको अपने स्वाधीन करो अर्थात् तुम इन सबकी रक्षा करो। क्योंकि यह शास्त्रोक्त विधिसे की गई सकलदत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसका दूसरा नाम अन्वयदत्ति है वह मोक्षमार्गमें चलनेवाले मुमुक्षुओंके लिये परम पथ्य है।

विदीर्णमोहशार्दूल पुनरुत्थानशंकिनाम् ।
त्यागक्रमोऽयं गृहिणां शक्त्याऽरंभो हि सिद्धिकृत् ॥२८॥

अन्वयार्थ–(विदीर्णमोहशार्दूलपुनरुत्थानशंकिनां) विदारे हुये मोहरूपी व्याघ्रके पुनरुत्थानकी शंका करनेवाले (गृहिणां) गृहस्थोंका (अयं) यह (त्यागक्रमः) त्यागका क्रम है। (हि) क्योंकि (शक्त्या) शक्तिअनुसार किया गया (आरंभ) आरंभ ही (सिद्धिकृत्) इच्छित कार्यको सिद्ध करनेवाला है ॥२८॥

भावार्थ–शार्दूलके समान मोहरूपी प्रबल शत्रु फिर उठ न सके अर्थात् नष्ट किया हुवा ममकाररूपी व्याघ्रके उत्पन्न होनेकी शंका जिसके मनमें निरंतर हो रही है ऐसा नवमी प्रतिमाधारी श्रावकके धीरे धीरे अंतरंग और बहिरंग परिग्रहके त्यागका क्रम कहा गया है। क्योंकि अपनी शक्ति अनुसार किया गया इस लौकिक तथा पारलौकिक अभीष्टार्थ साधक त्याग वाञ्छित फलको देनेवाला होता है ॥२८॥

एवं व्युत्सृज्य सर्वस्वं मोहाभिभवहानये ।
किंचित्कालं गृहे तिष्ठेदौदास्यं भावयन्सुधीः ॥२९॥

अन्वयार्थ–(सुधीः) तत्त्वज्ञानसम्पन्न बुद्धिमान (एवं) इस प्रकार (मोहाभिभवहानये) मोहके अभिभवका नाश करनेके लिये (सर्वस्वं) चेतनाचेतन सम्पूर्ण परिग्रहका (व्युत्सृज्य) त्याग करके (औदास्यं) उदासीनताका (भावयन्) अभ्यास करता हुवा (किंचित्कालं) थोडे कालतक (गृहे) घरमें (तिष्ठेत्) रहें ॥२९॥

भावार्थ–इस प्रकार तत्त्वज्ञानसम्पन्न श्रावक मैं पूछनेपर पुत्रादिकको आरंभादिक कार्योंमें अनुमति देवूंगा इस प्रकारके ममत्वकी उपेक्षाका नाश करनेके लिये सम्पूर्ण चेतन अचेतन परिग्रहका विधिपूर्वक त्याग करके उदासीनताका अभ्यास करता हुवा कुछ कालतक घरमें रहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किंचित्काल इस पदसे सिताम्बर मत परिकल्पित प्रतिमाओंका निराकरण किया गया है। उनके ग्रन्थका कथन ज्ञानदीपिकामें देखना चाहिये।

गृहे तिष्ठेत्– इस पदसे अपनें अंगको आच्छादन करनेके लिये वस्त्रमात्र धारण करनेमें भी मूर्च्छा नहीं रहती है। क्योंकि वस्त्र विना घरमें रहना नहीं हो सकता है। सो ही आगममें लिखा है—

मोत्तूण वत्तमित्तं परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं।
तं तत्थ त्रिमुच्छण्णं करेदि सो सावओ णवमो ॥

जो वस्त्रमात्र परिग्रहको छोडकर बाकी सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग कर देता है, और वस्त्रमें भी ममत्व छोडनेका प्रयत्न करता है वह नवमी प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

आगे सात श्लोकके द्वारा अनुमतित्यागप्रतिमाका वर्णन करते हैं—

नवनिष्ठापरः सोऽनुमतिव्युपरतः त्रिधा।
यो नानुमोदते ग्रन्थमारंभं कर्म चैहिकम् ॥३०॥

अन्वयार्थ–(यः) जो (नवनिष्ठापरः) दर्शनिकादिक नवप्रतिमाके अनुष्ठानमें निष्ठ है तथा (ग्रन्थं) धन धान्यादिक परिग्रह (आरंभं) कृष्यादि आरंम्भ (च) तथा (ऐहिकम्) इस लोक सम्बन्धी (कर्म) विवाहादिक व्यापार की (त्रिधा) मन वचन कायसे (न अनुमोदते) अनुमति नहीं देता हो (सः) वह (अनुमतिव्युपरतः) अनुमति त्याग प्रतिमावाला कहलाता है ॥३०॥

भावार्थ– जो मुमुक्षु श्रावक दर्शनिकादि नव प्रतिमाका पालन अच्छीतरह करता हुवा धन धान्यादिक परिग्रह, कृषि आदि आरंभ व्यापार तथा विवाहादिक ऐहिक कर्मकी मन वचन कायसे अनुमति नहीं देता है, उनकी अनुमोदना नहीं करता है, उसे अनुमति विरत श्रावक कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे दशवी प्रतिमाकी विधिका वर्णन—

चैत्यालयस्थः स्वाध्यायं कुर्यान्मध्यान्हवन्दनात् ।
ऊर्ध्वमामन्त्रितः सोऽद्याद् गृहे स्वस्य परस्य वा ॥३१॥

अन्वयार्थ— (सः) वह अनुमति त्याग प्रतिमावाला श्रावक (चैत्यालयस्थः) चैत्यालयमें स्थित होता हुवा (स्वाध्यायं) स्वाध्यायको (कुर्यात्) करे और (मध्यान्हवन्दनात्) मध्यान्ह वन्दनाके (ऊर्ध्वं) बादमें (आमंत्रितः) बुलाये जानेपर (स्वस्य गृहे) अपने घरमें (वा) अथवा (परस्य) परके (गृहे) घरमें (अद्यात्) भोजन करे ॥३१॥

भावार्थ— वह दशमी प्रतिमाधारी श्रावक जिनमन्दिरमें रहकर स्वाध्याय आगमाध्ययन करे। और मध्यान्ह वन्दना करनेके बाद आमन्त्रण देनेके पर अपने पुत्र पौत्रादिकके घरमें अथवा दूसरे सार्धर्मिके घरमें भोजनको जावे।

आगे दो श्लोकके द्वारा उद्दिष्ट त्यागके लिये भावना विशेषको कहते हैं—

यथा प्राप्तमदन्देहसिध्द्यर्थं खलु भोजनम् ।
देहश्च धर्मसिध्द्यर्थं मुमुक्षुभिरपेक्ष्यते ॥३२॥
सा मे कथं स्यादुद्दिष्टं सावद्याविष्टमश्नतः ।
कर्हि भैक्षामृतं भोक्ष्ये इति चेच्छेज्जितेन्द्रियः ॥३३॥

अन्वयार्थ— (मुमुक्षुभिः) मोक्षको चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा (देहसिध्द्यर्थं) शरीरकी रक्षाके लिये (भोजनं) भोजनकी (च) और (धर्मसिध्द्यर्थं) धर्मकी सिद्धिके लिये (देहः) शरीरकी (खलु) निश्चयसे (अपेक्ष्यते) अपेक्षा की जाती है, किन्तु (सावद्याविष्टं) सावद्य कर्मसे मिले हुए (उद्दिष्टं) उद्दिष्ट आहारको (अश्नतः) खानेवाले (मम) मेरे (सा) वह धर्मकी सिद्धि (कथं) कैसे (स्यात्) हो सकती है (तत्) इसलिये मैं (कर्हि) किस कालमें (भैक्षामृतं) भिक्षारूपी अमृतको (भोक्ष्ये) खावूँगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इति च) इस प्रकार (यथाप्राप्तं) अपने भाग्यानुसार प्राप्त हुए भोजनको (अदन्) खाता हुवा (जितेन्द्रियः) दशमी प्रतिमाधारी जितेन्द्रिय (इच्छेत्) इच्छा करे ॥३२॥३३॥

भावार्थ-दशमी प्रतिमाधारी श्रावक जो कुछ अपने भाग्यानुसार शुद्ध प्रासुक आहार मिलता है, उसको देहकी सिद्धिके लिये खाता है। क्योंकि देहकी सिद्धि रत्नत्रयकी सिद्धिके लिये होती है अर्थात् शरीर धर्मका साधन है। इसलिये मुमुक्षुओंके द्वारा शरीर उपेक्षा करने योग्य नहीं है। उस धर्मकी सिद्धि सावद्यसे मिले हुये उद्दिष्ट आहारको करनेवाले मेरे कैसे हो सकती है? पूर्ण रत्नत्रयकी प्राप्ति मुनिपदपर निर्भर है। मुझे वह अवसर कब प्राप्त होगा जिस दिनमें जितेन्द्रिय होकर मोक्षपदका कारणभूत भिक्षामृत भोजन करूँगा इस प्रकारका चिंतवन करे ॥३२,३३॥

इसीकी गृहत्यागविधिको कहते हैं-

पंचाचारक्रियोद्युक्तो निष्क्रमिष्यन्नसौ गृहात् ।
आपृच्छेत गुरून् बन्धून् पुत्रादींश्च यथोचितम् ॥३४॥

अन्वयार्थ-(पंचाचारक्रियोद्युक्तः) पंचाचारके पालन करनेमें तत्पर तथा (गृहात्) घरसे (निष्क्रमिष्यन्) निकलनेकी इच्छा करनेवाला (असौ) यह श्रावक (गुरून्) गुरुओंसे (बन्धून्) बन्धुओंसे (च) तथा (पुत्रादीन्) पुत्रादिकोंसे (यथोचितम्) यथायोग्य (आपृच्छेत्) पूछें ॥३४॥

भावार्थ-यह दशवी प्रतिमाधारी श्रावक द्रव्य और भावरूप घरसे निकलते समय पंचाचार क्रियासहित होकर यथायोग्य रीतिसे गुरुसे बन्धु और पुत्रादिकसे पूछता है। उसकी यह विधि है-

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार ये पांच पंचाचार है। काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिन्हव अर्थशुद्ध, व्यञ्जनशुद्ध, उभयशुद्ध ये आठ ज्ञानाचारके अंग हैं।

कालाचार-गोसर्गकाल, ब्राम्हकाल, प्रदोषकाल और विरात्रिकाल इन चार उत्तम कालोंमें पठनपाठनादि रूप स्वाध्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेको कालाचार कहते हैं। चारों संध्याओंकी अन्तिम दो दो घडियोंमें, दिग्दाह, उल्कापात, वज्रपात, इन्द्रधनुष, सूर्यचन्द्रग्रहण, तूफान, भूकम्प आदि उत्पातोंके समय सिद्धन्तग्रन्थोंका पठनपाठन वर्जित है। हाँ, स्तोत्र आराधना, धर्मकथादिकके ग्रन्थ बांच सकते हैं।

विनयाचार-शुद्ध जलसे हाथ पाँव धोकर शुद्ध स्थानमें पर्यंकासनमें बैठकर नमस्कारपूर्वक शास्त्राध्ययनको विनयाचार कहते हैं।

उपधानाचार-उपधानसहित आराधना करनेको अर्थात् विस्मृत न हो जानेको उपधानाचार कहते हैं।

बहुमानाचार-ज्ञान, पुस्तक और शिक्षकका पूर्ण आदर करनेको बहुमानाचार कहते हैं।

अनिन्हवाचार-जिस गुरुसे, जिस शास्त्रसे, ज्ञान उत्पन्न होवे उसको गोपन न करनेको अनिन्हव कहते हैं।

अर्थाचार-यथार्थशुद्ध अर्थको अवधारण करनेको अर्थाचार कहते हैं।

उभयाचार-अर्थ और शब्द दोनोंके शुद्ध पठन-पाठन करनेको उभयाचार कहते हैं।

शब्दाचार-शब्दशास्त्रके (व्याकरण) के अनुसार अक्षर पद, वाक्यका यत्नपूर्वक शुद्ध पठन-पाठन करनेको शब्दाचार कहते हैं। व्यंजनाचार, श्रुताचार, अक्षराचार, ग्रन्थाचार आदि सब एकार्थवाची है।

अहो हे ज्ञानाचार! निश्चयनयसे तू शुद्ध आत्माके नहीं है ऐसा मैं जानता हूँ। तथापि हे ज्ञानाचार! तबतक मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ कि जबतक तेरे प्रसादसे शुद्धात्माकी प्राप्ति करूं अर्थात् जबतक शुद्धात्माकी प्राप्ति मुझे नहीं तबतक तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

हे निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सितत्व, अमूढदृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना लक्षण, दर्शनाचार यद्यपि निश्चयनयसे तूं शुद्धात्माका स्वरूप नहीं हैं, ऐसा मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानता हूँ तथापि जबतक तेरे प्रसादसे में शुद्धात्माकी प्राप्ति करूँ तबतक तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

तत्त्व यही है कि,ऐसे ही है, अन्य नहीं है अथवा और प्रकार नहीं है, ऐसी निष्कम्प खड्गधारके पानीके समान सन्मार्गमें संशय रहित रुचि या विश्वास होनेको निश्शंकित अंग कहते हैं।

यहाँ कांक्षा का अर्थ वांच्छा अथवा चाह है। चाह किसकी? विषयोंकी विषयसाधनों की। अर्थात्- कर्म अधीन, अन्तसहित, उदयमें दुःखमिश्रित और पापके बीजरूप सुखमें अनित्यता का श्रद्धान होना निःकांक्षित अंग है।

रत्नत्रयसे पवित्र किन्तु स्वाभाविक अपवित्र शरीरमें ग्लानि नहीं करके उसके गुणोंमें प्रीति करना इसको निर्जुगुप्सा कहते हैं। दुःखदायक कुत्सित मार्गोमें या धर्मोमें और कुमार्गोमें स्थित पुरुषोंमें मनसे प्रमाणता, कायसे प्रशंसा और वचनसे स्तुति न करनेको अमूढदृष्टि कहते हैं।

आभास- यथार्थमें जो पदार्थ जैसा नहो है, वह भ्रम बुद्धिसे वैसा दिखलाई देने लगे, जैसे मिथ्यादृष्टियोंके बनाए हुए शास्त्र यथार्थमें शास्त्र नहीं हैं, परन्तु भ्रमसे शास्त्र प्रतीत होवें, यह शास्त्राभास है।

स्वयंशुद्ध मोक्षमार्गकी अशक्त और अज्ञानी जीवोंके आश्रयसे हुई निन्दाके दूर करनेको उपगूहन कहते हैं।

सम्यग्दर्शनसे और सम्यक्चारित्रसे चलायमान होते हुए जीवोंको धर्मवत्सल विद्वानों द्वारा स्थिरीभूत किये जानेको स्थितिकरण कहते हैं।

अपने समूहके धर्मात्मा जीवोंका समीचीन भावसे कपटरहित यथायोग्य सत्कार करनेको वात्सल्य कहते हैं।

अज्ञानान्धकारकी व्याप्तिको जैसे हो सके वैसे दूर करके जिनशासनके माहात्म्यको प्रकाश करना प्रभावना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पंच महाव्रत पंचसमिति तीन गुप्तिलक्षण त्रयोदशविध चारित्राचार ! निश्चयसे तुम शुद्धात्माके स्वरूप नहीं हो, ऐसा मैं जानता हूँ तथापि जबतक शुद्धात्माकी प्राप्ति मुझे नहीं हुई है तबतक तुम्हारा आश्रय लेता हूँ । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंका मन, वचन, काय कृतकारित अनुमोदनासे त्याग करना पंच महाव्रत कहलाता है ।

चार हाथ जमीन देखकर चलना ईर्यासमिति है । हित, मित, प्रिय, वचन, बोलना भाषासमिति है ।

उद्गमादि छियालीस दोष टालकर शास्त्रोक्त विधसे आहार लेता है उसको ऐषणासमिति कहते हैं ।

पिच्छि कमण्डलु पुस्तकादि उपकरणोंको देखभाल कर रखना उठाना आदाननिक्षेपणसमिति है ।

मल मूत्र कफादि शरीरके मलको निर्जन्तुक स्थानमे डालना प्रतिष्ठापनसमिति है ।

सम्यक्प्रकार मन, वचन और कायकी क्रियाओंको रोकना तीन गुप्ति है । ये त्रयोदश विध चारित्राचार है ।

हे अनशनादिक छह बहिरंग तप तथा प्रायश्चित्तादि छह अन्तरंग तपलक्षण तपाचार ! समस्त इतर आचार प्रवर्तक तथा तथा अपनी शक्तिको नहीं छिपाने रूप वीर्याचार ! तुम शुद्धात्माके स्वरूप नहीं हो ऐसा मैं जानता हूँ, फिर भी मुझे जबतक शुद्धात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है तबतक तुम्हारा आश्रय लेता हूँ । यह पंचाचार शुद्धात्माका साधन है साध्य नहीं है । इस प्रकार चितवन करे ।

तदनन्तर हे मेरे शरीरके माता, पिता और पुत्रके आत्मन् ! तुम अपने अन्तरंगमें समझो कि मैं वास्तवमें तुम्हारा नहीं हूं, इसलिये मुझे छोडो, मुझसे मोह मत करो । अहो ! मेरे शरीरको रमण करानेवाली रमणी! तूं मेरी आत्माको रमण नहीं करा सकती है ऐसा निश्चयसे समझो । इसलिये तुम मेरेसें ममत्वको छोडो । इस समय ज्ञानज्योति जिसको प्रगट हुई है ऐसी मेरी यह आत्मा स्वानुभूतिरूप अपनी अनादि स्त्रीके पास जाना चाहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार यह श्रावक सबसे ममत्वका त्याग कर घर छोड़नेका प्रयत्न करे ।

यद्यपि विनयाचारके भेद विस्तारपूर्वक पहिले अनगार धर्मामृतमें कह चुके है- तथापि सुख स्मृतिके लिए पुनः संक्षेपसे वर्णन करते हैं—

सुदृङ्निवृत्ततपसां मुमुक्षोर्निर्मलीकृतौ ।
यत्नो विनय आचारो वीर्याच्छुद्धेषु तेषु तु ॥३५॥

अन्वयार्थ- (मुमुक्षोः) मुक्तिकी इच्छा करनेवाले भव्यका (सुदृङ्निवृत्ततपसां) सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र और तपके (निर्मलीकृतौ) निर्मल करनेमें (यः) जो (यत्नः) प्रयत्न है (सः) वह (विनयः) विनय कहलाता है, (तु) और (वीर्यात्) अपनी शक्ति अनुसार (शुद्धेषु) शुद्ध (तेषु) उन सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और तपमें (यत्नः) प्रयत्न है उनको (आचारः) आचार कहते हैं ।

भावार्थ- संसाररूपी कारागृहसे छूटनेकी इच्छा करनेवाले भव्य आत्मका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तपके निर्मल करनेके लिए जो प्रयत्न किया जाता है उसको विनय कहते हैं । और उन्हीं निर्मल किये गये सम्यग्दर्शनादिमें अपनी शक्तिको नहीं छिपाकर स्थिर रहनेका प्रयत्न किया जाता है, उसको आचार कहते हैं । इससे पांचवे वीर्याचार का वर्णन किया गया है ।

यहांपर मुमुक्षुही वीर्याचार का पालन करनेवाला होता है कुमुक्षु नहीं यह बताया गया है ॥३५॥

आगे- इस प्रतिमाका उपसंहार करते हैं-

इति चर्यां गृहत्यागपर्यन्तां नैष्ठिकाग्रणीः ।
निष्ठाप्य साधकत्वाय पौरस्त्यपदमाश्रयेत् ॥३६॥

अन्वयार्थ- (नैष्ठिककाग्रणीः) नैष्ठिक श्रावकोंमें मुख्य दशमी प्रतिमाधारी श्रावक (इति) इस प्रकार (गृहत्यागपर्यन्तां) गृहत्याग पर्यन्त (चर्यां) संयमाचारको (निष्ठाय) समाप्त करके (साधकत्वाय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मशोधन करनेके लिए (पौरस्त्यं) आगेका (पदं) पदको (आश्रयेत्) स्वीकार करे ॥३६॥

भावार्थ–दर्शन प्रतिमादि नव प्रतिमामें मुख्य अनुमति विरति नामक दशमी प्रतिमाधारक पूर्वोक्त गृह त्याग प्रतिमापर्यन्त चर्याकी निष्ठापना करके अर्थात् पूर्ण तथा परिपालन करके आत्मविशुद्धि करनेके लिए उद्दिष्टत्यागरूप ग्यारहवी प्रतिमाको स्वीकार करे ॥३६॥

आगे– उद्दिष्टत्याग प्रतिमाके स्वरूपका वर्णन त्रयोदश श्लोकोंके द्वारा करते हैं–

तत्तद्व्रतास्त्रनिर्भिन्नश्वसन्मोहमहाभटः ।
उद्दिष्टं पिण्डमप्युज्झेदुत्कृष्टः श्रावकोऽन्तिमः ॥३७॥

अन्वयार्थ– (तत्तद्व्रतास्त्रनिर्भिन्नश्वसन्मोहमहाभटः) उन पूर्वोक्त व्रतरूपी शस्त्रोंके प्रहारसे अत्यन्त नष्ट होकर भी श्वास लेता हुवा है मोहरूपी महाभट जिसका ऐसा (अन्तिमः) अन्तिम (उत्कृष्टः) ग्यारहवी प्रतिमाधारी (श्रावकः) श्रावक (उद्दिष्टं) अपने उद्देशसे बनाये हुए (पिण्डं) भोजनको (अपि) भी–अपि शब्दसे उपधि शय्या आसनादि भी अपने निमित्तसे लाये हुए को (उज्झेत्) छोड देवें ॥३७॥

भावार्थ– जिनलिंगके धारण करनेमें प्रतिबन्धक होनेसें चारित्रमोहको भी महाभट कहा है । अपने योग्य व्रत आचरण रूपी शस्त्रोंके द्वारा अत्यन्त विदारण कर देनेपर भी जो किंचित् श्वासोच्छ्वास ले रहा है मोहरूपी दुर्निवार महाभट जिसका ऐसा ग्यारवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक अपने उद्देशसे बनाए हुए आहारको तथा अपि शब्दसे अपने उद्देशसे आई हुई उपधि शयन आसनादिका भी त्याग करे–अर्थात् नव कोटि विशुद्ध आहारको स्वीकार करे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहिले दशमी और ग्यारवी दोनों प्रतिमाधारी श्रावकोंको उत्कृष्ट तथा भिक्षु यह विशेषण दिया है। यहांपर इस श्लोकमें अन्तिम प्रतिमाधारीको उत्कृष्ट कहा है। यह विरोध होगा, इसका परिहार यह है कि पहिले दोनोंको उत्कृष्ट कहा है वह नैगमनयकी अपेक्षासे वर्णन है। तथा यहांपर अन्तिमको उत्कृष्ट एवंभूत नयकी अपेक्षासे कहा है ॥३७॥

अन्तिम प्रतिमाके भेद तथा लक्षण कहते हैं—

स द्वेधा प्रथमः श्मश्रुमूर्धजानपनाययेत् ।
सितकौपीनसंव्यानः कर्त्तर्या वा क्षुरेण वा ॥३८॥

अन्वयार्थ—(सः) वह उत्कृष्ट श्रावक (द्वेधा) दो प्रकारका है (सितकौपीनसंव्यानः) सफेद लंगोटी तथा उत्तरीय वस्त्रको धारण करनेवाला (प्रथमः) पहिला श्रावक (श्मश्रुमूर्धजान्) दाढी तथा मस्तकके केशोंको (कर्त्तर्या) कैंचीसे (वा) अथवा (क्षुरेण) छुरीसे (अपनाययेत्) अलग करे ॥३८॥

भावार्थ—अन्तिम प्रतिमाधारी श्रावकके क्रियाकी अपेक्षासे दो भेद हैं। उसमें—प्रथम श्रावक (क्षुल्लक) गुह्य अंगको प्रच्छादन करनेके लिये सफेद लंगोटी तथा सफेद उत्तरीय वस्त्रको रखता है। तथा दाढी और मस्तकके बालोंको किसी दूसरे मनुष्यसे कैंचीसे कटवा सकता है तथा नापितके द्वारा उसके छुरेसे भी कटवा सकता है। छुरेकी अपेक्षा कैंचीसे बालोंको कटवाना श्लाघ्यतर है। क्योंकि उसके बालोंकी शोभाकी इच्छा नहीं होती। कांख तथा गुह्य अंगके बालोंको नहीं कटवाना चाहिये ॥३८॥

तथा—

स्थानादिषु प्रतिलिखेत् मृदूपकरणेन सः ।
कुर्यादेव चतुष्पर्व्यामुपवासं चतुर्विधम् ॥३९॥

अन्वयार्थ—(सः) वह उत्कृष्ट श्रावक (स्थानादिषु) स्थानादिमें (मृदूप-करणेन) कोमलजन्तुको बाधा नहीं उत्पन्न करनेवाले वस्त्रादिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा (प्रतिलिखेत्) मार्जनादि करे। तथा (चतुष्पर्व्यां) चारो पर्वमें अष्टमी चतुर्दशीके दिन (चतुर्विधं) चार प्रकारके आहारका त्याग-रूप (उपवासं) उपवास (कुर्यात् एव) अवश्य ही करे।

भावार्थ-जैसे मुनि पिछि रखते हैं उससे जीवोंकी विराधनाका बचाव होता है, उसी प्रकार क्षुल्लक बैठते समय, सोते समय या पुस्तकादिके उठाते धरते समय मृदु वस्त्रसे जीवोंकी विराधनाको बचावे अर्थात् जमीन वगैरहको मृदु वस्त्र आदिसे शुद्धि करके आसनादिका उपयोग करे और चार पर्वसम्बन्धी उपवासोंको जरूर करे। वह अतिथि (मुनि) की तरह पर्वोपवाससे सम्बन्ध नहीं छोड सकता है।

एक घर भिक्षुक तथा अनेक घर भिक्षुकके भेदसे दो प्रकारके है उनमेंसे अनेक घरभिक्षुकका कर्तव्य बताते हैं-

स्वयं समुपविष्टोऽद्यात्पाणिपात्रेऽथ भाजने।
स श्रावकगृहं गत्वा पात्रपाणिस्तदङ्गणे ॥४०॥
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्वा प्रार्थयेत वा।
मौनेन दर्शयित्वाऽङ्गं लाभालाभे समोऽचिरात् ॥४१॥
निर्गत्याऽन्यद्गृहं गच्छेद्भिक्षोद्युक्तस्तु केनचित्।
भोजनायार्थितोऽद्यात्तद्भुक्त्वा यद्भिक्षितं मनाक् ॥४२॥
प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां यावत्स्वोदरपूरणीम्।
लभेत प्रासु यत्राम्भस्तत्र संशोध्य तां चरेत् ॥४३॥

अन्वयार्थ-(सः) वह क्षुल्लक (समुपविष्टः) निश्चल बैठकर (पाणिपात्रे) अपने हाथरूपी पात्रमें (अथ) अथवा (भाजने) बर्तनमें (स्वयं) अपने आप (अद्यात्) भोजन करे। किस विधिसे? ऐसा प्रश्न उपस्थित होनेपर उत्तर देते हैं कि- (पात्रपाणिः) भोजनका एक पात्र अपने हाथमें लेकर (श्रावकगृहं) श्रावकके घर (गत्वा) जाकर (तदङ्गणे) उसके आंगनमें अर्थात् मकानके सामने जहांतक हरएक जा सकता है वहां (स्थित्वा) खडे होकर (धर्मलाभं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मलाभ हो, ऐसा वचन (भणित्वा) बोलकर (वा) अथवा (मौनेन) मौनपूर्वक (अंगं दर्शयित्वा) अपना शरीर मात्र दिखाकर (भिक्षां) भिक्षाकी (प्रार्थयेत्) प्रार्थना करे। (लाभालाभेसमः) भिक्षा वहां मिले या न मिले दोनों दशाओंमें अपना समभाव रखकर (अचिरात्) शीघ्र ही अर्थात् वहां बहुत समय खडा न रहकर (निर्गत्य) निकलकर (अन्यत्गृहं) दूसरे किसी श्रावकके घर (गच्छेत्) जावे। (भिक्षोद्युक्तः) भिक्षा लेनेके लिये उद्यत वह क्षुल्लक (तु) यदि (केनचित्) किसी श्रावकके द्वारा (भोजनाय) भोजन करनेके लिये (प्रार्थितः) प्रार्थित किया जावे, तो (यत्) जो भोजन (मनाक्) थोडासा (भिक्षितं) पहले किसी श्रावकके घरसे अपने बर्तनमें प्राप्त हुआ था उसे (भुक्त्वा) भोजन करके (अद्यात्) भोजन करे (अन्यथा) यदि किसी श्रावकने भोजन करनेकी प्रार्थना नही की हो तो (यावत्) जहांतक (स्वोदरपूरणीम्) अपने उदरपूरणके योग्य भोजन मिले वहांतक ही (भिक्षां) भिक्षान्नकी (प्रार्थयेत्) याचना करे। और (यत्र) जिस श्रावकके घर (प्रासु अम्भ) प्रासुक गर्म जल (लभेत्) मिले (तत्र) वहांपर (ताम्) मिली हुई भिक्षाको (संशोध्य) अच्छी तरह शोधन करके (चरेत्) स्वादकी लालसा न रखता हुआ खावे।

भावार्थः—क्षुल्लक बैठकर पात्रमें भोजन करे अथवा हाथमें श्रावकके द्वारा अर्पित भोजन करे। यह क्षुल्लक अपने हाथमें पात्र लेकर भिक्षाको निकले। श्रावकके घर जावे, धर्मलाभ कहे और भिक्षाकी याचना करे। अथवा मौनसे श्रावकके आंगनमें केवल खडा होकर भिक्षाकी प्रार्थना करके चला आवे। भोजनके मिलने अथवा न मिलनेपर किसी प्रकारका हर्ष विषाद न करे, रागद्वेष न करे और दूसरोंके घर जावे। यदि बीचमें कोई श्रावक भोजनके लिये रोके—प्रार्थना करे तो उसके घरपर भी भोजन करे। परन्तु इतना ध्यान रहे कि पहले जो भिक्षा प्राप्त की है उसे सोधकर खानेके बाद भोजन करे। यदि किसीने बीचमें न रोका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो तो शरीरके लिये जितनी भिक्षा आवश्यक है उसकी पूर्ति जब-तक न हो तबतक भिक्षाके लिये श्रावकोंके यहां जावे तथा जहांपर प्रासुक जल मिले वहां संशोधन करके भोजन करे।

तथा-

आकांक्षन् संयमं भिक्षापात्रप्रक्षालनादिषु।
स्वयं यतेत चादर्पः परथाऽसंयमो महान् ॥४४॥

अन्वयार्थ-(च) और (संयमं) संयमको (आकांक्षन्) चाहता हुवा वह श्रावक (अदर्पः) मदरहित होता हुवा (भिक्षापात्रप्रक्षालनादिषु) भिक्षा करनेके पात्र आदिके प्रक्षालनादिमें (स्वयं) स्वयं (यतेत) प्रयत्न करे अर्थात् भोजन करनेके बर्तनोंको स्वयं स्वच्छ करे (परथा) यदि स्वयं न करता है तो (महान्) महान् (असंयमः) असंयम होता है ॥४४॥

भावार्थ-प्राणिरक्षारूप संयमकी रक्षा करनेकी इच्छा करने-वाला वह क्षुल्लक विद्या अतिशय आदिके मदसे रहित होकर अपने भोजन करनेके पात्रको रखना, उठाना तथा उच्छिष्टादिको स्वच्छ करना, आदि अपने हाथसे करे, दूसरे शिष्यादिसे न करावे। शिष्यादिसे करानेसे महान असंयम होता है ॥४४॥

तथा-

ततो गत्वा गुरूपान्तं प्रत्याख्यानं चतुर्विधम्।
गृह्णीयाद्विधिवत्सर्वं गुरोश्चालोचयेत्पुरः ॥४५॥

अन्वयार्थ-(ततः) इसके बाद (गुरूपान्तं) गुरुके समीप (गत्वा) जाकर (विधिवत्) विधिपूर्वक (चतुर्विधं) चार प्रकारके आहारका (प्रत्याख्यानं) नियम (गृह्णीयात) स्वीकार करे (च) और (गुरोः) गुरुके (पुरः) आगे (सर्वं) संपूर्ण अपनी चेष्टाओंकी (आलोचयेत्) आलोचना करे। च शब्दसे गोचरीसंबंधी तिक्रमण करे ॥४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—क्षुल्लक आहारके बाद गुरुके पास जाकर शास्त्रोक्त विधिसे चार प्रकारके आहारका त्याग करे तथा आहारके लिए जानेसे लेकर आनेतक जो कुछ भी अपनी चेष्टाएँ हुईं उन सबकी गुरुके सामने आलोचना करे। और गोचरीसम्बन्धी दोषोंका निराकरण करनेके लिए प्रतिक्रमण करे ॥४५॥

इस प्रकार अनेक घर भिक्षा लेनेवाले प्रथम उत्कृष्ट श्रावकको भोजनविधिको कह करके इस समय उसी श्रावकको एक घर भिक्षाके नियमका उपदेश देते हैं—

यस्त्वेकभिक्षानियमो गत्वाऽद्यादनुमुन्यसो ।
भुक्त्यभावे पुनः कुर्यादुपवासमवश्यकम् ॥४६॥

अन्वयार्थ— (तु) परन्तु (यः) जो (एकभिक्षानियमः) एक घर भिक्षा ग्रहण करनेके लिए नियमवाला क्षुल्लक है (असौ) वह (अनुमुनि) मुनिके पीछे (गत्वा) दाताके घर जाकर (अद्यात्) भोजन करे। (पुनः) और (भुक्त्यभावे) भोजनकी प्राप्ति न होनेपर (अवश्यकं) अवश्य ही (उपवासं) उपवास (कुर्यात्) करे ॥४६॥

भावार्थ— ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लकके दो भेद है। एक घरमें भिक्षा करनेकें नियमवाला तथा अनेक घर भिक्षा करनेवाला। उसमें अनेक घर भिक्षा करनेंवाला क्षुल्लक दातारके घरमें जाकर भिक्षा लेकर दूसरे घरमें जाकर भोजन कर सकता है। परन्तु जिनको एक घर भिक्षा करनेका नियम है—वह मुनियोंकी चर्या होनेके बाद दातारके घर जावे तथा उसीके घरमें बैठकर भोजन करे। कारणवशात् भोजन नहीं मिलनेपर अवश्य ही उपवास करे। एक घरमेंसे निकलकर अनेक घर भिक्षुके समान दूसरे घरमें नहीं जावे।

उसकी विधि विशेषको कहते हैं—

वसेन्मुनिवने नित्यं शुश्रूषेत गुरूंश्चरेत् ।
तपो द्विधाऽपि दशधा वैयावृत्यं विशेषतः ॥४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– वह क्षुल्लक (नित्यं) हमेशा (मुनिवने) संयतके आश्रममें (वसेत्) रहे। तथा (गुरून्) धर्माचार्यकी (शुश्रूषेत्) सेवा करे, (अपि) और (द्विधा) अन्तरंग और बहिरंगके भेदसे दो प्रकारके (तपः) तपको तथा (विशेषतः) विशेषरूपसे (दशधा) दश प्रकारकी (वैयावृत्यं) वैयावृत्तिको (चरेत्) करे ॥४७॥

भावार्थ– वह क्षुल्लक सदैव संयतोंके निकट उनके आश्रममें रहे। धर्माचार्यकी सेवा करे। और अन्तरंग बहिरंगके भेदसे दो प्रकारका तप है उसका आचरण करे। और विशेष रूपसे संयमियोंके आपत्तिको दूर करनेवाली दश प्रकारकी वैयावृत्ति करे। यद्यपि अन्तरंग तपमें वैयावृत्तिका संग्रह होता है। फिर भी अतिशयरूपसे मुख्य कार्य वैयावृत्य यह बतानेके लिए उनका अलग उल्लेख किया है।

ग्यारहवी प्रतिमाके क्षुल्लक और द्वितीय ऐल्लक ऐसे दो भेदोंको वर्णन किया है। उसमें क्षुल्लकके एक घर भिक्षु तथा अनेक घर भिक्षु ऐसे दो भेदोंका वर्णन किया है।

आगे द्वितीय उद्दिष्टविरति श्रावकका लक्षण बताते हैं–

तद्वद् द्वितीयः किन्त्वार्यसंज्ञो लुञ्चत्यसौ कचान्।
कौपीनमात्रयुग्धत्ते यतिवत्प्रतिलेखनम् ॥४८॥

अन्वयार्थ– (तद्वत्) क्षुल्लकके समान ही (द्वितीयः) दूसरा भेद ऐल्लकका है (किन्तु) परन्तु विशेषता यह है कि (असौ) यह (कचान्) अपने सिर व दाढी मूछोंके बालोंको (लुञ्चति) लोंच करता है (कौपीनमात्रयुक्) एक लंगोटी मात्र परिधान युक्त है (यतिवत्) मुनियोंके समान (प्रतिलेखनम्) मोरकी पिच्छि आदि संयमोपकरण (धत्ते) रखता है और (आर्यसंज्ञः) इसकी आर्य संज्ञा है (अथवा इसे ऐल्लक भी कहते हैं) ॥४८॥

भावार्थ– द्वितीय ऐल्लक श्रावककी क्रिया प्रथम क्षुल्लकके समान ही है। विशेषता केवल इतनी है क्षुल्लक, छुरी आदिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाल बनवा सकता है और एक लंगोटी उत्तरीय वस्त्र रखता है। परन्तु ऐल्लक दाढी तथा शिरके बालोंको हाथोंसे उखाडता है कैंची आदिसे नहीं कटवा सकता। तथा गुह्य अंगको प्रच्छादन करनेके लिए लंगोटी मात्र रखता है। उत्तरीय वस्त्र नहीं रख सकता। तथा मुनियोंके समान संयमका उपकरण पिच्छिका रखे।

तथोक्तः–

स्वपाणिपात्र एवात्ति संशोध्यान्येन योजितम्।
इच्छाकारं समाचारं मिथः सर्वे तु कुर्वते ॥४९॥

अन्वयार्थ– और (अन्येन) दूसरोंके द्वारा (योजितं) समर्पण किये हुये अन्नका (संशोध्य) संशोधन करके (स्वपाणिपात्रे) अपने हाथमें (एव) ही (अत्ति) खाता है (तु) और (सर्वे) वे सब (मिथः) परस्पर (इच्छाकारं) इच्छाकार (समाचारं) समाचार (कुर्वते) करते हैं ॥४९॥

भावार्थ– ऐल्लक गृहस्थीके द्वारा अर्पण किये हुये आहारको अपने हाथमें ही संशोधन करके भोजन करता है। थाली आदिमें नहीं कर सकता तथा वे सब ऐल्लक परस्परमें "इच्छामि" मैं तुम्हारी पदकी इच्छा करता हूँ इस प्रकार साधारण समाचारका व्यवहार करे।

इस समय दस श्लोकोंके द्वारा शेष संग्रहको कहते हैं–

श्रावको वीरचर्य्याहःप्रतिमातापनादिषु।
स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च ॥५०॥

अन्वयार्थ–(श्रावक) क्षुल्लक (वीरचर्य्याह:प्रतिमातापनादिषु) वीरचर्य्या दिनप्रतिमा आतापनयोग आदि क्रियामें (च) तथा (सिद्धान्तरहस्याध्ययने) सिद्धान्त आदि रहस्य ग्रंथोंके पढनेका (अपि) भी (अधिकारी) अधिकारी (न स्यात्) नहीं है ॥५०॥

भावार्थ–ग्यारहवी प्रतिमाधारी श्रावक स्वयं भ्रामरीके द्वारा वीरचर्या का अधिकारी नहीं है। तथा दिनप्रतिमा ग्रीष्मऋतुमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्यके सन्मुख, पर्वतके शिखरपर ध्यान करना, वर्षाकालमें बर्फके नीचे ध्यान करना और शीतकालकी रात्रीमें चौराहेपर खडे रहकर ध्यान करना आदि लक्षणवाले कायक्लेशविशेष, आतापन आदि त्रिकालयोग धारण करनेका अधिकारी नहीं हैं। तथा सूत्ररूप सिद्धान्त शास्त्रका और रहस्यरूप प्राचीन शास्त्रोंका पढनेका अधिकारी भी नहीं हैं ॥५०॥

तथा—

दानशीलोपवासार्चाभेदादपि चतुर्विधः ।
स्वधर्मः श्रावकैः कृत्यो भवोच्छित्त्यै यथायथम् ॥५१॥

अन्वयार्थ— (भवोच्छित्त्यै) संसार-परिभ्रमणका विनाश करनेके लिए (दानशीलोपवासार्चाभेदात्) दान देना, शील पालना, उपवासादि करना, तथा नित्य जिनपूजा करना इस प्रकारसे (चतुर्विधः) चार तरहका (स्वधर्मः) अपना धर्म (यथायथम्) यथायोग्य अर्थात् अपनी प्रतिमा सम्बन्धी आचरणके अनुसार (श्रावकैः) श्रावकोंके द्वारा (कृत्यः) किया जाना चाहिये ।

भावार्थ— देशव्रती श्रावकोंके द्वारा संसारका छेद करनेके लिए अपनी अपनी प्रतिमाके योग्य दान, शील, उपवास, पूजा आदिके भेदसे चार प्रकारका स्वधर्मका आचरण करना चाहिये । अपि शब्दसे दर्शनप्रतिमा आदि एकादशप्रतिमा तक योग्य अपने अपने आचरण ग्राह्य है॥५१॥

अब— अपने व्रतकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये—

प्राणान्तेऽपि न भंक्तव्यं गुरुसाक्षिश्रितं व्रतम् ।
प्राणान्तस्तत्क्षणे दुःखं व्रतभङ्गो भवे भवे ॥५२॥

अन्वयार्थ— (गुरुसाक्षिश्रितं) गुरुकी साक्षीसे लिया हुवा (व्रतम्) कोई भी व्रत (प्राणान्तेऽपि) अपने प्राण भी नष्ट हो जावें तो (न भंक्तव्यं) भंग नहीं करना चाहिए। क्योंकि (प्राणान्तः) प्राणनाश (तत् क्षणे) केवल मरणके समयमें ही (दुःखम्) दुःखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, परन्तु (व्रतभंगे) व्रतका नाश (भवे भवे) भवभवमें (दुःखं) दुःखकर है।

भावार्थः-श्रावकोंको पंचपरमेष्ठी, दीक्षा गुरु, साधर्मिक लोक तथा स्थानवास्तु देवता आदिके साक्षीसे ग्रहण किये हुये व्रतोंका प्राणनाश आये तो भी भंग नही करना चाहिये। औरकी बाते तो क्या है? क्योंकि प्राणनाश तो तत्काल दुःखका कारण है और व्रतभंग करना भव भवमें दुःखका कारण है। तथा बुद्धिपूर्वक व्रतभंग करनेसे सम्यक्त्वकी भी विराधना होती है। सम्यक्त्वकी विराधनासे ये प्राणी अनंतसंसारी होता है। ऐसा आगममें प्रतिपादन किया है ॥५२॥

तात्पर्यः-गुरुसाक्षीसे यहांपर साक्षात् दीक्षागुरु और पंचपरमेष्ठी ग्रहण करना चाहिये।

तथा-

शीलवान् महतां मान्यो जगतामेकमण्डनम्।
स सिद्धः सर्वशीलेषु यः सन्तोषमधिष्ठितः ॥५३॥

अन्वयार्थः-(शीलवान्) पवित्र चरित्रवाला श्रावक अथवा मुनि (जगताम्) तीन जगतमें (मण्डनम्) मण्डन होता है तथा (महतां) इन्द्रादि महान पुरुषोंके द्वारा (मान्यः) सत्कार करने योग्य है तथा (यः) जो सन्तोषको (अधिष्ठितः) प्राप्त है (सः) वह (सर्वशीलेषु) संपूर्ण सदाचारोमें (सिद्धः) निष्पन्न हैं ॥५३।

भावार्थः-शीलवान सदाचारी मुनि अथवा श्रावक इन्द्रादिकोंके द्वारा सत्कार करने योग्य होता है, तथा सदाचारी ही तीन जगत्का भूषण होता है और जो विषयतृष्णासे विरक्त है, सन्तोष धृतिसे युक्त है वही सम्पूर्ण सदाचारोंमें निष्पन्न है। अर्थात् सम्पूर्ण आचरणोंमें सन्तोष मुख्य है ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा-

तत्र न्यञ्चति नो विवेकतपनो नाञ्चत्यविद्यातमी।
नाप्नोति स्खलितं कृपामृतसरिन्नोदेति दैन्यज्वरः—।
विस्निह्यंति न संम्पदो न दृशमप्यासूत्रयन्त्यापदः।
सेव्यं साधुमनस्विनां भजति यः सन्तोषमंहोमुषम् ॥५४॥

अन्वयार्थ-(यः) जो मानव (साधुमनस्विनां) सिद्धि साधक स्वाभिमानीयोंके द्वारा (सेव्यं) सेवन करने योग्य (अंहोमुषम्) पापको नाश करनेवाले (सन्तोषं) सन्तोषको (भजति) धारण करता है, (तत्र) उस सन्तोषी पुरुषके (विवेकतपनः) विवेकरूपी सूर्य (नो न्यञ्चति) अस्तको प्राप्त नहीं होता है। (अविद्यातमी) अज्ञानरूपी रात्रि (न अञ्चति) नहीं फैलती है। (कृपामृतसरित्) दयारूपी पीयूषनदी (स्खलितं) शुष्कपनेको (न आप्नोति) प्राप्त नहीं होती है। (दैन्यज्वरः) दीनतारूपी ज्वर (न उदेति) उदयको प्राप्त नहीं होता है। (सम्पदः) सम्पदा (न विस्निह्यन्ति) विरक्त नहीं होती है। (आपदः) आपत्तियां (दृशं) दृष्टि (अपि) भी (न आसूत्रयति) नहीं रचती है अर्थात् देख नहीं सकती है।

भावार्थ-सिद्धिके सिद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले स्वाभिमानी पुरुषोंके द्वारा सेवनीय पापको नाश करनेवाले सन्तोषको जो धारण करता है, उसके विवेकरूपी सूर्य कभी नष्ट नहीं होता है अर्थात् योग्यायोग्य विचारका उदय हमेशा रहता है। संतोषी मनुष्यके हृदयमें अविद्यारूपी रात्रि नहीं फैलती है। अनुकम्पारूपी अमृत नदी शोषको प्राप्त नहीं होती है। संतोषीको शरीर और मनके संतापका कारणभूत दीनतारूपी ज्वर नहीं आता है। सम्पदायें कभी उसका सन्निकर्ष नहीं छोडती है और संतोषी प्राणीको आपदायें दृष्टिसे देखती ही नहीं है, आलिंगन तो दूर रहा।

तात्पर्य यह है-कि लोभी मनुष्य अविवेकी बनता है, सन्तोष न होनेसे उसके अंतःकरणमें अविद्यारूपी रात्री निरंतर विद्यमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहती हैं। लोभीका हृदय अनुकम्पासे शून्य रहता है। देह और मनके तापका कारणभूत दैन्यतासे युक्त रहता है। सम्पदायें उसको छोड देती हैं। आपत्तियां हमेशा बनी रहती हैं परन्तु संतोषीको यह सब आपत्तियाँ प्राप्त नहीं हो सकती।

तथा–

स्वाध्यायमुत्तमं कुर्यादनुप्रेक्षाश्च भावयेत्।
यस्तु मन्दायते तत्र स्वकार्ये स प्रमाद्यति ॥५५॥

अन्वयार्थं– वह श्रावक (उत्तमं) उत्तम (स्वाध्यायं) स्वाध्याय (कुर्यात्) करे (च) और (अनुप्रेक्षाः) अनित्यादि बारह भावनाओंका (भावयेत्) अभ्यास करे। (तु) परन्तु (यः) जो (तत्र) स्वाध्याय आदिमें (मन्दायते) आलसी होता है, (सः) वह (स्वकृत्ये) अपने आत्मिक कार्यमें (प्रमाद्यति) प्रमादी होता है ॥५५॥

भावार्थ– श्रावकको अपने शक्तिके अनुसार अध्यात्म आदि विद्याकी विषयभूत ग्रंथोका स्वाध्याय करना चाहिये तथा अनित्यत्वादि बारह भावनाका और दर्शनविशुद्धि आदि षोडश भावनाओंका अभ्यास करना चाहिये। ज्यों श्रावक, स्वाध्याय आदि भावनादि आत्मीक कार्योंमें आलस्य करता है उसका आत्मोत्थानमें उत्साह नहीं होता, क्योंकि स्वाध्यायादि आत्मोन्नतिके कारण है।

तथा–

धर्मान्नान्यः सुहृत्पापान्नान्यः शत्रुः शरीरिणाम्।
इति नित्यं स्मरेन्न स्यान्नरः संक्लेशगोचरः ॥५६॥

अन्वयार्थं– (शरीरिणां) संसारी प्राणियोंके (धर्मात्) धर्मसे (अन्यः) दुसरा कोई (सुहृत्) मित्र (न स्यात्) नहीं हैं (पापात्) पापसे (अन्यः) दुसरा (शत्रु) शत्रु नहीं हैं (इति) इस प्रकार (नित्यं) हमेशा (स्मरन्) ध्यान करनेवाला (नरः) मनुष्य (क्लेशगोचरः) रागद्वेषमोहका विषय (न स्यात्) नहीं होता है ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- जो मनुष्य निरन्तर यह विचार करता है कि संसारी प्राणियोंके धर्मके बराबर तो दुसरा कोई उपकार करनेवाला मित्र नहीं है अर्थात् धर्म ही उपकारक है। और पापके समान कोई अपकार करनेवाला शत्रु नहीं है। क्योंकि ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य रागादिकके द्वारा प्रभावित नहीं हो सकता।

तथा-

सल्लेखनां करिष्येऽहं विधिना मारणान्तिकीम्।
अवश्यमित्यदः शीलं सन्निदध्यात्सदा हृदि ॥५७॥

अन्वयार्थ-श्रावक (सदा) हमेशा (हृदि) हृदयमें (विधिनां) विधिपूर्वक (मारणांतिकीं) मरणके समय (सल्लेखनां) सल्लेखनाको (अहं) मैं (अवश्यं) अवश्य ही (करिष्यें) करूंगा (इति) इस प्रकारका (अदः) यह (शीलं) शीलको (सन्निदध्यात्) धारण करे।

भावार्थ- अन्तरंग और बहिरंग तपके द्वारा सम्यक्प्रकारसे शरीर और कषायोंके कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं।

आवीचिमरण, तद्भवमरण कषायमरण आदिके भेदसे मरण १७ प्रकारके हैं।

क्षण क्षण आयुकर्मकी वर्गणा उदयमें आकर नष्ट होती है उसको आवीचिमरण कहते हैं।

सर्वथा आयुकर्मका नाश होकर दूसरे भवमें जानेके समयको तद्भवमरण कहते हैं।

मरणके अन्तसमयमें होनेवाली सल्लेखनाको मारणांतिक कहते हैं।

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतके समान सल्लेखनाको भी शील कहा है।

मुमुक्षु श्रावकको अपने अन्तःकरणमें यह भावना निरन्तर भानी चाहिये कि-मैं अन्तिम समयमें शास्त्रोक्त विधि सल्लेखना अवश्य करूंगा ॥५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा–

सहगामीकृतं तेन धर्मसर्वस्वमात्मनः ।
समाधिमरणं येन भवविध्वंसि साधितम् ॥५८॥

अन्वयार्थ– (येन) जिस भव्यने (भवध्वंसि) संसारका नाश करनेवाले (समाधिमरणं) समाधिमरणको (साधितं) सिद्ध कर लिया (तेन) उस मुमुक्षुने (आत्मनः) अपने आत्माके (धर्मसर्वस्वं) रत्नत्रय स्वरूप आत्मधर्मको (सहगामि) भवान्तरमें साथ जाने-वाला (कृतं) कर लिया ॥५८॥

भावार्थ–जिस महानुभावने संसारभ्रमणके नाशक रत्नत्रयकी एकाग्रतासे प्राणत्यागरूप समाधिमरणको साध लिया है मानो उस भव्यने सम्पूर्ण व्यवहार निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अपने आत्मधर्मको भवान्तरमें साथ ही ले लिया ।

जिनोक्त आगममें समाधिमरणका बडा महात्म्य बतलाया है। समाधिमरणके समान दूसरा कोई व्रत वा तप नहीं है और व्रतपालन वृक्षके समान है, समाधिमरण फलके समान है। फलके बिना वृक्षकी शोभा जैसे नहीं है, उसी प्रकार समाधिमरणके बिना व्रतोंकी शोभा नहीं है, जो मरते समय रत्नत्रयकी आराधनामें तत्पर रहता है वही मानव समाधिमरणको सिद्ध कर सकता हैं।

तथा–

यत्प्रागुक्तं मुनींद्राणां वृत्तं तदपि सेव्यताम् ।
सम्यङनिरूप्य पदवीं शक्तिं च स्वामुपासकैः ॥५९॥

अन्वयार्थ– (यत्) जो (मुनिंद्राणां) मुनिराजोंके (वृत्तम्) चारित्रका वर्णन (प्रागुक्तम्) पहिले अनगारधर्मामृतमें किया है (तदपि) वह भी (स्वां शक्तिम्) अपनी शक्ति (पदवींच) तथा अपने पदस्थका (सम्यक्) भलीभांति (निरूप्य) समझकर (उपासकैः) श्रावकोंके द्वारा (सेव्यताम्) सेवन किया जाय ॥५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-जो इस ग्रंथके अनगारधर्मामृतमें चौथे अध्यायसे लेकर नौवे अध्यायतक महामुनियोंकी चर्याका वर्णन किया है उसका भी अनुष्ठान श्रावकोंको अपनी पदवी और शक्तिके अनुसार करना चाहिये। यहांपर पदवीका अर्थ संयमकी भूमिका है और शक्तिका अर्थ वीर्य अथवा परिषह और उपसर्गोंको सहते हुए अपने मार्गसे विचलित न होना है। सो यथाशक्ति अपने पदका ध्यान रखते हुए उनके आचरणका अभ्यास करना चाहिये।

तथा-

इत्यापवादिकीं चित्रां स्वभ्यस्यन्विरतिं सुधीः।
कालादिलब्धौ क्रमतां नवधौत्सर्गिकीं प्रति ॥६०॥

अन्वयार्थ- (इति) इस प्रकार (चित्राम्) अनेक भेदवाली (आपवादिकीम्) अपवादमार्गस्वरूप (विरतिम्) श्रावकसंबंधि विरति अर्थात् संयमको (स्वभ्यस्यन्) अभ्यास करनेवाला (सुधीः) बुद्धिमान गृहस्थ (कालादिलब्धौ) योग्य समय साधनादि सामग्रीके प्राप्त होनेपर (नवधा) मन, वचन, कायसे कृतकारित अनुमोदना करके नव प्रकारसे (औत्सर्गिकीं प्रति) औत्सर्गिक संयम अर्थात् महाव्रतरूप संयमके प्रति (क्रमताम्) अपना उत्साह बढावें।

भावार्थ-उत्सर्गमार्ग मुनिधर्म हैं। अिसलिये मुमुक्षुके लिये आचार्य पहले मुनिधर्मका उपदेश देते हैं। जो मुनिधर्मके पालनमें असमर्थ हैं उन्हें मुनिधर्म पालनेकी योग्यताके लिये गृहस्थधर्मका उपदेश दिया जाता है। इसलिये गृहस्थधर्मको अपवाद मार्ग कहते हैं।

उत्सर्गका अर्थ उत्कृष्ट रीतीसे सर्ग अथवा सर्वपरिग्रहका त्याग हैं। इनमें जो विधी होती है उसे औत्सर्गिकि विधि कहते हैं अथवा मुनिधर्म कहते हैं। तथा मुनियोंके लिये परिग्रह अपवादका हेतु होनेसे परिग्रह ही अपवाद हैं, इस सहित जो विधि होती हैं अुसे आपवादिकी विधि अर्थात् गृहस्थधर्म कहते हैं। इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाना प्रकारके प्रतिमारूप व्रतोंका अभ्यास करके देश, काल, बल और वीर्य आदि सहायक साधन सामग्रीके मिलनेपर मन, वचन, काय और कृतकारित-अनुमोदनासे मुनिधर्म धारण करनेके लिये अपना उत्साह बढाना चाहिये।

अब साधकका व्याख्यान करनेके लिये उसके स्वामीका निर्देश करते हैं-

इत्येकादशधाऽऽम्नातो नैष्ठिकः श्रावकोऽधुना।
सूत्रानुसारतोऽन्त्यस्य साधकत्वं प्रवक्ष्यते ॥६१॥

अन्वयार्थ-(नैष्ठिकः श्रावकः) नैष्ठिक श्रावक (इति) उपर लिखे हुए व्याख्यानके अनुसार (एकादशधा) ग्यारह प्रतिमावाला (आम्नातः) आचार्य परंपरासे बतलाया गया है (अधुना) अब (सूत्रानुसारतः) जैनागमके अनुसार ही (अन्त्यस्य) एकादशम प्रतिमाके (साधकत्वम्) साधकपने रूप तृतीयपदका (प्रवक्ष्यते) वर्णन करेंगे।

भावार्थ-इस प्रकार आगमपरम्पराके अनुसार ग्यारह प्रतिमारूप नैष्ठिकश्रावकका वर्णन करके अब ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके साधकत्व नामका पद होता है वह आठवे अध्यायमें बतलाते हैं।

सप्तम अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें ग्रंथकारने सामायिक प्रतिमासे लेकर ग्यारवी उद्दिष्टत्याग प्रतिमा तकके श्रावकोंके कर्तव्यका निरूपण किया है। इस संदर्भमें सामायिक,प्रोषधोपवास, सचित्तविरति,रात्रिभक्तविरति,ब्रह्मचर्य, आरम्भविरति,परिग्रहविरति,अनुमतिविरति और उद्दिष्टविरति इन प्रतिवोंका लक्षण व विशेषतावोंका वर्णन किया है। रात्रिभक्त विरतिका वर्णन करते हुए ग्रंथकारने यहांपर दिवा मैथुनत्यागका ग्रहण किया है। अग्रिम प्रतिमा संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालनकी होनेसे यहींपर एकदेश ब्रह्मचर्य और स्त्रीवैराग्यका अभ्यास करना आवश्यक है, इस दृष्टिसे इस प्रतिमाका निरूपण किया गया है। अन्यत्र रात्रिमें चतुराहारत्यागरूपी प्रतिमाका प्रतिपादन किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है । ब्रह्मचर्य प्रतिमाके संदर्भमें आत्मोन्नतिके साधक वर्णाश्रम व्यवस्थाका भी प्रतिपादन किया गया है ।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षु, इस प्रकार क्रमशः विकास करते हुए वह आत्मोत्थानकी ओर जाता है, एवं संसार विषय भोगोंसे विरक्त होता है ।

तदनन्तर आरंभका भी त्याग करता है, परिग्रहोंका भी त्याग करता है, इसी प्रसंगमें अपने धनधान्यादिक अजीव, स्त्री पुत्र बंधु आदि सजीव परिग्रहोंका वह किस प्रकार त्याग करें, इस अन्वयदत्ति या सकलदत्तिका निरूपण किया गया है, तदनन्तर चैत्यालयमें रहकर गृहकार्यमें अनुमतिका त्याग करता है, भोजनके लिए अपने पुत्रोंके घरमें या अन्य घरमें निमंत्रण मिलनेपर जाता है । तदनन्तर श्रावकोत्तम उद्दिष्टत्याग प्रतिमाका वर्णन करते हुए क्षुल्लक व ऐल्लकका निरूपण, उसमें क्षुल्लकमें एक गृहभक्त और अनेक गृहभक्त, क्षुल्लक ऐल्लकोंमें परस्परमें भेद आदिका निरूपण करते हुए इस अध्यायका उपसंहार किया गया है ।

उद्दिष्टत्यागी नैष्ठिकोंमें उत्तम है । इसलिए उसे मुनिधर्मके प्रति उत्साहित होना चाहिए यह कहते हुए ग्रंथकारने आगामी अध्यायमें साधकके निरूपणका संकेत किया है ।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १६ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे सप्तम
अध्याय समाप्त
हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमोऽध्यायः

अब इस अध्यायमें सल्लेखनाकी विधिका वर्णन करते हैं, उसमें भी पहिले सल्लेखना धारण करनेवालेका लक्षण कहते हैं—

देहाहारेहितत्यागात् ध्यानशुद्ध्याऽऽत्मशोधनम् ।
यो जीवितान्ते सम्प्रीतः साधयत्येष साधकः ॥१॥

अन्वयार्थ—(जीवितान्ते) जीवनके अन्तमें (यः) जो (संम्प्रीतः) ध्यानसे उत्पन्न सर्वांगीण आनन्दसे युक्त होकर (देहाहारे-हितत्यागात्) देह, आहार और मन, वचन तथा कायके व्यापारके त्यागसे उत्पन्न (ध्यानशुद्धया) ध्यानशुद्धिके द्वारा (आत्मशोधनं) आत्मशुद्धिकी (साधयति) साधना करता है, (एषः) वह (साधकः) साधक है ॥१॥

भावार्थ—जो मानव मरणके अन्तसमयमें अर्थात् प्राणनाशके समय सर्वांगीण ध्यानसे उत्पन्न हुये आनन्दसे युक्त होकर देहसे ममत्वका त्याग, चतुर्विध आहारका त्याग तथा सब प्रकारकी मन, वचन और कायकी चेष्टाओंका त्याग करके निर्विकल्प समाधिद्वारा अपनी आत्माकी शुद्धिकी तथा मोह, राग और द्वेषके त्यागरूप रत्नत्रय परिणतिकी साधना करता है वह साधक है। पहिले पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक ऐसे तीन प्रकारके श्रावकके भेद किये थें। उसमें पाक्षिक और नैष्ठिक श्रावकका दो लक्षण कह चुके, इस श्लोकमें साधकका लक्षण कहा है।

अब—श्रावक रहकर ही मोक्षमार्गका साधन किसको करना चाहिये और मुनि होकर किसको करना चाहिये। आगे इस प्रश्नका उत्तर देते हैं—

सामग्रीविधुरस्यैव श्रावकस्यायमिष्यते ।
विधिः सत्यां तु सामग्र्यां श्रेयसी जिनरूपता ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(सामग्रीविधुरस्य) सामग्रीकी अपूर्णता होनेपर (एव) ही (श्रावकस्य) श्रावकके लिये (अयं) यह आगे कही जानेवाली (विधिः) विधी (इष्यते) कही जाती है। (तु) किन्तु (सामग्र्यां) जिनलिंग धारण करने योग्य सामग्रीके (सत्यां) होनेपर (जिनरूपता) मुनिमुद्रा ही (श्रेयसी) श्रेष्ठ है।

भावार्थ-जो श्रावक शास्त्रकथित अंडकोषादिक दोषोंसे युक्त है वह जिनदीक्षाके लेनेका अधिकारी नहीं है। इसलिये मुनिमुद्रा धारण करनेके अयोग्य श्रावकके लिये आगे कही जानेवाली सल्लेखनाकी विधि कही गई है। परन्तु जो श्रावक मुनि बननेके योग्य है, जिनलिंग धारण करने योग्य जिनका लिंग है उनको तो मुनि बनना अर्थात् जिनलिंग धारण करना श्रेष्ठ है।

अब-जिनलिंग स्वीकार करनेका कारण कहते हैं-

किञ्चित्कारणमासाद्य विरक्ताः कामभोगतः।
त्यक्त्वा सर्वोपधिं धीराः श्रयन्ति जिनरूपताम् ॥३॥

अन्वयार्थ-(किञ्चित्कारणं) कुछ कारणोंको आसाद्य प्राप्त करके (कामभोगतः) कामभोगसे (विरक्तः) विरक्त होकर तथा (सर्वोपधिं) सम्पूर्ण बाह्याभ्यंतर परिग्रहको (त्यक्त्वा) छोडकर (धीरः) धीर वीर पुरुष (जिनरूपतां) जिनरूपको (श्रयन्ति) स्वीकार करते हैं ॥३॥

भावार्थ-जो परीषह, उपसर्ग आदिको सहन करनेमें समर्थ हैं एसे श्रावक तत्त्वज्ञान, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, शत्रुके द्वारा पराजयादिक कारणोंको प्राप्त कर कामभोगोंसे विरक्त होते हैं। स्पर्शन और रसना इन्द्रियके विषयानुभवको काम कहते हैं तथा घ्राण, चक्षु तथा कर्णके विषयको भोग कहते हैं, इससे विरक्त होती है। तथा अंतरंगमें होनेवाले रागद्वेषादि और बाह्य धन-धान्यादि परिग्रहका त्याग करके जिनमुद्राको स्वीकार करते हैं ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनरूपताके स्वीकारके माहात्म्यको कहते हैं-

अनादिमिथ्यादृगपि श्रित्वार्हद्रूपतां पुमान् ।
साम्यं प्रसन्नः स्वं ध्यायन् मुच्यतेऽन्तर्मुहूर्ततः ।।४।।

अन्वयार्थ-(अनादिमिथ्यादृक्) अनादि मिथ्यादृष्टि (अपि) भी (पुमान्) पुरुष (अर्हद्रूपतां) निर्ग्रन्थ लिंगको (श्रित्वा) आश्रय लेकर (साम्यं) माध्यस्थभावको (प्रपन्नः) प्राप्त होता हुवा तथा (स्वं) अपने आपका (ध्यायन्) ध्यान करता हुवा (अन्तर्मुहूर्ततः) अन्तर्मुहूर्त्तमें (मुच्यते) कर्मोंसे छूट जाता है ।

भावार्थ-द्रव्यवेदकी अपेक्षा पुरुष ही मुनिदीक्षाका अधिकारी है, इसलिये इस श्लोकमें पुमान् शब्द दिया गया है । जिसको पहिले कभी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसा मिथ्यादृष्टि भी मुनि दीक्षा लेकर समताभावकी प्राप्ति करके अर्थात् एक साथ सम्यक्त्व और चारित्रकी प्राप्ति करके आत्माका ध्यान करता हुवा अन्तर्मुहूर्तमें मुक्तिको प्राप्त होता है । कहा भी है-

आराध्यच्चरणमनुपममनादिमिथ्यादृशोऽपि यत्क्षणतः ।
दृष्टा विमुक्तिभाजस्ततोऽपि चारित्रमत्रेष्टम् ।।

जिस कारणसे इस संसारमें अनादि मिथ्यादृष्टि भी अनुपम चारित्रको पाकर क्षणमात्रमें मोक्षके अधिकारी देखे जाते हैं इसलिये भी चारित्र इष्ट व श्रेष्ठ माना गया है ।।४।।

अब-स्थायी शरीरका नाश करने और नाशोन्मुख शरीरका शोच करनेका निषेध करते हैं-

न धर्मसाधनमिति स्थास्नु नाश्यं वपुर्बुधैः ।
न च केनापि नो रक्ष्यमिति शोच्यं विनश्वरम् ।।५।।

अन्वयार्थ-(स्थास्नु) रत्नत्रयके अनुष्ठानका साधक होनेसे कुछ कालतक ठहरनेवाला शरीर (धर्मसाधनं) धर्मका साधन है (इति) इसलिये (बुधैः) तत्वज्ञ पुरुषोंको (न नाश्यं) उस स्थायी शरीरका नाश नहीं करना चाहिये । (च) तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विनश्वरं) तद्भव प्राप्तमरणको होनेवाले शरीरका (केनापि) किसीके द्वारा भी (नो रक्ष्यं) रक्षण नहीं किया जा सकता है (इति) इसलिये (न शोच्यं) शोच भी नहीं करना चाहिये ॥५॥

भावार्थ—मानवका शरीर रत्नत्रयकी सिद्धिका साधन है, इसलियें धर्मका साधन है, इसलिये यदि वह कुछ काल रह सकता हो तो उसका ज्ञानीजनोंको प्रयत्नपूर्वक नाश नहीं करना चाहिये। तथा यदि वह शरीर पातोन्मुख हो रहा हो तो उसे योगीन्द्र, देवेन्द्र, दानवेन्द्र आदि कोई बचा नहीं सकते हैं, इसलिये उसका शोच भी नहीं करना चाहिये । कहा भी है—

गहनं न शरीरस्य हि विसर्जनं किं तु गहनमिह वृत्तम् ।
तन्न स्थास्नु विनाश्यं न नश्वरं शोच्यमिदमाहुः ॥

इस संसारमें शरीरका त्याग करना कठिन नहीं है किन्तु चारित्र का धारण करना दुर्लभ है। इसलिये यदि शरीर टिक रहा हो तो उसका नाश नहीं करना चाहिये और नश्वर हो तो उसके लिये शोच भी नहीं करना चाहिये । यह प्राचीन ऋषिजनोंका कहना है ।

अब— शरीरका स्थापन उपचार और त्यागकी योग्यताका उपदेश देते हैं—

कायः स्वस्थोऽनुवर्त्यः स्यात् प्रतीकार्यश्च रोगितः ।
उपकारं विपर्यस्यं—स्त्याज्यः सद्भिः खलो यथा ॥६॥

अन्वयार्थ— (सद्भिः) साधु पुरुषोंके द्वारा (स्वस्थः) स्वस्थ (कायः) शरीर (अनुवर्त्यः) पथ्य आहार और विहार द्वारा पोषण करने योग्य है। (रोगितः) रोगी शरीर (प्रतीकार्यः) योग्य औषधादिके द्वारा उपचारके योग्य है (च) और (उपकारं) उपकारका (विपर्यस्यन्) विपर्यास करनेवाला शरीर (खलः) यथा दुष्ट पुरुषके समान (त्याज्यः) त्यागने योग्य है ॥६॥

भावार्थ— साधु पुरुषोंके द्वारा निरोग शरीर, योग्य प्रासुक आहार और विहार आदिके द्वारा रक्षा करने योग्य है। यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कदाचित् रोग उत्पन्न हो जाय तो उसको दूर करनेके लिये योग्य औषधोपचार भी करना चाहिये। परन्तु यदा कदाचित् योग्य आहार, विहार, औषधोपचार करते हुए भी शरीरपर उनका किसी प्रकारका भी असर न हो प्रत्युत व्याधि ही बढे तो ऐसी परिस्थितिमें दुष्ट के समान उसका त्याग करना ही योग्य है।

अब– आगें शरीरके लिए धर्मका घात करनेका निषेध कहते हैं—

नावश्यं नाशिने हिंस्यो धर्मो देहाय कामदः ।
देहो नष्टः पुनर्लभ्यो धर्मस्त्वत्यंतदुर्लभः ॥७॥

अन्वयार्थ– (अवश्यं) अवश्य (नाशिने) नाश होनेवाले (देहाय) शरीरके लिये (कामदः) इच्छित पदार्थोंको देनेवाला (धर्मः) धर्मका (न हिंस्यः) घात न करे (नष्टः) नष्ट हुवा (देहः) शरीर (पुनः) फिर (लभ्यः) प्राप्त हो सकता है (तु) परन्तु (धर्मः) धर्म (अत्यन्तदुर्लभः) अत्यन्त दुर्लभ है।

भावार्थ– सज्जन पुरुषोंको निश्चयसे नाश होने योग्य इस शरीर के लिए सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले धर्मका नाश नहीं करना चाहिए। क्योंकि शरीर तो नाश होनेके बाद फिर मिल सकता है परन्तु धर्मका नाश होनेके बाद उसका मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। यहांपर धर्म शब्दका अर्थ प्रकरण वश समाधिमरण लेना चाहिए। समाधिकी प्राप्ति सकडो प्रयत्न करनेपर भी अत्यन्त कठिन है, इसलिए शरीरके ममत्वमें धर्मका घात नहीं करना चाहिये।

सल्लेखना मरणमें आत्मघात है इस प्रकारकी शंकाका निषेध करते हैं—

न चात्मघातोऽस्ति वृषक्षतौ वपुरुपेक्षितुः ।
कषायावेशतः प्राणान् विषाद्यैर्हिंसतः स हि ॥८॥

अन्वयार्थ– (वृषक्षतौ) स्वीकार किये हुए व्रतादिके विनाशका कारण आजानेपर (वपुः) शरीरकी (उपेक्षितुः) उपेक्षा करनेवालेके (आत्मघातः) आत्मघात (न) नहीं (अस्ति) है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हि) क्योंकि (कषायावेशत:)कषायोंके वशीभूत होकर(विषाद्यैः) विष शस्त्रादिके द्वारा (प्राणान्) प्राणोंका (हिंसतः) नाश करनेवाले के (सः) आत्मघात (अस्ति) है ।

भावार्थ- गृहण किये हुये व्रतोंके नाशका कारण उपस्थित हो जानेपर शास्त्रोक्त विधिसे भोजन पानादिकका त्याग करके जो समाधिमरण किया जाता है वह आत्मघात नहीं है । क्योंकि जहाँपर क्रोधके आवेशमें आकर विषभक्षण, शस्त्रघात,श्वासनिरोध, अग्निप्रवेश, अन्नपानादिकका निरोधादिके द्वारा प्राणोंका घात किया जाता है, उसको आत्मघात कहते हैं ।।८।।

इस प्रकार संयमके विनाशके कारण उपस्थित हो जानेपर शरीरके त्याग का समर्थन करके इस समय यथाकाल मरण अथवा उपसर्गमरणके निर्णयपूर्वक उपवास करके जो सल्लेखना मरण किया जाता है उसमें धारण किये हुये व्रतोंकी साफल्यता का वर्णन करते हैं---

कालेन वोपसर्गेण निश्चित्यायुः क्षयोन्मुखम् ।
कृत्वा यथाविधि प्रायं तास्ताः सफलयेत् क्रियाः ।।९।।

अन्वयार्थ- (कालेन) आयुके क्षय होनेके कालसे (वा) अथवा (उपसर्गेण) उपसर्गके द्वारा (आयुःक्षयोन्मुखं) आयुके क्षय का निश्चित्य) निश्चय करके (यथाविधि) विधिपूर्वक (प्रायं) उपवासको (कृत्वा) करके (ताः ताः)उन उन(क्रियाः) दर्शनादिक क्रियाओंको (सफलयेत्) सफल करे ।।९।।

भावार्थ-स्थितिबन्धके छदरूप कारण के द्वारा स्वाभाविक मरण निकट होनेपर अथवा दुर्निवार पापकारि रोग शस्त्रप्रहारादि घोर उपसर्गके द्वारा आयुका नाश अवश्यंभावी है, ऐसा निश्चय हो जानेपर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार संन्यास युक्त उपवास करके अर्थात् समताभावपूर्वक चारों प्रकारके आहारका त्याग करके पूर्वावस्थामें धारण किये हुये दर्शन प्रतिमादि व्रतको तथा नित्य नैमित्तिक क्रियाओंको सफल करे। व्रतोंके पालनकी सफलता समाधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरण करनेसे ही है। ऐसा रत्नकरण्डश्रावकाचारमें समन्तभद्राचार्यने भी कहा है।

अब– आत्माराधनाकी परिणतिपूर्वक कायका त्याग करनेपर मोक्ष हस्तगत ही है, यह बताते हैं–

देहादिवैकृतैः सम्यङ्निमित्तैस्तु सुनिश्चिते।
मृत्यावाराधनामग्नमतेर्दूरे न तत्पदम् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(देहादिवैकृतैः) शीघ्र मरणसूचक शारीरिक विकारोंसे (तु) तथा (सम्यङ्निमित्तैः) समीचीन निमित्तोंके द्वारा (मृत्यौ) मृत्युका (सुनिश्चिते) भली प्रकार निश्चय हो जानेपर (आराधनामग्नमतेः) आराधनामें मग्न है मन जिसका ऐसे आराधकके (तत्पदं) मोक्षपद (दूरे) दूर (न) नहीं है ॥१०॥

भावार्थ–शीघ्र मरणके सूचक अरिष्ट शास्त्रमें कहे गये देह-विकार, वचनविकार, कान नाकादि विकारके द्वारा तथा समीचीन भावि शुभाशुभसूचक ज्योतिष, शास्त्र, कर्ण, पिशाचिनी, विद्या, शकुन शास्त्रादि निमित्तोंके द्वारा मृत्युका निश्चय हो जानेपर जो समाधिमरण करनेमें लीन हो जाता है, उसके लिये मोक्ष दूर नही है। समाधिमरण करनेवाला कुछ भवमें निर्वाण अवश्य प्राप्त करेगा ॥१०॥

उपसर्गसे मरण निकट आनेपर उपवास विधिको बताते हैं–

भृशापवर्तकवशात् कदलीघातवत्सकृत्।
विरमत्यायुषि प्रायमविचारं समाचरेत् ॥११॥

अन्वयार्थ–(भृशापवर्तकवशात्) अगाढ अपमृत्युके कारणवश (कदलीघातवत्) कदलीघातके समान (सकृत्) एक साथ (आयुषि) आयुके (विरमति) नाशकी उपस्थिति होनेपर (अविचार) विचाररहित अर्थात् समाधिके योग्य स्थानका विचार न करके (प्रायं) भक्तप्रत्याख्यानको (समाचरेत्) स्वीकार करे।

भावार्थ–जिसप्रकार केलेका झाड शस्त्रसे एक ही बारमें काटकर गिरा दिया जाता है उसी प्रकार अकस्मात् एकदम अगाढ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपमृत्युके कारण आयुके नाशकी संभावना होनेपर मुमुक्षु नाना प्रकारका गमन, अर्हन्त भगवानके निर्वाणस्थान निर्यापकाचार्यादिके अन्वेषणादिका विचार न करके एकदम भक्तप्रत्याख्यान करे अर्थात् सार्वकालिक संन्यासको धारण करके शुद्धात्माका ध्यान करे ॥११॥

अब—अपने आप आयुके पूर्ण होनेपर स्वयं देहके पातोन्मुख होनेपर सल्लेखनाकी विधि कहते हैं—

क्रमेण पक्त्वा फलवत् स्वयमेव पतिष्यति ।
देहे प्रीत्या महासत्त्वः कुर्यात्सल्लेखनाविधिम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-(क्रमेण) क्रमसे (पक्त्वा) पक करके (फलवत्) फलके समान (स्वयं) अपने आप (एव) ही (देहे) शरीर (पतिष्यति) नाश होनेवाला है ऐसा समझकर (प्रीत्या) हर्षपूर्वक (महासत्वः) महाशक्तिशाली श्रावक (सल्लेखनाविधि) सल्लेखना विधिको (कुर्यात्) करे ॥१२॥

भावार्थ-जिस प्रकार फल क्रम क्रमसे कालानुसार स्वयं कारणान्तरके बिना पक कर गिरता है, उसी प्रकार क्रम क्रमसे आयुष्यकर्मके निषेक भी घट जानेसे शरीरका नाश होता है, जिस समय उपसर्गादि कारणान्तरके बिना आयुष्कर्म नष्ट हो जानेसे शरीर मरणोन्मुख हो रहा हो उस समय शक्तिशाली श्रावकको धैर्यके साथ प्रमोदपूर्वक सल्लेखनाविधि करनी चाहिये। कहा भी है-

प्रतिदिवसं विजहद्बलमुज्झद् भुक्तिं त्यजत्प्रतीकारं ।
वपुरेव नृणां निगदति चरमचरित्रोदयं समयम् ॥

जिसकी प्रतिदिन शक्ति क्षीण होती जा रही हो, भोजन छूट रहा हो, रोगादिकके प्रतीकार करनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो ऐसा मनुष्यका शरीर ही अन्तमें होनेवाले सल्लेखना मरणके समयका प्रतिपादन करता है, अर्थात् ऐसे समयमें समाधिमरण करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे-शरीरमें निर्ममत्वकी भावनाकी विधिको कहते हैं-

जन्ममृत्युजरातङ्काः कायस्यैव न जातु मे ।
न च कोऽपि भवत्येष ममेत्यङ्गेऽस्तु निर्ममः ॥१३॥

अन्वयार्थ-(जन्ममृत्युजरातङ्काः) जन्म, मरण, वृद्धापन और रोग (कायस्य) शरीरके (एव) ही है (मे) मेरे (जातु) कभी भी (न) नहीं है (च) और (एषः) यह देह (अपि) भी (मम) मेरा (कः) उपकार अथवा अपकारकर्त्ता (न) नहीं है (इति) इस प्रकार (अंगे) देहमें (निर्ममः) निर्मोही (अस्तु) होवे।

भावार्थ-जन्म, मृत्यु, वृद्धापन और ज्वरादि व्याधि ये सब पुद्गलकी पर्याय है, इसलिये शरीरके ही है। शुद्ध चिद्रूपस्वरूप अमूर्त्तिक मेरे आत्माके जन्म मृत्यु आदि कभी नहीं हो सकते हैं। चिदानंदमय मेरे आत्माका कोई भी शरीरादिक बाह्य पदार्थ निश्चयनयसे उपकार करनेवाला या अपकारक नहीं है। इस प्रकारकी भावनासे ओतप्रोत होकर समाधिमरणका इच्छुक मनुष्यको शरीरसे भी निर्मोही होना चाहिये। यह मेरा शरीर है, इस मेरे शरीरका नाश हो गया, इस प्रकारके संकल्प विकल्पसे रहित होना चाहिये ॥१३॥

अब-आहारत्यागका समय बताते हैं-

पिण्डे जात्याऽपि नाम्नाऽपि समो युक्त्याऽपि योजितः।
पिण्डोस्ति स्वार्थनाशार्थो यदा तं हापयेत्तदा ॥१४॥

अन्वयार्थ-(अपि) यह आश्चर्य हैं कि (जात्या) जातिसे (नाम्ना) नामसे (अपि) भी (समो) समान (अपि) तथा (युक्त्या) शास्त्रोक्त विधिसे (पिण्डे) शरीरमें (योजितः) प्रयुक्त किया गया (पिण्डः) आहार (यदा) जब (स्वार्थनाशार्थः) स्वार्थ नाशका कारण (अस्ति) होता है (तदा) तब (तम्) उस आहारको (हापयेत्) छोड देना चाहिये ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पिण्ड शब्दका अर्थ शरीर भी है और आहार भी है, इसलिये दोनो नामसे एक है तथा आहार और शरीर दोनो हीं पुद्गलकी पर्याय है इसलिये जातिसे भी एक है। शास्त्रोक्त विधिसे विधिपूर्वक शरीरमें प्रयोग किया गया आहार शरीरका बल और ओज बढानेवाला है तथा बलवन्त शरीर धर्मसिद्धिमें कारण पडता है। परन्तु आश्चर्य है जिस समय नामसे तथा जातिसे समान और युक्तिपूर्वक शरीरमें प्रयुक्त किया हुवा आहार धर्मसिद्धिका उपयोगी न होकर निष्प्रयोजन हो अर्थात् धर्मसिद्धिरूप आत्मकार्यका नाशक हो उस समय समाधिमरणमें उद्यत मानव उस आहारका भी त्याग कर दे ॥१४॥

सल्लेखना विधिपूर्वक समाधिमरणकी विधि कहते हैं–

उपवासादिभिः कायं कषायं च श्रुतामृतैः।
संलिख्य गणमध्ये स्यात् समाधिमरणोद्यमी ॥१५॥

अन्वयार्थ– मुमुक्षु (उपवासादिभिः) अनशनादि तपोंके द्वारा (कायं) शरीरको (च) तथा (श्रुतामृतैः) श्रुतरूपी अमृतके द्वारा (कषायं) कषायोंको (संलिख्य) कृश करके (गणमध्ये) चतुर्विध संघके समक्ष (समाधिमरणोद्यमी) समाधिमरण करनेका उद्यमी (स्यात्) होवे ॥१५॥

भावार्थ– समाधिमरणकी सिद्धिकी इच्छुक मानव अनशन अवमौदर्य आदि बाह्य तपोंके द्वारा कायको कृश करके तथा जिन-वचनामृतके द्वारा कषायोंका नाश करके चतुर्विध संघके समक्ष समाधिमरण करनेका उद्यमी होवे।

मृत्यु समयमें धर्मकी विराधना और आराधनाका फल बताते हैं–

आराद्धोऽपि चिरं धर्मो विराद्धो मरणे मुधा।
सत्वाराद्धस्तत्क्षणेंऽहः क्षिपत्यपि चिरार्जितम् ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ– (चिरं) बहुत कालतक (आराद्धः) आराधित किया हुवा (अपि) भी (धर्मः) धर्म यदि (मरणे) मरणके समयमें (विराद्धः) नष्ट हो जाय–स्वलित हो जाय तो (मुधा) चिरकालसे आराधित किया हुवा धर्म व्यर्थ हो जाता है। (तु) किन्तु (तत्क्षणे) मरण समयमें (आराद्धः) आराधित किया हुवा (सः) वह धर्म (चिरार्जितं) चिरकालसें उपार्जन किये हुए (अपि) भी (अंहः) पापको (क्षिपति) नाश करता है ॥१६॥

भावार्थ– चिरकालतक अर्थात् जन्मसे लेकर मरणके पूर्व क्षणपर्यन्त धर्मका पालन किया, परन्तु मरण समय धर्मकी विराधना कीं जाय तो इतने दिनतक पालन किया हुवा सब धर्म व्यर्थ जाता है। परन्तु यदि जन्मभर कुछ नहीं किया और मरण समय धर्मकी आराधना की गई हो समाधिपूर्वक मरण किया जाय तो दीर्घकालके उपार्जन किये हुए असंख्यात कोटिभवमें उपार्जन किये हुये पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। इसलिये विधिपूर्वक समाधिमरण करनेंका प्रयत्न करना चाहिये ॥१६॥

दीर्घकालतक मुनिमार्गका अभ्यास करके भी जो मुनि मरण समय धर्मकी विराधना करता हैं, उसकी जगतमें अपकीर्ति होती है आत्म कल्याणका नाश होता है इस बातको बताते हैं–

नृपस्येव यतेर्धर्मो चिरमभ्यस्तिनोऽस्त्रवत् ।
सुधीव स्खलतो मृत्यौ स्वार्थभ्रंशोऽयशः कटुः ॥१७॥

अन्वयार्थ– (अस्त्रवत्) शस्त्रके विषयमें (चिरं) चिरकाल तक (अभ्यस्तिनः) अभ्यास करनेवाले (युधि) युद्धमें (स्खलतः) स्खलित होनेंवाले (नृपस्य) राजाके (इव) समान (धर्मे) धर्मके विषयमें (चिरं) चिरकालतक (अभ्यस्तः) अभ्यास करनेवाले (मृत्यौ) मरणके समय (स्खलतः) धर्मसे च्युत होनेवाले (यतेः) मुनिके (अयशःकटुः) अपकीर्तिसे कटुक परिणामवाला (स्वार्थभ्रंश) स्वार्थका घात होता है ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- जिस प्रकार बहुत कालतक शस्त्र चलानेका अभ्यास करनेवाला राजा यदि युद्धके समयपर प्रमादसे स्खलित हो जाय शत्रुके भयसे पीठ दिखाकर भाग जाय तो उसकी जगतमें अपकीर्ति होती है पराजय होती है और राज्यका नाश होता है। उसी प्रकार जो श्रमण चिरकालतक धर्मका अभ्यास करके भी यदि मरणकालमें प्रमादसे धर्मकी विराधना करता है तो उसकी भी जगतमें अपकीर्ति होती है आत्मकल्याणका घात होता है और उसकी जन्मभर की गई धर्माराधना व्यर्थ हो जाती है।

अब यहाँपर कोई शंकाकार शंका करता है कि किसी जीवने जन्मभर धर्मकी आराधना की तो भी अन्तसमयमें समाधि मरण नहीं देखा जाता है। और किसीके विना अभ्यास भी अन्तसमयमें समाधिमरण देखा जाता है इसलिए धर्माचारणके अभ्यास से ही समाधिमरण होता है यह सिद्ध नहीं हो सकता है, इसका समाधान करते हैं-

सम्यग्भावितमार्गोन्ते स्यादेवाराधको यदि ।
प्रतिरोधि सुदुर्वारं किञ्चिन्नोदेति दुष्कृतम् ॥१८॥

अन्वयार्थ- (यदि) यदि (प्रतिरोधि) सल्लेखना मरणमें बाधक (सुदुर्वारं) दुर्वार (किंचित्) जिसका वर्णन कठिन है ऐसा (दुष्कृतं) पूर्वोपार्जित पाप कर्म (न उदेति) उदयको प्राप्त न हो तो (सम्यग्भावावितमार्गः) जिसने अपने जीवनमें सम्यक्प्रकारसे रत्नत्रयकी आराधना की हो ऐसा व्यक्ति (अन्ते) अन्त समयमें (आराधकः) सल्लेखना मरण करनेवाला (स्यात् एव) हो सकता है।

भावार्थ- रत्नत्रयकी आराधनाका भले प्रकार अभ्यास करके भी अन्तमें जिनकी सल्लेखना नहीं होती है उसमें उसके जिसका प्रयत्नोंके द्वारा निवारण नहीं किया जाता ऐसे पूर्वोपार्जित अशुभ-कर्मका उदय ही कारण है।

उक्तं च- मृतिकाले नरा हन्त सन्तोऽपि चिरभाविताः ।
पतन्ति दर्शनादिभ्यः प्राक्कृताशुभगौरवात् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःखकी बात है कि दीर्घ कालतक रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले सज्जन-यतिजन भी पूर्वोपार्जित तीव्र अशुभकर्मके उदयसे मरण समयमें सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयसे च्युत हो जाते हैं। और किसीके विना अभ्यास ही अन्तमें सल्लेखनाकी सिद्धि होती है, वह उनके लिए अन्धनिधि लाभ है।

उक्तं च- या स्वभावितमार्गस्य कस्याप्याराधना मृतौ।

विना रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले किसी व्यक्ति जो अन्तमें समाधिमरणकी प्राप्ति होती है वह वचनागोचर आराधनामें तत्पर समाधिमरण करनेवाले उस व्यक्तिको अन्धनिधि लाभ है अर्थात् जैसे जन्मान्ध मनुष्यको कभी कभी योगायोगसे विना प्रयत्न निधिका लाभ हो जाता है, उसी प्रकार उसको भी समाधि-मरणकी प्राप्ति समझनी चाहिये।

यह कार्य कारणयुक्त राजमार्ग नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार निधिका लाभ प्रयत्नपूर्वक ही होता है, उसी प्रकार सल्लेखना मरण भी पूर्व आराधित रत्नत्रयसे ही होता है।

तीव्र पापकर्मके उदयसे समाधिसे स्खलित होनेवालोंको देखकर तथा विना प्रयत्न किये ही पूर्वोपार्जित पुण्यसे अन्तसमयमें समाधिमरण प्राप्त करनेवालोंको देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिये और केवल दैवाधीन ही सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है ऐसा आग्रह कर एकान्तवादी भी नहीं बनना चाहिये। परन्तु जिनवचनोंको प्रमाण मानकर अंतमें समाधिके लिये हमेशा प्रयत्न-शील होना चाहिये। क्योंकि भाग्याधीनसे प्राप्त सल्लेखना आदर्श नहीं मानी जाती है। सो ही कहा है-

पूर्वमभावितयोगो यद्यप्याराधयन्मृतौ कश्चित्।
स्थाणौ निधानलाभो निदर्शनं नैव सर्वत्र॥

अर्थ-जिसने पूर्वमें धर्माराधनाका अभ्यास नहीं किया है परन्तु अन्तसमयमें जिसको सल्लेखना मरणकी प्राप्ति हुई है वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको स्थाणुमें निधिका लाभ समझना चाहिये । दूसरोंके लिये वह उदाहरण नहीं हो सकता है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि अन्तसमयमें किसी पूर्वोपार्जित तीव्र पापकर्मका उदय नहीं आवे तो रत्नत्रयका अभ्यास करनेवालोंके लिए अन्तमें आराधनाकी सिद्धि अवश्य होती है । यही कार्यकारणयुक्त राजमार्ग है ॥१८॥

दूरभव्यको व्रताचरण करनेपर भी मुक्ति नहीं हो सकती हैं, इसलिये दूरभव्यको व्रताचरण करनेसे क्या प्रयोजन है इस प्रकारकी शंकाका समाधान करते हैं–

कार्यो मुक्तौ दवीयस्यामपि यत्नः सदा व्रते ।
वरं स्वः समयाकारो व्रतान्न नरकेऽव्रतात् ॥१९॥

अन्वयार्थ–(मुक्तौ) मुक्तिके (दवीयस्यां) अत्यन्त दूर होनेपर भी (व्रते) व्रतोंमें (सदा) हमेशा (यत्नः) प्रयत्न (कार्यः) करना चाहिये । क्योंकि (व्रतात्) व्रताचरण करके (स्वः) स्वर्गमें (समयाकारः) समय बिताना (वरं) अच्छा है परन्तु (अव्रतात्) अव्रती रहकर (नरके) नरकमें जाना (वरं न) अच्छा नहीं है ॥१९॥

भावार्थ–दूरभव्यको समयमें मुक्ति नहीं हो सकती है तो भी मुक्ति नहीं जाने तकके कालको; व्रतादिके अनुष्ठानसे उपार्जन किये हुये पुण्यके विपाकसे स्वर्गमें बिताना श्रेष्ठ है । परन्तु हिंसादि पापाचरणसे उपार्जित किये पापोदयसे नरकादि दुर्गतिमें जाकर काल बिताना श्रेयस्कर नहीं है । ऐसा विचार कर जिनभक्तोंकी मुक्तिके दूर रहनेपर भी निरंतर प्रयत्नपूर्वक व्रताचरण करना चाहिये ॥१९॥

आगे भक्तप्रत्याख्यानकी योग्यताको कहते हैं–

धर्माय व्याधिदुर्भिक्षजरादौ निष्प्रतिक्रिये ।
त्यक्तुं वपुः स्वपाकेन तच्च्युतौ चाशनं त्यजेत् ॥२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-(निष्प्रतिक्रिये) निष्प्रतिकारक (व्याधिदुर्भिक्ष-जराद्यौ) शारीरिक रोगदुर्भिक्ष तथा बुढापा आदिके आ जानेपर (धर्माय) धर्मके लिये (वपुः) शरीरको (त्यक्तुं) छोडनेके लिये (अशनं) भोजनका (त्यजेत्) त्याग करे। (च) तथा (स्वपाकेन) स्वयं कालक्रमसे (तच्च्युतौ) शरीरके नाश होनेका समय आ जानेपर (अशनं) आहारादिका (त्यजेत्) त्याग करे ॥२०॥

भावार्थ-धर्मके नाशके कारणभूत निष्प्रतिकारक शारीरिक व्याधि, दुर्भिक्ष, असाध्य ज्वरादिक रोग, बुढापा तथा उपसर्गादिके उपस्थित हो जानेपर धर्मकी रक्षा ' शरीर छोडनेके लिये समाधि-मरण इच्छुक श्रावक या मुनि भक्तप्रत्याख्यान करे तथा अपने परिपाकसे आयुके स्वयं क्षय होनेके कारण शरीरके छटनेके समयमें भी भक्तप्रत्याख्यान करे अर्थात् आहारपानीका त्याग करे तथा शब्दसे घोरोपसर्गादिके आनेपर भी अनशन करे। इस प्रकारसे जो शास्त्रोक्त शरीरका त्यजन, शरीरका च्यवन और च्यावनके भेदसे भक्तप्रत्याख्यानमरण तीन प्रकारका जानना चाहिये ॥२०॥

समाधिमरणके लिये शरीरके संस्कार विशेषकी विधिको बताते हैं-

अन्नैः पुष्टो मलैर्दुष्टो देहो नान्ते समाधये ।
तत्कर्श्यो विधिना साधोः शोध्यश्चायं तदीप्सया ॥२१॥

अन्वयार्थ-(अन्नैः) अन्नके द्वारा (पुष्टः) पुष्ट (मलैः) विकृत वात, पित्त, कफादिसे (दुष्टः) दुष्ट (देहः) शरीर (अन्ते) मरणकालमें (समाधये) समाधिके लिये सहकारी (न) नहीं होता है तब (तत्) वह शरीर (तदीप्सया) समाधिमरणकी इच्छासे (साधोः) साधुके द्वारा (विधिना) सल्लेखना विधिसे (कर्श्यः) कृश करने योग्य है (च) और (अयं) यह देह (शोध्यः) वस्ति-कर्मादिके द्वारा संशोधन करने योग्य है ॥२१॥

भावार्थ-अन्नसे पुष्ट और वात, पित्त कफादिसे व्याप्त शरीर समाधिमरणके समय उपयोगी नहीं होता है। इसलिये समाधि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरणकी इच्छा रखनेवालोंको पहलेसे ही क्रमसे कम शास्त्रोक्त विधिसे काय और कषायोंको कृश करना चाहिये तथा व्याधिके कारण–जठराशयके मलको योग्य विरेचन आदि द्वारा शुद्ध करना चाहिये ।।२१।।

कषायके कृश किये बिना कायका कृश करना निष्फल है इसका समर्थन करते हैं–

सल्लेखनाऽसंलिखतः कषायान्निष्फला तनोः ।
कायोऽजडैर्दण्डयितुं कषायानेव दण्ड्यते ।।२८।।

अन्वयार्थ–(कषायान्) कषायोंको (असंलिखतः) न घटानेवालेके (तनोः) शरीरको (सल्लेखना) कृश करना (निष्फला) निष्फल है। क्योंकि (अजडैः) ज्ञानीजनोंके द्वारा (कषायान्) कषायोंका (दण्डयितुं) निग्रह करनेके लिये ही (कायः) शरीर (दण्ड्यते) कृश किया जाता है ।।२२।।

भावार्थ–ज्ञानीजन कामक्रोधादि अंतरंग शत्रुस्वरूप कषायोंको कृश करनेके लिये ही उपवासादिके द्वारा शरीरको सुखाते हैं, रस, रक्तादि धातुओंका नाश करनेके लिये नहीं। अतः क्रोधादिकका नाश न करके केवल गात्रमात्रका शोषण करते हैं, उनका उपवासादिके द्वारा शरीरका कृश करना व्यर्थ है।

आहारके द्वारा मदोन्मत्त मनवालोंके कषाय दुर्जय है ऐसा बताकर उन कषायोंको भेदज्ञानके द्वारा जीतना चाहिये ऐसा कहते हैं—

अन्धो मदान्धैः प्रायेण कषायाः सन्ति दुर्जयाः ।
ये तु स्वाङ्गान्तरज्ञानात्तान् जयन्ति जयन्ति ते ।।२३।।

अन्वयार्थ–(प्रायेण) प्रायः करके (अन्धोमदान्धैः) आहारके मदसे अन्धे हुये पुरुषोंके द्वारा (कषायाः) कषाये (दुर्जयः) दुर्जय (सन्ति) होती हैं। (तु) परन्तु (ये) जो भव्य (तान्) उन कषायोंको (स्वांगान्तरज्ञानात्) स्व और परके भेदविज्ञानसे अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा और शरीरके भेदज्ञानके बलसे (जयंति) जीतते है (ते) वे मानव ही (जयन्ति) सर्वोत्कृष्ट कहलाते हैं ॥२३॥

भावार्थ–प्रायः करके अन्नके मदसे विवेकशून्य हुये मनुष्योंके द्वारा कषायोंको जीतना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु जो भव्यात्मा स्वपरके भेदज्ञानके द्वारा दुर्जेय कषायोंको भी जीतते हैं वे इस जगतमें धन्य है, प्रशंसाके पात्र हैं। मैं चैतन्यस्वरूप हूं, शरीर पौद्गलिक है नामसे तथा जातिसे वा स्वरूपसे मेरेसे सर्वथा भिन्न है, किसी कालमें भी मेरा नहीं हो सकता, इस प्रकारके श्रद्धानको ही स्वपर भेदविज्ञान कहते हैं। कषायोंको जीतनेका यही एक उपाय है ॥२३॥

इस प्रकार शरीर और आहारके त्यागकी विधि बताकर इष्ट पदार्थके त्याग करनेके लिये क्षपकको प्रेरित करते हैं–

गहनं न तनोऽहानं पुंसः किन्त्वत्र संयमः।
योगानुवृत्तेर्व्यावर्त्य तदात्माऽऽत्मनि युज्यताम् ॥२४॥

अन्वयार्थ–(पुंसः) मानवके लिये (तनोः) शरीरका (हानं) छोडना (गहनं) कठिन (न) नहीं है। (किन्तु) परन्तु (अत्र) इस शरीरके त्यागमें (संयमः) संयम धारण करना (गहनः) कठिन है। (तत्) इसलिये (आत्मा) अपनी आत्माको (योगानुवृत्तेः) मन, वचन और कायके व्यापारसे (व्यावर्त्य) अलग करके (आत्मनि) अपनी आत्मामें (युज्यतां) लीन करना चाहिये ॥२४॥

भावार्थ– मानवके लिये शरीरका त्याग करना कठिन नहीं है। क्योंकि शरीरका त्याग तो अपने पतिके वियोगमें क्रोधमें आकर स्त्रियां भी कर देती है। किन्तु शरीरके त्यागके समयमें संयमयुक्त परिणाम रहना कठिन है। इसलिये क्षपकको इन्द्रियोंके व्यापारके तरफ अनुसरणरूप अपनी मन वचन कायकी प्रवृत्ति हटाकर अपनी आत्माको अपनी आत्मामें लीन करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक अथवा मुनि दोनोंको ही समाधिमरणसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है, यह बताते हैं–

श्रावकः श्रमणो वान्ते कृत्वा योग्यां स्थिराशयः ।
शुद्धस्वात्मरतः प्राणान् मुक्त्वा स्यादुदितोदितः ॥२५॥

अन्वयार्थ– (श्रावकः) श्रावक (वा) अथवा (श्रमणः) मुनि ये दोनों ही (अन्ते) मरण समयमें (योग्यां कृत्वा) इसी अध्यायके २९ वे श्लोकमें कही गई विधिके अनुसार परिकर्मको करके (स्थिराशयः) निश्चलचित्त होकर (शुद्धस्वात्मरतः) शुद्धस्वात्मामें लीन होकर (प्राणान्) प्राणोंको (मुक्त्वा) छोडकर (उदितोदितः) वर्द्धमान स्वर्गादि अभ्युदयोंको प्राप्त करके मोक्षका भागी (स्यात्) होता है ॥२५॥

भावार्थ– जो श्रावक अथवा मुनि आगे कहीं जानेवाली विधिके अनुसार परिकर्म करके स्थिरमनसे अपनी शुद्धात्मामें लीन होकर प्राण छोडता है, वह जबतक संसारमें रहता है तबतक देवेन्द्र चक्रवर्ति आदि नानाप्रकारके अभ्युदयोंको भोग कर अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त करता है ।

निर्यापकके बलसे भावितात्मावाले क्षपक के अन्तरायका अभाव होता है इस बातको बताते हैं—

समाधिसाधनचणे गणेशे च गणे च न ।
दुर्दैवेनापि सुकरः प्रत्यूहो भावितात्मनः ॥२६॥

अन्वयार्थ– (गणेशे) निर्यापकाचार्य (च) और (गणे) संघके (समाधिसाधनचणे) समाधिसाधनमें तत्पर रहनेपर (भावितात्मनः) अपनी आत्माकी भावना करनेवालेके (दुर्दैवेन) पूर्वोपार्जित अशुभकर्मके उदयसे (अपि) भी (प्रत्यूहः) विघ्न होना (सुकरः) सरल (न) नहीं है । और की तो बात ही क्या है ॥२६॥

भावार्थ– जिस भावितात्माको सल्लेखनाके सिद्ध करनेकें लियें योग्य निर्यापकाचार्य तथा चतुर्विध संघ सहयोग दे रहे हैं, उसकी योग्य परिचर्या कर रहे हैं, और जो निज आत्मामें लीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, उस क्षपकके सल्लेखना करते समय दूसरोंकी तो बात ही क्या है, किन्तु समाधिसें चलायमान करनेमें समर्थ ऐसा पूर्वोपार्जित दुष्कर्मं का उदय भी समाधिकी सिद्धिमें विघ्न करनेमें समर्थ नहीं है ।

सारांश यह है कि समाधिकी सिद्धिमें अन्तरंग कारण आत्मलीनता तथा बहिरंग कारण निर्यापकाचार्य तथा संघके सहयोगता है । दोनों कारणोंके मिलनेपर कार्यकी सिद्धि अवश्य होती है ॥२६॥

दो श्लोकके द्वारा समाधिमरणके माहात्म्य की स्तुति करते हैं—

प्राग्जन्तुनाऽमुनाऽनन्ताः प्राप्तास्तद्भवमृत्यवः ।
समाधिपुण्यो न परं परमश्चरमक्षणः ॥२७॥

अन्वयार्थ– (अमुना) इस (जन्तुना) प्राणिने (प्राक्) इस भवके पहिले (अनन्ताः) अनन्तानन्त (तद्भवमृत्यवः) तद्भवमरण (प्राप्ताः) प्राप्त किये (परं) परन्तु (समाधिपुण्यः) रत्नत्रयकी एकाग्रतासे पवित्र (परमः) सम्पूर्ण क्षणोंमें श्रेष्ठ (चरमक्षणः) अन्तिम क्षण (न प्राप्तः) नहीं प्राप्त किया ॥२७॥

भावार्थ– मरण दो प्रकारके हैं। आवीचिमरण और तद्भव मरण । प्रति समय जो आयुके निषेक उदयमें आकर नष्ट होते हैं उसको आविचीमरण कहते हैं, तथा एक पर्यायका सर्वथा नाश होकर दूसरे भवकी प्राप्तिको तद्भवमरण कहते हैं। अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमण करते हुए इस जीवने अनंत तद्भवमरण प्राप्त किया, अर्थात् अनन्त मरण किये । परन्तु भवपर्याय के नाशके समयमें अर्थात् अन्त समयमें संसारके कारणको नाश करनेमें समर्थ परमपवित्र रत्नत्रयकी एकाग्रतासे युक्त होकर समाधिमरण कभी भी नहीं किया ॥२७॥

परं शंसन्ति माहात्म्यं सर्वज्ञाश्चरमक्षणे ।
यस्मिन्समाहिता भव्या भञ्जन्ति भवपञ्जरम् ॥२८॥

अन्वयार्थ– (यस्मिन्) जिस (चरमक्षणे) अन्तिम समयमें (समाहिता) समाधिमरणको प्राप्त (भव्याः) भव्य जीव (भवपञ्जरं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार पिंजरको (भञ्जन्ति) नष्ट करते हैं (सर्वज्ञाः) सर्वज्ञ देव उस क्षणके (परं) उत्कृष्ट (माहात्म्यं) माहात्म्यकी (शंसंति) प्रशंसा करते हैं ॥२८॥

भावार्थ–जिस प्रकार शुकादि पक्षीके पिंजर पराधीनताके कारण है, उसी प्रकार संसार जीवोंके पराधीनताका बन्धनका कारण है इसलिये संसारको पिञ्जर की उपमा दी है।

जिस भवके अन्तिम समयमें यह भव्य प्राणि अपने आत्म स्वभावमें लीन होकर सल्लेखना मरण कर संसार बन्धनका नाश करते हैं, उसी क्षणके श्रेष्ठ माहात्म्यकी सर्वज्ञदेव प्रशंसा करते हैं अर्थात् वही क्षण श्लाघनीय है जिस समय समाधिमरण होता है।

समाधिमरणके लिये क्षेत्र विशेषकी स्वीकारताको कहते हैं–

प्रायार्थी जिनजन्मादिस्थानं परमपावनम् ।
आश्रयेत्तदलाभे तु योग्यमर्हद्गृहादिकम् ॥ २९॥

अन्वयार्थ– (प्रायार्थी) समाधिमरणका इच्छुक मानव (परमपावनं) परमपवित्र (जिनजन्मादिस्थानं) जिनेन्द्र भगवानके जन्म निर्वाणादिस्थानका (आश्रयेत्) आश्रय लेवे (तदालाभे) उन जन्मादिस्थानोंका लाभ नहीं मिले (तु) तो (योग्यं) समाधिमरण के योग्य (अर्हद्गृहादिकं) जिनमन्दिर आदिकका (आश्रयेत्) आश्रय लेवे ॥२९॥

भावार्थ– सल्लेखना मरणकी इच्छा करनेवाला मानव परम पवित्र जिनेन्द्र भगवानके जन्मस्थान निष्क्रमण स्थान आदिका आश्रय लेवे। आदिनाथ भगवानका जन्मस्थान अयोध्या, तपःस्थान, सिद्धार्थवन, केवल ज्ञानोत्पत्तिस्थान शकटमुख उद्यान है, और निर्वाणस्थान कैलाशपर्वत है, इसी प्रकार सभी भगवानोंके जन्मादिस्थान आगमानुसार जानना चाहिये। द्रव्यक्षेत्र कालादिकके आश्रयसे परिणामोंकी निर्मलता होती है। इसलिये आरातीय पुरुषोंने इन स्थानोंको समाधिमरणमें उपयोगी माना है। और यदि किसी कारण वशात् इन स्थानोंका लाभ प्राप्त न हो तो अर्थात् क्षपक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँतक नहीं पहुंच सके तो समाधिके योग्य जिनमन्दिर, यत्याश्रम आदिका आश्रय करे ॥२९॥

तीर्थस्थानके प्रति प्रस्थान करनेवाले क्षपक बीचमें मरणको प्राप्त हो जाय तो भी वह आराधक है इस बातको बताते हैं-

प्रस्थितो यदि तीर्थाय म्रियतेऽवान्तरे तदा ।
अस्त्येवाराधको यस्माद्भावना भवनाशिनी ॥३०॥

अन्वयार्थ- (यदि) यदि (तीर्थाय) तीर्थस्थान के लिए (प्रस्थितः) प्रस्थान करनेवाला क्षपक (अवान्तरे) अपने स्थान और तीर्थ स्थानके बीचमें (म्रियते) मरणको प्राप्त हो जाता है (तदा) तो भी वह क्षपक (आराधकः) आराधक (एव) ही (अस्ति) है,(यस्मात्) क्योंकि (भावना) भावना (भवनाशिनी) संसारका नाश करनेवाली होती है ॥३०॥

भावार्थ- यदि समाधिमरणके सद्भावनासे निर्यापक आचार्यकी प्राप्तिके लिए अथवा तीर्थस्थानमें जानेके लिए प्रस्थान करने- एवं प्रस्थान करनेवाले क्षपकका बीचमें मरण हो जाय तो भी वह आराधक ही कहलाता है । क्योंकि उसके समाधिमरण की भावना हो चुकी है और भावना ही भवका नाश करनेवाली है ।

तीर्थस्थानके प्रति गमन करते समय आराधक दूसरोंके अपराधोंको स्वयं क्षमा करे और दूसरेसे क्षमा याचना करे यह उपदेश देते हैं-

रागाद्द्वेषान्ममत्वाद्वा यो विराद्धो विराधकः ।
यश्च तं क्षमयेत्तस्मै क्षाम्येच्च त्रिविधेन सः ॥३१॥

अन्वयार्थ-(सः) वह क्षपक (रागात्) रागसे (द्वेषात्) क्रोधसे (वा) अथवा (ममत्वात्) ममत्वसे (यः) जो (विराद्धः) अपने द्वारा विराधना हुई अर्थात् कोई दुःखित किया गया हो (तं) उसको (त्रिविधेन) मन, वचन, कायसे (क्षमयेत्) क्षमा याचना करे। (च) और (यः) जो (विराधकः) अपने प्रति द्वेष करने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला हो (तं) उसको (त्रिविधेन) मन, वचन, कायसे (क्षाम्येत्) क्षमा करे ॥३१॥

भावार्थ-समाधिमरणके लिये तीर्थस्थानको प्रस्थान करनेवाला क्षपक रागद्वेष और मोहके वशीभूत होकर जिसको दुःख दिया हो उससे मन, वचन, कायकी शुद्धिपूर्वक क्षमायाचना करे। तथा जिसने अपनेको दुःख दिया हो अर्थात् जो अपना शत्रु हो उसको भी मन, वचन, कायकी शुद्धिपूर्वक क्षमा करे ॥३१॥

क्षमा करनेका और करानेका फल बताते हैं-

तीर्णो भवार्णवस्तैर्ये क्षाम्यन्ति क्षमयन्ति च।
क्षाम्यन्ति न क्षमयतां ये ते दीर्घा जवञ्जवाः ॥३२॥

अन्वयार्थ-(ये) जो (क्षाम्यन्ति) क्षमा करते है (च) और (क्षमयन्ति) क्षमा कराते है (तैः) उन्होंके द्वारा ही (भवार्णवः) संसार समुद्र (तीर्णः) तिरा गया अर्थात् पार किया गया और (ये) जो (क्षमयतां) क्षमा मागनेवालेको (न क्षाम्यन्ति) क्षमा नहीं करते हैं (ते) वे (दीर्घा जवञ्जवाः) दीर्घ संसारी हैं ॥३२॥

भावार्थ-जो पुरुष अपने विराधकोंको क्षमा करते हैं, और दूसरोंसे अपने अपराधोंकी क्षमा याचना करते हैं वे ही भव्य मानव संसार समुद्रसे पार हो जाते हैं और परन्तु जो क्षमा मांगनेपर भी क्षमा नहीं करते हैं, अपने कालुष्यभावको नहीं छोडते हैं वे दीर्घ संसारी होते हैं ॥३२॥

क्षपकके आलोचनाकी विधि बताते हैं-

योग्यायां वसतौ काले स्वागः सर्वं स सूरये।
निवेद्य शोधितस्तेन निःशल्यो विहरेत्पथि ॥३३॥

अन्वयार्थ-(सः) वह क्षपक (योग्यायां) योग्य (वसतौ) वसतिमें तथा (काले) योग्य कालमें (सूरये) निर्यापकाचार्यके प्रति (सर्वं) सम्पूर्ण (स्वागः) अपने पापोंको (निवेद्य) निवेदन करके (तेन) निर्यापकाचार्यके द्वारा कही गई (शोधितः) प्रायश्चित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिसे शुद्ध होकर (निःशल्य) शल्यरहित होता हुवा (पथि) रत्नत्रयरूप मार्गमें (विहरेत्) विहार करे अर्थात् प्रवृत्ति करे ॥३३॥

भावार्थ– समाधिमरणका इच्छुक मनुष्य योग्य आलोचनोचित स्थान और कालमें अपने द्वारा किये हुये सम्पूर्ण पापोंको तथा व्रतोंमें लगे हुये अतिचारोंको निवेदन करके और गुरुके द्वारा दिये हुये प्रायश्चित्त प्रतिक्रमादिविधिके द्वारा अपने व्रतोंकी शुद्धि करे। तथा माया, मिथ्यात्व, और निदान इन तीनों शल्योंको छोडकर निःशल्य होकर अपने रत्नत्रयकी आराधनारूप मार्गमें प्रवृत्ति करे।

योग्यस्थान– जिनजन्मकल्याण आदिका स्थान अथवा जिनमन्दिर मुनियोंके रहनेका स्थान वा एकान्त स्थान, जहां क्षपक और निर्यापकाचार्य दोनों ही हो, तीसरा कोई न हो।

योग्य काल– सामायिक रात्रि आदिसे विरहितकाल।

आगे संस्तरारोहण विधिको कहते हैं–

विशुद्धिसुधया सिक्तः स यथोक्तं समाधये।
प्रागुदग्वा शिरः कृत्वा स्वस्थः संस्तरमाश्रयेत् ॥३४॥

अन्वयार्थ– (सः) वह क्षपक (विशुद्धिसुधया) विशुद्धिरूपी अमृतसे (सिक्तः) सिंचित होता हुवा (यथोक्तं) आगमानुसार (समाधये) समाधिके लिये (प्राक्) पूर्व (वा) अथवा (उदक्) उत्तरके तरफ (शिरः) मस्तक (कृत्वा) करके (स्वस्थः) अनाकुल होकर (संस्तरं) संस्तरका (आश्रयेत्) आश्रय लेवें ॥३४॥

भावार्थ– सल्लेखना धारण करनेवाला मानव शारीरिक पवित्रता तथा प्रायश्चित्त विधानसे स्वीकार किये ग[ये] परिणामोंकी निर्मलतारूप अमृतके द्वारा सिंचित होकर समाधिके लिये शस्त्रोक्त विधिसे पूर्व अथवा उत्तरकी तरफ मस्तक करके शांतचित्त होता हुवा समाधिके योग्य संस्तर का आरोहण करे ॥३४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्तरारोहणके समय महाव्रतकी याचना करनेंवाले क्षपकके मुनिलिंगका विधान बताते हैं-

त्रिस्थानदोषयुक्तायाप्यापवादिकलिंगिने ।
महाव्रतार्थिने दद्याल्लिगमौत्सर्गिकं तदा ॥३५॥

अन्वयार्थ- (तदा) समाधिमरणके समय निर्यापकाचार्य (त्रिस्थानदोषयुक्ताय) त्रिस्थानदोष युक्त (अपवादलिंगिने) अपवादलिंगिके लिये (अपि) भी (महाव्रतार्थिनें) महाव्रतकी याचना करनेवाले क्षपकके लिए (औत्सर्गिकं) औत्सर्गिक (लिंगं) लिंग (दद्यात्) देवे ॥३५॥

भावार्थ- आचेलक्यादि भेदसे लिंग चार प्रकारका है। सम्पूर्ण बाह्य परिग्रहका त्याग कर नग्नत्व धारण करना औत्सर्गिक लिंग है। वस्त्रसहित ऐल्लक, आर्यिका आदिका लिंग अपवाद लिंग है। बडे अंडकोष दीर्घलिंग चर्मरहित बार बार उत्थान शील लिंग दोषयुक्त कहलाते हैं। ऐसे चिन्हवाला मनुष्य निग्रंथ पदधारी नहीं हो सकता है, इसको त्रिस्थान दोष कहते हैं। यद्यपि राजमार्गकी अपेक्षा इन लिंग सम्बन्धी दोषवाले मानव मुनिदीक्षाके पात्र नहीं हैं। परन्तु यदि ऐसे दोषवाला श्रावक भी समाधिमरणके समय महाव्रतकी याचना करे तो निर्यापकाचार्य उसको मुनिदीक्षा दे सकता है अर्थात् उसको मुनिदीक्षा देवे ॥३५॥

आगे- उत्कृष्ट श्रावक भी उपचार महाव्रतके अयोग्य है ऐसा कहते हैं-

कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतम् ।
अपि भाक्तममूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकाऽर्हति ॥३६॥

अन्वयार्थ- (अपि) अहो आश्चर्य है कि (आर्यः) ग्यारहवी प्रतिमाधारी ऐल्लक (कौपीने) लंगोटीमें (समूर्च्छत्वात्) ममत्व सहित होनेसे (भाक्तं) उपचार (महाव्रतं) महाव्रतके (न अर्हति) योग्य नहीं है परन्तु आर्यिका (साटके) एक साटिका मात्र धारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेपर (अपि) भी (अमूर्च्छत्वात्) ममत्वरहित होनेसे (भाक्तं) उपचार (महाव्रतं) महाव्रतके (अर्हति) योग्य है ॥३६॥

भावार्थ-इस श्लोकमें अपि शब्द दो बार आया है उसमें एक अपि शब्द विस्मयवाचक है। उसका यह अर्थ है कि अहो आश्चर्य है कि ग्यारह प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक होकर भी गुह्य अंगप्रच्छादनके कारण खंडवस्त्रमें यह मेरा है इस प्रकारका ममत्व होनेसे उपचार महाव्रतका धारी नहीं हो सकता है। क्योंकि वह लंगोटीमात्रका त्याग करनेके लिये समर्थ होकर भी त्याग नहीं करता है। परन्तु आर्यिका १६ हाथ प्रमाण साटिका धारण करनेपर भी उपचार महाव्रतधारिणी कहलाती है। क्योंकि वह साटिकाका त्याग करनेके लिये समर्थ नहीं है। यह विशेष कथन यहांपर केवल प्रसंगवश लिखा गया है ॥३६॥

आगे प्रशस्तलिंगवाला होकर भी कौनसा गृहस्थ किस समय दीक्षाका अधिकारी नहीं है यह बताते हैं-

ह्रीमान्महर्द्धिको यो वा मिथ्यात्वप्रायबान्धवः।
सोऽविविक्ते पदे नाग्न्यं शस्तलिंगोऽपि नार्हति ॥३७॥

अन्वयार्थ-(यः) जो मानव (शस्तलिंगः) अण्डकोशादि लिंगसम्बन्धी दोषोंसे रहित होता हुवा (अपि) भी (ह्रीमान्) लज्जाशील है (महर्द्धिकः) बडी सम्पत्तिवाला है (वा) तथा (मिथ्यात्वप्रायबान्धवः) जिसके बान्धव बहुभाग मिथ्यादृष्टि हैं, (सः) वह (अविविक्ते) बहुजनोंसे व्याप्त (पदे) स्थानमें (नाग्न्यं) दैगम्बरी दीक्षाके लिये (नार्हति) योग्य नहीं है ॥३७॥

भावार्थ-जो श्रावक ऊपर कहे गये अण्डकोषादि लिंगके दोषसे रहित है, दीक्षा योग्य लिंगवाला है, फिर भी मैं श्रीमन्त हूं, नग्न कैसे रह सकता हूं? इस प्रकारकी लज्जासे युक्त हो तथा जिसके बान्धव प्रायःकर मिथ्यात्वसे ग्रसित हों वा मिथ्याधर्मसे युक्त होनेसे उनके द्वारा विघ्न आना संभव है ऐसा जिनको भय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो, ऐसा मानव जनसमुदायके बीच नग्नत्व अवस्थाकें धारण करने योग्य नहीं है। परन्तु एकान्तस्थानमें नग्न हो सकता है ॥३७॥

आगे-स्त्रियां भी समाधिमरणके समय नग्नत्व लिंग धारण कर सकती है यह बात बताते हैं-

यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिङ्गमुक्तं जिनैः स्त्रियाः।
पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोपधेः ॥३८॥

अन्वयार्थ-(जिनैः) जिनेन्द्र भगवानने (यत्) जो (औत्सर्गिकं) औत्सर्गिक (वा) अथवा (अन्यत्) आपवादिक आदि (लिंगं) लिंग (उक्तं) कहे हैं (तत्) वह सब लिंग (मृत्युकाले) मरणके अन्तसमयमें (स्वल्पीकृतोपधेः) स्वल्प किया है परिग्रहको जिन्होंने ऐसी (स्त्रियाः) स्त्रियोंके भी (पुंवत्) पुरुषोंके समान (इष्यते) माना गया है-अर्थात् मरणसमयमें स्त्रिया भी नग्न हो सकती है ॥३८॥

भावार्थ-जिनेन्द्र भगवानने जो औत्सर्गिक आदि लिंग कहे हैं उसमें नग्नत्व धारण करना स्त्रियोंके लिये निषिद्ध है। परन्तु समाधिमरणके समय एक वस्त्रको धारण करनेवाली आर्यिका एकान्त स्थानमे पुरुषोंके समान नग्न दैगम्बर दीक्षा धारण कर सकती हैं, ऐसा श्रुतको जाननेवाले आचार्योंने कहा है।

सारांश-समाधिमरणके अन्तसमयमें आर्यिका एकान्त स्थानमें नग्न हो सकती है।

औत्सर्गिक लिंग धारण करनेवाले पुरुषके भी मृत्यु कालमें ही औत्सर्गिक लिंग है, पहिले अपवाद लिंग है।

आगे-मुमुक्षुको लिंगके ग्रहणका त्याग करके स्वद्रव्यमें लीन होना चाहिये ऐसा कहते हैं-

देह एव भवो जन्तोर्यल्लिगं च तदाश्रितम्।
जातिवत्तद्ग्रहं तत्र त्यक्त्वा स्वात्मग्रहं विशेत् ॥३९॥

अन्वयार्थ-(जन्तोः) प्राणियोंके (देहः) शरीर (एव) ही (भवः) संसार है (यल्लिगं) जो लिंग है वह भी (जातिवत्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण आदि जातिके समान (तदाश्रितं) देहाश्रित है। इसलिये (तत्र) उस लिंगमें (तद्ग्रहं) उस लिंगके मोहको (त्यक्त्वा) छोडकर (स्वात्मग्रहं) स्वशुद्धचिद्रूपमें (विशेत्) प्रवेश करे ॥३९॥

भावार्थ–संसारी प्राणियोंके शरीर ही वास्तवमें संसार है, पुत्र पौत्रादिक संसार नहीं है और मुनिपद आदि लिंग जातिके समान शरीराश्रित हैं। जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रियादि जाति शरीराश्रित होनेसे उनके अभिनिवेशका त्याग कहा है, उसी प्रकार में मुनि हूं आदि लिंगके अभिनिवेशका त्याग कर उस क्षपकको अपने स्वात्मस्वरूपमें लीन होना चाहिये।

आगे–परद्रव्यका अभिनिवेश ही बंधकारण है इसलिये उसके प्रतिपक्षी भावनाका उपदेश देते हैं–

परद्रव्यग्रहेणैव यद्बद्धोऽनादिचेतनः।
तत्स्वद्रव्यग्रहेणैव मोक्ष्यतेऽतस्तमावहेत् ॥४०॥

अन्वयार्थ–(यत्) जिस कारणसे (चेतनः) आत्मा (परद्रव्यग्रहेण) परद्रव्यके ग्रहणके कारणसे (एव) ही (अनादि) अनादि कालसे (बद्धः) बन्धा हुवा है (तत्) इस कारण (स्वद्रव्यग्रहेण) स्वद्रव्यके ग्रहणसे (एव) ही (मोक्ष्यते) छूट जाता है (अतः) इसलिये (तं) उस स्वद्रव्यको (आवहेत्) ग्रहण करे।

भावार्थ–अनादिकालसे यह आत्मा केवल परद्रव्यकी आसक्तिसे ही ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बन्धा हुवा है। अर्थात् कर्मोंके संयोगसे पराधीनताको प्राप्त हो रहा है और वह चैतन्यात्मा परद्रव्यका प्रतिपक्षीभूत स्वद्रव्यकी आसक्तिसे अनादि बन्धनसे छूटकर स्वाधीनभूत मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है। इसलिये मुमुक्षुको परद्रव्यकी आसक्तिको छोडकर अपने शुद्ध चिदानंदस्वरूप आत्माकी परिणतिके अनुभवमें ही अपना उपयोग लगाना चाहिये ॥४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे-शुद्धि और विवेककी प्राप्तिपूर्वक जो समाधिमरण होता है उसकी प्रशंसा करते हैं-

अलब्धपूर्वं किं तेन न लब्धं येन जीवितम् ।
त्यक्तं समाधिना शुद्धिं विवेकं चाप्य पञ्चधा ॥४१॥

अन्वयार्थ-(येन) जिसने (पंचधा) पांच प्रकारकी शुद्धि (च) तथा (विवेकं) पांच प्रकारके विवेकको (आप्य) प्राप्त करके (समाधिना) समाधिपूर्वक (जीवितं) जीवनको (त्यक्तं) छोडा (तेन) उस महाभव्यने (अलब्धपूर्वं) आजतक कभी नहीं प्राप्त हुई (किं) क्या (न) नही (लब्धं) प्राप्त किया अर्थात् सब कुछ प्राप्त किया ॥४१॥

भावार्थ-जिस महाभव्य क्षपकनें आगे कही जानेवाली पांच प्रकारकी शुद्धि तथा पांच प्रकारके विवेकपूर्वक समाधिमरणसे प्राण छोडा है उस महाभव्यने अनादिकालसे नहीं प्राप्त होनेसे अलब्ध ऐसे सम्यक्त्वके सहचारी किन महाभ्युदयोंको प्राप्त नहीं किया अर्थात् जिसने समाधिमरण किया उसने सम्पूर्णाभ्युदय प्राप्त कर लिया ।

बहिरंग और अन्तरंगविषयके भेदसे पांच प्रकारकी शुद्धि कहते हैं ।

शय्योपध्यालोचनान्नवैयावृत्येषु पञ्चधा ।
शुद्धिः स्यात् दृष्टिधीवृत्तविनयावश्यकेषु वा ॥४२॥

अन्वयार्थ-(शय्योपध्यालोचनान्नवैयावृत्येषु) शय्या, उपधि, आलोचना, आहार और वैयावृत्तिमें (शुद्धिः) बहिरंगशुद्धि (पंचधा) पांच प्रकारकी (स्यात्) है (वा) अथवा (दृष्टिधीवृत्तिविनयावश्यकेषु) दर्शन, ज्ञान, चारित्र, विनय और सामायिकादि षट् आवश्यकके विषयमें (शुद्धिः) अंतरंगशुद्धि है ॥४२॥

भावार्थ-वसति और संस्तरको शय्या कहते हैं । संयमके साधन पिच्छिका, कमण्डलु शास्त्रादिको उपधि कहते हैं । निष्कपट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर गुरुके लिये अपने दोषोंको निवेदन करना आलोचना है। चार प्रकारके आहारको अन्न कहते हैं।

परिचारकोंके द्वारा पैर मर्दनादि किया जाता है उसको वैयावृत्य कहते हैं। इन पांचो क्रियाओंमें प्राणि संयम और इन्द्रिय संयम रूपसे प्रवृत्ति होना पंचप्रकारकी बाह्यशुद्धि कहलाती है।

सम्यग्दर्शन, ज्ञानचारित्र, विनय और सामायिकादि षडाव्श्यकोंके आचरणोंमें निरतिचार प्रवृत्ति करना पांच प्रकारकी अन्तरंग शुद्धि कहलाती है।

आगे- शुद्धिके समान पांच प्रकारके विवेकका दो आचार्योंके मतसे विवेचन करते हैं-

विवेकोऽक्षकषायाङ्गभक्तोपधिषु पञ्चधा।
स्याच्छय्योपधिकायान्नवैयावृत्यकरेषु वा ॥४३॥

अन्वयार्थ- (अक्षकषायाङ्गभक्तोपधिषु) इन्द्रिय विषय कषाय, शरीर, आहार और संयमोपकरणमें (विवेकः) अपनी आत्माका पृथक् चितवन करना (वा) अथवा (शय्योपधि कायान्न-वैयावृत्यकरेषु) शय्या कमण्डलु आदि उपकरण आहार वैयावृत्य कारादिसे (विवेकः) अपनेको पृथक् चितवन करना (पंचधा) पांच प्रकारका (विवेकः) विवेक (स्यात्) कहलाता है ॥४३॥

भावार्थ- संक्षेपसे भाव और द्रव्यकी अपेक्षा विवेक दो प्रकारका है।

इन्द्रियोंके विषयसे तथा क्रोधादि कषायोंसे अपनी आत्माका पृथक् चितवन करना अर्थात् इन्द्रियादि विषय मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा विचार करना भाव विवेक कहलाता है। शरीर, आहार तथा संयोमपकरणसे अपनी आत्माका पृथक् चितवन करना तीन प्रकारका द्रव्य विवेक है। किसी आचार्योंके मतानुसार, शय्या, उपकरण, शरीर, अन्न और वैयावृत्यादिकारकोंसे अपनी आत्माका पृथक् चितवन करना पंचप्रकारका विवेक कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे– निश्चेलके तथा सचेलके महाव्रतकी भावना विशेषको कहते हैं–

निर्यापके समर्प्य स्वं भक्त्यारोप्य महाव्रतम् ।
निश्चेलो भावयेदन्यस्त्वनारोपितमेव तत् ॥४४॥

अन्वयार्थ– (निश्चेलः) मुनि (निर्यापके) नियापकाचार्यमें (स्वं) अपने आपको (समर्प्य) समर्पण करके अर्थात् उनके आधीन करके (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (महाव्रतं) महाव्रतका (भावयेत्) बार बार मनमें विचार करे तथा (अन्यः) सग्रन्थ श्रावक (अनारोपितं) बिना महाव्रत धारण किये हुये (तत्) उन महाव्रतोंकी (भावयेत्) भावना भावे ।

भावार्थ– सम्पूर्ण परिग्रहका त्यागी महामुनि अपने आपको आनन्दपूर्वक ३६ सद्गुणोंसे युक्त क्षपकको संसारसे निकालनेमें तत्पर धर्माचार्यके आधीन करके तथा हिंसादिका त्यागरूप पंच महाव्रत पंचसमिति तीन गुप्तिके भेदसे तेरह प्रकारके चारित्रको अपनी आत्मामें व्यवस्थापित करके परमानंदसे उन व्रतोंकी बार बार अपने मनमें भावना भावे । तथा जिसने महाव्रत धारण नहीं किया है अथवा महाव्रत धारण करनेके योग्य नहीं है ऐसा सचेलक श्रावक परमभक्तिसे महाव्रतोंकी भावना करते हुए समाधिमरणमें दत्तचित्त रहे ॥४४॥

आगे– पांच अतिचाररहित सल्लेखना विधिसे क्षपक प्रवृत्ति करे ऐसा उपदेश देते हैं—

जीवितमरणाशंसे सुहृदनुरागं सुखानुबन्धमजन् ।
स निदानं संस्तरगश्चरेच्च सल्लेखनाविधिना ॥४५॥

अन्वयार्थ-(संस्तरगः) संस्तरमें स्थित क्षपक (जीवितमरणाशंसे) जीवन और मरणकी इच्छा (सुहृदानुरागं) मित्रानुराग (सुखानुबंधं) सुखानुबन्ध (च) और (निदानं) निदानको (अजन्) छोडता हुवा (सल्लेखनाविधिना) सल्लेखनाविधिसे (चरेत्) आचरण करे अर्थात् समाधिमरण की भावना भावे ।

भावार्थ– महाव्रती मुनि उत्कृष्ट श्रावक दोनों ही क्षपक समाधिमरणके पांच अतिचार रहित होकर आचरण करे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधिमरणके पांच अतिचार

जीवितकांक्षा—यह शरीर जलके बुदबुदेके समान अनित्य है, मलकी खान है, अवश्य छोडने योग्य है, इसी प्रकारकी भावना न करके प्रत्युत यह शरीर स्थिर कैसे रहे, किसी उपायसे इसका अवस्थान हो सकता है ऐसा शरीरमें उपादेय बुद्धि होना जीवितकांक्षा है अथवा अपनी पूजा विशेष देखकर, अपनी सेवा करनेवाले बहुतसे परिचारकोंको देखकर, सम्पूर्ण लोगोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर क्षपक ऐसा विचार करता है कि चार प्रकारके आहारका त्याग करनेवाला थोडे दिन और जीवित रहूँ तो अच्छा है, क्योंकि मेरे इस उद्देशसे विभूति बढती है। इस प्रकारकी कांक्षाको जीवितकांक्षा कहते हैं।

मरणाशंसा—रोगादिकके उपद्रवसे प्राप्त हुवा है जीवनमें संक्लेश परिणाम जिसके ऐसे क्षपकके मरणके प्रति चित्तकी प्रवृत्ति होना मरणाशंसा है अथवा पूजा न होनेसे वा अपनी प्रशंसा न होनेसे, मेरा शीघ्र मरण हो जाय तो अच्छा है एसी क्षपककी भावना होना मरणाशंसा है।

सुहृदानुराग—बाल्यावस्थामें अपने साथ खेलनेवाले, आपत्तिमें अपना साथ देनेवाले, उत्सवादि पुण्यकार्योमें सामिल होनेवाले मित्रोंका अनुस्मरण होना, अथवा बाल्यादि अवस्थामें सहक्रीडित मित्रोंको याद करना सुहृदनुराग है।

सुखानुबंध—मैंने पूर्वमें ऐसे भोग भोगे थे, ऐसा भोजन किया, ऐसी मेरी शय्या थी, ऐसी मैं क्रीडा करता था, इस प्रकार पूर्वभुक्त सुखोंका स्मरण करना सुखानुबंध वा स्मृतिसमन्वाहार है।

निदान—इस कठिन तपके प्रभावसे मुझको जन्मान्तरमें इन्द्रपद, चक्रवर्तीपद, धरणेन्द्र पदादिकी प्राप्ति होवे इस प्रकारकी अभ्युदयोंकी कांक्षा करना निदान है। यह समाधिमरणके पांच अतिचार हैं। इन पांच अतिचारोंको त्याग कर यह शरीर जन्म, जरा, मृत्यु आदिसे व्याप्त है ऐसी भावना करें इस प्रकारकी सल्ले-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खनाकी विधि कही गई है। उसके अनुसार समाधिकी भावनाको भाते हुये क्षपक अपने व्रतोंमें लीन रहे ॥४५॥

इस प्रकार संस्तरपर आरूढ क्षपकके लिए निर्यापकाचार्य ऐसी व्यवस्था करके पुनः यह करे यह बताते हैं—

यतीन्नियुज्य तत्कृत्ये यथार्हं गुणवत्तमान् ।
सूरिस्तं भूरि संस्कुर्यात् स ह्यार्याणां महाक्रतुः ॥४६॥

अन्वयार्थ-(सूरिः) निर्यापकाचार्य (तत्कृत्ये) उस क्षपककी सेवा करनेके लियें (यथार्हं) यथायोग्य (गुणवत्तमान्) गुणशाली (यतीन्) मुनियोंको (नियुज्य) नियुक्त करके (भूरिः) बार बार (तं) उस क्षपकको (संस्कुर्यात्) रत्नत्रयके संस्कारसे युक्त करे (हि) क्योंकि (सः) वह समाधिमरणविधि (आर्याणां) मुनियोंकें लिये (महाक्रतुः) महायज्ञ है।

भावार्थ-नियापकाचार्य क्षपककी पैर दबाना, तैल लगानादिक शारीरिक क्रियाके लिये विकथाओंका निवारण तथा संवेगनी निर्वेदनी कथाओंके कहनेके लिये और आहारपान शय्याका शोधन, मलमूत्रादिक कराने आदि क्रियाओंमें मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयादि गुणोंमें उत्कृष्ट ऐसे यतियोंको नियुक्त करके स्वयं आचार्य क्षपकको बार बार रत्नत्रयसे संस्कारित करे अर्थात् रत्नत्रयका बार बार उपदेश देवे। क्योंकि क्षपकके समाधिसरणको विधि ही मुनियोंके लिये परम यज्ञ है।

आगे-क्षपकको आहारविशेष दिखाकर भोजनमें आसक्तिका निषेध करनेके लिये कहते हैं-

योग्यं विचित्रमाहारं प्रकाश्येष्टं तमाशयेत् ।
तत्रासजन्तमज्ञानाज्ज्ञानाख्यानैर्निवर्तयेत् ॥४७॥

अन्वयार्थ-(योग्यं) मुनिके ग्रहण करने योग्य (विचित्रं) नानाप्रकारके (इष्टं) क्षपकके इच्छित (आहारं) आहार (क्षपकं) क्षपकको (प्रकाश्य) दिखाकर (आशयेत्) भोजन करावे तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अज्ञानात्) अज्ञानसे (तत्र) उस भोजनमें (आसजन्तं) आसक्त हुये क्षपकको (ज्ञानाख्यानैः) बोधको देनेवाले प्रसिद्ध तत्त्वोपदेशके द्वारा (निवर्तयेत्) आसक्तिको दूर करे ॥४७॥

भावार्थ- निर्यापकाचार्य, मुनियोंके खाने योग्य प्रासुक क्षपकके इच्छित नाना प्रकारके सुस्वादु आहार दिखाकर क्षपकको आहार करावे। कोई क्षपक उस आहारको देखकर अहो! संसार समुद्रके तीरको प्राप्त मुझे इस सुस्वादु आहारसे क्या प्रयोजन है? ऐसे विचारसे वैराग्ययुक्त संवेगमें तत्पर होता है। कोई क्षपक थोडासा उस आहारका स्वाद लेकर विरक्त होता है और कोई सम्पूर्ण पदार्थ खाकरके विरक्त होता है, और कोई उस आहारका स्वाद लेकर उसमें अत्यन्त लीन हो जाता है। यह सब चारित्र मोहनीय कर्मके विलासकी विचित्रता है। जो क्षपक यदि अज्ञानसे उन सुस्वादु पदार्थोंमें अत्यासक्त हो जाय तो सदुपदेशामृतके द्वारा निर्यापकाचार्य उसकी आसक्तिको दूर करे ॥४७॥

आगे- नौ श्लोकोंके द्वारा आहारमें होनेवाली आसक्तिका निषेधपूर्वक उसके परिहारका क्रम बताते हैं-

भो निर्जिताक्ष विज्ञातपरमार्थ महाशयः।
किमद्य प्रतिभान्तीमे पुद्गलाः स्वहितास्तव ॥४८॥

अन्वयार्थ-(भो) हे (निर्जिताक्ष) जितेन्द्रिय (विज्ञातपरमार्थ) परमार्थको जाननेवाले (महाशयः) हे महायशस्वी (किं) क्या (इमे) यह (पुद्गलाः) पुद्गल (अद्य) इस समय (तव) तेरे लिये (स्वहिताः) आत्महित करनेवाले (प्रतिभ्रांति) प्रति भासित होते हैं।

भावार्थ- जब क्षपक आहारमें अत्यासक्त हो जाय तब निर्यापकाचार्य उसको सम्बोधन करे कि जितेन्द्रिय! अन्य साधारण पुरुषोंसे नहीं जानने योग्य तत्त्वोंका निश्चय करनेवाले दशोदिशाओंमें कीर्ति फैल रही जिसकी ऐसे हे महायशस्वी क्षपकराज! क्या इस समय यह पुद्गल तुम्हारे आत्मकल्याणकारी हैं ऐसा प्रश्न स्वरूप सम्बोधन करे ॥४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं कोपि पुद्गलः सोस्ति यो भुक्त्वा नोज्झितस्त्वया ।
न चैष मूर्तोमूर्तस्ते कथमप्युपयुज्यते ॥४९॥

अन्वयार्थ– (किं) क्या (कः) कोई (अपि) भी (सः) वह (पुद्गलः) पुद्गल (अस्ति) है (यः) जो (त्वया) तूने (भुक्त्वा) भोगकर (न) नहीं (उज्झितः) छोडा, (च) और (एषः) यह (मूर्त्तः) मूर्त्तिक पुद्गल (अमूर्त्तः) अमूर्त्तीक (ते) तेरे (कथं) किसी प्रकारसे (अपि) भी (न उपयुज्यते) उपकारी नहीं हो सकता है ।

भावार्थ– हे क्षपकराज! क्या अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमण करते हुये तूने इन पुद्गलोंको इन्द्रियोंके द्वारा भोग कर नहीं छोडा । क्या ऐसा कोई भी पुद्गल है जिसको तूने नहीं भोगा । हे जितेन्द्रिय! क्या यह मूर्त्तीक पदार्थ अमूर्तिक तेरे किसी प्रकारसे उपकारी हो सकते हैं । जिस प्रकार अमूर्तिक आकाशके यह पुद्गल उपकारी नहीं है, उसी प्रकार तेरे भी उपकारी नहीं है । केवल शरीरके उपकारी है ॥४९॥

केवलं करणैरेनमलं ह्यानुभवन्भवान् ।
स्वभावमेवेष्टमिदं भुञ्जेहमिति मन्यते ॥५०॥

अन्वयार्थ– (करणैः) इन्द्रियोंके द्वारा (एनं) इन पुद्गलोंका (अलं) विषय करके (हि) निश्चयसे (स्वभावं) अपने स्वभावका (एव) ही (अनुभवन्) अनुभव करनेवाले (भवान्) आप (इदं) इस (इष्टं) इष्ट पदार्थको (अहं) मैं (भुञ्जे) भोगता हूँ (इति) यह केवलं (केवल) (मन्यते) मान रहे हैं ॥५०॥

भावार्थ– हे उपासक ! मैं इन इष्ट पदार्थोंका उपभोग कर रहा हूं ऐसी जो तेरी भावना है–वह केवल कल्पना है । क्योंकि वास्तवमें पुरोवर्ति पुद्गलोंका विषय करके विषयी जो तेरा स्वभाव है उसीका ही तू भोगता है । और प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होनेवाले पुद्गलोंका उपभोग करता हूं यह तू मानता है । अध्यात्मशास्त्रमें संकल्प विकल्पोंका ही भोगना कहा है पौद्गलिक पदार्थोंका नहीं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदिदानीमिमां भ्रान्तिमभ्याजोन्मिषतीं हृदि ।
स एष समयो यत्र जाग्रति स्वहिते बुधाः ॥५१॥

अन्वयार्थं- (तत्) इसलिये (इदानीं) इस समय (हृदि) हृदयमें (उन्मिषतीं) स्फुरायमान होनेवाली (इमां) इस भ्रान्ति अभोग्यमें भोग बुद्धिको (अभ्याज) निवारण करो (सः) वह (एषः) यह (समयः) काल है (यत्र) जिसमें (बुधाः) ज्ञानवन्तलोग (स्वहिते) अपने आत्म हितमें (जाग्रति) सावधान रहते हैं ॥५१॥

भावार्थ-हे क्षपकराज! इसलिये तुम इस समय अपने हृदयमें स्फुरायमान होनेवाली इस अभोग्य पदार्थोंमें भोग्यकी बुद्धिको छोडो । क्योंकि वह यह समय है जिसमें विद्वान् लोग अपने आत्म हितमें सावधान रहते हैं ॥५१॥

अन्योऽहं पुद्‌गलश्चान्य इत्येकान्तेन चिन्तय ।
यनापास्य परद्रव्यग्रहवेशं स्वमाविशेः ॥५२॥

अन्वयार्थं- (अहं) मैं (अन्यः) पुद्‌गलसे भिन्न हूं (च) और (पुद्‌गलः) पुद्‌गल (अन्यः) मेरेसे भिन्न है (इति) इस प्रकार (एकान्तेन) एकान्तरूपसे (चिंतय) चिन्तवन कर (येन) जिससे (परद्रव्यग्रहवेशं) परद्रव्यके ग्रहणके उपयोगको (अपास्य) छोडकर तुम (स्वं) अपने आपमें (आविशेः) उपयुक्त होवो ।

भावार्थ- हे भव्यात्मा ! पुद्‌गल मेरेसे सर्वथा भिन्न है और मैं पुद्‌गलसे सर्वथा भिन्न हूँ । इस प्रकारका निश्चयपूर्वक चिंतवन करे । जिससे कि तू परद्रव्यकी आसक्तिको छोडकर स्वद्रव्यके उपयोगमें लीन हो ॥५२॥

क्वापि चेत्पुद्‌गले सक्तो म्रियेथास्तद् ध्रुवं चरेः ।
तं कृमीभूय सुस्वादुचिर्भटासक्तभिक्षुवत् ॥५३॥

अन्वयार्थं- (चेत्) हे क्षपक ! यदि तू (क्वापि) किसी भी (पुद्‌गले) पुद्‌गलमें (सक्तः) आसक्त होकर (म्रियेथाः) मरेगा तो (सुस्वादुचिर्भटासक्तभिक्षुवत्) स्वादिष्ट खरबूजमें आसक्त भिक्षुकके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान (तं) जिस पदार्थमें आसक्ति है, उसी पदार्थमें (कृमीभूय) क्षुद्र जन्तु होकर (ध्रुवं) निश्चयसे उस पदार्थको (वरेः) खायेगा।

भावार्थ– हे क्षपकराज! यदि तू किसी भी भोजनोपयो-पयोगी पदार्थमें आसक्ति रखकर मरेगा तो निश्चयसे स्वादिष्ट खरबूजमें आसक्ति रखकर मरनेवाले संन्यासोन्मुख भिक्षुकके समान उसी पदार्थमें कीट होकर उत्पन्न होगा।।५३।।

खरबूजमें आसक्ति रखकर मरनेवाले हेमसेनमुनि

किसी प्रदेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस पुरीमें प्रति-दिन उत्सव हुवा करते थे। यह दिव्य जिनालयोंसे विभूषित थी और जैन धर्माचारका आचरण करनेवाले श्रावकोंसे महनीय थी। एक ओर जिसमें सघन और हरित वृक्षावली लहरा रही थी। दूसरी ओर समस्त भूमण्डलके उत्सङ्गमें विहार करनेवाली रमणीय रमणियोंके विलास—चलित चतुर चरणोंमें रणित होनेवाले नुपुरोंकी रूनझुन दिगन्तरालमें झुनझुना रही थी। एक ओर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्गके गुणोंमें अनुरागशील शूद्रजनोंका निवास था। दूसरी ओर अनेक देश तथा विदेशोंसे सुपात्र और ज्ञानपिपासु विद्यार्थी भी यहाँ झुण्डके-झुण्ड आ रहे थे। यह नगरी विभिन्न विषयोंके सैकडों अधिकारी विद्वानोंसे अलंकृत थी और पुर बन्धु-ओंके मुख-चन्द्रकी जोत्स्नासे प्रकाशित वसुधाकी धवल सौधमालासे सुशोभित थी।

मुनिराज किसी जिनालयमें कठोर तपस्या करते थे। इस प्रकार कठिन तप करते-करते उन्हें बहुत दिन बीत गये और कुछ दिनोंके बाद उनकी मृत्यु-वेला आ पहुँची। जब मुनिराजकी मृत्युका समय अति सन्निकट आ पहुँचा तो समस्त श्रावक वहाँ एकत्रित हो गये और वे अनेक प्रकारके फूल-फल आदिसे उनकी आराधना तथा पूजा करने लगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयोगकी बात है, जिस दिन हेमसेन मुनिराज दिवंगत होने जा रहे थे उस दिन उस चैत्यालयमें भगवानकी प्रतिमाके सामने एक पका हुआ खरबूजेका फल चढाया हुआ रक्खा था। खरबूजा इतना पका हुआ था कि उसकी सुगंध मुनिराजके पास पहुँची और उनका मन उस फलकी ओर ललचा गया। इस फल-प्राप्तिकी आर्त्त चिन्तामें ही विचारे मर गये और मरकर तत्क्षण उस फलके अन्दर कीडा हो गये। श्रावकोंने मिलकर बडे उत्सवके साथ मुनिराजका शरीर-संस्कार कर दिया। दूसरे दिन समस्त श्रावक जिनालय पहुँचे और मुनिराज हेमसेनके साथ रहनेवाले चन्द्रसेन आदि मुनियोंसे इस प्रकार पूछने लगे-"महाराज, मुनिराज हेमसेनने मरणपर्यंन्त अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी। कृपया बतलाइए, अब वे किस पर्यायमें विराजमान हैं ?"

मुनिराज अतीत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता थे। उन्होंने ध्यान लगाया और अवधिसे मोक्ष, स्वर्ग और पाताल तथा समस्त संभव स्थानोंमें हेमसेन महाराजकी खोज की, पर वे वहाँ नहीं मिले। चन्द्रसेन आदि समस्त मुनिनाथ बडे विस्मित हुए। किन्तु जैसे ही उन्होंने पुनः अवधि लगायी तो मालूम हुआ कि हेमसेन महाराज जिन भगवानके आगे समर्पित किये गये पक्के खरबूजमें कीट हुए हैं। चन्द्रसेन मुनि श्रावकोंसे कहने लगे:-'भाईयो, आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हेमसेन मुनिराज इसी मन्दिरमें जिनेन्द्र भगवानके आगे रक्खे हुए खरबूजेमें कीट पर्यायमें उत्पन्न हुए हैं।'

मुनि चन्द्रसेनकी बात सुनकर श्रावक उस खरबूजेको भगवानके सामनेसे उठा लाये और उसे फोडकर देखा तो उसमें उन्हें एक कीडा दिखलायी दिया।

इस घटनासे श्रावकोंको बडा विस्मय हुआ। वे चन्द्रसेन मुनिसे पूछने लगे:-महाराज, हेमसेन मुनिराजने जीवनभर उग्र तपस्या की। फिर उन्हें इस प्रकारके कीट पर्यायमें क्यों जन्म लेना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडा ? महर्षि चन्द्रसेन कहने लगे-यद्यपि उग्र तपस्या एक महान् वस्तु है। लेकिन उससे अधिक बलवत्तर है ध्यान-एकाग्र, चिन्ता-निरोध। आगममें कहा है:-"आर्त ध्यानसे पशुपर्याय मिलती है और रौद्र ध्यानसे नरकगति। धर्म ध्यानसे देवगति प्राप्त होती है और शुक्ल ध्यानसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।"

इसलिये आराधक यदि शुभगतिकी इच्छा करता है वा आत्मकल्याणका इच्छुक है तो पुद्गलकी आसक्तिरूप आर्त रौद्र ध्यानको छोडे और शुभोपयोग वा शुद्धोपयोगरूप धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें तत्पर हो।

किं चांगस्योपकार्यं न न चैतत्तत्प्रतीच्छति।
तच्छिन्धि तृष्णां भिन्धि त्वं देहाद् रुन्धि दुरास्रवम् ॥५४॥

अन्वयार्थः-(किं च) और कहता हूँ (तत्) वह अन्न (कायस्य) शरीरका (उपकार्यं) उपकारी है (तच्च) और यह शरीर (तत्) उस अन्नको (प्रतीच्छति) उपकाररूपसे स्वीकार कर रहा है। (तत्) इसलिये (तृष्णां) भोजनकी तृष्णाको (छिन्धि) नष्ट करो (त्वं) अपनेको (देहात्) शरीरसे (भिन्धि) भिन्न भावना करो (दुरास्रवं) पापास्रवको (रुन्धि) रोको ॥५४॥

भावार्थ-हे क्षपकराज! अधिक क्या कहा जाय-यह भोज्य पदार्थ शरीरका उपकारी है क्योंकि मूर्त्तीक पदार्थोंसे मूर्त्तीक पदार्थोंका ही उपकार देखा जाता है और यह शरीर इस समय इस अन्नको उपकाररूपसे ग्रहण नहीं कर रहा है। इसलिये हे भव्य! इन भोज्य पदार्थोंके भोगनेकी इच्छाको छोड। इस जडात्मक पौद्गलिक शरीर और अपनी आत्माका पृथक्रूपसे चिंतवन कर और परपदार्थके अनुरागसे होनेवाले दुर्गतिके कारणभूत पापास्रवको रोक। व्यर्थमें दुर्गतिका कारण मत बन ॥५४॥

इत्थं पथ्यपृथासारैर्वितृष्णीकृत्य तं क्रमात्।
त्याजयित्वाऽशनं सूरिः स्निग्धपानं विवर्धयेत् ॥५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (सूरिः) निर्यापकाचार्य (इत्थं) इस प्रकार (पथ्यपृथासारैः) हितकारक वचनोंके द्वारा (तं) उस क्षपकको (वितृष्णीकृत्य) अन्नकी इच्छासे निवृत्त करके (क्रमात्) क्रमसे (अशनं) अन्नको (त्याजित्वा) छुडा करके (स्निग्धपानं) दुग्धादि स्निग्ध पदार्थोंको (विवर्धयेत्) पूर्णरूपसे देवें ॥५५॥

भावार्थ- इस प्रकार निर्यापकाचार्य अपने हितोपदेशरूप मेघवृष्टिके द्वारा क्षपककी अन्न खानेकी तृष्णारूपी अग्निको ज्वाला का शमन करके क्रमसे धीरे धीरे अन्नपदार्थोंको छुडाकर दुग्धादि स्निग्धपदार्थोंकी वृद्धि करे अर्थात् पूर्णरूपसे स्निग्ध पदार्थ देवे ।

पानं षोढा घनं लेपि ससिक्थं सविपर्ययम् ।
प्रयोज्य हापयित्वा तत् खरपानं च पूरयेत् ॥५६॥

अन्वयार्थ- (पानं) पेय पदार्थ (षोढा) छह प्रकारका है । (घनं) घन (लेपि) लेपी (ससिक्थं) ससिक्थ (सविपर्ययं) विपर्यय सहित-अर्थात् घन-अघन, लेपि-अलेपि, ससिक्थ-असिक्थ । (तत्) इन छह पदार्थोंको क्षपकके लिये (प्रयोज्य) देनेकी योजना करके (च) और (हापयित्वा) उनका भी त्याग करा करके (खरपानं) खरपानकी (पूरयेत्) वृद्धि करे ॥५६॥

भावार्थ- पहिले श्लोकमें जो स्निग्धपान बढानेके लियें उपदेश दिया था वह स्निग्धपदार्थ घन, अघन, लेपि, अलेपि, सिसक्थ, असिसक्थके भेदसे छह प्रकारका है। दही आदिको घन पदार्थ कहते हैं। इमली अदिक फलोंका रस सौवीरक उष्ण जलादिकको अघन कहते हैं । जो हस्ततलमें चिपकता हो उसको लेपि कहते हैं। जो हस्तादिकमें न चिपके उसको अलेप कहते हैं । जो फुटकीसहित हो उसको ससिक्थ कहते हैं जैसे दहीके कणसहित तक्र । जो ससिक्थ से रहित हो उसको असिक्थ कहते हैं । जैसे दहीके ऊपरका पानी । निर्यापकाचार्य पहिले छह प्रकारके स्निग्ध पेय पदार्थ देनेके लिए परिचारकोंको नियुक्त करें । पश्चात् उसका भी त्याग कराकर शुद्धकांजीरूप अथवा शुद्ध पानी देवे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे- छह श्लोकोंके द्वारा निर्यापकाचार्य क्षपकको इस प्रकार शिक्षा देवे-

शिक्षयेच्चेति तं सेयमन्त्या सल्लेखनाऽर्यं ते ।
अतीचारपिशाचेभ्यो रक्षैनामति दुर्लभाम् ॥५७॥

अन्वयार्थ- आर्यं हे आर्य ! (सा) वह (इयं) यह (ते) तेरे (अन्त्या) अन्तमें होनेवाली (सल्लेखना) सल्लेखना है, (अतिदुर्लभां) अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य (एनां) इसकी (अतिचारपिशाचेभ्यः) अतिचाररूपी पिशाचसे (रक्ष) रक्षा करो (इति) इस प्रकार निर्यापकाचार्य (तं) उस क्षपकको (शिक्षयेत्) उपदेश देवे ।

भावार्थ- इस प्रकार खरपानादिककी विधिके पश्चात् निर्यापकाचार्य क्षपकको सम्बोधित करे, सदुपदेशसे सावधान करे कि-हे उपासक ! यह सम्यग्दर्शनादि गुणोंके द्वारा तथा गुणवानोंके द्वारा आचार्यमाण तुम्हारी अन्तिम सल्लेखना है । जिसकी प्राप्ति अनादिकालसे नहीं हुई, अत एव अत्यन्त दुष्प्राप्य इस समाधिमरणकी अतिचाररूपी पिशाचोंसे रक्षा करो ॥५७॥

आगे- क्रमसे पांच अतिचारकी परिहारकी शिक्षा देते हैं—

प्रतिपत्तौ सजन्नस्यां मा शंस स्थास्नु जीवितम् ।
भ्रान्त्या रम्यं बहिर्वस्तु हास्यः को नाऽयुराशिषा ॥५८॥

अन्वयार्थ- हे क्षपकराज ! (अस्यां) प्रत्यक्षगोचर इस (प्रतिपत्तौ) आचार्यादिकके द्वारा की गई परिचर्यामें अथवा लोक पूजादिमें (सजन्) आसक्त होकर (जीवितं) जीवनका (स्थास्नु) स्थिर रहना (मा शंस) मत चाहो । क्योंकि (बहिः) बाह्य (वस्तु) वस्तु (भ्रान्त्या) भ्रांतिसे (रम्यं) सुन्दर मालुम होती है, (आयुराशिषा) चिरकालतक जीवनकी इच्छा करनेवाला (कः) कौन (हास्यः) हंसीका पात्र नहीं है ।

भावार्थ-हे आराधक ! आचार्यादिक परिचारकोंके द्वारा की जानेवाली प्रत्यक्षगोचर परिचर्या विधिमें तथा अपनी ख्याति पूजा-लाभादिकमें आसक्त होकर चिरकालतक जीवनकी इच्छा मत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करो। क्योंकि यह सब वस्तु भ्रान्तिसे रम्य प्रतिभासित होती हैं। वास्तविक विचार करनेपर कदलीतरुके समान असार है। मेरा जीवन हो इस आकांक्षासे लौकिक और पारलौकिक दोनो ही दृष्टिमें कौन हंसीका पात्र नहीं होता है अर्थात् जीवनकी इच्छा करनेवाला हसीके योग्य हो है। जीवितकी इच्छा करना जीवनाशंसा नामका अतिचार है। यह बिना कहे भी त्याज्य है ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार आगे भी लगाना चाहिये ॥५८॥

परीषहभयादाशुमरणे मा मतिं कृथाः।
दुःखं सोढा निहन्त्यंहो ब्रह्म हन्ति मुमूर्षकः ॥५९॥

अन्वयार्थ-हे क्षपक! (परीषहभयात्) क्षुधादिक परिषहोंके भयसे (आशुमरणे) शीघ्रमरणमें (मतिं) बुद्धि (मा) मत (कृथाः) करो। क्योंकि (दुःखं) दुःखोंको (सोढा) सहन करनेवाला (अंहः) पापोंका (निहन्ति) नाश करता है और (ममूर्षकः) मरणकी इच्छा करनेवाला (ब्रह्म) आत्माका (हन्ति) घात करता है ॥५९॥

भावार्थ-हे भव्य! दुःसह क्षुधादिकके वेदनाके भयसे शीघ्र मरनेकी इच्छा मत कर। क्योंकि क्षुधादि वेदनाको संक्लेश परिणाम रहित सहन करनेवाला प्राणी पूर्वोपार्जित दुष्कर्मोंका नाश करता है और नवीन आस्रवको रोकता है तथा कुत्सित विधिसे मरणकी इच्छा करनेवाला पुमान आत्मघाती होनेसे दीर्घसंसारी होता है, इससे मरणाशंसा नामके अतिचारका निषेध किया है ॥५९॥

सहपांशुक्रीडितेन स्वं सख्या माऽनुरञ्जय।
ईदृशैर्बहुशो भुक्तैर्मोहदुर्ललितैरलम् ॥६०॥

अन्वयार्थ-(सहपांशुक्रीडितेन) बाल्यपनमें अपने साथ खेले हुये (सख्या) मित्रोंके साथ (स्वं) अपनेको (मा अनुरञ्जय) रंजायमान मत करो, उनमें स्नेह मत करो। (मोहदुर्ललितैः) मोहनीय कर्मके विपाकजन्य दुरध्यवसाय (बहुशः) बहुत बार (भुक्तैः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वमें अनुभव किये हुये (ईदृग्विधैः) ऐसे इन मित्रोंके अनुरागसे (अलं) क्या प्रयोजन है ॥६०॥

भावार्थ-हे क्षपकराज ! बाल्यपनमें मिलकर धूलिमें एक साथ क्रीडा करनेवाले मित्रोंके साथ स्नेह मत करो। अपनी आत्माको मित्रोंके साथ अनुरंजित मत करो। हे आराधक ! बहुत बार पूर्वमें अनुभव किये हुये, मोहकर्मके विपाकसे दुर्ललित ऐसे मित्रानुरागसे परलोककी यात्रा करनेमें उद्यत तेरा क्या प्रयोजन है ? यह मित्रानुराग नामके अतिचारका निषेध है ॥६०॥

मा समन्वाहर प्रीतिविशिष्टे कुत्रचित्स्मृतिम् ।
वासितोऽक्षसुखैरेव बम्भ्रमीति भवे भवी ॥६१॥

अन्वयार्थ-हे आराधक ! (प्रीतिविशिष्टे) पूर्वमें प्रमोदातिशयको करनेवाले (कुत्रचित्) किसी भी चक्षुरादि इन्द्रियोंके विषयोंमें (स्मृत्ति) मनोवृत्तिको (मा) मत (समन्वाहर) लगा। क्योंकि (अक्षसुखैः) इन्द्रियसुखोंके द्वारा (वासितः) संस्कारित (भवी) जीव (भवे) संसारमें (बम्भ्रमीति) भ्रमण करता है ॥६१॥

भावार्थ-हे क्षपक ! इस समय तूं पूर्व गृहस्थावस्थामें अनुभूत किसी भी पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयोंमें अनुराग मत कर। मैंने इस प्रकारकी रमणीक कामिनियोंको देखा था अथवा इस प्रकार आलिगन किया, मेरी ऐसी सुन्दर शय्या थी, मैंने ऐसे ऐसे मनोज्ञ भोग भोगे ऐसा मनमें चितवन मत कर। क्योंकि पंचेन्द्रिय सुखोंके द्वारा आकृष्ट हुवा मनुष्य संसारवनमें अतिशयरूपसे भ्रमण करता है॥६१॥

मा कांक्षीर्भाविभोगादीन् रोगादीनिव दुःखदान् ।
वृणीते कालकूटं हि कः प्रसाद्येष्टदेवताम् ॥६२॥

अन्वयार्थ- हे भव्य ! (रोगादीन्) रोग आदिके (इव) समान (दुःखदान्) दुःख देनेवाले (भाविभोगादीन्) भाविभोगोंके (कांक्षीः) इच्छा करनेवाला (मा) मत हो, (हि) क्योंकि (कः) कौन मनुष्य (इष्टदेवतां) इष्ट देवताको (प्रसाद्य) प्रसन्न करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कालकूटं) कालकूट विषकी (वृणीते) प्रार्थना करता है अर्थात् कोई नहीं करता है ॥६२॥

भावार्थ- हे उपासक ! ज्वरादि, व्याधि, इष्ट, वियोग आदि रोग शोकके समान अत्यन्त दुःखदायक भाविकालमें होनेवाले इष्ट, चक्रवर्ती आदिक भोगोंकी इच्छा मत करो अर्थात् इस तपके माहात्म्यसे मैं इन्द्र, धरणेन्द्र आदि पदका री हो जावूं, ऐसी भावनाको हृदयमें उत्पन्न मत होने दो। क्योंकि ऐसा कौन मनुष्य है जो इच्छित वरदानको देनेवाले इष्ट देवकी आराधना करके विषकी प्रार्थना करेगा, अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥६२॥

आगे- क्षपकके चार प्रकारके आहारके त्यागकी विधिको दो श्लोकके द्वारा कहते हैं--

इति व्रतशिरोरत्नं कृतसंस्कारमुद्वहन् ।
खरपानक्रमत्यागात् प्रायेऽयमुपवेक्ष्यति ॥६३॥
एवं निवेद्य संघाय सूरिणा निपुणेक्षिणा ।
सोऽनुज्ञातोऽखिलाहारं यावज्जीवं त्यजेत् त्रिधा ॥६४॥

अन्वयार्थ- (इति) इस प्रकार (कृतसंस्कारं) संस्कारित (व्रतशिरोरत्नं) सम्पूर्ण व्रतोमें प्रधान सल्लेखनाको (उद्वहन्) उत्कृष्ट रूपसे धारण करनेवाला (अयं) यह संस्तरोपगत क्षपक (खरपानक्रमत्यागात्) खरपानके क्रमके त्यागसे अर्थात् उष्णजलका भी क्रम क्रमसे त्याग कर देनेसे (प्राये) चार प्रकारके आहारके त्यागम (उपलक्ष्यति) निश्चल रहेगा (एवं) इस प्रकार (निपुणा) सूक्ष्म व्याधि देश कालादिकके जाननेमें चतुर (सूरिणा) निर्यापकाचार्यके द्वारा (संघाय) सर्व चतुर्विध संघके लिए (निवेद्य) निवेदन करनेपर (अनुज्ञातः) उस निर्यापकाचार्यकी अनुमतिसे (सः) वह क्षपक (त्रिधा) मन वचन कायसें (यावज्जीवं) जीवनपर्यन्त (अखिलाहारं) सम्पूर्ण आहारको (त्यजेत्) छोड देवें ॥६३॥६४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ- ऊपरके श्लोकमें प्रतिपत्तौ सजन्नस्यादि सांसारिक पदार्थोमें आसक्ति रखनेवाला जीव दीर्घसंसारी होता है, इस प्रकारके उपदेशसे जो संस्कारित है, जैसे रत्नोंमें संस्कारसे विशेषता आती है उसी प्रकार अतिचारोंको दूर कर व्रतोंके पालनेसे व्रतोंमें विशेषता आती है। सल्लेखनाकी सिद्धि हो जानेसे गृहण किये हुये महाव्रतादि व्रतोंकी सफलता होती है, इसलिए सम्पूर्ण आभूषणोंमें जैसे चूडामणि रत्नका सर्वोत्कृष्ट स्थान है उसी प्रकार सल्लेखनाका व्रत सब व्रतोंमें उच्चस्थान होनेसे उसको व्रतशिरोरत्न कहते हैं। इस प्रकार प्रतिपत्तौ सजन् इत्यादि श्लोकके द्वारा वर्णित उपदेशसे अतिशयपनेको प्राप्त सल्लेखनारूपी चूडामणिको धारण करनेवाला यह श्रावक अब क्रम क्रमसे गरम जलका भी त्याग करके दृढनिश्चय होकर चतुर्विध आहारके प्रत्याख्यानमें प्रवेश करेगा, इस प्रकारकी संघको सूचना देकर व्याधि, देश, काल, सत्व, बल आहारकी सात्म्यता परीषहकी क्षमता, संवेग, वैराग्यादिकका सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेवाले निर्यापकाचार्यके द्वारा अनुमतिको प्राप्त क्षपक चतुर्विध आहारका मन वचन कायसे मरणपर्यंत त्याग कर दे ॥६३॥६४॥

इस प्रकार जो परीषह सहन करनेमें पूर्ण समर्थ है, उसके लिये जीवन पर्यन्त चतुर्विध आहारके त्यागका उपदेश देकर जो क्षपक परीषहकी बाधाको सहन करनेमें पूर्ण समर्थ नहीं है उसके लिए केवल उष्ण जलका विकल्प रखकर शेष तीन प्रकारके आहारके त्यागका उपदेश देते हुए, किस समय वह क्षपक चतुर्विध आहारका त्याग करे इस बातको बताते हैं-

व्याध्याद्यपेक्षयाम्भो वा समाध्यर्थं विकल्पयेत् ।
भृशं शक्तिक्षये जह्यात्तदप्यासन्नमृत्युकः ॥६५॥

अन्वयार्थ-(वा) अथवा (समाध्यर्थं) समाधिकी सिद्धिके लिये (व्याध्याद्यपेक्षया) व्याधि आदिकी अपेक्षासे क्षपक (अम्भः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उष्ण जल (विकल्पयेत्) पीनेके लिये रख ले तथा (भृशं) अत्यंत (शक्तिक्षये) शक्तिके क्षीण हो जानेपर (आसन्नमृत्युक:) जिसका मरण अत्यंत निकट है ऐसा क्षपक (तदपि) उस जलको भी (जह्यात्) छोड देवे ।।६५।।

भावार्थ–पैत्तिक व्याधि, ग्रीष्मकाल, मरुस्थलादिक देश, पित्त, प्रकृति और भी ऐसे किन्हीं कारणोंसे जो क्षपक परीषहकी बाधाको सहन करनेमें समर्थ नहीं हो, वह क्षपक गुरुकी आज्ञासे "मैं गुरुकी अनुमतिसे केवल उष्णजल ग्रहण करूँगा" इस प्रकारके विकल्पको समाधिके लिये रखकर शेष तीन आहारोंका यावज्जीवन त्याग करे और जब शारीरिक शक्ति अत्यंत क्षीण हो जाय त प मृत्यु निकट है ऐसा ज्ञात हो जाय तब पानीका भी त्याग कर दे ।।६५।।

आगे–क्षपकके लिये हितकर, संघके द्वारा अवश्य करने योग्य कार्यको बताते हैं—

तदाखिलो वर्णिमुखग्राहितक्षमणो गणः ।
तस्याविघ्नसमाधानसिद्ध्यै तद्यात्तनुत्सृतिम् ।।६६।।

अन्वयार्थ–(तदा) समाधिमरणके समय (वर्णिमुखग्राहितक्षमण:) ब्रह्मचारीके मुखसे परस्पर बुलाई गई क्षमा है जिस क्षपकके ऐसा (अखिल:) सम्पूर्ण (गण:) संघ (तस्य) उस क्षपकको (अविघ्नसमाधानसिद्ध्यै) निर्विघ्न समाधिकी सिद्धिके लिये (तनुत्सृत्तिं) कायोत्सर्ग (तद्यात्) करे ।।६६।।

भावार्थ–निर्यापकाचार्य संघकी ओरसे किसी ब्रह्मचारीको खडा करके क्षपकके प्रति बुलवावे कि हे क्षपक! हम अपने किसी भी प्रकारसे होनेवाले अपने अपराधोंकी तुमसे क्षमा याचना करते है और हम भी तुम्हारे प्रति क्षमा करते हैं। इस प्रकार मन, वचन, कायसे क्षमा याचना और क्षमादान विधिको करके इस क्षपककी निर्विघ्न समाधि सिद्ध हो, तथा क्षपकपर किसी प्रकारका उपसर्ग न हो इसलिये सर्व संघ कायोत्सर्ग करे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार आराधनारूपी पताकाको गृहण करनेवाले क्षपकके प्रति निर्यापकाचार्यके कर्तव्यकी विधि बताते हैं—

ततो निर्यापकः कर्णे जपं प्रायोपवेशिनः ।
दद्युः संसारभयदं प्रीणयन्तो वचामृतैः ॥६७॥

अन्वयार्थ— (ततः) इसके बाद (निर्यापकः) निर्यापकाचार्य (वचनामृतैः) वचनरूपी अमृतके द्वारा (प्रीणयन्तः) क्षपकको संतृप्त करते हुए (प्रायोपवेशिनः) समाधिमरण करनेवाले क्षपकके (कर्णे) कानमें (संसारभयदं) संसारसे भीति देनेवाले (जपं) जाप्य मंत्रको (दद्युः) देवे ॥६७॥

भावार्थ— यथोक्त करने योग्य विधिके करनेके बाद समाधि विधिको जाननेवाले आचार्य अपने वचनरूपी अमृतसे क्षपकको सन्तुष्ट करते हुए, क्षपकके कर्णमें संसारसे भीति दिलानेवाला तथा संसारसे संवेग, निर्वेद, वैराग्यको उत्पन्न करानेवाला उपदेश देवे ।

आगे श्लोकोंमें क्षपकके प्रति दिया गया उपदेश तथा अनुशासनका वर्णन करते हैं—

मिथ्यात्वं वम सम्यक्त्वं भजोर्जय जिनादिषु ।
भक्तिं भावनमस्कारे रमस्व ज्ञानमाविश ॥६८॥

अन्वयार्थ— भो आराधकराज ! (मिथ्यात्वं) मिथ्यात्वका (वम) वमन करो (सम्यक्त्वं) सम्यग्दर्शनकी (भज) आराधना करो (जिनादिषु) अरिहंतादि पंच परमेष्ठियोंमें (भक्तिं) भक्तिको (उर्जय) बढ़ावो। (भावनमस्कारे) भाव नमस्कारमें (रमस्व) रति करो (ज्ञानं) बाह्याभ्यंतर अपने शुद्ध ज्ञानमें (आविश) प्रवेश करो अर्थात् तत्त्वबोधमें उपयोग लगावो ॥६८॥

भावार्थ— भो क्षपक ! इस समय हृदयस्थित सम्पूर्ण विपरीताभिनिवेशको वमन करो। तत्त्वार्थश्रद्धानकी भावना करो । तथा अर्हंतादि पंचपरमेष्ठियोंमें पंचपरमेष्ठियोंके प्रतिबिम्बमें तथा व्यवहार निश्चय रत्नत्रयमें उत्कृष्ट अनुराग करो अर्थात् पंचपरमेष्ठियोंकी भक्ति हृदयमें धारण करो । और अर्हन्तादिकके गु में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सानुरागध्यानरूप भाव नमस्कारमें अपने मनको लगावो । अर्थात् अपने मनमें जिनेश्वरके गुणोंका चिंतवन करो । तथा बाह्य वा आध्यात्मिकरूपसे तत्वबोधमें लीन होवो ।

महाव्रतानि रक्षोच्चैः कषायान् जय यन्त्रय ।
अक्षाणि पश्य चात्मानमात्मनात्मनि मुक्तये ॥६९॥

अन्वयार्थ- हे क्षपक ! (मुक्तये) मुक्तिपदकी प्राप्त करनेके लिये तूं (महाव्रतानि) महाव्रतोंकी (रक्ष) रक्षा कर (कषायान्) क्रोधादिक कषायोंको (उच्चैः) अतिशयरूपसे (जय) जीतनेका प्रयत्न कर। (अक्षाणि) इन्द्रियोंको (यन्त्रय) अपने अपने विषयोंसे रोक (आत्मना) अपनी आत्माके द्वारा (आत्मानं) अपनी आत्माको (आत्मनि) अपनी आत्मामें (पश्य) देख ॥६९॥

भावार्थ- हे आराधक ! तुम मुक्तिरूपी स्त्रीकी प्राप्तिके लिये अपने महाव्रतोंकी रक्षा करो । पूर्ण रीतिसे क्रोधादि कषायोंपर विजय करो । अपने अपने इष्ट विषयोंमें प्रवर्त्तमान इन्द्रियोंका निरोध करो । और अपनेमें अपने ही द्वारा अपनेको देखो । अर्थात् स्वात्मोपलब्धिमें तत्पर हो ॥६९॥

आगे- दो श्लोकके द्वारा मिथ्यात्वके अपायकारकत्वका वर्णन करते हैं-

अधोमध्योर्ध्वलोकेषु नाभून्नास्ति न भावि वा ।
तद्दुःखं यन्न दीयेत मिथ्यात्वेन महारिणा ॥७०॥

अन्वयार्थ- (अधोमध्योर्ध्वलोकेषु) अधोलोक मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोकमें (तद्दुःखं) वह दुःख (न अभूत्) न तो भूत कालमें हुवा है । (नास्ति) न वर्त्तमानमें है (वा) अथवा (न भावि) न भविष्यकालमें होगा (यत्) जो दुःख (महारिणा) महाशत्रु (मिथ्यात्वेन) मिथ्यात्वके द्वारा (दीयते) दिया जाता है ॥७०॥

भावार्थ- इस जीवके अन्तरंग शत्रु मिथ्यात्वके होनेपर ही बहिरंग शत्रु अपकार कर सकते हैं, इसलिये मिथ्यात्व ही जीवका महाशत्रु है । अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकमें ऐसा कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख नहीं है जो मिथ्यात्वके कारण इस जीवको भूतकालमें प्राप्त नहीं हुवा हो, वर्त्तमानमें प्राप्त नहीं होता हो, अथवा भविष्यत् कालमें प्राप्त नहीं होगा। अर्थात् तीनों लोकमें मिथ्यात्वके कारण जीवको सदा सर्वत्र दुःख ही प्राप्त होता है, इसलिये यह मिथ्यात्व महा शत्रु है ॥७०॥

संघश्रीर्भावयन्भूयो मिथ्यात्वं वन्दकाहितम् ।
धनदत्तसभायां द्राक्स्फुटिताक्षोऽभ्रमद्भवम् ॥७१॥

अन्वयार्थ– वन्दकाहितं वन्दकके द्वारा आरोपित (मिथ्यात्वं) मिथ्यात्वको (भूयः) भावयन् अपनेमें पुनः पुनः धारण करनेवाला (संघश्री) संघश्री नामक धनदत्त राजाका मंत्री (धनदत्तसभायां) धनदत्त राजाकी सभामें (द्राक्) शीघ्रसे (स्फुटिताक्षः) आंखे फूट गई ऐसा होकर (भवं) संसारमें (अभ्रमत्) भ्रमण किया ॥७१॥

भावार्थ– धनदत्त राजाका संघश्री नामके मंत्रीने मुनिराजके उपदेशसे पहिले सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया और पुनः वन्दकके निमित्तसे मिथ्यात्वको धारण किया, उस पुनः भावित मिथ्यात्वके कारण उसकी आंख फूट गई। और वह संसार चक्रमें परिभ्रमण करनेवाला हुवा ।

हे क्षपकराज ! जिस प्रकार सम्यक्त्वका त्याग कर मिथ्यात्व भाव धारण करनेसे संघश्री दुर्गति का पात्र बना उसी प्रकार तुम भी यदि मिथ्यात्वको धारण करोगे तो दुर्गतिके पात्र होवोगे।

राजा धनदत्त तथा संघश्रीकी कथा

जैसे सूरजके प्रकाशको उल्लू रोक न सकते हैं।
वैसे पापी जैन–धर्मको हानि न कुछ कर सकते हैं॥
है अनन्त ज्ञानके स्वामी जिन्हें जिनेश्वर कहते हैं।
नमस्कार कर महाराज धनदत्त-कथा हम लिखते हैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आन्ध्र देशके अन्दर कनकपुर नगरमें राजा धनदत्त शासन करते थे। वे सम्यक्त्वधारी गुणज्ञ धर्मात्मा राजा थे। राजा जैन-धर्मका सच्चा अनुयायी था, किन्तु उसका मन्त्री बौद्धमत मानने-वाला था। उसका नाम श्री संघश्री था, महाराज अपने बौद्ध मन्त्रीके सहयोगसे शासन कार्य निर्विघ्नतापूर्वक करते थे। मन्त्री उनके शासन संचालनमें किसी प्रकारका बाधक नहीं बनता था। एक दिनकी बात है कि राजा धनदत्त अपने मन्त्रीके साथ कोठेपर बैठकर राज्यके सम्बन्धमें परामर्श कर रहे थे। इतनेमें आकाश-मार्गसे दो चारण मुनि जाते हुए दिखलाई दिये। महाराजने उसी समय उन्हें नमस्कार कर अपने यहाँ उनका आवाहन किया ठीक है:—

जो सज्जन होते हैं वे संगतिका लाभ उठाते हैं।
साधु-संतके दर्शनसे वे सहज प्रेम नित पाते हैं॥

मन्त्रीका श्रावक होना

महाराजकी प्रार्थनापर उक्त मुनियोंने धर्मोपदेश दिये। मुनियोंके उपदेशके प्रभावसे प्रभावित होकर श्री मंत्रीने श्रावक व्रत ले लिये। ऋद्धिधारी मुनि अपने स्थानको चले गये। बौद्ध गुरुने मन्त्रीको अपने यहाँ आते न देख उसे बुलाया। मन्त्री बौद्ध गुरुके पास जाकर बैठा रहा, बौद्ध गुरुको मन्त्रीने नमस्कार नहीं किया। बौद्ध गुरुके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही, उसने मन्त्रीसे नमस्कार नहीं करनेका कारण पूछा। श्री मंत्रीने अपने विषयमें जैनधर्ममें श्रावक व्रत लेनेकी बात कही तथा चारण मुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। बौद्ध गुरू मन ही मन जलने लगा, उसने मन्त्रीसे कहा—तुम ठगाये गये हो। भला तुम ही ख्याल करो कि आकाशमें कोई कैसे चल सकता है? अतः जैनी राजाने छल-कपटका जाल बिछाकर तुम्हें जैनधर्ममें मिलाया है। तुम निश्चय जानो, जैनी बौद्ध मतवालोंसे द्वेष रखते हैं, वे सदा बौद्ध धर्मकी हानि किया करते हैं। अतः तुम राजासे नहीं कहना, नहीं तो क्या क्या अनर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा? संघश्री कमजोर हृदयका अस्थिर बुद्धिका आदमी था। वह सिद्धान्तहीन बेपेंदीके लोटेके समान था, जो इशारा पाते ही जहाँ तहाँ ढुलक पडता है। किन्तुः—

जो पापी होते हैं सबको पाप-पंथ सिखलाते हैं।
अपने बुरे कर्मसे पापी बाज कभी न आते हैं॥
पाठक समझें अग्नि स्वयं जलती है और जलाती है।
स्वयं गरम है और दूसरोंमें गरमी पहुँचाती है॥

पापी मन्त्रीकी आँखे फूटी

बस बौद्ध गुरुके बहकावेमें आकर मन्त्रीका विचार बदल गया, उसने श्रावक व्रत छोड दिया। दूसरे दिन राजाने भरे दरबारमें जैनधर्मकी महानता और चारणमुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। सभी आश्चर्य प्रकट करने लगे। तब राजाने अपने कथनको सिद्ध करनेके लिये मन्त्रीकी तरफ अपनी नजर दौडायी। किन्तु वह तो दरबारसे ही गायब हो रहा था। राजाने मन्त्रीको बुलाकर उस दिनका दृश्य कहनेके लिए अनुरोध किया। दुष्ट मन्त्रीने कहना शुरू किया—"महाराज! असम्भव है, न मैंने अपनी आँखोंसे देखा है और न इस प्रकारकी बात सम्भव हो सकती है।" महाराज अचम्भेमें पड गये, किन्तु उसी समय झूठे मन्त्रीकी दोनों आँखें फूट गयीं। सभी समझ गये कि राजाका कहना सत्य है, मन्त्री एकदम झूठा है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' के अनुसार इसने फल पाया।

जो पथमें काँटे बोते हैं, उनके हित खाईं रहती।
बुरे कर्मकी अन्तिम हालत कभी नहीं अच्छी होती॥
जो सज्जन हों जिन-शासनमें अपना ध्यान लगावेंगे।
मोक्ष-धाम पाकर वे जगमें मनवांछित फल पावेंगे॥

पाठको! आपको भी उचित है कि आप अपनी निर्मल बुद्धिद्वारा जिन-भगवानके चरणोंकी भक्ति-भावसे पूजाका पवित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षसुख देनेवाले जिन भगवानके भक्त बनेंगे। तथा आत्माका महाशत्रु मिथ्यात्वका त्याग कर दृढ सम्यक्त्वी बनेंगे। जिस प्रकार वायुके झकोरेसे कभी मेरु चलायमान नहीं होता है, उसी प्रकार सम्यक्त्वी कितनी प्रलोभन आदि देनेपर भी सम्यक्त्वसे चलायमान नहीं होता है, मेरुके समान अचल रहता है वहीं मोक्षका पात्र होता है।

–इति संघश्री और धनदत्तकी कथा समाप्त–

आगे–दो श्लोकके द्वारा सम्यक्त्वके उपकारको दिखाते हैं–

अधोमध्योर्ध्वलोकेषु नाभून्नास्ति न भावि वा।
तत्सुखं यन्न दीयेत सम्यत्वेन सुबन्धुना ॥७२॥

अन्वयार्थ–(अधोमध्योर्ध्वलोकेषु) तीनों लोकमें (तत्सुखं) वह सुख (न अभूत्) न तो भूतकालमें कभी हुवा है (नास्ति) न वर्तमानकालमें हैं (वा) और (न भावि) न भविष्यकालमें होगा (यत्) जो (सम्यक्त्वेन सुबन्धुना) सम्यक्त्वरूपी बन्धुके द्वारा इस जीवको (न दीयते) नहीं दिया जाता है ॥७२॥

भावार्थ–सम्यग्दर्शन सबका उपकारक है, सब पापाश्रवोंके रोकनेका प्रधान कारण है। इसलिये तीनों लोकमें ऐसा कोई सुख नहीं है, जो सर्वत्र और सदैव इस जीवको सम्यग्दर्शनरूपी बन्धुके कारण नहीं मिलता है।

प्रह्रासितकुदृग्बद्धश्वभ्रायुःस्थितिरेकया।
दृग्विशुद्ध्याऽपि भविता श्रेणिकः किल तीर्थकृत् ॥७३॥

अन्वयार्थ–(किल) आगममें ऐसा सुना जाता है कि (अपि) अहो! आश्चर्य है (एकया) एक (दृग्विशुद्धया) दर्शनविशुद्धिके भावसे (श्रेणिकः) श्रेणिक राजा (प्रह्रासितकुदृग्बद्धश्वभ्रायुःस्थितिः) नष्ट की है मिथ्यात्वके प्रभावसे बान्धी हुई नरकआयुकी स्थितिको जिसने ऐसा होकर (तीर्थकृत्) तीर्थंकर (भविता) होगा ॥७३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ-राजा श्रेणिक अपनी अवस्थाके पूर्वार्द्धमें मिथ्यात्वके प्रभावसे ३३ सागर प्रमाण नरकायुका उत्कृष्ट बंध किया था। परन्तु अहो आश्चर्य है, विनय सम्पन्नतादि तीर्थंकर प्रकृति कारणसे रहित होकर भी केवल एक दर्शनविशुद्धिके प्रभावसे उनकी वह बद्धायु अत्यंत कम होकर केवल ८४ हजार वर्षकी ही रह गई थी। तथा दर्शनविशुद्धिके कारण उनको तीर्थंकर प्रकृतिका बंध भी हुवा था। जिसके प्रभावसे श्रेणिक नृप आगे महापद्म नामके प्रथम तीर्थंकर होंगे ॥७३॥

महाराज श्रेणिककी कथा

केवलज्ञान दृष्टीसे जो प्रभु जिन जगको देखा करते।
जगत्पूज्य श्री जिन चरणोंमें, सादर नमस्कार करते।
जिनकी सच्ची पूजासे जन, पतित मोक्ष तक पाते हैं।
शुभ चरित्र श्रेणिकका लिखकर, जगका हित कर जाते हैं।।

पाठक! यहां उन दिनोंकी कथा लिखी जाती है जब मगधाधिपति महाराज श्रेणिक थे। वे सकल विद्याओंमें पंडित थे। वे राजनीति-शास्त्रके धुरधर आचार्य थें। उनकी महारानी चेलनी धर्मकी मूर्ति थी। वह जैनधर्ममें अत्यत श्रद्धा रखती थी। एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिकने अपनी रानीसे बौद्ध-धर्मकी प्रशंसा करते हुअे कहा, "प्रिये! इस संसारमें बौद्ध-धर्म ही सुखदाता है उसके समान कोई अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है, अतः तुम बौद्ध मत स्वीकार कर लो"। पाठकगण, रानी चेलनी तो जैन-धर्मके रंगमें रंगी हुअी थी, भला वह अन्य धर्म क्यों स्वीकार करती, उसने विनीत शब्दोंमें कहा, "महाराज, मैं आपके कथनानुसार बौद्धधर्मके अनुयायोंकी परीक्षा करूंगी तब निश्चय करूंगी कि मुझे क्या करना चाहिये?"

बौद्ध साधुओंकी पोल खुली

एक दिन महारानीने बौद्ध साधुओंको अपने यहां निमंत्रण कया। बौद्ध साधु बडी धूम-धामसे आये। वे ध्यान लगाकर फर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्माकी पूजा करनेका ढोंग रचने लगे। उन्हें इस प्रकार वकध्यान लगाये देख, महारानीने उनसे पूछा–"साधुवर, आप लोग यह क्या कर रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया–"महारानी, हम लोगोंकी पवित्र आत्मा इस अपवित्र शरीरको छोडकर स्वयं बुद्ध भगवानके रूपमें लीन हो रही है।" साधुओंकी कपटपूर्ण बात सुनकर रानी चेलनीने मण्डपमें जहां साधु लोग ढोंग करके बैठे थे वहां आग लगवा दी। आग लगते ही समस्त कपटी साधु अपनी जान लेकर भाग चले।

महाराजका क्रोध

उपरोक्त समस्त वृत्तान्त सुनकर महाराज श्रेणिकने क्रोधमें आगबबूला होकर रानीसे कहा–"तुमने क्या अनर्थ किया। निर्दोष साधुओंकी जान लेनेपर क्यों तुल गयी? यदि उनके ऊपर तुम्हारी श्रद्धा नहीं थी तो उन्होने तुम्हारी क्या हानि की थी जिससे तुमने आग लगाकर प्राण लेनेका निष्ठुर प्रयास किया। रानी चेलनीने विनीत शब्दोंमें कहा,–"नाथ! मैंने जान बूझकर साधुओंके साथ अन्याय नहीं किया, बल्कि उनके साथ परोपकार किया है। कारण, वे ध्यान लगाकर साक्षात् बुद्ध बन रहें थे। उनका अपवित्र शरीर पृथ्वीपर था। मैंने विवेकबुद्धिसे विचार किया कि जब ये समस्त साधु अपने अपवित्र शरीर छोड बुद्धके साक्षात् आकार बने हुए हैं तब क्या ही अच्छा हो कि ये सर्वदाके लिये विष्णु क्यों न बने रहें? अपने इस अपवित्र देहका सम्बन्ध छोड दें इसी विचारसे मैंने आग लगाई थी। महाराज, आप ही निर्णय करे कि मैंने न्याय किया है या अन्याय। सच पूछिये तो मैंने परोपकारके विचारसे उपरोक्त कार्य किया है। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं आपको इस विषयपर एक कथा सुनाती हूँ वह ऐसी है:—

महाराज! मैं जिस समयकी कथा कह रही हूँ उस समय कौशाम्बी वत्स देशकी राजधानी थी। वहांके राजा प्रजापाल थे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे न्याय-नीतिसे प्रजाके ऊपर सुशासन करते थे। उनका जैसा नाम था वैसे ही उनमें गुण थे। उसी नगरीमें राजा सागरदत्त और समुद्रदत्त नामक दो सेठ रहते थे। एक दिन दोनों सेठने आपसमें शर्त की दोनोंके अगर पुत्र और कन्या हुई तो दोनोंका आपसमें विवाह कर प्रीति बनाये रहेंगे। इस प्रकार निश्चय करनेपर सागरदत्तको एक पुत्र हुआ जिसका नाम वसुमित्र रखा गया। किन्तु,उसमें यही विशेषता थी कि वह दिनमें नागनाथ बन जाता है और रात्रिमें सुंदर जवान। उधर समुद्रदत्तके यहां एक कन्या हुई, उसने अपनी कन्याका नाम नागदत्ता रखा। वह अत्यन्त सुंदर कन्या थी। समुद्रदत्तने अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वसुमित्रके पुत्रसे विवाह कर अपने वचनकी पूर्ति की। किसीने ठीक कहा है:—

सच्चे जन हैं वही वचन हित कष्ट अनेकों सहते हैं।
पर अपने वचनोंको हरदम पूर्ण सत्य ही कराते हैं॥
मरते दमतक कठिन प्रतिज्ञाका पालन कर जाते हैं।
अरे! प्रतिज्ञा पालनमें वे कभी न पैर हटाते हैं।

वसुमित्रका विवाह हो गया। वह दिनमें पिटारीमें बन्द रहता और रात्रिमें दिव्य पुरुष होकर नागदत्ताके साथ विषय-वासनामें लिप्त रहता। इस प्रकार दोनोंका जीवन व्यतीत होता। पाठक! संसारकी विचित्र लीला है। नागदत्ताकी माता अपनी कन्याकी दुरवस्थापर विचार कर दुःखी होती,वह सोचने लगी कि हाय! मेरी सुन्दरी कन्या, सांपसे ब्याह करदी गयी, मेरी कन्याका भाग्य फूट गया। नागदत्ता अपनी माताकी बात सुन रही थी, उसने कहा, माता, तू व्यर्थमें क्यों चिन्तित हो रही है, मेरे भाग्यमें जैसा बदा है वह होकर रहेगा, इसमें किसीका दोष नहीं है। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि प्रयत्न किया जाय तो मेरे पतिकी वर्तमान हालतमें परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार कहकर नागदत्ताने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी मातासे पतिके सम्बन्धकी सारी बाते कह दी । रात्रि होते ही वसुमित्र सांपका वेष छोडकर एक सुन्दर जवान पुरुष होकर अपनी स्त्रीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उधर समुद्रदत्ता छिपकर सारी घटना देख रही थी, उसने उस समय पिटारी जला दी । बस, वसुमित्र सर्वदाके लिये मनुष्य बना रहा । नाथ ! उसी प्रकार मैंने साधुओंके सर्वदा विष्णु बने रहने देनेके विचारसे आग लगाई थी । यद्यपि महाराज रानीके युक्तियुक्त उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं हुये, उनके दिलमें रानीकी चेष्टाकी कसक रह गई थी, किन्तु उस समय उन्होंने प्रकटमें कुछ कहना उचित नहीं समझा । अपनें क्रोधको वहीं दबा दिया ।

मुनिराजके साथ दुर्व्यवहार

एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिक शिकार करने बनमें चले गये । उन्होंने बनमें यशोधर महामुनिको आतप योग करते देख क्रोधित होकर मुनिके ऊपर खूंखार कुत्ते छोड दिये । महाराजके भयंकर कुत्ते बडे वेगसे मुनिराजके ऊपर दौड पडे किन्तु आश्चर्यकी यह बात हुअी कि भयंकर कुत्ते मुनिराजके पास जाकर उनके तप-प्रतापसे चुपचाप खडे हो गये । जब महाराजने देखा कि उनके भयंकर कुत्ते मुनिराजके सामने जाकर बकरे बन गये तब उनके क्रोधका ठिकाना नहीं था । वे क्रोधमें आकर मुनिराजके तरफ तीर निकाल अन्धाधुन्ध चलाने लगे । मगर धन्य है मुनिराजका प्रभाव महाराजके छोडें हुअे समस्त तीर उनके शरीरमें फूलके समान लगे । मुनिराजके तपस्याका प्रभाव वर्णनातीत है । किन्तु महाराजने तपस्वी मुनिराजके ऊपर अत्याचार कर उसी समय सातवें नरकमें जानेके लिये योग पैदा कर दिया । उस नरककी आयु तैंतीस सागरकी होती है ।

महाराजका पश्चात्ताप

जब महाराज श्रेणिकने मुनिराजके ऊपर अपने कुत्ते तथा तीक्ष्ण बाणोंका तनिक भी असर नहीं देखा तब उनका हृदय मुनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजके प्रति कोमल हो गया। वे अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगे। महाराजने मुनिराजके पास जाकर अपने अपराधके लिये क्षमा मांगना शुरू किया। मुनिराजने उन्हें क्षमाप्रदान कर पवित्र जैनधर्मका उपदेश दिया। फलस्वरूप महाराज श्रेणिकनें उसी सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। पाठकगण, पवित्र सम्यक्त्वके प्रभावसे महाराजके लिये अब प्रथम नरकके भोगनेकी आयु रह गयी जो चौरासी हजार वर्षोंकी होती है।

अन्तिम शुभ परिणाम

अन्तमें महाराज श्रेणिकने श्री चित्रगुप्त महामुनिके पास जाकर क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसके अनन्तर उन्होंने भगवान वर्धमान स्वामीके द्वारा क्षायिक सम्यक्त्वसे शुद्ध होकर अंतिम पूज्य तीर्थंकरका संबंध स्थिर किया। पाठक! महाराज श्रेणिक तीर्थंकर होकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। भगवान जिनेंद्र केवलज्ञानरूपी प्रदीपके समान हैं, जिनेंद्र देव, विद्याधर तथा चक्र-वर्ती तक पूजते हैं उन्हीं भगवानके परम पवित्र उपदेश ग्रहण कर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त कर मोक्षका अधिकारी होता है। अतः ऐसे पवित्र जिन भगवानकी पूजा करना प्रत्येक उच्च मनुष्यका कर्तव्य है।

देखो सम्यक्त्वके प्रभावसे श्रेणिक महाराजने तैंतीस सागर प्रमाण सप्तम नरकके आयुष्कर्म कम कर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। कुछ समय बाद संसार भ्रमणका नाश कर मुक्ति-रमाको प्राप्त करेंगे। सम्यक्त्वका प्रभाव अचिंत्य है। इस प्रकार सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके फलको सुनकर हे भव्य प्राणियो! मिथ्यात्वका वमन कर शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करो।

—इति श्रेणिककी कथा समाप्त—

आगे—दो श्लोकमें अर्हद्भक्तिका माहात्म्य बताते हैं—

एकैवास्तु जिने भक्तिः किमन्यैः स्वेष्टसाधनैः।
या दोग्धि कामानुच्छिद्य सद्योऽपायानशेषतः ॥७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (एक) एक (एव) ही (जिने) जिनेन्द्र भगवानमें (भक्तिः) भक्ति (अस्तु) होवो (अन्यैः) दूसरे (स्वेष्टसाधनैः) अपने इष्ट साधनोंसे (किं) क्या प्रयोजन है, (या) जो जिनभक्ति (अशेषतः) सम्पूर्ण रूपसे (अपायान्) अपायोंको (उच्छिद्य) दूर कर (सद्यः) शीघ्र ही (कामान्) मनोरथोंको (दोग्धि) पूरण करती है ॥७४॥

भावार्थ-भो साधु ! तुम्हारे हृदयमें अरहंत भगवान्के प्रति भावविशुद्धिरूप अन्तरंग अनुराग होवो। जितेन्द्रके प्रति गाढ अनुराग होवो। क्योंकि अकेली जिनभक्ति ही सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ है मुक्तिके लिये परम कारण है। जिनभक्तिके विना सर्व पुरुषार्थ साधन तदाभास है अर्थात् पुरुषार्थाभास है इसलिये दूसरे कारणोंसे क्या प्रयोजन है। यह जिनभक्ति शीघ्र ही स्वर्गादि अभ्युदय और निःश्रेयसपदमें आनेवाले विघ्नोंका नाश कर सम्पूर्ण मनोरथोंको पूरण करती है। इसलिये पुरुषार्थके रूपमें अकेली जिनभक्ति ही बहुत है. ॥७४॥

वासुपूज्याय नमः इत्युक्त्वा तत्संसदं गतः ।
द्विदेवारब्धविघ्नोऽभूत् पद्मः शक्रार्चितो गणी ॥७५॥

अन्वयार्थ- (वासुपूज्याय) वासुपूज्य भगवानके लिये (नमः) नमस्कार हो (इति) इस प्रकार (उक्त्वा) उच्चारण करके (द्विदेवारब्धविघ्नः) धन्वन्तरि-और विश्वलोभ इन देवोंके द्वारा किया गया है विघ्न जिसके लिये ऐसा (पद्मः) पद्म नामका राजा (तत्संसदं गतः) वासुपूज्य प्रभुके समवसरणमें जाकर (शक्रार्चितः) इन्द्रोंके द्वारा पूजित (गणी) वासुपूज्य भगवानका गणधर (अभूत्) हुवा ॥७५॥

भावार्थ- मिथिलानगरीका राजा पद्मरथ धन्वन्तरि और विश्वानुलोभ नामके देवोंके द्वारा, कौएकी आवाज कालसर्पके द्वारा मार्गका उल्लंघनरूप अपशकुन करनेपर भी वासुपूज्याय नमः इस मंत्रका उच्चारण करता हुवा अपने मनमें भगवानकी भक्तिपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृढ रहा। और भगवानके समवसरणमें जाकर वासुपूज्यका गणधर बन गया। धन्वन्तरि और विश्वानुलोम यह दोनों सेठ पुत्र थे। किसी कारणसे धन्वन्तरिने नैग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की और विश्वानुलोभ पंचाग्नि तपने लगा। धन्वन्तरि मरकर स्वर्गमें देव हुवा और विश्वानुलोभ ज्योतिषी देव हुवा। एक दिन दोनों परस्पर मिले। दोनोने अपने अपने धर्मकी प्रशंसा की। दोनोंमें धर्मके विषयमें विवाद हो गया। अन्तमें दोनोंने धर्मकी परीक्षा करनेका निर्णय किया। और धर्मपरीक्षा करनेके लिये मध्यलोकमें आये इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सातवे अध्यायमें जिनदत्तकी कथामें लिखा है। देवोने पद्मरथकी परीक्षा की।

राजा पद्मरथकी कथा

जिन चरणोंमें देवराज, अरु महाराज तक नमते हैं।
जिन चरणोंकी सेवा करके महा पतित तक तरते हैं।
उसी पवित्र भक्तिमें रंगकर जिसका मान बढाते हैं।
वही कथा नीचे लिखता हूँ जो पढकर सुख पाते हैं।

मगध देशान्तर्गत मिथिला नामक नगरीमें राजा पद्मरथ राज्य करते थे। वे परोपकारी, दयालु तथा नीति-निपुण राज नीतिज्ञ थे। एक दिनकी बात है कि राजा पदमरथ शिकार खेलने जंगलमें गये। उन्होंने एक खरगोशके पीछे अपना घोडा दौडाया, किन्तु वह इतनी तेजीसे भागा कि बातकी बातमें राजाकी नजरोंसे ओझल हो गया। राजा मन मारकर रह गया। राजाका घोडा दौडता हुआ कालगुफा नामक गुफाके पास पहुंच चुका था, उसी गुफामें दैवयोगसे सुधर्म मुनिराज तपस्या करते थे। पाठकगण जिस प्रकार तपा हुआ लोहा जलकी बूंदोंसे शांत हो जाता है उसी प्रकार शांत तपस्वी मुनिराजके शुभदर्शनसे पदम महाराजका हृदय गद्‌गद हो गया। महाराज घोडेसे उतर पडे। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिसे मुनिराजको नमस्कार किया। मुनिराजने राजा पद्मरथको धर्मोपदेश देकर उनका मन प्रफुल्लित कर दिया। राजाने हाथ जोडकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीत शब्दोंमें कहा–" मुनिराज ! आप कृपा कर बतावें कि आपके समान कोई मुनिराज इस संसारमें हैं या नहीं, अगर कोई हैं तो किस स्थानपर हैं ? " राजाकी जिज्ञासाभरी बात सुनकर मुनिराजने कहा–" राजन् ! मैं जिन भगवान बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्यकी चर्चा करता हूँ, उनके शरीरका तेज सूर्यके प्रखर तेजके समान है। अुनके रोमरोमसे दिव्य छटा प्रकाशित हो रही हैं। अुनके अनन्य ज्ञानके आगे संसारमें कोई उपमा मिलना असम्भव है। मैं उनके आगे नगण्य हूँ। सच है ऐसे दिव्य अलौकिक पुरुषसे हमारी तुलना हो नहीं सकती। मैं उनके सामने कुछ भी नहीं हूँ ? " अिस प्रकार मुनिराजके निस्पृह वचन सुनकर राजाके हृदयमें भगवान वासुपूज्यके दर्शनकी प्रबल इच्छा हुई। वे भगवानके दर्शनके लिए चल पड़े। महाराजके साथमें अन्य लोग भी दर्शनार्थ चले। उसी समय धन्वन्तरी और विश्वानुलोभ नामक दो देवोंने राजाको भगवान वासुपूज्यके पास जाते देख उनकी परीक्षा लेना शुरू किया। उसी समय दोनोंने घोर उपद्रव करना प्रारम्भ किया। उनके मार्गमें काला सांप मिला। इसके बाद राज्य छत्र दण्डका भंग होना दिखलाई पडा। इसके उपरान्त पत्थर वर्षा शुरू हुई, अग्निकाण्ड हो गया, फिर मूसलधार पानी बरसना शुरू हो गया। महाराजके साथ चलनेवाले अधिकांश आदमी घायल होकर अधमरेसे हो गये। मन्त्रियोंने इन यात्राको अशुभ करनेवाला बताकर महाराजको वापस चलनेके लिये सलाह दी।

दृढ प्रतिज्ञा

किन्तु राजा पद्मरथ अटल बने रहे। उन्होंने दृढ निश्चय कर लिया चाहे जो कुछ परिणाम हो मगर मैं भगवानका पवित्र दर्शन अवश्य करूंगा। इस प्रकार विचार कर अुन्होंने " नमः वासुपूज्याय " कहकर भगवान वासुपूज्यके पास जानेके लिये प्रस्थान कर दिया। देवोंने महाराजकी निश्चल भक्ति देख प्रकट होकर उनकी प्रशंसा की, इसके उपरान्त उक्त देवोंने एक बहुमूल्य हार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और एक योजन तक सुनायी देनेवाली वीणा देकर अपने अपने स्थानपर प्रस्थान किया। सच है–

जिसके शुद्ध हृदयमें बहती जिनप्रभुकी भक्ति गंगा।
सफल मनोरथ वह होता है इसमें नहीं जरा शंका॥

दीक्षा धारण

जिस समय राजा पद्मरथ भगवान वासुपूज्यके पवित्र समवशरणमें पहुँचे उस समय उन्होंने क्या देखा कि भगवान आठ प्रातिहार्योंसे युक्त हैं, अनेक देव, विद्याधर राजे, महाराजे भगवानकी स्तुति कर रहे हैं। भगवान अपने केवलज्ञान द्वारा संसारके समस्त तत्वोंको जानते हुये पवित्र धर्मोपदेश दे रहे हैं। जन्मजन्मान्तरोंके मिथ्या भावोंको नाश करनेवाले भगवान वासुपूज्यके पवित्र दर्शन कर वे गद्‌गद हो गये। राजानें भगवानकी स्तुति कर पूजा की। इसके बाद भगवानने उन्हें पवित्र धर्मोपदेश दिये, जिन्हें सुनकर वे दीक्षा लेकर तपस्वी बन गये। तपस्या द्वारा राजा अवधि तथा मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर भगवान वासुपूज्यके गणधर बन गये।

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिए कि वे भगवान जिनेश्वरकी सच्ची भक्ति कर मिथ्या भावोंको छोड स्वर्ग मोक्षका अधिकारी बने। जिस प्रकार राजा पद्मरथने भगवान जिनेन्द्रकी सच्ची उपासना कर भक्तराजका आसन पाया उसी प्रकार अन्य लोगोंको करना चाहिये। भगवान जिनेन्द्रकी भक्ति करनेसे कितना फल मिलता है, यह वर्णनातीत है। सच है उसीके द्वारा संसारके वैभव, स्वर्ग, मोक्ष तथा अन्य मनोरथ प्राप्त होते हैं। भक्तिके द्वारा ही केवलज्ञानद्वारा संसारका कल्याण होता है। इस प्रकार भगवान वासुपूज्य संसारी जीवोंके कल्याणका भाव प्रदान करें तथा कर्मोंके कारण घोर कष्ट सहनेवालोंका उद्धार करें यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

–पद्मरथ राजाकी कथा समाप्त–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकोऽप्यर्हन्नमस्कारश्चेद्विशेन्मरणे मनः।
सम्पाद्याभ्युदयं मुक्तिश्रियमुत्कयति द्रुतम् ॥७६॥

अन्वयार्थ-(चेत्) यदि (मरणे) मरणके समय (एकः) एक (अपि) भी (अर्हन्नमस्कारः) अर्हन्त भगवानका नमस्कार (मनः) मनमें (विशेत्) व्याप्त हो जाय तो वह नमस्कार मंत्र (अभ्युदयं) किसी महाऋद्धिका (संपाद्य) सपादन करके (द्रुतं) शीघ्र ही (मुक्तिश्रियं) मुक्तिलक्ष्मीको (उत्कयति) उत्कंठित करता है॥७६॥

भावार्थ-मरणके उस समयमें यदि अरिहंत भगवानके प्रति किया गया भाव-नमस्कार क्षपकके अन्तःकरणमें व्याप्त हो जाय तो वह क्षपक उस महामंत्रके प्रभावसे इन्द्रपद, चक्रवर्तीपद आदि पुण्यानुबंधि पुण्यका फल भोगकर अन्तमें दो तीन भवमें मुक्ति-लक्ष्मीको प्राप्त करता है।

स णमो अरहंताणमित्युच्चारणतत्परः।
गोपः सुदर्शनीभूय सुभगाव्हः शिवं गतः ॥७७॥

अन्वयार्थ-(णमो अरहंताणं) णमो अरहंताणं (इत्युच्चारण-तत्परः) इस प्रकार उच्चारण करनेमें तत्पर (सः) वह (सुभगाव्हः) सुभग नामका (गोपः) ग्वाला (सुदर्शनीभूय) सुदर्शन नामका सेठ होकर (शिवं) मोक्षको (गतः) गया ॥७७॥

भावार्थ-सुभग नामका ग्वाला केवल णमो अरहंताणं इतने पदके उच्चारण करते हुये मृत्युको प्राप्त होनेसे 'वृषभदास' सेठके यहां मनोज्ञ रूपवाला अन्तिम कामदेव सुदर्शन नामका सम्यग्दृष्टि पुत्र होकर मोक्षको गया।

सुदर्शन सेठकी कथा

भरतक्षेत्र-अंगदेश-चम्पापुरी नगरीमें धात्रीवाहन नामका एक राजा था: उसकी अभयमती नामकी परम रूपवती रानी थी। इस नगरीके मुख्य सेठका नाम वृषभदास और सेठानी जिन-मती थी। सेठके यहां सुभग नामका ग्वाला नौकर था। एक दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह जंगलसे गायें लेकर घरको लौट रहा था कि रास्तेमें सूरजके डूबनेके वक्त एक मुनि ध्यानारूढ विराजमान दिखलाई दिये। उस समय शीत बहुत पड रही थी। सो मुनिको देखकर उसने सोचा कि आज इस भीषण शीतमें इनकी रात कैसे बीतेगी? इन्हें बडा कष्ट होगा। किसी उपायसे इनका शीतनिवारण करना चाहिये। ऐसा विचार कर वह घर आया और थोडीसी लकडियां और आग लेकर मुनिके पास गया। आग जलाकर रातभर वहीं रहा और मुनिकी शीतवेदना दूर करता रहा। सबेरा होनेपर मुनिने मौनविसर्जन किया और उसे अत्यन्त निकट भव्य जानकर उपदेश दिया कि हे भव्य, तू उठते, बैठते, चलते समय पहले "णमो अरहंताणं" आदि मंत्रका उच्चारण किया कर। फिर स्वयं मुनि "णमो अरहंताणं" ऐसा उच्चारण करके आकाशमार्गसे चल दिये। मुनिराजको आकाशमार्गमें जाते देखकर उक्त मंत्रपर ग्वालाकी बडी भारी श्रद्धा हो गयी। इस कारण वह मुनिराजकी आज्ञानुसार निरंतर भोजनादि संपूर्ण क्रियाओंके पहले णमोकार मंत्रका उच्चारण करने लगा।

एक दिन वृषभदास सेठने पूछा कि तू इस णमोकार मंत्रका उच्चारण निरंतर क्यों किया करता है? ग्वालाने पूर्वोक्त मुनिकी सब कथा कह सुनायी। उसे सुनकर सेठने अत्यन्त प्रसन्नता प्रगट की और अच्छे अच्छे भोजन वस्त्रादिकसे उसे संतुष्ट किया।

एक दिन सुभग ग्वाला गाय भैंसे चराने गया था कि वहां जंगलमें सो गया। इतनेमें किसीने आकर कहा-तेरी गाय भैंसे तो गंगाके पार उतर गयी, तू यहां क्या करता है? यह सुनकर वह तत्काल उठा और पार जानेके लिये गंगामें कूद पडा। कूदते ही एक तीक्ष्ण काठसे उसका पेट फट गया और वह मरणासन्न हो गया। तब उक्त महामंत्रका उच्चारण करके उसने निदान किया कि इस मंत्रके माहात्म्यसे मैं अपने सेठके पुत्र उत्पन्न होऊं। प्राण छोडकर निदानके अनुसार वह जिनमती सेठानीके गर्भमें आया। इस दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेठानीने पिछली रातमें सुदर्शनमेरु, कल्पवृक्ष, देवोंका विमान, समुद्र और अग्नि ऐसे पांच स्वप्न देखे। प्रातःकाल होनेपर जिनमतीने उक्त स्वप्न सेठजीको निवेदन किये और उनका फल पूछा। तब सेठने कहा-चलो, चैत्यालयको चलें, वहां मुनिराजसे इनका फल पूछेंगे। फिर दोनों जिनमन्दिरको गये, और भगवान्‌की पूजा करके सन्तुष्टचित्त हो सुगुप्ति मुनिके पास आये और वन्दना करके बैठ गये। सेठजीके पूछनेपर मुनिराजने कहा कि जिनमतीके गर्भसे सुदर्शन मेरुके दर्शनसें धीर, कल्पवृक्षके देखनेसे लक्ष्मीवान् तथा त्यागी, देव विमानके देखनेसे सुखी, समुद्रके देखनेसे गुणसमुद्र, और अग्निके देखनेसे कामरूप ईंधनका जलानेवाला, इस प्रकार परम सौभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर दम्पति अत्यन्त प्रसन्न हुए और घर आकर सुखसे समय बिताने लगे। नौ महीने पूरे होनेपर पौष शुक्ल चतुर्थीको पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुदर्शन रक्खा। सुदर्शन अपने पडोसी पुरोहितके लडके कपिलके साथ बालक्रीडा करता हुआ बढने लगा।

उसी चम्पापुरीमें सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। उसकी सागरसेना नामकी स्त्रीने एक दिन वृषभदास सेठसे कहा-कि यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी, तो मैं उसका विवाह तुम्हारे सुदर्शनके साथ करूंगी। कुछ दिनोंमें सागरसेनाके गर्भमे एक मनोरमा नामकी अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। और वह भी सुदर्शनके समान दिन दूनी रात चौगुनी बढने लगी।

एक दिन न्याय, व्याकरण, काव्यादि समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण सुदर्शनकुमार अपने जगन्मनोहारी स्वरूपसे लोगोंको मोहित करता हुआ अपने मित्रोंसहित राजमार्ग परसे कहीं जा रहा था कि इतनेमें सोलह शृंगार किये हुये और अनेक सखीजनोंसे घिरी हुई मनोरमा पर उसकी दृष्टि पडी। मनोरमा जिनमन्दिरके दर्शनोंको जा रही थी। उस अनुपम रूपके देखनेसे सुदर्शनकुमार कामबाणसे विद्ध हो गया, अत्यन्त व्याकुल होकर घर आया और किसीसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विना कुछ कहे सुने शय्या पर जा पडा । उसकी यह दशा देखकर उसके मातापिता व्याकुल चित्त हो गये और इसका कारण पूछा, परन्तु उससे सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला । पीछे सुदर्शनके मित्र कपिल भट्टसे पूछनेपर मालूम हुआ कि कुमार मनोरमापर आसक्त हो गया है, इसी कारण वह इतना बेचैन है । तब वृषभदासने मनोरमाकी याचनाके लिये सागरदत्तके यहाँ जानेका विचार किया।

उधर मनोरमा का भी उस दिन यही हाल हो गया । वह भी सुदर्शनकुमारके रूपलावण्यको देखकर मुग्ध हो गयी । सुदर्शनकी विरहरूपी अग्निसे जब उसका सारा शरीर दग्ध होने लगा, तब वह भी घर जाकर चित्तको सम्हाल न सकनेसे शय्या पर जा पडी । सखियोंके द्वारा उसके माता पिता भी पुत्रीकी अवस्थासे परिचित होकर चिन्तित हुये । और बहुत सोच विचारके पश्चात् उसका पिता सागरदत्त वृषभदास सेठके घर अपनी इच्छा प्रगट करनेको आये । सुदर्शनका पिता सागरदत्तके घर जानेको तैयार था ही कि सागरदत्तको स्वयं अपने घर आया हुआ देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और पूछा—हे महाभाग्य, आपका आगमन कैसे हुआ ? सागर-दत्तने विनयपूर्वक कहा—मेरी पुत्रीके साथ आप अपने कुमारका विवाह कर दीजिये, मैं इसी याचनाके लिए आया हूं । यह सुनकर वृषभदासने हर्षित चित्त होकर कहा—जो मैं चाहता था, वही प्यारा विचार आपने भी प्रगट किया, आपको धन्यवाद है । मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है । पश्चात् दोनों सम्बन्धियोंने उसी समय श्रीधर नामके ज्योतिषीको बुलाकरउसके द्वारा वैशाख शुक्ल पंच-मीका शुभ मुहूर्त विवाहके लिये निश्चित करके नियत समयपर मनोरमा और सुदर्शनका मनोवांछित विवाह कर दिया । परस्पर अभूतपूर्व प्रेमसुखका अनुभव करते हुये वे दोनों कालयापन करने लगे और कुछ दिनोंमें उस प्रेमके फलस्वरूप सुकान्त नामके पुत्रको पाकर वे धन्यभाग हुये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन नाना देशोंमें विहार करते हुए समाधिगुप्त नामके परम यति चम्पापुरी नगरीके वनमें पधारे। वनमालीके द्वारा उनका आगमन सुनकर राजा, मंत्री आदि संपूर्ण श्रद्धालु लोग वन्दना करनें गये। वन्दना और धर्मश्रवणके पश्चात् वृषभदास सेठने सुदर्शन पुत्रको राजाकी शरणमें सोंपकर दीक्षा ले ली, और जिनमती सेठानी भी आर्यिका हो गयीं। पश्चात् कालांतरमें दोनों समाधिपूर्वक शरीर छोडकर स्वर्गलोकको गये।

यहां सुदर्शन कुमार घरका मालिक होकर अपने पुत्र सुकान्तको नाना प्रकारकी विद्या पढाता हुआ सबका प्यारा होकर सुखसे रहने लगा। एक समय उसके रूपके अतिशयको सुनकर कपिलभट्टकी स्त्री कपिला अत्यन्त आसक्त हुई और उस से मिलाप करनेके लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन सुदर्शनको अपने घरके पाससे जाते हुये देखकर पहचाना और अपनी सखीसे कहा इसको किसी उपायसे छलकर मेरे पास ले आ। सखी जल्दीसे उसके पास गई और बोली-हे सुभग! आपके मित्र बडे भारी विपित्तमें पडें हुये हैं, और आप उनकी खबर भी नहीं लेते, यह क्या बात है? सुदर्शन सेठ आश्चर्यचकित होकर, "हैं, कपिलभट्ट बीमार हैं? मुझे तो किसीने खबर भी नहीं दी, अन्यथा में आनेसे नहीं चूकता।" ऐसा कहकर उसीके साथ भट्टके घर आये और पूछा कि मेरे मित्र कहां है? बतलाओ। सखीने कहा-वे अटारीपर पडे हैं, आप अकेले वहां जाइये। भोले भाले सुदर्शन सेठ अपने मित्रादिकोंको नीचे बैठाकर आप अकेले ऊपर गये। और वहीं एक पलंगपर चादर ओढे हुये किसीको पडे देखकर बिना जाने उसपर बैठ गये। चादर खींचकर बोले-मित्र, तुझे क्या पीडा है? परन्तु वहां तो विचित्रतासे कपटजाल ही बिछाया गया था। वह कपिला ही पलंगपर पडी हुई थी। चादर खींचते ही उसने इनका वस्त्र पकड लिया और उसके हाथ अपने कुच-युगलोंपर रखकर नम्रतापूर्वक कहा-प्यारे, मै तुम्हारे संयोगके बिना अधमुई हो रही हूं, तुम दयालु हो, कृपा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके प्रणय दान देकर मेरी रक्षा करो, नहीं तो मेरा जीना कठिन है। उस समय सुदर्शन सेठ अपने धर्मकी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर बोले-मैं तो नपुंसक हूँ, केवल बाहरसे देखनेमें रमणीक दीखता हूँ, परंतु मुझमें सार बिलकुल नहीं है। यह सुनकर कपिलाने विरक्त होकर लाचारीसे सेठका वस्त्र छोड दिया और इस प्रकार उस दिन बडी कठिनतासे अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके सेठजी अपने घर आ गये और सुखसे रहने लगे।

एक बार वसंतके उत्सवमें राजादिक समस्त प्रतिष्ठित पुरुष बाहर बागोंमें क्रीडा करने गये और महारानी अभयमती भी अपनी कपिला सखी और समस्त अंतःपुरकी स्त्रियोंसहित पुष्पक रथपर चढकर बागको चलीं। मार्गमें ऊन्होंने एक रथपर बैठी हुओ और गोदमें सुकांत पुत्रको लिये हुअे मनोरमाको देखा। पूछा-यह किसकी भाग्यवान स्त्री है, जिसकी गोदमें बालक बैठा हुआ है? किसीने कहा कि यह सुदर्शन सेठकी स्त्री और सुकांत कुमारकी माता मनोरमा है। यह सुनकर अभयमतीने कहा-इसको धन्य है, जो ऐसे सुंदरपुत्रकी माता हुओ। परंतु कपिलाको इससे बडा आश्चर्य हुआ। उसने कहा-जी, मुझे तो किसीने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है, तो फिर उसके यह पुत्र कहांसे हो गया? अभयमतीने कहा-सुदर्शनसरीखे रूप-सौभाग्यवाली पुण्यवान पुरुषको कहीं ऐसी लज्जाजनक व्याधि हो सकती है? कभी नहीं। तुझसे किसी दुष्टने ऐसा कह दिया होगा। इसपर कपिलाने नपुंसक कहनेकी सारी गुप्तकथा कह सुनायी। रानीने कहा-तू मूर्खा है, इसलिये उसने उस समय तेरेसे ठगाई की होगी, यथार्थमें वह ऐसा नहीं है। इसपर कपिला बोली-अच्छा मैं ब्राह्मणी मूर्खा ही सही, परंतु अब आप तो बडी पंडिता हैं, आपका जीवन भी मैं तब सफल समझूं जब आप उससे संभोग कर लेवें, अन्यथा व्यर्थ ही है। यह सुनकर रानीने कहा-"इसके साथ सुखका अनुभव करूंगी तब ही जीऊँगी, अन्यथा प्राण छोड दूंगी"। ऐसी प्रतिज्ञा करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्यानको गमन किया। वहां जलक्रीडा करनेके बाद वह महलोंमें आकर व्याकुल चित्त हो शय्यापर पड गयी। यह देख उसकी पंडिता धायने पूछा–बेटी, तू आज इतनी व्याकुल और चिन्तामें क्यों है? अभयमतीने हृदयका सच्चा हाल कह सुनाया।

पंडिताने कहा–यह तूने बुरा विचार किया, क्योंकि सुदर्शन सेठ अखंड एक-पत्नीव्रतका धारण करनेवाला है। वह अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। परस्त्रियोंसे संभोग तो दूर रहा, वह अुनकी वार्ता भी नहीं करता। इसके सिवाय राजमहलके सातों दरवाजोंपर पहरेदार भी निरंतर बैठे रहते हैं, इसलिये किसी प्रकारसे उनको उल्लंघन करके उसका यहां लाना भी दुर्घट है और ऐसा करना अनुचित भी है। सो तू इस व्यर्थ विचारको छोड दे। यह सुनकर कामवती अभयमतीने एक लम्बी आह खींचकर कहा–यदि उसका संगम न होगा तो क्या मेरा मरण भी न हो सकेगा? अर्थात् यदि उससे मिलाप न होगा, तो अब मैं जीती नहीं रहूँगी। रानीका इस प्रकार बडी भारी हठ देख पंडिताने पीछेसे कुछ सोचकर दिलासा दी कि मैं उपाय करती हूँ। ऐसा कहकर यह एक कुम्हारके घर गई और उससे पुरुषके आकारके सात मिट्टीके पुतले बनवाये। इसके बाद प्रतिपदाकी रात्रिको उनमेंसे एक पुतला कंधेपर रखकर रानीके महलको चली, परंतु द्वारपर पहुंचते ही द्वारपालने उसे रोका। तब पूछा–क्या मुझे भी महारानीके महलमें जानेकी मनाई है? द्वारपालने कहा–हाँ! इतनी रात्रिको सभीके जानेको मनाई है। इस समय कोई प्रवेश नहीं कर सकता। पंडिता यह सुनकर भी नहीं मानी और जबर्दस्ती भीतर जाने लगी। तब द्वारपालने एक धक्का देकर उसे बाहर करना चाहा, परंतु धक्केके लगते ही वह पुतलेसहित गिर पडी और हाय! हाय! करके बोली–आज महारानीका उपवास है, वे इस मिट्टीके बने कामदेवकी पूजा करके रात्रि जागरण करेंगी और उसे तूने पटककर तोड डाला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब देखना, प्रातःकाल तेरी कैसी दुर्दशा कराती हूं ? तेरा सकुटुंब नाश कराऊँगी।

ये बातें सुनकर बेचारा द्वारपाल भयभीत होकर उसके पांवोपर पड गया और गिडगिडाकर बोला—आज तो क्षमा कर, आगे कभी तुझसे छेडछाड नहीं करूँगा। यह सुन पंडिता लौटकर अपने घर गयी और दुसरे दिन दुसरा पुतला लेकर रात्रिको दूसरे दरवाजेसे आई और वहा भी इसी प्रकार ढोंग करके वहांके द्वारपालको वशमें कर लिया। इस प्रकार सातों द्वारपालोंको अपना चेला बनाकर पंडिता आठवे दिन अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये चली।

उस दिन सुदर्शन सेठके अष्टमीका उपवास था। अतः वे सूर्यास्तके समय स्मशानभूमिमें जाकर प्रतिमायोग धारण किये हुये विराजमान थे। पंडिताने रात्रिको वहां जाकर उनसे कहा—सेठजी, आप धन्य हो, जो आपपर महारानी अभयमति आसक्त हुयी है। आप मेरे साथ इसी समय चलें और राजमहलमें उसके साथ दिव्य भोगोंका अनुभव करें। ससारमें भोगानुभवन ही सार है। यह यौवनकी बहार सदा नहीं रहती, यहां स्मशानमें बैठकर शरीरशोषण करने (सुखाने) से क्या लाभ होगा? ऐसे नाना प्रकारके वचनोंसे उसने सेठजीका चित्त चलायमान करना चाहा, परंतु जब वे धीरवीर मेरुके समान सर्वथा अचल रहे तब चांडाली पंडिताने उन्हें उठाकर कंधेपर रख लिया और राजमहलके द्वारोंका उल्लंघन करके अभयमतीकी सेजपर लाकर रख दिया। द्वारपालोंने यह समझा कि आज भी यह किसी पुतलेको लिये जाती है, चूं भी नहीं की।

अभयमतीने अपनी शय्यापर अपने अभीष्ट (जिसकी इच्छा थी उस) पुरुषको पाकर उसके साथ काम-विकारोंकी स्त्रीसुलभ नाना चेष्टायें की, परंतु परम इंद्रियजित सुदर्शन मेरुके समान तनिक भी विचलित नहीं हुये। तब अभयमतीने खिन्न और विरक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर पंडितासे कहा-इसको वहीं स्मशानमें ही ले जाकर रख आओ। पंडिताने झरोखोंमेंसे बाहर देखकर कहा कि सबेरा हो गया है, अब इसे वहाँ कैसे ले जाऊँ ? क्या करूँ ? बडी कठिनता उपस्थित है। अभयमतीने देखा कि अब कोई उपाय नहीं सूझता है,तब सुदर्शनको वहीं शय्याके निकट कायोत्सर्ग खडा करके उसने स्वयं नोचकर अपने शरीरमें बहुतसे नखोंके चिन्ह कर लिये और ऊँचे स्वरसे पुकार पुकार कर रोना शुरू किया। हाय! हाय! मुझ शीलव-तीका शरीर इस पापीने विध्वंस कर दिया। हाय! अब मैं क्या करूँ ? यह सुन किसीने जाकर राजासे कह दिया- महाराज ! सुदर्शन सेठने महारानीके महलमें बडा अत्याचार किया है। राजा सुनते ही क्रोधसे उन्मत्त (मतवाला) हो गया। अत: विना सोचे समझे ही उसने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि उस दुष्टको स्मशान भूमिमें ले जाकर मार डालो। आज्ञानुसार सेवक लोग निरपराधी सेठकी चोटी पकडकर घसीटते हुए स्मशानमें ले गये और वहां उन्हें तलवारोंसे मारने लगे। परन्तु ज्यों ही तलवारें उनके कंठ पर पडी कि वे फूलोंकी माला हो गई ! इस पर दूसरोंने और भी हथियार चलाये, परन्तु वे भी जिनधर्म और ब्रह्मचर्य व्रतके प्रभावसे पुष्पादिक रूप हो गये। साधु पुरुषपर उपसर्ग होता हुआ जानकर एक यक्षने उसी समय वहां प्रगट होकर प्रहार करते हुये राजाके नौकरोंको जहाँ का तहां कील दिया। राजा नौकरोंका यह हाल सुन और भी क्रुद्ध हुआ। उसने जाना कि सुदर्शनने ही अपने मंत्रके प्रभावसे यह सब किया है। अत: और भी अनेक सेवकोंको मारनेके लिये भेजा, परन्तु उनकी भी वही दशा हुई अर्थात् वे भी कील दिये गये। तब राजा स्वयं बडी भारी सेना लेकर सुदर्शनको मारनेके लिये चला।

उधर यक्षने भी अपनी मायासे चतुरंग सेना तैयार कर ली और दोनों ओरके योद्धा रणके मैदानमें व्यूह प्रतिव्यूहके क्रमसे आ खडे हुये। दोनों सेनाओंमें संसारको चमत्कृत करनेवाला घनघोर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युद्ध होने लगा। बहुत समयके बाद जब दोनों हाथीपर चढ सम्मुख हुओ। देव ने कहा- राजन्, अब तू मत मर। मैं देव हूँ। मुझपर तू विजय नहीं पा सकेगा। अभी भी समझ जा, और सुदर्शनकी चिंताको छोड दे। तू उस धर्मात्माको दुःख नहीं दे सकेगा। इसलिये अपने स्थानपर जा और सुखसे राज्य कर। राजाने इसके उत्तरमें गर्जकर कहा- यदि तू देव है, तो क्या हुआ? देव क्या राजाओंके किंकर नहीं होते हैं ? युद्ध कर, फिर दिखाता हूँ मैं तुझे अपनी भुजाओंका पराक्रम। इस तरह दोनोंका वचन युद्ध हो चुकनेपर शस्त्रयुद्ध प्रारभ हुआ। राजाने बडे वेगसे बाणोंकी बौछार करना शुरू की और यक्षके हाथीको छिन्न करके शीघ्र ही गिरा दिया। तब यक्ष दूसरे हाथीपर चढकर उसके प्रतापको देखकर अत्यन्त आनन्दित होता हुआ पुन: युद्ध करने लगा। अबकी बार राजाका हाथी धराशायी हुआ, और तब वह भी दुसरे हाथीपर चढकर फिर लढने लगा, पश्चात् यक्षने राजाकी ध्वजा तथा छत्रको छेदकर हाथीको प्राणरहित कर दिया। तब वह रथपर आरुढ होकर सम्मुख हुआ और यह देख यक्ष भी अपने हाथीको छोडकर एक दूसरे रथपर चढ दौडा। विद्यामयी बाणोंसे दोनोंमें तीनों लोकोंको स्तम्भित करनेंवाला घनघोर युद्ध हुआ। आखिर बहुत समयके पीछे राजाने यक्षके रथको खंडित कर दिया और उसे जमीनमें गिराकर मार डाला। परंतु देखता है कि मरकर यक्ष एक के दो हो गये। उन्हें भी मारा तो चार हो गये। इस प्रकार दूने दूने होने होते सारी रणभूमि भर गई। तब राजा इस मायासे डरकर भागनेकी सोचने लगा, परन्तु भाग नहीं सका। यक्ष पीछे लग गया। उसने कहा तू- भागकर जावेगा कहाँ ? आज यदि तू सुदर्शन शेठकी शरणमें जावेगा, तो जीवित रह सकता है, नहीं तो तुझे अभी परलोकको पहुँचाता हूँ। तब राजा दुसरा उपाय न देखकर सेठजीकी शरणमें आया और बोला-सेठजी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो ! तब सेठने हाथ उठाकर यक्षको रोका और पूछा आप कौन हैं, जो हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हैं ? यक्षने सेठजीको नमस्कार किया और अपना स्वरूप और आनेका कारण प्रगट किया। पश्चात् राजाको अभयमतीकी कुटिलताका वृतान्त कहकर उसकी संपूर्ण सेनाको जीवित किया और अन्तमें सेठजीको पुनः नमस्कार करके तथा ऊपर पुष्पवृष्टयादि करके वह स्वर्गलोकको चला गया।

उधर जब अभयमतीने जाना कि मेरा भंडाफोड हो गया तब वृक्षसे एक कपडा बाँधकर, उसमें लटककर अर्थात् फाँसी लगाकर मर गयी और पाटलीपुत्र (पाटना) नगरमें जाकर व्यन्तरी हुयी। उधर पंडिताने जब देखा कि रानीकी पूरी दुर्दशा हो गयी और अब मेरी बारी आयी है। तब वह वहाँसे भागकर, उसी पाटलीपुत्र नगरमें देवदत्ता नामकी वेश्याके घर जा रही और उससे अपनी पूर्वकी सब कथा कह सुनायी। देवदत्ताने उसे सुनकर कपिला और अभयमतीकी खूब हँसी की और स्वयं प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सुदर्शन सेठको देख पाऊँ और उसी समय उसके रूपको नष्ट न कर डालूं तो मेरा नाम देवदत्ता नहीं।

यहाँ राजाने सुदर्शन सेठसे नम्र होकर कहा कि अज्ञानतासे मैंने जो आपका अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये और मैं अपना आधा राज्य आपको समर्पण करता हूँ, उसे ग्रहण कीजिये। इसके उत्तरमें सेठने कोमल वचनोंसे कहा—इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। मेरे पूर्वकृत कर्मोंका फल मुझे मिला है और आप जो कृपा करके आधा राज्य मुझे देते हैं, वह भी मैं ग्रहण नही कर सकता। क्योंकि जिस समय मुझे आपकी महारानीने स्मशानसे उठाकर मंगवाया था, उस समय मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि इस उपसर्गके पश्चात् जीवित रहूँगा, तो पाणिपात्रमें (हाथके बर्तनमें) ही भोजन करूँगा, अर्थात् दिगम्बर मुनि हो जाऊँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सुनकर भी महाराजने बहुत आग्रह किया, परंतु दृढव्रती सुदर्शनने संसारमें रहना स्वीकार न किया।

उन्होंने जिनमंदिरमें जाकर भक्तिभावसहित भगवान्‌की पूजा की और पश्चात् विमलवाहन नामके यतिकी वंदना करके उनसे पूछा–भगवन्, मनोरमाके ऊपर मेरा अत्यंत मोह क्यों हैं ? कृपा करके इसका कारण बताइये। मुनि कहने लगे:–

विंध्य देशके काशीकौशलपुरमें भूपाल नामका राजा और वसुंधरा नामकी उसकी रानी थी। दोनोंके फलस्वरूप एक लोकपाल नामका पुत्र हुआ। एक दिन राजाने सिंहद्वारपर बहुतसी प्रजाको रोती चिल्लाती देखकर पूछा–ये मेरी प्रजा क्यों दुःखी हो रही है ? अनंतबुद्धि मंत्रिने कहा–महाराज, यहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर एक विंध्यगिरी नामका पर्वत है। उसमें एक व्याघ्र नामका भील रहता है, वह प्रजाको आकर सताया करता है, इस कारण प्रजा पुकार कर रही है। यह सुनकर एक बडी भारी सेनासहित अनंत नामके सेनापतिको उसे पकडनेंके लिये भेजा। परंतु प्रचंड भीलने अपने बाहुबलसे उसे हरा दिया। तब राजा स्वयं उसपर चढाई करनेको तैयार हुआ। यह देख लोकपाल पुत्रने उन्हें रोका और यह कहकर कि समर्थ पुत्रके मौजूद होते हुये पिताको इस कार्यके लिये जानेकी आवश्यकता नहीं हैं, वह भीलपर चढाई करने गया और शीघ्र ही उसे यमपुरको भेजकर निश्चिंत हो गया।

भील मरकर वत्सदेशके किसी एक ग्राममें कुत्ता हुआ और उसकी कुरंगी स्त्री कुत्ती हुई। वे दोनो वहांसे कोशाम्बी नगरीमें जाकर एक जिनमंदिरका आश्रय पाकर रहने लगे। कुत्ता अन्तमें पर्याय पूर्ण करके चम्पापुरीमें लोध नामकी जातिविशेषमें सिंहप्रिय और सिंहनीके पुत्र उत्पन्न हुआ। बाल्यावस्थामें ही मातापिता उसे छोडकर मर गये। पश्चात् कितनेक दिनमें उस पर्यायको भी छोडकर भील चम्पापुरीमें वृषभदास सेठके सुभग नामका ग्वाला हुआ, जो कि चारण मुनिके द्वारा णमोकार मंत्र पाकर संपूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्योंमें उक्त मंत्रका उच्चारण किया करता था। उसी श्रद्धावान ग्वालाने मरते समय तुम्हारी पर्याय पाई है, अर्थात् तुम पूर्व जन्ममें सुभग ग्वाला थे।

उधर वह कुरंगी भीलनी शरीर छोडकर वाराणसीमें भैंस हुई। और वहाँसे मरकर चम्पापुरीमें साँवल नामक धोबीकी यशोमती स्त्रीके वत्सिनी नाम की कन्या हुई। सो एक आर्यिकाके संसर्गसे पुण्योपार्जन कर आयुके अन्तमें मरण करके तेरी मनोरमा प्रिया हुई।

मुनिराजके मुखसे अपने भवान्तर और मनोरमाके स्नेहका कारण सुनकर सुदर्शन सेठ संतोषित हुआ। पश्चात् मनोरमादिक सम्पूर्ण कुटुंबको छोडकर और राजादिकोंसे क्षमा कराकर वह वहाँ हीं दीक्षित हो गया। यह देख राजाको बडा वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिये वह भी अपने पुत्रको राज्यभार सोंपकर और सुदर्शनसेठके सुकान्तपुत्रको राज्यश्रेष्ठीका पद देकर सुदर्शनके साथ ही दीक्षित हो गया। पश्चात् उनके अन्तःपुरकी बहुतसी रानि-योंने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये।

सम्पूर्ण मुनियोंने उसी नगरमें पारणा किया। पश्चात् गुरुवर्यके साथ नाना स्थानोंमें विहार करते हुये सुदर्शन मुनीने सम्पूर्ण आगमोंका ज्ञान लाभ कर लिया और पश्चात् गुरुकी आज्ञा-पूर्वक एकाकी विहार करना प्रारंभ किया। नाना तीर्थ स्थानोंकी वन्दना करके एक बार वे चर्याके लिये बे पाटलीपुत्र नगरमें गये सो वहाँ अचानक पापिनी पंडिताने देखकर उन्हें पहचान लिया और देवदत्तासे आकर कहा कि जिसकी कथा मेंने तुमसे कही थी वह सुदर्शन मुनि ये आ रहा है। अपनी पूर्व प्रतिज्ञाको स्मरण करके धोखा देकर मुनिको भोजन करनेके लिये उसने आव्हान किया। निष्कपट मुनि उस पापिनीके जालको नहीं समझ सके, और आहारके लिये ठहर गये। देवदत्त ने उन्हें ले जाकर हठात् शय्यापर पकडकर बैठा लिया और वेश्यासुलभ सैकडो चाटुक वचन कहकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रारंभ किया– प्यारे, तुम अभीतक परम यौवन अवस्थाको धारण किये हुयें हो । अभी यह तपस्या तुम्हारे योग्य नहीं है । मेरे पास अटूट धन है । मेरे साथ कुछ रमण करके उसे भोगो और मेरी इच्छाको पूर्ण करो ।

वेश्याका यह प्रलाप सुनकर परम निश्चल और धीर वीर सुदर्शन मुनि बोले;– हे मुग्धे! (मूर्खिणी) यह अपवित्र शरीर दुःखोंका घर, वात, पित्त, कफ इन त्रिदोषोंसे पीडित, कृमिकुलसे परिपूर्ण और विनश्वर है । यह सांसारिक भोगोपभोगोंके अनुभवन करनेंके लिये नहीं है, किन्तु परलोकसिद्धिकी सहायताके लिये है । अत एव इसे तपस्यामें ही लगाना चाहिये । ये सम्पूर्ण भोगोपभोग अविचारितरम्य और दुःखान्त है । इनसे प्राणीको कभी संतोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती है । मोक्षके अतिरिक्त अन्यत्र सुख नहीं है, और वह तपस्याके बिना प्राप्त नहीं हो सकती । सो हे मूर्खे ! अब तू इस दुष्कृत्यसे अपनेको बचा और कुछ अपना कल्याण कर ।

यह सुन देवदत्ताने यह कहकर कि " यह सब पीछे करना और पीछे ही उपदेश देना । अभी वह समय नहीं है ।" सुदर्शन मुनिको अपनी सुकोमल शय्यापर लिटा लिया । परंतु मुनिने उस समय सन्यास धारण कर लिया और प्रतिज्ञा कर ली कि यदि इस उपसर्गका निवारण हो जावेगा, तो आहारादि ग्रहण करूँगा,अन्यथा सर्वथा त्याग है । और नगरीमें प्रवेश करनेकी भी प्रतिज्ञा ले ली । परंतु वेश्याने उनका पिंड न छोडा, उसने तीन दिनतक कामविका- रोंकी नाना चेष्टायें की, परंतु जगज्जयी कामको जीतनेवाले सुदर्शन मुनि मेरुके समान सर्वथा निश्चल रहे । आखिर वेश्या लाचार और निरुपाय होकर रात्रिको उन्हें स्मशान भूमिमें ले जाकर कायोत्सर्गपूर्वक स्थापन कर अपने घर चली आई ।

इतनेमें वह व्यंतरी जो पूर्वमें जन्ममें अभयमती थी, वहांसे कहीं जा रही थी । सो मुनिके उपर विमान अटकनेसे नीचे उतरी और सुदर्शनको पहिचानकर बोली–रे सुदर्शन ! तेरे प्रेममें फँसकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और तज्जनित आर्तध्यानसे मरकर मैंने यह व्यतंर पर्याय पायी है। उस समय तो तू किसी देवकी सहायतासे बच गया था, परंतु बतला, इस समय यहाँ तेरी रक्षा करनेवाला कौन है? यह कहकर नाना प्रकारके उपसर्ग करने लगी। तब मुनिराजके पुण्यप्रभावसे उसी यक्षने आकर रक्षा की। व्यंतरीके साथ यक्षका सात दिनतक घोर युद्ध हुआ और आखिरी व्यंतरी हारकर पलायमान कर गयी।

यहाँ सुदर्शन मुनि कठिन तपस्याके फलसे केवलज्ञान प्राप्त करके गंधकुटीरूप समवसरणादिकी विभूतिसे युक्त हुअे। उनके केवलज्ञानके अतिशयको देखकर व्यंतरी सम्यग्दृष्टी हो गई और पंडिता तथा देवदत्ताने दीक्षा ग्रहण कर ली। उधर मनोरमा सुदर्शन केवलीको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सुनकर वंदनाको आयी और पुत्रादिकोंसे मोह छोडकर वह भी वंदनापूर्वक आर्यिका हो गयी। उसके साथ और भी अनेक पुरुष और स्त्रियां दीक्षित हुअी। पश्चात् सुदर्शन मुनि भव्यजनोंके पुण्यकी प्रेरणासे कुछ काल विहार करके पौष शुक्ल पंचमीको मोक्ष पधारे।

धात्रीवाहनादि राजा जो मुनि हो गये थे, उनमेंसे अनेक सौधर्म स्वर्गको गये, अनेक ईशानको, इस प्रकार सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त गये। आर्यिकायें भी सौधर्म, अच्युतादि कल्प स्वर्गोंमें देव और कोई कोई देवी अपनी अपनी तपस्या और परिणामोंकी उज्ज्वलताके अनुसार हुअी।

सारांश—इस प्रकार एक ग्वाला भी णमोकार मंत्रके प्रभावसे सुदर्शन मुनि होकर अविनाशी सुखको प्राप्त हुआ। अन्य जन इसका पाठ करें, तो क्यों न संपूर्ण इच्छित सुखोंको पावें? अवश्य ही पावें।

णमोकार मंत्रका अचिंत्य माहात्म्य है। यह महामंत्र संसारका सार है-जन्म मरणरूप संसारसे छूटनेका सुकर अवलम्बन और सारतत्व है, तीनों लोकमें अनुपम है- इस मंत्रके समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मंत्र नहीं है, अतः यह तीनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकोंमें अद्भुत है, समस्त पापोंका शत्रु है। जिस प्रकार अग्निका एक कण घास-फूस-लकडी आदिके बडे बडे ढेरोंको जलानेमें समर्थ है, उसी प्रकार यह मंत्र भी सभी पापोंको नाश करनेमें समर्थ होनेसे पापारि है।

यह मंत्र प्राणियोंके भावसंसारके कारणभूत रागद्वेषादि तथा द्रव्यसंसारके कारणभूत ज्ञानावरणादिक कर्मोंका नाशक होनेसे संसारोच्छेदक है। इस मंत्रके प्रभावसे सभी प्रकारकी विष-बाधायें दूर हो जाती है। इस मंत्रका भावसहित उच्चारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, इसलिये यह कर्मनिर्मूलक है। भावसहित तथा विधिसहित इस मंत्रका अनुष्ठान करनेसे सभी प्रकारकी लौकिक और अलौकिक सिद्धियां प्राप्त हो जाती है। दुर्लभ और असंभव कार्य भी इस महामंत्रकी साधनासे पूर्ण हो जाते हैं। यह मंत्र मोक्षसुखको उत्पन्न करनेवाला है, इसके जापसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसलिये केवलज्ञान मंत्र कहलाता है।

यह णमोकार मंत्र देवोंकी विभूति और सम्पत्तिको आकृष्ट कर देनेवाला है। मुक्तिरूपी लक्ष्मीको वश करनेवाला है। चतुर्गतिमें होनेवाले सभी तरहके कष्ट और विपत्तियोंको दूर करनेवाला है। आत्माके समस्त पापोंको भस्म करनेवाला है, दुर्गतिको रोकनेवाला है। मोहका स्तंभन करनेवाला है। विषयासक्तिको घटानेवाला है। आत्मश्रद्धाको जाग्रत करनेवाला है और सभी प्रकारसे प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला है।

यह मंत्र तत्काल शुभपुण्यका आश्रव करता है तथा अशुभोदयके प्रभावको क्षीण करता है तथा सम्यक्त्वकी वृद्धिमें सहायक होता है, मनुष्य जीवनभर पापास्रव करनेपर भी अंतिम समयमें इस महामंत्रके स्मरणके प्रभावसे स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त कर लेता है।

इसलिये इस मंत्रका माहात्म्य बतलाते हुये कहा गया है—

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तु शतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः॥ —ज्ञानार्णव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यंच पशु-पक्षी जो मांसाहारी क्रूर हैं, जैसे सर्प सिंहादि जीवनमें सहस्र प्रकारके पाप करते हैं, तथा इनमें क्रोध मान माया और लोभ कषायोंकी तीव्रता होती है, फिर भी अन्तिम समयमें किसी दयालु-द्वारा णमोकार मंत्रका श्रवण करने मात्रसे उस निंद्य तिर्यंच पर्यायका त्याग कर स्वर्गमें देवगतिको प्राप्त होते हैं।

नवकार इक्कक्खरं पावं फडेई सत्त सायराणं।
पन्नासं च पएण सागर पण्णासया समग्गेणं।
जो गुणइ लक्खमेगं पूएइ जिणं नमुक्कारं।
तित्थयर नामगोदं सो बंधइ णत्थि संदेहो॥

णमोकार मन्त्रके एक अक्षरका भी भावसहित स्मरण करनेसे सात सागर तक भोगे जानेवाले पाप नष्ट हो जाते हैं। एक पदका भावसहित स्मरण करनेसे पचास सागर तक भोगे जानेवाले पापोंका नाश होता है। और सम्पूर्ण मन्त्रका भक्ति भावसहित विधिपूर्वक स्मरण करनेसे पांचसो सागर तक भोगे जानेवाले पापोंका नाश हो जाता है। और भक्तिसहित इस मन्त्रका एक लाख जप करता है वह आगे जाकर तीर्थंकर होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

योऽसंख्यदुःखक्षयकारणस्मृतिः।
य ऐहिकामुष्मिक सौख्यकामधुक्॥
यो दुष्षमायामपि कल्पपादो,
मंत्राधिराजः स कथं न जप्यते।
न यद्दीपेन सूर्येण चन्द्रेणाप्यपरेण वा।
तमस्तदपि निर्नाम स्यान्नमस्कारतेजसा।

भावसहित स्मरण किया गया यह णमोकार मन्त्र असंख्य दुःखोंका क्षय करनेवाला है, तथा इहलौकिक और पारलौकिक समस्त सुखोंको देनेवाला है। और तो क्या, इस पंचमकालमें कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला यह मन्त्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः संसारी प्राणियोंको इसका जप अवश्य करना चाहिये। जिस अज्ञान पाप और संक्लेशके अन्धकारको सूर्य, चन्द्र और दीपक दूर नहीं कर सकतें हैं, उस गाढ अन्धकारको यह मंत्र नष्ट कर देता है। इसलिये अचिंत्य माहात्म्यवाले णमोकार मन्त्रका निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

आगे- तीन श्लोंको द्वारा ज्ञानोपयोगके माहात्म्यका वर्णन करते हैं-

स्वाध्यायादि यथाशक्ति भक्तिपीतमनाश्चरन्।
तत्कालिकाद्भुतफलादुदर्के तर्कमस्यति ॥७८॥

अन्वयार्थ- (यथाशक्ति) अपनी शक्तिको न छिपाकर (भक्तिपीतमनाः) भक्तिसे अनुरंजित है चित्त जिसका ऐसा होकर (स्वाध्यायादि) स्वाध्यायादि मुनियोंके षट् आवश्यकोंका (चरन्) पालनेवाला (तत्कालिद्भुतफलात्) उसी समयमें होनेवाले अद्भुत फलकी प्राप्तिके योगसे (उदर्के) उत्तर कालमें (तर्कं) अद्भुत फलके विषयमें संशयको (अस्यति) दूर कर देता है।

भावार्थ- भक्तिसे अनुरंजित होकर तथा अपने बल वीर्यको न छिपाकर जो यति मुनियोंके स्वाध्याय बंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान समता आदि षट्कर्मोंको करता है, वह अपने आवश्यक कर्मोंके करनेसे प्राप्त होनेवाले चिदानन्दके फलके द्वारा आगममें कथित स्वाध्यायादिकके फलके विषयमें किसीको भी संशय नहीं होने देता है।

शूले प्रोतो महामंत्रं धनदत्तार्पितं स्मरन्।
दृढसूर्यो मृतोऽभ्येत्य सौधर्मात्तमुपाकरोत् ॥७९॥

अन्वयार्थ- (शूले) शूलीपर (प्रोतः) चढाया हुआ (दृढसूर्यः) दृढसूर्य नामका चोर (धनदत्तार्पितं) धनदत्तसेठके द्वारा दिये हुये (महामंत्रं) महामंत्रका (स्मरन्) स्मरण करता हुवा (मृतः) मरा कर (सौधर्मात्) सौधर्मस्वर्गसे (अभ्येत्य) आकर (तं) उस धनदत्त सेठका (उपाकरोत्) उपकार किया ॥७९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–शूलीपर लटकते हुये दृढसूर्य नामके चोरको धनदत्त सेठने महामंत्र णमोकार मंत्र दिया था। वह दृढसूर्य उस मंत्रका स्मरण करता हुवा मरा और मरकर सौधर्म स्वर्गमें महाऋद्धि-धारक देव हुआ। तथा अनन्तर सौधर्म स्वर्गसे आकर राजा तथा राजाके कर्मचारियोंके द्वारा किये गये उपसर्गको दूर किया। महा-मंत्रका अनुचिन्तवन ही महास्वाध्याय है।

कोई भी विकारग्रस्त प्राणी विकाररहित आदर्शको सामने रखकर अपने भीतर दृढ संकल्प और स्फूर्ति उत्पन्न कर सकता है, चिदानन्द शांतमुद्राका चित्र अपने हृदयमें स्थापित करनेसे विकारोंका शमन होता है। वीतरागी, शांत, अलौकिक, दिव्यज्ञान-धारी, अनुपम शिव और अनंत शक्तिशाली आत्माओंका ध्यान करनेसे मिथ्याबुद्धि दूर हो जाती है। दृष्टिकोणके बदलनेसे रागद्वे-षकी भावनाऐं निकल जाती है और आत्मिक विकास होने लगता है।

णमोकार मंत्र ऐसा मंगल वाक्य है, जिसमें द्वादशांग वाणीका सारभूत दिव्यात्मा पंचपरमेष्ठीका पावन नाम निरूपित है। इस नामके श्रवण, मनन, चिन्तन और स्मरणसे कोई भी व्यक्ति अपने रागद्वेषरूप विकारोंको सहजमें पृथक् कर सकता है। विकारोंको परिष्कार करनेके लिये पचपरमेष्ठीके आदर्शसे उत्तम कोई आदर्श नहीं हो सकता। इसलिये ध्येयोमें भी सर्वोत्कृष्ट महामंत्र है और स्वाध्यायमें भी सर्वोत्कृष्ट स्वाध्याय णमोकार मंत्रका अनुचितवन है। इस मंत्रका अन्तमें अनुचिन्तन करते हुये मरनेवाला सप्तव्यसनी दृढसूर्य चोर स्वर्गपदको प्राप्त हुवा।

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुं।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥

एक भी जिनभक्ति सम्पूर्ण दुर्गतियोंको नाश करनेवाली है और सम्पूर्ण पुण्योंको पूरित करके भव्यको मुक्तिश्री देनेवाली है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृढसूर्यकी कथा

पाठक, केवल ज्ञान मार्गसे, अखिल तत्त्व जाने जाते।
जो है स्वर्ग-मोक्ष सुखदाता, जिसे प्राप्त कर सुख पाते ॥
श्री जिन-प्रभुको नमस्कार कर, लिखता सूर्य कहानी।
ज्ञान प्रभाव गया स्वर्गोंको हुआ देवदुर्लभ प्राणी ॥

किसी समय, उज्जयिनी नगरीमें राजा धनपाल राज्य करते थे। वे बडे विख्यात राजा थे। धनमती अुनकी रानी थी। एक दिन रानी अपनी दासीके साथ उपवनमें बसन्तकी बहार लूटने चली गयी। उसी समय वहांकी नामी वेश्या बसन्तसेना भी वहां मौजूद थी। उक्त वेश्याने रानीके गलेमें सुन्दर जडाऊ बेशकीमती रत्नोंका हार देखा। उसी समय, उसने प्रण कर लिया कि इस हारके बिना मेरा जिन्दा रहना असम्भव है। वेश्या दुःखी होकर घर चली आयी। वह मन मारकर कुसमय पलंगपर सो रही। उसका प्रेमी दृढसूर्य नामक चोर था। दृढसूर्यने अपनी प्रेमिकाको उदास देखकर कहा—"प्रिये! आज तुम उदास क्यों हो? हाय, तुम्हें उदास देखकर मेरा हृदय टुकडा टुकडा हुआ जाता है। बोलो, तुम्हें क्या दुःख है? मैं दूर करनेके लिए तैयार हूँ।" वेश्या तो अपने यारोंसे इसी प्रकारका वेष बनाकर ठगती हैं। उनके चोचले विचित्र होते हैं। बसन्तसेनाने कहा, "यदि तुम मुझे प्यार करते हो तो मैं रानीके गलेका जडाऊ हार चाहती हूँ। तुम निश्चय जानो उसके बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकती और मैं तभी जानूंगी कि तुम मुझे सच्चा प्यार करते हो, अन्यथा तुम्हारे साथ प्रेम रखनेका कोई मतलब नहीं"। दृढसूर्य चोर बडा पशो-पेशमें पडा। एक तरफ बसन्तसेनाका प्रेम कह रहा था कि तुम जैसे भी हो हार ले आओ, उधर रानीके गलेसे हार चुराना असम्भव था। फिर भी उसने वेश्याके प्रेममें फँसकर हार चुरानेका दृढ निश्चय कर लिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोरीमें फांसीकी सजा।

दृढ चोरने ज्यों ही महलमें जाकर रानीके गलेसे हार निकालकर पलायन करना चाहा, त्योंही पहरेदारोंने दृढ सूर्यको पकडकर बांध दिया। वह महाराजके सामने पेश किया गया। चोरीके अपराधमें उसे प्राणदण्डकी सजा मिली जल्लादोंने दृढसूर्यको फांसीकी तख्तेपर लटका दिया।

दयालु धनदत्त

उसी राहसे जिनभक्त सेठ धनदत्त जिनमन्दिरमें दर्शनार्थ जा रहे थे। दृढसूर्यने उन्हें दयालु जानकर गिडगिडाकर कहा, दयालु मैं प्यासा हूं, क्या ही अच्छा होता कि आप मुझे दो बूंद पानी पिलानेकी दया दिखाते। आपको परोपकारी दयालु समझकर मैंने कहा है। सेठने कहा– भाई, मैं तुम्हें पानी पिला देता किन्तु असमञ्जसमें पडा हूं। मैंने बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे एक विद्या सीखी है, कहीं ऐसा न हो कि मैं तुम्हारे लिये जल लाने जाकर अपनी विद्यासे हाथ धोऊ जिसे कितने परिश्रमसे पाया है। उस समय मेरा श्रम व्यर्थ जायेगा और साथ ही मुझे कितनी क्षति उठानी पडेगी। हां ऐसा हो सकता है कि मैं जलके लिए जाता हूं, तबतक तुम मेरी विद्याको स्मरण रखना, मेरे आनेपर उसे वापस कर देना। सेठने दृढसूर्यको पंच नमस्कारका मन्त्र देकर जल लानेके लिए चला गया। इधर दृढसूर्य वह पवित्र पंच नमस्कारका मन्त्र जपने लगा। मन्त्र जपते जपते उसका प्राण पखेरू निकल गया। इतनेमें सेठ जल ले आया, उस समय तो दृढसूर्य मरकर सौधर्म स्वर्गका देव हुआ पंच नमस्कारकी ऐसी महिमा है।

सेठपर राजाका कोप

'होम करते हाथजला' यह उक्ति कितनी सत्य है। कहां तो दयालु धर्मात्मा सेठ धनदत्तने पुण्य कार्य किया, कहां किसी दुष्टने "देखि न सकहिं पराइ विभूति, यह दुर्जनको सहज प्रकृति" के अनुसार राजाके पास जाकर यह शिकायत की– महाराज मैंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी आंखों देखा है कि सेठ धनदत्तने फांसी दिये जानेवाले दृढ-सूर्यसे बाते की हैं अतः उसके घरमें चोरीका माल अवश्य पाया जायगा। नहीं तो उसे क्या आवश्यकता थी मरते हुए चोरसे बाते करने की। सच है, राजाके आंखे नहीं होती कान होते हैं। बस क्या था, उसी समय राजाने सेठ धनदत्तको पकड लानेकी आज्ञा दी। टुकडेखोर,दयालु धर्मवीर सेठको पकडलानेके लिये दौड पडे।

सौधर्मेन्द्रकी कृपा

उसी समय दृढसूर्यका जीव जो देव हुआ अपने अवधिज्ञानसे परोपकारी धनदत्तके ऊपर अपने कारण आई हुई विपत्ति जानकर वह द्वारपालके वेषमें सेठके द्वारपर पहरेदार बन गया। उसी समय राजाके सिपाही पहुंचे, देवने उन्हें रोका, इस पर सिपाही जबरदस्ती करनेपर आमादा हो गये, तब देवने उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। भगे हुये सिपाही राजाके पास जाकर रोने लगे। राजाने क्रोधमें आकर सेठको पकडवानेके लिये अपने बडे बडे बल-वान् योद्धा भेजे मगर देवने उन्हें मार-पीटकर धराशायी कर दिया। राजा अनन्त क्रोधित हुआ,और अपनी विशाल सेनाके साथ सेठके घरपर धावा बोल दिया। बातकी बातमें सेठका घर चारों ओरसें घेर लिया गया। मगर उस पराक्रमी देवने राजाकी विशाल सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया, उसकी सेना भाग गई। राजा भी हटकर भागने लगा, इतनेमें देवने कडककर कहा- कहां भागे जा रहे हो, मैं आपको यों भागने नहीं दूंगा। आपकी रक्षा तभी होगी जब धनदत्त आपको क्षमा कर दे। अतः उसीकी शरणमें जाकर उससे क्षमादान मांगिये। राजाने उसी समय जिन-मन्दिरमें जाकर सेठसे कहा-क्षमा करो, मेरी जान बचाओ! सेठ धनदत्तने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा- अरे! तुम कौन हो, जो हमारे आदरणीय महाराजको सताते हो। देवने अपनी माया वापस लेली। फिर सेठसे कहा- सेठजी मैं फांसीपर लटकाया जानेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृढसूर्य हूँ जिसे आपने कृपाकर पंच नमस्कार महामन्त्र देकर सौधर्म स्वर्गका देव बनाया। मैंने अपने अवधिज्ञानसे आपके ऊपर कष्ट देखकर अपना कर्तव्यपालन किया है इसलिए मैं अपने उपकारकर्ताकी सहायता करनेके लिये आया हूँ। मैंने ही अपने मायाजालसे सब कुछ किया है। इसप्रकार कहकर उसने सेठको रत्नजडित भूषण दिया, देव तो चला गया, उधर राजाने सेठका परोपकारी स्वभाव देखकर उनका सत्कार किया। सच है, धर्मात्माओंको सभी मानते हैं।

पंच नमस्कारकी महिमा वर्णनातीत है। श्रेष्ठ मनुष्योंको चाहिये कि वे उक्त परमपवित्र मन्त्रकी आराधना कर श्री जिन भगवानकी भक्ति-रसका पानकर अपनी बुद्धि निर्मल बनावें।

-दृढसूर्यकी कथा समाप्त-

और भी स्वाध्यायका माहात्म्य बताते हैं-

खण्डश्लोकैस्त्रिभिः कुर्वन् स्वाध्यायादिस्वयंकृतैः।
मुनिनिन्दाप्तमौग्ध्योऽपि यमः सप्तर्द्धिभूरभूत् ॥८०॥

अन्वयार्थ-(स्वयंकृतैः) अपने द्वारा बनाये हुये (त्रिभिः) तीन (खण्डश्लोकैः) खण्डश्लोकोंके द्वारा (स्वाध्यायादि) स्वाध्यायादि (कुर्वन्) करता हुवा (मुनिनिन्दाप्तमौग्ध्यः) मुनिनिन्दासे प्राप्त हुई है मूढता जिसको ऐसा (यमः) यममुनि (सप्तर्द्धिभूः) सप्त ऋद्धिधारक (अभूत्) हुवा था।

भावार्थ-यम नामके राजाने राजत्याग कर दीक्षा ग्रहण की थी। परन्तु मुनिनिन्दासे बांधे हुये कर्मके उदयसे उनको मूढता प्राप्त थी। फिर वह निरंतर अपने द्वारा बनाये हुये निम्नलिखित तीन खण्डश्लोकोंके द्वारा निरंतर स्वाध्याय करते थे। जिसके प्रभावसें उनको तपर्द्धि, बुद्धिऋर्द्धि, विक्रियर्द्धि, औषधऋर्द्धि रसर्द्धि, बलर्द्धि, अक्षीणमहानसर्द्धि ये सात ऋद्धियां प्राप्त हुई थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन खण्ड श्लोक

कंडसि पुणुणं सेवसि रे गंदहा जवं पत्थेसि खादिदुं ।

अण्णत्थ किं फलोवहा तुम्ही इत्थ बुद्धिया छिंदे ।

अंके घ्छेदइ कोणिग्र ।

अम्हादो णंदिभयं दिहादोदिसराभयं तुह्म ।

इन श्लोकोंके तीन अर्थ होते है-

पहिला-रे गर्दभ ! तूं इस हरेभरे जोके खेतको खायेगा तो पश्चात्ताप होगा, मालिक खाने नहीं देगा, मार पडेगी ।

राजपुत्रकी तरफ-रे गर्दभ! राजपुत्र तूं खायेगा अर्थात् मारेगा तो पश्चात्ताप होगा ।

रे मनरूपी गर्दभ! इन ऊपरसे सुन्दर दिखनेंवाले और जिनका परिपाक हालाहल विषके समान है ऐसे यह विषयभोगरूपी जोको खानेका प्रयत्न करेगा तो पश्चात्ताप होगा । विषयसेवन करनेसे किसीको भी शांति प्राप्त नहीं होती है । आकुलता बढती ही है ।

दूसरे श्लोकका अर्थ

हे बच्चो ! तुम्हारे बुद्धिमें पत्थर गिर गये क्या-तुम्हारी कोणिका अर्थात् गेंद तुम्हारे पासवाले गड्ढमें पडी है तुम इधर उधर क्या देखते हो ।

स्वाध्याय-रे मनरूपी बालक ! तुम्हारा (कोणिका) सुख तुम्हारे भीतर ही है, इधर उधर बाहिर पदार्थोमें सुख मानकर क्यों व्यर्थ दुःखी हो रहा है ।

रे बालक ! तुम्हारी (कोणिका) बहिन तुम्हारे पासवाले गड्ढेमें अर्थात् तलघरमें है, तुम इधर ऊधर क्या देख रहा हैं ।

रे मेढक ! तू मेरेसे भय मत कर-तेरे पीछेवाले सर्पसे भय कर ।

हे आत्मन् ! तू अपने स्वरूपसे भय मत कर- अपने पीछे लगे हुये रागद्वेषादि विकारोंसे भय कर-यही तुझे दुःख देनेवाले है ।

रे गर्दभ ! राजपुत्र ! तू मेरेसे भय मत कर- तेरे पीछेवालेसे (अर्थात्) मंत्रीसे भय कर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन तीन अर्थवाले श्लोकसे यममुनि निरंतर स्वाध्याय करते थे। हर समय इसीका पाठ करते थे। जिससे उनको सप्त ऋद्धियां प्राप्त हुई और अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त किया। इसलिये हरेक प्राणीका कर्तव्य है कि–

स्वाध्यायः परमं तपः इस उक्तिसे निरन्तर स्वाध्याय करने का प्रयत्न करें। शास्त्रश्रवण–मनन–चिन्तवनसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है।

यम मुनि की कथा

पाठक ! श्री यममुनि कैसे थे, अल्पबुद्धिके ज्ञानी।
कैसे मुक्ति नारि वे पाये, पढलो वही कहानी॥
गुरु देवके चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ।
जो सुखको देनेवाली है, ऐसा ही लिखता हूँ॥

उड्र देशान्तर्गत धर्म नामक नगरमें राजा यम राज्य करते थे। उनके रानीका नाम धनवती था। उसके पुत्रका नाम था गर्दभ और कन्याका नाम था कोणिका, वह अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा यमके राजमहलमें अन्य रानियां थी। जिनके पांचसौ पुत्र थे। वे सबके सब वैरागी थें, संसारी मायामें उनका तनिक मन नहीं लगता था। राजा यमके यहां दीर्घ मन्त्री था। इस प्रकार उनका समय सुख–शान्ति से बीतता था।

कोणिक का भाग्य

एक दिन राज–ज्योतिषीने कोणिका की भाग्य गणना कर बताया कि यह कन्या जिससे ब्याहेगी वह समस्त संसारका सम्राट् होगा। राजा यमने कन्याके भाग्यकी बात सुनकर उसे यत्नसे रखना शुरू किया, जिसमें कोई छोटे–मोटे बलवान राजा न देख लें।

राजा मुनिसंघसे पराजित हुआ।

उसी समय श्री सुधर्माचार्यका संघ वहां आ गया, जिसमें पांचसौ मुनि थे। वे संसारके हित–साधनार्थ एक स्थानसे दूसरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानपर भ्रमण कर रहे थे। नगरके समस्त निवासी मुनि-संघके शुभागमनका समाचार सुन उनकी पूजा करने तथा धर्मोपदेश सुनने चले। राजा यमको अपनी विद्वत्ताका घमण्ड था। वह भी मुनियोंकी निन्दा करता हुआ वहां जा पहुंचा। किन्तु उसके हृदयमें अभिमानके भाव उदित होनेके कारण, उसके बुरे कर्मके उदय होनेसे वह महामूर्ख बन गया। उसकी विद्वत्ता, बुद्धिकी चमत्कारका लोप हो गया। अत: राजा यम उसी समय मूर्खाधिराज बन गये। सच है-

उत्तम जन ज्ञानी बननेसे, ज्ञान गर्व नहिं करते हैं।
ज्ञान-रत्नको पाकर वे ही, सदा नम्रता धरते हैं॥
जो निजबल, ऐश्वर्य, जातितप ऋद्धि योग पर इतराते।
निश्चय जानो गर्व, दु:खसे वे ही महा दु:ख पाते॥
अत: श्रेयके इच्छुकको अभिमान नहीं करना चाहिये।
गर्व दु:खकी महाखान है, उससे दूर सदा रहिये॥

उसी समय राजा यम दन्तरहित हाथीके समान निरर्थक हो गये। अब उन्हें होश आया। उनका सारा मिथ्याभिमान दूर हो गया। उन्होंने उसी समय भगवानके पवित्र चरणोंमें नमस्कार कर धर्मोपदेश सुना। पाठक! धर्मोपदेश सुननेसे हृदयकी व्यथा दूर होकर शांति मिलती है। अत: राजाका हृदय अभिमानरहित हो गया।

वैराग्य धारण

धर्मोपदेश सुननेका यह असर हुआ कि राजा यमके हृदयमें संसारके भोग-विलाससे पूर्णरूपेण वैराग्य उदय हो गया। राजाने उसी समय अपने पांचसौ वैरागी पुत्रोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। राज्य-शासन भार गर्दभ नामक पुत्रके ऊपर पडा। राजा यम मूर्ख बने रहे, उन्हें पंच नमस्कार मंत्रका शुद्ध उच्चारण तक नहीं आया जब कि उनके पांचसौ लडके शास्त्राभ्यास द्वारा पूर्ण विद्वान् बन गये। इससे यम मुनिके हृदयमें बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुदेवकी आज्ञा लेकर तीर्थ दर्शन करनेके लिये प्रस्थान दिया। उन्हें मार्गमें एक रथ मिला जिसमें गदहे जुते हुये थे। उसपर एक आदमी बैठा हुआ पुरुष यममुनिको कष्ट दे रहा था। मुनिराजने ज्ञानके क्षयोपशम हो जानेसें निम्नलिखित पद्य कहा-

'कट्टसि पुणणिक्खेसिरे गद्दहा जवपेच्छसि खादिदुमिति'

अर्थात्- अरे गदहे! कष्ट उठानेके बाद ही तुम्हें खानेको मिलेगा। यममुनि आगे चले तो क्या देखते हैं कि एक स्थानपर कुछ लडके खेल खेल रहे हैं। उसी समय कोणिका भी किसी तरह चली आयीं। कोणिकाकों देखकर सब लडके भयभीत हो गये। तब मुनिने आत्माके प्रति निम्न गाथाकी रचना की।

"आणणत्थ किं पालोवह तुन्हे पत्थणि बुद्धि या छिद्दे अच्छई कोणिआ इति।"

बालको! तुम दूसरी ओर क्या देख रहे हो, तुम्हारी बुद्धि पत्थरकें समान है उसे छेदनेवाली कोणिका मौजूद है। इसी प्रकार एक दिन मुनिराजने एक मेढकको कमल पत्रकी ओटमें छिपते हुए सर्पको उसी ओर आते देख उसी समय उन्होंने कहा—

'अम्हादोत्थि भयं दिहादो दीसदे भयं तुम्हेति।'

मुझे अपने प्राणोंका तनिक भी भय नहीं है,डर तो तुम्हें ही है।

पुत्रका प्रकोप

इस प्रकार यममुनि उपरोक्त तीनों पाठका अध्ययन करते थे उन्हें इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं आता था। तीर्थयात्रा करते हुए वे धर्मपुरमें जा पहुंचे वे नगरके बाहर बगीचेमें ठहर गयें। उस बगीचेमें यम महामुनि अपने कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन हो गये। जिस समय यम महामुनिके आनेका समाचार उनके पुत्र राजा गर्दभ तथा मन्त्री दीर्घने सुना तब उनके दिलमें पाप हुआ कि वे (मुनि)हमारा राज्य वापस लेने आये हैं। दोनोंने मुनिराजको मार डालनेके विचारसे आधी रात्रिको प्रस्थान किया। दोनों वहां पहुँच गयें जहां यममुनि ध्यानमें लीन थे। दोनोंने मुनिके ऊपर अपनी तलवार खींच ली। किसीने सच ही कहा है--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान लो पाठक जगतमें राज्य वह धिक्कार है ।
मूर्खता है नृपति की औ समझको धिक्कार है ।।
वीतरागी राज्य लेगा भयभीत जो होता जहां ।
धिक्कार है उस बुद्धिको जो समझ लेती है यहां ।
त्याग करके राज्य वैभव शुभयोगका बाना लिया ।
आश्चर्य उस मुनिराजपर, निज पुत्रने शंका किया ।

राजा गर्दभ तथा उसके मन्त्रीने बार बार अपनी तलवार तानी, मगर, मुनिराजकी गर्दनपर चलानेका उन्हें साहस नहीं हुआ । कई बार उन लोगोंने कुचेष्टा की मगर वे हर बार पस्त हिम्मत रहे । उसी समय यममुनिने अपनी पहली गाथाका पारायण किया, उसे सुनकर राजा गर्दभ डर गया । वह सोचने लगा–ज्ञात होता है कि मुनिराजने हमे देख लिया । मुनिराजने उसी समय अपनी दूसरी गाथा कही । अब, गर्दभको निश्चय हो गया कि ये हमारा राज्य लेने नहीं आये हैं बल्कि अपनी कन्या कोणिकाको प्यार जताने आये हैं । मुनिराजकी तीसरी गाथा सुनकर उसने अपने मनमें निश्चय किया कि मेरा मन्त्री ही मेरी जानका दुश्मन है । मेरे पूज्य पिता तो मुझे सतर्क करने आये हैं । वह हाय हाय करने लगा । इसके बाद उसने अपने पूज्य पिता यम महामुनिसे धर्मोपदेश सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया ।

अन्तिम परिणाम ।

यमधर मुनिराजने अपनी कठिन तपस्याके बलसे सातों ऋद्धियां प्राप्त कर ली । पाठक गण ! जब अल्प बुद्धिवाले यमधर महामुनिने उन्नतिकी चरम सीमाको पार कर दिया तब यदि अन्य श्रेष्ठ लोग श्रद्धा–भक्तिसे सम्यक्ज्ञानकी सतत आराधना करें तो ऐसी कौनसी अलभ्य वस्तु है जिसकी प्राप्ति न हो ? पाठक गण ! आप लोग भी ख्याल करें कि यमधर महामुनिने अल्पज्ञानी होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब सातों ऋद्धियोंको प्राप्त कर लिया तब आप लोगोंको भी उचित है परमपवित्र सम्यक्ज्ञानको पानेका उपाय करें जिससे स्वर्ग सुखका साधन प्राप्त हो ।

आगे– दो श्लोकोंके द्वारा अहिंसाताका माहात्म्य बताते हैं–

अहिंसाप्रत्यपि दृढं भजन्नोजायते रुजि ।
यस्त्वध्यहिंसासर्वस्वे स सर्वाः क्षिपते रुजः ॥८१॥

अन्वयार्थ– (अहिंसा) अहिंसाके (प्रति) प्रति (दृढतां) दृढताको (भजन्) धारण करनेवाला मानव (रुजि) उपसर्गके समय (ओजायते) ओजस्वीके समान आचरण करता है, (तु) तथा (यः) जो (अध्यहिंसासर्वस्वे) दृढतापूर्वक परिपूर्ण रीतीसे अहिंसाका धारक है वह तो (सर्वाः) सम्पूर्ण (रुजः) उपसर्गोंको (क्षिपते) दूर फेंक देता है ॥८१॥

भावार्थ– स्तोके प्रतिना इस सूत्रसे अहिंसा प्रति इस शब्दमें अव्ययीभाव समास हुवा हैं । अहिंसायाः सर्वस्वं इस प्रकारसे तत्पुरुष समास करके ईश्वरेऽधि इस सूत्रसे अहिंसा सर्वस्वे इस पदमें सप्तमी हुई है ।

जो मानव थोडीसी भी अहिंसाके पालनेमें दृढता करता है, वह उपसर्गके उपस्थित होनेपर ओजस्वी पुरुषके समान आचरण करता है, तथा जो अहिंसाको पूर्ण रूपसे प्रतिपालन करता है वह सब प्रकारके उपसर्गोंको दूर फेंक देता है–अर्थात् अहिंसक मानवके प्रति उपसर्ग कुछ नहीं कर सकते ।

अहिंसकका दृष्टान्त–

यमपालो ह्रदेऽहिंसन्नेकाहं पूजितोऽसुरैः ।
धर्मस्तत्रैव मेंढ्रघ्नः शिशुमारैस्तु भक्षितः ॥८२॥

अन्वयार्थ– (एकाहं) केवल एक दिन (अहिंसन्) अहिंसा व्रतका पालन करनेवाला (यमपालः) यमपाल नामका चोर (असुरैः) असुरोंके द्वारा (पूजितः) पूजित हुवा (तु) और (मेंढ्रघ्नः) मेढकको मारनेवाला (धर्मः) धर्म नामका सेठ पुत्र (तत्र एव) उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तलाबमें (शिशुमारैः) शिशुमार जलचर जीवोंके द्वारा (भक्षितः) खाया गया ॥८२॥

भावार्थ– मैं चतुर्दशीके दिन किसी जीवोंको नहीं मारूंगा इस प्रकार की प्रतिज्ञा करनेवाला यमपाल चण्डाल देवोंके द्वारा पूजित हुवा। और मेंढकको मारनेवाला धर्म नामका सेठ पुत्र उसी तालाबमें मगर मच्छादिके द्वारा खाया गया।

यमपाल चांडालकी कथा।

था चांडाल जातिका वह पर जैन–धर्मका प्रेमी था।
शुभ्र साधना करनेमें वह शुद्ध हृदयसे नेमी था॥
था यमपाल नाम उसका, देवोंने उसको मान दिया।
वही कथा लिखता हूं पाठक! प्रभुचरणोंमें शरण लिया॥

धर्म अधर्म।

यहां उस समयकी कथा लिखी जा रही है जिस समय काशी नगरीमें पाकशासन नामक राजा राज्य करते थे। एक समय उसके नगरमें महामारीका प्रकोप हो गया, राजाने अपने नगरमें नन्दीश्वर पर्वके समय जीव-हिंसा नहीं करनेका ढिंढोरा पिटवाया। साथ ही उनकी ऐसी आज्ञा थी कि राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला प्राणदण्डकी सजा पायेगा। उसी नगरीमें धर्म नामक एक सेठ पुत्र रहता था, वह बडा भारी अधर्मी था। वह सप्तदुर्व्यसनोंका आदि था। वह पहले दर्जेका मांसाहरी था, एक दिन भी विना मांस खाये नहीं रहता। एक दिन वह महाराजके बगीचेमें गया। भेड मारकर उसका कच्चा मांस खा गया। उसकी हड्डियां वहीं गड्ढेमें गाड दीं। उस भेडके मालिक स्वयं महाराज थे! किसीने ठीक ही कहा है–

जो मनुष्य दुर्व्यसनी होते उसमें सदा लीन रहते।
वे प्रति दिन निज पापकर्मको नियम रूपसे हैं करते॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापका भण्डाफोड ।

दुसरे दिन जब महाराज बगीचेमें गये, अपनी भेड न देखकर उन्होने उसका पता लगाया मगर किसीने भेड का पता नहीं दिया। अन्तमें महाराजने गुप्तचरोंको पता लगानेके लिये नियुक्त किया। एक दिन राजाका एक गुप्तचर वेष बदलकर राजाके बागमें टहल रहा था, उसी समय उसने एक मकानके भीतर कुछ आदमियोंकी फुनफुसाहटकी आवाज सुनी। गुप्तचरने धीरेसे मकानके पास जाकर राज मालीको अपनी स्त्रीसे यह कहते हुए पाया कि राजाके भेडको सेठका पुत्र धर्मने मारकर खा लिया है और उसकी हड्डी बगीचेमें गाड दी है। गुप्तचरने महाराजके पास जाकर भेडके हत्यारेका पता दिया। महाराज क्रोधमें लाल हो गये, वे सोचने लगे कि देखो इस दुष्टको फांसीकी सजा देनी चाहिये। ऐसा दृढ निश्चय कर महाराजने राज कोतवालको आज्ञा दी कि हत्यारे धर्मको फांसी दे दी जाय। कोतवालने यमपालको बुला भेजा।

इधर चाण्डालने किसी सर्वौषधि ऋद्धिधारी मुनिराजका धर्मोपदेश सुनकर अपने मनमें प्रण कर लिया कि मैं चतुर्दशीके दिन हिंसा नहीं करूंगा, अतः फांसी देनेकी राजाज्ञा सुनकर उसने अपनी स्त्रीसे वह कहा, "देखो! आज मैं हिंसा कर्म नहीं करूंगा, अतः राजाके आदमी आनेपर कह देना कि वे बाहर चले गये हैं।" ऐसा कहकर वह घरमें छिपा रहा। थोडी देरके बाद, राजाके आदमी यमपालका द्वार खटखटाने लगे। चांडालकी स्त्री घरके बाहर थी उसने कहा, वे घरपर नहीं हैं, कहीं दूसरी जगह चले गये हैं। राजाके अनुचरोंने कहा,—"देखो, अभागेको, आज ही सेठके लडकेको फांसीमें बहुत गहने मिलेंगे, तभी वह चला गया, अभागा कहीं का।" गहने पानेके लोभमें पडकर चांडालकी स्त्रीने इशारोंसे सिपाहियोंको बता दिया कि उसका पति घरमें है, कहीं बाहर नहीं गया है। इसके बाद वह पतिके नहीं रहनेपर अफसोस करने लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारी स्वतः मायाविनी होती, लालचमें भी लासानी।
क्या न गजब वे ढा सकतीं हैं पीकर लालचका पानी॥

बस, चांडालकी स्त्रीका इशारा पाते ही सिपाही उसके घरमें घुस पडे। वे यमपालको घरके बाहर खींच लाये। यमपालने इन्कार करते हुये स्पष्टभावमें कहा–"आज चतुदशीका दिन है, मैंनें आजके दिन अहिंसा व्रत लिया है, अतः मैं आज किसी प्रकार जीव–हिंसा करनेका नहीं। चाहे इसके लिये मुझे जैसा भी कष्ट सहन करना पडे मैं तैयार हूँ।

सिपाहियोंने उसे महाराजके पास ले जाकर पेश कर दिया। महाराज पहिले ही क्रोधसे जल रहे थे, इतनेमें चांडालने उनके सामने ही राजाज्ञा नहीं माननेका सत्याग्रह कर दिखाया। बस, जले घावपर नमकका काम किया, महाराजने पापी धर्मके साथ २ यमपालको भी मौतके घाट उतारे जानेकी क्रूर आज्ञा दे दी। बस, यमपाल धर्मके साथ २ हिंसक जल जीवोंसे भरे तालाबमें डाल दिये गये।

धर्मको जल जीवोंने उसी समय अपना भोजन बना लिया। अब बच गया यमपाल। उसके व्रतके प्रभावसे उसी समय स्वर्गके देवताओंने तालाबमें ही एक भव्य सिंहासन रखकर उसकी पूजा की, तथा उसका अभिषेक किया। महाराज तथा प्रजाने शुभ संवाद सुनकर उसे सम्मानित किया। महाराजने यमपाल चांडालको इनाममें बहुत न दिया। पाठकगण! देवताओंने एक अपवित्र चाण्डालको सम्मानित कर जैन–धर्मकी महिमा बढाई। तब श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे भी जैन धर्ममें सच्ची भक्ति रख स्वर्ग-मोक्षका, सुख प्राप्त करें। तथा जिनेन्द्र भगवान कथित अहिंसामय धर्मको स्वीकार कर दुःखदायक नरकका द्वार हिंसाका मन वचन कायसे त्याग करे।

–यमपाल चांडालकी कथा समाप्त–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असत्यकृत अपायको दो श्लोकोंके द्वारा कहते हैं—

मां गां कामदुघां मिथ्यावादव्याघ्रोन्मुखीं कृथाः ।
अल्पोऽपि हि मृषावादः श्वभ्रदुःखाय कल्पते ॥८३॥

अन्वयार्थ-(कामदुघां) इच्छित फलको देनेवाली (गां) वाणी वा वाणीरूपी गायको (मिथ्यावादव्याघ्रोन्मुखीं) मिथ्यावचनरूपी व्याघ्रके सन्मुख (मा) मत (कृथाः) करो। (हि) क्योंकि (अल्पः) थोडासा (अपि) भी (मृषावादः) असत्य वचन (श्वभ्रदुःखाय) नरकके दुःखके लिये (कल्पते) समर्थ होता है ॥८३॥

भावार्थ-इच्छित फलको देनेवाली होनेसे पुरुषकी वाणी ही एक प्रकारकी कामधेनु है और व्याघ्र जैसे गायका भक्षक प्रसिद्ध है, उसीप्रकार सत्यवचनका घात करनेवाला मिथ्या भाषण है। यहाँ प्रसंगानुसार मिथ्याभाषणको व्याघ्रका रूपक बनाया है। इसलिये हे क्षपक! तूं अपने वचनको मिथ्या भाषणरूपी व्याघ्रके सन्मुख मत जाने दे। क्योंकि अल्पसा भी मिथ्याभाषण नरकके दुःखोंका संपादक होता है।

असत्य भाषणका उदाहरण-

अजैर्यष्टव्यमित्यत्र धान्यैस्त्रैवार्षिकैरिति ।
व्याख्यां छागैरिति परावर्त्यागान्नरकं वसुः ॥८४॥

अन्वयार्थ-(वसुः) वसुराजा (अजैःयष्टव्यं) अजके द्वारा यज्ञ करना चाहिये (इति अत्र) इस वाक्यमें (त्रैवार्षिकैः) तीन वर्षके पुराने (धान्यैः) धान्यसे यज्ञ करना चाहिये (इति व्याख्यां) इस अर्थको (त्रैवार्षिकैः छागैः) तीन वर्षके बकरोंके द्वारा यज्ञ करना चाहिये (इति) इसप्रकार (परावर्त्य) परिवर्तन करके (नरकं) नरकको (अगात्) गया।

भावार्थ-'त्रैवार्षिकैः अजैर्यष्टव्यं' इसका वास्तविक अर्थ यह है कि 'न जायन्ते न उत्पद्यन्ते येषां अंकुराः ते अजाः' जो धान्य तीन वर्षका पुराना हो जिसमें उत्पन्न होनेकी शक्ति न हो ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धान्यके द्वारा शांतिक पौष्टिक कार्योंके लिये यज्ञ किया जाता है। ऐसा व्याख्यान क्षीर कदम्बाचार्य करते थे। परन्तु वसुराजाने नारद और पर्वतके विवादके समय इस अर्थका परिवर्तन करके तीन वर्षक बकरेके द्वारा यज्ञ करना चाहियें ऐसा अर्थ किया, जिससे हिंसामय यज्ञकी प्रवृत्ति चली और वसुराजा मरकर सातवें नरकमें गया। इसलिये महादुःखदायक असत्य भाषणमें प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये।

असत्यभाषी वसु और पर्वत-नारदकी कथा

जांगल देशमें हस्तिनागपुर नामका नगर है, वहाँ अयोधन नामका राजा था। अुसकी अतिथि नामकी राजमहिषी थी। अुनके समस्त कलाओंमें निपुण सुलसा नामकी पुत्री थी। जब ह गर्भमें थी तभी रानीने अपने सहोदर भाई पोदनपुरनरेश पगलके गुणी पुत्र मधुपिंगलके साथ अुसका वाग्दान करनेका संकल्प कर लिया था।

राजाको यद्यपि रानीके हृदयकी बात ज्ञात थी फिर भी अुसने सोचा कि 'यह स्त्रीधन जिस किसी महाभागके भाग्यमें भोगनेके योग्य है अुसीका यह होना चाहिए। इस विषयमें सब शरिरधारियोंका दैव ही शरण है और दैवका प्रभाव अचानक सुख-दुःखकें आगमनसे अनुमेय है'। ऐसा जानकर अुसने स्वयंवरके लिये भीम, भीष्म, भरत, भाग, संग, सगर, सुबन्धु और मधुपिंगल वगैरह राजाओंके पास भेटपूर्वक पत्र भिजवा दिये।

इसो बीचमें एक दूसरी घटना घटी। अयोध्याके राजा सगरने कानों कानों नृत्य आदि कलामें कुशल सुलसाके सौंदर्यकी चर्चा सुनी। इस राजाका तारुण्य अपने लावण्यके साथ थोडा ढल चला था। अतः अुसने अुसे अुपायसे अपनानेके लिये ज्योतिष आदि शास्त्रोंमें प्रवीण विश्वभूति नामक पुरोहितके साथ मन्दोदरी नामकी धायको सुलसाकी नगरीमें भेजा। वह धाय सब कलाओंमें प्रवीण थी, गाना बजाना और नाचना जानती थी। साज-श्रृंगार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेमें चतुर थी। सम्भोगके सिद्धान्त, सामुद्रिक विद्या, स्त्रीपुरुषके लक्षण, कथा-कहानी और पहेलीमें पूरी पण्डिता थी।

उस नगरमें पहुँचकर दूसरोंको ठगनेमें पटु उस धायने प्रौढा स्त्रीका वेष बनाया और अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये तरह-तरहकी कलाएँ दिखाकर राजा अयोधनको प्रसन्न कर लिया तथा उसके अन्तःपुरमें अध्यापिका बनकर सुलसासे यह प्रतिज्ञा करा ली कि वह सगरको ही वरण करेगी। बगुला भगत पुरोहितने भी तरह-तरहके आदेशोंसे राजा और रानीका मन अपने वशमें कर लिया। उसने स्वयं श्लोक रच-रचकर राजा-रानीको सुनाये जिनका भाव इस प्रकार था--

दुष्टमें ६० दोष होते हैं, कानेमें अस्सी और बहरेमें सौ दोष होते हैं। बौनेमें एक सौ बीस दोष होते हैं। किन्तु जिसकी आँखे पीतवर्णकी होती है, उसमें तो अगणित दोष होते हैं तथा शरीरमें मुखके आधे भागका जो मूल्य है वह पूरे शरीरके बराबर है। नाकके आधे भागका मूल्य पूरे मुखके बराबर है। और आधे नेत्रका मूल्य पूरी नाकके बराबर है। इसलिए इन सबमें नेत्र ही बेशकीमत होते हैं।

इस प्रकारके वचनोंसे उसने उन्हें मधुपिंगलको प्रति विरक्त बना दिया।

इसके बाद स्वयंवर हुआ। जैसे चम्पेकी कलीकी सुगन्धि रूपी दुग्धका पान करनेके लिये भौरें एकत्र हो जाते हैं उसी तरह स्वयंवरके निमंत्रणको पाकर मदोन्मत्त हुअे सब राजा उसमें सम्मिलित हुअे। सुलसाका मन तो मन्दोदरीके वशमें था। अतः जैसे नीची भूमिकी ओर बहनेवाली नदी सागरमें जाकर मिल जाती है वैसे हीं उसने उन राजाओमें-से सगर राजाको वरण कर लिया। शक्तिशाली थोडेसे भी सहायकोंके द्वारा राजा विजयी होता है। जैसे भालेकी नोक ही अपना काम करती है, उसमें लगा डंडा तो उसका सहायक मात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस घटनासे मधुपिंगलको बडा वैराग्य हुआ– 'इस भोगशून्य शरीरको धिक्कार हो जिसके एक भागमें दोष होनेसे मैं समागमके योग्य भी मामाकी पुत्री नहीं प्राप्त कर सका।' ऐसा सोचकर उसने संसारको छोड दिया और जिन-दीक्षा ले ली। इसके बाद एकाकी पादचारीकी तरह अनेक ग्रामों और नगरोंमें भ्रमण करता हुआ एक दिन अचानक वह भोजनके लिये अयोध्या नगरीमें आया। कई दिनसे उपवास होनेके कारण उसके हृदयका उत्साह मन्द पड गया था और तेज घामसे उसका शरीर अत्यन्त खिन्न था। अतः चातककी तरह थकान दूर करनेके लियें सगर राजाके महलके द्वार-मण्डपपर थोडी देरके लिये ठहर गया।

वहाँ समस्त विद्वानोंमें प्रवीण विश्वभूति, जिसने पहले सुलसाका सगरके साथ विवाह करानेमें दुर्नीतिका प्रयोग किया था, अपने प्रिय शिष्य बुद्धिशाली शिवभूतिको खुले तौरपर सामुद्रिक विद्याका व्याख्यान दे रहा था। विचारचतुर शिवभूतिने समस्त लक्षणोंसे युक्त मधुपिंगलको देखकर अपने गुरुसे कहा– 'गुरुजी! घीकी आहुतिसे प्रज्वलित अग्निमें इस सामुद्रिक विद्याको जला देना चाहिए; क्योंकि इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी इस आदमीकी यह अवस्था है।' सदाचारका शत्रु विश्वभूति बोला– 'पूर्वापर सम्बन्धसे अनजान शिवभूति! खेद मत करो, क्योंकि राजा सगरकी आज्ञासे और हमारे कहनेसे असाधारण सुन्दरी न पा सकनेके कारण यह बेचारा तपस्वी हो गया है।'

विश्वभूतिका अमङ्गल निकट था। अतः उसकी बात उस एकाग्रमन तपस्वीने सुन ली। सुनते ही उसकी क्रोधाग्नि भडक उठी और वह मरकर कालासुर नामक देव हुआ। उसके द्वारा उसने अपने पूर्व भवका सब वृत्तान्त जान लिया। तब वह सोचने लगा कि यदि मैं इसी समय महा अपराधी सगरको और दुष्ट विश्वभूतिको पीस डालूँगा तो पुण्य अधिक होनेसे ये दोनों मरकर भी देव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जायेंगे और यह प्रतिशोध ठीक नहीं होगा। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये की इनका वध भी कष्टसे हो और ये मरकर परलोकमें भी बहुत दुःख उठा सकें। किन्तु अकेले तो बृहस्पतिका भी काम सिद्ध नहीं हो सकता।' ऐसा सोचकर वह ऐसे व्यक्तिकी खोजमें चला जिसके द्वारा वह अपनी विक्रिया शक्ति का चमत्कार दिखला कर अपने वैरका परिशोध ले सके।

इक्षुवनसे सुशोभित डहाला देशमें स्वस्तिमती नामकी नगरी है। उसमें विश्वावसु नामका राजा राज्य करता था। उसकी पटरानीका नाम वसुमती था। उनके वसु नामका पुत्र था। समस्त शास्त्रोंके रहस्यका ज्ञाता क्षीरकदम्ब राजाका पुरोहित था। उसकी पत्नी स्वस्तिमती थी। उन दोनोंके पर्वत नामका पुत्र था जो बहुविध देवाराधनासे प्राप्त हुआ था।

एक दिन क्षीरकदम्ब सुवर्ण गिरिकी गुफाके आंगनमें एक शिलापर पढनेके इच्छुक मदरहित वसुको, अपने पिताके पाण्डित्यके गर्वसे गर्वित पर्वतको और गिरिकूट नगरके स्वामी राजा विश्वके पुरोहित विश्वदेवके पुत्र नारदको अत्यन्त मधुर स्वरसे समस्त लोकके व्यवहारोंसे पूर्ण आगमसूत्रका उपदेश देता था। उस समय आकाशसे उतरते हुए सूर्य और चंद्रमाके समान अमितगति और अनन्त नामके दो मुनियोंने उन्हें देखा।

भगवान् अनन्तमति बोले– 'भगवन्! ये ही शिष्य विद्वान् हैं, जो ग्रंथके अर्थको यथार्थ रूपसे बतलानेवाले गर्वरहित उपाध्यायसे इस निर्दोषब्रम्हज्ञानको एकाग्रतासे पढ रहे हैं।'

अवधिज्ञानसे जानकर भगवान् अमितगतिने उत्तर दिया– 'मुनिश्रेष्ठ! आपका कहना ठीक है, किन्तु इन चारोंमें-से दो शिष्योंकी बुद्धि पानीमें पडे भारी पदार्थकी तरह नीच ज्ञानकी ओर जानेवाली है, ये दोनों इस अत्यन्त पवित्र शास्त्रको भी विपरीत कर देंगे।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्ररूपी चक्षुसे ब्रम्हाण्डको देखनेवाले क्षीरकदम्बने मुनियोंकी बातचीत सुन ली। वह सोचने लगा–'महामुनिके वाक्यसे ऐसा प्रतीत होता है कि हममेंसे दो निश्चय ही अग्निकी शिखाकी तरह ऊर्ध्वगामी हैं। उनमेंसे मैं तो देशचारित्रका पालक हूँ, अतः अपने नरकगामी होनेकी सम्भावना तो मैं नही कर सकता। कहावत है कि–'राज्यका फल नरक है। शास्त्रका फल बन्धन है। स्त्रीमें विश्वास करनेका फल मरण है और दुर्जनोंसे मैत्री करनेका फल विपत्ति है।' अतः लक्ष्मीरूपी मदिराके मदसे मनको कलुषित करनेवाले राज्यभारमें जिसके प्राण बसे हैं वह वसु ऊर्ध्वगामी हो नहीं सकता। शेष रह जाते है नारद और पर्वत। इनकी परीक्षा करनी चाहिए ऐसा निश्चय करके पुरोहितने हविष्यके दो मेढे बनवाये और दोनोंको एक-एक मेढा देकर कहा–'तुम दोनो जहाँ कोई न देख सके, ऐसे स्थानपर इन मेढोंको मारकर खा जाओ।'

गुरुकी आज्ञासे वे दोनो उन मेढोंको लेकर चले गये। उनमेंसे पर्वतने तो घरके पिछवाडे एक घिरे हुअे स्थानपर जाकर उस मेढेके बच्चेको भूनकर अपने पेटमें रख लिया। किन्तु शुभाशयी नारदने गुरुके 'जहाँ कोई देख न सके' इस वचनका ध्यान करके विचारा–'नगर या जगलमें ऐसा कौन-कौनसा स्थान है जो अतीन्द्रियदर्शी व्यन्तरादिकका और महामुनियोंके अन्तःकरणका विषय न हो।' ऐसा विचार कर अुसने वह मेढा जैसाका तैसा उपाध्यायको सौंप दिया।

पुरोहितने जान लिया कि नारद भी ऊर्ध्वगामी है। अतः संसाररूपी वृक्षके गुच्छोंके समान केशोंका लोंच करके अुसने स्वर्गरूपी लक्ष्मीकी सखी जिन-दीक्षा ले ली। तथा समस्त शास्त्रोंकी शिक्षाका अनुसरण करके आचार्यपदको सुशोभित किया और श्रमणसंघका पालन करके जब आयु थोडी शेष रह गयी, तब एकत्व आदि भावनाओंमे आत्माको सुसंस्कृत करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काय और कषायकी सल्लेखनारूप समाधिमरण धारण किया। तथा अपने समस्त दोषोंकी आलोचनापूर्वक शरीरका त्याग कर देवलोकमें उत्पन्न हुआ।

गुरुकी आज्ञासे नारद पहले ही अपने देशकी ओर चला गया था। समस्त सिद्धान्तके पण्डित नारदने जब गुणोंसे भूषित आचार्य क्षीरकदम्बके दीक्षा ग्रहण और स्वर्गारोहणके समाचार सुने तो अुसे 'गुरुके समान ही गुरु-पुत्रको मानना चाहिए' इस सूक्तिका स्मरण हो आया और वह अुनकी भेटके लिये बहुत-सा सामान साथ लेकर गुरुके वियोगसे दुःखी गुरुपत्नी और एक साथ खेले हुअे मित्र पर्वतको देखनेके लिये आया।

दुसरे दिन नारदने सुना कि पर्वत श्रद्धालु छात्रोंको 'अजैर्यष्टव्यम्' का अर्थ 'बकरोंसे यज्ञ और श्राद्ध करना चाहिए' ऐसा बतला रहा है। नारदने रोका-'पर्वत! ऐसी व्याख्या मत करो। किन्तु 'अज' अर्थात् जो अुग न सके ऐसे तीन वर्षके पुराने धान्यसे शान्ति आदि क्रिया करनी चाहिये ऐसा अर्थ करो। क्योंकि परार साल आचार्यसे हम दोनोंने इस वाक्यका यही अर्थ सुना था और गत वर्ष हम दोनोंने ऐसा ही विचार भी किया था। न जाने इसी वर्ष तुम्हारी मति संशयमें क्यों पड गयी है? मुझे यह देखकर बडा आचरज हो रहा है। पर्वत! तुम आचार्यका काम करते हो। यदि तुम स्वतंत्र होकर भी इस अर्थके करनेमें भूल करते हो तो मेरे समान पराधीनका ही क्या विश्वास है?'

पर्वत-नारद! मैं इसे स्वीकार नही कर सकता, क्योंकि इस पदका मेरा कहा हुआ अर्थ ही ठीक है। यदि वह ठीक न हो तो मैं अपनी जिव्हा कटवा दूंगा।

नारद-पर्वत! हमारे विवादका फैसला कौन करेगा?

पर्वत-राजा वसु।

नारद-तो अुसके पास कब चलना चाहिए?

पर्वत-इसी समय! इसमें विलम्ब क्यों?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसप्रकार बातचीत करके दोनों वसुके पास चल दिये। वसुने जैसे ही अुन दोनोंको आते हुअे देखा, गुरुके समान ही उनका सम्मान किया और यथायोग्य भोजन, वस्त्राभरण तथा स्वर्णप्रदान करके उनसे आनेका कारण पूछा। दोनोंने अपना--अपना अभिप्राय कह दिया। वसुने उनसे सुबह आनेके लिये कहा।

इसी बीचमें पर्वतकी माता स्वस्तिमती गुरुवानीको अपने पति क्षीरकदम्बके द्वारा बतलाया हुआ अुस वाक्यका व्याख्यान स्मरण हो गया। अुसे लगा कि नारदका व्याख्यान ही ठीक है। अतः पर्वतके अनिष्टकी आशंकासे वह रात्रिमें ही वसुके पास गयी और बोली—'पुत्र वसु! पहले गुरुसे छिपनेका अपराध करनेके समय तुमने मुझे जो वर दिया था वह मुझे अब दो।' सत्यका पालक वसु बोला—'माता! अुसमें सन्देह मत करो।' 'जो जैसा तुम्हारा गुरुपुत्र कहता है वैसा ही तुम्हें भी कहना चाहिए।' गुरुपत्नीके ऐसा कहनेपर वसु विचारमें पड गया—'यदि पर्वतका कथन ठीक ठहराता हूं तो नरकमें गिरता हूँ और यदि नहीं ठहराता हूं तो सत्यसे विचलित होता हूँ।' इसप्रकार अुसका मनरूपी मृग द्विविधारूपी सिंहके फेरमें पड गया। बहुत देरतक विचार करनेके बाद अुसने सोचा—

हड्डीका धारण करना, शाक, पानी, कन्दमूलका लेना अथवा भिक्षा भोजन करना ये सब व्रत नहीं है। किन्तु स्वीकार की हुई वस्तुको निबाहना ही समझदार पुरुषोंका व्रत है।

ऐसा विचार कर अुसने नरकमें ले जानेवाले दूसरे पक्षको स्वीकार कर लिया।

एक बार एक शिकारी जंगलमें शिकार खेलनेके लिये गया था वहाँ अुसनें एक हरिणके बच्चेपर तीर चलाया। किन्तु वह तीर किसी वस्तुसे टकराकर लौट आया। तब शिकारीको बडा आश्चर्य हुआ और वह इसका कारण जाननेके लिये आगे बढा। मार्गमें अुसे आकाशकी तरह स्वच्छ स्फटिकमणिकी एक शिला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिली, जो छूनेसे ही जानी जा सकती थी। अुस शिलाको मँगाकर वसुने अपनी सभामें रखा और उसपर अपना सिंहासन रखवाया। तथा अुसपर बैठकर अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा करते हुअे यह घोषणा की कि मैं 'अपने सत्य धर्मके प्रभावसे आकाशमें बैठकर जगत्का न्याय करता हूँ।'

दूसरे दिन प्रभात होनेपर राजसभा लगी। वसु अपने अुसी सिंहासनपर आकर बैठ गया। सेवाके लिये आये हुअे सामन्तोंने भेंटे चढायी और विवाद प्रारंभ हुआ। नारदने विनयपूर्वक कहा- 'असत्यवादी वसु अब भी कुछ नहीं बिगडा है अतः सच बोल' बार-बार समझानेपर भी नरकगामी वसुने यही कहा-'जो पर्वत कहता है वहीं सत्य है।' इस प्रकार झूठी गवाही देते देखकर प्रजाको भी क्रोध आ गया और वह भी चिल्लाने लगी-'महा-राज! अब भी सच बोलिए, अब भी सच बोलिये।' सभामे ऐसा कोलाहल मचा मानो ब्रम्हाण्डके फटनेकी आवाज है। इसी समय सत्य धर्म-कर्मका लोप करनेके कारण क्रुद्ध हुए नगर-देवताने सिंहासनसहित वसुको पातालमें भेज दिया। इसीसे आज भी यज्ञमें पहली आहुति देते समय ब्राम्हणजन कहते है-'वसु उठ! स्वर्ग जा।'

किसीने ठीक कहा है-'झूठी बातका दुराग्रह करनेवाले मनुष्योंके लिये दो चीज सुलभ हैं-परलोकमें दीर्घ कालतक दुर्गति और इस लोकमें स्थायी अपयश'

इस घटनासे नारदको बडा वैराग्य हुआ। अुसने केशलोंच करके नग्न दिगम्बर होकर सकल जीवोंको अभयदान देनेवाले संयमके उपकरण पीछी और कमण्डलु ग्रहण कर लिये और स्वाध्यायपूर्वक, मनरूपी बन्दरके खेलनेके स्थान इन्द्रियरूपी उप-वनको बन्द करके, अन्तरात्मारूपी स्वर्णपाषाणके समस्त मलको जलानेंमे समर्थ ध्यानरूपी अग्निको प्रदीप्त किया। तथा केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा वसुके मर जानेपर अत्यन्त लज्जा तथा पुरवासी जनोंके तीव्र तिरस्कारके कारण पर्वतको क्रोधसे रोमांच हो आया। उसे ऐसी पीडा हुई मानो सेहीके कांटोंसे उसका शरीर बीधा गया है। अपने असंख्य दुष्ट संकल्पोंके कारण उसका पेट फटने-सा लगा, उधर नगरवासी लोग राजाकी मृत्युसे क्रुद्ध होकर उसके उपर ईंट पत्थरोंकी वर्षा करनें लगे। उन्होंने उसे गधेपर चढाकर समस्त नगरमें घुमाया। पीछे पीछे कुत्ते भोंकते जाते थे। ईंट-पत्थरोंकी वर्षा होती जाती थी। मार्गमें उल्टे उस्तरेसे सिर मूंडा जाता था। गलेमें फूटे ठीकरोंकी माला पडी थी। चांडालके कफनके टूकडेसे उसकी नग्नताको ढांक दिया गया था। बेचारा रास्ते-भर चिल्लाता जाता था। कष्टसें प्राण कण्ठमें आ गये थे। इस रूपमें उस नगरसे निकाल दिया गया और वह एक घने जंगलमें घुसकर एक नदीके किनारे बैठ गया। वहां उसे कालासुर नामके व्यन्तरने देखा। उसके मनकी दशा जानकर कालासुरने सोचा- 'मैं अपनी विक्रिया शक्तिको दिखलाना चाहता हूं और यह अपना मत चलाना चाहता है अतः मेरा काम निर्विघ्न होगा।' ऐसा विचारकर उसने संन्यासीका वेष धारण किया और मायावी बुद्धिसे बोला- 'पर्वत! जलदी ही यमराजकी क्रीडाके शिकार बननेवाले किस दुष्टने तुम्हारे साथ यह निष्ठुर व्यवहार किया है?'

पर्वत-पिता! आप कौन हैं?

'मैं तुम्हारे पिताका सहपाठी मित्र हूं। मेरा नाम शाकिल्य है। जब तुम्हारे दांत निकले थे तब मैं तीर्थयात्राके लिये चला गया था। और अब लौटा हूँ। इसलिये तुम मुझे नहीं पहचानते हो। अपनी इस विपत्तिका कारण बतलाओ।'

पर्वत- 'मेरे प्राणोंके रक्षक भगवन्! सुनिए! समस्त आगमरूपी रत्नोंके धारक और पुण्यरूपी मणियोंके संग्राहक मेरे पिता जिन-दीक्षा धारण करके जब स्वर्गलोकको चले गये तो मैं स्वतंत्र हुआ। एक दिन मैंने कामके वशीभूत होकर वेश्यासेवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिया और मांस-मंदिराका स्वाद लिया । 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वाक्यका पिताजीने जो व्याख्यान किया था उसे जानते हुअे भी मुझ दुरात्माने अपने व्यसनकी पुष्टिके लियें उसे बदलकर अन्यथा रूपसे कहा । नारदने मेरी इस गलतीको पकड लिया । बस, उसीसे मेरी यह दुर्दशा हुई है ।'

कालासुर-'पर्वत ! रंज मत कर और इस सब बुद्धि विकारको दूर कर ! अपनेको सम्बोध ! जो मनुष्य निरीह है उसकी मनोवाञ्छा पूरी नहीं होती । अतः हृदयको जलानेवाले शोकको छोड और पुत्र पर्वत ! अपने संकेतसे चिन्हित ब्राह्मेध, गोमेध, अश्वमेध, सौत्रायणि, वाजपेय, राजसूय, पुण्डरीक आदि यज्ञोंके प्रतिपादक वाक्योंको रचकर वेदमें जगह-जगह मिला दो । पुत्र ! मेरेमें 'भूर्भुवः स्वः' इत्यादि मन्त्रको बदलनेकी सामर्थ्यके होतें हुअे और मांस-मदिरा आदिमें प्रवृत्ति करानेवाले वेदमन्त्रोंकी रचनामें सिद्धहस्त तुम्हारे होते हुअे ऐसा कौन काम हैं जो हम नही कर सकते ।'

इस प्रकार पर्वतको उत्साहित करके उस कालासुरने अपनी विद्याके बलसे अतिवृष्टि आदि आठ ईतियोंको समस्त देशमें फैला दिया । तथा आप अयोध्या नगरीमें आकर ब्रम्हाका रूप धारण करके नगरके बाहर बैठ गया । पर्वत यजुर्वेदका ज्ञाता पुरोहित बना । मायामयी पिंगल, मनु, मतङ्ग, मरीचि, गौतम वगैरह होता बन गये । ब्रम्हाजी चारों मुखोंसे उपदेश देते थे और पर्वत आदेश देता था ।

ब्रम्हाजीने स्वयं यज्ञके लिये ही पशुओंकी सृष्टी की है । यज्ञ सबकी समृद्धिके लिये है, इसलिये यज्ञमें किया जानेवाला पशुवध वध नहीं हैं ।

ब्रम्हाके लिये ब्राम्हणका वध करना चाहियें, इन्द्रके लिये क्षत्रियका वध करना चाहिअे, वायुके लिये वैश्यका वध करना चाहिए, तमके लिये शूद्रका वध करना चाहिए, गाढतमके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोरका वध करना चाहिए, आत्माके लिये नपुंसकका वध करना चाहिए, कामके लिअे बदमाशका वध करना चाहिए, अप्रतिक्रुष्टके लिअे मागधका वध करना चाहिए, गीतके लिये पुत्रका वध करना चाहिए, सूर्यके लिये गर्भिणी स्त्रीका वध करना चाहिए। सौत्रामणि यज्ञमें जो अमुक प्रकारकी शराब पीता है वह शराब नहीं पीता। तीन प्रकारकी शराब वेदसम्मत है–पैष्टी–जो जौ वगैरहके आटेसे बनायी जाती है, गौडी–जो गुडसे बनायी जाती है और माधवी–जो महुएसे बनती है। गोसव यज्ञमें ब्राम्हण तुरतके जन्मे हुअे गौके बछडेसे यज्ञ करके वर्षके अन्तमें मातासे भी भोग करता है। माताके पास जाओ, बहनके पास जाओ।

अश्वमेध यज्ञमें मध्यके दिन तीन कम छह सौ अर्थात् पाँच सौ सत्तानवे पशु मारे जाते हैं ऐसा वचन है। श्रोत्रियके लिये महान् बैल अथवा बकरा मारा जाता है तथा मालागन्ध वगैरह विधिपूर्वक अर्पित की जाती है।

गोसव यज्ञमें गायका वध करना चाहिए। राजसूय यज्ञमें राजाका वध करना चाहिए। अश्वमेधमें घोडेका वध करना चाहिए और पौण्डरीक यज्ञमें हाथीका वध करना चाहिए। ओषधि, पशु, वृक्ष, तिर्यंच, पक्षी और मनुष्य ये सब यज्ञमें मारे जानेसे उच्चगति पाते हैं। मनु, व्यास, वसिष्ठ आदि ऋषियोंके वचनोंको और वैदिक वचनोंको जो अप्रमाण बतलाता है वह ब्रम्हघाती है। पुराण, मानवधर्म, मनुस्मृति, साङ्गवेद और आयुर्वेद ये चार स्वयं प्रमाण हैं। इन्हें युक्तियोंसे खण्डित नहीं करनी चाहिए। इस तरहकी आज्ञाएं पर्वत देता था और मनु, मरीचि, मतङ्ग आदि ऋषि 'स्वाहा' शब्दके साथ बकरा, द्विज, हाथी, घोडा वगैरह प्राणियोंसे होम करते थे। इस प्रकार वेदसे जीविका करनेवाले ब्राम्हणोंमें, शस्त्रसे जीविका करनेवाले क्षत्रियोंमें, व्यापारसे जीविका करनेवाले वैश्योंमें और खेती आदिसे जीविका करनेवाले कृषकोंमें कालासुरने जो बीमारियाँ फैलायी थीं उन्हे पर्वत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूर करता था और कालासुर मारे गये प्राणियोंको अपनी मायाके द्वारा विमानमें सवार कराकर स्वर्गको जाते हुओ दिखाता था। मनु वगैरह मुनि इससे दूसरोंको प्रभावित करते थे। इस प्रकार जब सब लोगोंमें मायाके द्वारा दिखलाये गये स्वर्ग गमनके लोभसे हलचल मच गई तो नरकगामी सगर और विश्वभूति पुरोहितने भी कालासुरके उपदेशसे बहुतसे प्राणियोंका वध किया और उन्हें खाया। इससे उनका चित्त पापमें लिप्त हो गया। फिर कालासुरने उन दोनोंके पूर्व जन्ममें किये गये अपराधका स्मरण कराकर यज्ञके बहानेसे उन दोनोंको यज्ञकी अग्निमें होम दिया, और वे दोनों मरकर तीसरे नरकमें चले गये। पर्वतने भी अग्निको तिरस्कृत करनेवाली अपनी जठराग्निमें देवताओं और पितरोंकी तृप्तिके बहाने समस्त प्राणियोंका संहार कर डाला। कालासुर तो अपना काम करके अन्तर्धान हो गया। अतः उसके बिना उसकी सब विधि फीकी पड गयी। कालासुरके विरहरूपी संतापके शोकसे उसकी दशा शोचनीय हो गयी। क्लेशसे उसका शरीर कृश हो गया। अन्तमें मरण करके वह सप्तम नरकमें उत्पन्न हुआ।

'झूठ बोलनेके दोषके कारण पर्वतके साथ वसु भी सातवें नरकको गया, जहां सदा संतापरूपी अग्नि जलती रहती हैं।

—वसुपर्वत की कथा समाप्त—

अब दो श्लोकों द्वारा स्तेयके प्रभावका वर्णन—

आस्तां स्तेयमभिध्याऽपि विध्याप्याऽग्निरिव त्वया।
हरन् परस्वं तदसून् जीहीर्षन् स्वं हिनस्ति हि ॥८५॥

अन्वयार्थ— हे क्षपक! (स्तेयं आस्तां) चोरी तो दूर ही रहो केवल (अग्निः इव) अग्निके समान तापका कारण होनेसे (अभिध्या) परधनकी इच्छा (अपि) भी (त्वया) तुझे (विध्याप्या) नष्ट करनी चाहिये। (हि) क्योंकि (परस्वं) दूसरेके धनको (हरन्) हरण करनेवाला (तदसून्) उसके प्राणोंको (जिहीर्षन्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाश करनेकी इच्छा करनेवाला होनेसे (स्वं) अपना (हिनस्ति) घात करता है ॥८५॥

भावार्थ- हे समाधिमरणार्थिन् ! चोरी की तो बात ही दूर रहे-परन्तु तू इस समय अपने अन्तःकरणमें अग्निज्वालाके समान सन्तापकी कारणभूत परधनकी इच्छाको भी स्थान मत दे । क्योंकि जो मानव परधनकी इच्छा करता हैं, उस समय उसके हृदयमें परप्राणोंके घातकी प्रवृत्ति अवश्य होती हैं-और दूसरेके घातकी इच्छा करनेवालेंके भावहिंसारूप अपना घात अवश्य होता है-दूसरा प्राणि मरे या ना मरे । वास्तवमें भावहिंसाके होनेपर ही द्रव्यहिंसा दुरन्त संसारके दु.खोंका कारण होती हैं । इसलियें हिंसाकी कारणभूत चोरी का त्याग अवश्य करना चाहिये ।

रात्रौ मुषित्वा कौशाम्बीं दिवा पञ्चतपश्चरन् ।
शिक्यस्थस्तापसोऽधोगात् तलारकृतदुर्मृतिः ॥८६॥

अन्वयार्थ- (रात्रौ) रात्रिमें (कौशाम्बीं) कौशाम्बी नगरीको (मुषित्वा) चोरी करके (दिवा) दिनमें (शिक्यस्थः) छिकेकर बैठकर (पंचतपः) पंचाग्नि तपको (चरन्) करनेवाला (तापसः) तापस (तलारकृतदुर्मृतिः) कोट्टपालके द्वारा दुर्मरणको प्राप्त होकर (अधोऽगात्) नरकमें गया ॥८६॥

भावार्थ- एक भौतिक तापसी मैं परधन का त्यागी हूं, दूसरेकी भूमीका पादस्पर्श करना भी पाप समझता हूं । इसलियं दिनमें लम्बमान छीकेपर बैठकर पंचाग्नि तप तपता था, और रात्रिमें चोरी करता था । एक दिन कोतवालने पकड लिया, जिससे आर्त्तध्यानसे मरा और नरकमें गया ।

साधुभेषधारी चोरकी कथा

पूर्वकालमें कोसाम्बी नगरीमें राजा सिंहरथ राज करते थे । वे बडे न्यायवान् थे । उनकी स्त्रीका नाम विजया था । उस नगर में एक चोर रहता था । वह साधुके वेषमें रहता और बडके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृक्षकी डालसे सींका बांधकर उसमें बैठ जाता था। लोग उसके पास जाते तो उनसे कहा करता था कि दूसरेकी वस्तुकी तो बात ही क्या है, पर मैं धरती तक नहीं छूता हूं। दिनभर उसका य ही हाल रहता था, पर रातको वस्तीमें जाकर चोरी किया करता था। उसके साधुभेष और मीठी मीठी बातोंके कारण लोगोंपर उसका इतना विश्वास वढ गया था कि किसीको उसपर सन्देह भी नहीं होता था।

जब शहरमें बहुतसी चोरी हुई और उनका पता न लगा तब राजाने थानेदारको बुलाकर खूब डांट लगाई। बेचारा थाने-दार जहाँ तहाँ पता लगाता फिरा। पर कुछ पता नहीं लगा। अन्तमें हार मानकर इसी चिन्तामें बैठा था कि इतनेमें एक भिखारी ब्राम्हण उसके पास पहुंचा और भोजनके लिये उससे कुछ मांगा थानेदारने उत्तर दिया कि भाई मुझे तो प्राणोंकी पड रही है, तुझे भीख जोडनेकी पड रही है। भिखारी ब्राम्हणने थानेदारसे इसका कारण पूछा। पहिले तो थानेदारने कुछ नहीं कहा, पर ब्राम्हणके बार बार पूछनेंपर उसने सब हाल कह सुनाया। ब्राम्हणने सोच विचारकर कहा कि चोरी करनेवाला वही मनुष्य होगा जो सच्चाईके लिये बहुत प्रसिद्ध है। बहुतसे मनुष्य अपनी सच्चाईका बडा ढोंग फैलाते हैं और अन्तमें वे बडे ठग निकलते हैं।

थानेदारने कहा कि यहाँ एक साधु बडा सन्तोषी मनुष्य है। मुझे तो उस बेचारेपर बिलकुल सन्देह नहीं होता। मैं उसे महात्मा समझता हूँ।

ब्राम्हण बोला कि आप उसकी सच्चाईका ठीक पता लगावें। जिसे आप महात्मा कहते हैं वही चोर निकलेगा। इसके लिये मैं अपने ऊपर बीती हुई एक वार्ता आपको सुनाता हूँ, आप चित्त लगाकर सुनिये। थानेदारने उत्तर दिया, अच्छा कहो।

ब्राम्हण कहने लगा कि मेरी स्त्रीने अपनेको महासती प्रसिद्ध कर रखा था। जब बच्चेको दूध पिलाती थी तो अपनी दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छाती कपडेसे खूब ढांक लेती थी, केवल काली बूंटी निकालकर बच्चेके मुंहमें दबा देती थी। बच्चेको अपनी छाती नहीं छूने देती थी। कारण पूछनेपर उत्तर दिया करती थी कि बच्चा भी पर पुरुष है, यदि परपुरुष मेरी छाती छू लेवे तो मेरा शीलभंग हो जावे। पर यह सब उसका ढोंग ही निकला। क्योंकि मैंने अपनी आंखोसे उसे दूसरोंके साथ व्यभिचार करते देखा था और तभीसे मैं संसारसे विरक्त होकर तीर्थयात्राको निकल पडा हूँ।

मैं पहिले भिखारी नहीं था। मेरे पास बहुत धन था। उसका मैंने सोना ले लिया था और उसे एक पोली लाठीमें भरके उसका मुंह बन्द कर रक्खा था। उस लाठीको मैं अपने पास ही रखता था। यात्रा करते फिरते मुझे एक लडका मिल गया और वह भी यात्रामें साथ रहने लगा। पहिले मुझे उस लडकेका विश्वास नहीं था इसलिये मैं उस लाठीको उस लडकेसे बचाये रहता था।

एक दिन सांझको एक कुम्हारके यहां मै और वह ठहरे रहे। जब सबेरा होनेपर दोनोंने चल दिया और बहुत दूर निकल गये, तब वह लडका सिरपर हाथ रखके कहने लगा कि अरे! रे! रे! मुझसे बडी भूल हो गयी है। जिसके यहां हम आप, रातको ठहरे रहे थे उसका यह एक तिनका मेरी पगडीमें चिपटकर चला आया है। मैं चोरीका त्यागी हूँ, तिनका उसके घरपर देनेको जाता हूँ। लडका कुम्भारके घरतक गया और तिनका सौंपकर वापिस आया। तबसे मैं उसपर बडा भरोसा करने लगा था।

एक दिन सांझके समय गाँवमें वह और मैं ठहरा। मेरे पासका भोजन खतम हो चुका था, सो मैंने साथके लडकेसे भोजन लानेको कहा। लडका कहने लगा कि भोजन लेकर लौटते लौटते रात्रि बहुत हो जावेगी, इससे अपनी यह लाठी मुझे दे दीजिये, रास्तेमें कुत्ते इत्यादिको तोडनेके काम आवेगी। उसकी ये बातें सुनकर मैंने वह लाठी उसे दे दी। वह पापी हाथमें लाठी लेकर भोजन लेनेको चला गया और फिर नहीं आया। "ब्राम्हण रोते रोते कहने लगा कि, मैंने उसका बहुत पता लगाया पर नहीं लगा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके सिवाय ब्राम्हणने कई ढोंगी ठगोंकी बातें सुनाई और ऊँचे स्वरसे कहा कि, जिस तापसींको आप बडा सच्चा बतलाते हैं वही चोर होगा। मैं ही आज रात्रिको उसका पता लगाऊंगा। ब्राम्हणकी इस बातचीतका थानेदारके चितपर बडा असर पडा। उसने तापसीकी परीक्षा करनेको ब्राम्हण ही से कहा।

रात होते ही वह ब्राम्हण तापसीके आश्रमकी ओरसे निकला, तो तापसीके चेलोंने उसे रोका कि, कौन है? ब्राम्हण, बडी दीनवाणीसे कहने लगा कि, मैं रास्तगीर हूँ, मुझे रातको सूझता नहीं है, यहाँ कहीं एक कोनेमें ठहर जाने दो। सबेरे कुछ कुछ दिखने लगेगा, तब चला जाऊंगा। चेलोने यह हाल अपने गुरुसे कहा। तो तापसीने सोचा कि यह अन्धा है, हमारे काममें कुछ बाधा नहीं डाल सकता, इसलिये उस ब्राम्हणको एक कोनेमें सोते रहनेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलनेपर वह ब्राम्हण एक कोनेमें पडा रहा और चुपचाप टकटकी लगाकर सब हाल देखने लगा।

आधी रातको जब सुनसान हुई, तो तापसी और उसके चेलोंने नित्यका काम चालू कर दिया। वे शहरमें गये और बहुतसा धन चुराकर लाये। तापसीके आश्रमके पास ही एक कुआ था, उसमें वह सब चोरीका धन डालने गये। उस कुएके पास एक गुफा थी उसमें तापसीके स्त्री बच्चे रहते थे। उन सबके भोजन आदिका खर्च चोरीके धनसे हुआ करता था, यह सब हाल ब्राम्हणने चुपचाप देख लिया और सबेरा होनेपर थानेदार और राजाको मालूम करा दिया। राजाने, तापसी और उसके चेलोंको तुरन्त ही पकड बुलाया। फिर ठीक खातरी करके पापी तापसीको तो फांसीका दण्ड दिया, सो खोटे भावोंसे मरकर वह नरकको गया और तापसीके चेलोंको जेलखानेकी सजा दी।

सारांश, चोरी महापाप है, इस भवमें और परभवमें दुःखदायक है, ऐसा जानकर चोरी नहीं करना चाहिये।

–इति तापसचोरकी कथा समाप्त–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्यके दृढताको करनेके लिये कहते हैं—

पूर्वेऽपि बहवो यत्र स्खलित्वा नोद्गताः पुनः ।
तत्परं ब्रह्म चरितुं ब्रह्मचर्यं परं चरेत् ॥८७॥

अन्वयार्थ–(पूर्वेऽपि) पहिले भी अर्थात् चतुर्थ कालमें भी (बहवः) बहुतसे मुनि (यत्र) जिस व्रतमें (स्खलित्वा) च्युत होकर (पुनः) फिर (नोद्गताः) व्रतमें स्थिर नहीं हुये, इसलिये (ब्रह्म परं) परम ब्रह्ममें (चरितुं) आचरण करनेके लिये (तत्) उस (ब्रह्मचर्यं) ब्रह्मचर्य व्रतको (परं) उत्कृष्ट रूपसे (चरेत्) धारण कर।

भावार्थ–जिस ब्रह्मचर्य व्रतके विषयमें स्खलित होकर आज इस पंचमकालके मुनियोंकी बात ही क्या है, किन्तु चौथे कालके ग्यारह अग और नवपूर्वके पाठी बहुतसे रुद्रादिक भी सातिचार प्रवृत्ति प्राप्त होकर पुनः उदयको प्राप्त नहीं हुये अर्थात् अपने व्रतोमें स्थिर नहीं हुये। किन्तु प्रत्युत अनाचारके ही आचरण करनेवाले हुये हैं। अतः हे आराधक ! रोज तूं शुद्ध ज्ञानानुभव तथा शुद्धात्मानुभवका कारण उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य व्रतकी आराधना कर।

रुद्र ग्यारह होते हैं, और वे सब दिगम्बर दीक्षाको धारणकर उत्कृष्ट संयमका पालनकर ११ अंग और नौ पूर्वके पाठी होते हैं। परन्तु स्त्रीके निमित्तसे भ्रष्ट होकर नरकमें जाते हैं। आचार्योंने कहा है–कर्मोंमें मोहनीय कर्मका जीतना बडा कठिन है।

इन्द्रियोंमें रसना इन्द्रियपर विजय करना–व्रतोमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना तथा गुप्तियोंमें मनोगुप्तिको पालन करना अत्यंत कठिन है।

रुद्रका तो उदाहरण है और भी बहुत ऐसे मानव हुये हैं जो ब्रह्मचर्य व्रतका घातकर नरकमें गये। इसलिये वस्तुस्वरूपका विचारकर ब्रह्मचर्य व्रतमें दृढ रहो और बाह्य वस्तुमें रमण करनेकी भावनाका त्यागकर ब्रह्म अर्थात् आतमा उसमें चर्य अर्थात् रमण करो। सके ही संसारका नाशकर प्राणी मोक्षपदको प्राप्त करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुद्रकी कथा

इसी भरत क्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक किन्नर गीत नामका नगर है। उसमें रत्नमाली नामका विद्याधरोंका राजा रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मनोहरी विद्याधरी था। उन दोनोंके रुद्रमाली नामका पुत्र था। एक दिन वह स्वच्छन्दतापूर्वक वनमें विहार कर रहा था। उसी समय उसने विद्या सिद्ध करती हुई एक विद्याधर कुमारीको देखा। उसके रूपसे मोहित होकर रुद्रमाली विद्यासे भ्रमर बन गया और छह महिनेतक उसके मुख कमलमें रहा आया। उसके बाद और भी सूक्ष्म रूप बनाकर स्तनों तथा जघन प्रदेशमें रहा आया। पश्चात् उसने अपना असली शरीर प्रकट किया उस समय उसका धैर्य छूट रहा था अर्थात् वह उस विद्याधर-कुमारीको पानेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा था, यह देख विद्याधर कुमारीने कहा कि कुछ समयतक प्रतीक्षा करो, विघ्न मत करो। शिखिदुर्लभा नामकी विद्या सिद्ध हो रही है उसके सिद्ध होनेपर मैं तुम्हारी स्त्री बन जाऊंगी। हे सुभग! मैं तुम्हारे प्रति बद्धानुराग हूँ।

उस समय रुद्रमालीने उससे पूछा कि हे भद्रे! तू किसकी पुत्री है? उसने कहा कि इसी पर्वतकी उत्तर श्रेणीपर गन्धर्वपुर नगरका राजा महाबल रहता है वह मेरा पिता है उसकी स्त्रीका नाम प्रभाकरी हैं। मैं अर्चिमालीनी नामसे प्रसिद्ध उन्हीं दोनोंकी पुत्री हूँ। इस प्रकार अपना परिचय देकर विद्याधर कुमारीने भी पूछा कि तुम कौन हो? तब रुद्रमालीने कहा कि इसी पर्वतकी दक्षिण श्रेणीपर किन्नर गीत नामका नगर है। उसके राजा रत्नमाली और रानी मनोहरीका मैं रुद्रमाली नामका पुत्र हूँ।

बहुत दिनोंमें विद्या सिद्ध कर, चन्द्रमुखी, अर्चिमालिनी अपने घर चली गई। मातापिताने दोनोंका मन जानकर उनका विवाह कर दिया। रतिके रागसे रंगे तथा प्रज्ञप्ति नामक विद्याको सिद्ध करनेवाले वे दोनों शान्तिके हेतु नन्दन वनमें जिनेंद्र भगवानका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिषेक पूजन तथा स्तवन कर सुखसे बैठे थे। इतनेमें मनोजय और चित्तवेग नामके दो विद्याधर जो कि अर्चिमालिनीके अभिलाषी थे महाजालिनी विद्यासे रुद्रमालीको बांधकर ले गये। परन्तु रुद्रमाली उन दोनोंको जीतकर फिर आ गया। अर्चिमालिनीके साथ उसने नगरमें प्रवेश किया तथा अनुरागपूर्वक रहने लगा।

एक दिन उसने विरक्त होकर चारण ऋद्धिधारी मुनिके चरण मूलमें स्त्रीके साथ दीक्षा ले ली अर्थात् रुद्रमाली मुनि हो गया और अर्चिमालिनी आर्यिका बन गई। उन दोनोंने 'परस्पर यह मेरा पति होगा और यह मेरी स्त्री होगी' इस प्रकार निदान कर संन्यास धारण किया और मरकर सौधर्म स्वर्ग गये। वहां भी दीर्घकाल तक रतिसुखका उपभोग कर देव तो गन्धार देशके माहेश्वरपुर नगरमें महाराज सत्यन्धर और उनकी रानी सत्यवतीके सात्यकि नामका पुत्र हुआ तथा अर्चिमालिनीका जीव देवी सौधर्म स्वर्गसे च्युत हो सिन्धुदेशके विशाली नगरमें महाराज चेटक और उनकी रानी सुप्रभादेवीके ज्येष्ठा नामकी पुत्री हुई। ज्येष्ठा सात्यकिके लिये पहले ही दे दी थी, परन्तु विवाह नहीं हुआ था।

इसी बीचमें महाराज श्रेणिकका पुत्र धूर्त अभयकुमार कन्याके लिये सेठ बनकर वहां आया। वहां उसने राजाकी दो पुत्रियोंको भूसुरंगके मार्गसे ले गया। चेलनाने ज्येष्ठाको आभरण जिनप्रतिमा आदिके बहाने वापिस लौटा दिया और स्वयं अकेली श्रेणिकके पास आ गई। जिनप्रतिमा आदि लेकर जब ज्येष्ठा वहां पहुंची तब वहां कोई नहीं दिखा। इसघटनासे ज्येष्ठा बहुत लज्जित हुई 'मैं बडी बहिनके द्वारा ठगी गई' इस अभिप्रायसे विरक्त होकर उसने अपनी बुआ यशस्वती नामकी आर्यिका जो कि जिन मन्दिरमें रहती थी चरण मूलमें दीक्षा धारण कर ली। देदीप्यमान सुवर्णके समान वर्णवाली ज्येष्ठा कन्याका दीक्षा लेनेका समाचार सुनकर सात्यकि नामक कुमार भी संसारसे विरक्त हो गया उसने राज्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मीका परित्याग कर समाधिगुप्त नामक मुनिराजको नमस्कार पूर्वक जिनदीक्षा लें ली । तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर तीव्र तप तपश्चरण करते हुए सात्यकि मुनि एक बार उत्तर गोकर्ण पर्वतको छोडकर राजगृह नगरके समीप उच्चग्रीव पर्वतपर स्थित हुए । एक दिन उनके गुणोंमें अनुराग रखनेवाली आर्यिकाएँ उनको वन्दना करनेके लिये आई । वन्दना करके ज्योंहो ही वे पर्वतसे उतरने लगी त्योंही बहुत भारी मेघवृष्टि आ पहुंची । आर्यिकाएं भीगकर विव्हल होती हुई इधर उधर चली गई । परन्तु ज्येष्ठा नामकी आर्यिका सात्यकि मुनिकी गुफामें प्रविष्ट हुई । वहां वह कपडा निचोडने लगी उसी समय सात्यकि मुनिकी दृष्टि उसपर पडी । देखते ही मुनिके कामोद्रेक हो गया, जिससे उन्होंने उसका उपभोग कर लिया । मुनि तो आलोचना निन्दा तथा गर्हाकर मुनि धर्ममें स्थिर हो गये परन्तु ज्येष्ठा आर्या गर्भवती हो गई । जब शान्ति नामक प्रधान आर्याको पता चला तो उसने उसे चेलनाको सौंप दिया । चेलनाके पास रहते हुए उसने पुत्र उत्पन्न किया । उस पुत्रको अभयकुमारने स्वयंभू गुफामें डाल दिया । रात्रिके समय चेलनाको स्वप्न दिखा जिससे उसने उसे गुफासे बुलवा लिया तथा दर्शन सम्बन्धी अनिष्टका शमन कर उसका स्वयंभू नाम रक्खा । ज्येष्ठा निःशल्य होकर चली गई तथा आर्यिकाके पास संयम सम्बन्धी नियमोंका पालन करती हुई रहने लगी ।

स्वयंभू ज्यों ज्यों बडा होने लगा त्यों त्यों चांटा आदि की ताडनासे अन्य बच्चोंको सन्ताप पहुंचाने लगा । किसी समय राती चेलनाने उसके और भी अनुचित कार्यको देखकर स्वयंभूसे कहा-जो दुष्ट, जारजात तथा निर्लज्ज होता है वह क्या किसी भी कारणसे स्वभावको छोडता है ? चेलनाने भौंह टेडी कर उक्त दुर्वचन कहे थे इसलिये स्वयंभू इतना पीडित हुआ मानों किसीने शूलसे ही विदीर्ण कर दिया हो । उसने फिर प्रणाम कर पूछा- माताजी ! आपने यह क्या कहा है ? चेलनाने कुछ भी छिपा नहीं रखकर सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्योंका त्यों कह दिया। अपनी उत्पत्तिका समाचार जानकर स्वयम्भू उत्तर गोकर्ण पर्वतपर गया और सात्यकि मुनिको नमस्कार कर वैराग्य वश दिगम्बर साधु हो गया तथा उसी उत्तर गोकर्ण पर्वतपर रहने लगा। गुरुकी शिक्षासे मन रोककर उसने ग्यारह अङ्ग सीख लिये। वहां उसे महान् अतिशयसे युक्त रोहिणी आदि पांचसौ विद्याएं आकर सिद्ध हो गई। विद्याकी सामर्थ्यसे वह सिंह बनकर लोगोंको डराने लगा। यह समाचार किसीने उसके गुरु सात्यकि मुनिसे कह दिया। तब गुरुने उससे कहा 'कि हे मुने! स्त्रीके कारण तुम्हारा विनाश होगा। गुरुके वचन सुनकर वह कहने लगा कि 'मैं जहां स्त्रीका मुख न देख सकूं वहां तप करूंगा' ऐसा कहकर वह कैलास पर्वतपर जाकर तप करने लगा।

उसी समय विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीपर मेघनिबद्ध नामक नगर में कनकरथ नामका विद्याधरोंका राजा रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मनोरमा था। उन दोनोंके देवदारु और विद्युज्जिव्ह नामके दो पुत्र थे। एक दिन देवदारुको राज्यपर स्थापित कर तथा विद्युज्जिव्हको युवराज बनाकर राजा कनकरथने गुणधर गुरुके पाद मूलमें दीक्षा ले ली। उधर प्रज्ञप्ति विद्याके प्रभावसे विद्युज्जिव्हने देवदारुको जीतकर निकाल दिया जिससे वह कैलास पर्वतपर आकर तथा विद्यासे एक नगर बसा कर सपरिवार निर्भय रहने लगा। उस देवदारुको चार महा देवियां थी १) योजनगन्धा २) कनका ३) तरङ्गवेगा ४) तरंग भामिनी। चारों ही अत्यन्त सुन्दर शरीरकी धारक थीं। योजन गन्धाके गन्धिका और गन्धमालिनी नामकी दो अत्यन्त विनीत पुत्रियां उत्पन्न हुई। कनकाके कनक चित्रा और कनकमाला ये दो पुत्रियां हुई। तरंगवेगाके तरंग सेना और तरंगवती ये दो पुत्रियां उत्पन्न हुई और तरङ्गभामिनी के सुप्रभा तथा प्रभावती ये दो पुत्रियां उत्पन्न हुई। ये आठो ही कन्याएं दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित दिव्य वस्त्रोंको धारण करनेवाली देवकन्याओंके समान कञ्चुकियोंसे घिरी रहती थीं। एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिन वे सब कन्याएं कैलास पर्वतपर मानस सरोवरमें जलक्रीडा करनेके लिये आईं। स्थूल तथा उठे हुये स्तनोंसे सुशोभित उन कन्या ओंको स्नान करती हुई रुद्रने देखा। देखते ही वह कामके बाणोंसे हृदयमें घायल हो गया। क्षुभित रुद्र व्यामोहको प्राप्त हो गया। समीपमें स्थित तथा कामके बाणोंसे जर्जरित हृदयवाले रुद्रने उपाय सोच लिया। उसने विद्याके द्वारा सरोवरके तटपर रखे हुए उन कन्याओंके वस्त्राभूषण उठवा लिये। वे अनुपम कन्याएं स्नान कर जब तटपर आई तब उन्होंने अपने वस्त्राभूषण नहीं देखे। जिसके चित्त व्याकुल हो रहे थे, ऐसी उन लडकियोंने मुनिके पास जाकर कहा कि हे स्वामिन्! देवोंको भी प्रिय लगनेवाले हमारे वस्त्राभूषण किसीने ले लिये है पर जान नहीं पडता, किसने लिये हैं? आप ज्ञानवान् है अतः निश्चित जानते हैं, बतलाइये किसने लिये हैं? रुद्र बोला, जानता हूँ यदि तुम सब मुझे चाहो तो मैं दिखला दूं। यह सुनकर आश्चर्यमें पडी नवयौवनवती विद्याधर कुमारियां बोलीं- मुने! हम स्वच्छन्दचारिणी नहीं हैं, हमारे माता-पिता जानते हैं, स्वच्छन्दचारिणी स्त्रियोंको विद्याका माहात्म्य कैसे प्राप्त हो सकता है? तब उनके वस्त्राभरण देकर रुद्रने कहा- अच्छा आप लोग मातापितासें तथा परिवारसे पूछकर उत्तर देओ।

उन कन्याओंने घर जाकर पिताके आगे सब समाचार कहा। पिताने एक कञ्चुकीको दूत बनाकर रुद्रके पास भेजा। कञ्चुकीने जाकर मुनिसे कहा-स्वामिन्! हमारे स्वामी ऐसा कहते हैं-यदि आप मेघनिबद्ध नगर जाकर मेघनृप तथा मेघनादको निकालकर मानसिक वाचनिक और शारीरिकके भेदसे तीनों प्रकारके हर्षको देनेवाली त्रिपुर नगरमें मेरा प्रवेश करा दें तो मनुष्योंके मनको मोहित करनेवाली अपनी आठों पुत्रियां आपको दे दूं। रुद्रने 'ओम् कहकर स्वीकृति दे दी। कञ्चुकीने आकर सब समाचार स्वामीसे कहा जिससे विद्याधर राजा हर्षको प्राप्त हुआ वह समस्त मित्र तथा परिवारके लोगोंके साथ जाकर रुद्रको अपने घर लिवा लाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां बैठाकर उसनें, दासीनें, जिस प्रकार राज्य अपहृत किया था, वह सब समाचार प्रारम्भसे लेकर रुद्रको सुनाया । रुद्रनें कहा--राजन् ! तुम जो कह रहे हो वह मैं अभी सिद्ध किये देता हूँ । एक त्रिपुरके राजाका क्या मैं तो तीनों जगत्का संहार कर सकता हूँ ।

तदनन्तर रोषसे भरा देवदारु निर्भय होकर नाना छत्र ध्वजा चमर और सेनासे सहित रुद्रको साथ लेकर वहां गया । उसने नगरको घेर लिया । विद्युज्जिव्ह बाहर निकला रुद्रने उसके साथ तीन लोकके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न करनेवाला युद्ध किया तथा ज्वालिनी विद्यासे शत्रुको जलाकर भस्म कर दिया । देवदारु त्रिपुरको लेकर सुखी हुआ । तदनन्तर जमाता को त्रिपुर ले जाकर उसने आठों कन्याएं उसको दे दी । परन्तु वे आठों कन्याएं उसके मैथुनको सहन नहीं कर सकी अतः मर गयी । देवदारु विद्याधरके अष्टचन्द्र नामक मित्र थे उनकी मालतीकी मालाके समान कोमल भुजाओंवाली पांचसौ कन्याएं थी । शत्रुको नष्ट करनेवाले रुद्रके लिये उन्होंने वे पांचसौ कन्याएं दे दी परन्तु रुद्रके विषम रतिके कारण एक दो दिनके उपभोगसे एक दो कर वे सब मर गई । उन सबके मर जानेपर रुद्र चिन्तासे व्याकुलचित्त हो उठा । अब गौरीकें साथ जिस प्रकार संयोग हुआ वह कथा कहता हूं हे भव्य जीवो ! सुनो--

पूर्व भवमें एक साध्वी दूसरे देश को जाती हुई मार्गके श्रमसे थक गई । एक धीवरने उसे नदीसे पार उतारा । उस धीवरके शीतल शरीरके स्पर्शसे वह साध्वी सन्तुष्ट हुई । तथा विषयकी आशासे कर्मवश निदान कर बैठी कि अन्यभवमें यह धीवर परम स्नेहको प्रगट करनेवाला मेरा पती हो । ऐसा निदान कर वह शरीर छोडकर सौधर्मेंद्र की देवी हुई । वह धीवर संसारमें भ्रमण कर मिथ्यातपके प्रभावसे ज्येष्ठाका पुत्र हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदनन्तर सावस्तिपुरमें एक वासव नामका राजा रहता था उसकी रानीका नाम मित्रवती था। मित्रवतीने विद्युन्मती नामकी कन्याको जन्म दिया तथा वह कन्या विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधरको दी गई। साध्वीका जीव जो सौधर्मेन्द्रकी देवी हुई थी वहांसे च्युत होकर विद्युन्मतीके गर्भमें आई और नौवें मासमें बड़े कष्टसे उत्पन्न हुई। विद्युन्मती विद्याधरी प्रसवकालिक पीडासे अत्यन्त खिन्न हो गई थी। इसलिये उसने उस कन्याको सावस्ति नगरके समीप पर्वतकी गुफामें छुड़वा दिया। कन्याके पुण्यसे प्रेरित हुई चार ब्राम्हण कन्याएं क्रीडा करनेके लिये उस गुफामें आई। ब्राम्हण कन्याओंने 'उमा उमा' उस शब्दसे रोती हुई उस कन्याको देखा। वे उसका उमा नाम रखकर उस कोमलांगीको दयाभावसे घर लेती आईं। उन चारों ब्राम्हण कन्याओंने उस कन्याको राजमहलमें लेजाकर वासव राजाकी महादेवी मित्रवतीको दिखलाया और उसने भी 'यह हमारी पुत्रीकी पुत्री है' यह जानकर ले ली तथा पालन करनेके लिये अपनी पण्डिता नामकी धायको दे दी।

तदनन्तर अष्टचन्द्र नामक विद्याधर राजाओंमें प्रधान इन्द्रसेन नामका राजा एक दिन आकाशमें विमान चलाता हुआ सावस्तिनगर आया। चन्द्रसेनकी स्त्री सन्तानरहित थी तथा रिश्तेमें वह सावस्तिके राजा वासवकी रानी मित्रवतीकी बहिन होती थी उसका नाम गिरिकर्णिका था। मित्रवतीने वह उमा नामकी पुत्री उसे सम्मानपूर्वक दे दी। तथा उसने भी पालकर उसे नवयौवनवती कर दिया। वह सूरकूट नगरके स्वामी तडिद्वेग नामक विद्याधर राजाको विवाही गई। उमा मदोन्मत्त थी तथा सुरतसंभोगमें अत्यन्त अनुराग रखती थी। एक दिन जब वह संभोगसुखका अनुभव कर रही थी उसी समय तडिद्वेगका मरण हो गया। उमा यौवनके मदसे स्वच्छन्द हो गई। विधवा उमा एक दिन देवदारुके नगर आई वहां देवदारुके द्वारा उसे रुद्रकी प्रवृत्तिका पता चला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह स्वयं रतिगुणसे अधिक थी अर्थात् अधिक रतिको अच्छा मानती थी, इसलिये रुद्रकी भार्या हो गई। रुद्रने उसे विद्यारूप ऐश्वर्यका आधा भाग दिया तथा अपना अर्धासन प्रदान किया। रुद्र उसके मुख कमलको रातदिन देखता रहता था वह सीता सीतोदा आदि नदियोंमें, पद्म आदि सरोवरोंमें, मेरु आदि पर्वतोंमें लवणोद आदि समुद्रोंमें तथा देवारण्य आदि वनोंमें सर्व मङ्गल स्वरूप उस उमाके साथ प्रतिदिन रमण करता हुआ पृथिवीपर घूमने लगा। जटारूप मुकुटसे विभूषित, बैलपर बैठा एव भस्म रमाये हुए लोगोंसे यह कहता था कि मैं तीन जगतका स्वामी हूं, कर्ता हूं, हर्ता हूं, शिव हूं, स्वयंभू हूं, शम्भु हूं, ईश्वर हूं, हर हूं, शंकर हूं, सिद्ध हूं, बुद्ध हू, त्रिपुरारि हूं, त्रिलोचन हूं, प्रकृतिसे शुद्ध हूं, सर्वज्ञ हूं, उमापति हूं, भव हूं, ईश हू, ईशान हू, मृदु हूं, मृत्युंजय हूं, श्रीकण्ठ हूं, वामदेव हू, महादेव हूं, व्योमकेश हू इत्यादि सब मेरे ही नाम हैं, शिव मैं ही हूं और दूसरा नहीं है। उस मायावीने विजयार्ध पर्वतपर बहुत दिनतक रहकर मन्त्रोंसे लोगोंके मनको अनुरक्त किया। तदनन्तर भरत क्षेत्रमें आकर उसने शैवशास्त्र प्रकट किया। उसके द्वारा दीक्षाको प्राप्त हुए बहुतसे शैवाचार्य हो गये। उसके गुणोंको देखकर बहुतसे गुण आ मिले। उन सबसे घिरा, अस्खलित प्रतापका धारक, निरन्तर उमाके प्रेमसे अनुराग रखनेवाला एवं विषयसुखका उपभोग करता हुआ वह रुद्र बारह वर्षतक पृथिवीमें शत्रुरहित हो घूमता रहा। उसके प्रतापको देखकर सभी विद्याधर अत्यन्त भयभीत हो गये। उन विद्याधरोंने विचार किया कि यह महाविद्याओंसे अत्यन्त बलवान है अतः हम सबको मारकर निश्चित ही दोनो श्रेणियोंको ले लेगा। जबतक यह हम लोगोंको नहीं मारता है तबतक किस उपायसे इस दुष्टको मारा जाय ?

लोगोंको चिन्ताकुल देख माता गिरिकर्णिकाने अपनी पुत्री उमासे पूछा कि बेटी उमे! हमारे जामाताकी विद्याएं कभी अना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धीन होती हैं या नही ? उमानें कहा–माता गिरिकर्णिके ! जब यह हमारे साथ संभोगसुखका अनुभव करता है तब संभोगकालमें इसे विद्याऐं स्फुरित नहीं रहती। गिरिकर्णिका माता इस उपदेशको प्राप्त हुई। तदनन्तर गन्धार देशसम्बन्धी दुरण्ड नगरके वन प्रदेशमें जब वह संभोग कर रहा था तब उन विद्याधरोंने स्त्री सहित उसका शिर काट लिया। रुद्रके मरनेपर उसकी विद्याओंने उपद्रव कर उस देशको उजड कर दिया। घरघरमें यम प्रविष्ट होकर लोगोंके प्राणरूपी धनको चुराने लगा। उस नगरके राजा विश्वसेनने नन्दिषेण मुनिसे पूछा कि भगवन् ! इस भारी रोगके उपसर्गका कारण क्या है ? मुनि बोले–रुद्र नामका विद्याधर तुम्हारे नगरमें विद्याओंसे क्षमा याचना नहीं कर सका, उसके पहले ही उसे मार डाला गया, इसी कारण उपसर्ग हो रहा है। राजाने फिर पूछा कि स्वामिन् ! उपसर्गका विनाश किस तरह होगा ? इसके उत्तरमें मुनिने कहा कि यदि आप लोग उसका लिङ्ग काट कर उसे पार्वतीकी योनिमें रखकर पूजा करेंगे तो विद्याए शान्त हो जावेंगी। 'उपद्रव शान्त होता है', यह सुनकर राजा विश्वसेनने वहां जाकर देशके सब लोगोंसे उक्त बात कही। लोगोंने ईटोंका ऊंचा चबूतरा बनाकर उसपर शिवका लिङ्ग काटकर रक्खा, उस लिङ्गपर योनिकी स्थापना की और उसके मध्यमें खडा मणिमय शिवलिङ्ग रखकर जलसे उसका प्रक्षालन किया, चन्दनका विलेपन लगाया, पुष्प तथा अक्षत आदिसे पूजा की, इसप्रकार राजाकी आज्ञासे लोगोंने उमा और रुद्र दोनोंकी इन्द्रियोंको नमस्कार किया। उसी समय विद्याओंने क्षमा कर दी और लोगोंका उपसर्ग नष्ट हो गया। उसी दिनसे लेकर लज्जाको नष्ट करनेवाला शिवलिङ्ग लोगोंको पूज्य हो गया तथा अज्ञानी लोगोंने श्रीमान् भगवान अरहन्त परमेश्वरको छोडकर उस देवको ही परमात्मा मान लिया।

इस प्रकार मोक्षप्राभृतमें जिनमुद्रासे भ्रष्टताको सूचित करने वाला रुद्रोत्पत्तिके कथानकका कथन है।

–इति रुद्रकी कथा समाप्त–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपरिग्रह महाव्रतकी दृढताका उपदेश–

मिथ्येष्टस्य स्मरन् श्मश्रुनवनीतस्य दुर्मृतेः ।
मोपेक्षिष्ठाः क्वचित् ग्रंथे मनो मूर्छन्मनागपि ॥८८॥

अन्वयार्थ-(मिथ्येष्टस्य) व्यर्थके मनोरथवाले (श्मश्रुनवनीतस्य) श्मश्रुनवनीतके (दुर्मृतेः) कुमरणका (स्मरन्) स्मरण करता हुवा तू (क्वचित्) किसी भी (ग्रन्थें) परिग्रहमें (मनाग्) किंचित् (अपि) भी (मूर्च्छित) ममता करनेवाले (मनः) मनके प्रति (मा उपेक्षिष्ठाः) उपेक्षा मत कर ।८८॥

भावार्थ-भो सुविहितसाधो ! किंचित् परिग्रहके प्रति मिथ्या-भावना करनेके कारण सेठका पुत्र श्मश्रुनवनीत आर्त्तध्यानसे कुमरण कर दुर्गतिको प्राप्त हुवा था। ऐसा विचार कर–यह धनसम्पदा मेरी है, मैं इनका स्वामों हूँ इस प्रकारके संकल्परूप भाव परिग्रहमें यदि तेरा मन किंचित् समयके लिये भी प्रवेश करता है तो तुम सावधान होवो, अपने मनको अपने वश करो तथा परिग्रहमें थोडासा भी आसक्त होनेवाले मनकी उपेक्षा मत करो। क्योंकि छोटासा कोमल अंकुर ही आगे जाकर उन्नत वृक्ष बनता है। अंगुलिसे उखाडने योग्य अंकुर समय पाकर कुल्हाडीसे भी काटनेके लिये कठिन होता है।

लुब्धदत्त अपरनाम श्मश्रुनवनीतकी कथा

अयोध्यानगरीमें एक सेठ रहते थे, अुनका नाम भवदत्त था। उनका एक लडका था। उसका नाम लुब्धदत्त था। लुब्ध-दत्तका जैसा नाम था, वैसा अुसमें गुण भी था। अर्थात् वह बहुत लोभी था। एक दिन वह व्यापारके लिये विदेशको गया और वहां जाकर बहुतसा धन लेकर घरको लौट आ रहा था तब रास्तेमें उसे चोरोंने घेर लिया। बिचारा लुब्धदत्त धनहीन होकर घरको चला।

रास्तेमें उसे अहीरोंके घर मिलें। उनके पास बहुतसा मही देखकर उसकी इच्छा मही पीनेकी हुई और उसने एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्वालियेसे मही मांगा । ग्वालियेने लुब्धदत्तको जो मही दिया था, उसमें थोडासा मक्खन भी था, सो उसने छांछ तो पी ली, और मक्खन बचा लिया । उसने सोचा कि, इस रीतसे हररोज मही पिया करूं और मक्खन बचा लिया करूं तो थोडे ही दिनोंमें बहुतसा मक्खन जुड जावेगा, सो उसे बेचकर फिर रोजगार करने लगूंगा । ऐसा सोचकर वह वहीं झोपडी बांधकर रहने लगा ।

वह प्रतिदिन ग्वालियोंसे मठ्ठा मांग लाता और उसमेंका चिपका हुआ मक्खन बचाकर निरी छांछ पी लिया करता था । ऐसा करते करते एक मटकी भर घी जमा कर लिया । प्रतिदिनका यह काम देखकर वहांके ग्वाले उसे श्मश्रुनवनीत कहकर पुकारने लगे थे ।

जाडेके दिनोंमें एक रात्रिको लुब्धदत्तने अपनी झोंपडीके भीतर आग जला दी और आप खाटपर लेट गया । इतनेमें साम्हने सीकेपर टंगी हुई घीकी मटकीपर उसकी नजर पडी । उसे देखकर वह मनमें विचारने लगा कि, अब बहुत घी जमा हो गया है, इसे बेचकर व्यापार करूंगा । जब अन्न, कपास आदिके व्यापारसे मैं बहुत धनवान् हो जाऊंगा और लोग मेरा आदर करने लगेंगे, तो राज्य प्राप्त करनेका उपाय करूंगा, और राज्य बढाते बढाते जब मैं राजाओंका राजा हो जाऊंगा, तब रातको सतखण्डे महलमें पलंगपर लेटूंगा, और जब मेरी स्त्री मेरे पांव दाबेगी तब मैं उससे हंसीमें कहूंगा कि, कैसे पांव दाबती है ? तुझे अबतक पांव दाबना नहीं आता ? ऐसा कहके लात फटकार दूंगा ।

लुब्धदत्त इस विचार तरंगमें इतना मग्न हो गया कि उसे कुछ भी सुधि न रही । उसने सचमुच बडे जोरसे लात फटकार दी और वह घीके घडेमें लग गई । लातकी ठोकर लगनेसे घीका घडा फूट गया और घी गिरकर अग्निपर फैल गया, जिससे आग खूब ही भडक उठी और बढकर झोपडीमें लग गई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घीके घडा फूटनेका एकदम भडाका सुनकर, वह लुब्धदत्त कुछ सावधान भी हो गया था, परन्तु आगके वेगके साम्हने वह कुछ न कर सकता था। चारों तरफसे आग फैलनेके कारण वह मनका राजा झोपडीसे बाहर न निकाल सका। बेचारा वहीं जलकर राख हो गया और मरणकालमें भी खोटे ध्यानसे शरीर छोडकर कुगतिमें गया।

देखो, परिग्रह प्रमाण न होनेपर लुब्धदत्तकी आशा बढती ही गई। इसलिये प्रथम तो परिग्रहको बिलकुल ही छोडना चाहिय और यदि बिलकुल न छोडा जा सके तो परिग्रहका प्रमाण कर लेना चाहिये कि, इतनेसे अधिक नहीं रक्खूंगा और लुब्धदत्तके समान मनके लड्डू कभी नहीं खाना चाहिये।

–इति लुब्धदत्त श्मश्रुनवनीतकी कथा समाप्त–

----:o:----

निश्चयनयसे नैर्गन्थ्यकी प्रतिपत्तिके लिये कहते हैं–

बाह्यो ग्रन्थोऽङ्गमक्षाणामान्तरो विषयैषिता।
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पान्थः शिवपुरेऽर्थतः ॥८९॥

अन्वयार्थ– परमार्थतसे विचार किया जाय तो (बाह्यः) बाह्य (ग्रन्थः) परिग्रह (अंगं) शरीर है (अक्षाणां) पचेन्द्रियोंके (विषयैषिता) विषयोंकी अभिलाषा (आंतरः) अन्तरंग परिग्रह है और जो (तत्र) इन दोनों प्रकारके परिग्रहमें (निर्मोहः) निर्मोही है वह (निर्ग्रंथः) निर्ग्रंथ है (अर्थतः) वास्तवमें वही (शिवपुरे) मोक्षमार्गमें (पान्थः) चलनेवाला रास्तागिर है ॥८९॥

भावार्थ– वास्तवमें विचार किया जाय तो शरीर बाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयाभिलाषा अन्तरंग परिग्रह है। जो मानव इन दोनों प्रकारके परिग्रहकी ममताका त्याग करता है वही सच्चा निर्ग्रन्थ है। वही मोक्षमार्गमें चलने-वाला होनेसे शिवपुरका पांथ (रास्तागिर) कहलाता है। क्योंकि निर्ग्रन्थ हुये विना मोक्षगामी नहीं बन सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगें– कषाय और इन्द्रियोंके द्वारा किये हुये आपयोंका स्मरणके लिये उपदेश–

कषायेन्द्रियतन्त्राणां तत्तादृग्दुःखभागिताम् ।
परामृशन्मा स्म भवः शंसितव्रत तद्वशः ॥९०॥

अन्वयार्थ– (शंसितव्रत) हे प्रशंसनीय व्रतधारी क्षपक ! तुम (कषायेन्द्रियतंत्राणां) कषाय और इन्द्रियोंके वशीभूत होकर (तत्तादृग्दुःखभागितां) उस प्रकार असाधारण दुःख भोगनेकी स्थिती का (परामृशन्) चिन्तवन करता हुवा तू (तद्वशः) उन इन्द्रियोंके वशीभूत (मास्म भवः) मत हो ॥९०॥

भावार्थ– हे समीचीन रीतिसे व्रतोंको पालनेवाले क्षपक ! अनगार धर्मामृतकी छठ्ठी अध्यायमें जिनका विस्तार रूपसे वर्णन किया गया है ऐसी उस कषाय और इन्द्रियोंके वशमें हो जानेवालोंके दुःखभागीपनेको अर्थात् दुःखके अनुभवका स्मरण करके तूं आत्मके परमशत्रु इन कषाय और इन्द्रियोंकें वशीभूत मत होवो । अर्थात् इन्द्रिय और कषाय आत्माका पतन करनेवाली है उनके द्वारा होनेवाले दुःखोंका विचार कर उनके आधीन मत होवो ।

इस प्रकार व्यवहार आराधनामें निष्ठताको कराकर निश्चय आराधनाका उपदेश देते हैं––

श्रुतस्कन्धस्य वाक्यं वा पदं वाऽक्षरमेव वा ।
यत्किचिद्रोचते तत्रालम्ब्य चित्तलयं नय ॥९१॥

अन्वयार्थ– क्षपक (श्रुतस्कन्धस्य) श्रुतस्कन्धके (वाक्यं) वाक्य (वा) अथवा (पदं) पद (वा) अथवा (अक्षरं) अक्षर (यत्किचित्) जो कुछ भी (रोचते) तुझे अच्छा लगता हो (तत्र) उसका (आलम्ब्य) आलम्बन लेकर (चित्तलयं) चित्तको (नय) तन्मय करो ॥९१॥

भावार्थ– हे व्यवहार आराधनामें परिणत आराधक राज ! अब तुम्हारी शक्ति क्षीण हो गई है–इसलिये द्वादशांग अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकीर्णरूप श्रुतस्कन्धके किसी एक बाह्यरूप अथवा अध्यात्मरूप वाक्यमें चित्तको लीन करो। अथवा णमो अरहन्ताणं इत्यादि पदमें अर्हं इत्यादि पदमें वा अ सि आ उ सा इत्यादि किसी एक अक्षरमें जो कुछ भी वाक्य पद अक्षर तुमको रुचिकर हो उसमें अपने मनको लवलीन करो। क्योंकि श्रुतसम्बन्धी पदवाक्य वा अक्षरमें अपनें चित्तको आसक्त करना ही निश्चयसे सच्ची आराधना हैं। इस श्लोकमें अक्षरं एव यहांपर जो एव शब्द आया है वह अपनी योग्यताका व्यवस्थापक है। जैसे क्षपककी शक्ति हो उसीका ध्यान करना चाहिये। और भी कहा है--

शुद्धं श्रुतेन स्वात्मानं गृहीत्वाऽर्य स्वसंविदा।
भावयंस्तल्लयापास्तचिन्तो मृत्वैहि निर्वृतिम् ॥९२॥

अन्वयार्थ- (आर्य) हे आर्य! (श्रुतेन) शास्त्रके द्वारा (शुद्धं) शुद्ध (स्वात्मानं) अपनी आत्माको (गृहीत्वा) निश्चय करके (स्वसंविदा) अपनें स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा (भावयन्) शुद्ध रागद्वेषादिरहित शुद्धात्माका चिन्तवन-ध्यान करता हुवा (तल्लयापास्तचिन्ता) शुद्धात्मामें लीन होनेसे नष्ट हो गई है संकल्प-विकल्प चिन्ता जिसकी ऐसा होता हुवा (मृत्वा) मरकरके (निर्वृतिं) मोक्ष पदको (एहि) प्राप्त कर ॥९२॥

भावार्थ- हे आर्य! आराधक! सर्वज्ञप्रणीत परमागमसे आत्मस्वरूप का निश्चय कर।

एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।

एक ज्ञानदर्शन लक्षणवाला-ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा ही मेरा है। और बाकीके संयोग है लक्षण जिन्होंका ऐसे रागद्वेषादिक सम्पूर्ण वैभाविक भाव मेरेसे बाह्य भाव है-अर्थात् मेरेसे सर्वथा भिन्न है इत्यादिक परमागमें निरूपित आत्माके स्वरूपका निश्चय करके स्वसवेदन ज्ञानके द्वारा रागद्वेष रहित शुद्ध आत्माका चिन्तवन कर। तथा शुद्धात्मामें तन्मय होकर संकल्प विकल्परूप मनो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जालको दूर करके प्राण छोड जिससे तुझे शीघ्र ही मुक्तिपदकी प्राप्ति होगी ।

उक्तं च- क्षेत्रे पात्रे द्वे ज्ञातव्ये ।
आराधनोपयुक्तः सन् सम्यक्कालं विधाय च ।
उत्कर्षान्त्रीन्भवान्नीत्वा प्रयाति परिनिर्वृतिम् ।

द्रव्य क्षेत्रको जानकर आराधनामें उपयुक्त होकर जो सम्यक प्रकार मरण करता है वह उत्कृष्टसे तीन भवको धारण कर मोक्षपदको प्राप्त करता है । ज्यादासे ज्यादा सात आठ भव धारण कर मुक्ति प्राप्त हो जाता है ।

ऊपर कथित अर्थको ही परमार्थ संन्यासके उपदेशसे समर्थन करते हैं—

संन्यासो निश्चयेनोक्तः स हि निश्चयवादिभिः ।
यः स्वस्वभावे विन्यासो निर्विकल्पस्य योगिनः ॥९३॥

अन्वयार्थ- (निर्विकल्पस्य) निर्विकल्प (योगिनः) योगीके (स्वस्वभावे) अपने स्वभावमें (यः) जो (विन्यासः) विधिपूर्वक आत्माका स्थापन है अर्थात् अपने आपमें तन्मयता है (स) वह (हि) ही (निश्चयवादिभिः) निश्चयवादियोंके द्वारा (निश्चयेन) परमार्थसे (संन्यासः) संन्यास (उक्तः) कहा गया है ॥९३॥

भावार्थ—अंतर्जल्पमें कहे गये विकल्पजालसे रहित निर्विकल्प समाधियुक्त साधु जो अपनी शुद्धात्मामें तन्मय होकर मरण करते है-उनके मरणको ही व्यवहारसापेक्ष निश्चयनयका प्रयोग करनेमें चतुर आचार्योंने वास्तविक समाधिमरण कहा है ।

निश्चयनिरपेक्ष व्यवहाराभास है और व्यवहारनिरपेक्ष निश्चय निश्चयाभास है ।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः ।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत् ॥

निरपेक्ष नय मिथ्या है, सापेक्ष नय समीचीन है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः ।
नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्णयस्तन्निराकृतिः ॥ इति

तदनेकान्तप्रतिपत्तिः प्रमाणं- एकधर्मप्रतिपत्तिर्नयः। तत्प्रत्यनीकप्रतिक्षेपो दुर्णयः ॥

पदार्थको अनेकांत रूपसे ग्रहण करना प्रमाण है और अंशरूप ग्रहण करना नय है। धर्मान्तरकी अपेक्षा करनेवाला ही नय समीचीन कहलाता है और धर्मान्तरका निराकरण करनेवाला नय मिथ्यानय कहलाता है। व्यवहारसापेक्ष निश्चयनयका वर्णन करनेवाले ही समीचीन वर्णन कर सकते हैं। इसलिये ग्रन्थकारने व्यवहारनयसापेक्ष निश्चयनयके प्रयोगमें चतुर यह आचार्यका विशेषण दिया है।

आगे-परीषहादिसे विक्षिप्त चित्तवाले क्षपकके लिये आचार्यका कर्तव्य बताते हैं-

परीषहोऽथवा कश्चिदुपसर्गो यदा मनः ।
क्षपकस्य क्षिपेज्ज्ञानसारैः प्रत्याहरेत्तदा ॥९४॥

अन्वयार्थ-(यदा) जब (कश्चित्) कोई (परीषहः) क्षुधादि परीषह (अथवा) अथवा कोई (उपसर्गः) अचेतनादि कृत उपसर्ग (क्षपकस्य) क्षपकके (मनः) चित्तको (क्षिपेत्) विक्षिप्त करे (तदा) उस समय निर्यापकाचार्य (ज्ञानसारैः) श्रुतज्ञानके रहस्यके द्वारा (प्रत्याहरेत्) विक्षिप्त हुये मनको पुनः स्वात्मोन्मुख करे।

भावार्थ-यदि किसीं क्षुधादि परीषहके कारण अथवा अचेतनादि कृत उपसर्गके द्वारा आराधकका चित्त व्याकुलित हो जाय तो उस समय निर्यापकाचार्य श्रुतामृत पान कराकर क्षपकके चित्तको पुनः स्वात्मोन्मुख करे।

ज्ञानसारका विस्तार अथवा उपसर्गादिके द्वारा चंचलचित्तवाले क्षपकके लिये उपदेशका वर्णन-

दुःखाग्निकीलैराभीलैर्नरकादिगतिष्वहो ।
तप्तस्त्वमङ्गसंयोगात् ज्ञानामृतसरोऽविशन् ॥९५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदानीमुपलब्धात्मदेहभेदाय साधुभिः।
सदाऽनुगृह्यमाणाय दुःखं ते प्रभवेत्कथम् ॥९६॥
दुःखं संकल्पयन्ते ते समारोप्य वपुर्जडाः।
स्वतो वपुः पृथक्कृत्य भेदज्ञाः सुखमासते ॥९७॥

अन्वयार्थ–(अहो) हे श्रावक! (ज्ञानामृतसरः) ज्ञानामृतरूपी सरोवरमें (अविशन्) नहीं प्रवेश करता हुवा (त्वं) तू (आमीलैः) प्रतिकार करनेके लिये अशक्य (दुःखाग्निकीलैः) दुःखरूपी अग्निकी ज्वालासे (नरकादिगतिषु) नरकादि गतियोंमें (तप्तः) संतप्त हुवा ॥९५॥

(इदानीं) इस समय (उपलब्धात्मदेहभेदाय) प्राप्त हुवा शरीर और आत्माका भेदज्ञान जिसको तथा (सदा) हमेशा (साधुभिः) साधुओंके द्वारा (अनुगृह्यमाणाय) उपकृत (ते) तेरे लिये (दुःख) दुःख (कथं) कैसे (प्रभवेत्) हो सकता है ? ॥९६॥

(ते) वे (जडाः) बहिरात्मा (वपुः) शरीरको (समारोप्य) आत्मा समझकर (दुःखं) मैं दुःखी हूं इस प्रकार (संकल्पयन्ते) संकल्प करते हैं। परन्तु (भेदज्ञाः) शरीर और आत्माके भेदको जाननेवाले अन्तरात्मा (स्वतः) अपनेसे (वपुः) शरीरको (पृथक्कृत्य) अलग समझकर (सुखं) सुखपूर्वक (आसते) रहते हैं ॥९७॥

भावार्थ–हे श्रावक ! तूने अनादि कालसे 'शरीर भिन्न है' 'मैं भिन्न हूं' इस प्रकारके भेदज्ञानरूपी अमृतके सरोवरमें प्रवेश नहीं किया इसलिये ही शरीरमें आत्मबुद्धि होनेसे नरकादि चारो गतियोंमें जिसका प्रतीकार नहीं किया जाय ऐसी दुःसह दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाके द्वारा संतप्त हुआ था।

हे आराधक ! इस समय तूने भेदविज्ञानको प्राप्त कर लिया है और साधुजन निरंतर तेरा उपकार करनेके लिये तत्पर हैं। फिर तुमको दुःख कैसे हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे भव्य! जो मैं शरीररूप हूँ इस प्रकार शरीरके प्रति आत्माका संकल्प करते हैं अर्थात् शरीरको आत्मा मानकर मैं सुखी हूँ, मै दुःखी हूँ, ऐसी कल्पना करते हैं वे ही बहिरात्मा हैं, जड हैं, अज्ञानी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, परन्तु जिनको आत्मासे शरीर भिन्न है,आत्मा शरीरसे भिन्न है, आत्मा ज्ञानी है, शरीर जड है ऐसा भेदज्ञान है वे अन्तरात्मा निरंतर आत्मोत्थ, चिदानंदमय सुखका अनुभव करते हैं। वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। उनके अंतरंगमें मृत्यु आदिका भय नहीं होता है। उक्तं च-

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोहं न युवैतानि पुद्‌गले ॥

अर्थ-जब मेरे मृत्यु ही नहीं है तो भय किसका? मेरे व्याधि ही नहीं है तो पीडा कैसी? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हूँ और न जवान हूँ ये सब व्यवहार पुद्‌गलमें हैं, आत्मामें नहीं।

जीवोन्यः पुद्‌गलश्चान्य इत्यादि

जीव भिन्न है, पुद्‌गल भिन्न है इत्यादिका भी विचार करो।

परायत्तेन दुःखानि बाढं सोढानि संसृतौ।
त्वयाऽद्य स्ववशः किञ्चित् सहेच्छन्निर्जरां पराम् ॥९८॥

अन्वयार्थ-हे भव्य! (परायत्तेन) पराधीनतासे (त्वया) तूने (संसृतौ) अनादिकालसे संसारमें (बाढं) बहुत (दुःखानि) दुःखोंको (सोढानि) सहन किये हैं (अद्य) इस समय (परां) उत्कृष्ट (निर्जरां) निर्जराकी (इच्छन्) इच्छा करता हुवा (स्ववशः) स्वाधीन होकर (किंचित्) स्वल्प कालतक परीषहादि दुःखोंको (सह) सहन कर।

भावार्थ-हे समाधिसाधनतत्पर क्षपक! तूने अनादिकालसे पराधीन होकर इस संसारमें अनन्त दुःखोंका अनुभव किया, इस समयपर तूं आसन्न मृत्यु है अर्थात् अब तेरा मरण समीप है पहिले किसी भी भवमें नहीं प्राप्त हुई तथा संवरकी कारणभूत ऐसी सल्लेखनाको कर रहा है। यदि इस समयपर तूं परीषह उपसर्ग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनित किंचित् दुःखोंको शांत परिणामोंसे सहन करेगा तो असंख्यात गुणी निर्जरा होगी। इसलिये स्वाधीन होकर शांत भावसे परीषहादि दुःखोंको सहन कर ॥९८॥

तथा—

यावद् गृहीतसंन्यासः स्वं ध्यायन् संस्तरे वसेः।
तावन्निहन्याः कर्माणि प्रचुराणि क्षणे क्षणे ॥९९॥

अन्वयार्थ— (यावत्) जबतक (गृहीतसंन्यासः) गृहीतप्रत्याख्यन हो (स्वं) अपने आपका (ध्यायन्) ध्यान करता हुवा तू (संस्तरे) संस्तरपर (वसेः) रहे (तावत्) तबतक (क्षणे क्षणे) प्रतिक्षणमें (प्रचुराणि) प्रचुर (कर्माणि) कर्मको (निहन्याः) नाश कर ॥९९॥

भावार्थ— हे क्षपक ! जबतक तू संन्यास धारण कर एकाग्रतासे अपनी आत्माका ध्यान करता है, संस्तरपर आरूढ है तबतक प्रतिक्षणमें प्रचुर कर्मोंकी अवश्य ही निर्जरा कर।

तथा—

पुरुप्रायान् बुभुक्षादिपरीषहजये स्मर।
घोरोपसर्गसहने शिवभूतिपुरःसरान् ॥१००॥

अन्वयार्थ— (बुभुक्षादिपरीषहजये) क्षुधादि परीषहके जीतनेमें (पुरुप्रायान्) वृषभादि तीर्थंकरोंका तथा (घोरोपसर्गसहने) घोरोपसर्ग सहन करनेमें (शिवभूतिपुरःसरान्) शिवभूति आदि मुनियोंका (स्मर) स्मरण कर ॥१००॥

भावार्थ— समाधिमरणोद्यत ! क्षुधादिपरीषहोंको जीतनेके लिये शिवभूति गजकुमार आदि यतिराजाओंका स्मरण कर।

अचेतनकृत उपसर्ग सहन करनेमें दृष्टान्त—

तृणपूलबृहत्पुञ्जे संक्षोभ्योपरि पातिते।
वायुभिः शिवभूतिः स्वं ध्यात्वाऽभूदाशु केवली ॥१०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ- (वायुभिः) हवासे (संक्षोभ्य) क्षोभित होकर (तृणपूलबृहत्पुञ्जे) घासका बहुत सा पुञ्ज (उपरि) ऊपर (पातिते) आ पडनेपर (स्वं) अपनी आत्माका (ध्यात्वा) ध्यान करके (शिवभूतिः) शिवभूति (आशु) शीघ्र ही (केवली) केवली (अभूत्) हुवा ॥१०१॥

भावार्थ- हे आराधक ! शिवभूति यतिराजके ऊपर हवाके झकोरेसे उडकर घास कांटे आदिका ढेर आ पडा था। परन्तु उससमय वे यतिराज निर्विकल्प शुद्धात्म तत्वका चिंतवन कर अपने आपमें तन्मय हो गये, और शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्म-काष्ठको जलाकर केवलज्ञान प्राप्त किया और तत्कालमोक्षगामी हो गये।

अचेतनकृतउपसर्ग सहन करनेवाले शिवभूतिकी कथा

चंपापुरीमें प्रचंड पराक्रमका धारक विक्रम नामका राजा राज्य करता था। उसके शिवभूति नामका पुत्र था, जो विभूतिमें ईश्वरकी तुलना करता था। एक दिन राजकुमार शिवभूति सानन्द बैठे थे कि अचानक ही उनकी दृष्टि आकाशकी ओर गई और उसी कालमें उत्पन्न हुई आंधीसे जल परिपूर्ण मेघको पलभरमें खंड रूपमें छिन्न-भिन्न देख सहसा उनके मनमें ये विचार-तरंगे उछलने लगीं- अहा ! इस संसारको सर्वथा धिक्कार है। जहांपर जरा भी सुख दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु ये मूढजीव क्यों इस बातको नहीं समझते। हाय !!! मोहसे अन्ध ये जीव क्षण विना-शक और दुष्ट शरीरके लिये अनेक प्रकारके आरम्भ करते रहते हैं, बस, इस प्रकार वैराग्यरंगरांजत कुमार शिवभूतिने देखते देखते तृणके समान समस्त भोगोंको जलांजली दे दी और वनमें जाकर दिगंबरदीक्षासे दीक्षित हो गये। कदाचित् योगाभ्यास और दुश्चर तपका आचरण करनेवाले मुनिराज शिवभूति वनमें किसी वृक्षके नीचे प्रतिमायोगसे विराजमान थे। अचानक ही बांसोंके घसनेसे उत्पन्न जाज्वल्यमान् दावानल जलते हुये दारु वृक्ष और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फटते हुओ बांसोंके टूटनेसे महा भयंकर हो अमानरूपसे समस्त वनको भस्म करने लगा और उस निर्दयीने मुनिराजको भी घोर पीडा पहुंचानी प्रारम्भ कर दी। मुनिश्रेष्ठ शिवभूति परम विद्वान् और संसारके विचित्र चरित्रसे वास्तवमें भयभीत थे। भला ऐसा भयंकर भी दावानल उनका क्या बाल बांका कर सकती थी। वे धीरवीर मुनिराज जलते हुओ वृक्षके नीचे बरावर विराजमान रहे। तेजीसे वृक्षके खंडोंने अंगारका रूप धारण कर मुनिका सारा शरीर कदर्थित कर डाला परंतु वे अपने ध्यानसे न चिगे। दृढरूपसे घोर उपद्रव सहते रहे। ऐसे ही वीर मुनियोंकी प्रशंसामें समयसार-कलशमें कहा है-

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमंते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानंतः स्वमबध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवंते नहि॥

अर्थात्-ऐसा साहस करनेके लिये सम्यग्दृष्टि पुरुष ही समर्थ हो सकते हैं, जहांपर कि वज्र गिर रहा है और भयसे कंपायमान तीनों लोकने जहांका मार्ग छोड दिया है, वहांपर स्वभावसे ही समस्त शंकाको छोडकर और अपनेको अखंड ज्ञानस्वरूप शरीरका धारक जानकर कभी भी अपने ज्ञान-ध्यानसे विचलित नहिं होते। बस इस घोर उपसर्गके समय मुनिराज शिवभूतिने परमब्रम्ह परमात्माकी भावना की। कर्मोंके सर्वथा नाशसे केवलज्ञान प्राप्तकर अविनाशी मोक्षसुखका अनुभव किया।

-इति शिवभूति कथा समाप्त-

मनुष्यकृतोपसर्ग सहन करनेवालोंका दृष्टान्त—

न्यस्य भूषाधियाङ्गेषु संतप्ताः लोहश्रृङ्खलाः।
द्विट्पक्ष्यैः कीलितपदाः सिद्धा ध्यानेन पाण्डवाः॥१०२॥

अन्वयार्थ-(द्विट्पक्ष्यैः) शत्रु पक्षवाले कौरवोंके भानजे आदिके द्वारा (संतप्ताः) तप्तायमान (लोहश्रृंखलाः) लोहोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांखले (भूषाधिया) यह तुम्हारे लिये आभूषण हैं इस कल्पनासे (अंगेषु) अंगमें (निक्षिप्य) पहनाकर (कीलितपदाः) कील दिये है पैर जिन्होंके ऐसे (पांडवाः) पांडव (ध्यानेन) स्वात्माके ध्यानसे सिद्धपदको प्राप्त हुये।

भावार्थ-जिस समय पांचो पांडव तपस्या कर रहे थे, उस समय कौरवोंके भानजे आदि लाकर-हे पांडवो! यह तुम्हारे लिये अभूषण है ऐसा कहकर तप्तायमान लोहेके आभूषण पहिनाये तथा कीलसे पैरोको जमीनमें कील दिया। उस समय स्वात्माका ध्यान कर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तो मोक्ष गये तथा नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धिमें गये।

मनुष्यकृतोपसर्ग सहन कर मुक्तिपद प्राप्त करनेवाले पांडवोंका संक्षेपसे वर्णन।

बहुत वर्ष पहिले हस्तिनापुरनगरमें धृतराज नामका राजा राज्य करता था। उसके अम्बिका, अम्बालिका तथा अम्बा नामकी तीन स्त्रियां थी। उनमें अम्बिकासे धृतराष्ट्र, अम्बालिकासे पांडु और अम्बासे ज्ञानश्रेष्ठ विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये थे।

राजा धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्र थे। पाण्डु राजाके कुन्ती और माद्री ये दो स्त्रियां थीं इनमें कुन्तीके युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुयें। तथा माद्रीसे नकुल, सहदेव ये दो पुत्र उत्पन्न हुये थे। पांडु राजाके पुत्र होनेसे ये पांचो पांडव कहलाते थे। जब राजा पाण्डु और माद्री जिन-धर्मके प्रसादसे स्वर्गवासी हो गये तब पाण्डव और दुर्योधनादि धार्तराष्ट्र राज्य-विषयको लेकर एक दूसरेके विरोधी हो गये। जब इनका विरोध बढने लगा तब भीष्म, विदुर, द्रोण, मंत्री शकुनि तथा दुर्योधनके मित्र शशरोम आदिने मध्यस्थ बनकर कौरवोंके राज्यके बराबर ही भाग करके एक भाग युधिष्ठिर आदि पांच भाईयोंको तथा एक भाग दुर्योधनादि सौ भाईयोंको दे दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदनन्तर अर्जुनके प्रताप और विज्ञानसे ईर्ष्या रखनेवाले दुर्योधनादि कौरव कहने लगे, देखो भीष्म आदिने हमारे साथ कैसा अन्याय पूर्ण कार्य किया। कौरवोंके आधे राज्यको तो सिर्फ पांच पांडवोंके लिये दिया। और आधा सो भाईयोंको, इससे अधिक और क्या अन्याय होगा।

यह बात सुनकर युधिष्ठिर शांतप्रिय था इसलिये उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। परन्तु शेष चार पांडव प्रसन्न तथा गंभीर होनेपर भी क्षोभको प्राप्त हो गये-जैसे वायुके झकोरोंसे समुद्र।

अर्जुनरूपी मेघ यह कहता हुवा उठकर खडा हो गया कि मैं उठते हुये इस शत्रुरूपी पर्वतोंको बाणरूपी जलकी धारासे आच्छादित कर देता हू, परन्तु युधिष्ठिररूपी वायुने उसको शांत कर दिया।

भीमरूपी भुजंग कहनें लगा कि मैं सौ-के-सौ हिस्सेदारों को अपनी दृष्टिसे भस्म कर देता हूं। परन्तु युधिष्ठिरके वचनरूपी मंत्रने उसको कील दिया।

नकुल नेवला शत्रुरूपी शत्रुओंको नाश करनेके लिये तत्पर हुवा परन्तु युधिष्ठिर अपनी भुजारूपी पिंजरमें उसे कैद कर दिया।

सहदेवरूपी दावानल शत्रूरूपी बनखंडको भस्म करनेके लिये तैयार हुवा परन्तु बडे भाई युधिष्ठिररूपी मेघने उसको शांतकर दिया।

दुर्जन दुर्योधन अनेक प्रकारसे पांडवोंको मारनेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु जबतक आयुष्कर्म है तब कोई किसीका घात नहीं कर सकता।

दुर्योधनने एक बार लाखके घरमें पांचों पांडव और कुन्ती सोई हुई थी, आग लगा दी। एक बार भीमको विष दिया परन्तु पांडवोंको मार नहीं सका। अन्तमें पांडवों और कौरवोंमें भयानक युद्ध हुवा अन्तमें पांडवोंकी जीत हुई। दुर्योधनने विदुरके साथ जिनदीक्षा गृहण की।

युधिष्ठिर आदि पांचो भाई हस्तिनापुरमें सुखपूर्वक राज्य कर रहे थे। एक दिन पांचो पांडव भगवान् नेमिनाथके समवशरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में गये और अपने पूर्व भवको सुनकर पांचो ही भाई संसार शरीरसे विरक्त हो गये। और परमपूज्य वीतराग नेमिनाथ भगवानके समवसरणमें जिनमुद्राको गृहण की। कुन्ती द्रौपदी सुभद्रा आदि स्त्रियोंने राजमतिके पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर अपने आत्माके स्वरूपका चिंतवन करते हुये वे पांचो पांडव घोर तप करने लगे।

उन सब मुनियोंमें भीमसेन मुनि बहुत शक्तिशाली थे। उन्होंने भालेके अग्रभागसे दिये हुये आहार ग्रहण करूंगा ऐसा वृत्ति परिसंख्यान किया था। क्षुधासे उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। तथा महीनेके अनन्तर जिनका यह वृत्तिपरिसंख्यान व्रत पूरा हुवा था। इस प्रकार पांचो ही पांडव बेला तेला आदि उत्कृष्ट तपको तपते हुये अपने विहारसे पृथ्वीको पवित्र कर रहे थे।

शत्रुओंके द्वारा उपसर्ग

एक दिन वीर पांचो पांडव शत्रुञ्जय पर्वतपर प्रतिमायोगसे विराजमान होकर स्वात्मानन्दरूपी अमृतका पान कर रहे थे।

उस समय वहांपर दुर्योधनके वंशका क्षुयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था। ज्योंही उसने वहां पांडवोंका आगमन सुना त्यों ही उसकी क्रोधरूपी अग्नि जाज्वल्यमान हो गई। क्रोधमें आकर उसने महादुःख देनेवाला पांचो पांडव मुनियोंपर घोर उपसर्ग करना शुरू किया। हे पांडवो ! यह तुम्हारे लिये आभूषण है ऐसा दुर्वचन कहकर तपाये हुये लोहेके मुकुट, कडे और कटिसूत्र आदि बनाये और अग्निमें अत्यन्त प्रज्वलित कर उनके मस्तकादि अगोंमें पहिनाये और पादमें तप्त लोहेके आभूषणोंको पहनाकर ऊपर कीलसे ठोंक दिया। अत्यन्त धीर वीर कर्मके उदयको जाननेवाले कर्मक्षय करनेमें समर्थ पांडवोंने इस दाहके उस भयङ्कर उपसर्गको हिमके समान शीतल समझा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तमें युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम इन तीन मुनियोंने तो शुक्ल-ध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्मेन्धनको भस्म कर शास्वत सुख प्राप्त किया। तथा नकुल और सहदेव बडे भाईयोंकी यह अवस्था देखकर कुछ आकुलित चित्त हो गये जिससे कषायकणिकाको पूर्णतया नाश करनेके लिये समर्थ नहीं हुये। इसलिये उपश्रेणिमें आरूढ होकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुये।

इस प्रकार धीरवीर महामुनियोंका चिंतवन करके हे क्षपक! तूं अपने मनमें शांत भावको धारण कर।

घोरोपसर्ग सहन करनेवाले मुनिराज हमे भी वह शक्ति प्रदान करे। जिससे हम भी घोरोपसर्ग सहन करनेके लिये समर्थ होवे।

–इति पाण्डव कथा समाप्त–

तिर्यञ्चकृत उपसर्ग सहन करनेवालोंका उदाहरण–

शिरीषसुकुमाराङ्गः खाद्यमानोतिनिर्दयम्।
शृगाल्या सुकुमारोऽसून् विससर्ज न सत्पथम् ॥१०३॥

अन्वयार्थ–(शिरीषसुकुमारांगः) शिरीषके फूलके समान कोमलांग (शृगाल्या) शृगालिके द्वारा (अतिनिर्दयं) अत्यंत निर्दयतापूर्वक (खाद्यमानः) खाया गया (अपि) भी (सुकुमारः) सुकुमाल (असून्) प्राणोंको (विससर्ज) छोडा–परन्तु (सत्पथं) सन्मार्गको (न) नहीं छोडा ॥१०३॥

भावार्थ-शिरीषके पुष्पके समान कोमल है अंग जिसका ऐसे सुकुमालको श्रृगालीने तीन दिनतक खाया। धीरवीर सुकुमालने अपने प्राण छोडे। परन्तु अपने शुद्धात्मध्यानरूपी सिद्धिके उपायको नहीं छोडा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुकुमाल मुनिकी कथा

जिनके नामका ध्यान करनेसे हर प्रकारकी धन-सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है अुन परम पवित्र जिन भगवानको नमस्कार कर सुकुमाल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

यह अुस समयकी कथा है, जब अतिबल कौशाम्बीके राजा थे। वहां एक सोमशर्मा पुरोहित रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम काश्यपी था। इसके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो लडके हुअे। मां-बापके लाडले होनेके कारण ये कुछ पढ लिख नहीं सके। कालचक्रसे असमयमें ही सोमशर्माकी मृत्यु हो गई। दोनों पुत्रोंको निरा मूर्ख देख अतिबलने पुरोहित पद किसी औरको दे दिया। यह ठीक है कि मूर्खोंका कहीं आदर-सत्कार नहीं होता। अपना अपमान हुआ देख इन दोनों भाइयोंको बडा दुःख हुआ। अब इन्हें कुछ लिखने पढनेकी सूझी। अपने मामा सूर्यमित्रके पास राजगृह जाकर इन्होंने सब हाल कहा। इनकी पढनेकी इच्छा देखकर सूर्यमित्रने स्वयं इन्हें पढाना शुरू किया और कुछ ही वर्षोंमें इन्हें अच्छा विद्वान बना दिया और ये अपने शहरको लौट आये। आकर इन्होंने अतिबलको अपनी विद्याका परिचय कराया। अतिबल इन्हे विद्वान् देख खुश हुआ और इनके पिताका पुरोहित पद फिर इन्हें दे दिया।

एक दिन संध्या समय सूर्यमित्र सूर्यको अर्घ चढा रहा था कि अंगुलीसे राजकीय रत्न-जटित अगूठी निकलकर महलके नीचे तालाबमें जा गिरी। भाग्यसे वह एक खिले हुए कमलमें पडी, जो रात होनेपर कमलके सिकुड जानेसे उसीमें बन्द हो गयी। पूजाके बाद जब उसकी नजर अंगुलीपर पडी तो अुसे मालूम हुआ कि अंगूठी कहीं गिर पडी। अब तो डरके मारे वह कापने लगा, अुसे चिन्ता होने लगी कि राजा जब अंगूठी मांगेगा तो कहांसे दूंगा। अंगूठीके लिये अुसने बहुत कुछ खोज-ढूंढ की, पर पता न चला। तब किसीके कहनेसे वह अवधिज्ञानी सुधर्म मुनिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पास गया और हाथ जोडकर उनसे अंगूठीके बारेमें पूछा। मुनिनें कहा कि सूर्यको अर्घ देते समय तालाबमें एक खिले हुअे कमलमें अंगूठी गिर पडी है, वह सवेरे मिल जायेगी। वैसा ही हुआ, सूर्योदय होते ही जैसे कमल खिला, सूर्यमित्रको अुसमें अंगूठी मिल गई। सूर्यमित्र बडा खुश हुआ, साथ ही अुसे आश्चर्य हुआ कि मुनिनें यह बात कैसे बतलाई ? उनसे मुझे भी यह विद्या सीखनी चाहिये, यह विचार कर सूर्यमित्र मुनिके पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने प्रार्थना की कि मुझे भी आप अपनी विद्या सिखा दीजिये सो बडी कृपा होगी। मुनिराजसे कहा—भाई! मुझे इस विद्याके सिखलानेमें कोई इन्कार नही है पर बिना जिनदीक्षा लिये यह विद्या नहीं आ सकती। सूर्यमित्र तब केवल विद्याके लोभसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया। सुधर्म मुनिने सूर्यमित्रको मुनियोंके आचार विचारके शास्त्र तथा सिद्धांत-शास्त्र पढाये, जिससे अुसकी आँख खुल गयीं। गुरूपदेशरूपी दीपकद्वारा अपने हृदयके अज्ञानान्धकारको दूरकर वह जैनधर्मका अच्छा विद्वान हो गया। गुरुओंकी भक्ति और सेवा करनेसे सब काम सिद्ध हो सकते हैं।

मुनिधर्ममें कुशल होनेपर गुरुकी आज्ञा लेकर सूर्यमित्र मुनि अकेले विहार करने लगे। एक बार ये विहार करते हुअे कौशाम्बी आये। अग्निभूतिने इन्हें भक्तिपूर्वक दान दिया और वायुभूतिसे मुनिकी वन्दना करनेके लिये आग्रह किया जिससे उसे जैनधर्ममें प्रेम हो। वायुभूति सदा जैनधर्मके विरुद्ध रहता था इसलिये अग्निभूतिके आग्रहका फल भी उलटा हुआ। क्रोधित होकर वायुभूतिने मुनिकी और अधिक निन्दा की, उन्हें बुरा भला कहा। दुर्गतियोंमें जानेवालेंकी बुद्धि उपदेश करनेपर भी और अधिक पापके कींचडमें फँसती है। अग्निभूतिको अपने भाईकी दुर्बुद्धिपर बडा दुःख हुआ और वह मुनिके साथ बनमें चला गया। वहां धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य हो जानेसे दीक्षा लेकर वह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपस्वी हो गया। अपना और दूसरोंका हित करना अबसे अग्निभूतिके जीवनका उद्देश्य हुआ।

अग्निभूतिके मुनि हो जानेकी बात सुनकर उनकी स्त्री सती सोमदत्ताको अत्यन्त दुःख हुआ। उसने वायुभूतिसे कहा–तुमने मुनि बन्दना न की जिससे दुःखी हो तुम्हारे भाई भी मुनि हो गये। यदि वे अबतक मुनि न हुअें हो तो चलो हम दोनो उन्हें समझाकर लावें। वायुभूतिने गुस्सा होकर कहा कि तुम्हे गरज हो तो तुम जाओ, मुझे उस बदमाश नंगेके पास जानेकी जरूरत नही है। यह कहकर अपनी भौजाईको एक लात मारकर वह चलता बना। सोमदत्ताको उसके व्यवहारसे बडा दुःख हुआ, पर अबला होनेसे वह उस समय कुछ न कर सकी। तब उसने निदान किया कि तूने जो मुझे लातोंसे ठुकराया हैं, इसका बदला स्त्री होनेसे इस समय मैं न ले सकी, पर याद रख इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें बदला अवश्य लूंगी। मुझे तभी संतोष होगा, जब ये तेरे उस पांवको जिससे तूने लात मारी है और मेरे हृदय भेदनेवाले तेरे हृदयको खाअुंगी। ग्रन्थकार कहते है कि ऐसा मूर्खताको धिक्कार है जिसके वश प्राणी अपने पुण्यकर्मको ऐसे नीच निदानों द्वारा भस्म कर डालते हैं।

'इस हाथ दे और अुस हाथ ले' इस कहावतके अनुसार वायुभूतिको भी मुनिनिन्दाका फल बहुत जल्द मिल गया। पूरे सात दिन भी न हुअे होंगे कि वायुभूतिके सारे शरीरमें कोढ निकल आया। धर्मपथप्रदर्शक महात्माओंकी निन्दा करनेवाले पापी पुरुष किन महाकष्टोंको नहीं पाते। वायुभूति कोढके दुःखसे मरकर कौशाम्बीमें ही एक नटके यहाँ गधा हुआ। गधा मरकर वह जंगली सूअर हुआ। इस पापारंभसे मरकर अुसने चम्पापुरीमें एक चाण्डालके यहाँ कुत्तीका जन्म धारण किया। कुत्ती मरकर चम्पापुरीमें ही एक दूसरे चाण्डालके यहां लडकी हुई जो जन्मसे अन्धी थी। इसका सारा शरीरमे बदबू आ रहा था, इसलिये माता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिताने इसे छोड दिया। फिर भी एक जांबू झाडके नीचे पडी पडी यह जांबू खाया करती थी।

सूर्यमित्र मुनि अग्निभूतिको साथ लिये इस ओर आ निकले। उस जन्मकी दुःखिनी लडकीको देखकर अग्निभूतिके हृदयमें कुछ मोह और दुःख हुआ। उन्होंनें गुरुसे पूछा-प्रभो! इस कष्टमें भी यह लडकी कैसे जी रही है? ज्ञाती सूर्यमित्र मुनिने कहा-तुम्हारे भाई वायुभूतिने धर्मसे पराङ्मुख होकर जो मेरी निन्दा की थी, उसी पापसे इसे कई भव पशु पर्यायमें लेने पडे। अब यह चाण्डाल कन्या हुई है पर इसकी उम्र बहुत थोडी रह गई है। इसलिये जाकर तुम इसे व्रत लिवाकर सन्यास दे आओ। अग्निभूतिने उस चाण्डाल कन्याको पांच अणुव्रत देकर सन्यास लिवा दिया।

चाण्डाल कन्या मरकर व्रतके प्रभावसे चम्पापुरीमें नागशर्मा ब्राम्हणके यहां नागश्री नामकी कन्या हुई। एक दिन नागश्री बनमे नाग-पूजा करने गयी थी। पुण्यसे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि भी विहार करते वहां पहुंच गये। उन्हें देख नागश्रीके मनमें उनके प्रति अत्यन्त भक्ति हो गयी। वह हाथ जोडकर उनके पास बैठ गयी। नागश्रीको देख अग्निभूतिके मनमें कुछ प्रेमका उदय हुआ, जो होना उचित ही था। क्योंकि वह थी उनके पूर्व जन्मका भाई। गुरूसे प्रेम होनेका कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि पूर्वजन्मके भ्रातृ-भावके कारण ऐसा हुआ है। तब अग्निभूतिने उसे धर्मोपदेश दिया और सम्यक्त्व तथा पांच अणुव्रत उसे ग्रहण करवाये। व्रत ग्रहण कर जब नागश्री जाने लगी तब उसे उन्होंने कह दिया कि तेरे पिताजी यदि व्रत लेनेसे नाराज हो तो तूं हमारे व्रत हमें आकर सोंप जाना।

इसके बाद नागश्री मुनिराजीको प्रणाम कर घरपर आ गई। नागश्रीकी सहेलियोंने उसके व्रत लेनेकी बात नागशर्मासे कह दी। नागशर्माने कुछ क्रोधकासा भाव दिखाकर नागश्रीसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा–बच्ची तू बडी भोली है, जो झटसे हरएकके बहकानेमे आ जाती है। भला, तू नहीं जानती कि पवित्र ब्राम्हण कुलमें उन नंगे मुनियोंके व्रत नही लिये जाते। इसलिये उनके व्रत तू छोड दे। नागश्री बोली पिताजी! आते समय उन मुनियोंने कहा था कि तेरे पिता जो व्रत छोडनेका आग्रह करे तो तू हमारे व्रत हमें ही दे जाना। आप चलिये मैं उन्हें उनका व्रत दे आती हूँ। नागश्रीका हाथ पकडे नागशर्मा क्रोधसे भरा जा रहा था कि रास्तेमें कुछ गुल–गपाडा सुन पडा। अुस जगह बहुतसे लोग इकठ्ठे हो रहे थे और एक मनुष्य उनके बीच बँधा हुआ पडा था, जिसे कुछ निर्दयी लोग क्रूरतासे मार रहे थें। नागश्रीने पूछा–पिताजी! यह बेचारा निर्दयतासे क्यों मारा जा रहा है? नागशर्मा बोला–बच्ची! वणिक पुत्र यह किसीका कुछ ऋण धारता था। तकादा करनेपर इस पापीने उसे जानसे मार डाला। अुस अपराधके लिये राजाने इसे प्राणदण्डकी सजा दी है जिससे दूसरा कोई फिर ऐसा अपराध न करे। तब नागश्री जरा जोर देकर बोली कि पिताजी! यही व्रत तो अुन मुनियोंने मुझे दिया है, फिर आप अुसे छोडनेको क्यों कहते हैं? नागशर्मा लाजबाब हो बोला–अच्छा तो इस व्रतको छोड बाकी व्रत तो उन्हें दे दो। आगे चलकर एक और पुरुषको बंधा देख नागश्रीने पूछा–पिताजी! यह क्यों बांधा गया है? नागशर्माने कहा–पुत्री! यह झूठ बोलकर लोगोंको ठगा करता था जिससे बहुतसे लोग भिखारी हो गये हैं, उसी अपराधमें इसकी यह दशा की जा रही है। तब फिर नागश्रीने कहा–तो पिताजी यही व्रत तो मैने भी लिया है।इसीप्रकार चोरी,व्यभिचार,लोभ आदिसे दुःख पाते हुअे मनुष्योंको देखकर नागश्रीनें अपने पिताको निरुत्तर कर दिया और व्रतोंको नही छोडा। तब हार खाकर नागशर्माने कहा–यदि तेरी इच्छा इन व्रतोंको छोडनेकी नही है तो मत छोड, पर तू मेरे साथ उन मुनियोंके पास तो चल। मैं उन्हें पूछूंगा कि मेरे पूछे बिना मेरी लडकीको व्रत उन्होंने क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिये ? दूरसे ही मुनियोंको देखकर उसने कहा—क्यों रे नंगे साधुओ ! तूमने मेरी लडकीको व्रत देकर क्यों ठग लिया ? ऐसे पापियोंके विचारोंको सुनकर बडा ही खेद होता है । जो यह नहीं समझते कि व्रत, शील जो पुण्यके कारण है, उनसे कोई कैसे ठगा जा सकता है ? नागशर्माको आपेसे बाहर देखकर सूर्यमित्र बडी धीरता और शान्तिसे बोले—भाई, जरा धीरज धर, क्यों इतनी जल्दी कर रहा है ? मैने इसे व्रत दिया है अपनी लडकी समझकर और वास्तवमें यह है भी मेरी लडकी । तेरा तो इसपर कुछ भी अधिकार नहीं है । यह कहकर सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीको पुकारा और वह झटसे आकर उनके पास बैठ गई । अब तो ब्राम्हण देवता बडे घबडाये और 'अन्याय, अन्याय' चिल्लाते हुये राजाके पास पहुँचे । राजासे उसने कहा-महाराज ! नंगे साधुओंने मेरी नागश्री लडकीको जबर्दस्ती छीन लिया है । वे कहते हैं कि यह तेरी लडकी नहीं, हमारी लडकी हैं । आप इन पापियोंसे मेरी लडकी दिलवा दीजिये । नागशर्माकी बात सुनकर सारी राजसभा आश्चर्यमें पड गयी । राजाकी समझमें कुछ न आया, तो वे सबको साथ लिये मुनिके पास आये और उन्हें नमस्कार कर बैठ गये । फिर झगडा उपस्थित हुआ । नागशर्मा नागश्रीको अपनी लडकी बताने लगा और सूर्यमित्र मुनि अपनी । मुनि बोले-यदि यह तेरी लडकी है तो बता तूने इसे क्या पढाया है ? मेरी लडकी यह इसलिये है कि मैने इसे सब शास्त्र पढाये हैं । तब राजा बोले—प्रभो ! आपने जो इसे पढाया है उसकी परीक्षा इससे दिलवाइये जिससे हमें विश्वास हो । यह सुन सूर्यमित्र मुनि अपने वचनरूपी किरणोंद्वारा लोगोंके मूर्खतारूपी अन्धकारका नाश करते हुये बोले—हे नागश्री ! हे पूर्व जन्ममें वायुभूतिका भव धारण करनेवाली पुत्री ! तुझे मैंने जो पूर्व जन्ममें शास्त्र पढाये हैं, उनकी इस उपस्थित मण्डलीके सामने तू परीक्षा दे । सूर्यमित्र मुनिके कहते ही नागश्रीने जन्मान्तरका पढा-पढाया सब विषय सुना दिया । राजा तथा और सब मण्डलीको इससे बडा आश्चर्य हुआ और नागश्रीके सम्बन्धकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब बात जाननेकी उनमें उत्कण्ठा हुई। अवधिज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने वायुभूतिके भवसे नागश्रीके जन्मतककी सब कथा उनसे कह सुनाई। सुनकर राजाको यह सब मोहकी लीला जान पडी। मोहको दुःखकी मूल कारण समझकर उन्हें वैराग्य हुआ और उन्होंने उसी समय जिनदीक्षा ले ली। नागशर्मा भी जैनधर्मका उपदेश सुनकर मुनि हो गया और तपस्या कर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। नागश्रीको पूर्व जन्मका हाल सुनकर वैराग्य हुआ और दीक्षा लेकर वह आर्यिका हो गई। अन्तमें शरीर छोडकर तपस्याके फलसे वह अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। संसारमें गुरु सबसे श्रेष्ठ है जिनकी कृपासे जीवोंको सब सम्पदाएं प्राप्त हो सकतीं हैं।

यहांसे विहार कर सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज अग्निमन्दिर नामक पर्वतपर पहुचे। वहाँ तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और त्रिलोकपूज्य हो अन्तमें परम सुखमय मोक्षलाभ किया।

अवन्तिदेशके उज्जैन शहरका रहनेवाला इन्द्रदत्त सेठ बडा धर्मात्मा और जिन भगवानका सच्चा भक्त था। उनकी स्त्री गुणवती नामके अनुसार गुण सम्पन्न और सुन्दरी थी। नागश्रीका जीव जो अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था, वहाँ अपनी आयु पूरी कर गुणवती सेठानीके सुरेन्द्रदत्त नामक सुशील और गुणी पुत्र हुआ। सुरेन्द्रदत्तका ब्याह उज्जैन ही में रहनेवाले समुद्र सेठकी लडकी यशोभद्राके साथ हुआ। पुण्यके प्रभावसे इन्हें किसी वस्तुकी कमी न थी और आनन्दसे ये अपना समय व्यतीत करते थे। धर्मप्रेम भी इनका ज्योंका त्यों था।

एक दिन यशोभद्राने एक अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा—योगिराज! क्या मेरी आशा इस जन्ममें पूरी होगी? मुनिराजने कहा—हाँ, अवश्य होगी! तेरा होनेवाला पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान और अनेक गुणोंका धारक होगा। सिर्फ चिन्ताकी यह बात है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि तेरा स्वामी पुत्रका मुख देखते ही जिनदीक्षा ले लेगा। तेरा पुत्र भी जब कभी किसी जैन मुनिको देखेगा तो वह भी उसी समय विषयोंको त्याग योगी हो जायेगा।

इसके कुछ महीनें बाद, (नागश्रीके जीवने) जो स्वर्गमें देव हुआ था, स्वर्गमें अपनी आयु पूरी कर, यशोभद्राके गर्भसे जन्म लिया। इनका नाम सुकुमाल रखा गया। सुरेन्द्रदत्त पुत्रका मुख देख उसे अपने सेठ पदका तिलककर मुनि हो गया।

जब सुकुमाल बडा हुआ तो उसकी मांको चिन्ता हुई कि कहीं यह भी किसी मुनिको देखकर मुनि न हो जाय। इसलिये यशोभद्राने अच्छे घरानेकी कोई बत्तीस सुंदर कन्याओंके साथ उसका व्याह कर दिया। सबको अलग अलग रहनेके लिये उसने एक बडा भारी महल बनवाया जो विषयभोगोंकी एकसे एक उत्तम सामग्रियोंसे भरा हुवा था। यह सब प्रबन्ध इसलिये किया गया था कि जिससे सुकुमालका मन सदा विषयोंमें फंसा रहे। पुत्रमोहसे उसने अपने घरमें जैन मुनियोंका आना जाना भी बन्द कर दिया।

एक दिन बाहरके सौदागरने आकर राजा प्रद्योतनको एक बहुमूल्य रत्नजटित कम्बल दिखलाया। मूल्य अधिक होनेके कारण राजाने उसे नही लिया। यशोभद्राको कम्बलकी खबर मिलते ही उसने सौदागरको बुलाकर कम्बल सुकुमालके लिये खरीद लिया। रत्नकी जडाईके कारण कम्बल कडा था, इसलियें सुकुमालने उसे पसन्द न किया। तब यशोभद्राने उसके टुकडे करवाकर अपनी बहुओंके लिये उसकी जूतियां बनवा दीं। एक दिन सुकुमालकी स्त्री जूतियां खोलकर पांव धो रही थी कि इतनेमें एक चील मांसके टुकडेके लोभसे एक जूती उठा ले उडी, उसकी चोंचसे छूटकर वह जूती एक वेश्याके मकानकी छतपर गिरी। वेश्या उसे राजघरानेकी समझकर राजाके पास ले गई। राजा भी उसे देखकर दंग रह गया कि इतनी किमती जूतियां जिसके यहां पहनी जाती है, उसके धनका क्या ठिकाना होगा। मेरे शहरमें इतना भारी धनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौन है, इसका पता लगाना चाहिये। खोज करनेपर मालूम हुआ कि सुकुमाल सेठ वह धनी है और जूती उसीकी स्त्रीकी है। राजाको सुकुमालसे मिलनेकी उत्कण्ठा हुई और एक दिन वे उससे मिलने गये। राजाको अपने घर आया देख यशोभद्रा बडी प्रसन्न हुई और उनका खूब आदर सत्कार किया। राजाने प्रेमवश सुकुमालको भी अपने पास सिंहासनपर बैठा लिया। यशोभद्राने दोनोंकी एक साथ आरती उतारी। दीयेकी तथा हारकी ज्योतिसे मिलकर बढे हुये तेजको सुकुमालकी आंखे न सह सकी। उनमें पानी आ गया। इसका कारण पूछनेपर यशोभद्राने राजासे कहा– महाराज! इसने कभी रत्नमय दीयेंको छोड ऐसे दीयेको नहीं देखा, इसलियें इसकी आंखोमें पानी आ गया है। यशोभद्रा जब दोनोंको भोंजन करानें बैठायी तो सुकुमाल चावलोंमेंसे एक एक चावल बीनकर खाने लगा। राजाने यशोभद्रासे इसका कारण पूछा। यशोभद्राने कहा– राजराजेश्वर! इसे जो चावल खानेंको दिये जाते हैं वे खिले हुये कमलोंमें रखकर सुगन्धित किये जाते हैं। आज वे चावल थोडे होनेसे मैंने उन्हें दूसरे चावलोंके साथ मिलाकर बना लिया। इससे यह एक–एक चावल चुन–चुन कर खाता है। राजाने पुण्यात्मा सुकुमालकी प्रशंसा कर कहा– सेठानीजी! अबतक कुंवर साहब आपके घरके सुकुमाल थे, पर अब मैं इनका अवन्ति सुकुमाल नाम रखकर इन्हें सारे देशका सुकुमाल बनाता हूं। मेरे देशमें सुकुमारता और सुन्दरताका यही आदर्श है। इसके बाद राजा सुकुमालको संग लिये जलक्रीडा करने बावडीपर गये। खेलते समय राजाकी अंगुलीसे अंगूठी निकलकर क्रीडा सरोवरमें गिर गई। राजा उसे ढूंढने लगे तो जलके भीतर उन्हें हजारों बडे बडें सुन्दर और कीमती भूषण देख पडे। उन्हें देख राजाकी अकल चकरा गई। वे सुकुमालके अनन्त वैभवको देख यह सोचते हुये महलको लौट आये कि यह सब पुण्यकी लीला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सज्जनों ! धन-धान्यादि सम्पदाका मिलना, पुत्र, मित्र और सुन्दर स्त्रीका प्राप्त होना, अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणोंका पहनना, मनोहर महलोंमें रहकर सुस्वादु वस्तुऐं खानेको मिलना, विद्वान तथा नीरोग होना आदि सुख-सामग्रियां जीवोंको जिनेन्द्र भगवानके उपदेशित मार्गपर चलनेसे मिल सकती हैं। अतएव दुःखदायी खोटे मार्गको छोड बुद्धिमानोंको स्वर्ग मोक्षके सुखका बीज पुण्य कर्म करना चाहिये। पुण्य जिन भगवानकी पूजा, पात्रदान व्रत, अुपवास, ब्रम्हचर्य आदिके धारण करनेसे होता है।

एक दिन जैनत्वके परमविद्वान सुकुमालके मामा गुणधराचार्य सुकुमालकी आयु थोडी रही जानकर उसके महलके पीछे बगीचेमें आकर ठहरे और चातुर्मास लग जानेसे उन्होंने वहीं योग धारण कर लिया। यशोभद्राको उनके आनेकी खबर मिलते ही वह उनके पास गई और बोली-प्रभो ! जबतक आपका योग, पूरा न हो तबतक आप स्वाध्याय या पठन-पाठन कीजियेगा। जब उनका योग पूरा हुआ, तब अुन्होंने अपनी योगसम्बन्धी सब क्रियाओंको करके अन्तमें लोक-प्रज्ञप्तिका पाठ करना शुरू किया। उसमें उन्होंने अच्युत स्वर्गके देवोंकी आयु, उनके शरीरकी ऊँचाई आदिका खूब अच्छी तरह वर्णन किया, जिसे सुनकर सुकुमालको जातिस्मरण हो आया। पूर्व जन्ममें पाये दुःखोंको याद कर वह कांप उठा। वह उसी समय चुपकेसे महलसे निकलकर मुनिराजके पास गया और नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। मुनिने उससे कहा-बेटा ! अब तुम्हारी आयु सिर्फ तीन दिनकी रह गयी है। इसलिये विषय भोगोंको छोड अब अपना आत्महित करना चाहिये। जो विषय भोगोंकी धुनमें मस्त रह कर अपने हितकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें कुगतियोंके अनन्त दुःख उठाने पडते हैं। जाडेमे आग बहुत प्यारी लगती है पर जो उसे छूयेगा वह तो जलेगा ही। यही हाल अुन ऊपरके स्वरूपसे मनको लुभानेवाले विषयोंका है। इसलियें ऋषियोंने इन्हें 'भोगा भुजङ्गभोगाभाः'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् सर्पके समान भयंकर विषयोंको भोगकर कोई आज तक सुखी नहीं हुआ तो फिर इससे सुखकी आशा करना नितान्त भूल हैं। मुनिराजका उपदेश सुनकर सुकुमालको बडा वैराग्य हुआ। वह उसी समय जिनदिक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर वह वनकी ओर चला गया। उसका यह अन्तिम जीवन कठोरसे कठोर चित्तवाले मनुष्योंके हृदयको हिला देनेवाला है। पाठकोंको सुकुमालकी सुकुमारताका हाल मालूम है। आरती उतारनेके समय सौम्यज्योति,मङ्गलद्रव्य सरसोंके चुभनेको भी सुकुमाल न सह सका था। रत्नजटित कम्बल कठोर होनेके कारण उसने नापसन्द कर दिया था। मांके प्रेम और लाड-प्यारके कारण उसे कभी ज़मीन-पर पांव रखनेका मौका नहीं आया था। उसी सुकुमालने अपने जीवन प्रवाहको कुछ मिनटोंके उपदेशसे बिलकूल उलटा बहा दिया। जिसने कभी यह नहीं जाना कि घर–बाहर क्या है, वह अब अकेला भयंकर जंगलमें जा बसा। जिसने स्वप्नमें भी दुःख नहीं देखा, वही अब दुःखोंका पहाड अपने सिरपर उठा लेनेको तैयार हो गया। ककरीली जमीनपर चलनेसे उसके फूलोंसे कोमल पांवोमें घाव हो गये। उनसे खूनकी धारा वह चली, पर धन्य सुकुमालकी सहन–शीलता, जो उसने उसकी ओर आंख उठाकर भी नही झाका। अपने कर्तव्यमें वह इतना एकनिष्ठ हो गया कि उसे इस बातका भान ही न रहा कि मेरे शरीरकी क्या दशा हो रही है। इतनेमें ही सुकुमालकी सहन–शीलताकी इतिश्री नही हो गई। अभी आगे चलकर और देखना है कि इस परीक्षामें वह कहांतक उत्तीर्ण होता है ?।

पांवोंसे खून बहता जाता है और सुकुमाल मुनि चले जा रहे हैं। चलकर वे एक पहाडकी गुफामें पहुंचे। वहां वे ध्यान लगाकर बारह भावनोंका विचार करने लगे। उन्होंने प्रायोपगमन सन्यास ले लिया, जिसमें किसीसे अपनी सेवा शुश्रुषा भी कराना मना है। सुकुमाल मुनि इधर तो आत्म-ध्यानमें लीन हुए। अब जरा इनके वायुभूतिके जन्मको याद कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस समय वायुभूतिके बड़े भाई अग्निभूति मुनि हो गये उस समय उनकी स्त्रीने वायुभूतिसे कहा था कि तुम्हारे कारणसे ही तुम्हारे भाई मुनि हो गये। इसलिये यदि उन्होंने अबतक दीक्षा न ली हो तो चलो हम तुम उन्हें समझा-बुझाकर घर लौटा लावें। इसपर गुस्सा होकर वायुभूतिने भौजाईको बुरा-भला कहकर उसपर लात जमा दिया था। तब उससे निदान किया था कि पापी, तूने निर्बल समझकर मेरा जो अपमान किया है इसका बदला मैं इस समय नहीं चुका सकती। पर याद रख, इस जन्ममें नहीं तो पर जन्ममें सही बदला लूंगी और घोर बदला लूंगी।

इसके बाद वह मरकर अनेक कुयोनियोंमें भटकी। अन्तमें वायुभूति तो सुकुमाल हुए और उसकी भौजाई सियारनी हुई। जब सुकुमाल मुनि बनकी ओर रवाना हुए और उनके पांवोमें कङ्कर, पत्थर कांटे आदि लगकर खून बहने लगा तो यही सियारनी अपने पिल्लोंको साथ लिए खूनको चाटती-चाटती वहीं आ गई जहां सुकुमाल मुनि ध्यानमें लीन हो रहे थे। सुकुमालको देखते ही पूर्व जन्मके संस्कारसे सियारनीको अत्यन्त क्रोध आया। वह घूमती हुई उनके बिलकूल निकट आ गई और सुकुमालको खाना शुरू कर दिया। उसे खाते देख उसके पिल्ले भी खाने लग गये। जो कभी एक तिनकेका चुभ जाना भी नहीं सह सकता था, वह आज ऐसे घोर कष्टको सहकर भी सुमेरु-सा निश्चल बना है। सुकुमालके शरीरको चार हिंसक जीव निर्दयतासे खा रहे हैं फिर भी वह रंचमात्र हिलता-डुलता नही है। उस महात्माकी इस अलौकिक सहन-शक्तिका किन शब्दोंमें उल्लेख किया जाय, यह बुद्धिमें नहीं आता। सुकुमाल मुनिकी यह सहन शक्ति उन कर्तव्यशील मनुष्योंको अप्रत्यक्ष रूपसे शिक्षा दे रही है कि अपने उच्च और पवित्र कर्तव्योंमें आनेवाले विघ्नोंकी परवा मत करो विघ्न कुछ चीज नहीं-किसी गिनतीमें नहीं। तुम अपने पर विश्वास करो-भरोसा करो। हरएक काममें आत्मदृढता, आत्मविश्वास उनके सिद्ध होनेका मूलमंत्र है। जहां ये बाते नहीं, वहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्यता भी नहीं, तब कर्तव्य-शीलता तो फिर कोसों दूरीपर है। विलासितामें जीवन यापन करनेपर भी कर्तव्य-शीलता सुकुमालके पास थी। यही करण है कि हृदय-विदारक कष्टोंका सामना कर भी वे अचल बनें रहे।

सुकुमाल मुनिको उस सियारनीने पूर्व बैरके सम्बन्धसे तीन दिन तक खाया, पर वे मेरुके समान धीर बने रहे। दुःखकी उन्होने कुछ पर्वा न की। यहांतक की खानेवाली सियारनी पर भी उनके बूरे भाव न हुए। शत्रु-मित्रको समभावसे देखकर उन्होंने अपना कर्तव्यपालन किया। तीसरे दिन सुकुमाल शरीर छोडकर अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए।

वायुभूतिकी भौजाईने निदानके वश सियारनी होकर अपने वैरका बदला चुका लिया। निदान अत्यन्त दुःखोंका कारण है। अत एव भव्यजनोंको यह पापका कारण निदान कभी नहीं करना चाहिये। इस पापके फलसे सियारनी मरकर कुगतिमें गई।

कहां वे मनको लुभानेवाले भोग और कहां यह दारुण, तपस्या? महापुरुषोंका चारित्र विलक्षण हुआ करता है। सुकुमाल मुनि अच्युत स्वर्गमें देव होकर दिव्य सुखोंको भोगते हैं और जिन भगवानकी भक्तिमें सदा लीन रहते हैं। सुकुमाल मुनिकी इस वीर मृत्युके उपलक्षमें स्वर्गके देवोंने आकर उनका जयजयकार मनाया। देवोंने जो सुगन्धित जलकी वर्षा की थी, उससे वहांकी नगरी गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई।

जिसने दिन-रात विषय-भोगोंमेंही अपनी सारी जिन्दगी बिताई, जिसने कभी दुःखका नाम भी न सुना, वही महापुरुष सुकुमाल मुनिराज द्वारा अपनी तीन दिनकी आयु सुनकर उसी समय सांसारिक ममताको छोड जिनदीक्षा लेने बनमें चले गये। वहां भी पशुओं द्वारा दुःसह कष्ट सहकर जिसने धैर्य और शान्तिके साथ मृत्युको अपनाया, वे सुकुमाल मुनि मुझे कर्तव्यके लिये कष्ट सहनेकी शक्ति प्रदान करें।

–इति सुकुमालमुनिकी कथा समाप्त–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवकृत उपसर्ग सहन करनेका उदाहरण-

तीव्रदुःखैरतिक्रुद्धभूतारब्धैरितस्ततः ।
भग्नेषु मुनिषु प्राणानौज्झद्विद्युच्चरः स्वयुक् ॥१०४॥

अन्वयार्थ-(अतिक्रुद्धभूतारब्धैः) अति क्रोधित हुई व्यन्तरीके द्वारा किये गये (तीव्रदुःखैः) तीव्र दुःखोंके द्वारा (मुनिषु) बहुतसे मुनियोंके (इतस्ततः) इधर उधर (भग्नेषु) भाग जानेपर भी (विद्युच्चरः) विद्युच्चर मुनिने (स्वयुक्) अपनी आत्मामें लीन होकर (प्राणान्) प्राणोंको (औज्झत्) छोडा ॥१०४॥

भावार्थ-मुनिसंघपर क्रोधित हुई नीच व्यंतर देवीने घोर उपसर्ग किया था। जिस उपसर्गसे बहुतसे मुनि अपनी समाधिसे च्युत होकर इधर उधर भाग गये। परन्तु धीरवीर विद्युच्चर मुनिने उपसर्गका सामना किया। अपनी स्वात्माका ध्यान करते हुये समाधिमरणको प्राप्त हुये ॥१०४॥

विद्युच्चर मुनिकी कथा

संसारको सुख प्रदान करनेवाले सर्वश्रेष्ठ जिनेंद्र भगवानके पादपद्मोंमें नतमस्तक होकर शास्त्रोंके अनुसार विद्युच्चर मुनिकी कथा लिखनेका प्रयत्न करते हैं।

मिथिलापुरमें जिस समय राजा वामरथ शासन करते थे, उस समय कोतवालके पदपर एक यमदण्ड नामका व्यक्ति नियुक्त था। वहीं एक विद्युच्चर नामका चोर रहता था जो अपनी चौर्य्य कलामें निपुण था। उसका नियम था कि वह दिनमें एक कोढीका वेष धर कर किसी सुनसान मंदिरमें रहता था। किन्तु रातको मनुष्यके वेषमें चोरी करता था। एक दिन वह राजाके देखते देखते उनका हार चुरा लाया, पर राजा उसका कुछ न कर सके। दूसरे दिन राजाने कोतवालको बुलाकर कहा कि देखो कोई चोर अपनी सुंदर वेष-भूषासे मुझे मुग्ध कर मेरा हार उठा ले गया है। तुम उसे एक सप्ताहके भीतर उस हार या चोरको मेरे समक्ष उपस्थित करो अन्यथा तुम्हें दण्ड दिया जायगा। क्योंकि मालूम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है कि तुम अपने कर्तव्योंका यथेष्ट पालन नहीं करते, नहीं तो राज्य-प्रासादसे चोरी हो जाना आश्चर्यकी बात है ? 'महाराजकी आज्ञा' ऐसा कहकर कोतवाल चोरकी खोजमें निकला। उसनें सारे शहरकी सडकों और गलियोंको ढूंढ डाला, पर चोरका कहीं भी पता न लगा। इस तरह ६ दिन बीत गये। सातवे दिन कोतवाल पुन: चोरको ढूंढने निकला। अकस्मात् उसकी दृष्टि एक सुनसान मंदिरपर पडी। वह उस मंदिरमें घुस गया। वहां एक कोढी पडा था। उसे देखकर कोतवालको सन्देह हुआ। कोतवालने उससे इस ढंगसे बातें की कि कुछ पता मिले, पर पता न चला। कोतवालका सन्देह और भी दृढ हो गया। वह उसे पकडकर राजाके पास ले गया और कहा कि महाराज यही आपका चोर है। राजाने जब उस कोढीसे पूछा तो वह साफ इंकार हो गया। उसने कहा कि मैं चोर नहीं हूं, यह व्यर्थ ही मुझे घसीट लाये हैं। राजाने कोतवालकी ओर देखा। कोतवालने पुन: दृढतापूर्वक कहा—महाराज यही चोर है। कोतवालको बिना सबूतके इस प्रकार कहते हुअे कुछ लोगोंको सन्देह हुआ कि यह अपनी जान बचानेके लिये ऐसा कहता है और इस गरीब भिखारीको सजा दिलाना चाहता है। उन लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि महाराज कहीं ऐसा न हो कि बिना अपराधके ही इस भिखारीको बेमौत मरना पडे। राजाने उनकी प्रार्थनापर ध्यान दिया नहीं, पर कोतवाल उसे घर ले गया और मारने पीटनेमें कोई कसर न रखी। इतना कष्ट दिये जानेपर भी वह कोढी बराबर यही कहता रहा कि मैं चोर नहीं हू। दूसरे दिन फिर उसे राजाके सामने लाकर कोतवालने कहा कि यही पक्का चोर है, पर कोढीने स्पष्ट कहा कि मैं हर्गिज चोर नही हूं। वस्तुत: चोर विकट साहसी होते हैं।

पश्चात् राजाने कहा कि—यदि तू सच सच कह दे तो मैं तेरा अपराध क्षमा कर दूं। राजासे आश्वासन पाकर उस कोढी वेषधारी विद्युच्चरने कहा—यदि ऐसी बात है तो मैं सच्ची बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बता देता हूं । इतना कहकर उसने राजासे क्षमा याचनाकी और कहा कि वास्तवमें मैं ही चोर हूं । राजाको आश्चर्य हुआ । उन्होंनें कहा कि जव तू चोर था तो इतनी मार कैसें सही ? विद्युच्चरनें कहा– महाराज ! मैं एक मुनिसे नरकोंका हाल सुन चुका था । मैंने विचार किया इन कष्टों और नरकके दुःखोंमें तो तिल और ताडका–सा अन्तर है । और जब मुझे अनन्तवार नरकके दुःखोंको सहना पडा है तो इन तुच्छ दुःखोंको सह लेना ती साधारण सी बात है ।

विद्युच्चरसे सच्ची बातें सुनकर राजा प्रसन्न हो गये और कहा कि तुझे जो वर मांगना हो मांग तब विद्युच्चरने कहा कि मैं इस कृपाके लिये आपका आभारी हूँ । पर मुझे जो कुछ आप देना चाहते हैं, वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहबको दीजिये । राजा और भी आश्चर्यमें पड गये । उन्होंने कहा–यह तेरा मित्र कैसे ? विद्युच्चरने कहा– महाराज, मैं आपको साफ साफ बताता हूँ । यहांसे सुदूर दक्षिण वेनानदीके तटपर एक वेनातट नामका शहर बसा हुआ है । वहांके राजा जितशत्रु और रानी जयावती मेरे माता–पिता हैं । मेरा नाम विद्युच्चर है । उस शहरमें भी एक यमपाश नामक कोतवाल थे । उनकी स्त्रीका नाम यमुना था । आपके कोतवाल साहब उन्हीकी सन्तान है । हम दोनों एक ही गुरुके यहां पढे हैं, इसीसे हमारी और इनकी मित्रता है । अन्तर केवल इतना ही है कि उन्होनें कोतवाली सम्बन्धका शास्त्राभ्यास किया था और मैं चौर्य शास्त्र का । यद्यपि यह विद्या मैंने विनोदके लिये पढी थी किंतु एक दिन हम दोनों आपसमें अपनी विद्याकी प्रशंसा कर रहे थे कि मैंने अभिमान पूर्वक कहा कि अच्छा जहां तुम कोतवालीके पदपर नियुक्त होगे वही मैं जाकर चोरी करूंगा । तब इन्होंने कहा कि मैं भी उसी स्थानपर रहूँगा जहां तुम चोरी करोगे और मैं उस शहरकी पूर्ण रक्षा करूंगा ।

देवों द्वारा, बडी भक्तिसे पूजित केवलज्ञानसे विराजमान श्री विद्युच्चर मुनि हमें और भव्यजनोंको मंगल मोक्ष सुख दे जिससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् मेरे पिता जितशत्रुने मुझे राज्य भार देकर जिन-दीक्षा ले ली इनके पिता भी जिनदीक्षा ले साधु बन गये। मैं राजा हुआ और इन्हें इनकी पिताकी जगह मिली। किन्तु ये मेरे डरसे वहां न रहकर आपके कोतवाल नियुक्त हुए। मैं तो प्रतिज्ञा कर चुका था, इसलिये चोर बनकर मुझे यहां आना पड़ा। इतना कहकर विद्युच्चरने हार चुरानेकी सब बातें बता दी। और यम-दण्डको साथ लेकर अपने शहरमें चला आया।

इस घटनासे विद्युच्चरको वैराग्य हो गया। राजमहलमें पहुंचते ही उसने अपने पुत्रको बुलाकर विधिवत् जिनेन्द्र भगवानकी पूजा-अभिषेक किया, पश्चात् राज्यका भार पुत्रको सोंपकर अन्य राजकुमारोंके साथ जिनदीक्षा ले मुनि हो गया।

अनेक दिनोंतक विद्युच्चर मुनि अपने संघके साथ देश विदे-शमें भ्रमण करते रहे। बहुतसे मायामें फंसे हुये व्यक्तियोंको उन्होंने आत्महितकी ओर लगाया और स्वयं भी काम क्रोध राग-द्वेषादि आत्म शत्रुओंका प्रभुत्व नष्ट कर उनपर विजय प्राप्त की।

एक दिन घूमते हुए विद्युच्चर मुनि ताम्रलिप्त पुरीकी ओर आये। जब ये लोग पुरीमें प्रवेश कर रहे थे तो वहांकी चामुण्डा देवीने आकर उन्हें भीतर जानेसे रोका; और यह भी कहा कि योगिराज! जरा ठहरिये अभी मेरी पूजा विधि हो रही है। अत एव जबतक वह पूरी नहीं हो जाती तबतक आप यहीं रहें। किन्तु देवीके मना करते रहनेपर भी वे भीतर चले गये और कोटकी ओर एक पवित्र जगह देखकर वहीं संघके साथ ध्यानावस्थित हो गये। इससे देवी क्रोधित हो गयी। उन्होंने मायासे मच्छर डांस आदि खून चूसनेवाले जीवोंको उत्पन्न कर महाउपद्रव करना आरम्भ कर दिया। किन्तु विद्युच्चर मुनिने इस कष्टको बडी शान्तिके साथ सहकर बारह भावनाओंके चिंतन कर आत्माको वैराग्यकी ओर दृढ किया और इस प्रकार शुद्ध ध्यानके बलसे कर्मोंका नाश कर अक्षय अनन्तसुखको प्राप्त किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारको शान्ति मिले। हे विद्युच्चर! यतिराज! मुझे भी वह शक्ति प्रदान करो जिससे मैं भी घोरोपसर्ग सहन करनेमें समर्थ होवूं और कर्मशत्रुको ध्यानाग्निमें होमकर मोक्षसुखको प्राप्त करूँ।

-विद्युच्चर मुनिकी कथा समाप्त-

तथा-

अचेतनृतिर्यग्देवोपसृष्टासंक्लिष्टमानसाः।
सुसत्त्वा बहवोऽन्येऽपि किल स्वार्थमसाधयन् ॥१०५॥

अन्वयार्थ-(किल) आगममें और भी वर्णन मिलता है कि (बहवः) बहुतसे (अन्ये) और (अपि) भी (सुसत्त्वाः) महाशक्तिधारी यतिराज (अचेतन्नृतिर्यग्देवोपसृष्टासंक्लिष्टमानसाः) अचेतन, मनुष्य, तिर्यञ्च और देवकृत उपसर्गसे संक्लेशको नहीं प्राप्त हुवा मन जिन्होंका ऐसे होते हुये (स्वार्थं) अपने मोक्षपुरुषार्थको (असाधयन्) सिद्ध किया।

भावार्थ-इन चारका तो केवल दृष्टांत दिया है-और भी गजकुमार सुकोशल श्रीदत्त चिलातीपुत्र आदि अनेक महाधीरवीर महामुनियोंने अचेतनकृत तिर्यञ्चकृत, मनुष्यकृत और देवकृत घोरोपसर्ग तथा क्षुधादि परीषह आनेपर उन उपद्रवोंके संक्लेशरहित होकर सहन किया है तथा अपने स्वात्मामें लीन होकर परमपुरुषार्थकी सिद्धि की है।

तथा और भी-

तत्त्वमप्यङ्गसङ्गत्य निःसङ्गेन निजात्मना।
त्यजाऽङ्गमन्यथा भूरिभवक्लेशैर्लपिष्यसे ॥१०६॥

अन्वयार्थ-(अंग) अहो महात्मन्! (त्वं) तू (अपि) भी (निःसंगेन) परद्रव्यसंगरहित (निजात्मना) अपनी चैतन्य आत्माके साथ (संगत्य) युक्त होकर (तत्) उस (देहं) शरीरको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(त्यज) छोड। (अन्यथा) यदि संक्लेश परिणाम युक्त होकर प्राण छोडेगा तो (भूरिभवक्लेशैः) प्रचुर संसारके क्लेशोंसे (ग्लपिष्यसे) तूं अपनी आत्माको आकुलित करेगा ॥१०६॥

भावार्थ-हे आराधक ! जिस प्रकार शिवभूति आदि मुमुक्षु महामुनियोंने घोरोपसर्ग आनेपर भी अपनी समाधिसे च्युत नहीं हुए प्रत्युत अपनी समाधिमें लीन होकर सच्चा अपना परमपुरुषार्थ मोक्षको सिद्ध किया हैं। अतः एव हे भव्य ! तुम भी उन महापुरुषोंके समान अपनी शुद्धात्मामें उपयुक्त होकर तथा परीषह उपसर्गसे विचलित न होते हुये इस शरीरका परित्याग करो तथा अपना परमपुरुषार्थ मोक्षको सिद्ध करो। अन्यथा यदि इस समय तेरे परिणामोंमें संक्लेश परिणाम उत्पन्न हो जायेंगे। अर्थात् तूं संक्लेश परिणाम करके मरेगा तो तुझे संसारके प्रचुर दुःखोंसे दुःखी होना पडेगा। कहा भी है कि-

विराद्धे मरणे देव दुर्गतिर्दूरचोदिता।
अनन्तश्चापि संसारः पुनरप्यागमिष्यति ॥

हे देव ! समाधिमरणके बिगड जानेपर दूरसे प्रेरित हुई दुर्गति प्राप्त होती है और फिर अनन्त संसारी हो जाता हैं।

तथा च निश्चयसम्यग्दर्शन आदिके स्वरूपका उपदेश—

श्रद्धा स्वात्मैव शुद्धः प्रमदवपुरुपादेय इत्याञ्जसी दृक्।
तस्यैव स्वानुभूत्या पृथगनुभवनं विग्रहादेश्च संवित्।
तत्रैवात्यन्ततृप्त्या मनसि लयमितेऽवस्थितिः स्वस्य चर्या।
स्वात्मानं भेदरत्नत्रयपरपरमं तन्मयं विद्धि शुद्धम् ॥१०७॥

अन्वयार्थ-(भेदरत्नत्रयपर) भेद (व्यवहार) रत्नत्रयमें तत्पर (प्रमदवपुः) आनन्द स्वरूप (शुद्धः) द्रव्यकर्म और भावकर्मसे रहित (स्वात्मा एव) अपनी आत्मा ही (उपादेयः) ग्रहण करने योग्य है। (इति) इस प्रकारकी (श्रद्धा) विश्वास रुचि ही (आंजसी) परमार्थिक (दृक्) सम्यग्दर्शन है। (च) तथा (तस्यैव) उस शुद्धात्माको ही (स्वानुभूत्या) अपनी स्वानुभूतिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा (विग्रहादेः) मन, वचन, कायसे (पृथगनुभवनं) भिन्न चिंतवन करना (संवित्) परमार्थभूत सम्यग्ज्ञान है। तथा (तत्र एव) उसी निज शुद्ध स्वरूपमें ही (अत्यन्ततृप्त्या) अत्यन्त तृप्तिके साथ (मनसि) मनको (लयं) तन्मय (इति) करके (अवस्थितिः) अवस्थान करना (आञ्जसी) वास्तविक (चर्या) चारित्र है। इसलिये तुम (परमं) परम (शुद्धं) शुद्ध (तन्मयं) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय अपनेको (विद्धि) जानो।

भावार्थ-वीतराग प्रभुने कहा है अर्थात् शास्त्रोंमें लिखा है कि-मुमुक्षुओंके द्वारा चिदानन्दमय शुद्धात्मा ही गृहण करने योग्य है, परपदार्थ नहीं, इस प्रकारकी परमार्थभूत श्रद्धा ही निश्चय सम्यग्दर्शन है। तथा उसी शुद्धात्माका स्वानुभूतिसे मन, वचन, काय आदि परपदार्थोंसे पृथक् चिन्तवन करना परमार्थभूत निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उस परमार्थभूत शुद्धात्माके साथ जो स्वानुभूति हुई है उसका ही अपनी आत्मामें अत्यन्त तृप्तिपूर्वक अवस्थित करना अर्थात् तन्मय होना ही निश्चय चारित्र है। अतः तुम अपनेको इन निश्चयरूपसे परम रत्नत्रयात्मक समझो। कहा भी है कि-

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः॥

अर्थ-आत्माका विनिश्चय ही सम्यग्दर्शन है। आत्माका परिज्ञान ही बोध है और अपनी आत्मामें आत्माकी स्थिति निश्चय चारित्र हैं। इस प्रकारसे इन तीनोंके होनेसे जीवको बन्ध भला फिर कैसे हो सकता है?। अर्थात् रत्नत्रयके होनेपर आत्माको बन्ध नही होता है।

तपाराधनामें तत्पर होनेका उपदेश-

मुहुरिच्छामणुशोऽपि प्रणिहत्य श्रुतपरो परद्रव्ये।
स्वात्मनि यदि निर्विघ्नं प्रतपसि तद्असि ध्रुवं तपसि॥१०८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ-हे क्षपक ! (मुहुः) बार बार (श्रुतपरः) श्रुत-ज्ञानमें तत्पर होकर (परद्रव्ये) परपदार्थोंमें होनेवाली (अणुशः) अणुमात्र भी (इच्छा) इच्छाको (अपि) भी (प्रणिहत्य) नाश करके (यदि) यदि तूं (स्वात्मनि) अपने आत्मामें (निर्विघ्नं) निर्विघ्न (प्रतपसि) लीन होता है (तद्) तो तूं (ध्रुवं) निश्चयसे (तपसि) तपमे (असि) रहता है।

भावार्थ-हे क्षपक ! यदि तूं बार बार श्रुतज्ञानकी भावनामें तत्पर होकर परद्रव्यसंबंधी इच्छाओंका पूर्ण रूपसे त्याग करके अपनी आत्मामें निर्विघ्न रूपसे स्थित है तो तू निश्चयसे तपस्वी है-आराधक है और साक्षात् मोक्षके साधनभूत तप आराधनामें तत्पर है।

इस प्रकार दो गाथाओंके द्वारा निश्चयज्ञान, दर्शनचारित्र और तपाराधनाका वर्णन किया है।

इस समय निश्चय और व्यवहार आराधनाके द्वारा साध्य परमानंदका लाभ तुमको प्रगट होवो ऐसा आशीर्वाद देकर आचार्य क्षपकके उल्लासको बढाते हैं-

नैराश्यारब्धनैसंग्यासिद्धसाम्यपरिग्रहः ।
निरुपाधिसमाधिस्थः पिबानन्दसुधारसम् ॥१०९॥

अन्वयार्थ-हे क्षपक ! (नैराश्यारब्धनैसंग्यसिद्धसाम्यपरिग्रहः) परद्रव्यकी आशाके परित्यागसे प्रारब्ध जो बहिरंग और अंतरंग परिग्रहका त्याग उससे धारण की है सिद्ध परमेष्ठीकी समानता जिसने ऐसा होकर तथा (निर्विकल्पसमाधिस्थः) निर्विकल्पक समाधिमें स्थित होकर (आनंदसुधारसं) आनंदामृतका (पिब) पान कर ॥१०९॥

भावार्थ-अहो व्रतशिरोरत्नधारक ! इस समय तुम जीवन, न, पुत्र, पौत्रादिककी कांक्षासे रहित होनेके कारण प्रारब्ध कये गये अपरिग्रहपनेसे सिद्धके समान निष्परिग्रहताको धारण करनेवाले होते हुये, ध्यान, ध्याता, ध्येयके विकल्पसे रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विकल्प समाधिमें स्थिर होकर, चिदानंदमय सुधारसका पान कर एवं स्वात्मामें तन्मय हो।

अब- इस अध्यायमें वर्णित कथनका उपसंहार करते हुयें आराधकके आराधनापूर्वक मरणके फलविशेषका कथन करते हैं-

संलिख्येति वपुः कषायावदलङ्कर्मीण निर्यापक-।
न्यस्तात्मा श्रमणस्तदेव कलयंल्लिगं तदीयं परः॥
सद्ररत्नत्रयभावनापरिणतः प्राणान् शिवाशाधर।
स्त्यक्त्वा पंचनमस्क्रियास्मृति शिवी स्यादष्टजन्मान्तरे॥११०॥

अन्वयार्थ- (शिवाशाधरः) मोक्षकी इच्छा करनेवाला मुमुक्षु (श्रमणः) मुनि (अलङ्कर्मीणनिर्यापकन्यस्तात्मा) व्यवहारसे संसाररूपी समुद्रसे तारनेके लिये समर्थ ऐसे निर्यापकाचार्यको सोंपी है आत्मा जिसने ऐसा होता हुवा (इति) इस प्रकार (कषायवत्) कषायके समान (वपुः) शरीरको (संलिख्य) कृश करके (तदीयं) पूर्वमें कहे हुये उसी (लिंगं) लिंगको (कलयन्) धारण करता हुवा (सद्‌रत्नत्रयभावनापरिणतः) सद्‌रत्नत्रयभावनमे परिणत होता हुवा (प्राणान्) प्राणोंको (त्यक्त्वा) छोडकर (शिवी) मोक्षगामी (स्यात्) होता है। यह उत्कृष्ट सल्लेखनाका व्याख्यान है। मध्यम की अपेक्षा (सद्‌रत्नत्रयभावनापरिणतः शिवी स्यात्) समीचीन संवर और निर्जरामें समर्थ रत्नत्रयकी भावनासें युक्त होकर प्राण छोंडनेसे शिवी-इन्द्रादिक पदका धारी होता है और जघन्यपक्ष (पंचनमस्क्रियास्मृति प्राणान् त्यक्त्वा) पंच नमस्कारका उच्चारण करते हुयें प्राण छोडकर (अष्टमजन्मान्तरे) आठवे भवमें (शिवी स्यात्) मोक्षमें जाता है। तथा (परः) श्रावक समाधिमरण करनेके लिये मुनिव्रत धारण कर नमस्कार मंत्रका उच्चारण करते हुये प्राण छोडकर (शिवी स्यात्) यथायोग्य अभ्युदयोंको धारण करनेवाला होता है ॥११०॥

भावार्थ- सल्लेखना व्रतके धारक श्रावक और मुनि दोनों हो सकते हैं। इस ग्रन्थमें सल्लेखना व्रतके धारण करनेवाले मुनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योंके उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारका वर्णन करते हुयें एक ही श्लोकके तीन अर्थ किये हैं ।

उत्तम सल्लेखनाका वर्णन

उत्तम आराधना करनेवाला मुमुक्षु मुनि कषायोंके समान शरीरको कृश करके और व्यवहार नयसे अपनी आत्माको संसार समुद्रसे तारणके लिये समर्थ ऐसी निर्यापकाचार्यके स्वाधीन करके तथा निश्चय नयसे अपनी आत्माको अपनी शुद्धात्मानुभूतिमें तन्मय करके आत्मसाधन करें क्योंकि निश्चयनयसे अपनी आत्मा ही आत्माके गुरु है ।

सो ही कहा हैं—

स्वस्मिन्सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञायकत्वत: ।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ।।१।।

आत्मा ही सच्ची अभिलाषाओंका कर्त्ता है, इष्टका ज्ञापक है और हितका प्रयोक्ता है । इसलिये वास्तवमें आत्मा ही आत्मा का सच्चा गुरु है, इस प्रकार निश्चय और व्यवहार इन दोनों निर्यापकाचार्योंके वश अपनी आत्माको समर्पण करके, तथा मुनिपदको धारण कर समीचीन संवर और निर्जरामें समर्थ यथाक्रमसे गुण-स्थानोंको चढकर अन्तमें अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती परमयोगी होकर प्राणोंको छोडकर उसी भवमें मुक्तिपदको प्राप्त करता है । मध्यम पक्ष-मध्यम पक्षमें और सब अर्थ पूर्वके समान है; परन्तु सद्-रत्नत्रयभावनापरिणतः इसका अर्थ समीचीन रत्नत्रयकी भावनामें परिणत होता हुवा मुनिलिंगको धारण कर यथायोग्य संवर निर्जरा करता हुवा प्राण छोडता है वह शिवी-अर्थात् इन्द्रादिक पदका धारक होता है । और जघन्य आराधनाकी अपेक्षा-पंचनम-स्कार मंत्रका उच्चारण करता हुवा प्राण छोडता है वह संसारके अभ्युदयोंको भोगकर अष्टमभवमें मुक्तिपदको प्राप्त होता है । उत्तम और मध्यम सल्लेखनावाला यथायोग्य आत्माके उपयोगसहित प्राणोंको छोडता है इसलिये क्रमसे मोक्षपद तथा सर्वार्थसिद्धिको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त होता है। और जघन्य आराधक पंचनमस्कारके उच्चारण अथवा स्मरणपूर्वक मरण करता है, वह कल्पवासी देव होता है।

जो मुनि होकर सल्लेखना करते हैं उनकी अपेक्षा इस पद्यमें तदेव लिंगं कलयन् यह विशेषण है, अर्थात् अपने मुनिलिंगको धारण करते हुये प्राणोंका त्याग करते हैं, और जो साधक सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं, उनकी अपेक्षा इस पदके स्थानमें तदीयं लिंगं कलयन् यह विशेषण लगाना चाहिये अर्थात् सम्यग्दृष्टि श्रावक मुनिपदकी भावना भाते हुए प्राण छोडकर यथायोग्यकालमें अभ्युदयको प्राप्त कर अष्टमभवमें मोक्षपद प्राप्त करता है।

आगममें आराधनाके फल बतानेवाले कुछ पद्य पाये जाते हैं-

कालाइं अहिऊण च्छित्तूणं अठ्ठकम्मसंखलयं।
केवलणाणपहाणा केई सिज्झंति तम्हि भमे ॥१॥

आराधना धारण करके यथाकाल आठ कर्मोंकी शृंखलाको तोडकर कोई आराधक उसी भवमें केवलज्ञान प्रधान होकर मुक्तिको पाते हैं। यह आराधनाका उत्तम फल है।

आराहिऊण केई चउव्विहराहणावि जं सारं।
उव्वरियसेसपुण्णो सव्वठ्ठणिवासिणो होंति ॥२॥

कोई चार प्रकारकी आराधना धारण करके सर्वार्थसिद्धि निवासी होते हैं (यह मध्यम आराधनाका फल है)

जेसिं होज्ज जहण्णा चउविह आराहणा हु भवियाणं।
सत्तठ्ठभवे गंतुं ते विय पावन्ति णिव्वाणं ॥३॥

जघन्य रीतीकी चारों प्रकारकी आराधना जो भव्य साधते हैं वे भी ७-८ भवमें निर्बाणको प्राप्त करते हैं।

येपि जघन्या तेजोलेश्यामाराधनामुपनयंति।
तेपि च सौधर्मादिषु भवंति देवाः सुकल्पस्थाः ॥१॥

जो तेजोलेश्यायुक्त जघन्य आराधनाको सिद्ध करते हैं वे सौधर्मादि कल्पोंमें देव होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण त्रुट्यन्मोहस्य योगिनः ।
चरमांगस्य मुक्तिः स्याद् तदैवान्यस्य च क्रमात् ॥२॥

जो ध्यानके अभ्यासके प्रकर्षसे मोहके तोडनेवाले चरमशरीरी योगी हैं; उनके उसी भवमें मुक्ति होती है । जिनके ध्यानके अभ्यासका पूरा प्रकर्ष नहीं होता है, जो चरमशरीरी नहीं है वे आराधनाके फलसे परम्परासे मुक्तिके अधिकारी होते हैं ।

तथा ह्यचरमांगस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा ।
निर्जरा संवरश्च स्यात्सकलाशुभकर्मणां ॥३॥

अचरम शरीरवाला साधक जो सदा ध्यानका अभ्यास करता उसे सदा असुभ कर्मोका संवर और निर्जरा होती है ।

आस्रवंति च पुण्यानि प्रचुराणि प्रतिक्षणं ।
यैर्महद्भिर्भवत्येष त्रिदशः कल्पवासिषु ॥४॥

और प्रतिक्षण बहुतसे शुभकर्मोका आस्रव होते हुए वह कल्पवासी देव होता है ।

तत्र सर्वेंद्रियाल्हादि मनसः प्रीणनं परं ।
सुखामृतं पिबन्नास्ते सुचिरं सुरसेवितः ॥५॥

वहांपर वह चिरकालतक देवोंसे सेवित होकर सर्व इंद्रियोंके आल्हाददायक और मनको आल्हाद देनेवाले सुखामृतका पान करता हुआ रहता है ।

ततोवतीर्य मर्त्येपि चक्रवर्त्यादि संपदः ।
चिरं भुक्त्वा स्वयं मुक्त्वा दीक्षां दैगम्बरीं श्रितः ॥६॥

फिर स्वर्गसे चय कर चक्रवर्ति आदिकी संपदाका भोग करके और उन संपत्तियोंसे स्वयं विरक्त होकर त्याग भी करके जिनदीक्षा लेता है ।

वज्रकायः स हि ध्यात्वा शुक्लध्यानं चतुर्विधं ।
विधूयाष्ट च कर्माणि श्रयते मोक्षसम्पदम् ॥७॥

और उत्तम संहननवाला वह ४ प्रकारके शुक्लध्यानको ध्यान कर अष्टकर्मोंको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी समंतभद्राचार्यंने भी श्रावककी सल्लेखनाके विषयमें कहा है—

स्वरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पंच नमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वंयत्नेन ॥८॥

अपनी शक्तिके अनुसार खरपानका क्रमसे त्याग करके अर्थात् स्निग्धपानादिकका जैसा क्रम ग्रंथमें बताया है, तदनुसार त्याग करके तथा एकदम उपवास भी करके सर्व प्रयत्नसे मनमें पंच नमस्कार मंत्रको धारण करते हुये शरीरको छोडे ॥११०॥

अष्टम अध्यायका सारांश

ग्रंथकारने इस ग्रंथमे पाक्षिक, नैष्ठिक और साधकके भेदोंका कथन करनेकी प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पाक्षिक और नैष्ठिक श्रावकका कथन हो चुका है। इस अध्यायमें साधकका विवेचन किया गया है।

सागारधर्मकी पूर्णताके लिए एवं आत्मसिद्धिके लिए सल्लेखनाको साधन करना आवश्यक है। यह शरीर नश्वर है। आत्माको कभी उपकार करनेवाला नहीं है, इसलिए उसे स्वस्थ रखकर अर्थात् योग्य आहार विहारादिके द्वारा उसकी रक्षा कर काम लेना चाहिये। यदि रोगादिक उत्पन्न हो जाय तो औषधादिके द्वारा उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। औषधादिके देनेपर भी शरीरपर उसका कोई प्रभाव न हो तो अर्थात् वह इस आत्माको छोडनेके मार्गमें ही हो तो उससे पहले ही दुष्टके समान आत्मा उस शरीरका त्याग करें। इसीका नाम सल्लेखना है। कषाय और कायको अच्छी तरह कृश करते हुए मरणका स्वागत करना यह सल्लेखना है।

सल्लेखना यह आत्मसाधकका आवश्यक कर्तव्य है, वह आत्मघात नहीं है। क्योंकि जहां क्रोधके आवेशमें आकर विष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्षण, शस्त्रघात, श्वासनिरोध, अग्निप्रवेश, पर्वतपतन आदिके द्वारा प्राणघात किया जाता है उसे आत्मघात कहते हैं। यहांपर ऐसी कोई बात नहीं है।

इस प्रकार इस अध्यायमें सल्लेखना मरणको साधनेका कारण, विधान, पद्धति और प्रकारका सुंदर व विस्तृत विवेचन किया गया है। सल्लेखनामरणको विशुद्ध रूपसे साधनेवाला निश्चयसे आत्मसाधनाको प्राप्त करता है। कदाचित् सल्लेखनाकी सभी विधि नहीं सधी,बीचमे ही मरण हो जाय तो उसकी भावनाका फल अवश्य मिलेगा। जैसे कि तीर्थयात्राके लिए निकले हुअ यात्रीका बीचमे ही मरण होनेपर भी तीर्थयात्राका शुभबंध उसे होता ही है। सल्लेखना साधनेवाला साधक कैसा हो, वह किस क्रमसे अपनी इस साधनाके लिए तत्पर हो, निर्यापकाचार्य किस विधिसे उसकी साधनाका निर्वाह करावे इत्यादि विषयोंका विस्तृत व सविधि व सदृष्टांत वर्णन ग्रंथकारने इस अध्यायमे किया है।

उपसंहार करते हुए उत्तम सल्लेखनाका फल साक्षात् मोक्ष, मध्यम सल्लेखनाका फल सर्वार्थसिद्धि या इंद्रादिक पद, जघन्य सल्लेखनाका फल स्वर्गजन्म है, श्रावकोंको भी स्वर्गादिककी प्राप्ति होती है, इस प्रकार प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी
विरचित स्वोपज्ञ सागारधर्मामृत दीपिकाकी
भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें
अनगार धर्मामृत की
अपेक्षासे १७ वां और
सागारके प्रकरणकी
अपेक्षासे अष्टम
अध्याय समाप्त
हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मण्डलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेन्द्रसमयश्रद्धातुराशाधरः ॥१॥

श्रीमान् त्रिवर्गसंपत्तियुक्तः। शाकंभरी लवणाकरविशेषः। श्रीरतिधाम लक्ष्मीक्रीडागृहं श्रीरत्न्यां रत्नीति कविमातुः संज्ञा। उदपादि उत्पन्नः।१।

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् ।
यः पुत्र छाहडं गुण्यं रञ्जितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥३॥स्पष्टं ।

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनन्दितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुञ्जोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ।४।स्पष्टं

म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति—
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदोः परिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गोञ्जसि ।
प्राप्तो मालवमण्डले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥५॥

म्लेच्छेशेन साहिबुदीनतुरुष्कराजेन । सुवृत्तक्षतिः सदाचारनाशः । दोः परिमलः परिमलो लक्षणावृत्त्या बलं बाहुबलातिशय इत्यर्थः । ओज उत्साहोऽन्तः सारो वा । जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे जैनेन्द्रप्रमाण-शास्त्रं जैनेन्द्रव्याकरणं च । महावीरतः वादिराजपण्डितश्रीमद्धरसेन-शिष्यात्पण्डितमहावीरात् ॥५॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्यं ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्चः ॥६॥

अजर्यं मैत्रीं सरस्वतीपुत्रतया निसर्गसौंदर्यं प्रकृत्या सहोदरत्वं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना ।
श्रीविन्ध्यभूपतिमहासन्धिविग्रहिकेण यः ॥७॥

इति उपश्लोकितः श्लोकेनोपस्तुतः । श्रीविन्ध्यभूपतिः विजयवर्मा नाम मालवाधिपतिः ॥७॥

श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले ।
जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥८॥ स्पष्टं ।

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान् ।
सत्तर्कं परमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ।९।

कान्,पण्डितदेवचन्द्रादीन् प्रत्यर्थिनः प्रतिवादिनः । के,वादींद्रविशालकीर्त्यादयः अक्षिपन् जयन्ति स्म । चेरुः प्रवृत्ताः । के, भट्टारकदेवविनयभद्रादयः । अस्खलितं निरतिचारं । जिनवाक् अर्हत्प्रवचनं । पथि मोक्षमार्गे ग्राहिताः स्वीकारिताः । रसिकेषु सहृदयविदग्धेषु मध्ये । आपुः प्राप्ताः । के, बालसरस्वतीमहाकविमदनादयः ॥९॥

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः ।
तर्कप्रबन्धो निरवद्यविद्यापीयूषपूरो वहति स्म यस्मात् ॥
सिद्ध्यङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबन्धोज्ज्वलं
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोहनमयं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबन्धरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतम्
निर्माय न्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्रे हृदि ॥११॥

सिद्ध्यंकं सिद्धिः सिद्धशब्दोऽङ्कश्चिन्हं सर्गप्रांतवृत्तेषु यस्य तत् । निबन्धोज्ज्वलं स्वयंकृतनिबन्धनेन स्फुटप्रतिभासं । अरीरचत् रचयति स्म । अर्हद्वाक्यरस जिनागमनिर्यासभूतं निबन्धरुचिरं । स्वयंकृत ज्ञानदीपिकाख्यपंजिकया रमणीयं धर्मामृतं धर्मामृताख्यं न्यदधात् स्थापयति स्म ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् ।
अष्टाङ्गहृदयोद्द्योतं निबन्धमसृजच्च यः ॥१२॥

व्यक्तुं प्रकटीकर्तुं । वाग्भटसंहितां अष्टांगहृदयनाम्नीं ॥१२॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबन्धनम् ॥
व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥१३॥

आदिः आराधनासारभूपालचतुर्विंशतिस्तवनाद्यर्थः । उज्जगौ उत्कृष्टं कृतवान् ॥१३॥

रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालङ्कारस्य निबन्धनम् ।
सहस्रनामस्तवनं सनिबन्धं च योर्हताम् ॥१४॥

रौद्रटस्य रुद्रटाचार्यकृतस्य । अर्हतां अनन्तजिनानां ॥१४॥

सनिबन्धं यश्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् ।
त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥१५॥

सनिबन्धं स्वयंकृतेन जिनयज्ञकल्पदीपकाख्येन निबन्धेन सहितं जिनयज्ञकल्पं जिनयज्ञकल्पाख्यं जिनप्रतिष्ठाशास्त्रं अरीरचत् निर्मितवान् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं आर्षमहापुराणशास्त्रोध्दृतत्रिषष्टि-शलाकापुरुषवृत्तगोचरं त्रिषष्टिस्मृतिसंज्ञं सक्षिप्तशास्त्रं । निबन्धालङ्कृतं स्वयंकृतनिबन्धेन भूषितं ॥१५॥

योर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् ।
चक्रे नित्यमहोद्द्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१६॥

नित्यमहोद्योतं नित्यमहोद्योताख्यं ॥१६॥

रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् ।
रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुते स्म यः ॥१७॥

सोऽहमाशाधरो रम्यामेतां टीकां व्यरीरचम् ।
धर्मामृतोक्तसागारधर्माष्टाध्यायगोचराम् ॥१८॥

धर्मामृतोक्ताः स्वकृतधर्मामृताख्यशास्त्रे निगदिताः ॥१८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमारवंशवार्धीन्दुदेवपालनृपात्मजे ।
श्रीमज्जैतुगिदेवेऽसिस्थेम्नाऽवन्तीमवत्यलम् ॥१९॥

असिस्थेम्ना खड्गजलेन अवति रक्षति सति ॥१९॥

नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत् ।
टीकेयं भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधैः ॥२०॥

असिधत् सिद्धा ॥२०॥

षण्णवद्व्येकसंख्यानविक्रमाङ्कसमात्यये ।
सप्तम्यामसिते पौषे सिद्धेयं नन्दताच्चिरम् ॥२१॥

समाः संवत्सराः १२९६ वर्षे पौषवद्य सप्तमी तत्र दिने इत्यर्थः ।

श्रीमान् श्रेष्ठिसमुद्धरस्य तनयः श्रीपौरपाटान्वय-
व्योमेन्दुः सुकृतेन नन्दतु महीचन्द्रो यदभ्यर्थनात् ।
चक्रे श्रावकधर्मदीपकमिमं ग्रन्थं बुधाशाधरो
ग्रन्थस्यास्य च लेखितो मलभिदे येनादिमः पुस्तकः,

स्पष्टं अलमतिप्रसङ्गेन ॥२२॥

यावत्तिष्ठति शासनं जिनपतेश्छिन्दानमन्तस्तमो
यावच्चार्कनिशाकरौ प्रकुरुतः पुंसां दृशामुत्सवम् ।
तावत्तिष्ठतु धर्मसूरिभिरियं व्याख्यायमानाऽनिशं
भव्यानां पुरतोऽत्र देशविरतागारप्रचारोद्धुरा ॥२३॥

इत्याशाधरविरचिता स्वोपज्ञधर्मामृतसागारधर्मटीका
भव्यकुमुदचंद्रिकानाम्नी समाप्ता ।

ग्रन्थसंख्या ।

अनुष्टुप्छन्दसां पञ्चशताग्राणि सतां मता ।
सहस्राण्यस्य चत्वारि ग्रन्थस्य प्रमितिः किल ॥२४॥

अङ्कात्ग्रतो ग्रन्थप्रमाणं ४५०० । शुभं भवतु लेखकपाठकयोः ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

अ

अकीर्त्या तप्यते चेत: १६६
अचेन्नृतिर्यंग्देवोप– ६४७
अजैर्यष्टव्यमित्यत्र ५८७
अतिप्रसंगमसितुं २५१
अथ नत्वाऽर्हतोऽक्षूण २
अथाहूय सुतं योग्यं ४६१
अथेर्याथसंशुद्धि ३८८
अधोमध्योर्ध्वलोकेषु ५४१, ५४५
अनन्तशक्तिरात्मेति ४५४
अनन्तकाया: सर्वेऽपि ३३०
अन्नै: पुष्टो मलैर्दुष्टो ५०९
अनाद्यविद्यादोषोत्थ ३
अनाद्यविद्यानुस्यूतां ४
अनारम्भवधं मुञ्चेत् २११
अनादौ वम्भ्रमन् घोरे ३८२
अनादिमिथ्यादृगपि ४९७
अन्योऽहं पुद्गलश्चान्य: ५२९
अन्धोमदान्धै: प्रायेण ५१०
अब्रम्हारम्भपरिग्रह १७४
अभिमानावने गृद्धि २५५
अयोग्यासंयमस्याङ्गं ३०३
अलब्धपूर्वं किं तेन ५२२
अविश्वासतमो नक्तं ३०४
असत्यं वय वासोऽन्धो २६१
अष्टैतान् गृहिणां मूल– ५७
अहिंसाव्रतरक्षार्थं २४६
अहिंसा प्रत्यपि दृढं ५८३
अहो जिनोक्तिनिर्णीति: ४४९
अहो चित्रं धृतिमताम् ४५२

आ

आकांक्षन् संयमं भिक्षा ४८२
आधानादिक्रियामंत्र १२९
आभान्त्यसत्यदृङ्मांया २२४
आमगोरससम्पृक्तं ३३२
आरम्भेऽपि सदा हिंसां १६३
आरोपित: सामायिक ४४४
आराद्धोऽपि चिरं धर्मो ५०४
आर्यिका: श्राविकाश्चापि १५६
आवश्यके मलक्षेपे २५८
आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां ३९७
आसन्नभव्यता कर्म ११
आस्तां स्तेयमभिध्याऽपि ५९९

इ

इति केंचिन्न तच्चारु: ३३८
इत: शमश्री: स्त्रीचेत: ४२२
इति च प्रतिसंदध्यात् ४२४
इति चर्यां गृहत्याग ४७७
इति व्रतशिरोरत्न ५३७
इत्यनारम्भजां जह्याम् २३१
इत्यहोरात्रिकाचार ४४१
इत्यास्थायोत्थित: तल्पात् ३८३
इत्यापवादिकीं चित्रां ४९२
इत्येकादशधाऽऽम्नातो ४९३
इत्थं पथ्यपृथासारै: ५३२
इत्वरिकागमनं पर– २९७
इदानीमुपलब्धात्मा ६२१
इमं सत्वं हिनस्मीति २३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ

उद्यत्क्रोधादिहास्यादि ३०२
उद्यानभोजनं जन्तु ३९६
उद्योतनं महेनैक २५७
उपवासाक्षमैः कार्यः ३५२
उपवासादिभिः कायं ५०४
उपास्या गुरवो नित्यं ११९

ए

एकोऽप्यर्हन्नमस्कारः ५५५
एकान्ते केशबन्धादि ३४५
एकैवास्तु जिने भक्तिः ५५०
एवं पालयितुं व्रतानिविदधत् ३७७
एवं व्युत्सृज्य सर्वस्वं ४७०
एवं निवेद्य संघाय ५३७

क

कषायविकथा निद्रा २४४
कषायेन्द्रियतंत्राणां ६१७
कन्यादूषणगांधर्व २१०
कन्यागोक्ष्मालीककूट २५९
कलिप्रावृषि मिथ्यादिङ् १५
कायः स्वस्थोऽनुवर्त्यः स्यात् ४९८
कार्यो मुक्तौ दवीयस्यां ५०८
कालेन वोपसर्गेण ५००
किमिच्छकेन दानेन १०४
किञ्चित्कारणमासाद्य ४९६
किं कोऽपि पुद्गलः सोस्ति ५२८
किं चांगस्योपकार्यं न ५३२
क्रिया समभिहारोऽपि ४२६
कुधर्मोस्थोऽपि सद्धर्मं १७
कृत्वा माध्यान्हिकं भोक्तु ३७३
कृत्वा यथोक्तं कृतिकर्मसंध्या ४४३
केषांचिदन्धतमसा- ८
केवलं करणैरेनम् ५२८
कौपिनेऽपि समूर्च्छत्वात् ५१८
क्रमेण पक्त्वा फलवत् ५०२
क्वापि चेत्पुद्गले सक्तो ५२९

ख

खण्डश्लोकैस्त्रिभिः कुर्वन् ५७७

ग

गवाद्यैर्नैष्ठिको वृत्ति २३८
गहनं न तनोऽहानं ५११
गृध्द्यैः हुङ्कारादिसंज्ञां २५४
गृहवासो विनाऽऽरम्भात् २३३
ग्रहणास्तरणोत्सर्गा ३५५

च

चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च १८२
चित्तकालुष्यकृत्काम ३२३
चित्रकूटेऽत्र मातंगी ७९
चित्रं पाणिगृहीतीयं ४२३
चैत्यादौ न्यस्य शुद्धे १०६
चैत्यालयस्थः स्वाध्यायं ४७२
चोरव्यपदेशकरः २६७
चोरप्रयोगचोरा- २७

ज

जन्ममृत्युजरातङ्काः ५०३
जलोदरादिकृद्यूक २४७
जागृत्तीव्रकषायकर्कशमनः २०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता जैनकुले पुरा जिनवृषा	८७	तातान्च यावदस्माभिः	४६१
जिनार्चा क्रियते भव्यैः	१०२	तीर्णो भवार्णवस्तैर्य	५१६
जिनानिव यजन्सिद्धान्	११८	तीव्रदुःखैरतिकुद्ध	६४३
जिनधर्मं जगद्वन्धुं	१५५	तृणपूलवृहत्पुञ्जे	६२३
जीवितमरणाशंसे	५२४	त्रिस्थानदोषयुक्ताय	५१८
ज्ञानमर्च्यं तपोंऽगत्वा	१३९	त्याज्यानजस्रं विषयान्	५५
ज्ञानादि सिध्द्यर्थं	३५७	त्यजेत्तौर्यत्रिकासक्ति	२०८
ज्ञानिसंगतपोध्यानैः	४०९	त्याज्याः सचित्तनिक्षपः	३७५
त		त्यक्ताहाराङ्गसंस्कारः	४४६
तत्वमप्यङ्गसंगत्य	६४७	त्वा यद्युपैमि न पुनः	
ततः प्राभातिकं कुर्यात्	३५४	सुनिवेश्य रामं	२४८
ततश्चावर्जयेत् सर्वान्	३९०	**द**	
ततो यथोचितस्थानं	३९२	दर्शनिकोऽथ व्रतिकः	१७४
ततः पात्राणि संतर्प्य	४०१	दर्शनप्रतिमामित्थम्	२१८
तत्तादृक्संयमाभ्यास	४५४	दानशीलोपवासार्चा	४८६
तत्तद्व्रतास्त्रनिर्भिन्न	४७८	दायादाज्जीवतो राज-	२०८
ततो गत्वा गुरूपांतं	४८२	दिग्विरत्या वहिः सीम्नः	३१८
ततो निर्यापकः कर्णे	५४०	दिग्व्रतोद्रिक्तवृत्तघ्न	३१८
तत्रादौ श्रद्दधज्जैनीम्	५६	दिग्व्रतपरिमितदेश	३४३
तत्र न्यंचति नो विवेकतपनं	४८८	द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु	३७४
तत्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनात्	८९	दुःखाग्निकीलैराभीलैः	६२०
तद्वद्दर्शनिकादिश्च	१७६	दुःखं संकल्पयन्ते ते	६२१
तद्वच्च न सरेद्व्यर्थं	३२५	दुःखमुत्पद्यते जंतोः	२३४
तदेनं मोहमेवाहं	४०७	दुःखावर्ते भवाम्वोधौ	४०६
तदिदं मे धनं धर्म्यं	४६९	दुर्लेश्याभिभवाज्जातु	१७५
तद्वत् द्वितीयः किंत्वार्यं	४८४	दृक्पूतमपि यष्टारम्	१०८
तदिदानीमिमां भ्रांतिं	५२९	दृष्टचा मूलगुणाष्टकं व्रतभरं	४३
तदाखिलो वर्णिमुख	५३९	दृष्ट्वाऽऽर्द्रचर्मास्थि सुरा	२५२
तपः श्रुतोपयोगीनि	१४५	दृष्ट्वा जगद्बोधकरं	३८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशयमघ्नकषाय १७०
देशसमयात्मजात्या– ३०४
देहाहारे हितत्यागात् ४९५
देहादि वैकृतैः सम्यग् ५०१
देह एव भवो जन्तोः ५२०
दोषो होढाद्यपि मनो २०७
द्यूताद्धर्मतुजो बकस्यपिशितात् १८५
द्यूते हिंसानृतस्तेय ८४
दैवाल्लब्धं धनं प्राणैः १३६

ध

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्यं ४१०
धन्यास्ते जिनदत्ताद्याः ४३१
धर्मं यशः शर्म च सेवमाना ३७
धर्मपात्राण्यनुग्राह्या– १२३
धर्मसन्ततिमक्लिष्टां १३४
धर्मार्थकामसध्रीची १५७
धर्मध्यानपरो नीत्वा ३५३
धर्मान्नान्यः सुहृत्पापा– ४८९
धर्माय व्याधिदुर्भिक्ष– ५०८
धिग्दुष्षमाकालरात्रिं ११३

न

न चात्मघातोऽस्ति वृष– ४९९
नरत्वेऽपि पशूयन्ते ६
नवकोटीविशुद्धस्य ३६१
न हिंस्यात्सर्वभूतानि १६२
न हन्मीति व्रतं कुध्यन् २४१
नवनिष्ठापरः सोऽनु ४७१
न धर्मसाधनमिति ४९७
नाथामहेऽद्य भद्राणाम् १७
नावश्यं नाशिने हिंस्यो ४९९
नामतः स्थापनातोऽपि १२७
नास्वामिकामिति ग्राह्यं २६८
नालिसूरणकालिन्द्र ३३०
नित्याष्टाह्निकसच्चतुर्मुखमहा ४६
निर्माप्यं जिनचैत्यतद्गृहमठ- १११
निर्व्याजया मनोवृत्या १२०
नियमेनान्वहं किञ्चित् १२२
निस्तारकोत्तमायाथ १२९
निर्दोषां सुनिमित्तसूचितशिवां १३०
नित्यं भर्तुमनीभूय २१३
निर्लाञ्छनासतीपोषौ ३३८
निष्फलेऽल्पफलेऽनर्थं ३९३
निद्राच्छेदे पुनश्चित्तं ४०५
निशां नयन्तः प्रतिमा ४४८
निरूढसप्तनिष्ठोऽङ्ग– ४५९
निर्गत्यान्यद्गृहं गच्छेत् ४८०
निर्यापके समर्प्यं स्वं ५२४
नीरगोरसधान्यैधः ३९५
नृपस्येव यतेर्धर्मो ५०५
नैराश्यारब्धनैसंग्य ६५०
न्यग्मध्योत्तमकुत्स्यभोगजगती १४०
न्यस्य भूषाधियाङ्गेषु ६२५
न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् २०

प

पंचम्यादिविधिं कृत्वा १११
पंचधाणुव्रतं त्रेधा २२४
पञ्चाप्येवमणुव्रतानि समता ३१३
पञ्चात्रापि मलानुज्झेत् ३५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परं तदेव मुक्त्यङ्गम्	३४६	पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष-	७७
पलमधुमद्यवदखिल:	३२८	पिण्डे जात्याऽपि नाम्नाऽपि	५०३
परासाधारणान्गुण्य	१६६	पिण्डशुध्युक्तमन्नादि	३६१
प्रतिष्ठायात्रादि	११४	पीडा पापोपदेशाद्यै:	३२१
प्रयतेत सधर्मिण्याम्	२१४	पीते यत्र रसाङ्गजीवनिवहा:	६०
प्रमत्तो हिंसको हिंस्या	२४३	पुरेऽरण्ये मणौ रेणौ	४२८
प्रतिपक्षभावनैव न	२७४	पुत्र: पुपूषो: स्वात्मानं	४६२
प्रमादचर्यां विफल-	३२४	पुरुप्रायान् बुभुक्षादि	६२३
प्रोक्तो नित्यमहोन्वहंनिजगृहा-	१०१	पुद्गलक्षेपणं शब्द-	३२८
प्रतिग्रहोच्चस्थानांघ्रि	३५९	पूजयोपवसन् पूज्यान्	३५५
पञ्चसूनापर: पापं	३६४	पूर्वेऽपि बहवो यत्र	६०४
प्रथमाश्रमिण: प्रोक्ता	४५५		
पञ्चाचारक्रियोद्युक्तो	४७३	ब	
परं शंसन्ति माहात्म्यं	५१३	बन्धाद्देहोऽत्र करणा-	४०७
प्रस्थितो यदि तीर्थाय	५१५	बलिस्नपननाटचादि	१०४
परद्रव्यग्रहेणैव	५२१	ब्रह्मचारी गृहीवान-	४५६
प्रतिपत्तौ सजन्नस्यां	५३४	बाह्यो ग्रंथोङ्गमक्षाणां	६१६
परीषहभयादाशु	५३५	ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय	३८१
प्रहासित कुदृग्बद्ध:-	५४५	भ	
परीषहोऽथवा कश्चित्	६२०	भक्त्या मुकुटवद्धैर्या	१०३
परायत्तेन दु:खानि	६२२	भजन्मद्यादिभाजस्त्री	१८०
पाक्षिकादि भिदा त्रेधा	५३	भजेद्देहमनस्ताप	२१४
पाक्षिकाचारसंस्कार	१७८	भावो हि पुण्यायमत:	१३९
पार्श्वे गुरूणां नृपवत्	१२१	भ्रमति पिशिताशनाभि	६७
पात्रागमविधिद्रव्य-	१२२	भुञ्जतेऽन्ह सकृद्वर्या	२५०
पानं षोढा धनं लेपि	५३३	भूरेखादिसदृक्कषायवशगो	३३
पापोपदेशो यद्वाक्यं	३२२	भृत्वाऽऽश्रितानवृत्त्या	१५९
प्राणिहिंसार्पितं दर्पम्	६६	भृशापवर्तकवशात्	५०१
प्राण्यङ्गत्वे समेप्यन्नं	७२	भोगित्वाद्यन्तशान्ति	१४५
प्रारब्धो घटमानो	१७७	भोगोऽयमियान् सेव्य:	३२७
प्राय: पुष्पाणि नाश्नीयात्	१८२	भोग: सेव्य: सकृदुप-	३२८
प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां	४८०	भोगोपभोगकृशनात्	३३३
प्राणान्तेऽपि न भंक्तव्यं	४८६	भो निर्जिताक्ष विज्ञात	५२७
प्राग्जन्तुनाऽमुनाऽनन्ता	५१३	म	
प्रायार्थी जिनजन्मादि	५१४	मधुकृद्व्रातघातोत्थं	७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधुवन्नवनीतं च	७६	यदेकबिन्दोः प्रचरन्ति जीवाः	५८
मद्यपलमधुनिशाशन	८५	यथाशक्ति यजेतार्हत्	९५
मनोमठकठराणाम्	११५	यथास्वं दानमानाद्यैः	१०८
मद्यादिविक्रयादीनि	१८०	यथाकथंचिद्भजतां	११७
ममेदं इति संकल्पः	३०२	यद्वस्तु यद्देश-काल	२६१
मध्ये जिनगृहं हासं	३९२	यत्स्वस्य नास्ति तत्कल्प्ये	२६३
महाव्रतानि रक्षोच्चैः	५४१	यः परिग्रहसंख्यान-	३१०
मा समन्वाहर प्रीति	५३६	यद्गुणायोपकाराय	३१६
मा कांक्षीर्भावि भोगादीन्	५३६	यथा विभवमादेय	३८५
मां गां कामदुघां मिथ्या	५८७	यथादोषं कृतस्नानो	३७९
मिथ्यादिश रहोऽभ्याख्या	२६५	यथा प्राप्तमदन्देह-	४७२
मिथ्यात्वं वम सम्यक्त्वं	५४०	यदौत्सर्गिकमन्यद्वा	५२०
मिथ्येष्टस्य स्मरन्	६१४	यमपालो ह्रदेऽहिंसन्	५८३
मुहूर्तेऽन्त्ये तथाऽद्येऽन्ह	१८४	यन्मुक्त्यङ्गमहिंसैव	२३२
मुहूर्तयुग्मोर्ध्वमगालितं वा	१८४	यावज्जीवमिति त्यक्त्वा	८६
मुंचन् बन्धंवधच्छेदौ	२३५	यावन्न सेव्या विषयाः	१६०
मुंचेत कंदर्पकौत्कुच्य	३२५	यावद् गृहीतसंन्यासः	५२३
मुहुरिच्छामणुशोऽपि	६४९	ये यजंते श्रुतं भक्त्या	११९
मूलोत्तरगुणनिष्ठाम्	३८	योऽत्ति त्यजन् दिनाद्यन्त	२५१
मोक्तुं भोगोपभोगांग	२६३	यो मुमुक्षुरघाद्बिभ्यत्	४५९
मोक्ष आत्मा सुखं नित्यं	३४७	योग्यायां वसतौ काले	५१६
मोक्षोन्मुखक्रियाकाण्ड	४२९	योग्यं विचित्रमाहार	५२६
मंत्रादिनाऽपि बन्धादिः	२४२	**र**	
य		रत्नत्रयोच्छ्रयो भोक्तुः	३६३
यजेत देवं सेवेत	२३	रागादिक्षयतारतम्यविकसत्	४१
यत्प्रसिद्धैरभिज्ञानैः	३१७	रागजीववधापाय	७८
यत्तारयति जन्माब्धे	३५८	रागाद्द्वेषान्ममत्वाद्वा	५१५
यति स्यादुत्तमं पात्रं	३५९	रात्रावपि ऋतावेव	४५२
यत्कर्ता किल वज्रजंघनृपति	३६५	रात्रिभक्तव्रतो रात्रौ	४५३
यत्प्राक्सामायिकं शीलं	४४७	रात्रौ मुषित्वा कौशाम्बी	६००
यस्त्वेकभिक्षानियमः	४८३	रूपैश्वर्यकलावर्यम्	२८१
यत्प्रागुक्तं मुनींद्राणां	४९१	**ल**	
यतीन्नियुज्य सत्कृत्ये	५२६	लब्धं यदिह लब्धव्यं	४२७
यत्प्रसादान्न जातु स्यात्	११८	लोकद्वयाविरोधीनि	४०३
यत्र सत्पात्रदानादि	२४९	लोकयात्रानुरोधित्वात्	२६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व

वरमेकोऽप्युपकृती १२६
वस्त्रनाणकपुस्तादि २०९
वसेन्मुनिवने नित्यं ४८३
व्रत्यते यदिहामुत्र २१०
व्रतयेत्खरकर्मात्र ३३८
व्रतमतिथिसंविभाग ३५७
वार्धारा रजसःशमाय पदयोः १०५
वास्तुक्षेत्रे योगात् ३०५
वाद्यादिशब्दमाल्यादि ३८६
वासुपूज्याय नमः इति ५५१
विनेयवद्विनेतॄणाम् ११५
विषयेषु सुखभ्रांति १३५
विन्यस्यैदंयुगीनेषु १३७
विना सुपुत्र कुत्र स्वं २१७
विरतिः स्थूलवधाद्यैः २२६
विष्वग्जीवचिते लोके २४६
विश्रम्य गुरुसब्रह्म ४०४
विद्या मंत्राश्च सिध्यंति ४५५
विदीर्णमोह-शार्दूल ४७०
विशुद्धिसुधया सिक्तः ५१७
विवेकोऽक्ष कषायाङ्ग ५२३
व्युत्पादयेत्तरां धर्मे २१२
व्याध्याद्यपेक्षयाम्भो वा ५३८

श

शय्योपध्यालोचनान्न ५२२
शलाकयेवाप्तगिराऽप्तसूत्र १९
शांताद्यष्टकषायस्य २२८
शिक्षयेच्चेति तं सेयम् ५३४
शिरीषसुकुमाराङ्ग ६२९
शिक्षाव्रतानि देशाव- ३४२
शीलवान् महतां मान्यः ४८७
शुद्धमौनान्मनःसिद्ध्या २५६
शुद्धं श्रुतेन स्वात्मानं ६१८
शूद्रोऽप्युपस्काराचार ९३
शून्यध्यानैकतानस्य ४३०
शूले प्रीतो महामंत्रं ५७२
श्रद्धा स्वात्मैव शुद्धः ६४८
श्रावक श्रमणो वांते ५१२
श्रावको वीरचर्याहः ४८५
श्रीवर्धमानमानम्य १
श्रुत्वातिकर्कशाक्रंद २५२
श्रुतस्कंधस्य वाक्यं वा ६१७
श्रयो यत्नवतोऽस्त्येव १५५

स

स द्वेधा प्रथमः श्मश्रु- ४७९
स ग्रन्थविरतो यः प्राक् ४६०
सम्यक्त्वममलममला- ३२
समर्थनादि यन्नात्र १
समयिकसाधकसमय १२४
सत्कन्यां ददता दत्तः १३३
सप्तोत्तानशया लिहन्ति १४३
सर्वेषां देहिनां दुःखात् १५७
समीक्ष्य व्रतमादेयम् १६१
सङ्कल्पपूर्वकः सेव्य- १६२
सन्धानकं त्यजेत्सर्वं १८१
सर्वं फलमविज्ञातं १८३
सम्पूर्णदृग्मूलगुणो २२१
संतोषपोषतो यः स्यात् २३५
संसृष्टे सति जीवद्भिः २५२
संक्लेशाभिनिवेशेन २६८
संतापरूपो मोहाङ्ग २७८
समरसरसरङ्गोद्गम २७९
सचित्तं तेन सम्बद्धं ३३३
स प्रोषधोपवासो यत् ३५१
समाध्युपरमे शांतम् ३८३
सधर्मिणोऽपि दाक्षिण्यात् ३९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्गुरूपदेशेन	४००
स प्रोषधोपवासो स्यात्	४४५
सचित्तभोजनं यत्प्राङ्ग	४५०
सहगामीकृतं तेन	४९१
सल्लेखनाऽसंलिखतः	५१०
समाधिसाधनचणे	५१२
सहपांशु क्रीडितेन	५३५
संघश्रीर्भावयन्भूयो	५४२
स णमो अरहंताणं	५५५
संन्यासो निश्चयेनोक्तः	६१९
संलिख्येति वपुः कषायवद्-	६५१
सल्लेखनां करिष्येऽहं	४९०
सत्रमप्यनुकम्पानाम्	११६
सम्यग्भावितमार्गोऽन्ते	५०६
स्नपनार्चास्तुतिजपान्	३४८
सागारो वाऽनगारो वा	२२३
सापेक्ष्यस्य व्रते हि स्यात्	२४१
सामायिकं सुदुःसाधम्	३४९
साम्यामृतसुधौतान्तः	३८४
स्वाध्यायं विधिवत् कुर्यात्	३९१
सायमावश्यकं कृत्वा	४०४
सा मे कथं स्यादुद्दिष्टं	४७२
सामग्री विधुरस्यैव	४९५
स्वाध्यायादि यथाशक्ति	५७२
स्वाध्यायमुत्तमं कुर्यात्	४८९
स्थानादिषु प्रतिलिखेत्	४७९
स्थास्यामीदमिदं यावत्	३४३
स्थानेऽश्नंतु पलं हेतोः	६३
स्यान्मैत्र्याद्युपबृंहितोखिलवध	५१
स्त्र्यारंभसेवासंक्लिष्टः	१०९
स्त्रियं भजन भजत्येव	२८०
सीमविस्मृतिरूर्ध्वाध	३१९
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभ-	४८०
स्त्रीतश्चित्तनिवृत्तं चेत्	४२३
स्त्रीणां पत्युरुपेक्षैव	२१३
स्त्रीवैराग्यनिमित्तैक	४५१
सुदृग्बोधो गलद्वृत्त-	१
सुदृङ्मूलोत्तर-गुण	४४३
सुदृङ्निवृत्ततपसां	४७७
सुकलत्रं विना पात्रे	१३५
स्फुरत्यकोऽपि जैनत्व	१२६
स्थूलहिंसानृतस्तेय	८२
स्थूललक्षः क्रियास्तीर्थे	१६५
स्थूलहिंसाद्याश्रयत्वात्	२२८
सैषः प्राथमकल्पिको	१६७
स्वमपि स्वं मम स्याद्वा	२६९
सेयमास्थायिका सोऽयं	३८८
सोऽस्ति स्वदारसंतोषी	२७७
स्वपाणि–पात्र एवात्ति	४८५
स्वयं समुपविष्टोऽद्यात्	४८०
स्वस्त्रीमात्रेऽपि सन्तुष्टो	२८१

ह

हरितांकुरबीजाम्बु	४४८
हिंस्रः स्वयम्मृतस्यापि	६४
हिंस्रदुःखिसुखि प्राणि	१६४
हिंस्यहिंसकहिंसा तत्	२४३
हिंसादानविषास्त्रादि	३२३
हिंसार्थत्वान्न भूगेह	३७४
ह्रीमान्महर्द्धिको यो वा	५१९

क्ष

क्षणे क्षणे गलत्यायुः	४२५
क्षालितांघ्रिस्तथैवान्तः	३८७

समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकि... ...र ... उसके पृ...

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं. 135
दि. 11.8.66
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी-5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi